परमात्म प्रकाश प्रवचन

भाग-४

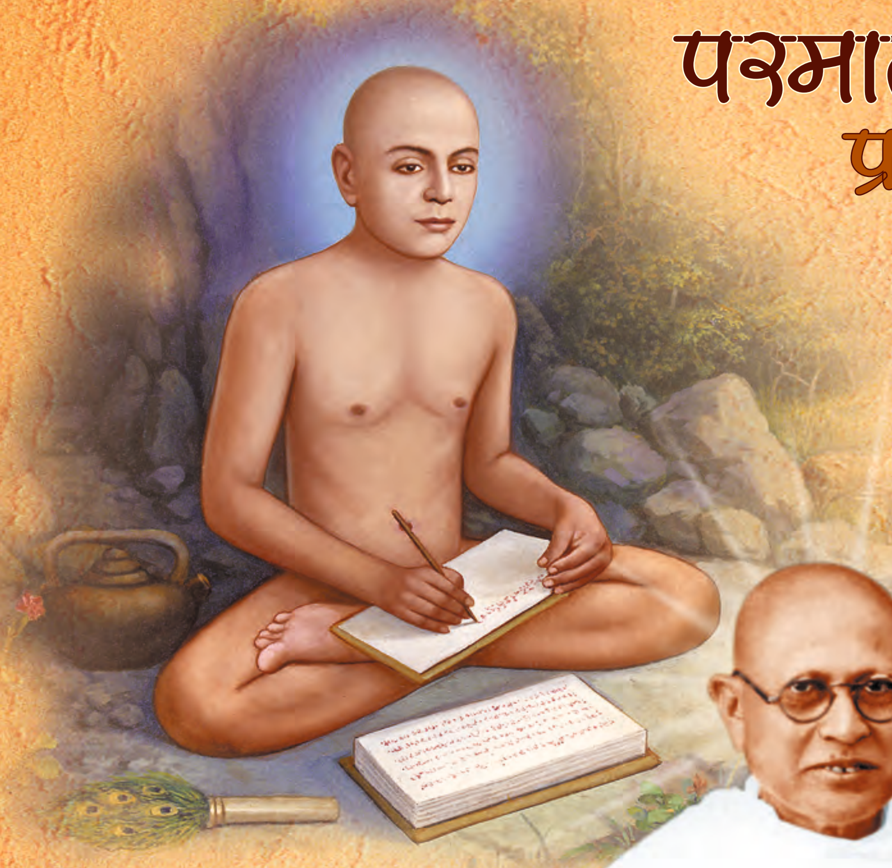

ॐ

श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग-4

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः प्रवचन (द्वितीय अधिकार)
गाथा 1 से 40, प्रवचन क्रमांक 94 से 121

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2078 | **वीर संवत 2548** | **ई. सन 2022**

—: प्रकाशन :—

मुनिरक्षा पर्व दिन

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, दिनांक 13 अगस्त 2022

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए है। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विविक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्राय: अखण्ड मोक्षमार्ग को पुन: जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर

प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं। और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दश: ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत चौथा भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरश: प्रवचनों को सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित

करने की योजना है। जिसमें से यह चतुर्थ भाग प्रकाशित किया जा रहा है। प्रकाशन हेतु प्रवचनों को सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक में वाक्य रचना पूर्ण की जाती है। जिस गाथा के प्रवचन उपलब्ध न हों अथवा कम हो उन्हें इससे पूर्व हुए प्रवचनों में से लिया जाता है। तत्पश्चात् प्रवचनों को सुनकर व्यवस्थित करके प्रकाशन हेतु प्रेस में दिया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भावन यथावत् बने रहें इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया गया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्तःकरण से क्षमायाचना करते हैं। यदि पाठकवर्ग को भी कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो कृपया हमें सूचित करें, जिससे आवश्यक संशोधन किया जा सके।

प्रस्तुत अक्षरशः प्रवचन डी.वी.डी. से सुनकर गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का काम श्री निलेशभाई जैन, भावनगर तथा समग्र प्रवचनों को चैक करने का कार्य जागृतिबेन वोरा, मुम्बई तथा श्री मणीभाई गाला, देवलाली और स्व. श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ vitragvani.com वेबसाइट एवं vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
९४	१२३, १	०३-१०-१९७६	००१
९५	२, ३	०४-१०-१९७६	०२०
९६	४, ५	०५-१०-१९७६	०३९
९७	५, ६	०६-१०-१९७६	०५७
९८	६	०७-१०-१९७६	०७४
९९	६, ७	०९-१०-१९७६	०८९
१००	७, ८	१०-१०-१९७६	१०६
१०१	८	११-१०-१९७६	१२३
१०२	९	१२-१०-१९७६	१३९
१०३	९-११	१३-१०-१९७६	१५४
१०४	११-१३	१४-१०-१९७६	१७०
१०५	१३, १४	१५-१०-१९७६	१८९
१०६	१४	१६-१०-१९७६	२०८
१०७	१४	१७-१०-१९७६	२२३
१०८	१४, १५	१८-१०-१९७६	२४०
१०९	१५-१७	२०-१०-१९७६	२६०
११०	१७	२१-१०-१९७६	२७९
१११	१८	२२-१०-१९७६	२९७
११२	१८	२३-१०-१९७६	३१२
११३	१८-२२	२४-१०-१९७६	३२४
८८	२३, २४	२८-१२-१९६५	३४२
८९	२४-२६	२९-१०-१९६५	३६७
९०	२६-२८	३०-१२-१९६५	३९०
९१	२८, २९	०१-०१-१९६६	४१४
९२	२९	०२-०१-१९६६	४३४
९३	२९-३१	०३-०१-१९६६	४५४
११४	३२, ३३	२५-१०-१९७६	४७४
११५	३३	२६-१०-१९७६	४९३
११७	३४	२८-१०-१९७६	५०९
९५	३४, ३५	०५-०१-१९६६	४२७
११९	३६	३०-१०-१९७६	५४६
१२०	३६-३८	३०-१०-१९७६	५६७
१२१	३८, ३९	०१-११-१९७६	५८६
१२२	४०	०२-११-१९७६	६०३

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग – 4)

अथ स्थलखंख्याबाह्यं प्रक्षेपकद्वयं कथ्यते –

१२३) मणु मिलियउ परमेसरहँ परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूवाहँ पुज्ज चडावउँ कस्स।।१२३–२।।

मनः मिलितं परमेश्वरस्य परमेश्वरः अपि मनसः।
द्वयोरपि समरसीभूतयोः पूजां समारोपयामि कस्य।।१२३–२।।

मणु इत्यादि। मणु मनो विकल्परूपं मिलियउ मिलितं तन्मयं जातम्। कस्य संबन्धित्वेन। परमेसरहं १परमेश्वरस्य परमेसरु वि मणस्स परमेश्वरोऽपि मनः संबन्धित्वेन लीनो जातः बीहि वि समरसिहूवाहं एवं द्वयोरपि समरसीभूतयोः पुज्ज पूजां चडावउं समारोपयामि। कस्स कस्य निश्चयनयेन न कस्यापीति। अयमत्र भावार्थः। यद्यपि व्यवहारनयेन गृहस्थावस्थायां विषयकषाय-दुर्ध्यानवञ्चनार्थं धर्मवर्धनार्थं च पूजाभिषेकदानादिव्यवहारोऽस्ति तथापि वीतरागनिर्विकल्प-समाधिरतानां तत्काले बहिरङ्गव्यापाराभावात् स्वयमेव नास्तीति।।१२३–२।।

इस प्रकार इकतीस दोहा–सूत्रों का–चूलिका स्थल कहा। चूलिका नाम अंत का है, सो पहले स्थल का अंत यहाँ तक हुआ। आगे स्थल की संख्या से सिवाय दो प्रक्षेपक दोहा कहते हैं –

लीन हुआ मन परमेश्वर में परमेश्वर मन में बसते।
जब दोनों ही समरस हो गए पूजा को क्या शेष रहे।।१२३–२।।

---

* पाठान्तर :– परमेश्वरस्य = परमोश्वरस्य परमात्मा

अन्वयार्थ :- [मनः] विकल्परूप मन [परमेश्वरस्य मिलितं] भगवान् आत्माराम से मिल गया-तन्मयी हो गया [परमेश्वरः अपि] और परमेश्वर भी [मनसः] मन से मिल गया तो [द्वयोः अपि] दोनों ही को [समरसीभूतयोः] समरस (आपस में एकमएक) होने पर [कस्य] किसकी अब मैं [पूजं समारोपयामि] पूजा करूँ। अर्थात् निश्चयनयकर किसी को पूजना, सामग्री चढ़ाना नहीं रहा।

भावार्थ :- जब तक मन भगवान से नहीं मिला था, तब तक पूजा करता था, और जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है। यद्यपि व्यवहारनयकर गृहस्थ-अवस्था में विषय कषायरूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये और धर्म को बढ़ाने के लिये पूजा, अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है, तो भी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए योगीश्वरों को उस समय में बाह्य व्यापार का अभाव होने से स्वयं ही द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं आता, भाव-पूजा में ही तन्मय हैं ।।१२३-२।।

वीर संवत् २५०२, आसोज शुक्ल ११, रविवार
दिनांक-०३-१०-१९७६, गाथा-१२३ (२-३), (दूसरा अध्याय) १, प्रवचन-९४

परमात्मप्रकाश १२३ का दूसरा। चल तो गयी है, नहीं? फिर से लेते हैं।

१२३) मणु मिलियउ परमेसरहँ परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूवाहँ पुज्ज चडावउँ कस्स।।१२३-२।।

आहाहा! क्या कहते हैं? मन अर्थात् विकल्परूप भाव, **'परमेश्वरस्य मिलितं' भगवान आत्माराम से मिल गया**—अर्थात् आनन्द ज्ञानस्वरूप में पर्याय एकाकार हो गयी। विकल्प जो मन है, वह रहा नहीं। उसका नाम भावपूजा है। आहाहा! भगवान आत्मा। परमेश्वर कहा न? परम ईश्वर। भगवान की व्याख्या अभी आयी थी एक जगह। वैसे तो भग का अर्थ ज्ञानादि लक्ष्मी होता है न? भग अर्थात् योनि में उत्पन्न न होना, वह भगवान। भग अर्थात् योनि, उत्पत्ति में नहीं आना, इसका नाम भगवान। चौरासी लाख की योनि में उत्पन्न नहीं होना, उसे भगवान कहा जाता है। ऐसा यह भगवान परमेश्वर... आहाहा! उसमें मन मिल गया। अर्थात् कि मन मर गया। अर्थात् कि विकल्प छूट गया और अन्तर ज्ञानानन्द में एकाकार हुआ। अब कहते हैं, मैं किसकी

पूजा करूँ? आहाहा! समझ में आया?

परमेश्वर भी मन से मिल गया... निर्विकल्पदशा होने पर परमेश्वर मिला और परमेश्वर निर्विकल्पदशा में आया। आहाहा! सेठ! अन्त में करने का यह है। समझ में आया? आहाहा! भगवान परमज्योति चैतन्यज्योति आनन्द का धाम, उसमें मन को मारकर अर्थात् अन्दर में जाने से मन रहता नहीं। इसलिए मन को डर है न? आता है न यह? कि जो अन्दर में जायेगा तो मन मर जायेगा। इसलिए बाहर रहूँ, यह ठीक है तो मेरा—मन का अस्तित्व तो रहेगा। मन है, वह यदि अन्दर में जायेगा तो मन को मार डालेगा यह तो। इसलिए बाहर भ्रमूँ तो मन टिक सकता है। आहाहा!

भगवान चैतन्यधातु सर्वज्ञस्वभावी परमेश्वर में मन की परिणति अर्थात् राग बिना की निर्मल परिणति उसमें मिल गयी और परमेश्वर परिणति में आ गया। आहाहा! लो, यह पूजा! ऐई! देवीलालजी! यह देव की पूजा। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप अस्तिरूप से परमेश्वर ही आत्मा है। परम ईश्वर के स्वभाव का सम्पन्न, वह आत्मा। उस आत्मा में निर्मल परिणति रागरहित, मनरहित अन्दर में परिणति एकाकार हुई... आहाहा! वहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येय के भेद भी नहीं रहे। आहाहा!

दोनों ही को समरस होने पर... देखो! '**समरसीभूतयोः**' दोनों वीतरागभावरूप हो गये। राग था, उसे छोड़कर अन्दर में दृष्टि करके स्थिर हुआ तो समरस हुआ, वीतरागभाव प्रगट हुआ। आहाहा! **(आपस में एकमएक) होने पर... 'कस्य पूजां समारोपयामि' किसकी अब मैं पूजा करूँ...** सामग्री चढ़ाकर किसे करूँ? भगवान तो पूजा में आ गये। आहाहा! **निश्चयनयकर किसी को पूजना, सामग्री चढ़ाना नहीं रहा।** बाहर की सामग्री वह तो है, परन्तु वह विकल्प होता है, अन्दर में निर्विकल्प ध्यान में रह नहीं सकता, तब उसे विकल्प / शुभराग आवे, तब बाहर की पूजा करने में आवे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु अन्दर में जहाँ आत्मा देखनेवाले को देखा, जाननेवाले को जाना, स्थिर होनेवाले में स्थिर हुआ। स्थिर वस्तु चारित्र वस्तु है आत्मा में, उसमें स्थिर हुआ, वह निर्विकल्प आनन्द है। लो, यह मार्ग है! ऐसा मार्ग भारी कठिन। क्या हो? यह कहेंगे।

भावार्थः—जब तक मन भगवान से नहीं मिला था, तब तक पूजा करता था,... सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! यहाँ। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञायकभाव, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं, ऐसा जो भगवान त्रिकाली आत्मा, उसमें जिसकी

परिणति लीन हो गयी, फिर किसकी पूजा करना ? कहते हैं। **भगवान से नहीं मिला था, तब तक पूजा करता था,...** यह समकिती की बात है, हों! यहाँ। सम्यग्दृष्टि ने अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप में अनुभव में प्रतीति की है, उसमें स्थिर नहीं रह सके, इसलिए विकल्प से व्यवहार पूजा करने में आता है। वह भी गृहस्थाश्रम के लिये कहेंगे, मुनि को नहीं। समझ में आया ? आहाहा! **जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है।** आहाहा!

अन्यमत में आता है एक। यह सूरदास आते हैं न सूरदास? अन्यमत में। वे श्रीकृष्ण से मिले थे, श्रीकृष्ण से। श्रीकृष्ण... स्वयं सूरदास है। श्रीकृष्ण हाथ पकड़कर खड़े हैं। हाथ छुड़ाकर कृष्ण चले गये। तो सूरदास कहते हैं कि प्रभु! तुम बाहर की नजर से तो छूट गये, परन्तु मेरे अन्दर में से तुम नहीं छूटोगे। मेरे भगवान आत्मा में मैं लीन होता हूँ। वहाँ से कृष्ण तुम दूर नहीं जा सकोगे। कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये। यह अज्ञान और राग-द्वेष को कृषकर नाश करे, उसे कृष्ण कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा अपने स्वरूप में राग-द्वेष को कृष अर्थात् नाश करके स्थिर होता है, वह कहाँ जायेगा ? वह भगवान दूर कहाँ से रहेगा ? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई!

जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है। यद्यपि व्यवहारनयकर... भाषा ऐसी है। सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! **गृहस्थ अवस्था में...** मुनि की यहाँ बात ली ही नहीं। **गृहस्थ अवस्था में विषय कषायरूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये...** परसन्मुख के झुकाव का आर्तध्यान **हटाने के लिये और धर्म को बढ़ाने के लिये...** धर्म अर्थात् शुभ में आते हैं तो शुद्धता थोड़ी बढ़ती है। अशुभ में शुद्धता अल्प है और शुभकाल में शुद्धता थोड़ी अशुभ गया उतनी बढ़ती है। उसे धर्म की वृद्धि, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? शुभभाव है, वह है तो राग, परन्तु उस पूजा के काल में, शुभभाव में अशुभ का नाश होता है और अशुभ टलता है, इतनी शुद्धि बढ़ती है। उस **धर्म को बढ़ाने के लिये पूजा...** गृहस्थाश्रम में पूजा होती है। भगवान की पूजा। **अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है,...** समकिती को विकल्प आता है। मुनि को आहार देना इत्यादि।

तो भी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए... ऐसा होने पर भी गृहस्थाश्रम में विकल्प को छोड़कर... आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए...** रागरहित

वीतरागी परिणति 'राग दाह दहे सदा...' 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये।' रागरूपी अग्नि का दाह। वह आत्मा को जलाता है, उसमें आत्मा की शान्ति जलती है। आहाहा! इसलिए 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये।' यह समरसी भाव कहा न? मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई यह तो! बाहर से प्राप्त हो, यह ऐसी चीज़ नहीं है। परन्तु वस्तु अन्तर में है न? अन्तरात्मा है न? आहाहा! अन्तर आत्मा, उसमें अन्तर में एकाकार होना, वह अन्तरात्मा की धर्मदशा है। आहाहा!

योगीश्वरों को उस समय में बाह्य व्यापार का अभाव होने से... मुनियों को तो बाहर के व्यापार का तो अभाव होता है। कब? अन्दर में ध्यान में—आनन्द में आवे तब। आहाहा! **स्वयं ही द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं आता,...** मुनि को स्वयं द्रव्य-पूजा आदि का विकल्प नहीं होता। **भावपूजा में ही तन्मय हैं।** आहाहा! जिन्हें मैं आत्मा हूँ, मैं अनुभव करता हूँ—ऐसा भी विकल्प नहीं। यह दशा—वीतरागभाव, उसे भगवान मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह १२३ का दूसरा (श्लोक) हुआ।

गाथा - १२३*३

१२३-३) जेण णिरंजणि मणु धरिउ विषय-कसायहिँ जंतु।
मोक्खहँ कारणु एत्तडउ अण्णु ण तनु ण मंतु।।१२३-३।।

येन निरञ्जने मनः धृतं विषयकषायेषु गच्छत्।
मोक्षस्य कारणं एतावदेव अन्यः न तन्त्रं न मन्त्रः।।१२३-३।।

जेण इत्यादि। येन येन पुरुषेण कर्तृभूतेन णिरंजणि कर्माञ्जनरहिते परमात्मनि मणु मनः धरिउ धृतम्। किं कुर्वत् सत्। विसयकसायहिं जंतु विषयकषायेषु गच्छत् सत्। विसयकसायहिं तृतीयान्तं पदं सप्तम्यन्तं कथं जातमिति चेत्। परिहारमाह। प्राकृते क्वचित्कारक-व्यभिचारो भवति लिङ्गव्यभिचारश्च। इदं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। मोक्खहं कारणु मोक्षस्य कारणं एत्तडउ एतावदेव। विषयकषायरतचित्तस्य व्यावर्तनेन स्वात्मनि स्थापनं अण्णु ण अन्यत् किमपि न मोक्षकारणम्। अन्यत् किम्। तन्तु तन्त्रं शास्त्रमौषधं वा मंतु मन्त्राक्षरं चेति। तथाहि। शुद्धात्मतत्त्वभावनाप्रतिकूलेषु विषयकषायेषु गच्छत् सत् मनो वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन-ज्ञानबलेन व्यावर्त्य निजशुद्धात्मद्रव्ये स्थापयति यः स एव मोक्षं लभते नान्यो मन्त्रतन्त्रादि-बलिष्ठोऽपीति भावार्थः।।१२३-३।।

एवं परमात्मप्रकाशवृत्तौ प्रक्षेपकत्रयं विहाय त्र्यधिकविंशत्युत्तरशतदोहकसूत्रैस्त्रि-विधात्मप्रतिपादकनामा प्रथममहाधिकारः समाप्तः।।१।।

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं -

चित्त हटाकर विषय-कषायों से निज में एकाग्र किया।
मात्र यही है मुक्ति मार्ग, कुछ अन्य मन्त्र तन्त्रादिक ना।।१२३-३।।

अन्वयार्थ :- [येन] जिस पुरुष ने [विषयकषायेषु गच्छत्] विषय कषायों में जाता हुआ [मनः] मन [निरंजने धृतं] कर्मरूपी अंजन से रहित भगवान् में रक्खा [एतावदेव] और ये ही [मोक्षस्य कारणं] मोक्ष के कारण हैं, [अन्यः] दूसरा कोई भी [तन्त्रं न] तंत्र नहीं हैं, [मन्त्रः न] और न मंत्र है। तंत्र नाम शास्त्र व औषध का है, मंत्र नाम मंत्राक्षरों का है। विषय कषायादि पर पदार्थों से मन को रोककर परमात्मा में मन को लगाना, यही मोक्ष का कारण है।

भावार्थ :- जो कोई निकट-संसारी जीव शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उलटे

विषय कषायों में जाते हुए मन को वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से पीछे हटाकर निज शुद्धात्मद्रव्य में स्थापन करता है, वही मोक्ष को पाता है, दूसरा कोई मंत्र-तंत्रादि चतुर होने पर भी मोक्ष नहीं पाता।।१२३-३।।

इस तरह परमात्मप्रकाश की टीका में तीन क्षेपकों के सिवाय एक सौ तेईस दोहा-सूत्रों में बहिरात्मा अंतरात्मारूप परमात्मारूप तीन प्रकार से आत्मा को कहनेवाला पहला महाधिकार पूर्ण किया।।१।।

।। इति प्रथम महाधिकार ।।

गाथा-१२३*३ पर प्रवचन

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं—तीसरी।

१२३-३) जेण णिरंजणि मणु धरिउ विषय-कसायहिँ जंतु।
मोक्खहँ कारणु एत्तडउ अण्णु ण तनु ण मंतु॥१२३-३॥

अन्वयार्थः—जिस पुरुष ने विषय कषायों में जाता हुआ मन... विषय शब्द से पाँच इन्द्रिय के ओर की झुकाववाली दशा—भाव, वह सब विषय है। आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी सुनना, वह भी कान का विषय है।

मुमुक्षु : (समयसार) ३१वीं गाथा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय का विषय, वह इन्द्रिय है। आहाहा!

वीतरागबिम्ब चैतन्य प्रतिमा प्रभु, उसकी अन्तर में एकाग्रता करने से वीतरागभाव होता है। बाहर के भगवान की पूजा करने से तो विकल्प—शुभराग आता है। वह अशुभराग टालने के लिये, स्वरूप में स्थिर न हो सके इसलिए होता है। वह व्यवहार है।

मन कर्मरूपी अंजन से रहित भगवान में रक्खा... आहाहा! राग के मैलरहित अपना मन अर्थात् ज्ञान की परिणति, पर्याय को अपने में जोड़ दी। आहाहा! **और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** आहाहा! मोक्ष का कारण यह एक। आनन्दमूर्ति प्रभु में एकाग्रता, रागरहित होकर एकाग्रता करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? व्यवहार मोक्षमार्ग कहेंगे आगे। अभी तुरन्त। परन्तु वह राग है। मोक्षमार्ग तो वास्तव में

तो यह एक ही है। यह गाथा अब शुरु करनेवाले हैं न मोक्षमार्ग की? इसलिए यहाँ गाथा का उपोद्घात लिया है। आहाहा! क्योंकि मोक्ष का अधिकार आयेगा। मोक्षमार्ग दूसरा अधिकार। पहले अधिकार की यह अन्तिम गाथा है।

मन को **कर्मरूपी अंजन से रहित भगवान में रक्खा...** आहाहा! **और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** राग के विकल्प से रहित भगवान आत्मा में निर्विकल्प स्थिरता प्रगट करना, वही एक मोक्ष का मार्ग है। यह निश्चय लोगों को ऐसा लगता है न! एकान्त निश्चय कहते हैं, एकान्त। परन्तु उस एकान्त निश्चयनय से एकान्त ही है यह। आहाहा! इसकी श्रद्धा, ज्ञान में तो यह निर्णय करे कि वस्तु तो यह है। आनन्दकन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, सत्—है, ज्ञान और आनन्दरूपी स्वभाववाला तत्त्व, उसमें मन को जोड़ देना अर्थात् कि रागरहित होकर स्थिरता करना... ऐसा। आहाहा! यह मोक्ष का कारण है। देखो! बाद में आयेगा, हों! मोक्ष के दो कारण। निश्चय और व्यवहार। बाद की गाथा आयेगी उसमें। यह व्यवहार तो विकल्प है, और उपचार से कहने में आया है। वास्तव में तो मोक्ष का कारण यह एक ही है। '**एताव**' ऐसा है न? '**एतावदेव**' '**एतावदेव**' इतना ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसा। **और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** '**एतावदेव**' भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी समरसी प्रभु, उसमें एकाग्रता करना, स्वआश्रय करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? ऐसा मार्ग अर्थात्.....

सम्यग्ज्ञान दीपिका में तो बारम्बार यही लिया है। धर्मदास क्षुल्लक (ने), स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमय स्वभाव, वह वस्तु। स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य। अपना निज स्वरूप त्रिकाल शुद्ध, वह स्वानुभवगम्य, अन्तर अनुभवगम्य है। विकल्प से गम्य हो नहीं सकता। आहाहा! व्यवहार से गम्य नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमय स्वभाव, सम्यग्ज्ञानमय स्वभाव, वह वस्तु। उसे ध्यान में लेकर एकाग्रता करना। आहाहा! ऐसी बातें। उसका नाम '**एतावदेव**' मोक्ष का कारण है न? '**एतावदेव**' '**एतावदेव' ये ही...** यह तो निश्चय कहा। कथंचित् यह और कथंचित् यह, ऐसा नहीं कहा। है? '**एतावदेव**' है न? '**एव**' अर्थात् निश्चय। इतना ही मोक्ष का मार्ग अकेला है। आहाहा! है या नहीं? क्या है? '**एतावदेव**' इतना ही, यही। आहाहा! मन को अन्दर में जोड़ देना अर्थात् निर्विकल्प होना, **ये ही मोक्ष के**

कारण हैं,... देखो! मूल श्लोक है। '**एतावदेव**' इतना ही, इतना ही। **ये ही...** मोक्ष का मार्ग एक है। व्यवहावर-ब्यवहार मोक्ष का मार्ग, वह मोक्ष का मार्ग है ही नहीं। आहाहा!

'**अन्यः**' **दूसरा कोई भी तन्त्र नहीं है,...** लो ठीक! यह अनेकान्त कहा। इसका नाम अनेकान्त है। निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, यह अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है। स्वभाव के आश्रय से ही होता है, अन्य आश्रय से नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! समझ में आया? देखो न! अन्तिम गाथा योगफल में (यह ली है)। '**एतावदेव**' इतना ही मोक्ष का कारण। आहाहा! स्वस्वभाव का आश्रय लेकर दशा हो, इतना ही मोक्ष का मार्ग और वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? अन्य कोई भी नहीं। ठीक! **दूसरा कोई भी तन्त्र नहीं है, और न मन्त्र है।** आहाहा! तन्त्र अर्थात् शास्त्र और औषध। शास्त्र से भी धर्म—मोक्षमार्ग नहीं होता, ऐसा कहते हैं। है न? अन्य **दूसरा कोई भी तन्त्र नहीं है, और न मन्त्र है।** शास्त्र भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मोक्ष के मार्ग में शास्त्र भी कारण नहीं। शास्त्र तो परवस्तु है।

औषध कारण नहीं। कोई औषध होती है न! ऐसी औषध लगावे तो ऐसा हो जाये, पैर में अमुक चुपड़े तो पानी में आदमी चले। ऐसी कोई औषधि हो तो मोक्ष हो जाये, ऐसी औषधि है नहीं। आहाहा! **मन्त्र नाम मन्त्राक्षरों का है।** क्या कहते हैं यह? णमो अरिहंताणं—पंच णमोकार गिनना, वह भी मोक्ष का मार्ग नहीं। मन्त्राक्षर मोक्ष का मार्ग नहीं। लो! द्रव्यसंग्रह में आता है न? द्रव्यसंग्रह में नहीं? पैंतीस अक्षर। ॐ और नमः और अमुक शब्द आते हैं। शास्त्र भी मोक्ष का कारण नहीं और यह व्यवहार कहा न सब मन्त्र का? मन्त्राक्षरो। ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... पंच परमेष्ठी, यह सब मन्त्राक्षर मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भाई!

परमात्मप्रकाश है न यह? परमात्मस्वरूप पूर्ण। शक्ति से, स्वभाव से तो परमात्मा ही है। उसका स्वभाव, स्व-भाव वह परिपूर्ण शुद्ध चैतन्यघन है। अनादि-अनन्त नित्य आनन्दरस आत्मा है। ज्ञानानन्दस्वभावी वस्तु प्रभु, उसमें एकाग्रता होना, उसमें सन्मुख होकर लीन होना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। यह विवाद है अभी कि व्यवहार भी

मोक्ष का कारण। व्यवहार करते-करते होगा। और व्यवहार से किसी को होता है। यह तो और अभी ऐसा आया है। जगनमोहनलालजी ऐसा डालते हैं। व्यवहार का किसी को होता है। परन्तु यह सिद्धान्त कहाँ रहा?

मुमुक्षु : किसी को होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसको? किसी को हो, किसी को न हो। व्यवहार से....

मुमुक्षु : नियम नहीं रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियम तो रहा नहीं। सत् का सिद्धान्त रहा नहीं।

भगवान आत्मा उस व्यवहार के मन्त्राक्षर से भी प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। उन पंच परमेष्ठी की भक्ति और पंच परमेष्ठी का स्मरण और जाप, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! यह नवकार का माहात्म्य आता है न? नहीं आता बहुत जगह? ऐसे नवकार गिने तो ऐसा हुआ, ऐसा हुआ। वह तो सब बाहर की बातें हैं। वह तो बाहर का चमत्कार है। आहाहा! वह तो पुण्य की बातें हैं। एकदम हो जाये। सीताजी को अग्नि में डाला था तो अग्नि पानी हो गयी। लो! कल्प फूल हुआ। कमल का फूल हो गया। वह तो बाहर की बातें हैं। समझ में आया? वे मुनि नहीं? मानतुंग आचार्य, ४८ ताले तोड़ डाले। भक्तामर प्रणत... वह ताले की बात नहीं। यह तो अन्दर के राग की एकता का ताला तोड़ डाला जिसने। आहाहा! भगवान आत्मा के अन्तर घर में जाकर शुद्ध चैतन्य में जहाँ अन्दर बसता है, तब राग के ताले टूट जाते हैं। यह बात है। आहाहा!

यह कहा न ऊपर, देखो न! **मन कर्मरूपी अंजन से रहित...** देखा न! रागरूपी मैल से रहित। **भगवान में रक्खा और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** आहाहा! यह तो धीर का, शान्ति का काम है। यह कहीं बाहर में फुदक्के मारे, बड़े रथ निकाले, क्या कहलाता है? हाथी-हाथी। गजरथ। हाथी लाये थे कितने ही। हमारे वहाँ हुआ था न हाथी नहीं? जयपुर में इक्कीस हाथी। शोभायात्रा निकली थी। भाई पूनमचन्द गोदिका। पहले में अठारह थे और दूसरे में इक्कीस थे। इक्कीस हाथी ऐसे। और चालीस हजार लोग शोभायात्रा में। साधु भी देखने निकले थे। एक वे प्रायः वहाँ थे। नहीं?

मुमुक्षु : इस ओर.... इनकार करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... एक साधु थे न? देशभूषण, देशभूषण, देखने निकले थे। हाथी है क्या, ओहोहो! यह तो बाहर की बातें, बापू! वह तो उस काल में परमाणु की परिणति ऐसी होनी है तो होती है। बहुत तो भाव कहना हो तो उसे शुभराग होता है। आहाहा! वह कहीं धर्म की विशेषता नहीं। वह तो पुण्य का फल है। पुण्य होता है। तब वे लोग कहते हैं न कि भाई! पुण्य को निषेध करते हैं और वापस पुण्य के फल भोगते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि देखो! ऐसे मकान बड़े बादशाही मकान और यह हाथी ऐसे निकले, विशाल शोभायात्रा निकले, ऐसा कहते हैं। पुण्य के फल भोगते हैं और पुण्य का निषेध करते हैं, ऐसा कहते हैं। कौन भोगे? भगवान! आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु जहाँ आनन्द से विराजता है, वहाँ पुण्य के फल का कहाँ प्रयोजन है? आहाहा! समझ में आया? उसके पुण्य के फल में लक्ष्य जाना, वह तो विकल्प-राग है। आहाहा!

यहाँ तो दो बातें सिद्ध करनी है कि मोक्ष का कारण यह एक ही है और शास्त्र और मन्त्र नहीं, ऐसा। आहाहा! इसका नाम सम्यक् एकान्त मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। व्यवहार भी मोक्षमार्ग और निश्चय भी मोक्षमार्ग, ऐसा नहीं है। **विषय-कषायादि परपदार्थों से मन को रोककर...** विषय-कषाय शब्द से लोग ऐसा समझे कि यह विषय अर्थात् भोग और बाहर के यह, विषय शब्द से परपदार्थ का लक्ष्य, वह सब विषय है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप है। उसे इन्द्रिय के विषय की ओर से दूर करके... आहाहा! यह भगवान की वाणी भी इन्द्रिय है। उससे दूर करके। भगवान वाणी में ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखने से तुझे राग होगा, भाई! आहाहा! तेरे सन्मुख देखने से तुझे वीतरागता होगी। आहाहा! कहो, समझ में आया? तब लोग ऐसा कहते हैं कि परन्तु पाप में पड़े-फड़े हैं, उन्हें ऐसी बात हो? उन्हें पहली पुण्य की तो करो। अब वह तो अनन्त बार किया है, अब है क्या? ऐसा वे कहते हैं। पाप में गले तक पड़े हों, उन्हें निर्विकल्प और वीतराग की पर्याय की बात करना। उन्हें पुण्य में तो पहले लाओ। लो! कौन लावे? अनन्त बार पुण्य में तो आ गया है। आहाहा! निगोद के जीव को भी क्षण में पुण्य और क्षण में पाप, क्षण में पुण्य और क्षण में पाप होते हैं। ओहोहो! नित्य निगोद। अनन्त जीव कभी त्रस नहीं हो। ऐसा जो निगोद का फल, उसमें

अनन्त जीव क्षण में पुण्य और क्षण में पाप, शुभ और अशुभ हुआ ही करता है। क्योंकि वस्तु स्वभाव का भान नहीं, वहाँ कर्म का चक्र पुण्य और पाप हुआ ही करते हैं। वह कर्मचक्र है। समझ में आया ? एकेन्द्रिय जीव को। आहाहा! जो निगोद के जीव अनन्त... आहाहा! एक शरीर के अनन्तवें भाग में मोक्ष गये और अनन्तवें भाग ही मोक्ष रहेंगे, बस। असंख्यवाँ भाग कभी नहीं होगा। आहाहा! अरे! बाहर आया न, प्रभु! तू इतने दूर अब। बाहर से निकलकर अब करनेयोग्य तो यह है, कहते हैं। समझ में आया ? लक्ष्य में जरा विचार करे तो खबर पड़े। ऐसे का ऐसे नहीं। निगोद के अनन्त जीव... आहाहा! एक स्पर्शेन्द्रिय के अतिरिक्त जिन्हें रसनेन्द्रिय भी मिली नहीं। आहाहा! जीभ। ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त जीव... यह तो वीतराग की बातें भारी सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

यह 'कर्म कलंक प्रचुरा भाव कलंक पहुरा' गोम्मटसार में है न! आहाहा! अरे! इसे विचार भी कहाँ है बेचारे को ? मन भी कहाँ है। स्पर्शन इन्द्रिय। वह भी इसे खबर कहाँ है कि यह स्पर्शन इन्द्रिय है और इसे जानता हूँ। यह भी कहाँ है ? है सही। आहाहा! अँगुल के असंख्य भाग में ऐसे अनन्त जीवों के थोक पड़े हैं। उसमें से निकलकर सर्व अवसर आ गया अब। आहाहा! तो कर ले न यह। जिससे छुटकारा हो राग से, वह करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया ? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में इन्द्र और गणधरों के बीच में यह वाणी आयी। अरे! सन्त... आहाहा!

उसमें तो नहीं कहा, भाई! अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने। ऐ महायश! द्रव्यलिंगी साधु को (कहते हैं), हे महायश! अब यह कर न, बापू! ऐसे द्रव्यलिंग अनन्त बार धारण किये। आत्मा के ज्ञान बिना पंच महाव्रत और नग्नपना किया, बापू! भाई! वह मोक्ष का मार्ग नहीं। हे महायश! हे मुनि! ऐसी भाषा बहुत प्रयोग की है। भावपाहुड़ में। आहाहा! भाई! तूने स्त्री-पुत्र छोड़े, दुकान-धन्धा छोड़ा। नग्न होकर रहा। पंच महाव्रत (लिये), बापू! परन्तु उससे क्या हुआ ? भाई! आहाहा! निगोद के जीव को निकलना— त्रस होना मुश्किल, प्रभु! तुझे अब मोक्ष करना हो तो सरल है, कहते हैं। आहाहा! क्योंकि चीज़ हाथ आ गयी। आहाहा! चैतन्यस्वभाव का भरपूर समुद्र, ऐसा जो भगवानस्वरूप प्रभु का, वह तुझे अब प्रतीति में आया तो अब उसमें स्थिर हो जा।

आहाहा! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

विषय-कषायादि परपदार्थों से मन को रोककर परमात्मा में मन को लगाना,... आहाहा! परमात्मा अर्थात् यह परमात्मा, हों! परम आत्मा, परमस्वरूप। यह त्रिकाली स्वरूप, वही परमात्मा है और वह परमस्वरूप है। पर्याय तो अपरमस्वरूप है। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप वीतरागस्वभाव से भरपूर तत्त्व, शान्तरस का कन्द, उसमें पर से छूटकर वहाँ रोक। वहाँ अनादि से रुक गया है। अब यहाँ रोक, ऐसा कहते हैं। राग में रुका हुआ तो अनादि से है। नौवें ग्रैवेयक में गया नग्न दिगम्बर मुनि होकर, वह भी राग में रुका हुआ था। आहाहा! अब तुझे रोकना, अटकना तो आता है। राग में अटकना आता है, इसलिए यहाँ अटक। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अन्तिम गाथा है न? **'एतावदेव'** मोक्ष कारण। आहाहा!

यह बाहर के ठाठ दिखते हैं न? शरीर, पैसा और इज्जत कीर्ति। लड़के कुछ कमाऊ हो न, स्त्री ठीक हो न, अरे! प्रभु परन्तु कौन? बापू! वह कोई चीज़ तेरी कहाँ है? वह तुझमें कहाँ है? तू उसमें कहाँ है? ऐसी चीज़ के माहात्म्य में, आकर्षण में रुककर अन्दर में चैतन्य का माहात्म्य इसे नहीं आया। आहाहा! समझ में आया? एक दिन में... भाई थे न? कल्याणजीभाई नहीं भाई? पोरबन्दर। कल्याणजी गोविन्दजी न? कल्याणजी गोविन्दजी नहीं थे एक? गृहस्थ। हमारा चातुर्मास था तब। पैसे दस-बीस लाख थे। उसमें दस लाख गये। उसमें चातुर्मास में उन्हें धन्धा करने जाना पड़ा। फिर तो वह चातुर्मास तो दूसरे चातुर्मास में। धन्धा करते हुए एक दिन में एक बार लाख पैदा किये। कल्याणजीभाई थे। एक दिन के लाख रुपये। क्योंकि वे बीस लाख थे। दस लाख गये तो वे इकट्ठे करना वापस। ... मार डाले। एक दिन में एक लाख पैदा किये। उस दिन हार्टफेल (हो गया)। भाई साथ में थे। वे नहीं पोरबन्दरवाले? लक्ष्मीदास। यह मगनभाई को नहीं कहा था? मगनभाई न! कहाँ गये? मगनभाई थे न? गये? यहाँ बैठे थे। मेहमान आये हैं न वे कुण्डलावाले नहीं? यह उन्हें तब लक्ष्मीचन्दभाई ने कहा था एक बार। राजकोट में सदर में। मगनभाई कहे, मैं जाता हूँ शेयर बाजार। जाओ धन्धा करना अमुक। अमुक करना। किया और पैसे भी थोड़े पैदा हुए। मगनभाई की बात है। वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। परन्तु सुन न, भगवान! यहाँ जा न अन्दर। आहाहा! शेयर बाजार तो यहाँ अन्दर है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मन को बाहर से तो रोक दे एकदम अब। चाहे तो भगवान का स्मरण हो। आहाहा! रोक दे। आहाहा! **यही मोक्ष का कारण है।** परमात्मा में मन को लगाना, वही मोक्ष का कारण है। आहाहा!

भावार्थः—जो कोई निकट-संसारी जीव शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उल्टे विषय कषायों में जाते हुए मन को... आहाहा! निकट संसारी, जिसे संसार किनारा आ गया है अब। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के लिए अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है, नहीं? जिन्हें संसार का किनारा नजदीक है, ऐसे जो कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! वे कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य समकित थे या नहीं, वह किस प्रकार खबर पड़े? यह चेतनजी को कहा था। कहो, अरे..! भगवान! प्रभु! तू यह क्या करता है? भाई!

मुमुक्षु : महाविदेहक्षेत्र में गये थे, यह कपोलकल्पित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और बाद में। महाविदेह में गये थे, यह तो कपोलकल्पित है। यह और अलग बात है। यह उसे नहीं बैठे। परन्तु वे समकिती थे या नहीं, यह हम किस प्रकार निर्णय करें? पूछा था। भगवान! अरेरे! अमृतचन्द्राचार्य तो पुकार करते हैं कि जिन्हें संसार का किनारा आ गया है। समाप्त। एक पैर रखे इतनी देर है। गुलाँट खाकर मोक्ष हो जायेगा। आहाहा! जिन्हें अनेकान्त विद्या प्रगट हुई है। है न? प्रवचनसार में शुरुआत में।

पंच महाव्रतधारी मुनि हैं। वे ऐसा कहते हैं, हजार वर्ष पहले हुए मुनि के लिये। दिमाग में आ गयी बात? कि हाँ, आ गयी बात। आहाहा! वे मुनि थे, धर्मात्मा थे, भगवान थे, भगवान होने का अब निकट था उनको। आहाहा! अरे रे! ऐसे मुनि के लिये ऐसा कि ग्यारह अंग का पठन होता है ज्ञान में। इसलिए ऐसे ज्ञानवाले को समकिती थे, ऐसा कैसे कहना? ऐसा कहे। कहा था न एक बार? खबर है। प्रभु... प्रभु... प्रभु..! भगवान! तेरी माहात्म्यदशा तुझे नहीं आयी, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह कुन्दकुन्दाचार्य की शैली, इसमें बहुत आ गयी है। भाई ने पहले लिखा है। कुन्दकुन्दाचार्य की पद्धति को बहुतों ने अपने में अपनायी है। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। इसमें लिखा है। पहले लिखा है।

जो कोई निकट—संसारी जीव... आहाहा! **शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उल्टे...**

शुद्ध भगवान आत्मा पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। भाव की भावना, त्रिकाल स्वभावभाव ऐसा भगवान, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। आहाहा! उससे **उल्टे विषय-कषायों में जाते हुए मन को वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** आहाहा! क्या कहते हैं?

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से... इतने विशेषण दिये। आहाहा! रागरहित वीतरागी अभेद स्वसंवेदनज्ञान। स्व अर्थात् अपना प्रत्यक्ष ज्ञान। आहाहा! बाहर के विकल्प को रोककर और **मन को वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** देखो! यह बल। आत्मा का यह पुरुषार्थ। आहाहा! क्रम से हो, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? कहते हैं। यह क्रम से हो, उसमें ही यह पुरुषार्थ आया। ऐसा कहते हैं न? क्रमबद्ध में कहाँ पुरुषार्थ रहा? अरे! भगवान! सुन न, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रम की वृत्ति में महान पुरुषार्थ रहा है। जिसने क्रमबद्धपर्याय का निर्णय किया, उसका निर्णय ज्ञायक पर जाता है। वह ज्ञायक का निर्णय किया, उसे क्रमबद्ध होता है, उसका जाननेवाला रहता है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत परन्तु (कठिन पड़े)।

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान... देखा! शास्त्रज्ञान भी नहीं, ऐसा कहा न? इसलिए उसको शास्त्र ना किया न पहले? शास्त्र नहीं और शास्त्र का ज्ञान भी नहीं। वह परलक्ष्यीज्ञान, वह नहीं। आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** आहाहा! **पीछे हटाकर...** मन को पर से हटाकर, परन्तु **स्वसंवेदनज्ञान के बल से हटाकर...** आहाहा! पर की ओर के झुकाव को स्व सन्मुख के बल द्वारा रोक दे, कहते हैं। समझ में आया? भारी सूक्ष्म ऐसा मार्ग। मार्ग तो ऐसा है, भाई! यह ज्ञान में उसका पहला यह स्वीकार तो करे। भले विकल्प से करे कि वस्तु तो यह है। उसमें प्रतीति, ज्ञान और स्थिर होना, वह निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान कहा जाता है। शास्त्रज्ञान निकाल दिया, दूसरा सब निकाल दिया, देखा!

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान... आहाहा! अरे! आठ वर्ष की बालिका भी

सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। समझ में आया? वस्तु तो पूर्ण स्वभाव से भरपूर पड़ी ही है। आहाहा! जिसमें वर्तमान एक समय की पर्याय का भी जिसमें अभाव है। उसे पर्याय में निर्णय कर। पर्याय का जिसमें अभाव है, उसका पर्याय में निर्णय कर। समझ में आया? ऐसा है, बापू! यह हो-हा होती है, ऐसी यह बात नहीं है। लोग अधिक भराये (इकट्ठे हुए) और हो.. हा... बड़े रथ निकाले, पाँच लाख खर्च किये, मन्दिर बनाये, मानस्तम्भ बनाये। वह क्या है? भाई!

मुमुक्षु : .... है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने किया है? भाव हो शुभ। बाकी हुआ है तो उससे वहाँ। रामजीभाई की देखरेख के नीचे हुआ था यह सब।

मुमुक्षु : वजुभाई थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वजुभाई तो कारीगर... क्या कहलाते हैं वे? इंजीनियर कहलाते हैं। आहाहा! प्रभु! प्रभु! जिसे विकल्प उठाना भी नुकसानकारक है। आहाहा!

ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव में स्वसंवेदनज्ञान के बल से। ऐसा कहा न? स्वसंवेदन। स्व अर्थात् अपना संवेदन प्रत्यक्ष। ऐसे ज्ञान के बल से। आहाहा! **पीछे हटाकर...** मन और राग से हटकर **निज शुद्धात्मद्रव्य में स्थापन करता है,...** आहाहा! भगवान नहीं वापस। यह निज शुद्धात्म, इसलिए कहा। अपना जो शुद्धात्मा भगवान पूर्ण उसमें स्थापन कर। **वही मोक्ष को पाता है,...** लो! वही मोक्ष को पाता है। परन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि अभी मोक्ष नहीं है और इतनी बड़ी बातें! परन्तु सुन न, भगवान! मोक्ष के लिये मोक्ष की तैयारी हो गयी है। होने की तैयारी है, मोक्ष के सन्मुख ही है। समझ में आया? एकाध भव हो। धर्मशाला में जैसे मनुष्य रुकता है। सवेरा हो तो धर्मशाला छोड़े और रास्ता पार करे। आहाहा! मोक्ष के मार्ग में ही है, प्रभु! तेरा स्वरूप ही मोक्ष है। उसकी दृष्टि-प्रतीति मोक्ष का मार्ग है। वह पर्याय के मोक्ष का मार्ग। समझ में आया? शक्तिरूप मोक्ष तो त्रिकाल है। अर्थात्? स्वभाव में सत्त्व स्वभावरूप जो है, वह तो मोक्ष ही है, मुक्त ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह अबन्ध ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अबद्धस्वरूप ही है, वह तो। ऐसे अबद्धस्पृष्ट को अनुभव में लेना, उसका नाम जैनशासन है। आहाहा! क्या हो? भाई! चौरासी के अवतार में भटकते हुए (कचूमर निकल गया)। ऐसा मार्ग है। यह नियमसार में तो कहा है कि ऐसे मार्ग की कोई निन्दा करे, लो, यह तो निश्चयाभासी है, यह निश्चयवाले। व्यवहार तो मानो कुछ है ही नहीं। ऐसी जो निन्दा करे तो उसके सामने देखना नहीं, (और मार्ग की) अभक्ति करना नहीं। अरेरे! ऐसा मार्ग है और यह लोग निन्दा करते हैं वे तो करें ऐसा, भाई! तू वीतरागस्वभाव के प्रति अभक्ति नहीं करना। आहाहा! 'अेकलो जाने रे...' आता है न कुछ, नहीं? वह किसी का। 'अेकलो जाने...' उसमें आता है। लौकिक में है।

मुमुक्षु : रविन्द्रनाथ टैगोर में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रविन्द्रनाथ टैगोर में आता है न? अकेला जा। यहाँ अकेला जा, अकेला। यह राग की द्वैतता छोड़कर... आहाहा! अकेला भगवान निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान में स्थिर हो। आहाहा! अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं है।

वही मोक्ष को पाता है, दूसरा कोई मन्त्र-तन्त्रादि चतुर होने पर भी... लो, ठीक! उन तन्त्र-मन्त्र का स्पष्टीकरण किया। कोई मन्त्र में होशियार, तन्त्र में होशियार। वकालत में होशियार वह तो कुछ बिना ठिकाने का। यह तो धर्म के नाम के मन्त्र और तन्त्र। आहाहा! **कोई मन्त्र-तन्त्रादि चतुर होने पर भी मोक्ष नहीं पाता।** आहाहा! मोक्ष का मार्ग तो यह एक है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।'

यह पहला अधिकार पूरा हुआ।

इस तरह परमात्मप्रकाश की टीका में तीन क्षेपकों के सिवाय... तीन क्षेपक। तीन गाथा अधिक। **एक सौ तेईस दोहा-सूत्रों में बहिरात्मा, अन्तरात्मारूप, परमात्मारूप तीन प्रकार से आत्मा को कहनेवाला पहला महाअधिकार पूर्ण हुआ।** पहला अधिकार पूरा हुआ। अब दूसरा अधिकार। आहाहा!

द्वितीय महाधिकारः

गाथा - १

अत ऊर्ध्वं स्थलसंख्याबहिर्भूतान् प्रक्षेपकान् विहाय चतुर्दशाधिकशतद्वय प्रमितैर्दोहक-सूत्रैर्मोक्षमोक्षफलमोक्षमार्गप्रतिपादनमुख्यत्वेन द्वितीयमहाधिकारः प्रारभ्यते। तत्रादौ सूत्रदशक-पर्यन्तं मोक्षमुख्यतया व्याख्यानं करोति। तद्यथा –

१२४) सिरिगुरु अक्खहि मोक्खु महु मोक्खहँ कारणु तत्थु।
मोक्खहँ केरउ अण्णु फलु जें जाणउँ परमत्थु।।१।।

श्रीगुरो आख्याहि मोक्षं मम मोक्षस्य कारणं तथ्यम्।
मोक्षस्य संबन्धि अन्यत् फलं येन जानामि परमार्थम्।।१।।

सिरिगुरु इत्यादि। सिरिगुरु हे श्रीगुरो योगीन्द्रदेव अक्खहि कथय मोक्खु मोक्षं महु मम, न केवलं मोक्षं मोक्खहं कारणु मोक्षस्य कारणम्। कथंभूतम्। तत्थु तथ्यम् मोक्खहं केरउ मोक्षस्य संबन्धि अण्णु अन्यत्। किम्। फलु फलम्। एतत्त्रयेन ज्ञातेन किं भवति। जें जाणउं येन त्रयस्य व्याख्यानेन जानाम्यहं कर्ता। कम्। परमत्थु परमार्थमिति। तद्यथा। प्रभाकरभट्टः श्रीयोगीन्द्रदेवान् विज्ञाप्य मोक्षं मोक्षफलं मोक्षकारणमिति त्रयं पृच्छतीति भावार्थः।।१।।

द्वितीय महाधिकार:

इसके बाद प्रकरण को संख्या के बाहर अर्थात् क्षेपकों के सिवाय दो सौ चौदह दोहा-सूत्रों से मोक्ष, मोक्ष-फल और मोक्ष-मार्ग के कथन की मुख्यता से दूसरा महा अधिकार आरंभ करते हैं। उसमें भी पहले दस दोहों तक मोक्ष की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं –

हे गुरु! करके कृपा मोक्ष अरु तात्त्विक मुक्ति मार्ग कहो।
और मोक्ष का फल कहिए जिससे जानूँ परमार्थ अहो।।१।।

अन्वयार्थ :– [श्रीगुरो] हे श्रीगुरु, [मम] मुझे [मोक्षं] मोक्ष [तथ्यम् मोक्षस्य

कारणं] सत्यार्थ मोक्ष का कारण, [अन्यत्] और [मोक्षस्य संबंधि] मोक्ष का [फलं] फल [आख्याहि] कृपाकर कहो [येन] जिससे कि मैं [परमार्थं] परमार्थ को [जानामि] जानूँ।।

भावार्थ :– प्रभाकरभट्ट श्री योगीन्द्रदेव से बिनती करके मोक्ष, मोक्ष का कारण और मोक्ष का फल इन तीनों को पूँछते हैं।।१।।

गाथा-१ पर प्रवचन

दूसरा दोहा अधिकार प्रारम्भ करते हैं। उसमें भी पहले दस दोहों तक मोक्ष की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं। प्रभाकर भट्ट शिष्य, गुरु को पूछता है, प्रभु ! मुझे मोक्ष और मोक्ष का फल तथा मोक्ष का कारण बताओ आहाहा! देखो! ऐसा कुछ पूछा नहीं कि अमुक करो और शास्त्र जानना। मोक्ष, मोक्ष का फल तथा मोक्ष का कारण। तीन बात शिष्य ने पूछी है।

१२४) सिरिगुरु अक्खहि मोक्खु महु मोक्खहँ कारणु तत्थु।
मोक्खहँ केरउ अण्णु फलु जेँ जाणउँ परमत्थु॥१॥

अन्वयार्थ :– हे श्रीगुरु, मुझे मोक्ष सत्यार्थ मोक्ष का कारण,... देखो न! '**तथ्यम्**' है न? '**तथ्यम्**' अर्थात् कि वह आता है न? सत्यार्थ वह मोक्षमार्ग है। छहढाला में। दूसरा असत्यार्थ है, दूसरा असत्यार्थ है। तो यहाँ तो सत्यार्थ पूछा है। देखा! '**तथ्य**' है न? **सत्यार्थ मोक्ष का कारण, और मोक्ष का फल...** आहाहा! **कृपाकर कहो... 'आख्याहि' जिससे कि मैं परमार्थ को जानू।** आहाहा! प्रभु! मुझे मोक्ष बताओ न! आहाहा! मोक्ष का मार्ग कहो न, भाई!

भावार्थ :– प्रभाकर भट्ट श्री योगीन्द्रदेव से विनती करके,... विनती करता है, प्रार्थना करता है। **मोक्ष, मोक्ष का कारण और मोक्ष का फल इन तीनों को पूछते हैं।** लो! इसका उत्तर आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २

अथ तदेव त्रयं क्रमेण भगवान् कथयति -

१२५) जोइय मोक्खु वि मोक्ख-फलु पुच्छिउ मोक्खहँ हेउ।
सो जिण-भासिउ णिसुणि तुहुँ जेण वियाणहि भेउ।।२।।

योगिन् मोक्षोऽपि मोक्षफलं पृष्टं मोक्षस्य हेतुः।
तत् जिनभाषितं निशृणु त्वं येन विजानासि भेदम्।।२।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् मोक्खु वि मोक्षोऽपि मोक्ख-फलु मोक्षफलं पुच्छिउ पृष्टं त्वया कर्तृभूतेन। पुनरपि कः पुष्टः। मोक्खहं हेउ मोक्षस्य हेतुः कारणम्। तत् जिण-भासिउ जिनभाषितं णिसुणि निश्चयेन शृणु समाकर्णय तुहुं त्वं जेण येन त्रयेण ज्ञानेन वियाणहि भेउ विजानासि भेदं त्रयाणां सम्बन्धिनमिति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। श्रीयोगीन्द्रदेवाः कथयन्ति हे प्रभाकरभट्ट शुद्धात्मोपलम्भलक्षणं मोक्षं केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपं मोक्षफलं भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं मोक्षमार्गं च क्रमेण प्रतिपादयाम्यहं त्वं शृण्विति।।२।।

अब श्रीगुरु उन्हीं तीनों को क्रम से कहते हैं -

हे योगी! तुमने पूँछा है मोक्ष, मोक्षफल अरु शिवमार्ग।
जिनवर कथित कहूँ मैं जिसको सुनो और जानो सब भेद।।२।।

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, तूने [मोक्षोऽपि] मोक्ष और [मोक्षफलं] मोक्ष का फल तथा [मोक्षस्य] मोक्ष का [हेतुः] कारण [पुष्टं] पूँछा, [तत्] उसको [जिनभाषितं] जिनेश्वरदेव के कहे प्रमाण [त्वं] तू [निशृणु] निश्चयकर सुन, [येन] जिससे कि [भेदम्] भेद [विजानासि] अच्छी तरह जान जावे।

भावार्थ :- श्रोयोगीन्द्रदेव गुरु, शिष्य से कहते हैं कि हे प्रभाकरभट्ट; योगी शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष, केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टय का प्रगटपना स्वरूप मोक्ष-फल, और निश्चय व्यवहाररत्नत्रयरूप मोक्ष का मार्ग, इन तीनों को क्रम से जिनआज्ञाप्रमाण तुझको कहूँगा। उनको तू अच्छी तरह चित्त में धारण कर, जिससे सब भेद मालूम हो जावेगा।।२।।

वीर संवत् २५०२, आसोज शुक्ल १२, सोमवार
दिनांक-०४-१०-१९७६, गाथा-२, ३, प्रवचन-९५

परमात्मप्रकाश। शास्त्र का नाम परमात्मप्रकाश है। वास्तव में तो यह आत्मा परमात्मस्वरूप ही है। उसका प्रकाश किया है। वह प्रगट कैसे हो? और उसके फलरूप से क्या होता है? उसका यह वर्णन है। शिष्य ने प्रश्न किया। पहली गाथा में किया न? गुरु से शिष्य ने प्रश्न किया कि प्रभु! मुझे मोक्ष बताओ। मोक्ष क्या चीज़ है? और सत्यार्थ मोक्ष का कारण (क्या है)? पूछा है तो ऐसा, हों! **तथ्य।** जवाब देने व्यवहाररत्नत्रय और निश्चय दोनों इकट्ठा देंगे। सत्यार्थ मोक्ष का कारण क्या है? और मोक्ष क्या है? और मोक्ष का फल कृपा करके कहो, कि जिससे परमार्थ के भेद को मैं जानूँ, ऐसा शिष्य का प्रश्न है। उसका उत्तर।

टीका में तो ऐसा कहा है कि '**क्रमेण भगवान् कथयति**' गुरु—योगीन्द्रदेव गुरु हैं, निर्ग्रन्थ मुनि दिगम्बर सन्त वनवास में रहते थे। उन्हें यहाँ टीकाकार ब्रह्मदेव ऐसा कहते हैं कि प्रश्न का उत्तर भगवान अर्थात् गुरु कहते हैं। भगवान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। पाठ है न? '**क्रमेण भगवान् कथयति**' आहाहा! समझ में आया? यह दूसरी गाथा के ऊपर। भगवान है यह। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द तीन कषायरहित प्रगट हुआ है, वह मुनिपना उसे कैसा कहना! आहाहा! जो अतीन्द्रिय आनन्द की लहर में रमते होते हैं। ऐसे गुरु शिष्य ने पूछे हुए प्रश्न का उत्तर देते हैं। ऐसा कहते हैं। दूसरी गाथा।

१२५) जोइय मोक्खु वि मोक्ख-फलु पुच्छिउ मोक्खहँ हेउ।
सो जिण-भासिउ णिसुणि तुहुँ जेण वियाणहि भेउ ॥२॥

अन्वयार्थ :—हे योगी,... शिष्य भी आत्मज्ञानी है। आत्मा जो आनन्द और ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें जिसकी वर्तमान पर्याय जुड़ी है। वर्तमान जो दशा, वह त्रिकाली ज्ञायकभाव की ओर झुक गयी है, उसे यहाँ योगी कहा जाता है। वे अन्यमत के बाबा, वह योगी नहीं, हों! यह तो आत्मा ज्ञायक चैतन्य भगवानस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी वर्तमान दशा जोड़ी है,

जिसने योग किया है, उसे यहाँ योगी कहा जाता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी एक अपेक्षा से योगी है। मुनि परमयोगी हैं। समझ में आया?

श्रीगुरु उन्हीं तीनों को क्रम से कहते हैं। हे योगी, तूने मोक्ष और मोक्ष का फल... ऐसा प्रश्न तूने किया और **मोक्ष का कारण...** पूछा है तो **तथ्य**। उत्तर में इतना है कि मोक्ष का कारण जो तूने पूछा, **उसको जिनेश्वरदेव के कहे प्रमाण...** गुरु कहते हैं कि जिनेश्वर सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव, वह वीतराग चैतन्यज्योति जिन्हें पूर्ण प्रगट हो गयी है, सर्वज्ञस्वभाव जिनका प्रगट हो गया है, ऐसे जिनेश्वरदेव ने मोक्ष, मोक्ष का कारण और मोक्ष का फल, वह जिनेश्वरदेव ने कहा, उसे मैं तुझे कहूँगा। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने जो मोक्ष (कहा, वह)। अज्ञानी मोक्ष कहते हैं, उन्हें कुछ खबर नहीं (कि) मोक्ष अर्थात् क्या? परन्तु भगवान सर्वज्ञदेव ने जो मोक्ष कहा और मोक्ष का फल कहा और मोक्ष का कारण कहा। मोक्ष, मोक्ष का कारण और मोक्ष का फल। यह तीन पूछा है, उसका गुरु कहते हैं कि मैं तुझे जिनभाषित –वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव ने कहा हुआ मार्ग, उसे मैं तुझे '**निशृणु**' '**शृणु**' शब्द नहीं लिया। '**निशृणु**' बराबर सुनो। निश्चय से सुनो, ऐसा कहते हैं। सुना है अनन्त बार। यह तो सुन और जिससे परिणमन हो, इस प्रकार से सुन। आहाहा! समझ में आया?

'निशृणु' निश्चयकर सुन... आहाहा! तूने कभी मोक्ष और मोक्ष के फल के कारण को निश्चय से यथार्थरूप से सुना नहीं। भगवान आचार्य कहते हैं कि मैं तुझे कहता हूँ, उसे निश्चय से सुन। आहाहा! अर्थात् कि सुननेवाले को उसका परिणमन ही हो, इस प्रकार से सुन, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **जिससे कि भेद अच्छी तरह जान जावे।** मोक्ष का क्या स्वरूप? मोक्ष का कारण, मोक्ष का मार्ग क्या? और मोक्ष का फल क्या? वह तुझे बराबर '**विजानासि**' विशेष जानकर। ऐसा शब्द है न? बराबर तुझे जानने में आयेगा, इस प्रकार से मैं तुझे कहूँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो, यह तो पहले से प्रश्न उठाया है यह। आहाहा!

भावार्थः—श्री योगीन्द्रदेव गुरु,... दिगम्बर मुनि हुए हैं। **शिष्य से कहते हैं कि हे प्रभाकर भट्ट! योगी शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष,...** अर्थात् मोक्ष क्या, वह भी साथ में कहा। भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र आनन्दस्वरूप से है। उसकी पर्याय में शुद्धात्मा की

प्राप्ति होना, उसका नाम मोक्ष। समझ में आया? वरना मोक्ष तो दु:ख से मुक्त होना, ऐसी ध्वनि उठे। दु:ख से आत्यन्तिक रहित होना। परन्तु वह नास्ति से न कहकर शुद्धात्मा की प्राप्ति होना, वह मोक्ष। शुद्ध भगवान आत्मा पवित्र पिण्ड है, इस देह में। भगवानस्वरूप ही आत्मा है अन्दर। आहाहा! ऐसे आत्मा की पर्याय में शुद्धात्मा की प्राप्ति होना, उसका नाम मोक्ष। समझ में आया?

केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय का प्रगटपना स्वरूप मोक्ष-फल,... अब इस मोक्ष का फल क्या? कि अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसे अनन्त चतुष्टय जो शक्तिरूप से थे, भगवान आत्मा में तो शक्तिरूप से तो थे, वे प्रगटरूप से परिणमे, वह मोक्ष का फल है। आहाहा! **अनन्त चतुष्टय का प्रगटपना स्वरूप... प्रगटपना स्वरूप, मोक्ष-फल,...** दो। मोक्ष और मोक्ष का फल। **और निश्चयव्यवहाररत्नत्रयरूप मोक्ष का मार्ग,...** शिष्य ने पूछा था तो यह कि मोक्ष का तथ्य मार्ग—सत्य मार्ग क्या, वह कहो। परन्तु गुरु उसके उत्तर में निश्चय और व्यवहार दोनों कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार उपचार है, निश्चय सत्यार्थ है। निश्चयमोक्षमार्ग, वह सत्यार्थ है और व्यवहार, वह उपचार-आरोपित है। यह दोनों बातें मैं तुझे कहूँगा। शिष्य तो ऐसा पूछता था तथ्य मोक्ष कारणं। परन्तु व्यवहार सुनता है, उसे ऐसा है सही न? अन्दर वह श्रद्धा होती है। अर्थात् कि तुझे निश्चय अर्थात् अभेद, अभेदरत्नत्रय। संस्कृत में अभेद है न? अर्थ में निश्चय किया है। भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु के अन्तर में अभेद, अनुभव में अभेदपना प्रगट करना, उसका नाम निश्चयरत्नत्रय कहा जाता है। अरेरे! भाषा भी ऐसी। वह तो ऐसा था कि यह दया पालना, व्रत करना और अपवास करना, ऐसा सीधासट्ट था। लो! भटकने का था वह तो। यह तो सब राग की क्रिया और उसका अभिमान, वह तो मिथ्यात्व था। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो सम्यग्दर्शनसहित मोक्षमार्ग की दशा निश्चय अभेदरत्नत्रय पूर्णानन्द के नाथ की अन्तर अनुभवसहित की प्रतीति, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु स्वयं, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, वह अभेदरत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय, सत्यार्थरत्नत्रय कहने में आता है, कहो, भगवानजीभाई! यह रत्न आये। आहाहा! वे धूल के रत्न रखते हैं न? वह कहेंगे, अभी आगे कहेंगे। यह पुण्य की बात अभी आयेगी। आहाहा!

इन तीनों को क्रम से... मोक्ष अर्थात् शुद्ध आत्मा पवित्र भगवान आत्मा की पर्याय में प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष। मोक्षफल—पर्याय में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द का प्रगट होना, वह मोक्ष का फल है और मोक्ष का कारण स्वभाव चैतन्यमूर्ति की निश्चय अभेद रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह निश्चयमोक्षमार्ग। साथ में विकल्प होता है। देव-गुरु-शास्त्र की, भगवान परमात्मा की श्रद्धा आदि का विकल्प (होता है), उसे व्यवहार (कहते हैं)। है तो बन्ध का कारण परन्तु उसे व्यवहार से, उपचार से मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। आहाहा!

वह **वह जिनआज्ञाप्रमाण तुझको कहूँगा।** गुरु ऐसा कहते हैं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ने जो मोक्ष, उसका फल, उसका कारण तीन हुए न? वह जिनेश्वर ने कहा, तत्प्रमाण तुझे कहूँगा। देखो, है? **जिनआज्ञाप्रमाण तुझको कहूँगा। उनको तू अच्छी तरह चित्त में धारण कर,... 'विजानासि'** शब्द है न? यह **'विजानासि'** का अर्थ किया। **'विजानासि'** में यह किया **अच्छी तरह जान...** शब्दार्थ में। **अच्छी तरह चित्त में धारण कर,...** जैसा मैं कहता हूँ, वैसा बराबर धारण कर। आहाहा! मोक्ष किसे कहते हैं? मोक्ष का फल किसे कहते हैं? और कारण किसे कहते हैं? यह तू बराबर जान। आहाहा! अनन्त काल में जाना नहीं, इस प्रकार से जान। आहाहा! ऐसा शिष्य को गुरु कहते हैं। **चित्त में धारण कर, जिससे सब भेद मालूम हो जावेगा।** पाठ ऐसा है न? भेद है न पाठ में? दूसरी गाथा में। **'वियाणहि भेउ'** ऐसा है। दूसरी गाथा का अन्तिम शब्द है। सब भेद तेरे ज्ञान में—ख्याल में आ जाये। मोक्ष किसे कहना, मोक्ष का कारण किसे कहना, फल अर्थात् भेद जैसा है, वैसा उसके ख्याल में आ जाये। इस प्रकार से मैं तुझे कहूँगा। आहाहा! **सब भेद मालूम हो जावेगा।** दो।

गाथा - ३

अथ धर्मार्थकाममोक्षाणां मध्ये सुखकारणत्वान्मोक्ष एवोत्तम इति अभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं प्रतिपादयति –

१२६) धम्मह अत्थहँ कामहँ वि एयहँ सयलहँ मोक्खु।
उत्तमु पभणहिं णाणि जिय अण्णेँ जेण ण सोक्खु।।३।।

धर्मस्य अर्थस्य कामस्यापि एतेषां सकलानां मोक्षम्।
उत्तमं प्रभणन्ति ज्ञानिनः जीव अन्येन येन न सौख्यम्।।३।।

धम्महं इत्यादि। धम्महं धर्मस्य धर्माद्वा अत्थहं अर्थस्य अर्थाद्वा कामहं वि कामस्यापि कामाद्वा एयहं सयलहं एतेषां सकलानां संबन्धित्वेन एतेभ्यो वा सकाशात् मोक्खु मोक्षं उत्तमु पभणहिं उत्तमं विशिष्टं प्रभणन्ति। के कथयन्ति। णाणि ज्ञानिनः। जिय हे जीव। कस्मादुत्तमं प्रभणन्ति मोक्षम्। अण्णें अन्येन धर्मार्थकामादिना जेण येन कारणेन ण सोक्खु नास्ति परमसुखम् इति। तद्यथा–धर्मशब्देनात्र पुण्यं कथ्यते अर्थशब्देन तु पुण्यफलभूतार्थो राज्यादि विभूतिविशेषः, कामशब्देन तु तस्यैव राज्यस्य मुख्यफलभूतः स्त्रीवस्त्रगंध माल्यादिसंभोगः। एतेभ्यस्त्रिभ्यः सकाशान्मोक्षमुत्तमं कथयन्ति। के ते। वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानिनः। कस्मात्। आकुलत्वोत्पादकेन वीतरागपरमानन्दसुखामृतरसास्वादविपरीतेन धर्मार्थकामादिना मोक्षादन्येन येन कारणेन सुखं नास्तीति भावार्थः।।३।।

अब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों में सुख का मूलकारण मोक्ष ही सबसे उत्तम है, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर इस गाथा–सूत्र को कहते हैं –

धर्म अर्थ अरु कामरूप से भी उत्तम है मोक्ष कहा।
ज्ञानी जन ने, क्योंकि इनमें किञ्चित भी सुख नहिं होता।।३।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, [धर्मस्य] धर्म, [अर्थस्य] अर्थ [कामस्य अपि] और काम [एतेषां सकलानां] इन सब पुरुर्षर्थों में से [मोक्षम् उत्तमं] मोक्ष को उत्तम [ज्ञानिनः] ज्ञानी पुरुष [प्रभणंति] कहते हैं, [येन] क्योंकि [अन्येन] अन्य धर्म, अर्थ, कामादि पदार्थों में [सौख्यम्] परमसुख न नहीं है।

भावार्थ :– धर्म शब्द से यहाँ पुण्य समझना, अर्थ शब्द से पुण्य का फल राज्य वगैरह संपदा जानना, और काम शब्द से उस राज्य का मुख्यफल स्त्री, कपड़े, सुगंधितमाला

आदि वस्तुरूप भोग जानना। इन तीनों से परमसुख नहीं हैं, क्लेशरूप दुःख ही है, इसलिये इन सबसे उत्तम मोक्ष को ही वीतरागसर्वज्ञदेव कहते हैं, क्योंकि मोक्ष से जुदा जो धर्म, अर्थ, काम हैं, वे आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं, तथा वीतराग, परमानन्द-सुखरूप अमृतरस के आस्वाद से विपरीत हैं, इसलिये सुख के करनेवाले नहीं हैं, ऐसा जानना।।३।।

गाथा-३ पर प्रवचन

तीसरी गाथा।

अब धर्म,... धर्म अर्थात् पुण्य। यह दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, यह सब पुण्य है; धर्म नहीं। धर्म अर्थात् व्यवहारधर्म अर्थात् पुण्य। आहाहा! **अर्थ...** अर्थात् पैसा, यह धूल। पुद्गल कहो या पैसा कहो, धूल कहो। पैसा क्या है ? पुद्गल है या आत्मा ? पुद्गलास्तिकाय में है, वह तो पुद्गल अजीव में जाता है। अर्थ अर्थात् पैसा और **काम...** अर्थात् भोग। विषयादि के साधन। और चौथा **मोक्ष...** चार बोल किये। पुण्य, लक्ष्मी, भोग और मोक्ष। ये चार। **इन चारों में सुख का मूलकारण मोक्ष ही (सबसे उत्तम) है,...** पुण्य, वह मोक्षसुख का कारण नहीं। समझ में आाय ?

मुमुक्षु : परम सुख नहीं अर्थात् दूसरे में थोड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सुख जरा भी नहीं, धूल भी नहीं। यह आगे कहेंगे अभी। अभी आयेगा। तीनों परम सुख नहीं। परम सुख अर्थात् आत्मा का सुख उसमें नहीं। ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। दुःख है। पैसे के लक्ष्य में दुःख है, भोगने के भाव में दुःख है। पुण्य स्वयं दुःख है। आहाहा! आकुलता कहेंगे। यह दया, दान, व्रत, तप का विकल्प उठता है न, वह विकल्प है, राग है, वह दुःख है, आकुलता है। भगवान अनाकुल स्वरूप में वह विघ्न करनेवाला है। आहाहा! यह कहेंगे।

चारों में सुख का मूलकारण मोक्ष ही सबसे उत्तम है, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर इस गाथा-सूत्र को कहते हैं— लो! तीसरी। आहाहा!

१२६) धम्मह अत्थहँ कामहँ वि एयहँ सयलहँ मोक्खु।
उत्तमु पभणहिँ णाणि जिय अण्णैं जेण ण सोक्खु॥३॥

ज्ञानी उसमें उत्तम उसे कहते हैं। ऐसा कहते हैं।

अन्वयार्थः—हे जीव! धर्म,... अर्थात् पुण्य। पुण्य में सुख नहीं। **अर्थ,...** में सुख नहीं। अर्थ अर्थात् पैसा। काम में सुख नहीं। स्त्री आदि के, सुगन्ध आदि के साधनों का भोग, वह सुख नहीं। आहाहा! **'एतेषां सकलानां' इन सब पुरुषार्थों में से मोक्ष को उत्तम ज्ञानी पुरुष कहते हैं,...** लो! परमात्मा सर्वज्ञदेव सन्त मोक्ष में सुख है, ऐसा कहते हैं। अन्यत्र कहीं सुख है नहीं। पैसे में—धूल में सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! पोपटभाई! यह दुनिया तुमको सबको सुखी कहती है। भगवानदास बड़े पैसेवाले और बहुत सुखी, (ऐसा) लोग कहते हैं, लो! भगवानदास शोभालाल। घर में ६०-६० मोटरें। बुन्देलखण्ड के बड़ा बादशाह!

मुमुक्षु : तबियत नरम हो तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐं... ऐं.... करे। वह रात्रि में सोते हैं, उसमें बहुत साधन रखते हैं। वहाँ उतरे थे न उनके मकान में, छह लाख का तो मकान है, उनके रहने का। छह लाख रुपये का। ऐसे मकान तो दूसरे बहुत हैं। गाँव में २५-५०। कोई पाँच लाख का, कोई एक लाख का, दो लाख का। बहुत मकान। बड़ा बादशाह है। वह तो यहाँ नरम लगता है। है नरम बेचारा। नरम दिल। बड़ा बादशाह। एक करोड़ नहीं परन्तु बहुत करोड़। वैभव बहुत है। दुनिया सुखी कहती है। दुनिया धूल भी नहीं, सुन न! सुख, वह आत्मा में है या सुख बाहर में है? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

'एतेषां सकलानां' पुण्य, लक्ष्मी और काम-भोग **इन सब पुरुषार्थों में से मोक्ष को उत्तम ज्ञानी पुरुष कहते हैं, क्योंकि अन्य धर्म, अर्थ, कामादि पदार्थों में परमसुख नहीं है।** वह तो फिर अर्थ किया। परन्तु सुख नहीं, पाठ में तो इतना ही है। तीनों में सुख नहीं। आहाहा!

भावार्थः—धर्म शब्द से यहाँ पुण्य समझना,... है न? संस्कृत में है। **'धर्मशब्देनात्र पुण्यं कथ्यते'** अन्तिम शब्द है। टीका की अन्तिम लाईन। **'धर्मशब्देनात्र पुण्यं कथ्यते'**

पुण्य को यहाँ धर्म व्यवहार से कहा गया है। भाषा। निश्चयधर्म का आरोप करके पुण्य को व्यवहारधर्म कहते हैं। है वह पुण्य—शुभभाव। समझ में आया? यह दुनिया कहती है न दया, धर्म, व्रत, तप और यह सामायिक करे, प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करते हैं। वह तो सब शुभराग है, वह धर्म नहीं, पुण्य है। समझ में आया? दुनिया उसे धर्म मानकर धर्म करते हैं, ऐसा प्ररूपित करती है और मानती है। आहाहा! वह पुण्य है, उसमें राग की मन्दता हो, वह पुण्य है। वह धर्म के अर्थ में यहाँ पुण्य समझना।

अर्थ शब्द से पुण्य का फल... यह पुण्य का फल। **राज्य वगैरह सम्पदा जानना,...** चक्रवर्तीपना मिले। वह तो समकिती को होता है। परन्तु यह तो अज्ञानी को भी पुण्य के फलरूप से बड़ा राजा हो अरबोंपति। है न अभी एक? नहीं वह राजा? एक घण्टे में डेढ़ लाख की आमदनी है। है राजा। कौन सा राजा? ईराक में वह कोई कहते हैं। देश छोटा है परन्तु पेट्रोल बहुत निकला है। बड़े कुंए के कुंए के निकले हैं इतने। एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी। एक दिन की छत्तीस लाख की आमदनी। देश था और जमीन में से निकले ऐसे, इसलिए पैसा बहुत पैदा होता है। परन्तु उसमें क्या है? उसके आदमी ने ही उसे मार डाला। कुटुम्ब के व्यक्ति ने मार डाला और स्वयं गद्दी पर बैठा। सब नरकगामी सब। आहाहा! चौबीस घण्टे की छत्तीस लाख की आमदनी। तो बारह महीने की कितनी? गिनो। सब नरकगामी हैं।

मुमुक्षु : नरक में जाये, तब की बात तब, परन्तु अभी तो मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी धूल भी नहीं। अभी राग की अग्नि सुलगती है अन्दर। आहाहा!

यह **अर्थ शब्द से पुण्य का फल राज्य वगैरह सम्पदा जानना,...** अपने आता है न, फिर देखो न! ६०वीं गाथा देखो। उसकी ६०वीं गाथा। '**पुण्णेण होइ विहवो**' इस पुण्य से वैभव मिले यह धूल आदि। अरबों रुपये और अरबों की आमदनी। ६०वीं गाथा है। ६०, दूसरे अधिकार की। पोपटभाई! है? क्या है वाँचो, देखी?

मुमुक्षु : 'पुण्य से घर में धन होता है, और धन से अभिमान, मान से....'

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। और पुण्य-पुण्य। इस पुण्य से पैसे मिले, ऐसा कहते

हैं। **धन से अभिमान...** होता है। **पुण्य से घर में...** है, हों! धर्म नहीं। **पुण्य से घर में धन होता है,...** घर है वह घर। पुण्य से घर में पैसे पैदा होते हैं। करोड़ों, अरबों पैसे। और **धन होता है, और धन से अभिमान...** होता है। हम पैसे कमाते हैं। हम पैसेवाले हैं। साधारण व्यक्ति तुमको आता नहीं। एक दिन की लाखों की आमदनी हम करते हैं। तुम बारह महीने मेहनत करके मर जाओ तो लाख आते नहीं। ऐसा अभिमान करे लोग। आहाहा! है? क्या कहा यह?

पुण्य से घर में धन होता है, और धन से अभिमान, मान से बुद्धि भ्रम होता है,... मान चढ़ गया और पावन चढ़ गया उसे। हम यह लक्ष्मीवन्त हैं। हम पैसेवाले हैं, हमारे कारखाना चलते हैं। उसका नहीं कहा? शान्तिलाल खुशाल, अपना बनिया है न दशाश्रीमाली था। अब तो गुजर गया। दशाश्रीमाली बनिया यहाँ पणासणा का। दो अरब चालीस करोड़। दो अरब चालीस करोड़ रुपये। अभी हैं। वह मर गया। उसकी बहू है। उसकी बहू-पुत्र है। बहू है, वह असाध्य में है। हेमरेज हुआ है। १३-१४ महीने से असाध्य है। दो अरब चालीस करोड़। उसे उसके बहनोई ने कहा। यह पोपटभाई हैं न! लींबड़ीवाले नहीं आते? पोपटभाई। उन्होंने उसे कहा कि अब तुमको इतने पैसे और इतना किसलिए करते हो? हम क्या इसके लिये करते हैं? हजारों को निभाने के लिये यह धन्धा करते हैं। ठीक! आहाहा! प्याला फट गया अन्दर से (अभिमान चढ़ गया)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : घमण्ड है वह, उसे घमण्ड हो जाता है। ऐ पोपटभाई। यह तो बेचारे यहाँ के... इनकी पुत्री बालब्रह्मचारी है न? उनकी बहिन की पुत्री भी यहाँ बालब्रह्मचारी है। उसने कहा कि परन्तु अब किसलिए इतना? जवाब ऐसा दिया, हों! हम इसके लिये करते हैं? पैसा कमाने के लिये? हजारों लोगों का निभाव होता है। यह मिल मालिक को सब ऐसा कहे। सब हजारों लोगों का निभाव हो, इसके लिये मिल करते हैं। मर जाओगे।

मुमुक्षु : आप भविष्य का दुःख दिखलाते हो। अभी उसे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी भी दुःखी है। अभी सुलग रहा है, कहाँ चैन था। आहाहा! रात्रि में नींद भी नहीं आती। कितनी गोलियाँ लेनी पड़े। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, पुण्य के कारण धन और ... देखो! यहाँ तो कोई ऐसा कहता था कि पैसे का कारण पुण्य नहीं। तो यह यहाँ सिद्ध किया है। और यहाँ यह किया है न यहाँ भी ? फल राज्य आदि। पुण्य का फल राज आदि है। कोई ऐसा इनकार करता है न कि यह नहीं। वह तो वर्तमान व्यवस्था से मिलता है। यह धूल भी नहीं। पूर्व के पुण्य का फल राज आदि पैसा अरबों, करोड़पति पूर्व के पुण्य का फल है। वह वर्तमान पुरुषार्थ का फल है नहीं कि वर्तमान में चतुर हुआ, इसलिए यह मिले।

मुमुक्षु : राज की व्यवस्था से मिलता है, ऐसा कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं राज की व्यवस्था। क्या करता था राजा ? राजा मर जाता है न!

यहाँ तो कहते हैं कि **राज्य वगैरह...** पूर्व के पुण्य के कारण मिलते हैं। ऐसा आया अपनी चलती गाथा में। और ६०वीं गाथा में यह आया कि धन, उसके कारण से मिलता है—पुण्य के कारण से, देखो! **धन से अभिमान, अभिमान से बुद्धिभ्रम होता है,...** मस्तिष्क भ्रम हो जाता है। हमने मानो बस... ओहोहो! बादशाह हैं, हम बादशाह। सुखी हैं, सुखी। **बुद्धिभ्रम होता है, बुद्धि के भ्रम होने से पाप होता है,...** आहाहा! **इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे।** आचार्य कहते हैं, वह पुण्य हमको नहीं चाहिए। समझ में आया ? आहाहा! करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ रुपये जहाँ हो जाये, मस्तिष्क फट जाता है, प्याला फट जाता है अन्दर। सवेरे उठे वहाँ ऐसा, ओहोहो! इतने पैसे आयेंगे, इसका यह आयेगा। नौकर काम करके जवाब दे, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! आचार्य योगीन्द्रदेव स्वयं कहते हैं।

बुद्धिभ्रम होता है, बुद्धि के भ्रम होने से पाप होता है, इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे। वह पुण्य हमारे काम का नहीं। आहाहा! ताराचन्दभाई! समकित दृष्टि को पुण्य होता है परन्तु उसे पुण्य की रुचि नहीं होती। और पुण्य के फल समकिती को तीर्थंकरपना मिले, चक्रवर्तीपना मिले, इन्द्रपना मिले परन्तु उसकी रुचि नहीं होती। आहाहा! उसका प्रेम नहीं अन्दर में। आसक्ति हो जाती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **पुण्य का फल राज्य वगैरह सम्पदा जानना,...** अपने चलती

गाथा। **और काम शब्द से उस राज्य का मुख्यफल स्त्री, कपड़े, सुगन्धित माला आदि...** आहाहा!

मुमुक्षु : मोटर तो न आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोटर थी कब तब? मोटर तो अब हुई। तब थी कहाँ?

पहले माल लेने गये मुम्बई। तब मोटर नहीं थी। (संवत्) १९६४ के वर्ष। तब घोड़ागाड़ी थी। स्टेशन पर घोड़ागाड़ी खड़ी हो। एक घोड़े की हो, दो घोड़े की हो। एक घोड़े की हो परन्तु आगे खुल्ली। पहले गये माल लेने जब, तब वह घोड़ागाड़ी थी। मोटर तो कहाँ थी ही तब? मोटर तो अभी हुई। स्टेशन से गाँव में जाना हो, तब तो उस घोड़ागाड़ी में जायें। आहाहा!

काम शब्द से उस राज्य का मुख्यफल स्त्री... देखा! सुन्दर स्त्री, उसके वस्त्र ऊँचे ऐसे पाँच-पाँच, दस-दस हजार का एक-एक कपड़ा, गहने इत्यादि और सुगन्धित माला। सवेरे फूल की मालायें सुगन्ध-सुगन्ध... माली लावे। लो साहेब, लो साहेब। वह **वस्तुरूप भोग जानना।** उसका भोग। वह दुःख है। पुण्य स्वयं दुःख, पुण्य के फल में लक्ष्मी आदि (मिले), वह दुःख और भोग में दुःख। आत्मा के आनन्द के स्वभाव को भूलकर विषयानन्द में, भोग में पड़ा, वह दुःखी है। आहाहा! समझ में आया? **इन तीनों से परमसुख नहीं है,...** इन तीन में आत्मा के आनन्द का सुख नहीं। धूल भी नहीं। दुःख है, कहते हैं। आहाहा! दलीचन्दभाई नहीं आये? बैठे हैं। ठीक। पीछे हैं।

क्लेशरूप दुःख ही है,... क्या कहते हैं? देखो! इस लक्ष्मी में, काम में और पुण्य में क्लेशरूप दुःख ही है। पोपटभाई! आहाहा! एक व्यक्ति कहता था कि हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। यह नानालालभाई का रिश्तेदार था न? वह वढवाणवाला। वढवाणवाला। थानवाला तो दूसरा माणेकचन्द। वह तो कहे, यह द्रव्यदृष्टि अर्थात् क्या? और यह तो भाई थे प्रायः वह तुम्हारे चूडगर। चूडगर थे वे। उनके रिश्तेदार होते हैं न उसे। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। सुखी अर्थात् क्या, कहा। सुखी की व्याख्या क्या? यह पैसे-बैसे मिले, करोड़ रुपये हुए, इसलिए सुखी? यहाँ तो कहते हैं, परमक्लेश है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोगों की दृष्टि अलग और....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया की दृष्टि उल्टी पाखण्डी की। पापी की दृष्टि पाप के ऊपर है। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान आत्मा मृग की नाभि में कस्तूरी। हिरण-मृग की नाभि में कस्तूरी। परन्तु उस कस्तूरी की सुगन्ध बाहर आवे, वहाँ बाहर देखने जाये। मानो सुगन्ध यहाँ से आती होगी... यहाँ से आती होगी। परन्तु अन्दर में है, उसकी उसे खबर नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का सागर है वह। परन्तु कहाँ माने? भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप है, अतीन्द्रिय सुख है वह। अतीन्द्रिय ज्ञान है, अतीन्द्रिय सुख है, अतीन्द्रिय शान्ति है। ऐसे स्वभाव से तो भरपूर स्वयं भगवान है। उसका मोक्ष हो, तब उसे पर्याय में सुख प्रगट होता है। जो सुख है आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा!

जैसे छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट भरी हुई ही है। वह छोटी पीपर नहीं होती? छोटी पीपर? दाना छोटा, काला परन्तु चरपराहट अन्दर चौंसठ पहरी रुपया-रुपया भरी है। सोलह आने। चौंसठ पहरी अर्थात् कहे न चौंसठ पैसा, सोलह आना, रुपया पूर्ण चौंसठ पहरी। वह प्रगट होती है, तब पर्याय में प्रगट होती है, वह कहाँ से आयी? वह है, उसमें से आयी। प्राप्त की प्राप्ति। कल प्रश्न था न? प्राप्त की अर्थात् है, वह मिला है, अन्दर था वह आया है। आहाहा! कुँए में पानी था, वह हौज में आया है। अवेडो समझ में आता है? बाहर। क्या कहे? बाहर होता है न खड्डा? हमारे अवेडो कहते हैं। कुँए में हो, वह हौज में आता है। इसी प्रकार आत्मा में जो आनन्द है, वह पर्याय में आता है। आहाहा! दु:ख तो नया उत्पन्न करता है। स्वभाव में नहीं। लक्ष्मी में, भोग में और राज में, उसमें कल्पना खड़ी करता है, वह तो दु:ख है। वह स्वरूप में नहीं। स्वरूप तो उसका आनन्द है। उसकी उसे खबर ही नहीं। आहाहा! कहते हैं कि यह तीन है, वह क्लेश है।

इसलिए इन सबसे उत्तम मोक्ष को ही... इसलिए सबसे उत्तम मोक्ष को (कहते हैं)। परमानन्दरूपी शुद्धात्मा की प्राप्ति, वह मोक्ष। उसमें सुख है। आहाहा! उस **मोक्ष को ही वीतरागसर्वज्ञदेव कहते हैं,...** उन सबमें उत्तम मोक्ष को वीतराग सर्वज्ञदेव कहते हैं। पुण्य को उत्तम नहीं कहते, काम को उत्तम नहीं कहते, पुण्य के फल को भी उत्तम

नहीं कहते। आहाहा! **सबसे उत्तम मोक्ष को ही वीतराग सर्वज्ञदेव...** परमेश्वर, जिनेन्द्रदेव तीन लोक के नाथ परमेश्वर वीतराग अरिहन्त मोक्ष में उत्तम सुख है, ऐसा कहते हैं। इसलिए उसका साधन करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

क्योंकि मोक्ष से जुदा जो धर्म,... मोक्ष से भिन्न जो धर्म अर्थात् पुण्य, **अर्थ,...** अर्थात् पैसा, **काम,...** अर्थात् भोग **वे आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं,...** लो! आहाहा! अग्नि में चूहा होता है। सुना है? अग्नि का चूहा। अग्नि का चूहा। उंदर समझते हो? चूहा। अग्नि में चूहा होता है। अग्नि का-अग्नि का। बाहर निकले तो मर जाये। आहाहा! अग्नि के चूहे को अग्निपना वहाँ ठीक लगता है। उसी प्रकार अज्ञानी राग-द्वेष की क्लेशता में सुख मान रहे हैं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि है। फिर भले वे साधु होकर पंच महाव्रतादि क्रियाकाण्ड करता हो, परन्तु वह राग में सुख है, राग मुझे ठीक है, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम, वह पुण्य है, वह क्लेश है, वह दु:ख है। उसे वह ठीक मानता है। वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पुण्य आया न? महाव्रत अर्थात् पुण्य है। पंच महाव्रत, बारह व्रत, वे सब पुण्यभाव हैं, शुभभाव हैं। वह धर्मभाव नहीं। लोग तो उसे धर्म माने और धर्म प्ररूपणा करे। साधु भी यह कहते हैं अभी बेचारे। उन्हें भी भान नहीं और सुननेवाले को भी भान नहीं। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि **मोक्ष से जुदा...** जो पुण्य, पैसा और भोग, वे **आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं,...** आहाहा! शान्ति का सागर परमात्मा, उससे विरुद्ध यह आकुलता है, अशान्ति है। आहाहा! पैसे में अशान्ति, राग में अशान्ति, भोग में अशान्ति। आहाहा! भोग शब्द से कहीं स्त्री आदि के शरीर को वह भोगता नहीं। उसके ऊपर लक्ष्य जाकर 'यह ठीक है', ऐसा जो विकार उत्पन्न करता है, उस विकार को भोगता है। वह विकार, वह क्लेश है और दु:ख है। आहाहा! तत्त्व की खबर नहीं होती। कौन सास तत्त्व दु:खरूप और कौन सा तत्त्व सुखरूप। समझ में आया? यह शुभभाव पुण्यतत्त्व, वह दु:खरूप है, ऐसा कहते हैं। और भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, वह सुखरूप है। कौन सा तत्त्व दु:खरूप और कौन सा तत्त्व सुखरूप है, इसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! जिसमें दु:ख है, उसे सुख मानता है और जिसमें सुख है, उसका आदर नहीं करता। आहाहा! पाँच, सात, दस लाख पैदा हों, दो-पाँच लाख का खर्च

निकालकर और पैसे हों, उसमें दस लाख मिले वापस। खर्च निकालने पर। तो हम सुखी हैं, ऐसा मानता है। आहाहा!

बारह-बारह लड़के हों और बारह-बारह उनके बँगले बनावे। बारह भाई है न? वींछिया में है। बारहभाया। 'बारहभाया' है न? बारहभाया है। आठ लड़के तो बहुतों को है। आठ-आठ तो बहुतों को है। अपने केशुभाई को आठ लड़के बड़े। चिमनभाई के बहनोई। चिमनलाल ठाकरसी। केशुभाई नहीं? पैसेवाले हैं, पैसेवाले हैं। आठ लड़के बड़े जवान, हों! बड़े जवान। आठवाँ यहाँ आया था न बड़ा जवान था। आठों जवान। यह अभी पैसे लेने गये थे न? उनके पास गये थे न अपने पाटणी और बाबूभाई। यह तीर्थ फण्ड के पैसे लेने। दो व्यक्ति गये, इसलिए ग्यारह हजार लिखाये। और वापस लिखाकर बोले ऐसा, ऐसा काम हो तो आना। ऐसा काम हो तो मेरे यहाँ आना। केशुभाई अभी यहाँ (थे)। चिमनलाल ठाकरसी के बहनोई। पैसे हैं ३०-४० लाख रुपये। यह तो सबको—बहुतों को है।

यह जेठाभाई को आठ लड़के हैं। नहीं? वे मोरबीवाले फूलचन्दभाई के भाई नहीं? उम्र छोटी है। लड़के आठ हैं बड़े। सिकन्दराबाद। दोनों एक बार इकट्ठे होते थे। केशुभाई के साथ। तुम दोनों कैसे? कहा। मुझे आठ लड़के हैं और इन्हें आठ लड़के हैं। यह विशाश्रीमाली है और यह दशाश्रीमाली है। धूल भी नहीं, बापू! आहाहा! चक्रवर्ती को तो ३२ हजार राजकुमार होते हैं, बड़े। चक्रवर्ती को ३२ हजार, हों! उससे क्या हुआ? वह तो परवस्तु-पदार्थ है। उसके ऊपर लक्ष्य जाने पर 'यह मेरा', यह भाव दुःखरूप है। परद्रव्य तेरा कहाँ से हो गया? परद्रव्य तो स्वतन्त्र जगत की चीज़ है। उसमें मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, यह मेरा मकान, यह मेरी लक्ष्मी, यह मेरे गहने। आहाहा! अपनी गाय बेची हो न, गाय बेची हो। और किसी ने रखी हो और निकले तो कहे, यह मेरी गाय थी। लो ठीक! हमारे शिवलालभाई ऐसे थे। यह शिवलाल नहीं? पटेल। यह तो सब नजरों से (देखा हुआ है)। वे गाय रखते और बेची थी। एक बार दिशा को जाते समय साथ में थे। उसमें गाय निकली तो कहे, महाराज! यह मेरी गाय थी, मैंने इसे दी थी। यह सब अनुभव हुए हैं। शिवलालभाई! आहाहा! अरे! बापू! तू कौन है, भाई? कहाँ है, तुझे खबर नहीं। यह सब बाहर के साधन में कल्पना उठना, वह सब दुःख है। सुख कहीं है नहीं। आहाहा!

मोक्ष से जुदा... पुण्य, लक्ष्मी और विषय-वासना। **वे आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं,...** आहाहा! उसमें लड़के आठ-आठ हों और एक लड़के के विवाह आठवें के होते हों, जब दो-पाँच लाख खर्चना हो। उसमें बरौठी करनी हो। अन्त में करते हैं न प्रीतिभोज? क्या कहते हैं तुम्हारे? प्रीति भोजन अन्त में बड़ा करते हैं न? प्रीतिभोज। दो-पाँच लाख का खर्च करे। आहाहा! तब तो उसे ऐसा हो जाये। हम तो कैसे हैं, कहाँ हैं? कहाँ हैं, क्लेश में हैं। आहाहा! तुझे खबर नहीं, प्रभु! वह क्लेश बिना का भगवान आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु है। जिनेश्वरदेव, उसका मोक्ष हो, उसे सुख कहते हैं। उसमें सुख तो है परन्तु मोक्ष हो, तब परमसुख है। समझ में आया? कहो, यह लड़के सब अमेरिका में जाकर हैरान-हैरान है, बस दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सुमनभाई तो अमेरिका जा आये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुमनभाई है, वह झूठा। उसके पिता अकेले रोटिया घढ़कर खाते हैं, कोई पास में। किसी दिन और आवे तो पैर-बैर दबावे। लो! धूल में भी नही कुछ। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु है, कहते है कि महाव्रत का, व्रत और तप का विकल्प उठे, वह दुःख है। आहाहा! तुझे खबर नहीं, प्रभु! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ क्या तत्त्व, कैसा तत्त्व कहते हैं? आहाहा! यह महाव्रत के और व्रत के और अपवास के परिणाम, वह दुःख तत्त्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और उसके फलरूप से लक्ष्मी आदि मिले, वह भी दुःखतत्त्व है। आहाहा! दुःख में निमित्त है, वह सब। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु जहाँ नजर डालने से निधान में से आनन्द प्रगटे, ऐसा भगवान आत्मा है, परन्तु वहाँ नजर जाना चाहिए। नजरों को पर्याय में, राग में रोका है... आहाहा! उस नजर को यहाँ मोड़ दे। जिससे तुझे मोक्ष का मार्ग शुरु होगा और तुझे मोक्ष मिलेगा। आहाहा! यह बात यहाँ सिद्ध करनी है। परमात्मप्रकाश है न! परमात्मप्रकाश स्वरूप ही तेरा परमात्मस्वरूप है। जो मोक्ष की दशा प्रगट होती है—अनन्त आनन्द, वह अनन्त आनन्दमय है, उसमें से प्रगट होती है। वह कहीं व्रत के विकल्प और उससे कुछ प्रगट नहीं होता। आहाहा!

आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं,... कौन सा तत्त्व किस प्रकार से है, उसकी

खबर नहीं होती। विपरीत मान्यता, वह मिथ्यात्व है। विपरीत अभिनिवेश। पुण्यतत्त्व, वह दु:खरूप है, उसे सुखरूप माने। पुण्य के फल यह सामग्री है, वह दु:ख के निमित्त हैं, उन्हें सुख के कारण माने। यह सब तत्त्व की दृष्टि विरुद्ध है। आहाहा! **वीतराग परमानन्दसुखरूप अमृतरस के आस्वाद से विपरीत हैं,...** आहाहा! क्या कहते हैं ? कि पुण्य के भाव शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव शुभ। वह और लक्ष्मी और उसका भोग... आहाहा! वह **वीतराग परमानन्दसुखरूप अमृतरस के आस्वाद से विपरीत हैं,...** आत्मा का तो वीतराग परमानन्दरसरूप अमृतरस है। आहाहा! सुखकन्द मनोहर। वह सुख का कन्द है। आहाहा! जैसे शकरकन्द है न ? शकरिया-शकरिया। शकरकन्द है, वह लाल छाल के अतिरिक्त देखो तो अकेला शकरकन्द है। शक्कर का पिण्ड, मिठास का पिण्ड है। छाल छोड़कर नजर करो तो। अकेला। यह शिवरात्रि को बफाते हैं न ? ओहो! शकरकन्द अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, इन पुण्य के परिणाम की छाल को नजर में से छोड़ दे, तो इसके अतिरिक्त का जो आत्मा, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का शकरकन्द है। आहाहा! समझ में आया ? उसकी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। पुण्य और लक्ष्मी की दृष्टि करना, वह तो पापदृष्टि मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। जगत का उत्साह उतार डाले, ऐसा है यह तो। आहाहा! भाई! तू स्वयं आनन्दस्वरूप है न, प्रभु!

यह **वीतराग परमानन्दसुखरूप...** आहाहा! अमृतरस। ऐसा जो भगवान आत्मा, उससे यह पुण्य के भाव, लक्ष्मी और भोग, उसके आस्वाद से विपरीत आस्वाद है। उससे विपरीत इनका अनुभव है, कहते हैं। आहाहा! **इसलिए सुख के करनेवाले नहीं हैं,...** यह पुण्यभाव, लक्ष्मी, ऐसा कि भाई बहुत लक्ष्मी हम दान में देंगे... दान में देंगे। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है। इष्टोपदेश में कहा है। इष्टोपदेश में। ऐसा कि पैसा बहुत पैदा करके फिर दान करूँगा। ऐसा दृष्टान्त दिया है। पहले कीचड़ में लिप्त होकर फिर नहाऊँगा, ऐसा दृष्टान्त दिया है। पैसा पैदा करें २५-५० लाख, फिर उसमें से ५-१० लाख देंगे। पाप करके पैदा करना है, और वह भी पूर्व के पुण्य के कारण आवे। और फिर दान करूँगा। पहले यहाँ पाप तो किया अब। फिर दान करूँगा, दान। किसका दान तेरा ? आहाहा! क्या कहते हैं वह ? नहीं ? सुई का दान और ऐरण की चोरी। क्या

कहलाती है वह लोहे की होती है न? ऐरण-ऐरण। लोहे की ऐरण होती है न? सुई का दान और ऐरण का फल माँगे। आहाहा! पाँच करोड़-दस करोड़ हों, उसमें से पाँच-दस लाख नोंधावें। तख्ती लगाना, चिपकाना। उपाश्रय में और मन्दिर में हमारे नाम की तख्ती लगाना। अब इसे बाहर प्रसिद्ध होना है अभी। बहिरात्मा होना है। अन्दर में जाना नहीं इसे। भगवान आत्मा... आहाहा!

मुमुक्षु : तख्ती लगावे तो दूसरे को खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को खबर पड़े, (इसलिए) दूसरे फिर पैसे दें। इसके लिये। ऐसा अर्थ करे यह। अपने अभिमान के लिये करता है। ऐसा कि दूसरे भी ऐसा अनुकरण करे। इन्होंने पाँच लाख दिये हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर... कुछ भान ही नहीं। और कदाचित् कोई दो-पाँच-दस करोड़ रुपये हो और दस लाख रुपये देने का मन हुआ मरते समय। परन्तु उसमें जीभ अटके और ऐसा अवसर हो। और सब देखने आये हों, इकट्ठे सगे-सम्बन्धी। तो उसमें से बोले, बापू! ... दस... दस... लाख... दस लाख। लड़का कहे बापू! अभी पैसे को याद नहीं करते। वह बेचारा कहे, मैंने पाप बहुत किये हैं तो एक यह दस लाख का एक दया का बनाओ, कुछ मन्दिर बनाना। वह कहे, यह सब खड़े हैं और यह कहते हैं तो करना पड़ेगा। बापूजी! अभी पैसे को याद नहीं किया जाता है। भगवान... भगवान करो। उसको बोलने की भाषा कम हो गयी हो, अब करना क्या? ऐसा है सब, हों! यह सब ठग हैं। यह नियमसार में कहा है। स्त्री, पुत्र, परिवार, साला, समधि और समधिन वह सब ठग हैं। आजीविका (के लिये) ठगों की टोली मिली है यह सब। स्त्री ठीक हो तुम तो ऐसे और तुम तो ऐसे। मार डालेंगे, सुन न अब। मर जायेगा वहाँ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पुण्य, लक्ष्मी और भोग, यह **वीतराग परमानन्दसुखरूप अमृतरस के आस्वाद से विपरीत हैं,...** आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग ऐसा है, बापू! लोगों ने वीतरागमार्ग सुना नहीं। बाहर में बस यह करो और यह करो। तप और त्याग यह करो, तुम्हारे धर्म (हो जायेगा)। यहाँ कहते हैं, तप और त्याग में राग की

मन्दता हो तो पुण्य है। ऐई! यह पुण्य है, उसका वीतराग परमानन्दसुख से विपरीत स्वाद है। आहाहा! अरे! इसने जिनेश्वरदेव के कथन सुने नहीं।

परमानन्द का नाथ, प्रभु! पूर्णानन्द तृप्त-तृप्त हुए प्रभु की वाणी आयी है न! आहाहा! उस वाणी में तो ऐसा आया, प्रभु! यह पुण्य के भाव जितने दया, (दानादि के होते हैं, वह क्लेश है)। अब देखो इसे यह ऐसा कहते हैं कि यह व्रत और तप के परिणाम से आत्मा की मुक्ति होगी, इस व्यवहार से निश्चय होगा। यहाँ कहते हैं कि वह स्वयं दुःखरूप है। उससे सुखरूप हो, यह तुझे बड़ी भ्रमणा है। समझ में आया? यह सब पण्डितों को यह विवाद उठा है न अभी? यह व्यवहार करते हैं, यह सब त्याग, मुनिपना, पंच महाव्रत, नग्न दिगम्बर रहते हैं। वह सब व्यवहार है और व्यवहार से निश्चय होगा। दुःख के भाव से सुख होगा। आहाहा! लहसुन खाया और कस्तूरी की डकार आयेगी। आती है? लहसुन का आता है। यह ढोकला करते न, लहसुन का मसाला? तेल में। लहसुन डकार आती है वहाँ तो। इसी प्रकार पुण्य के परिणाम में तो दुःख की डकार आती है। आहाहा! कठिन मार्ग, बापू! आहाहा!

वीतराग परमानन्दसुखरूप... आहाहा! **अमृतरस के आस्वाद से...** आत्मा का। यह पुण्य, लक्ष्मी और भोग से भिन्न भगवान का स्वाद, सम्यग्दर्शन में आत्मा का स्वाद... आहाहा! परमतत्त्व को स्वीकार करने से जो परम आनन्द पर्याय में आवे... आहाहा! ऐसा जो सुख का आस्वाद, उससे यह पुण्य के परिणाम, वह विपरीत आस्वाद है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए सुख के करनेवाले नहीं है,...** यह पुण्य, लक्ष्मी और भोग सुख के करनेवाले नहीं, **ऐसा जानना।** शिष्य को गुरु कहते हैं। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४

अथ धर्मार्थकामेभ्यो यद्युत्तमो न भवति मोक्षस्तर्हि तत्त्रयं मुक्त्वा परलोकशब्दवाच्यं मोक्षं किमिति जिना गच्छन्तीति प्रकटयन्ति –

१२७) जइ जिय उत्तमु होइ णवि एयहँ सयलहँ सोइ।
तो किं तिण्णि वि परिहरवि जिण वच्चहिँ पर–लोइ।।४।।

यदि जीव उत्तमो भवति नैव एतेभ्यः सकलेभ्यः स एव।
ततः किं त्रीण्यपि परिहृत्य जिनाः व्रजन्ति परलोके।।४।।

जइ इत्यादि। जइ यदि चेत् जिय हे जीव उत्तमु होइ णवि उत्तमो भवति नैव। केभ्यः। एयहं सयलहं एतेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यो धर्मादिभ्यः। कतिसंख्योपेतेभ्यः। सकलेभ्यः सो वि स एव पूर्वोक्तो मोक्षः तो ततः कारणात् किं किमर्थं तिण्णि वि परिहरवि त्रीण्यपि परिहृत्य त्यक्त्वा जिण जिनाः कर्तारः वच्चहिं व्रजन्ति गच्छन्ति। कुत्र गच्छन्ति। पर–लोइ परलोकशब्दवाच्ये परमात्मध्याने न तु कायमोक्षे चेति। तथाहि–परलोकशब्दस्य व्युत्पत्त्यर्थः कथ्यते। परः उत्कृष्टो मिथ्यात्वरागादिरहितः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणसहितः परमात्मा परशब्देनोच्यते तस्यैवंगुणविशिष्टस्य परमात्मनो लोको लोकनमवलोकनं वीतरागपरमानन्द–समरसीभावानुभवनं लोक इति परलोक–शब्दस्यार्थः। अथवा पूर्वोक्तलक्षणः परमात्मा परशब्देनोच्यते। निश्चयेन परमशिवशब्दवाच्यो मुक्तात्मा शिव इत्युच्यते तस्य लोकः शिवलोक इति। अथवा परमब्रह्मशब्दवाच्यो मुक्तात्मा परमब्रह्म इति तस्य लोको ब्रह्मलोक इति। अथवा परम विष्णुशब्दवाच्यो मुक्तात्मा विष्णुरिति तस्य लोको विष्णुलोक इति परलोकशब्देन मोक्षो भण्यते परश्चासौ लोकश्च परलोक इति। परलोकशब्दस्य व्युत्पत्त्यर्थो ज्ञातव्यः न चान्यः कोऽपि परकल्पितः शिवलोकादिरस्तीति। अत्र स एव परलोकशब्दवाच्यः परमात्मोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।४।।

आगे धर्म, अर्थ, काम इन तीनों से जो मोक्ष उत्तम नहीं होता तो इन तीनों को छोड़कर जिनेश्वरदेव मोक्ष को क्यों जाते? ऐसा दिखाते हैं –

इन तीनों से भी सर्वोत्तम शिवसुख यदि नहिं हो रे जीव!
तो जिनराज सभी इनको तजकर क्यों शिव में बसें सदैव।।४।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, [यदि] जो [एतेभ्यः सकलेभ्यः] इन सबों से [सः] मोक्ष [उत्तमः] उत्तम [एव] ही [नैव] नहीं [भवति] होता [ततः] तो [जिनाः]

श्रीजिनवरदेव [त्रीण्यपि] धर्म, अर्थ, काम इन तीनों को [परिहृत्य] छोड़कर [परलोके] मोक्ष में [किं] क्यों [व्रजंति] जाते? इसलिये जाते हैं कि मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है।

भावार्थ :- पर अर्थात् उत्कृष्ट मिथ्यात्व रागादि रहित केवलज्ञानादि अनंत गुण सहित परमात्मा वह पर है, उस परमात्मा का लोक अर्थात् अवलोकन वीतराग परमानंद समरसीभाव का अनुभव वह परलोक कहा जाता है, अथवा परमात्मा को परमशिव कहते हैं, उसका जो अवलोकन वह शिवलोक है, अथवा परमात्मा का ही नाम परमब्रह्म है, उसका लोक वह ब्रह्मलोक है, अथवा उसी का नाम परमविष्णु है, उसका लोक अर्थात् स्थान वह विष्णुलोक है, ये सब मोक्ष के नाम हैं, यानी जितने परमात्मा के नाम हैं, उनके आगे लोक लगाने से मोक्ष के नाम हो जाते हैं, दूसरा कोई कल्पना किया हुआ शिवलोक, ब्रह्मलोक या विष्णुलोक नहीं है। यहाँ पर सारांश यह हुआ कि परलोक के नाम से कहा गया परमात्मा ही उपादेय है, ध्यान करने योग्य है, अन्य कोई नहीं।।४।।

वीर संवत् २५०२, आसोज शुक्ल १४, मंगलवार
दिनांक-०५-१०-१९७६, गाथा-४, ५, प्रवचन-९६

परमात्मप्रकाश, गाथा-४। **आगे धर्म, अर्थ, काम इन तीनों में से जो मोक्ष उत्तम नहीं होता तो इन तीनों को छोड़कर जिनेश्वरदेव मोक्ष को क्यों जाते?** क्या कहते हैं? चौथी-चौथी गाथा। उपोद्घात—पहली शुरुआत। धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् लक्ष्मी, काम अर्थात् भोग। इन तीन से **मोक्ष उत्तम नहीं होता तो इन तीनों को छोड़कर जिनेश्वरदेव मोक्ष को क्यों जाते?** तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव ने, चक्रवर्ती का राज था तीर्थंकर को तो। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। काम, भोग छोड़े, लक्ष्मी छोड़ी और पुण्य छोड़ा। आहाहा! इन तीनों को छोड़कर मोक्ष में क्यों जाते? यदि उत्तम नहीं होता तो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यदि मोक्ष उत्तम नहीं होता और परमसुखरूप वह दशा नहीं होती (तो) तीर्थंकर अर्थ, काम, धर्म को छोड़कर मोक्ष क्यों प्राप्त करते? क्योंकि तीन से ऊँची चीज़ वह उत्तम मोक्ष है।

१२७) जइ जिय उत्तमु होइ णवि एयहँ सयलहँ सोइ।
तो किं तिण्णि वि परिहरवि जिण वच्चहिँ पर-लोइ॥४॥

अन्वयार्थः—हे जीव! जो इन सबों से... 'सकलेभ्यः' सबों से... अर्थात् धर्म—पुण्य और पाप दो। लक्ष्मी और काम दो पाप और दया, दान, व्रतादि के परिणाम वे पुण्य। **सबों से मोक्ष उत्तम ही नहीं होता तो श्री जिनवरदेव...** परमेश्वर वीतराग परमात्मा, यह **धर्म, अर्थ, काम, इन तीनों को छोड़कर...** तीनों को छोड़कर। पुण्य के फल और पुण्य, दोनों छोड़ दिये। आहाहा! वर्तमान शुभभाव को छोड़ा और पुण्य के फलरूप से चक्रवर्ती का राज आदि था या जिसे जो था वह, उस अर्थ और काम को भी उन्होंने छोड़ा। आहाहा! अर्थात्? पुण्य और पाप के दो भाव, उनसे मोक्ष उत्तम है। इस कारण दोनों को छोड़कर परमात्मा मोक्ष को प्राप्त हुए। समझ में आया?

अब कहते हैं कि **इसलिए जाते हैं कि मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है।** पुण्य और अर्थ और भोग से मोक्ष, वह सर्वोत्कृष्ट उत्तम है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे अच्छे हैं और यह उत्कृष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्कृष्ट है अर्थात् यही ऊँचा है, ऐसा। दूसरी कोई चीज़ है नहीं। चौथी-चौथी गाथा।

भावार्थः—अब यहाँ **पर अर्थात् उत्कृष्ट मिथ्यात्व, रागादिरहित...** परमात्मा की व्याख्या करते हैं। परमात्मा किसे कहना? परम आत्मा। पर अर्थात् उत्कृष्ट। जो मिथ्यात्व विपरीत मान्यता और रागादि, द्वेषादि परिणाम वह उत्कृष्ट जो है, उससे रहित और **केवलज्ञानादि अनन्त गुणसहित...** आहाहा! मिथ्यात्व, भ्रमणा और अज्ञान और राग-द्वेषरहित और केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बलसहित **परमात्मा वह पर है,...** उसे परमात्मा, उस पर कहा जाता है। अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, उसे जिसने प्रगट किया, वह पर है और वह परमात्मा है। आहाहा! जगत से अलग प्रकार पर है वह, ऐसा कहते हैं। धर्म, अर्थ और काम से परचीज़ है वह। आहाहा! जिसे केवलज्ञान। यह केवलज्ञान भाषा है परन्तु इसका भाव एक समय में ज्ञान की शक्ति जो सर्वज्ञस्वभाव से थी, उसे पर्याय में सर्वज्ञता एक समय में तीन काल—तीन लोक को स्पर्शे बिना जाने, ऐसा जो केवलज्ञान, वह क्या चीज़ है, भाई! भाषा भले सादी है। आहाहा!

जिसे केवलज्ञान प्रगट हुआ। चैतन्यसूर्य जगमगाता पर्याय में व्यक्तरूप से प्रगट

हुआ, वह अनन्त ज्ञान, केवल अनन्त दर्शन, अनन्त अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त जिसका वीर्य-बल, ऐसी दशासहित जो प्रगट हुए, उसे पर कहा जाता है। जगत से पर, वह परमात्मा। ताराचन्दजी! यह सब पैसेवाले बड़े कहलाते हैं, वे पर नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो आपने निकाल डाला न अर्थ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लक्ष्मी में निकल गये। भगवानजीभाई! आहाहा!

भाषा संक्षिप्त ऐसी की है कि पुण्य और पाप दो, ऐसा कहा। अर्थ है, वह पाप है; भोग है, वह पाप है और दया, दान के परिणाम, वह धर्म / पुण्य है। ये दोनों (अधर्म हैं), ऐसा कहना है। परमात्मस्वरूप प्राप्त करना है न ? तो वह परमात्मा स्वयं ही है वस्तु अभी। समझ में आया ? आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव... लोगों को कठिन पड़ता है। इसलिए कहते हैं, पुण्य को अधर्म न कहो। ऐसा कहते हैं। धर्म विरुद्ध है, वह अधर्म ही है, भाई! तुझे कठिन लगे, न लगे। बापू! आहाहा! आत्मावलोकन में तो कहा है कि गृहस्थाश्रम में धर्म और अधर्म दो होते हैं। समकिती को धर्म भी होता है और पुण्य-पाप के भाव, वह अधर्म भी होता है। भाषा में क्या है ? तुझे कठिन लगे, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : मीठी भाषा बोले....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा मीठी है ? भाषा तो भाषा है। भाव—उसका आशय क्या है, यह देखने का है। आहाहा! यहाँ पुण्य को धर्म कहा, लो! और धर्म, उसे पुण्य कहा। धर्म शब्द से पुण्य। आया न कल ? कल आया था। कल आया था न इसमें। आया था न ? धर्म शब्द से पुण्य, आया था। दूसरी गाथा। तीसरी। तीसरी की अन्तिम लाईन। **'धर्मशब्देनात्र पुण्यं कथ्यते'** संस्कृत टीका है न। तीसरी गाथा में भी अन्दर है। **धर्म शब्द से यहाँ पुण्य समझना,...** भावार्थ। तीसरी गाथा का भावार्थ। आहाहा! भाषा तो उसे व्यवहारधर्मरूप से, व्यवहाररूप से अर्थात् कि पुण्यरूप से कहा है उसे। परन्तु वह वस्तु कुछ नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहारधर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धर्म किसे ? वह भी व्यवहारधर्म कहलाये किसे ? कि

जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान हुआ है, उसके पुण्य परिणाम को व्यवहारधर्म आरोप से कथन है। आहाहा! है तो धर्म स्वभाव से विरुद्ध। आहाहा!

कहा था न? (संवत्) १९८५ में। सभा में। बड़ी सभा बोटाद। पौष महीना था। १९८५ का पौष। बोटाद सम्प्रदाय में थे न उसमें? तब व्याख्यान देते थे। लोग बहुत वहाँ तो तीन सौ, साढ़े तीन सौ घर। व्याख्यान बैठे तो लोग बहुत आवे। चींटियों के झुण्ड भरे, ऐसे मनुष्य आवे। उपाश्रय में समाये नहीं। गली में बैठे। शेरी समझते हो? गली–गली पीछे। तब सहज कहा था। पौष महीने की बात है। १९८५ के पौष में सहज बात की थी। भाई! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। धर्म से बन्धन नहीं होता। तो धर्म नहीं तो फिर उससे विरुद्ध, इसका अर्थ अधर्म है। पोपटभाई! १९८५ की बात है। कितने वर्ष हुए? ४७। पचास में तीन (कम)। बड़ी सभा बोटाद में तो। पैसेवाले सब रायचन्द गाँधी और वे लोग तो पाँच–पाँच लाख रुपये, पचास हजार की आमदनी। वह तो अब यह सब करोड़पति हो गये। परन्तु तब तो ये पाँच लाखवाले बड़े सेठिया कहलाते थे, पचास वर्ष पहले।

मुमुक्षु : उसके पच्चीस गुणा करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पच्चीस गुणा करे... रायचन्द गाँधी। रायचन्द रतनसिंह सामने बैठे। व्याख्यान में सामने बैठे। वे सब सुने।

कहा, भाई! जिस भाव से... प्रश्न तो यह उठा था कि वैयावृत्त्य... सन्तों की, धर्मात्मा की वैयावृत्त्य करने से क्या होता है? तीर्थंकरगोत्र बाँधे। ऐसा पाठ है। २९ के ७३ बोल हैं उसमें। उत्तराध्ययन का २९वाँ अध्ययन है उसमें। यह प्रश्न चला था। उन लोगों ने कहा, वैयावृत्त्य का फल... यह वैयावृत्त्य आदरणीय है और उसका फल वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। अरे! भाई! वैयावृत्त्य का भाव तो शुभराग है। देवीलालजी! यह तो तब, हों! १९८५ में। आहाहा! भाई! शान्ति से सुनो। यह शुभभाव है और बन्ध का कारण हो, वह भाव धर्म होगा? धर्म से बन्ध पड़े तो बन्ध का अभाव किस प्रकार होगा? आहाहा! इसलिए बन्ध का कारण है, वह धर्म नहीं। बराबर है? इसलिए फिर मीठी भाषा से कहें तो धर्म नहीं और सीधी भाषा से कहें तो वह अधर्म है। यह बात की थी, हों! सभा में की थी। तब तो उसमें थे सही न, इसलिए लोग (कुछ बोले नहीं)।

महाराज कहते होंगे वह बराबर कहते हैं। सब सुने। पूरी सभा, बड़ी सभा। पन्द्रह सौ आदमी। धर्म नहीं, भाई!

यहाँ यह कहते हैं कि धर्म है, वह पुण्य है। वह मोक्ष का कारण नहीं। वह उत्तम नहीं, ऐसा कहना है न यहाँ? धर्म, अर्थ और काम, ये तीन उत्तम नहीं हैं। इनसे भिन्न मोक्ष है, वह उत्तम है। ये तीनों तो छोड़नेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? यह तुम्हारे तो खबर न हो तब शिवलालभाई! यह तो ४७ वर्ष हो गये। वीरचन्दभाई और सब बैठे थे। वीरचन्दभाई, रायचन्द गाँधी, नारायणभाई, नारणसेठ, वे सेठ थे न? संघ के सेठ विशाश्रीमाली, नारण भुदर सब सुनें बेचारे, सब सुनें। मार्ग यह है कहा, भाई!

मुमुक्षु : उनके साधु थे न....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कुछ। दो बातें की थीं। दो, धीरे से, हों! एक यह और एक पंच महाव्रत के परिणाम भाई, वह तो आस्रव है, कहा। पंच महाव्रत के परिणाम हैं अहिंसा, सत्य, अचौर्य, (अपरिग्रह), ब्रह्मचर्य का विकल्प उठता है, वह तो आस्रव है। उसे लोग व्रत और संवर कहते हैं, यह विपरीत मान्यता है। समझ में आया? यह दो बोल कहे थे तब। सभा तो सब सुनती थी। परन्तु सभा में साथ में एक हमारे गुरुभाई थे, उन्हें खलबलाहट हो गयी। वोसरे... वोसरे... यह श्रद्धा, ऐसा कि। यह श्रद्धा वोसरे अर्थात् नहीं चाहिए। उसका कौन सुनता था? कोई सुने नहीं। बोलकर उठकर चले गये। व्याख्यान पूरा होने के बाद (मैंने) कहा, बैठे रहना था न तुम्हारे। तुमने क्या कहा वह किसी ने सुना है? क्या कहा वह? उसे उन मूलचन्दजी को कहना था कि मैंने उनका अनादर किया था। यह श्रद्धा नहीं। ऐसा कहने के लिये। उसे स्वयं को भान कहाँ था कुछ? अरे! प्रभु! ऐसा नहीं होता, भाई! यह तो हित का रास्ता है न, प्रभु! आहाहा! चौरासी के अवतार में चारों गतियों को दुर्गति कहा है।

पंचास्तिकाय में चार गति नहीं आयी पहली? पंचास्तिकाय की दूसरी गाथा में। पराधीन... पराधीन... पराधीन। वह स्वर्ग में भी क्लेश है। आहाहा! यह विषय की वासना पुण्य के फल में भोग का झुकाव होना, वह क्लेश है। भगवान शान्ति (स्वरूप है), उसमें यह अशान्ति है। यह पुण्य के फल में भोग है, वह अशान्ति है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। पर उसे कहते हैं कि जो कुछ पुण्य और पाप के भाव छोड़कर अनन्त केवलज्ञानादि अनन्त गुणसहित होता है, उसे पर कहते हैं और उसे परमात्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह जगत के बाहर के आकर्षण, बाहर की चीज़ें ऐसी है, यह मानता है। शरीर सुन्दर हो, लक्ष्मी कुछ हो, वहाँ ऐसा मानो आकर्षित हो जाता है अन्दर से। वहाँ खिंच जाता है। लोहचुम्ब जैसे लोहे को खींचती है न? उसी प्रकार यह बाहर की शरीर की सुन्दरता (देखकर आकर्षित होता है)। अरे! यह तो हड्डियाँ हैं, भाई! यह तो माँस और हड्डियाँ, चमड़ी, उसके ऊपर चमड़ी की मिट्टी है। ऊपर लेप है। आहाहा! उसके एक-एक अंगुल में तो छियानवें रोग भरे हैं। आहाहा!

घड़ीक में देखो न, कल एक भाई मर गये न? मानसंगभाई भट्टी, भट्टी न? एक क्षण में मर गये। वहाँ वे रामसंगभाई के भाई भट्टी। ऐसे करते बाहर गिरे और मर गये तुरन्त। थोड़ा पानी पिलाया प्रवीणभाई ने जरा। मरने की तैयारी थी न, इसलिए सब गर्म हो जाये न अन्दर? पड़े इकट्ठे पानी दिया प्रवीणभाई ने। वहाँ काम करता है न! पानी पिया बस। वहाँ से डालकर ले गये, वहाँ दवाखाने। देह छूट गयी। यह रतनलालजी आये।

यहाँ तो कहते हैं, धर्म, अर्थ और काम। धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् पैसा, काम अर्थात् भोग। यह अर्थ और काम, दो पाप है। और शुभभाव, जिसे यहाँ धर्म कहा, वह पुण्य है। दोनों हेय है। तीर्थंकरों ने दोनों को छोड़कर मोक्ष को प्राप्त किया। जिसे चक्रवर्ती का राज था, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। चक्रवर्ती। छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव। वह नहीं। लक्ष्मी नहीं, भोग नहीं और पुण्य परिणाम भी नहीं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि भाव पुण्य है। भगवान ने इन पुण्य और पाप को दोनों को छोड़कर... कहा है?

मिथ्यात्व रागादि रहित केवलज्ञानादि अनन्त गुणसहित परमात्मा वह पर है,... आहाहा! चौथी गाथा। **उस परमात्मा को लोक...** आहाहा! **अवलोकन...** केवलज्ञानादि स्वभाववाला प्रभु प्रगटरूप, हों! उसे अवलोकना, वह लोक। वह परलोक। पर अर्थात् केवलज्ञान-दर्शन आदि सहित जिसे चैतन्य की पर्याय पूर्ण केवलज्ञान प्रगट हुआ है। जलहल ज्योति केवल लक्ष्मी और अनन्त जिसे आनन्द प्रगट हुआ है, अनन्त जिसे बल-वीर्य प्रगट हुआ है, अनन्त जिसे दर्शन-शान्ति प्रगट हुई है। आहाहा! ऐसे भगवान

को पर कहते हैं। और उस पर को देखना, उसे परलोक कहते हैं। उस चीज़ को अवलोकना, उसका नाम परलोक है। आहाहा! रतनलालजी! यह तो दूसरे प्रकार की बात है। आहाहा!

अवलोकन वीतराग परमानन्द समरसीभाव का अनुभव... आहाहा! क्या कहते हैं? कि भगवान ने धर्म, अर्थ और काम तीन को छोड़कर और जिसने अन्तर मोक्ष अर्थात् अनन्त केवलज्ञानादि प्रगट किये, उन केवलज्ञानादि को पर कहते हैं और उस पर को वीतराग परमानन्द समरसीभाव के अनुभव से देखना, उसे परलोक कहते हैं। आहाहा! ताराचन्दजी! धर्म, अर्थ और काम। जिनराज ने पाप और पुण्य दोनों छोड़कर, वीतराग परमात्मा ने दोनों को छोड़कर, जिसने अनन्त केवलज्ञानादि पर अर्थात् उत्कृष्ट दशा प्रगट की, उस दशा को अवलोकना, वीतराग परमानन्द के रस के अनुभव से देखना, इसका नाम पर लोक कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें! इसलिए लोगों को कठिन पड़ती है न! खलबलाहट हो जाती है न चारों ओर। रतनलालजी! इन्हें तो खबर है न रतनलालजी को। उसमें पड़े हैं न ये। आहाहा! क्या हो? बापू! मार्ग ऐसा है, भाई!

यहाँ तो पुण्य को छोड़ना है, ऐसा कहते हैं। जैसे अर्थ, लक्ष्मी और भोग को प्रभु ने छोड़ा, वैसे पुण्य के भाव को छोड़ा है, तब मोक्ष को प्राप्त किया है। आहाहा! ऐसे परलोक अर्थात् परवस्तु। पर अर्थात् सर्वोत्कृष्टदशा। जिसकी दशा में केवलज्ञान जलहलज्योति तीन काल-तीन लोक को स्पर्श किये बिना जाने, ऐसी केवलज्ञानदशा आदि अनन्तसुखरूप वस्तु, उसका अवलोकन। अब कहते हैं पर-लोक। पर-अनन्त ज्ञान, दर्शनादि वस्तु वह पर, वह परमात्मा, उसका लोक, वह पर लोक अर्थात् उसका **अवलोकन वीतराग परमानन्द समरसीभाव का अनुभव...** आहाहा! वीतरागी परमानन्द समरसीभाव का अनुभव, **वह परलोक कहा जाता है,...** आहाहा! व्याख्या कभी सुनी न हो। परलोक। पर-लोक। इस लोक को छोड़ दिया भगवान ने। अर्थात् कि पुण्य और पाप के भाव को छोड़ दिया। इस लोक को छोड़ दिया और परलोक को प्रगट किया। समझ में आया? आहाहा! और वह पर अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा पर, वह परलोक, उसे वीतराग परमानन्द समरसीभाव से अनुभव करना अर्थात् देखना, उसका नाम परलोक है। व्याख्या भी दुनिया से अलग प्रकार की। आहाहा!

परमात्मा, वह पर और उसका लोक, वह पर लोक। लोक अर्थात् कि अवलोकन। अवलोकन अर्थात् कि वीतराग परमानन्द समरसीभाव का अनुभव, वह अवलोकन। आहाहा! समझ में आया? वीतराग परमानन्द समरसीभाव। आहाहा! उसका जो अनुभव, वह अवलोकन। वह लोक, वह परलोक। आहाहा! **अथवा परमात्मा को परम शिव कहते हैं,...** ऐसे परमात्मा को परमशिव कहते हैं। वे शिव शंकर कहते हैं, वह नहीं। आहाहा! **परमात्मा को परम शिव...** परम अर्थात् कि केवलज्ञानादि दशा, उसे निरुपद्रव दशा हुई, इससे उसे परमशिव कहा जाता है। दूसरे कोई शंकर-बंकर शिव है, वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परम शिव कहते हैं, उसका जो अवलोकन, वह शिवलोक है,... आहाहा! केवलज्ञानादि दशा को वीतराग परमानन्द समरसीभाव से अनुभव करना, इसका नाम शिवलोक कहा जाता है। पहले परलोक की व्याख्या की थी। फिर यह शिवलोक की व्याख्या। यह शिवलोक है। आहाहा! **अथवा परमात्मा का ही नाम परमब्रह्म है,...** परमब्रह्म। वह अनन्य केवलज्ञानादि दशा प्रगट, वह परमब्रह्म। उस परम आनन्द का अनुभव, वह परमब्रह्म। आहाहा! दूसरा कोई परमब्रह्म जगत का कर्ता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े, इसलिए लोगों को पुण्य की क्रिया और उसमें मजा पड़ता है-लगता है। अब यह तो अनन्त बार किया, भाई! सुन न! यह तो... आहाहा! पुण्यभाव स्वयं दुर्गति है। समझ में आया?

सिद्धान्त तो ऐसा कहता है कि परद्रव्य के लक्ष्य से जो भाव होते हैं, वह सब दुर्गति है, वह चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गई**' चाहे तो तीर्थंकर और तीर्थंकर की वाणी परद्रव्य है। सूक्ष्म पड़े, प्रभु! क्या हो? उसके लक्ष्य से तो राग होगा। परद्रव्य के आश्रय से तो राग होगा और राग, वह चैतन्य की परिणति नहीं। वह तो विभाव परिणति परगति है। आहाहा! परगति अर्थात् इस चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! ऐसी बातें सूक्ष्म पड़े न!

भाई! अनन्त काल में यह भटका है न! इसके दु:ख का दहाडा इसने व्यतीत किया है। आहाहा! नरक की वेदना। उष्ण वेदना का एक राई जितनी कण यहाँ लावे तो आसपास के दस कोस के, दस योजन के लोग जलकर मर जाये। वहाँ की राई जितनी

अग्नि लावे। वहाँ नरक में से। आहाहा! पहले, दूसरे नरक में, तीसरे (में) उष्णता, पश्चात् शीत है। उसकी पीड़ा तो बहुत है। आहाहा! ऐसी अग्नि की वहाँ स्थिति है। उसमें इसने सागरोपम व्यतीत किया। असंख्य अरब वर्ष निकाले उसमें। ऐसे अनन्त भव किये। जिसकी अग्नि में लाख मण का लोहे का गोला टीपा हुआ मजबूत दृढ़ हुआ हो, उसे अग्नि में डाले तो जैसे अग्नि के रसोई की आग में घी डालने से जैसे पिघल जाता है, उसी प्रकार लाख मण का लोहे का गोला, उसे अग्नि में रखो तो पिघल जाये, इतनी अग्नि वहाँ है। समझ में आया? अरे! यह भूल गया। यह समय बिताया इसने, यह भूल गया। और वर्तमान में बाहर की सुन्दरता और अनुकूलता की चीज़ में आकर्षित हो गया। अन्दर तीन लोक का नाथ है, वहाँ आकर्षित नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, उसका अवलोकन परमब्रह्म। आहाहा! परम आनन्द। भगवान आत्मा में जो शक्तिरूप से आनन्द था, वह व्यक्तरूप से पर्याय में परम आनन्द, अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, उस आत्मा को परमब्रह्म कहते हैं। दूसरा कोई ईश्वरकर्ता या जगत का परमब्रह्म है, ऐसा नहीं है। अरे! इसे तत्त्व की खबर नहीं होती। आहाहा! **उसका लोक वह ब्रह्मलोक है,...** उसे अवलोकना। आहाहा! परमवीतराग अनुभव भाव से ऐसे आत्मा को अवलोकना, अनुभव करना, इसका नाम परमब्रह्म कहा जाता है।

अथवा उसी का नाम परम विष्णु है,... आज तो ये सब नाम आये। यह परमविष्णु वह। विष्णु अर्थात् व्यापक। जिसकी ज्ञान और आनन्द की दशा लोकालोक को जानने में व्यापक हो गयी है। ज्ञानदशा बाहर जाती नहीं, परन्तु लोकालोक को जानने की जिसकी ज्ञानपर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन सर्व को जाने, उसरूप व्यापक हुई है, इसलिए उस आत्मा को परमविष्णु कहते हैं। जगत का कर्ता कोई विष्णु है, वह नहीं। आहाहा! कहो, देवीलालजी! आहाहा! परमात्मप्रकाश है न! आहाहा! भाई! तेरा स्वरूप ही इतना है। प्रभु! तुझे न बैठे तो तू भटकनेवाला है तब तक। आहाहा! तूने नरक और निगोद के अनन्त भव किये, भाई! आहाहा! नरक का शीत का एक कण यहाँ लावे (तो) दस योजन के लोग यहाँ उसकी सर्दी से मर जायें। ऐसी शीतवेदना ३३-३३ सागर तक भोगी है। सातवाँ नरक। अनन्त काल हुआ, अनन्त काल हुआ, भाई! इसे मार्ग हाथ आया नहीं।

यहाँ परमात्मा स्वयं परमविष्णु है, ऐसा कहते हैं। ऐसा भाव जिसे प्रगट हुआ। धर्म, अर्थ और काम को छोड़कर जिसने केवलज्ञानादि मोक्ष की दशा प्राप्त की, उस ज्ञान में तीन काल, तीन लोक ज्ञात होते हैं, इसलिए उसे परम विष्णु—व्यापक कहा जाता है। है ? **उसका लोक अर्थात् स्थान वह विष्णुलोक है,...** विष्णुलोक यह। अपना परमज्ञान-दर्शन आदि जो स्वभाव, वह विष्णुलोक है। आहाहा! **ये सब मोक्ष के नाम हैं,...** यह सब मोक्ष के नाम हैं। यह तो अपने कल पूरा हो गया। नहीं ? सहस्र—एक हजार आठ नाम हैं। इन्द्रों ने भगवान के एक हजार आठ नाम से गुणवान किये हैं। एक हजार आठ नाम से स्तुति की है। प्रभु! आप करुणासागर, करुणासिन्धु, करुणा कृपा, संयममय, संवरमय, धर्ममय... आहाहा! ऐसे-ऐसे एक हजार आठ नाम से भगवान तीर्थंकर के समवसरण में इन्द्रों ने, अर्धलोक के स्वामी इन्द्रों ने स्तुति की है। एक हजार आठ नाम।

मुमुक्षु : थोड़े ही नाम लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़े ही नाम लिये। अनन्त नाम हैं। कल पूरा हुआ। भक्ति में। बनारसीदास। बनारसीदास ने एक हजार आठ नाम वर्णन कर प्रभु की स्तुति की है, इसी तरह आदिपुराण में जिनसेनस्वामी दिगम्बर मुनि ने एक हजार आठ नाम से स्तुति की है।

ये सब मोक्ष के नाम हैं, यानी जितने परमात्मा के नाम हैं,... आहाहा! यह जितने मोक्ष के नाम, वे ही सब परमात्मा के नाम हैं। ब्रह्मरूप, विष्णुरूप... आहाहा! परमात्मरूप। वहाँ तो संयमरूप, यह भी कहा है, हों! संवररूप भी कहा है। अपेक्षा है न ? अपेक्षा है। आहाहा! निर्जरारूप कल आया था। परम निर्जरा, परम कर्म का नाश होकर परमात्मदशा प्रगट की। यह मोक्ष, वह सर्वोत्कृष्ट दशा है। यही दशा आत्मा को इच्छनेयोग्य है और भावना करनेयोग्य है। बाकी पुण्य, अर्थ और काम को दृष्टि में से छोड़नेयोग्य है। आहाहा!

जितने परमात्मा के नाम हैं, उनके आगे लोक लगाने से मोक्ष के नाम हो जाते हैं,... लो! उसे लोक लगाना, ऐसा। परमविष्णु, परमब्रह्म, परम आनन्द, ऐसा। परमसंयमी, परमधर्मी, परमशान्ति, परम वीतरागी, परम आनन्दी। ऐसे जितने शब्द लगाना, उसके साथ लोक लगाना। परम आनन्द लोक, परम शान्ति लोक, परमस्वच्छ लोक, परम प्रभु

लोक। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! **दूसरा कोई कल्पना किया हुआ शिवलोक, ब्रह्मलोक या विष्णुलोक नहीं है।**

यहाँ पर साराँश यह हुआ कि परलोक के नाम से कहा गया परमात्मा ही उपादेय है... यह परमात्मा ही आदर करनेयोग्य है। बाकी पुण्य, लक्ष्मी और भोग आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! लक्ष्मी तो पाप है, ऐसा कहते हैं। रतनलालजी! पुण्य को पाप कहा है। 'पाप पाप को सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' ऐसा योगसार में (७१ गाथा में) आता है। आहाहा! यह सब करोड़ोंपति हैं, देखो न! यह, यह वे नये आये करोड़पति। धूल के पति। आहाहा!

सहजात्मस्वरूप। सहज आत्मा अर्थात् त्रिकाली स्वभावभाव। आहाहा! पर्याय है, वह तो पलटती है। परन्तु यह तो सहज आत्मस्वभाव, त्रिकाली सहजस्वभाव अकृत्रिम, अन-कृत और वस्तुस्थिति सत्। आहाहा! ऐसा जो सहजात्मस्वरूप परमात्मा स्वयं, हों! वर्तमान। वह आदरनेयोग्य है। समझ में आया? सहज आत्मा। सहज आत्मा अर्थात्? स्वाभाविक वस्तु है वह अनादि। उसे किसी ने किया नहीं तथा वह पलटती नहीं। वह तो सहज आत्म ध्रुवस्वरूप अनादि परमतत्त्व प्रभु यह आत्मा, वह सहजात्मस्वरूप, वह आदरणीय है। आहाहा! धर्मी जीव को वह आत्मा आदरणीय है। उसे पुण्य और पाप वह आदरयोग्य है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। क्या हो? चीज़ तो यह है। अनन्त सन्तों ने पुकार किया है।

शास्त्र में तो पुण्य को जहर कहा है। मोक्ष अधिकार में शुभभाव को जहर कहा है। लोगों को कठिन पड़े, क्या हो? आत्मा अमृतस्वरूप, सहजात्मस्वरूप, अनाकुल वीतराग आनन्दस्वरूप, उससे राग, वह विपरीतरूप है, इसलिए वह जहर है, ऐसा कहते हैं। रतनलालजी! पुण्यभाव जहर है। उसके फल की-धूल की बातें तो कहाँ करना? आहाहा! समयसार मोक्ष अधिकार। इन सबको जहर कहा है। विषकुम्भ कहा है। विष अर्थात् जहर का घड़ा। जैसे पानी से घड़ा भरा होता है न? उसी प्रकार शुभभाव जहर से भरा हुआ घड़ा है, कहते हैं। आहाहा! सन्तों, दिगम्बर सन्तों को कहाँ जगत की पड़ी है? समाज सुगठित रहेगा या नहीं? समाज को ठीक पड़ेगा या नहीं? वे तो नागा हैं। नागा बादशाह से आघा। रतनलालजी! दिगम्बर मुनि नग्न हैं।

मुमुक्षु : लोगों को बहुत कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो तुमको... इसके लिये आये हैं। मार्ग ऐसा है, प्रभु! क्या हो भाई? आहाहा!

वहाँ मोक्ष अधिकार में तो आठ नाम लिये हैं। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, भगवान की स्तुति, प्रतिमा का वन्दन, प्रतिमा की भक्ति, वे सब भाव शुभभाव हैं। आचार्य महाराज पुकार करते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य। उसे भगवान ने जहर का घड़ा कहा है। आहाहा! समयसार। भगवान अमृत का कुण्ड है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर परमात्मा—यह आत्मा है। तब उससे शुभभाव वह विरुद्ध है, उस आनन्द से विरुद्ध है, इसलिए जहर है, कहते हैं। यह सन्तों के कथन हैं। जगत को बैठे, न बैठे, यह कहीं मुनियों को पड़ी नहीं है। आहाहा! मार्ग यह है। समाज सुगठित रहेगी या नहीं? यह उन्हें पड़ी नहीं है। मार्ग यह है, बापू! भाई! चौरासी के अवतार में भटकता प्रभु दुःख से पिल गया है तू, भाई! यह शुभभाव दुःख है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... सहज स्वभाव स्वाभाविकभाव, ऐसा जो आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञानभाव, अतीन्द्रिय अमृतस्वभावभाव, उससे शुभभाव (विपरीत होने से जहर है)। अशुभ तो जहर है। वह तो तीव्र जहर है। आहाहा! शुभभाव को कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने जगत के लिये प्रसिद्ध किया है, भाई! यह जहर का प्याला पीने योग्य नहीं। अमृत के आनन्द का रसकन्द है, वह पीने योग्य है, भाई! आहाहा! क्या हो? भाई! मार्ग तो यह है। उसमें दूसरा अवकाश लाना कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो **परलोक के नाम से कहा गया परमात्मा ही उपादेय है,...** है अन्तिम? यह वह स्वयं भगवान परमात्मास्वरूप जो शुद्ध चैतन्यघन, वही आदरणीय है। दृष्टि में वह लेने योग्य है। बाकी दृष्टि में से राग और पुण्यादि छोड़नेयोग्य है। आहाहा! यह भाषा तो सादी है। समझ में आये ऐसा है। सिर घूम गया होता है न बाहर का, उसे कठिन लगता है। आहाहा! वह **ध्यान करनेयोग्य है,...** है? भगवान सहजात्मस्वरूप। परमात्मा को पर्याय में केवलज्ञान प्रगट है। यहाँ केवलज्ञान, केवल आनन्द आदि शक्ति स्वभावरूप परमात्मा स्वयं है, उसका ध्यान करनेयोग्य है। पुण्य परिणाम और अर्थ और

लक्ष्मी का ध्यान करनेयोग्य नहीं। आहाहा! अर्थात्? सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु स्वयं। आहाहा! सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु, उसे ध्येय में लेकर ध्यान करनेयोग्य है। उसे ध्येय बनाकर ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! अनादि का अभ्यास नहीं, उल्टे रास्ते चढ़ गया है न!

ध्यान करनेयोग्य है, अन्य कोई नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हैं, वे पर हैं, उनका भी ध्यान करनेयोग्य नहीं। उनका ध्यान करनेयोग्य कहते हैं तो भी उसका अर्थ अपना ध्यान है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! क्या हो? अरेरे! जन्म-मरण के झूले में चढ़ा हुआ प्राणी, आहाहा! भटकता है। एक भव, दूसरा भव और घड़ीक में देखो न... आहाहा! अभी हार्टफेल होते हैं तो ऐसे क्षण में... लो! परसों वे गुजर गये तो कल और वह गुजर गया। मेघाणी। क्षण में होता है। देह की स्थिति जहाँ पूरी हो, वहाँ कोई भी निमित्त हो। आहाहा! हार्ट, पसीना एकदम निकले और खून है वह जम जाये ऐसे। जम जाये तो श्वास गति नहीं कर सकता। बस, हो गया। इसका नाम हार्टफेल। एकदम पसीना आवे। पसीना आवे तो अन्दर खून जो है न खून? खून, दल-दल ऐसे जो घूमता है, वह दल हो जाये। घन, घन हो जाये तो श्वास बन्द हो जाये। आहाहा! तो अब उसे छोड़कर यह आत्मा घन, आनन्दघन है, उसका ध्यान कर न, अब कहते हैं। आहाहा! कहो, ताराचन्दजी!

मुमुक्षु : यही करनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही करनेयोग्य है। पहले श्रद्धा में तो निर्णय करे कि करनेयोग्य तो यह है। होवे, पुण्य होता है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक बीच में निश्चय अनुभव होने पर भी शुभभाव आता है, होता है, परन्तु वह हेयरूप से होता है। आदरणीयरूप से होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात।

सर्वज्ञ वीतराग जिनवरदेव... ऊपर आया नहीं था? वीतराग परमानन्द समरसीभाव। राग के विकल्प से रहित वीतरागी परमानन्द समरसी-समता का भाव। उससे आत्मा अनुभव करनेयोग्य है। आहाहा! परन्तु ऐसी बात का कोई दूसरा उपाय-साधन होगा या नहीं? ऐसा कोई कहे। साधन ही यह है। यही साधन है, भाई! क्या हो? दुनिया को न जँचे, उससे क्या हो? भाई! कोई मार्ग दूसरा होगा? आहाहा! भले थोड़े व्यक्ति बैठें। परन्तु मार्ग तो यह है।

गाथा – ५

अथ तमेव मोक्षं सुखदायकं दृष्टान्तद्वारेण दृढयति

१२८) उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं इच्छहिँ बंधणहिँ बद्धा पसुय वि सोइ।।५।।

उत्तमं सुखं न ददाति यदि उत्तमो मोक्षो न भवति।
ततः किं इच्छन्ति बन्धनै बद्धा पशवोऽपि तमेव।।५।।

उत्तमु इत्यादि। उत्तमु उत्तमं सुक्खु सुखं ण देइ जइ न ददाति यदि चेत् उत्तमु मुक्खु ण होइ उत्तमो मोक्षो न भवति तो तस्मात्कारणात् किं किमर्थं इच्छहिँ इच्छन्ति बंधणहिँ बन्धनैः बद्धा निबद्धाः। पसुय वि पशवोऽपि। किमिच्छन्ति। सोइ तमेव मोक्षमिति। अयमत्र भावार्थः। येन कारणेन सुखकारणत्वाद्धेतोः बन्धनबद्धाः पशवोऽपि मोक्षमिच्छन्ति तेन कारणेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणाविनाभूतस्योपादेयरूपस्यानन्तसुखस्य कारणत्वादिति ज्ञानिनो विशेषेण मोक्षमिच्छन्ति।।५।।

आगे मोक्ष अनंत सुख देनेवाला है, इसको दृष्टांत के द्वारा दृढ़ करते हैं –

यदि उत्तम सुख नहिं हो शिव में तो वह उत्तम कैसे हो?
बन्धन में जो पशु हैं वे भी क्यों उससे मुक्ति चाहें।।५।।

अन्वयार्थ :– [यदि] जो [मोक्षः] मोक्ष [उत्तमं सुखं] उत्तम सुख को [न ददाति] न देवे तो [उत्तमः] उत्तम [न भवति] नहीं होवे और जो मोक्ष उत्तम ही न होवे [ततः] तो [बंधनैः बद्धाः] बंधनों से बंधे [पशवोऽपि] पशु भी तमेव उस मोक्ष की ही [किं इच्छंति] क्यों इच्छा करें?

भावार्थ :– बँधने के समान कोई दुःख नहीं है, और छूटने के समान कोई सुख नहीं है, बंधन से बँधे जानवर भी छूटना चाहते हैं, और जब वे छूटते हैं, तब सुखी होते हैं। इस सामान्य बंधन के अभाव से ही पशु सुखी होते हैं, तो कर्म–बंधन के अभाव से ज्ञानीजन परमसुखी होवें, इसमें अचम्भा क्या है। इसलिये केवलज्ञानादि अनंत गुण से तन्मयी अनन्त सुख का कारण मोक्ष ही आदरने योग्य है, इस कारण ज्ञानी पुरुष विशेषता से मोक्ष को ही इच्छते हैं।।५।।

गाथा-५ पर प्रवचन

आगे मोक्ष अनन्त सुख देनेवाला है, इसको दृष्टान्त के द्वारा दृढ़ करते हैं— देखो! अब दृष्टान्त देते हैं। आहाहा! पाँचवीं गाथा।

१२८) उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं इच्छहिँ बंधणहिँ बद्धा पसुय वि सोइ॥५॥

आहाहा! आचार्य दृष्टान्त देते हैं। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि हैं। सन्त वनवासी। दिगम्बर सन्त तो वन में ही रहते थे। समझ में आया? श्वेताम्बर पन्थ तो बाद में निकला हुआ है इसमें से। वह कहीं जैनदर्शन नहीं। सूक्ष्म बात है। दिगम्बर मुनि तो जंगल में बसते थे। आनन्द में... आनन्द में... आनन्द में... यह योगीन्द्रदेव जंगल में बसते थे। उसमें यह श्लोक बना दिये हैं। उन्होंने मोक्ष का दृष्टान्त देते हुए इतनी सादी बात कर डाली है, देखो! आहाहा!

अन्वयार्थः—जो मोक्ष उत्तम सुख को न देवे तो... यदि मोक्ष अर्थात् आत्मा की परम आनन्ददशा, वह **सुख को न देवे तो उत्तम नहीं होवे...** आहाहा! **और जो मोक्ष उत्तम ही न होवे तो बन्धनों से बँधे पशु भी उस मोक्ष की ही क्यों इच्छा करें?** क्या कहते हैं? आहाहा! पशु को भी बन्धन में डाला होता है, खूँटे से बाँधा है तो वह छूटने की इच्छा करता है। खूँटा बाँधा होता है न? पशु को खूँटे से रस्सी से बाँधा। उसे शाम को ले जाये न पानी पीने को बाहर? अब तो नल हुए इसलिए। नहीं तो गाँव में छोड़कर बाहर ले जाये। उस समय बन्धन से छूटे, तब प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। कूदता-कूदता है। पशु भी बन्धन से छूटे और प्रसन्न होता है, और तुझे बन्धन से छूटने में मोक्ष का आनन्द नहीं दिखता! पशु भी बन्धन से छूटे तो प्रसन्न होता है, अन्दर कूदता है। तेईस घण्टे का बाँधा हो न! शाम को पानी पीने के लिये बाहर ले जाये गाँव में तो। कूदते-कूदते जाता है। तेईस घण्टे बाँध रखा हो वहाँ खूँटे से। ... खूँटे से बाधा हुआ पशु छूटने की भावना करे और बन्धन से छूटने की तू भावना न कर, तू पशु में से गया-बीता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसे बन्धन में प्रसन्नता होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बन्धन से छूटना चाहता है और तू बन्धन में प्रसन्न होता है। यह क्या दशा है तेरी? यह ऐसा कहते हैं। पुण्यभाव, वह बन्धन का कारण है। वह तो पशु भी बन्धन से छूटना चाहे और तू बन्धन से छूटना न चाहे, बन्धनभाव में प्रसन्न होता है। भाई! तू पशु में से गया-बीता है। दूसरा क्या कहे? कहीं लकड़ी मारे? भाई सेठ! आहाहा! प्रभु! तेरी दया करते हैं, हों! आहाहा! पशु बन्धन में पड़े, छूटने पर प्रसन्न हो, कूदे। तुझे बन्धन के प्रेम में पड़ा, तुझे बन्धन से छूटने में प्रसन्नता न हो... आहाहा! तू पशु में से गया-बीता है, भाई! कहो, पोपटभाई! आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ तो अब शहर में तो नल होते हैं, वहाँ पानी पिलाते हैं। गाँव में तो शाम को सब पशुओं को पानी पिलाने के लिये बाहर निकालते हैं। कुँआ होता है न बड़ा? तो ऐसे कूदते-कूदते उत्साह से जाते हैं। क्योंकि वापस अभी बाँधेंगे। आहाहा! ... पशु तेईस घण्टे के बँधे हुए एक घण्टे घूमने का बाहर का छूटने का मिले, उसमें वे प्रसन्न हों, तू अनादि से पुण्य और पाप के बन्धन में पड़ा, उससे छूटने की बातें करके प्रसन्न न हो और बन्धन में प्रसन्न होता है, भाई! तू पशु से गया-बीता है। बराबर है, भाई! दुनिया प्रसन्न हो, न हो, वह यहाँ बात नहीं। आहाहा!

दृष्टान्त कैसा दिया है, देखो न! यह बकरा होता है, लो न! ढोर हो भैंसे, पाड़ा, बाँधा हो बेचारों को। वहीं के वहीं बैठें। खिसक न सकें। वह गमाण हो गमाण में वहाँ मुख रखकर बैठे। शाम को पानी पिलाने के लिये छोड़ते हैं न! बन्धन छोड़कर कूद-कूदकर बाहर आवे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दृष्टान्त ऐसा दिया है यहाँ। दूसरा दृष्टान्त अन्यत्र ऐसा दिया है कि ढ़ोर है, वह घर में आवे, तब दरवाजा बन्द हो तो सिर मारे। खोल-खोल घर में आना है। वहाँ वह दृष्टान्त दिया है। यह पशु होते हैं न, बाहर ले गये हों। सवेरे से बाहर घूमते हों न? शाम को घर आवे और कब आवे खबर न हो तो घर के दरवाजे बन्द हों, ड्योडी बन्द हो तो सिर मारे। खोल-खोल घर में जाना है। इसी प्रकार जिसे बन्धन में से निकलकर घर में आना है, (वह) सिर मारे तोड़े अन्दर, राग को तोड़कर अन्दर में जाये। ... यह दृष्टान्त दिया है। आचार्यों ने अनेक प्रकार के दृष्टान्त देकर (बहुत बातें कही हैं)। आहाहा!

भावार्थः—बन्धन के समान कोई दुःख नहीं है, और छूटने के समान कोई

सुख नहीं है,... बहुत संक्षिप्त बात की। **बन्धन के समान कोई दु:ख नहीं है, और छूटने के समान कोई सुख नहीं है,...** इसका अर्थ यह हुआ कि पुण्यबन्धन के अतिरिक्त कोई दु:ख नहीं है और उससे छूटने के अतिरिक्त कोई सुख नहीं है। आहाहा! ऐसा हुआ या नहीं? आहाहा! भाई! तुझे कठिन पड़े परन्तु मार्ग तो नाथ! तेरा ऐसा है। दूसरे प्रकार से करेगा तो संसार में भटकना होगा, भाई! आँख बन्द करके चौरासी के अवतार में चला जायेगा। आहाहा! जैसे पवन की आँधी आये और तिनका उड़कर कहाँ जायेगा? अरे! यदि तुझे स्वभाव की दृष्टि और स्वभाव का माहात्म्य नहीं आया और पुण्य आदि के भाव का माहात्म्य आया, वह उड़कर प्रभु! चौरासी के अवतार में तिनका तेरा कहाँ पड़ेगा? कहाँ जाकर पड़ेगा तू? आहाहा!

बन्धन के समान कोई दु:ख नहीं है, और छूटने के समान कोई सुख नहीं है, बन्धन से बँधे जानवर भी छूटना चाहते हैं,... आहाहा! **बन्धन से बँधे जानवर भी छूटना चाहते हैं, और जब वे छूटते हैं, तब सुखी होते हैं।** प्रसन्न होते हैं। **इस सामान्य बन्धन के अभाव से ही पशु सुखी होते हैं,...** सामान्य बन्धन का भाव, उससे छूटे तो प्रसन्न हो, तो कोई **तो कर्म-बन्धन के अभाव से ज्ञानीजन परमसुखी होवें, इसमें अचम्भा क्या है।** आहाहा! राग के बन्धन से छूटकर अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि करे तो उसके जैसा सुख है कहाँ अन्यत्र? समझ में आया? विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज शुक्ल १४, बुधवार
दिनांक-०३-१०-१९७६, गाथा-५, ६, प्रवचन-९७

परमात्मप्रकाश। पाँच गाथा हो गयी न? पीछे के थोड़े शब्द बाकी रहे। नहीं? पाँचवीं गाथा। दूसरा अधिकार। दो-तीन लाईन रही है।

बन्धन से बँधे जानवर भी छूटना चाहते हैं,... पशु को खूँटे से बाँधते हैं, उसमें से वह छूटना चाहता है। जब छूटता है। जब छूटता है, तब प्रसन्न होता है। तो पशु भी बन्धन से छूटने में प्रसन्न होता है, **इस सामान्य बन्धन के अभाव से ही पशु सुखी होते हैं, तो कर्म-बन्धन के अभाव से ज्ञानीजन परमसुखी होवें, इसमें अचम्भा क्या है।** आहाहा! रागादि बन्धन से छूटने से आत्मा को आनन्द होता है। उस आनन्द की अभिलाषा क्यों न हो? बन्धन से छूटने की बात है। आहाहा! चाहे तो वह व्यवहाररत्नत्रय रागादि निमित्त रूप से साधन कहेंगे, परन्तु वह भी बन्धन है। उस बन्धन से छूटना। पशु भी बन्धन से छूटने से प्रसन्न होता है तो धर्मात्मा बन्धन से छूटकर मोक्ष की अभिलाषा क्यों न करे? समझ में आया? आहाहा! यह मोक्ष की व्याख्या चलती है।

इस अधिकार में तीन अधिकार हैं। मोक्ष, मोक्ष का फल, मोक्ष का कारण। तीन में मोक्ष अधिकार चलता है। पश्चात् मोक्ष का फल कहेंगे, पश्चात् मोक्ष का अधिकार कारण, मोक्ष का कारण, ये तीन अधिकार इस अधिकार में है। यह मोक्ष अधिकार चलता है। आहाहा! कहते हैं, कर्मबन्धन से राग का बन्धन। कर्मबन्धन कहो या राग का बन्धन कहो। आहाहा! उस बन्धन से छूटना, ऐसी मोक्ष की अभिलाषा धर्मी को क्यों नहीं होगी? पशु बन्धन से छूटकर प्रसन्न हो, तो धर्मात्मा राग के बन्धन से छूटकर सुखी होता है, यह तो बराबर है।

परमसुखी होवें, इसमें अचम्भा क्या है। इसमें विशेषता क्या है? परम आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय परम आनन्दस्वरूप आत्मा तो है। और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति अर्थात् चारित्र अर्थात् शान्ति, उस स्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! उसका अनुभव करके बन्धन से छूटने का कौन न इच्छे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो मोक्ष की बात है। संसार के बन्धन से छूटना। मोक्ष शब्द है सही न?

इसलिए वहाँ छूटने की अपेक्षा ली है। मोक्ष अर्थात् बन्धन से छूटना। ऐसा। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को साधनरूप से कहेंगे आगे, परन्तु वह तो निमित्तरूप का ज्ञान कराना है। वास्तव में तो वह व्यवहाररत्नत्रय बन्धन है। आहाहा! उससे छूटने की अभिलाषा धर्मात्मा को क्यों नहीं होगी? ऐसा कहते हैं।

इसलिए केवलज्ञानादि अनन्त गुण से तन्मय... आहाहा! मोक्ष अर्थात् पर्याय में अनन्त केवलज्ञान। पर्याय में, हों! शक्ति में तो त्रिकाल है। वर्तमान दशा में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता, अनन्त शान्ति, वह अनन्त गुण से तन्मय आत्मा है। आहाहा! वह अनन्त गुण से तन्मय अनन्त सुख का कारण **मोक्ष ही आदरनेयोग्य है,...** आहाहा! अनन्त गुण से तन्मय ऐसा जो अनन्त सुख का कारण मोक्ष, वह जीव को आदरनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आदरनेयोग्य तो ध्रुव कहलाये। मोक्ष तो पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पर्याय प्रगट की है, वह आदरनेयोग्य है, ऐसा कहना है। साध्य जो केवल (ज्ञान) है न? ध्येय है, वह द्रव्य है। वस्तु जो है अनन्त गुण का पिण्ड, वह तो ध्येय है और ध्येय का साधन करके साध्य तो सिद्धपद है। समझ में आया? ध्येय तो वस्तु है। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु ही उपादेय-आदरणीय है। परन्तु उसे आदरणीय करके जो साधकभाव प्रगट हुआ—निश्चयमोक्षमार्ग, परन्तु उसका साध्य तो सिद्ध है। प्रगट करने की दशा तो सिद्ध है। इससे उस सिद्धदशा को आदरणीय यहाँ कहा गया है। समझ में आया? ऐसा मार्ग गजब यह तो! आहाहा! लोग तो ऐसे बाहर से यह करते हैं न, यह व्रत और नियम और अपवास और यह और... इन सबसे निश्चय होगा। ऐसा अनादि का शल्य है। मिथ्याशल्य है। रतनलालजी! मार्ग ऐसा है, भाई!

ऐसा जो मोक्ष अर्थात्? केवलज्ञान। प्रगट अवस्था की बात है। जिसकी पर्याय—अवस्था में जलहलज्योति तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। परन्तु उसकी पर्याय में तीन काल-तीन लोक जानने की पर्याय अपने से अपने में प्रगट हुई है। ऐसा जो केवलज्ञान, ऐसा केवल आनन्द, पर्याय में, हों! पूर्ण आनन्द। पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण दर्शन, पूर्ण वीर्य-पुरुषार्थ—ऐसा जो अनन्त गुण से तन्मय...

आहाहा! सुख। आत्मा का सुख ऐसे अनन्त गुण से तन्मय है। आहाहा! ऐकमेक है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात कठिन पड़े लोगों को। यह व्यवहार करो और यह करो और यह करो। व्यवहार से नहीं हो तो एकान्त है, ऐसा मानते हैं। व्यवहार से होता है, यह तो निमित्त के कथन हैं। वस्तु तो अन्तर स्वरूप भगवान पूर्ण शक्ति अर्थात् सामर्थ्य, ज्ञान-दर्शन-आनन्द के सामर्थ्य से भरपूर पदार्थ है। आहाहा! उसका ही दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह मोक्ष का कारण और उसका साध्य सिद्ध। यह सिद्ध की यह व्याख्या है। समझ में आया?

इसलिए केवलज्ञानादि अनन्त गुण से तन्मय... अर्थात् अविनाभावी। **अनन्त सुख का कारण मोक्ष ही आदरनेयोग्य है,...** आहाहा! अर्थात् कि प्रगट करनेयोग्य है। आहाहा! **इस कारण ज्ञानी पुरुष...** धर्मात्मा **विशेषता से मोक्ष को ही इच्छते हैं।** विशेषता अर्थात्? विशेष करके मोक्ष की ही अभिलाषा उसे है। समझ में आया? उसे व्यवहाररत्नत्रय और राग की भी अभिलाषा नहीं। बात ऐसी है। इसलिए धर्मात्मा-ज्ञानी अर्थात् जिसे धर्म प्रगट करना है, और मोक्ष करना है वह, खास मोक्ष को ही इच्छता है। विशेषता अर्थात् खास। विशेषता अर्थात् कोई सामान्य अर्थात् दूसरे को इच्छे और विशेष अर्थात् मोक्ष को इच्छे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे पशु बन्धन से छूटने का इच्छता है, यह सामान्य रीति से जगत की शैली है। तो यह भगवान आत्मा बन्धन से छूटने का ही अभिलाषी है। अर्थात् कि मोक्ष का ही आदर करनेवाला है, ऐसा। बन्धन से छूटना अर्थात् मोक्ष का प्रगट होना। आहाहा! अब यह बात ही अभी पकड़ना कठिन पड़े। और उसकी हाँ करना कठिन पड़े कि मार्ग यह है। आहाहा! अरे! अनन्त काल से, भाई! अनन्त सुख के सागर से विरुद्ध पुण्य और पाप के परिणाम में पचा है यह। यह दुःखी है। उस अनाकुल आनन्द से विपरीत भाव ऐसा पुण्य और पाप का भाव, वह दुःखरूप है। भविष्य में दुःख का देनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? और परमानन्द प्रभु, जिसकी शक्ति अर्थात् सामर्थ्य, जिसकी शक्ति अर्थात् सामर्थ्य अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द जिसकी शक्ति है। उसका स्वभाव। भगवान आत्मा का सामर्थ्य। सामर्थ्य अर्थात् शक्ति अर्थात् कि उसका सत्त्व जो है, वह अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दवाला सामर्थ्यवाला तत्त्व वह है। वस्तु, हों! आहाहा! ऐसे

शक्ति की सामर्थ्यता को स्वरूप-सन्मुख होकर जो प्रगट सिद्धपद करे, ऐसे जीव को तो मोक्ष ही आदरणीय है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह पाँचवीं गाथा हुई।

पशु का दृष्टान्त दिया। आहाहा! बकरा, पशु, पाडा, छोटे बच्चे, बछड़े, भैंस, वह भी तेईस घण्टे घर में खूँटे से बँधे हुए होते हैं। यह तो अब (नल हो गये)। गाँव में तो उन्हें शाम को छोड़े। गाँव में तेईस घण्टे के बँधे हुए हों, उन्हें पानी पिलाने के लिये बाहर ले जाये। कुँए में हौज में बाहर ले जाये। छूटे तब ऐसे कूद-कूदकर जाते हैं। प्रसन्न होते हैं। आहाहा! रतनलालजी! अरे! पशु बन्धन से छूटे और प्रसन्न हो, प्रभु! तू बन्धन से छूटकर मोक्ष की अभिलाषा न करे। अरे! समझ में आया? आहाहा!

आचार्य योगीन्द्र दिगम्बर सन्तों ने जगत को करुणा करके... आहाहा! कैसे वाक्य हैं, देखो न! दिगम्बर सन्त मोक्ष के मार्ग में आनन्द में झूलनेवाले, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले हैं ये। उसमें उसका निषेध करके, प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, हम तो ज्ञायक हैं। आहाहा! छठवीं-सातवीं भूमिका जिन्हें प्रगट हुई है। अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दशा का (प्रगट हुआ है)। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि यह प्रमत्त-अप्रमत्तदशा भी हम नहीं, हों! हम तो ज्ञायक आनन्द का कन्द प्रभु सुखकन्द (हैं)। वह नहीं आता? वहाँ आता है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। 'अपने घर में कबहु न आया। निजघर में कबहु न आया, परघर भ्रमत अनेक नाम धराया।' मैं पुण्यवन्त हूँ और पापी हूँ और मनुष्य हूँ और देव हूँ, अरे! प्रभु! यह तू कहाँ है, भाई! आहाहा! तेरा प्रभु तो आनन्द का सागर है न, उसके घर में तू कभी नहीं आया प्रभु तू। आहाहा!

यह कल कहा था न? ढोर पूरे दिन बाहर घूमते होते हैं। बाहर ले जाते हैं न? वे शाम को आवें तो उस घर का दरवाजा बन्द हो। उसे खबर न हो आदमी को कि अब अभी आयेंगी यह गायें। इसलिए बन्द रखा हो यों ही। वे गायें आवें और सिर मारे। दरवाजा बन्द होता है न! घर में जाना है न? सिर मारकर दरवाजा खोलो-खोलो ऐसा कहे। इसी प्रकार कहते हैं कि जिसे घर में जाना है न... आहाहा! चौरासी लाख में भटकता प्राणी परिभ्रमण में दुःख हुआ, थका हुआ, उसे अब निजघर में जाना है। वह

जोर से पुरुषार्थ से अन्दर में प्रवेश करना चाहता है, ऐसा कहते हैं। ताराचन्दजी! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा! प्रभु! क्या हो? मार्ग तो यह है, भाई! दूसरे प्रकार से मानकर, मनवावे, प्रभु! तुझे फल नहीं आयेगा। आहाहा!

यह तो प्रभु! तेरी दया की बात है। तेरी जीवति ज्योति है, उसे स्वीकार तो जीवित कहलाये। जीवति ज्योति का स्वीकार नहीं और राग का और अल्प ज्ञान का स्वीकार। आहाहा! वह पूर्णानन्द का जीवन टिकते तत्त्व का अनादर करके हिंसा करता है। बाबूभाई! आहाहा! प्रभु! ऐसा है। दुनिया प्रसन्न हो बाहर से–व्यवहार से, भाई! उसमें इसका दुःख नहीं टलेगा। आहाहा!

ज्ञानी पुरुष विशेषता से मोक्ष को ही इच्छते हैं। आहाहा! पाठ है, हों! '**ज्ञानिनो विशेषेण मोक्षमिच्छन्ति**' संस्कृत में है। '**ज्ञानिनो विशेषे**' विशेष अर्थात् खास। विशेष अर्थात् सामान्य रीति से दूसरा और विशेष रीति से यह, ऐसा नहीं। आहाहा! धर्मात्मा तो मोक्ष को ही इच्छता है। आहाहा! वह पुण्य को और पुण्य के फल को नहीं इच्छता। समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा (पूरी हुई)।

गाथा - ६

अथ यदि तस्य मोक्षस्याधिकगुणगणो न भवति तर्हि लोको निजमस्तकस्योपरि तं किमर्थं धरतीति निरूपयति –

१२९) अणु जइ जगहँ वि अहिययरु गुण-गणु तासु ण होइ।
तो तइलोउ वि किं धरइ णिय-सिर-उप्परि सोइ।।६।।

अन्यद् यदि जगतोऽपि अधिकतरः गुणगणः तस्य न भवति।
ततः त्रिलोकऽपि किं धरति निजशिर उपरि तमेव।।६।।

अणु इत्यादि। अणु पुनः जइ यदि चेत् जगहँ वि जगतोऽपि सकाशात् अहिययरु अतिशयेनाधिकः अधिकतरः। कोऽसौ। गुण-गुणु गुणगणः तासु तस्य मोक्षस्य ण होइ न भवति। तो ततः कारणात् तइलोउ वि त्रिलोकोऽपि कर्ता। किं धरइ किमर्थं धरति। कस्मिन्। णिय-सिर-उप्परि निजशिरसि उपरि। किं धरइ किं धरति। सोइ तमेव मोक्षमिति। तद्यथा। यदि तस्य मोक्षस्य पूर्वोक्तः सम्यक्त्वादिगुणगणो न भवति तर्हि लोकः कर्ता निजमस्तकस्योपरि तत्किं धरतीति। अत्रानेन गुणगणस्थापनेन किं कृतं भवति, बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्न-धर्माधर्मसंस्काराभिधानानां नवानां गुणानामभावं मोक्षं मन्यन्ते ये वृद्धवैशेषिकास्ते निषिद्धाः। ये च प्रदीपनिर्वाणवज्जीवाभावं मोक्षं मन्यते सोगतास्ते च निरस्ताः। यच्चोक्त सांख्यैः सुप्तावस्थावत् सुखज्ञानरहितो मोक्षस्तदपि निरस्तम्। लोकाग्रे तिष्ठतीति वचनेन तु मण्डिकसंज्ञा नैयायिकमतान्तर्गता यत्रैव मुक्तस्तत्रैव तिष्ठतीति वदन्ति तेऽपि निरस्ता इति। जैनमते पुनरिन्द्रियजनितज्ञानसुखस्याभावे न चातीन्द्रियज्ञानसुखस्येति कर्मजनितेन्द्रियादिदशप्राण-सहितस्याशुद्धजीवस्याभावेन न पुनः शुद्धजीवस्येति भावार्थः ।।६।।

आगे बतलाते हैं – जो मोक्ष में अधिक गुणों का समूह नहीं होता, तो मोक्ष को तीन लोक अपने मस्तक पर क्यों रखता ?

यदि सारे जग में सर्वाधिक गुण समूह नहिं हो शिव में।
तो त्रिलोक भी निज मस्तक पर मुक्ति को रखता कैसे?।।६।।

अन्वयार्थ :- [अन्यद्] फिर [यदि] जो [जगतः अपि] सब लोक से भी [अधिकतरः] बहुत ज्यादः [गुणगणः] गुणों का समूह [तस्य] उस मोक्ष में [न भवति] नहीं होता, [ततः] तो [त्रिलोकः अपि] तीनों ही लोक [निजशिरसि] अपने मस्तक के [उपरि] ऊपर [तमेव] उसी मोक्ष को [किं धरति] क्यों रखते?

भावार्थ :- मोक्ष लोक के शिखर (अग्रभाग) पर है, सो सब लोकों से मोक्ष में बहुत ज्यादा गुण हैं, इसीलिये उसको लोक अपने सिर पर रखता है। कोई किसी को अपने सिर पर रखता है, वह अपने से अधिक गुणवाला जानकर ही रखता है। यदि क्षायिक सम्यक्त्व केवलदर्शनादि अनंत गुण मोक्ष में न होते, तो मोक्ष सबके सिर पर न होता, मोक्ष के ऊपर अन्य कोई स्थान नहीं हैं, सबके ऊपर मोक्ष ही है, और मोक्ष के आगे अनंत अलोक है, वह शून्य है, वहाँ कोई स्थान नहीं हैं। वह अनंत अलोक भी सिद्धों के ज्ञान में भास रहा है। यहाँ पर मोक्ष में अनंत गुणों के स्थापन करने से मिथ्यादृष्टियों का खंडन किया। कोई मिथ्यादृष्टि वैशेषिकादि ऐसा कहते हैं, कि जो बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार इन नव गुणों के अभावरूप मोक्ष है, उनका निषेध किया, क्योंकि इन्द्रियजनित बुद्धि का तो अभाव है, परंतु केवल बुद्धि अर्थात् केवलज्ञानका अभाव नहीं है, इन्द्रियों से उत्पन्न सुख का अभाव है, लेकिन अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता है, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न इन विभावरूप गुणों का तो अभाव ही है, केवलरूप परिणमन है, व्यवहार-धर्म का अभाव ही है, और वस्तु का स्वभावरूप धर्म वह ही है, अधर्म का तो अभाव ठीक ही है, और परद्रव्यरूपसंस्कार सर्वथा नहीं है, स्वभाव-संस्कार ही है। जो मूढ़ इन गुणों का अभाव मानते हैं, वे वृथा बकते हैं, मोक्ष तो अनंत गुणरूप है। इस तरह निर्गुणवादियों का निषेध किया। तथा बौद्धमती जीव के अभाव को मोक्ष कहते हैं। वे मोक्ष ऐसा मानते हैं कि जैसे दीपक का निर्वाण (बुझना) उसी तरह जीव का अभाव वही मोक्ष है। ऐसी बौद्ध की श्रद्धा का भी तिरस्कार किया। क्योंकि जो जीव का ही अभाव हो गया, तो मोक्ष किसको हुआ? जीव का शुद्ध होना वह मोक्ष है, अभाव कहना वृथा है। सांख्यदर्शनवाले ऐसा कहते हैं कि जो एकदम सोने की अवस्था है, वही मोक्ष है, जिस जगह न सुख है, न ज्ञान है, ऐसी प्रतीति का निवारण किया। नैयायिक ऐसा कहते हैं कि जहाँ से मुक्त हुआ वहीं पर ही तिष्ठता है, ऊपर को गमन नहीं करता। ऐसे नैयायिक के कथन का लोक-शिखर पर तिष्ठता है, इस वचन से निषेध किया। जहाँ बंधन से छूटता है, वहाँ वह नहीं रहता, यह प्रत्यक्ष देखने में आता है, जैसे कैदी कैद से जब छूटता है, तब बंदीगृह से छूटकर अपने घर की तरफ गमन करता है, वह निजघर निर्वाण ही है। जैन-मार्ग में तो इन्द्रियजनितज्ञान जो कि मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय हैं, उनका अभाव माना है, और अतीन्द्रियरूप जो केवलज्ञान है, वह वस्तु का स्वभाव है, उसका अभाव आत्मा में नहीं हो सकता। स्पर्श, रस, गंध, रूप,

शब्द इन पाँच इन्द्रिय विषयोंकर उत्पन्न हुए सुख का तो अभाव ही है, लेकिन अतीन्द्रिय सुख जो निराकुल परमानंद है, उसका अभाव नहीं है, कर्मजनित जो इन्द्रियादि दस प्राण अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, आयु, श्वासोच्छ्वास इन दस प्राणों का भी अभाव है, ज्ञानादि निज प्राणों का अभाव नहीं है। जीव की अशुद्धता का अभाव है, शुद्धपने का अभाव नहीं, यह निश्चय से जानना।।६।।

गाथा-६ पर प्रवचन

आगे बतलाते हैं—जो मोक्ष में अधिक गुणों का समूह नहीं होता, तो मोक्ष को तीन लोक अपने मस्तक पर क्यों रखता ? आहाहा! सिद्धपद ऊपर है न? चौदह लोक के ऊपर है। मस्तक। उत्तम मनुष्य भी अच्छी चीज़ को मस्तक पर रखता है। आहाहा! यह शास्त्र आदि दे न किसी को? तो सामनेवाला व्यक्ति... पुस्तक देते हैं हाथ में। मस्तक पर चढ़ाता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि मोक्ष का अधिक गुणों का समूह। आत्मा की सिद्धपद की पर्याय में, गुण शब्द से (आशय) पर्याय है यहाँ। **अधिक गुणों का समूह नहीं होता,...** यह गुण अर्थात् शक्ति—स्वभाव नहीं। प्रगट पर्याय को यहाँ गुण कहा है। **मोक्ष में अधिक गुणों का समूह...** मोक्ष है न? मोक्ष तो पर्याय है। मोक्ष, वह पर्याय है, मोक्ष वह गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल है। आहाहा! तो कहते हैं कि मोक्ष की पर्याय में अधिक गुण वे सब। गुण अर्थात् सभी पर्यायें। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द... आहाहा! उसका यदि अस्तित्व न हो... आहाहा! मोक्ष में अनन्त गुण की पर्याय की अवस्था का अस्तित्व—मौजूदगी न हो तो **मोक्ष को तीन लोक अपने मस्तक पर क्यों रखता ?** आहाहा! पूरे लोक के ऊपर भगवान विराजते हैं। सिद्ध भगवान ऊपर विराजते हैं। लोक के अग्र में। पूरे लोक के मस्तक पर है। आहाहा! यदि उसमें अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान आदि की पर्याय... गुण अर्थात् पर्यायें सब। मोक्ष ही स्वयं पर्याय है, इसलिए उसकी अनन्त गुण की सब पर्यायें। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उन पर्यायों का समूह यदि न हो तो जगत (उसे सिर पर कैसे रखे ?) आहाहा!

साधक जीव भी लोक में हैं और बाधक जीव भी अनन्त जीव हैं। उन्हें मस्तक पर वे हैं। असंख्य समकिती तिर्यंच हैं, आत्मज्ञानी साधक जीव असंख्य। ढाई द्वीप के

बाहर, आत्मअनुभवी, पंचम गुणस्थानवाले... आहाहा! सिंह और बाघ, मगरमच्छ और मच्छ। हजार-हजार योजन के मच्छ, देह की अवगाहना। आत्मज्ञानी हैं। आहाहा! पंचम गुणस्थान की जिसे शान्ति... शान्ति... शान्ति... प्रगट हुई है। ऐसे असंख्य जीव समकिती और पंचम गुणस्थानवाले। यहाँ भी बहुत मनुष्य और मनुष्यणी साधक जीव संख्यात हैं। देव में भी समकिती असंख्य हैं। नारकी में भी समकिती असंख्य हैं। पशु की बात तो की। देव में असंख्य हैं। उन सबके मस्तक पर सिद्ध भगवान विराजते हैं। सिरछत्र हैं वे। ताराचन्दजी! घर का बड़ा व्यक्ति हो तो कहते हैं न कि हमारे सिरछत्र हैं। हमारे सिर के ऊपर वे हैं। हम उनके आधार से निभते हैं। कर्ता-हर्ता वे हैं। रतनलालजी! रतनलालजी को कहे न घर के सब कि हमारे घर में तो ये हैं। हमारे काका कर्ता-हर्ता हैं, हमारे बापूजी। आहाहा!

इसी प्रकार इस तीन लोक में जीव मिथ्यादृष्टि, समकिती और श्रावक... आहाहा! उनके मस्तक पर सिद्ध भगवान यदि अनन्त गुण न हो तो मस्तक पर रखे कौन? कहते हैं। पन्नालालजी! ऐसी बातें हैं, बापू! यहाँ तो। तुम्हारे घर की बातों से अन्तर है। आहाहा! आचार्य की बात तो देखो! दिगम्बर सन्त हैं। योगीन्द्रदेव जंगल में बसनेवाले। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं ऐसे। क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ। आनन्द में स्थिर हो जाये। क्षण में विकल्प उठे। आहाहा! वह झूलते-झूलते शास्त्र लिख दिये हैं। अनुभवदशा में रमते रमते... आहाहा! लिखते-लिखते भी सातवाँ गुणस्थान आ जाता था। आहाहा! विकल्प हो तब तक ताड़पत्र पर (लिखे)। वहाँ, वहाँ विकल्प छूट जाये क्षण में, तथापि ऐसा बाहर में दिखता नहीं। बाहर में तो ऐसा चलता हो। आहाहा! यह योगीन्द्रदेव मुनि महाराज। पंच परमेष्ठी में सम्मिलित हैं। जिन्हें गणधर नमस्कार करते हैं। सच्चे मुनि हैं। उन्हें चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारक, ऐसे तीर्थंकर के वजीर, दीवान। तीर्थंकर, वे राजा; गणधर उनके दीवान—वजीर, वे कहते हैं कि—णमो लोए सव्व आईरियाणं। णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। णमो लोए सव्व साहूणं। आहाहा! वह साधुपद कितना होगा? कि जिसे गणधर का नमस्कार पहुँचे! समझ में आया? उन गणधर का नमस्कार पहुँचे, वह योगीन्द्रदेव यह श्लोक रचते हैं। यहाँ तो यह कहना है।

यह वाणी अमृत है। वीतराग की, गणधर को जिनका नमस्कार पहुँचे। योगीन्द्र

सन्त मुनि आचार्य हैं। आहाहा! बाह्य में नग्न हैं, अन्दर में जरा छठवाँ आवे, तब पंच महाव्रतादि का विकल्प होता है। तुरन्त के तुरन्त अन्दर उतर जाते हैं, क्षण में। अतीन्द्रिय आनन्द में अप्रमत्तदशा में। तब मैं साधक हूँ, यह भी उन्हें खबर नहीं। आहाहा! और मुनि को दशा ऐसी होती है, सच्चे सन्त की। पौन सेकेण्ड के अन्दर जिन्हें निद्रा आती है। चौबीस घण्टे में रात्रि के पिछले भाग में एक आसन से ऐसे हों तो करवट बदलते नहीं। पडखुं समझे? करवट नहीं बदलते। ऐसे हों तो ऐसे नहीं। आहाहा! दशा तो देखो! जिन्हें एक करवट रहकर पौन सेकेण्ड में निद्रा आ जाये। तुरन्त सातवाँ गुणस्थान आवे। आहाहा! ऐसी दशावन्त यह श्लोक रचते हैं। समझ में आया? वह इस परमात्मप्रकाश की रचना ऐसे सन्त ने की है। आहाहा!

कहते हैं, मोक्ष में अधिक गुणों का समूह न हो, यह गुण शब्द से (आशय) पर्याय है, परन्तु ऐसा लगे कि गुण कहा है न? गुण तो त्रिकाल होते हैं। भगवान वस्तु है न वस्तु पदार्थ, तत्त्व, उसकी जो शान्ति है ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वह गुण है। वह तो त्रिकाल है। परन्तु यह तो प्रगट हुई पर्याय को गुण कहा जाता है। समझ में आया? यह हमेशा स्वाध्याय करना चाहिए। ऐई! पन्नालालजी! वह बहियाँ फिराते हों न तुम्हारी सब पैसे की पूरे दिन। रतनलालजी! घण्टे, दो घण्टे बराबर लेना चाहिए। स्वाध्याय करनी चाहिए। भाई तो हाँ करते हैं। आहाहा! पाप की बहियाँ फिराते हैं न पूरे दिन! आहाहा! देखो तो सही आचार्य... आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जगत को निहाल कर दिया है। हो गया पूरा? आधा घण्टा होगा। आधा घण्टा। आधे घण्टे का है? ठीक! आहाहा! आधा घण्टा हो गया।

अरे! मोक्ष में अधिक अनन्त गुण की पर्याय, अरे! उसके अस्तित्व का स्वीकार तो करे। आहाहा! मोक्ष की पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय प्रगट है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जितने गुण हैं, उतनी पर्यायें प्रगट हुई हैं। अनन्त। उसमें अनन्त गुण की पर्याय का समूह यदि मोक्ष में न हो तो **मोक्ष को तीन लोक...** तीन लोक मोक्ष को... आहाहा! **अपने मस्तक पर क्यों रखता ?** आहाहा! यद्यपि तीन लोक में तो केवली भी होते हैं। यह सिद्ध तो अभी उससे ऊपर है। केवली को तो अभी चार कर्म बाकी है न! क्या कहा, समझ में आया?

पहले तो साधक और बाधक की बात की। यह तो ख्याल उस समय था अभी। केवली भी लोक में हैं। लाखों सर्वज्ञ परमेश्वर, तीर्थंकर हैं, अरिहन्त हैं। परन्तु उनके ऊपर सिद्ध हैं तो उनसे पूर्ण निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, कहते हैं। अरिहन्त को तो अभी अनन्त पर्यायें इतनी पूर्ण हैं, वे प्रगट हुई नहीं। चार अघाति बाकी है न! ओहोहो! क्या बात करते हैं! तीन लोक—अधो, मध्य और तिरछो। तिरछे लोक में तो केवली विराजते हैं न! तीर्थंकर विराजते हैं न! असंख्य श्रावक, समकिती, तिर्यंच विराजते हैं। ऊर्ध्व में स्वर्ग के असंख्य देव समकिती हैं। अधो में नारकी असंख्य समकिती हैं। ऐसे तीन लोक के ऊपर सिर के ऊपर, जैसे मस्तक पर रखते हैं वैसे। आहाहा! **तीन लोक अपने मस्तक पर क्यों रखता ?** आहाहा! क्या कहा, समझ में आया ?

मध्यलोक के तीर्थंकर और केवली से भी ऊपर हैं वे। क्योंकि उन्हें अभी बाकी है। आहाहा! चैतन्यसूर्य अनन्त गुण का पिण्ड था, वह अनन्त पर्यायपने प्रगट हो गया है। आहाहा! जलहल ज्योति ज्ञान और आनन्द की दशा, ऐसे अनन्त गुण का समूह यदि वहाँ न हुआ होता तो तीन लोक मस्तक के ऊपर कैसे रखे ? कहते हैं। आहाहा! यह अलंकार किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : इतनी-इतनी आप प्रशंसा करते हो मुनियों की....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! बापू! मुनिपना भाई! धन्य मुनिदशा! आहाहा! मुनि तो परमेश्वर हैं, बापू! उन्हें कौन न माने ? परन्तु मुनि होना चाहिए न! ऐई! रतनलालजी! यह सर्वत्र अभी घूम आये हैं। इन्होंने मेहनत बहुत की है। इन्हें लगन बहुत। सब सेठियाओं के पास जा आये और सब किया। यह तुमने लिखा था। तुम्हारे उस पत्र में लिखा था। मुझे खबर है। इन्होंने लिखा था कि रतनलालजी इसमें बहुत भाग लेते हैं। यह परसों वाँचा था। और फिर यह भाई ने कल सब बात की पौन घण्टे। भाई ने लिखा था कि रतनलालजी इसमें बहुत भाग, बहुत मेहनत करते हैं। है न तुम्हारे में ? वे पत्र आये थे न ? परसों आये थे उसमें। आहाहा! प्रभु! तू कौन है ?

यहाँ तो मोक्ष की व्याख्या करते हैं। पश्चात् मोक्ष के फल की कहेंगे और फिर मोक्ष के मार्ग की करेंगे। परन्तु मोक्ष की व्याख्या करते हुए यह व्याख्या करते हैं। आहाहा! यदि उस मोक्ष में सिद्ध को अनन्त गुण की पर्याय का समूह अनन्त... अनन्त...

अनन्त... अनन्त... अनन्त... आहाहा! आकाश के प्रदेश से भी अनन्त गुणे गुण, उनकी अनन्त पर्यायें। ओहोहो! आकाश के जो अनन्त प्रदेश, आकाश का कहीं अन्त नहीं। सर्वव्यापक। कहीं अन्त नहीं, कहीं अन्त नहीं। अन्त होवे तो फिर क्या? यह आकाश अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... चलता जाता है। उसके प्रदेश की संख्या जो अनन्त है, उससे अनन्तगुणे एक जीव में गुण हैं। इतनी ही अनन्त पर्यायें सिद्ध को प्रगट हुई हैं। यह अनन्त गुण की व्याख्या चलती है। समझ में आया? आहाहा!

तो मोक्ष को तीन लोक अपने मस्तक पर क्यों रखता? छठवीं गाथा।

१२९) अणु जइ जगहँ वि अहिययरु गुण-गणु तासु ण होइ।
तो तइलोउ वि किं धरइ णिय-सिर-उप्परि सोइ॥६॥

आहाहा! अमृत के झरने झरे हैं। वाणी भी अमृत है न! 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल।' 'वचनामृत वीतराग के...' श्रीमद् कहते हैं। वचनामृत। वचन को अमृत कहा। 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' भगवान की वाणी, सन्तों की वाणी, दिगम्बर महात्माओं की वाणी... आहाहा! 'वचनामृत वीतराग के...' वीतराग कहो या मुनि सन्त वीतराग हैं सब। आहाहा! योगीन्द्रदेव वीतरागी मुनि हैं। 'परम शान्त रसमूल' परम शान्ति के देनेवाले वचन हैं ये। आहाहा! उसका मूल यह है। 'औषध जो भवरोग के...' भवरूपी रोग। फिर स्वर्ग का भव हो तो भी रोग है, कहते हैं। आहाहा! 'औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' वीर्यहीन नपुंसक जैसो को यह वाणी कठिन पड़ेगी, कहते हैं। रतनलालजी! यह नपुंसक होते हैं न पावैया? पावैया नहीं होते, हीजड़े? उन्हें पुत्र नहीं होता। वीर्य नहीं। उन्हें प्रजा नहीं होती। आहाहा! इसी प्रकार कायर जिसे आत्मा त्रिलोकनाथ ऐसा है, वह बात जिसे बैठती नहीं और जिसे पुण्य और पाप की बात बैठी है, ऐसे कायर, नपुंसक, हीजड़े जैसे को यह बात नहीं बैठती, कहते हैं। ऐई! पन्नालालजी! यहाँ तो ऐसी बातें हैं। कोड़े पड़ें ऐसा है। पावैया को वीर्य नहीं होता, प्रजा नहीं होती। उसी प्रकार जिसे पुण्य और पाप के प्रेम के रसिक पावैया, हीजड़ा, नुपंसक... आहाहा! उन्हें यह सम्यग्दर्शन की पर्याय की प्रजा नहीं होती। समझ में आया? घर में वहाँ मिले, ऐसा

नहीं तुम्हारे कलकत्ता में। पन्नालालजी! ऐसी बात है, भगवान! भगवत्स्वरूप है न प्रभु तू। आहाहा! तुझे तो भगवानरूप से तो आचार्य बुलाते हैं न प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : थोड़ी देर पहले तो दूसरा शब्द प्रयोग किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय में नपुंसक है, उसके लिये। वस्तु है, वह भगवान है। पर्याय में उसकी प्रतीति नहीं। आहाहा!

भगवान तो यहाँ तक कहते हैं, शुभभाव की रचना करनेवाला भी नपुंसक है। अरेरे! आहाहा! समझ में आया? जिसका वीर्य आत्मा का बल जो अन्तर शक्ति में पड़ा है, वह वीर्य शुद्धता को रचे। उस वीर्य को वीर्य कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मलदशा, वह आत्मा का वीर्य। वह निर्मल शुद्ध उपयोग को रचे, उसे वीर्य कहते हैं कि जिसमें से प्रजा—वीतरागी प्रजा प्रगट हुई। आहाहा! वीतरागी स्वभाव में से वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, उसे परमात्मा वीर्य कहते हैं। अशुभ की तो बात क्या करना, परन्तु शुभ में जो वीर्य जाता है... आहाहा! उसे नपुंसक कहा है। क्योंकि शुभ में से शुद्ध की पर्याय नहीं प्रगट होती। ताराचन्दजी! ऐसी बातें हैं। भगवान! तेरी बात ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभ में शुद्धता नहीं प्रगट होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ तो राग है न, भगवान! शुभ तो विकार है।

समयसार में कहा है। शुभ में रहे हैं, वे नपुंसक हैं। वे शुद्ध में नहीं जाते अन्दर भगवान आत्मा में। आहाहा! पोपटभाई! यह ऐसी बातें हैं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव, उनके सन्त दिगम्बर, उनकी क्या बातें करना! आहाहा! स्वयं परमेश्वर हैं। वे पंच, वे परमेश्वर हैं। साधु होते हैं न, सन्त सच्चे। नियमसार में तो ऐसा कहा है कि उसे जरा विकल्प है, इतनी जरा न्यूनता है भले। परन्तु सर्वज्ञ वीतराग और उनमें यदि अन्तर माने, वह जड़ है। आहाहा! नियमसार में श्लोक है। महामुनि, जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई। सन्त तो उसे कहते हैं। अन्तर में वीतरागस्वरूप ही प्रभु है। उसके आश्रय से जो वर्तमान दशा में वीतरागता—रागरहित दशा प्रगट हुई है, कहते हैं कि वह वीतराग और वीतरागी मुनि में अन्तर नहीं है। अन्तर माने, वह जड़ है—ऐसा नियमसार में कहा है। आहाहा!

बापू! वह पद कैसा होगा! समझ में आया? उसे अभी साधारण कर दिया, प्रभु! यह योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। आहाहा!

फिर जो सब लोक से भी बहुत ज्यादा (अधिकतर) गुणों का समूह... गुण शब्द से पर्याय। अनन्त पर्यायें। जितने गुण, उतनी पर्यायें प्रगट हो गयी है। आहाहा! सिद्ध भगवान को। यहाँ मोक्ष की बात है न? मोक्ष में, जितनी संख्या में गुण हैं, उतनी ही संख्या में उनकी पर्यायें निर्मल हो गयी हैं। आहाहा! भाई! वस्तु सहजात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप, सहज आत्म वस्तु, अकृत्रिम, अकृत परम सहज आत्मा स्वाभाविक वस्तु, सहज आत्मस्वरूप का अनुभव होकर जो सहज पर्याय प्रगट हुई... आहाहा! उन गुणों की संख्या, कहते हैं **बहुत ज्यादा गुणों का समूह...** आहाहा! **उस मोक्ष में नहीं होता,...** तुम्हारे पैसे करोड़, दो करोड़, अरब, दो अरब, पाँच-दस अरब परन्तु वह तो संख्यात हुई। उसमें धूल में कुछ नहीं। यहाँ तो अनन्त पर्यायें। आहाहा! मोक्ष में यदि अनन्त गुण का समूह न हो **तो तीनों ही लोक...** आहाहा! **'निजशिरसि' 'निजशिरसि'** अर्थात् **अपने मस्तक के ऊपर उसी मोक्ष को क्यों रखते?** आहाहा! घर में भी मुख्य व्यक्ति जो हो, उसे कहे यह मेरा सिरछत्र है, भाई! और जब जाये, तब यह हमारा सिरछत्र आज गया। हम स्वामीरहित हो गये, ऐसा नहीं कहते? बड़ा दादा हो बड़ी उम्र का।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं तीन लोक के नाथ। तीन लोक में केवली विराजते हैं। उनके भी यह सिरछत्र हैं। आहाहा! समझ में आया? तीर्थंकर जब दीक्षा लें, तीन ज्ञान के धनी तो हैं, क्षायिकसमकिती हैं, समकित लेकर तो माता के गर्भ में आते हैं तीर्थंकर। तीन ज्ञान होते हैं—मति, श्रुत और अवधि। जब मुनि होते हैं, तब णमो सिद्धाणं करते हैं, बस। पंच परमेष्ठी को (नहीं)। णमो सिद्धाणं, इतना कहकर अन्तर में उतर जाते हैं। चारित्र में अन्दर रमणता। अनन्त तीर्थंकरों का यह रिवाज है। णमो अरिहंताणं, ऐसा नहीं करते। णमो सिद्धाणं। नमः सिद्धेभ्य। आहाहा! ऐसा कहकर, वह तो विकल्प है, अन्तर में उतर जाते हैं। अनन्त गुण के समुद्र में गहरे-गहरे उतर जाते हैं। इसलिए वहाँ उन्हें आनन्द की दशा चारित्र प्रगट होता है, तीर्थंकर को। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहना है, वह भी सिद्ध को नमस्कार करके दीक्षित होते हैं। आहाहा!

भावार्थः—मोक्ष लोक के शिखर (अग्रभाग) पर है,... उसके बाद तो अलोक

है। लोक के अग्रभाग तक भगवान विराजते हैं। अनन्त सिद्ध राशि, अनन्त सिद्ध राशि। वे लोक के अग्र भाग के ऊपर हैं, शिखर के ऊपर हैं। **सो सब लोकों से मोक्ष में बहुत ज्यादा गुण हैं,... सब लोकों से मोक्ष में बहुत ज्यादा गुण हैं,...** केवली से भी विशेष हो गया न, भाई! केवली भी यहाँ हैं। उनसे विशेष सिद्ध है न! मोक्ष है। आहाहा! तेरहवें गुणस्थान में भावमोक्ष हुआ, परन्तु द्रव्यमोक्ष बाकी है न! यहाँ तो सब पूर्ण हो गया। ओहोहो!

मोक्ष में बहुत ज्यादा गुण हैं, इसलिए उसको लोक अपने सिर पर रखता है। आचार्य योगीन्द्रदेव ने अलंकार किया है न! आहाहा! यह टोपी और पगड़ी सिर पर होती है या पैर में पहनते होंगे? इस टोपी को पैर में पहने? इसी प्रकार तीन लोक के नाथ परमात्मा सिद्ध परमात्मा सिर पर अग्र हैं, वे तीन लोक के सिर पर छत्र हैं। आहाहा! और निगोद को नीचे कहा है। सुना है? पूरे लोक में तो निगोद है, परन्तु सिद्धान्त में तो सातवें नरक के नीचे निगोद कहा है। निगोद। अनन्त जीव बहुत। तब लोक के अग्र में सिद्ध हैं। ऐसा यहाँ कहना है।

मुमुक्षु : नीचे निगोद और ऊपर सिद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। नीचे निगोद है। आहाहा! देखो तो सही रचना जगत की! और केवलियों ने देखकर कहा। यह सातवाँ नरक है। सात नरक हैं न नीचे? महा पीड़ा... महा पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... आहाहा! माँस खानेवाले, मदिरा पीनेवाले अधर्मी, राजा, महाराजा सबकी वहाँ पार्लियामेन्ट भरती है। वे बहुत दु:खी हैं, बापू! आहाहा! यह बात करना... उसके नीचे निगोद है, मेरा ऐसा कहना है यहाँ तो। क्योंकि उससे नीचे। यह तो अभी पंचेन्द्रिय हैं न? नारकी है, भले दु:खी है परन्तु पंचेन्द्रिय है। क्षयोपशम है अमुक पाँच इन्द्रिय का। और उसके नीचे निगोद है। आहाहा! पर्याय में अक्षर का अनन्तवाँ भाग (उघाड़ रहा है), ऐसे अनन्त निगोद हैं, वे नीचे हैं। और पर्याय की पूर्णता की अनन्त शक्ति, वह सिद्ध है। समझ में आया? देवीलालजी!

मुमुक्षु : नित्य निगोद... सातवें नरक के नीचे...

पूज्य गुरुदेवश्री : नीचे निगोद है बहुत। पूरे लोक में है, उससे अनन्तगुणा विशेष

है। सिद्धान्त में (लेख है)। सातवें नरक के नीचे। इस लोक प्रमाण तो है। यहाँ भी निगोद है, परन्तु वहाँ विशेष गिना है। न्याय है न न्याय? न्याय से। सिद्ध जब ऊपर हैं। पूर्ण पर्याय के प्राप्त। तब हीन पर्यायवाले अनन्त नीचे हैं। बराबर है? आहाहा! यह सब मौजूदगी है, हों! अस्तित्व है, हों! भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : कुदरती व्यवस्था है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही ऐसी है। आहाहा! जगत की व्यवस्थित सत्ता ऐसी चीज़ है। स्वाभाविक वस्तु है वह। आहाहा!

कोई किसी को अपने सिर पर रखता है, वह अपने से अधिक गुणवाला जानकर ही रखता है। है? **यदि क्षायिक-सम्यक्त्व...** अब स्पष्टीकरण करते हैं। भगवान को तो क्षायिक समकित। आहाहा! सम्यक्पर्याय क्षायिक हो गयी होती है। आहाहा! श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती। वह क्षायिक समकित सिद्ध में जायेगा। आहाहा! अभी भले नरक में है, परन्तु क्षायिक समकिती हैं। तीर्थंकरगोत्र जिन्होंने बाँधा है। आहाहा! चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में है। ढाई हजार वर्ष गये हैं। साढ़े इक्यासी हजार (वर्ष बाकी हैं)। भाई! यह उसके संयोग की व्याख्या कठिन बहुत, बापू! वरना तो क्षायिक समकिती है, परन्तु नरक का आयुष्य बँध गया था। मुनि की-सच्चे सन्त की असातना (की थी)। मरा हुआ सर्प डाला था न गर्दन में? बड़ी असातना की थी। नरक का आयुष्य बँध गया था। उनकी स्त्री समकिती थी। उसके कारण से मुनि महाराज के पास (गये)। पहले तो डाल आये। पश्चात् उन्होंने चेलना को कहा। चेलना को कहते हैं, तेरे गुरु... स्वयं बौद्ध था। तेरे गुरु जो ऐसे हैं, वहाँ मैं सर्प डाल आया हूँ। वह सर्प उन्होंने निकाल दिया होगा। रानी कहती है, अन्नदाता! मेरे गुरु ऐसे नहीं होते, भाई! आहाहा! स्वामी! हमारे सन्त ऐसे नहीं होते। वे उपसर्ग को नहीं टालते। नाथ! चलो देखना हो तो। आहाहा! वे पति-पत्नी जाते हैं।

मुनि तो अन्दर आनन्द में हैं। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में स्थित हैं। आहाहा! करोड़ों चीटियाँ (चढ़ गयी हैं)। रानी हाथ में चींटियाँ लेकर सर्प को निकालती है। अन्नदाता! देखो, यह सर्प। ये तो वीतरागी मुनि आनन्द में हैं। हें! यह! आहाहा! वहाँ मुनि से समकित को प्राप्त हुए हैं। फिर भगवान के समवसरण में गये हैं। वहाँ

क्षायिक समकित को प्राप्त हुए हैं। परन्तु वह आयुष्य बँध गया था ३३ सागर का। समकित पाया, आयुष्य तोड़ डाला। चौरासी हजार का रहा। तैंतीस सागर में से चौरासी हजार अर्थात् क्या? आहाहा! इतना रहा, दूसरा आयुष्य। लड्डू बाँधा हो, वह तो खाना ही पड़ेगा। उसमें से घी निकालकर रोटी हो या आटा निकालकर रोटी नहीं होती। वह तो लड्डू खाना ही पड़ेगा। फिर उसमें घी अधिक डाले या सूखा डाले परन्तु लड्डू तो वही रहता है। उसी प्रकार नरक का आयुष्य बँध गया, वह स्थिति घटती है परन्तु नरक गति नहीं जाती। आहाहा! क्षायिक समकिती। आहाहा! क्षायिक समकित तो यहाँ से है न? वह क्षायिक समकित लेकर केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष, क्षायिक समकित सिद्ध में जायेगा, वह स्वयं। आहाहा! उस समकित की क्या महिमा है और उसकी क्या कीमत है, और उसका क्या ध्येय है, वह जगत को कठिन पड़ता है। उसके बिना की सब बातें व्रत और अपवास की करे।

यहाँ तो केवली और क्षायिक समकिती आदि **केवलदर्शनादि अनन्त गुण मोक्ष में न होते, तो मोक्ष सबके सिर पर न होता, मोक्ष के ऊपर अन्य कोई स्थान नहीं हैं, सबके ऊपर मोक्ष ही है,...** आहाहा! **और मोक्ष के आगे अनन्त अलोक है, वह शून्य है,...** अलोक तो खाली है फिर। सिद्ध के बाद। उसकी बात विशेष करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज शुक्ल १५, गुरुवार
दिनांक-०७-१०-१९७६, गाथा-६, प्रवचन-९८

परमात्मप्रकाश, छठी गाथा। मोक्ष किसे कहना, उसका वर्णन है। मोक्ष अज्ञानी अनेक प्रकार से कहते हैं। तो वास्तविक मोक्ष किसे कहना? और ऐसा मोक्ष है, उसका उपाय किसे कहना? वह व्याख्या चलती है। अभी तो मोक्ष का अधिकार चलता है। यहाँ आया है।

सबके ऊपर मोक्ष ही है,... यह लाईन आयी है वहाँ। पूरे लोक के ऊपर मोक्ष है। यदि अनन्त गुण और अनन्त आनन्द वहाँ न हो, लोक के सिर के ऊपर वह मोक्ष कैसे होगा? अनन्त आनन्द है मोक्ष का। अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, उसे मोक्ष कहते हैं। नौ तत्त्व है, उसमें मोक्षतत्त्व की श्रद्धा कराते हैं कि मोक्ष किसे कहना। **मोक्ष के आगे अनन्त अलोक है,...** मोक्ष जो है, (वह) लोक के अग्र में है। अनन्त आनन्द आदि सम्पन्न है। उस लोक के बाद तो शून्य है—खाली भाग। अलोक-अलोक। **वहाँ कोई स्थान नहीं है।** सिद्ध भगवान के स्थान के ऊपर दूसरा कोई स्थान है नहीं। है? छठवीं गाथा। आधा चला है। यह तो आधे से चलता है।

वह अनन्त अलोक भी सिद्धों के ज्ञान में भास रहा है। आहाहा! वे सिद्ध परमात्मा मोक्षदशा अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख (सहित विराजमान), उन सिद्ध को अलोक भी भासित होता है। अनन्त जो अलोक खाली भाग अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... वह अलोक भी केवलज्ञान के सिद्ध की ज्ञानदशा में भासित होता है। अलोक में वे जाते नहीं, परन्तु अलोक का अनन्त अवकाश है, उसका यहाँ ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : सिद्ध में तो ध्यान जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध तो सिद्ध में है, अपने स्थान में हैं। परन्तु अलोक जो खाली अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... चारों ओर कहीं अलोक का अन्त नहीं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन चले जाये ऐसे के ऐसे आकाश में, तो आकाश का कहीं अन्त नहीं। अन्त हो तो बाद में

क्या ? यह गजब बात है। क्षेत्र का स्वभाव भी अमाप और अनन्त है, उसका यह आत्मा क्षेत्रज्ञ है। उस क्षेत्र का जाननेवाला है। समझ में आया ? यह यहाँ कहा।

अनन्त अलोक भी सिद्धों के ज्ञान में भास रहा है। अलोक अमाप अनन्त है, वह भी सिद्ध की पर्याय में उन्हें ज्ञान है। **यहाँ पर मोक्ष में अनन्त गुणों के स्थापन करने से...** मोक्ष में अनन्त गुण हैं। गुण अर्थात् पर्याय। गुण तो अनादि-अनन्त भगवान सब आत्मा में हैं। परन्तु सिद्ध को तो अनन्त गुण की अनन्त पवित्र पर्याय प्रगट हो गयी है। वे अनन्त गुण सहित हैं। उन **अनन्त गुणों के स्थापन करने से मिथ्यादृष्टियों का खण्डन किया।** मिथ्यादृष्टि मोक्ष को अन्य प्रकार से मानते हैं, उनका यहाँ खण्डन किया है।

कोई मिथ्यादृष्टि वैशेषिकादि ऐसा कहते हैं, कि जो बुद्धि,... मोक्ष में बुद्धि नहीं। **सुख...** नहीं। **दु:ख...** नहीं, **इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म,...** अर्थात् व्यवहार धर्म। **अधर्म, संस्कार इन नव गुणों के अभावरूप मोक्ष है,...** यह बुद्धि आदि का अभाव है, ऐसा कहना है। **उनका निषेध किया। क्योंकि इन्द्रियजनित बुद्धि का तो अभाव है,...** सिद्ध भगवान में इन्द्रियजनित ज्ञान का अभाव है। **परन्तु केवलबुद्धि अर्थात् केवलज्ञान का अभाव नहीं है,...** आहाहा! ज्ञान की पर्याय पूर्ण निर्मल हो गयी, ऐसा केवलज्ञान, उसका उसमें अभाव नहीं। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! मोक्ष को जानना, मानना...

आत्मा परिपूर्ण अतीन्द्रिय स्वभाव, उसकी दृष्टि में अनुभव करने से जो सम्यग्दर्शन होता है, उस सम्यग्दर्शन में मोक्ष की ऐसी प्रतीति होती है। समझ में आया ? ऐसे मोक्ष-मोक्ष करे, सिद्ध-सिद्ध (करे) परन्तु मोक्ष क्या है ? उसकी पर्याय में कितनी पवित्रता प्रगट हुई है और तो भी वह जिसे जानता है, उसमें वह जाता नहीं। उसका उसे ज्ञान होता है। आहाहा! ऐसा उसका—मोक्ष का स्वरूप है। इन्द्रियजनित का अभाव है, केवलज्ञान का अभाव नहीं। आहाहा! चैतन्य जलहल ज्योति, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सिद्ध भगवान लोकालोक, लोकालोक को स्पर्शे बिना, स्पर्शे बिना जानते हैं। ऐसा उनका सामर्थ्य है।

दु:ख, इच्छा, द्वेष... लेकिन अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता है,... इन्द्रियों से उत्पन्न सुख का अभाव है,... सिद्ध में, यह इन्द्रिय का कल्पना में सुख मानते हैं न ? यह विषय में, भोग में, पैसे में, इज्जत में इन्द्रिय के सुख की कल्पना माने, वह है तो दु:ख। उस

इन्द्रिय के सुख का सिद्ध में अभाव है। आहाहा! वहाँ अतीन्द्रिय सुख है। अतीन्द्रिय आनन्द का सुख है। आहाहा! वह उनके ज्ञान में आना और उस वस्तु की इतनी स्थिति है, उसकी प्रतीति होना, वह निर्विकल्प दृष्टि होने पर प्रतीति होती है। आहाहा! विकल्प अर्थात् राग के आश्रय से ऐसी मोक्ष की प्रतीति नहीं होती। समझ में आया?

इन्द्रियों से उत्पन्न सुख का अभाव है, लेकिन अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता है,... पूर्ण अतीन्द्रिय सुख। अरे! वह क्या है? क्योंकि आत्मा का स्वभाव ही अतीन्द्रिय सुख है। वह जहाँ पर्याय में प्रगट दशा हुई तो अतीन्द्रिय सुख की परिणति का उसे वेदन और अनुभव है। सिद्ध को अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! संसार में अज्ञानियों को इन्द्रिय सुख की कल्पना, ऐसा जो दुःख, उसका वेदन है। यह पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, वह हमारे हैं, उनसे मैं सुखी हूँ, ऐसी जो कल्पना, वह दुःख है। वह इन्द्रिय की कल्पना सुख से सिद्ध भगवान रहित है, परन्तु अतीन्द्रिय सुख से सहित है। आहाहा! ऐसा जो मोक्ष, उसका उपाय भी कोई अलौकिक होता है न! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी जो दशा अतीन्द्रिय सुख, अतीन्द्रिय ज्ञान... आहाहा! उसका उपाय, जो मोक्षमार्ग भी अलौकिक है। यह कहेंगे बाद में। यह कोई विकल्प और पुण्य और दया-दान के व्यवहार से मोक्षमार्ग हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जिसकी स्वभाव पूर्ण दशा प्रगट है, ऐसा मोक्ष, उसका कारण भी स्वभाव की अपूर्ण दशा, वह उसका कारण है। मोक्ष का मार्ग, वह स्वभाव की दशा है। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञानमय प्रभु—वस्तु। उसकी अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख की अन्दर अनुभवदशा (हो) वह पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान, ऐसे सिद्ध का वह कारण है। अरे! समझ में आया? यह अनन्त काल में इसने ख्यान में लिया नहीं। अनन्त बार दिगम्बर साधु हुआ। छहढाला में आता है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत दिगम्बर हजारों रानियाँ छोड़कर, त्यागकर जंगल में रहा। पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, परन्तु वह तो राग है, वह तो दुःख है। ऐसा अनन्त बार पालन किया तो भी आत्मज्ञान बिना सुख नहीं मिला। इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण वह सब दुःख है। रतनलालजी! ऐसी बहुत सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : वह दुःख है, ऐसा सुनना सुहाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह शब्द कहे नहीं? छहढाला में, यह तो छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? 'मुनिव्रत धार...' पंच महाव्रत, हों! निरतिचार, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार, उसके लिये चौका करके आहार दे तो प्राण जाये तो भी न ले। ऐई! रतनलालजी! यह सब तुमने क्या किया होगा? चौका बनाकर पकाकर आहार देते। यह तो दृष्टान्त, हों! सेठ का, सामने (बैठे हैं)।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! मार्ग ऐसा है, भाई! जो नौवें ग्रैवेयक गया दिगम्बर साधु, उसके पंच महाव्रत इतने चुस्त, जिसमें अतिचार नहीं। जिसके लिये आहार बनाया हो और ख्याल आवे कि अरे! यह तो मेरे लिये (बनाया है)। तो प्राण जाये तो भी नहीं ले। ऐसी क्रियायें अनन्त बार की हैं। परन्तु 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, वे सुख नहीं, दुःख है।

मुमुक्षु : सुख नहीं परन्तु करते-करते भविष्य में सुख होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख करते-करते सुख होगा। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। ऐई! यह लहसुन, लहसुन नहीं होता? लहसुन ढोकला में खाते हैं न? पश्चात् ओ... डकार कस्तूरी की आयी। परन्तु तीन काल में नहीं आती। लहसुन खाते हुए कस्तूरी की डकार नहीं होती। उसी प्रकार यह सब राग की क्रिया का फल मोक्षमार्ग नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसने अपने निज स्वभाव का साधन नहीं किया। आहाहा! जिस साधन का फल मोक्ष, उसकी व्याख्या चलती है। जिसका फल मोक्ष। ऐसा जो अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान। 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख...' जब से अतीन्द्रिय आनन्द की मोक्षदशा प्रगट हुई, वह अनन्त काल रहेगी। भूत से भविष्य का काल अनन्त गुणा है। समझ में आया? भूतकाल अर्थात् अनादि का वर्तमान तक का काल, उससे वर्तमान से भविष्य का काल अनन्त गुणा है। आहाहा! ऐसे अनन्त गुणे काल में अनन्त आनन्द का अनुभव और अनन्त ज्ञान की दशा का अस्तित्व ऐसा जो मोक्ष, उसका उपाय तो अलौकिक होगा न, भाई! जिसका फल ऐसा, उसके कारण कैसे

होंगे? समझ में आया? पंच महाव्रत वह उसके—मोक्ष के कारण नहीं हैं। वह तो आस्रव है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह ऐसा कहते हैं, परम्परा कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा धूल में भी कारण नहीं। राग को परम्परा माने तो अनर्थ है। आहाहा! है न यह बात तो? अनादि की मानी हुई है न लोगों ने। क्या हो?

सर्वज्ञ वीतराग जिनवरदेव तो ऐसा फरमाते हैं इसे, भगवान! यह राग की क्रिया तो तूने अनन्त बार की। उसके फलरूप से तो संसार फला। भव मिला। पुण्यादि महाव्रत हो तो स्वर्ग में जाये। वहाँ से निकले तो कदाचित् पुण्य बाकी हो तो यह धूल का सेठिया हो। यह धूल का सेठिया। यह करोड़पति, अरबपति, ये सब धूल के सेठिया। आत्मा के सेठिया नहीं होते ये। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि परमात्मस्वरूप मोक्ष की प्रतीति कराते हैं। उसमें अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द है। आहाहा! उसमें यह सब **दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न इन विभावरूप गुणों का तो भाव ही है, केवलरूप परिणमन है,...** अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... उसकी दशा जिसे है। आहाहा! इच्छा नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं। केवलज्ञान—मोक्ष हुआ तो फिर से जन्मना नहीं, अवतार फिर से लेना, दुनिया के दुःख को देखकर टालना, ऐसा है नहीं। आहाहा!

व्यवहार-धर्म का अभाव ही है,... देखो! है? यह दया, दान, व्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान ऐसा जो व्यवहार धर्म, उसका उसमें अभाव है। आहाहा! है? रतनलालजी! व्यवहारधर्म का तो वहाँ अभाव है। व्यवहारधर्म का अभाव किया, तब तो मोक्षमार्ग हुआ है। आहाहा! **व्यवहार-धर्म का अभाव ही है,...** अभाव है, इतना न लेकर **अभाव 'ही' है,...** 'ही'। क्योंकि जहाँ मोक्षमार्ग प्रगट किया है, वहाँ व्यवहारधर्म के अभाव से प्रगट किया है। आहाहा!

शुद्ध चिदानन्द प्रभु आत्मा, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा जो सिद्धपद स्वरूप अपना। उसकी अन्तर सन्मुख की निर्विकल्पदृष्टि, निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प शान्ति-स्थिरता, वह व्यवहारधर्म के अभावस्वरूप है। और उसका मोक्ष में व्यवहारधर्म का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? अभी तो बहुत

विरोध चलता है। अभी तो कहते हैं, आठवें गुणस्थान में निर्विकल्पता होती है, ऐसा (वे लोग) कहते हैं, लो! आहाहा! कल आया था उसमें। सेठ का क्या कहलाता है वह? रिकॉर्डिंग। रिकॉर्डिंग। तुम्हारा रिकॉर्डिंग था रात्रि का। उसमें यह आया। आठवें में निर्विकल्पता होती है। यहाँ कहते हैं कि चौथे से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हो तब तो धर्म की शुरुआत होती है। समझ में आया?

देखो न! कैसा अर्थ किया है! **व्यवहार-धर्म का अभाव ही है,...** (व्यवहारधर्म के) अभाव से प्रगट हुआ है। व्यवहारधर्म से निश्चयधर्म प्रगट नहीं हुआ। आहाहा! अभाव। और वह व्यवहार रागादि विकल्प के अभाव—स्वभावस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी प्रतीति, उसका अनुभव और उसका वेदन, ऐसा जो निश्चयमोक्षमार्ग, उसका फल यह मोक्ष है। समझ में आया? यह मोक्ष ऐसा हो, उसका वर्णन करते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग ऐसा है कि ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं जिनवर के अतिरिक्त (नहीं है)। वह भी जिनवर अर्थात् दिगम्बर धर्म। जैनदर्शन कहो, जिनवरदर्शन कहो या दिगम्बर धर्म कहो, इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

जिसमें व्यवहारधर्म का **अभाव ही है,...** आहाहा! **और वस्तु का स्वभावरूप धर्म वह ही है,...** देखो! अभाव कहा। रागादि, विकल्पादि का अभाव है। तब सद्भाव क्या है? वस्तु का स्वभावरूप धर्म। आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु, उसका जो धर्म अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय सुख, अतीन्द्रिय शान्ति, वह वस्तु का स्वभाव धर्म **वह ही है,...** समझ में आया? यहाँ भी उस वस्तु के धर्म का साधन किया था, उससे वस्तु का धर्म वहाँ सिद्ध में पूर्ण रह गया। आहाहा! समझ में आया? यह बड़ा विवाद यह है, अभी कि यह सब व्यवहार हम करते हैं और उससे निश्चय होगा।

मुमुक्षु : कितने काल में?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कहाँ मेल कहते हैं। बापू! छठवाँ गुणस्थान मुनि की वह दशा अलौकिक है, भाई! अभी नजर में पड़ना, उसके दर्शन होना, वह महादुर्लभ है। जिसे क्षण में सप्तम गुणस्थान आवे अप्रमत्तदशा आनन्द (आवे), क्षण में छठवें में आवे विकल्प उठे, तीसरे क्षण में सप्तम आवे अप्रमत्त, चौथे क्षण में प्रमत्त आवे। ऐसा

एक अन्तर्मुहूर्त में सच्चे सन्त जो मुनि हैं, उन्हें हजारों बार छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता है। आहाहा! वह वस्तु का स्वभाव यह कहा वह। वस्तु का स्वभाव... है न?

वस्तु का स्वभावरूप धर्म वह ही है,... आहाहा! वहाँ भाई तुमने कहा वह। ही-ही। उसमें 'ही' आया और इसमें 'ही' आया। जोर है। यह ही है, यह नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! परमेश्वर वीतराग, जिन्हें एक समय में पूर्ण वीतरागता, पूर्ण अकषायभाव प्रगट हुआ है, जिन्हें पूर्ण एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में केवलज्ञान प्रगट हुआ है, जिन्हें एक समय में अनन्त आनन्द पूर्णानन्द प्रगट हुआ है... आहाहा! जिन्हें सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त वीर्य / पुरुषार्थ अनन्त निर्मल पर्याय की रचना करनेवाला प्रगट हुआ है। आहाहा! ऐसे जिनवरदेव, उनकी दिव्यध्वनि में यह आया। आहाहा!

भगवान तो विराजते हैं। महाविदेह में परमात्मा तो साक्षात् विराजते हैं। सीमन्धर भगवान तो विराजते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ आगे गये थे। आठ दिन वहाँ (रहे थे)। उसका लोग निषेध करते हैं। जो शास्त्र में लेख है। पंचास्तिकाय में है, दर्शनसार एक (शास्त्र) है। देवसेनाचार्य हो गये हैं। अपने उसमें डाला है सामने, समयसार में। देवसेनाचार्य हो गये। दर्शनसार पुस्तक है उसमें। यहाँ सब पुस्तकें हैं। उस दर्शनसार में देवसेनाचार्य ऐसा कहते हैं कि अरे! भगवान! हे कुन्दकुन्दाचार्य! हे पद्मनन्दिनाथ! उनका—कुन्दकुन्दाचार्य का पद्मनन्दि नाम भी है। आप सीमन्धर भगवान के पास जाकर यदि यह मार्ग न लाये होते तो हम मुनि का धर्म कैसे प्राप्त करते? इसका वहाँ अभी निषेध किया था। दिल्ली। इसे खबर है। विद्यानन्दजी कहते हैं, यह सब कपोलकल्पित है। यह तो अपने परमात्मप्रकाश है। इसमें तो नहीं। समयसार में है। समयसार है न, बहुत आधार दिये हैं। परन्तु अपने तो यह लेना है दर्शनसार। देवसेनाचार्य हैं। दर्शनसार है, अपने शास्त्र यहाँ है। **'जइ पउमणंदिणाहो'** कुन्दकुन्दाचार्य कहो या पद्मनन्दि, उनके पाँच नाम हैं। **'जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण। ण विवोहइ तो समणा कहं समुगं पयाणंति॥'** आचार्य कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य के बाद हुए हैं। आचार्य देवसेनाचार्य हुए हैं।

(महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव) श्री सीमन्धरस्वामी से प्राप्त हुए दिव्य

ज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ? अपने समयसार में डाला है। प्रवचनसार में, नियमसार में सबमें डाला है। समझ में आया ? यह आचार्यों के कथन हैं। पंचास्तिकाय में जयसेनाचार्य की टीका का कथन है। यह भाई ने डाला है अभी सब। वे दिल्लीवाले नहीं ? हितैषी।

मुमुक्षु : प्रकाश (हितैषी)

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाश ? सन्मति सन्देश निकालते हैं न ? उन्होंने सब डाला है, यह सब डाला है। स्पष्टीकरण किया है। शास्त्र में सब सिद्धान्त में है, उसे कपोलकल्पित कैसे कहना ?

यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं आचार्य देवसेन दर्शनसार में (कहते हैं) अरे! **महाविदेह में जाकर सीमन्धरनाथ भगवान से 'प्राप्त हुए दिव्य ज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) बोध न दिया होता...** आहाहा! आचार्य ऐसा कहते हैं। मुनि दिगम्बर सन्त। हमको **बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ?** आहाहा! कहो, ताराचन्दजी!

मुमुक्षु : शिलालेख लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिलालेख लिखे है। दो शिलालेख लिखे हैं। दो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **वस्तु का स्वभावरूप धर्म वह ही है।** सिद्ध भगवान में वस्तु जो आत्मा, उसका जो ज्ञान-दर्शन-आनन्द-स्वच्छता-प्रभुता स्वभाव, वह तो उनकी पर्याय में प्रगट हो ही गये हैं। आहाहा! समझ में आया ? अरे! थोड़ा हो परन्तु सत्य होना चाहिए। लम्बा-लम्बा बड़ा करे और सत्य का ठिकाना नहीं। समझ में आया ? यहाँ कहते हैं, **वस्तु का स्वभावरूप धर्म वह ही है।** आहाहा! भगवान! वस्तु का स्वभाव यहाँ तो अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय ईश्वरता, स्वच्छता ऐसे जो अतीन्द्रिय गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें एकाग्र होकर पर्याय में जो वस्तु का स्वभाव धर्म प्रगट किया, वह साधक (हुआ) और उससे पूर्ण वीतरागता और पूर्ण दशा प्रगट हो गयी, वह साध्य। वह वस्तु का धर्म पूर्ण वहाँ सिद्ध में भी है। ताराचन्दजी! ऐसी बात है, भाई! अरे! किसके साथ झगड़ा करना, बापू! आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

अधर्म का तो अभाव ठीक ही है,... है ? अधर्म का अभाव है उसमें। पुण्य और

पाप के भाव, वह तो अधर्म है। उनमें तो सिद्ध भगवान में अभाव है। क्योंकि मोक्षमार्ग में ही पुण्य-पाप के भाव से रहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र किया है। उससे मोक्ष मिला है। समझ में आया? आहाहा! यह मोक्ष की व्याख्या है कि मोक्ष में तो वस्तु का स्वभाव धर्म तो है। उसमें अधर्म का अभाव है। यह संसार का शुभभाव, पुण्यभाव, विकारभाव का भगवान में अभाव है। परन्तु वहाँ धर्म नहीं, शून्य है, ऐसा कितने ही मानते हैं। ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। आहाहा!

और परद्रव्यरूप-संस्कार सर्वथा नहीं है,... आहाहा! भगवान आत्मा मोक्ष हुआ, उसे अब परद्रव्य के संस्कार नहीं। कर्म के निमित्त के संस्कार पुण्य और पाप राग, कल्पना, ऐसे संस्कार तो सिद्ध में है नहीं। क्यों?—कि मोक्षमार्ग में ही उन कर्म के संस्कार से रहित मोक्षमार्ग साधा है। कर्म के निमित्त का जो दया, दान, व्रत, विकल्प संस्कार है, उससे रहित आत्मा के स्वभाव का मोक्षमार्ग तो यहाँ साधा है। उसके फलरूप से मोक्ष है, उसमें यह संस्कार है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! अनादि से चौरासी लाख योनियों में... ओहोहो! निगोद के जीव। इस काई को देखो न! काई-काई। ढ़ेर होते हैं ऐसे। एक-एक शरीर में अनन्त जीव। ऐसे असंख्य शरीर का तो ढ़ेर राई जितना। यह काई होती है न? काई-काई। पानी के ऊपर शैवाल न। सर्वत्र जम जाती हैं न यह? यह इतना हो उसमें काई हो जाये। उस काई की एक राई जितनी कणी में तो असंख्य शरीर और एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुणे जीव। और वे निगोद के जीव, प्रभु! तुझे सुनकर, विचारकर तू जरा। एक श्वास में अठारह भव करे। उसमें मरकर जीवे, जीवे और मरे... जीवे और मरे... एक श्वास। एक में तो अठारह भव। ऐसे-ऐसे अनन्त भव वहाँ किये हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **परद्रव्यरूप-संस्कार सर्वथा नहीं है,...** देखा! कथंचित् संस्कार है और कथंचित् नहीं, ऐसा नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं न कि बहुत जीवों का मोक्ष हो और फिर यहाँ छूट जाये, इसलिए वापस वहाँ से यहाँ आवे। अभी यहाँ नहीं कहता था कोई? अभी कोई महिला नहीं? वह कोई? है तो आदमी नहीं? ब्रह्मकुमारी, वह कोई है। उसकी गाँव-गाँव में बहुत संस्था है। ब्रह्मकुमारी। उसे अभी भाई कहते हैं अपने सेठ भगवानदास। बीड़ीवाले सागरवाले। यहाँ अभी रह गये न दो महीने? वे कहते थे कि मैंने उसे पूछा कि सभी जीव हो जाये तो फिर आवे कहाँ से? कहा, वे मोक्ष में जाते

हैं, फिर वहाँ से वापस आते हैं। ऐई! ऐसी की ऐसी गप्प मारनेवाले और उनकी भी संस्था चले।

जिनवरदेव वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं एक भी बात आंशिक सत्य नहीं। समझ में आया? यह धर्म है, ऐसा अभी सुना था। ब्रह्म-ब्रह्म कैसा कहा? ब्रह्मकुमारी। है तो आदमी। परन्तु उसकी पुत्री के नाम से ब्रह्मकुमारी ऐसा धर्म चलाया है। गाँव-गाँव में संस्था है उसकी। यहाँ भावनगर में सब। लोग तो झुकानेवाला चाहिए। झुकनेवाले मिले ही रहते हैं उसे तो। आहाहा! यहाँ तो परद्रव्य के संस्कार... यहाँ तो शास्त्र तो वहाँ तक कहे, मोक्ष अधिकार में—मोक्षपाहुड़ है। अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ है। है यहाँ? मोक्षपाहुड़ कुन्दकुन्दाचार्य का है। १६वीं गाथा। मोक्षपाहुड़ कुन्दकुन्दाचार्य। **'परदव्वादो दुग्गइ'** आत्मा में परद्रव्य के लक्षवाला राग (होना), वह दुर्गति है। तीर्थंकर और तीर्थंकर परद्रव्य हैं। उनके ऊपर लक्ष्य जाने से राग होता है, ऐसा कहते हैं। वह **'परदव्वादो'** परद्रव्य से दुर्गति होती है। गजब बातें हैं, भाई! भगवान त्रिलोकनाथ ऐसा कहे, जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि हम तुझसे परद्रव्य भिन्न हैं। हमारे ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। तेरी गति चैतन्य की नहीं रहेगी। आहाहा! यह वीतराग की वाणी। ऐई! पन्नालालजी!

यह अष्टपाहुड़ है, कुन्दकुन्दाचार्य का। दर्शनपाहुड़, सूत्रपाहुड़, चारित्रपाहुड़, बोधपाहुड़, भावपाहुड़, मोक्षपाहुड़, शीलपाहुड़ और लिंगपाहुड़। आठ हैं। यह मोक्ष(पाहुड़ की) १६वीं गाथा। **परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है।** उपोद्घात। उपोद्घात है यह। **परद्रव्य से दुर्गति और स्वद्रव्य से सुगति होती है, ऐसा स्पष्ट जानो।** आहाहा! गजब बात है। तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहते हैं कि हम तेरे द्रव्य से परद्रव्य हैं। और हमारे ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे विकल्प उठेंगे, राग होगा। और राग, वह चैतन्य का परिणमन नहीं। वह तो विभाव परिणमन है। पन्नालालजी! सुना नहीं। ऐसे के ऐसे धन्धे में और धन्धे में... आहाहा! पर में.. पर में... पर में... स्त्री के लिये, पुत्र के लिये, धन्धे के लिये। जो परद्रव्य (उसके लिये) मुफ्त का हैरान हो जाता है।

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भगवान के पास जाकर आठ दिन रहकर आये

और यह कहते हैं। आहाहा! **'जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ'** यह १५वीं गाथा है। परद्रव्य की ओर के लक्ष्य में रत हो जाये, वह मिथ्यादृष्टि है। और यहाँ १६वीं गाथा में **'परदव्वादो दुग्गइ'** कहा। चैतन्य भगवान ज्ञानानन्द सहजानन्द, सहजानन्द, सहजानन्दस्वरूप। सहज आनन्द वस्तु स्वरूप, उसे परद्रव्य की ओर लक्ष्य जाने से उसे चैतन्य की परिणति का अभाव होकर उसे राग की परिणति होगी। वह चैतन्य की गति नहीं, वह दुर्गति है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है। यह वीतराग कहे, भाई! समझ में आया? **'सद्दव्वादो हु सुग्गइ'** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति शुद्धात्म भगवान प्रभु, उसकी ओर का आश्रय करने से उसे चैतन्य की सुगति होती है। अर्थात् तुझे मोक्ष का मार्ग और मोक्ष होता है। आहाहा!

अरेरे! इसने आत्मा की अनन्त काल में दया नहीं की। पर की दया करने का मिथ्या प्रयास किया। पर की दया करने जाये तो कहीं पर की दया कर नहीं सकता। परद्रव्य का क्या कर सकता है? विकल्प उठे, वह राग है। पर की दया का भाव उठे, वह राग है, वह तो हिंसा है। आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा है यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। पण्डितजी को याद है।

मुमुक्षु : ....

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषा मेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥४४॥

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय अमृतचन्द्राचार्य महाराज का शास्त्र है। जो यह टीका है, समयसार की। राग की उत्पत्ति, वह हिंसा है। चाहे तो भगवान की भक्ति का राग उत्पन्न होओ, स्मरण का उत्पन्न होओ, शास्त्र वाँचन का उत्पन्न होओ, आहाहा! गजब बात है न नाथ तेरी। यह विकल्प है, राग है, वह हिंसा है। ऐसा मार्ग भगवान का है।

मुमुक्षु : शुभभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव है।

मुमुक्षु : है तो अशुभभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभभाव तो पाप है। यह तो राग है वह हिंसा, शुभ वह हिंसा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ज्ञानी शुभ को भी पाप कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ को यहाँ हिंसा कहते हैं। अलग बात है। यहाँ है वह पुस्तक? पुरुषार्थसिद्धि उपाय, है इसमें? आहाहा! अशुभभाव नहीं। रतनलालजी! लो, आया। ४४वीं है न? अन्तर हैं इसमें। कितनी कही? ४४।

हिंसा और अहिंसा का निश्चय से लक्षण वर्णन करते हैं :—

१२९) अणु जइ जगहँ वि अहिययरु गुण-गणु तासु ण होइ।
तो तइलोउ वि किं धरइ णिय-सिर-उप्परि सोइ॥६॥

जिनागम का संक्षेप-सार यह है कि... है? **निश्चय से रागादि भावों का प्रगट न होना, वह अहिंसा है और उन रागादि भावों का उत्पन्न होना, वह हिंसा है। ऐसा जैन सिद्धान्त का सार है।** शुभभाव हिंसा है। भाई और कहे, अशुभ हिंसा है, भाई! बाहर में तो ऐसा ही कहते हैं न! बाहर में तो ऐसा कहे न! अशुभ हिंसा है। यहाँ तो पर की दया पालने का राग उत्पन्न होना, उसे पाल नहीं सकता परन्तु उत्पन्न होना, वह स्वयं हिंसा है, मार्ग ऐसा है, नाथ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग ऐसा है, बापू! यह अहिंसा परमधर्म। राग की उत्पत्ति न होना और आत्मा के आश्रय से वीतरागता उत्पन्न होना, वह अहिंसा परमधर्म है। पर को न मारना, वह अहिंसा, वह परम धर्म है ही नहीं। ४४ गाथा है। आहाहा!

निश्चय से रागादि भावों का प्रगट न होना, वह अहिंसा है... आहाहा! क्यों? कि आत्मा का स्वभाव ही वीतराग है। आत्मा का स्वभाव वीतराग ही स्वरूप है, उसका। यदि वीतरागस्वरूप है तो उसमें से वीतरागता प्रगट होकर सिद्धपद होता है। तो वह वीतरागस्वरूप है, उसमें से दृष्टि छोड़कर पर के लक्ष्य में भी कोई भी शुभराग भी उत्पन्न हो, पुण्यभाव हो, वह स्वरूप की हिंसा है। सुना नहीं कभी। रतनलालजी!

मुमुक्षु : कितने महीने रुकें तो समझ में आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई कहते हैं कि कितने समय रुकें तो समझ में आये? आहाहा! तो भी इतने आये न, यहाँ आये हैं न अभी मौके से। निकले हैं तो अनुकूल यहाँ के लिये। आहाहा! भगवान! क्या कहें? आहाहा!

कषाय के योग से जो राग उत्पन्न होता है, वह हिंसा है। बस! आहाहा! पर को न मारना, ऐसी दया पालन करूँ, ऐसा विकल्प उठा। वह निर्विकल्प भगवान आत्मा है, उसमें उसकी हिंसा हुई है। शान्ति में चोट पड़ी है, कहते हैं। ऐसी बात। लोगों को बाहर की बातें व्यवहार की ऐसी सुहावे न। लोग प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आवे वहाँ सुनना मुश्किल पड़े। यह अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य के टीकाकार समयसार, प्रवचनसार, उनका यह ग्रन्थ है। इसकी ४४वीं गाथा है। भाई का है ? देवीलालजी का ? भाई का है।

योगीन्द्रदेव, योगसार में तो ऐसा कहते हैं। मुनिराज है, दिगम्बर सन्त हैं, आनन्द के झूले में झूलनेवाले हैं। मुनि तो मुनि अर्थात्! आहाहा! यह योगसार में ऐसा कहते हैं। 'पाप पाप को सब कहे परन्तु अनुभवी जीव पुण्य को पाप कहते हैं।' योगसार है। यह इसके पीछे डाला है। किसमें ? परमात्मप्रकाश में पीछे डाला है ? इसमें है ? इसमें होगा पीछे, लो! लो, यहाँ हाथ आया। देखो! ७१, ७१ गाथा है।

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सब्बु इ को वि मुणेहि।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेइ॥७१॥

अर्थः—**जो पाप है, उसे तो सभी पाप मानते हैं,...** ७१। ऐई! सुना नहीं। सब सेठाई में... सेठाई में समय गँवाया सब। पन्नालालजी! ऐसा मार्ग है, भाई! वीतरागमार्ग भाई... आहाहा! है ? **जो पाप उसे तो सभी पाप मानते हैं, परन्तु जो पुण्य को भी पाप कहता है, वह कोई विरला ज्ञानी ही होता है।** आहाहा! ७१ गाथा है, भाई! यह परमात्मप्रकाश में ही है। दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किये हैं। आहाहा! ऐसी बात अन्य में तो नहीं, परन्तु श्वेताम्बर और स्थानकवासी में ऐसी बात नहीं। यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू!

मुमुक्षु : सब बात शास्त्रों में तो है परन्तु सोनगढ़ के अतिरिक्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में तो पड़ा ही है। यहाँ का है ? यह तो पहले के हैं।

मुमुक्षु : सुनाते हुए डरते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे बैठा ही नहीं। क्या डरे ? उल्टा बैठा है। सत्य है। सन्त पुकार करते हैं, ढिंढोरा पीटकर। वे कहाँ गुप्त रखते हैं ? नग्न मुनि—नग्न दिगम्बर, नागा बादशाह से आघा। उन्हें कहाँ पड़ी है किसी की ? यह मार्ग है। मानो, न मानो तुम्हारे

पास रहा। आहाहा! समाज समतौल रहेगा या नहीं? समाज में भाग पड़ जायेंगे या नहीं? उन्हें कुछ नहीं पड़ी है। मार्ग यह है। ऐसा दिगम्बर सन्तों का पुकार है। आहाहा! बात सुनने को मिलती नहीं, भाई कहते हैं। बात सच्ची। बात तो ऐसी है, बापू! क्या हो? लोगों को दुःख लगता है। हम मानते हैं, उससे और यह उल्टा कहाँ निकाला? बापू! बात यह है। भाई! तेरे हित की बात है। तेरे सुख के पंथ में पड़ने का यह मार्ग है। दुःख के पंथ में, राग के पंथ में पड़े हैं, वे तो दुःखपंथ में पड़े हैं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **परद्रव्यरूप-संस्कार सर्वथा नहीं है,...** देखो! धर्मदृष्टि होने से परद्रव्य के संस्कार से रहित हो, तब धर्म होता है। परद्रव्य के संस्कार यह पुण्य-पाप, दया-दान, वे परद्रव्य के संस्कार हैं। उनसे रहित आत्मा की दृष्टि करे, तब आत्मा के संस्कार पड़े—वीतरागता वह धर्म है। ऐसा मार्ग है, प्रभु! बैठे, न बैठे। आहाहा! एक व्यक्ति ऐसा कहता था। वह पूनमचन्द घासीलाल है न? मुम्बई। कहाँ के हैं वे? प्रतापगढ़ के हैं न? कालबादेवी मुम्बई । मन्दिर है बड़ा उनके घर में है। उनके सेठ ने एक बार कहलवाया। हमारे हिम्मतभाई हैं न, उनसे कहलवाया था। कानजीस्वामी कुछ थोड़ा ढीला रखे, हम कुछ ढीला रखें तो अपन (इकट्ठे हो जायें)।

वह जैसे बनिया होता है न? तो बनिया किसान से पाँच हजार माँगता हो। किसान-कृषिकार से। पाँच हजार रुपया माँगे। पाँच हजार रुपये दिये हों। जानता हो, उसे खबर हो तो अब इसके पास है नहीं। मुश्किल से दो हजार दे या नहीं, इसके पास साधन ही नहीं, तो भी ऐसा कहे, पाँच हजार बिना एक पाई लेना नहीं मुझे। पाँच हजार लेना है। वह कहे, एक हजार के अतिरिक्त पाई भी मेरे पास नहीं। वह समझता है कि दो हजार तो देने ही पड़ेंगे। ऐसा करते... करते... करते... वह चार हजार में आया, वह (किसान) बारह सौ में आया, यह तीन हजार में आया, वह पन्द्रह सौ में आया, फिर यहाँ दो हजार में आया तो वह हजार में आया। ऐसी यहाँ बनियागिरी है? सेठ! ऐई! पन्नालालभाई! आहाहा! बापू! अनादि सनातन जैनधर्म वीतरागमार्ग तो यह है, भाई! अनादि सन्तों ने यह पुकार किया है। आहाहा!

स्वभाव-संस्कार ही है। देखो! क्या कहा? सिद्ध में तो परद्रव्य का संस्कार नहीं है। तब है क्या? स्वभाव संस्कार है। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वह स्वभाव के संस्कार

वहाँ हैं। आहाहा! बहुत सरस बात आयी, तुम बराबर आये न! आहाहा! भाग्यशाली को तो कान में पड़े, ऐसी बात है, बापू! यह तो। ऐसी बात है। दुनिया के भाग्य तो अलग प्रकार के परन्तु यह अलग चीज़ है। वीतरागमार्ग गणधरों ने, सन्तों ने रचा है। वीतराग की दिव्यध्वनि में आया, वह गणधरों ने शास्त्र रचे, यह उसमें से सन्तों ने शास्त्र बनाये हैं। आहाहा!

कहते हैं, **स्वभाव-संस्कार ही है।** परद्रव्य के संस्कार वहाँ सिद्ध में जरा भी नहीं। वह कहते हैं न कि यह सब सिद्ध चले जायेंगे फिर यहाँ आयेंगे अवतरित होने। गीता में भी ऐसा कहते हैं। यहाँ बहुत पापी हों....

मुमुक्षु : यदा यदा हि धर्मस्य'

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्लानि भवति भारतं। अवतार धारण करे। वह यहाँ इनकार करते हैं। परद्रव्य के संस्कार वहाँ जरा भी है नहीं कि जिससे यहाँ अवतार धारण करे। आहाहा!

स्वभाव-संस्कार ही है। आहाहा! अनन्त ज्ञान जो स्वभावस्वरूप, उसका स्वभाव शक्ति, उसका सामर्थ्य। जो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति थी, उस पर्याय में वह संस्कार आये। सिद्ध में वे संस्कार हैं। परद्रव्य के जरा भी संस्कार हैं नहीं। आहाहा! एक-एक गाथा, एक-एक सन्तों की। देखो तो सही!

जो मूढ इन गुणों का अभाव मानते हैं,... उसमें वहाँ सिद्ध में वे गुण नहीं, ऐसा कहे, मानते हैं, **वे वृथा बकते हैं, मोक्ष तो अनन्त गुणरूप है।** आहाहा! जैसे आत्मा में अनन्तगुण थे, वे शक्तिरूप से थे, स्वभाव सामर्थ्यरूप से थे, वे पर्याय में प्रगट हो गये, इसका नाम सिद्ध है। आहाहा! वहाँ अनन्त गुण हैं। **इस तरह निर्गुणवादियों का निषेध किया।** उसमें गुण नहीं, ऐसे माननेवालों का निषेध किया। बापू! तुझे खबर नहीं। मोक्ष की दशा किसे कहना? उसका क्या स्वरूप है? तू निर्गुण कहता है उसे। उन लोगों में ऐसा कहते हैं। रजो, तमो, सत्व गुण नहीं। परन्तु रजो, तमो, सत्वगुण नहीं परन्तु वस्तु का गुण, पर्याय है या नहीं? आहाहा! पूर्णानन्द की प्राप्ति का जीव का स्वरूप, वह तो है। आहाहा! यह निर्गुण का निषेध हुआ। पश्चात् बौद्धमत का करेंगे विशेष....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण १, शनिवार
दिनांक-०९-१०-१९७६, गाथा-६, ७, प्रवचन-९९

परमात्मप्रकाश, गाथा-६। इसका भावार्थ चलता है। यहाँ आया है, देखो! मोक्ष की व्याख्या है, मोक्ष। जगत में चार प्रकार का पुरुषार्थ चलता है। एक पुण्य का पुण्य पुरुषार्थ; एक लक्ष्मी का पुरुषार्थ—पाप का और एक भोग का पुरुषार्थ। धर्म, अर्थ और काम। तीन का पुरुषार्थ, वह पुण्य-पाप का पुरुषार्थ बन्धन का कारण है। इन तीन से रहित मोक्ष का पुरुषार्थ वह सुख की प्राप्ति का पुरुषार्थ है। समझ में आया? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। धर्म शब्द से पुण्य, शुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह शुभभाव का पुरुषार्थ, बन्ध का कारण है। पुण्य है पुण्य, परन्तु है बन्ध का कारण। और लक्ष्मी का पुरुषार्थ यह कमाना, कमाना धूल के लिये। शान्तिभाई! धूल-धूल।

मुमुक्षु : कीमती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी कीमती नहीं वहाँ। पच्चीस हजार की अँगूठी पहनकर निकला हो और गली में कोई दूसरा न हो। क्या कहलाता है वह? गुण्डा। वह अँगूठी लेकर मार डाले। सुख का कारण है न? यह बना है। मुम्बई में ऐसा होता है। ऐसी गली में जाये और अँगूठी पहनी हुई हो पच्चीस-पचास हजार की और निकला गुण्डा। मार डाले और ले लेवे। सुख का कारण है न?

यहाँ तो दूसरी बात कहनी है कि पैसे के लिये प्रयत्न करना, वह पाप का प्रयत्न है। वह पाप का प्रयत्न है। भोग के लिये प्रयत्न विषय के भाग का, वह पाप का प्रयत्न है और दया, दान, व्रत का प्रयत्न, वह पुण्य का प्रयत्न है। परन्तु ये तीनों प्रयत्न बन्ध का कारण है। आत्मा को नुकसान का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरी दुनिया करे, वह नुकसान?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया करे या चाहे जो करे। कहो, पोपटभाई! पूरी दुनिया सब करती है न, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनवरदेव, जिनेश्वर परमात्मा ऐसा कहते हैं कि मोक्ष का पुरुषार्थ एक करनेयोग्य है। धर्मी जीव को तो मोक्ष की भावना करनेयोग्य है। वह मोक्ष कैसा है? उसकी बात चलती है। मोक्ष में अनन्त गुण हैं। जो आत्मा अनन्त गुण की शक्ति का सामर्थ्यवाला पदार्थ है, उसकी पर्याय में शक्ति का पूरा विकास हो गया। मोक्ष-सिद्ध में मोक्ष में णमो सिद्धाणं। उन सिद्ध को अनन्त गुण का विकास पर्याय में प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं कि मोक्ष में गुण नहीं। उसका निषेध करते हैं। मोक्ष की दशा... नौ तत्त्व में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। तो मोक्षतत्त्व कैसा है, उसकी प्रतीति कराते हैं। समझ में आया? वहाँ पर्याय में अनन्त गुण हैं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त ईश्वरता, अनन्त स्वच्छता ऐसी अनन्त शक्तियों का वहाँ विकास हो गया है। वह मोक्ष धर्मी जीव को करनेयोग्य है। कहो, भगवानजीभाई! यह बात तो यहाँ है। यह तुम्हारे धूल और पैसे दो-पाँच करोड़ और धूल और... वह तो सब पापी प्राणी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शास्त्र में भले ऐसा लिखा परन्तु लोक में तो उनका बोलबाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक में गहल-पागल में तो बोलबाला ही बोला जाये न! लोग पागल हैं। शान्तिभाई! यहाँ तो बात ऐसी है। ऐई! यह सब करोड़ोंपति बैठे। लोग इनकी महिमा करे। पागल पागल की महिमा करे।

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनवरदेव अथवा सन्त, महा दिगम्बर सन्त, अनन्त आनन्द के अनुभवी इस जगत को प्रसिद्ध करते हैं कि हे भाई! मोक्ष ही इच्छनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त कोई इच्छा करनेयोग्य है नहीं। क्योंकि मोक्ष में अनन्त गुण हैं। ऐसा कहना है। यहाँ तक आया है अपने। **परद्रव्यरूप-संस्कार सर्वथा नहीं है,...** यहाँ आया है। है बीच में? शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह आत्मा जो है—वस्तु, उसकी जब मोक्षदशा—परम आनन्द और अनन्त ज्ञानदशा प्रगट होती है, तब उसमें अनन्त गुण हैं। परद्रव्य के संस्कार का उसमें अभाव है। क्या? समझ में आया? जैसे यहाँ परद्रव्य के संस्कार राग-द्वेष-पुण्य-पाप (भाव होते हैं), उन परद्रव्य के संस्कार का मोक्ष में अभाव है। परन्तु स्वद्रव्य के संस्कार हैं। कौन से संस्कार? देखो! है? **स्वभाव-संस्कार**

ही है। यहाँ तक आया है। आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु आत्मा, तो उसकी पर्याय में मोक्ष में स्वभाव के संस्कार प्रगट हुए हैं। आहाहा! अज्ञानी ऐसा कहता है कि पर के संस्कार रह जाये तो वह मोक्ष नहीं। यहाँ कहते हैं कि पर के संस्कार रहे तो मोक्ष नहीं परन्तु स्व के संस्कार रहते हैं। वह अज्ञानी स्व के संस्कार की भी मोक्ष में ना करता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त ईश्वरता का समुदायरूप स्वरूप, उसकी पर्याय में, दशा में मोक्षदशा, वह पर्याय है—दशा है, उसमें अनन्त गुण की व्यक्तता प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन में धर्म की पहली सीढ़ी, सम्यग्दर्शन प्रथम धर्म की शुरुआत। उस सम्यग्दर्शन में भी जितने भगवान आत्मा में गुण हैं, शक्ति है, सामर्थ्य है, उन सर्व गुण की शक्ति का, अनन्त गुण की शक्ति का एक अंश व्यक्तरूप सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? जिसे श्रीमद् राजचन्द्र ऐसा कहते हैं कि सर्वगुणांश, वह समकित। सर्वगुणांश, वह समकित। अपने उसमें टोडरमलजी रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा कहते हैं कि जितने आत्मा में गुण हैं, उन सबके गुण का एक अंश प्रगट हो गया है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी, टोडरमलजी, मोक्षमार्गप्रकाशक (के अन्त में प्रकाशित है)। समझ में आया?

जैसे चन्द्र की दूज उगती है, दूज। तो उसमें सब प्रकाश की पर्याय का अंश प्रगट हुआ है। पूर्णिमा हो तब पूर्ण हो जाये। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त संख्या से गुण-शक्ति पड़ी है। उसे जब सम्यग्दर्शन होता है... आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान। जिसे सम्यग्दर्शन परमात्मा जिनवरदेव कहते हैं। उस सम्यग्दर्शन में जितनी संख्या में अन्तर आत्मा में गुण हैं, उन सबका एक अंश व्यक्त—प्रगट हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! तो जिस सम्यग्दर्शन में सम्यक्—जैसा वस्तु का स्वरूप है, भगवान जिनवरदेव ने जो वस्तु आत्मा देखा,.. यह तो आया था न एक बार? 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल।' हे प्रभु! आप सर्व जगत को देखते हो। केवली परमात्मा को कहते हैं। 'निज सत्ता से शुद्ध सबको पेखता हो लाल।' हे नाथ! हे जिनवरदेव परमेश्वर परमात्मा! हमारे आत्मा को आप निज सत्ता से शुद्ध देखते हो। यह आत्मा की शुद्ध सत्ता शक्ति शुद्ध है। उसे भगवान

आत्मा कहते हैं। आहाहा! तो ऐसा शुद्ध आत्मा... अलौकिक बातें हैं, भाई! यह कहीं बाहर की... एक तो पैसे का तूफान, पागलपन पागल, उसमें और विषय का तूफान। स्त्रियाँ अनुकूल हों, पुत्र अनुकूल हों, पाँच-पच्चीस लाख का मकान बनाया हो न बँगला, विशाल बँगला।

मुमुक्षु : हजीरा का अर्थ कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हजीरा का अर्थ यह है कि जामनगर में में नदी के किनारे लोटिया वोरा को गाड़ने के मकान को हजीरा कहते हैं। अभी है। यह जामनगर है न? नदी के किनारे बड़े लोटिया वोरा नहीं होते? टोपीवाले लोटिया। वे मर जायें न, तब वहाँ गाड़ते हैं। उसे हजीरा कहते हैं। बड़ा हजीरा होता है। इसी प्रकार इसे बड़ा हजीरा पाँच-पचास लाख का मकान, विशाल हजीरा में दब गया है, यह भान बिना का। आहाहा! समझ में आया?

यह बात नहीं की थी अभी? गोवा में नहीं अभी? एक बनिया है वह गुजर गया। अपना स्थानकवासी जैन था। दो अरब चालीस करोड़। इतने पैसे। शान्तिलाल खुशाल। उनकी बहिन की पुत्रियाँ अपने यहाँ ब्रह्मचारी हैं, ६४ लड़कियों में। दो अरब चालीस करोड़। ६१ वर्ष की उम्र। उसकी स्त्री को हेमरेज हुआ था। बेभान। मुम्बई में दवा के लिये ले गये। मुम्बई में। वहाँ उसे स्वयं को डेढ़ बजे लगभग दर्द उत्पन्न हुआ। बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर को बुलाते हैं। जहाँ आता है वहाँ भाईसाहब का भवान्तर हो गया। एक भव छोड़कर दूसरे भव। भटकने के लिये गया होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : डॉक्टर नहीं आ सके थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर आने से पहले चला गया, चला गया। डॉक्टर आवे तो क्या करे? डॉक्टर भी मर जाता है। आहाहा! डॉक्टर क्या करे? उसकी स्त्री को हेमरेज हुआ था, इसलिए वहाँ आये हुए थे। उसमें वह मर गया। अब उस स्त्री को जरा महीने भर बाद खबर पड़ी कि पति मर गया। वह असाध्य थी। अभी भी अब असाध्य है। तेरह-चौदह महीने हुए। असाध्य। बँगले में पड़ी है।

मुमुक्षु : गुजर गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गई ? कब ? अभी ?

मुमुक्षु : दस-बारह दिन हुए होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दस-बारह दिन हुए। आहाहा! ऐसा। मर गयी। तेरह-चौदह महीने से असाध्य थी। धूल में भी काम आवे नहीं तेरे बँगले और पैसे। श्मशान में पैसे काम आते होंगे वहाँ ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह लक्ष्मी का प्रयत्न अकेला पाप, विषय का भोग का प्रयत्न अकेला पाप। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि का भाव प्रयत्न पुण्य। दोनों बन्धन का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी पुण्य को क्या कहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी पुण्य को पाप कहे। 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवी जीव पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! बात ऐसी है, बापू! सूक्ष्म, भाई! पुण्य भी एक सोने की बेड़ी है। पाप लोहे की बेड़ी, पुण्य सोने की बेड़ी। परन्तु बेड़ी है वह। इसके अतिरिक्त यहाँ तो मोक्ष के पुरुषार्थ की व्याख्या भगवान करते हैं। आहाहा!

भाई! तू इन तीन का पुरुषार्थ छोड़ दे। छोड़कर मोक्ष का पुरुषार्थ कर। क्योंकि उसमें अनन्त गुण हैं, अनन्त आनन्द है। सिद्ध में अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द है। तेरे इन्द्रिय के विषय के सुख में तो कल्पना तो जहर है। विषय के सुख का भाव तो जहर है। आहाहा! सिद्ध में तो अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द की लहर उठती है। यहाँ कहेंगे कि अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का यदि समूह न हो तो सिद्ध भगवान अतीन्द्रिय आनन्द को किस लिए सेवे ? वह फिर सातवीं गाथा में कहेंगे। समझ में आया ? सातवीं गाथा में आता है। '**जिय सिद्ध वि सेवहिँ सोइ**' सिद्ध भगवान अनन्त आनन्द का सेवन करते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **परद्रव्य-संस्कार-सर्वथा नहीं है,...** मोक्ष-भगवान परमानन्द दशा प्रगट हुई, अपना शुद्ध चैतन्य पदार्थ, उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि करके, उसका ध्यान करके जो मोक्ष की दशा प्रगट हुई, उसमें परद्रव्य के संस्कार का बिल्कुल अभाव है। समझ में आया ? **स्वभाव-संस्कार ही है।** अकेला भगवान आत्मा। ज्ञान अतीन्द्रिय

आनन्द शान्ति, स्वच्छता आदि ऐसे जो गुण हैं, उनके पर्याय में संस्कार हैं। आहाहा! है उसमें? है या नहीं? बीच में है। यहाँ तक आया था परसों।

स्वभाव-संस्कार ही है। इतना। **परद्रव्यरूप-संस्कार सर्वथा नहीं है, स्वभाव-संस्कार ही है।** आहाहा! अभी तो मोक्ष क्या है, इसकी खबर नहीं होती। यह दुनिया मूढ़-गहल-पागल संसार में लवलीन। मरकर फिर नरक और ढ़ोर में-पशु में जाये। बहुत पैसेवाले तो ढोर में-पशु में ही जानेवाले हैं। नरक में नहीं जाये, क्योंकि माँस-मदिरा नहीं खाते(-पीते)। बनिया अपने इसलिए माँस-मदिरा तो होती नहीं। अभी तो अच्छे में तो हो नहीं। होंगे कुछ लड़के ऐसे। अच्छे लोगों को तो माँस-मदिरा तो होती नहीं। माया, कपट, कुटिलता और अकेली ममता। आहाहा! कमाना और दूसरे की अपेक्षा अधिकरूप से गिनाना। दुनिया से कुछ हम विशेषरूप हुए हैं, ऐसा बतलाना। विशेष अर्थात् धूल में। पैसे और इज्जत में। उसी और उसी में मर गया अनन्त काल से। अरेरे! चैतन्य की जाति को जानने का इसने प्रयत्न नहीं किया।

यहाँ यह परमात्मा कहते हैं। भगवान! अब तो कर। ऐसी मोक्षदशा, उसके लिये प्रयत्न तो कर। आहाहा! वह प्रयत्न भगवान आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा है। अभी वह अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्मा है, परमात्मस्वरूप है, भगवत्स्वरूप आत्मा अन्दर है। आहाहा! उसकी दृष्टि कर, उसका ज्ञान कर और उसमें लीनता कर। वह मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? और उसका फल वह मोक्ष है। यहाँ मोक्ष की बात चलती है।

परद्रव्यरूप-संस्कार सर्वथा नहीं है, स्वभाव-संस्कार ही है। जो मूढ़ इन गुणों का अभाव मानते हैं,... मोक्ष में गुण का अभाव मानते हैं। यह वैशेषिक आदि मत है न, मत? **वे वृथा बकते हैं,...** आहाहा! यहाँ भी जब सम्यग्दर्शन में गुण का नमूना पर्याय में आ जाता है तो सिद्ध की बात क्या करना? आहाहा! वे तो पूर्ण अनन्त आनन्द आदि शक्ति की व्यक्तता परमात्मा सिद्ध को हो गयी होती है। **मोक्ष तो अनन्त गुणरूप है।** है? गुण शब्द से पर्याय लेना है। गुण का आत्मा में अनन्त आनन्द अनादि काल का है। परन्तु मोक्ष में अनन्त गुण का अर्थ अनन्त पर्याय-अवस्था। सिद्ध भी एक अवस्था है। संसार विकारी अवस्था है, मोक्षमार्ग निर्मल अपूर्ण निर्मल अवस्था है और मोक्ष में पूर्ण निर्मल अवस्था है। गुण तो आत्मा में त्रिकाल है। अरे! आहाहा! वे अनन्त गुण कहे, वह

पर्याय। सिद्ध में अनन्त पर्याय निर्मल, अनन्त हो गयी है। आहाहा! **इस तरह निर्गुणवादियों का निषेध किया।** जो सिद्ध में, मोक्ष में गुण नहीं मानते, उनका निषेध किया।

तथा बौद्धमती जीव के अभाव को मोक्ष कहते हैं। अब बौद्ध है न, बौद्ध ? चीन में अभी बौद्धमत बड़ा है। वे जीव के अभाव को मोक्ष कहते हैं। **वे मोक्ष ऐसा मानते हैं कि जैसे दीपक का निर्वाण (बुझना)...** दीपक होता है न दीपक ? दीपक। उसमें काजल है न, काजल ? तो काजल जैसे नाश पावे तो दीपक भी नाश हो जाता है, ऐसा बौद्धमति कहते हैं। काजल का नाश करने जाये तो दीपक का भी नाश हो जायेगा। इसी प्रकार मोक्ष में मैल निकालने जाओगे तो चैतन्य का दीपक ही बुझ जायेगा। आहाहा! ऐसे अभिप्राय जगत में पड़े हैं। यहाँ तो परमेश्वर जिनवरदेव मोक्ष कैसा कहते हैं, उसकी बात करके उससे विरोध का निषेध करते हैं। ऐसे मत हैं न जगत में बस ? **जीव का अभाव वही मोक्ष है। ऐसी बौद्ध की श्रद्धा का भी तिरस्कार किया।** बौद्ध की श्रद्धा ऐसी है, उसे झूठी कहा। लो! वह कहे, बौद्ध भी मोक्ष गये हैं और भगवान भी मोक्ष में गये हैं। चिमनचकु स्थानकवासी का मुम्बई है न ? समाचारपत्र में आया था। ऐसे उनके बड़े प्रमुख। बौद्ध भी मोक्ष गये हैं और महावीर भी मोक्ष गये हैं। यहाँ कहते हैं कि बौद्ध की श्रद्धा का तिरस्कार करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : दुनिया आगे बढ़ गयी न!

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया आगे बढ़ गयी भटकने में। आहाहा!

क्योंकि जो जीव का ही अभाव हो गया, तो मोक्ष किसको हुआ ? जीव का अभाव हुआ तो मोक्ष हुआ किसको ? वहाँ आत्मा तो रहा नहीं। आहाहा! **जीव का शुद्ध होना, वह मोक्ष है,...** भगवान आत्मा पवित्रता का पिण्ड प्रभु आत्मा है, उसकी पर्याय में पवित्रता, शुद्धता पूर्ण प्रगट होना, उसका नाम मोक्ष है। आहाहा! मोक्ष कहीं बाहर से नहीं आता। अन्तर में जो शक्ति पूर्ण मुक्तस्वरूप है, प्रत्येक आत्मा की मुक्त शक्ति अन्दर में है, मुक्तरूप ही है, उसका आश्रय करने से पर्याय में मुक्तदशा होती है। यह शुद्ध होना, वह मोक्ष है। अभाव होना, वह मोक्ष नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

अभाव कहना वृथा है। सांख्यदर्शनवाले ऐसा कहते हैं कि जो एकदम सोने की अवस्था है, वही मोक्ष है,... सोना अर्थात् सो जाना। नींद में सो जाना, इसका नाम

मोक्ष। उसमें चैतन्य भी नहीं और कुछ नहीं। आहाहा! **एकदम सोने की...** सोने की अर्थात् समझे? यह सोना अर्थात् सोना (स्वर्ण) नहीं। सो जाने की अवस्था। **वही मोक्ष है, जिस जगह न सुख है, न ज्ञान है,...** अज्ञानी ऐसा मानता है। मोक्ष में नहीं सुख, नहीं ज्ञान। **ऐसी प्रतीति का निवारण किया।** ऐसी श्रद्धा का निषेध किया कि तेरी श्रद्धा झूठी है। तू मोक्ष को जानता नहीं। आहाहा!

नैयायिक ऐसा कहते हैं कि जहाँ से मुक्त हुआ वहीं पर ही तिष्ठता है,... नैयायिक का मत है। जैसे पक्षी के पंख टूट जायें तो पक्षी वहीं का वहीं रहता है। उसी प्रकार मोक्ष हो तो वहीं का वहीं रहे। ऐसा कहते हैं। **ऊपर को गमन नहीं करता। ऐसे नैयायिक के कथन का लोक-शिखर पर तिष्ठता है,...** भगवान तो कहते हैं कि मोक्ष तो लोक के शिखर के ऊपर है। यहाँ मोक्ष होता है तो लोक शिखर के ऊपर जाते हैं। ऊपर है न लोक के अग्र में? सिद्ध, अनन्त सिद्ध। मोक्ष होता है यहाँ, पूर्ण आनन्द की दशा। वह आत्मा लोकशिखर पर रहता है। अनन्त सिद्ध परमात्मा। णमो सिद्धाणं। अनन्त सिद्ध लोक के अग्र में रहते हैं। वे लोग कहते हैं कि जहाँ मोक्ष होता है, वहीं के वहीं रहते हैं। झूठ है। वे मोक्ष को नहीं जानते। लो!

इस वचन से निषेध किया। जहाँ बन्धन से छूटता है, वहाँ वह नहीं रहता,... दृष्टान्त देते हैं। **बन्धन से छूटता है, वहाँ वह नहीं रहता, यह प्रत्यक्ष देखने में आता है, जैसे कैदी कैद से जब छूटता है,...** कैदी। **तब बन्दीगृह से छूटकर अपने घर की तरफ गमन करता है...** या वहीं का वहीं रहता है बन्दीगृह में? समझ में आया? कैदी बन्दीगृह में से छूटता है तो अपने घर की ओर जाता है। **वह निजघर निर्वाण ही है।** आहाहा! मोक्ष, वह निजघर, वह निर्वाण है। अपना निर्वाण यहाँ हुआ तो निजघर ऊपर, वहाँ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? पशु भी पूरे दिन जंगल में जाता है और शाम को आता है तो अपने घर में आता है। घर में आता है न? दरवाजा बन्द हो तो सिर मारे। पशु सवेरे से बाहर निकलता है न? जंगल में चरता है। शाम को आता है। घन के पाँच-पच्चीस व्यक्ति हों, दरवाजा बन्द हो और खबर न हो व्यक्ति को कि समय हो गया है। तो सिर मारे। घर में जाना है। इसी प्रकार आत्मा बन्दीगृह अज्ञान में से छूटकर, पुण्य-पाप के बन्धन से छूटकर अपना निजघर आनन्द में जाता है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें अब।

धर्म कैसे करना? वह धर्म इस प्रकार करना। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु की दृष्टि करके अनुभव करना, वह धर्म है। क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत और पूजा, भक्ति और तप, वह कोई धर्म नहीं। समझ में आया? स्थानकवासी में तो पर्यूषण में इसने आठ उपवास किये थे, इसने दस उपवास किये थे, इसने महीने का किया था और इसने... किये थे। बड़े लम्बे लेख आवे। धूल भी नहीं। वह तो क्रिया का राग है। समझ में आया? यहाँ तो आनन्द प्रभु स्वरूप, वीतरागमूर्ति आत्मा, वह वीतरागमूर्ति में लीन होना, वह धर्म और वह मोक्ष का उपाय है। आहाहा!

निजघर निर्वाण ही है। जैन-मार्ग में तो इन्द्रियजनितज्ञान जो कि मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय हैं, उनका अभाव माना है,... यह लोग कहते हैं न कि मोक्ष में ज्ञान का अभाव है। तो यहाँ कहते हैं कि इन्द्रियजनित ज्ञान का अभाव है। **और अतीन्द्रियरूप जो केवलज्ञान है, वह वस्तु का स्वभाव है,...** आहाहा! जैसे छोटी पीपर—लींडी पीपर होती है न? छोटी पीपर। चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर होती है न? चौंसठ पहरी चरपराई। तो चरपराई अन्दर पड़ी है। घोंटने से वह चरपराई अन्दर में है, वह बाहर आती है। चौंसठ पहरी चरपराई—चरपराहट बाहर आती है, वह अन्दर में है, वह आती है। उसी प्रकार आत्मा में अनन्त ज्ञान और आनन्द पड़ा है। उसका अन्तर एकाग्र ध्यान करने से शक्ति में से व्यक्तता पर्याय में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान होता है। चौंसठ अर्थात् रुपया। चौंसठ पैसा अर्थात् रुपया, सोलह आना। वह जैसे पूरा-पूरा छोटी पीपर में सोलह आने चरपराई पड़ी है, उसी प्रकार आत्मा में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान भरे हैं। यह बातें सुनना कठिन पड़े। बाहर में एक तो बेचारा पूरे दिन पाप में पड़ा हो २३-२२ घण्टे। एकाध घण्टे सुनने जाये, वहाँ उसे ऐसा मिले, दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, वह धर्म। वह बेचारा मर गया वहाँ। वह तो विकल्प और राग है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि घर में से निकले तो निर्वाण होता है, ऐसा कहा न? **अतीन्द्रियरूप जो केवलज्ञान है,...** सिद्ध में परमात्मा में—मोक्ष में केवलज्ञान तो है। एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे ऐसी ज्ञान की मौजूदगी मोक्ष में है। ज्ञान का अभाव, वह मोक्ष, ऐसा है नहीं। **वह वस्तु का स्वभाव है, उसका अभाव आत्मा में नहीं हो सकता। स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, शब्द इन पाँच इन्द्रिय विषयोंकर उत्पन्न हुए सुख का तो अभाव ही**

है,... यह मोक्ष की व्याख्या करते हैं। जीव की अशुद्धता का अभाव है। मोक्ष में अपवित्रता का, मलिनता का अभाव है, परन्तु शुद्धपने का अभाव नहीं। आहाहा! मोक्ष में पूर्ण शुद्धता प्रगट हो गयी। ... धर्म, अर्थ और काम। यह तीन पाप और पुण्य बन्ध के कारण हैं। चार गति में भटकने का कारण है। आहाहा! इससे यह पाँचवीं गति मोक्ष का पुरुषार्थ (करनेयोग्य है)। समझ में आया? यह छठवीं गाथा (पूरी) हुई। बहुत विस्तार किया।

आगे कहते हैं... सातवीं गाथा, परमात्मप्रकाश। दूसरा अधिकार। योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त जंगलवासी का बनाया हुआ है। आहाहा! परमात्मप्रकाश। हम परमात्मप्रकाश ही हैं। हुकमचन्दजी पण्डित है न? हुकमचन्दजी पण्डित जयपुर। बड़े पण्डित हैं। उम्र छोटी है। उनका बड़ा लड़का है, उसका नाम परमात्मप्रकाश है। बहुत होशियार है। और छोटे लड़के का नाम अध्यात्मप्रकाश है। दो लड़कों के नाम ऐसे हैं। हुकमचन्दजी, बहुत क्षयोपशम। अभी सब पण्डितों में... उम्र छोटी है, ४० वर्ष। ....

यहाँ कहते हैं कि **जो मोक्ष उत्तम सुख नहीं है, तो सिद्ध उसे निरन्तर क्यों सेवन करे?** परमात्मा सिद्ध हैं, वे निरन्तर आनन्द का सेवन करे। अज्ञानी निरन्तर राग का सेवन करे। संसारी प्राणी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी अनादि से अनन्त काल तक विकार, राग और द्वेष का सेवन करे, वह दु:ख है। दु:ख होगा? पैसेवाले को सब सुखी कहते हैं। पैसे के ऊपर लक्ष्य जाना, वही दु:ख है। धूल-मिट्टी है, अजीव पुद्‌गल है। वे मेरे, यह मान्यता मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व, वह महादु:ख है। आहाहा! खबर नहीं। चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त लक्ष्मी सम्पन्न, वह मैं हूँ, यह मान्यता सम्यक् है और वह सुख है। समझ में आया? आहाहा! 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दु:खिया' 'सुखिया जगत में सन्त' आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु की जिसने सेवा की, पर्याय में—अवस्था में आनन्द आया, वह जगत में सुखी है। बाकी सब प्राणी दु:खी हैं। अरबोंपति भिखारी सब दु:खी हैं। माँगते हैं, भिखारी... भिखारी। माँगण समझते हो? भिक्षु। लाओ... लाओ... लाओ। पैसा लाओ, पैसा लाओ। बड़े पाचक—भिखारी।

धर्मी अपने आनन्द और ज्ञानस्वभाव की भावना करता है। धर्मी को पर की भावना नहीं होती। समझ में आया? भावना नहीं होती। आसक्ति हो जाती है। भावना नहीं होती कि यह हो। आहाहा!

गाथा - ७

अथोत्तमं सुखं न ददाति यदि मोक्षस्तर्हि सिद्धाः कथं निरन्तरं सेवन्ते तमिति कथयति–

१३०) उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं सयलु वि कालु जिय सिद्ध वि सेवहिँ सोइ।।७।।

उत्तमं सुखं न ददाति यदि उत्तमः मोक्षो न भवति।
ततः किं सकलमपि कालं जीव सिद्धा अपि सेवन्ते तमेव।।७।।

उत्तमु इत्यादि। उत्तमु सुक्खु उत्तमं सुखं ण देइ न ददाति जइ यदि चेत्। उत्तमु उत्तमो मुक्खु मोक्षः ण होइ न भवति। तो ततः कारणात्, किं किमर्थं, सयलु वि कालु सकलमपि कालम्। जिय हे जीव। सिद्ध वि सिद्धा अपि सेवहिं सेवन्ते सोइ तमेव मोक्षमिति। तथाहि। यद्यतीन्द्रियपरमाह्लादरूपमविनश्वरं सुखं न ददाति मोक्षस्तर्हि कथमुत्तमो भवति उत्तमत्वाभावे च केवलज्ञानादिगुणसहिताः सिद्धा भगवन्तः किमर्थं निरन्तरं सेवन्ते च चेत्। तस्मादेव ज्ञायते तत्सुखमुत्तमं ददातीति। उक्तं च सिद्धसुखम् – 'आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं, वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निःप्रतिद्वन्द्वभावम्। अन्यद्रव्यानपेक्षं निरूपममितं शाश्वतं सर्वकालमुत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्।।'। अत्रेदमेव निरन्तरमभिलषणीयमिति भावार्थः।।७।।

आगे कहते हैं कि जो मोक्ष उत्तम सुख नहीं दे, तो सिद्ध उसे निरंतर क्यों सेवन करें?–

यदि उत्तम सुख नहीं मोक्ष में तो वह भी नहिं हो उत्तम।
तो क्यों सभी सिद्धगण करते सदा मोक्ष का ही सेवन।।७।।

अन्वयार्थ :– [यदि] जो [उत्तमं सुखं] उत्तम अविनाशी सुख को [न ददाति] नहीं देवे, तो [मोक्षः उत्तमः] मोक्ष उत्तम भी [न भवति] नहीं हो सकता, उत्तम सुख देता है, इसीलिये मोक्ष सबसे उत्तम है। जो मोक्ष में परमानंद नहीं होता [ततः] तो [जीव] हे जीव, [सिद्धा अपि] सिद्धपरमेष्ठी भी [सकलमपि कालं] सदा काल [तमेव] उसी मोक्ष को [किं सेवंते] क्यों सेवन करते? कभी भी न सेवते।

भावार्थ :– वह मोक्ष अखंड सुख देता है, इसीलिये उसे सिद्ध महाराज सेवते हैं, मोक्ष परम आहलादरूप है, अविनश्वर है, मन और इन्द्रियों से रहित है, इसीलिये उसे सदाकाल सिद्ध सेवते हैं, केवलज्ञानादि गुण सहित सिद्धभगवान् निरंतर निर्वाण में ही

निवास करते हैं, ऐसा निश्चित है। सिद्धों का सुख दूसरी जगह भी ऐसा कहा है 'आत्मोपादान' इत्यादि। इसका अभिप्राय यह है कि इस अध्यात्म-ज्ञान के सिद्धों के जो परमसुख हुआ है, वह कैसा है कि अपनी अपनी जो उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है, पर की सहायता से नहीं है, स्वयं (आप ही) अतिशयरूप है, सब बाधाओं से रहित है, निराबाध है, विस्तीर्ण है, घटती-बढ़ती से रहित है, विषय-विकार से रहित है, भेदभाव से रहित है, निर्द्वन्द्व है, जहाँ पर वस्तु की अपेक्षा ही नहीं है, अनुपम है, अनंत है, अपार है, जिसका प्रमाण नहीं सदा काल शाश्वत है, महा उत्कृष्ट है, अनंत सारता लिये हुए है। ऐसा परमसुख सिद्धों के है, अन्य के नहीं है। यहाँ तात्पर्य यह है कि हमेशा मोक्ष का ही सुख अभिलाषा करनेयोग्य है, और संसार-पर्याय सब हेय है।।७।।

गाथा-७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो मोक्ष उत्तम सुख नहीं दे,... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द न दे, **तो सिद्ध उसे निरन्तर क्यों सेवन करें?** परमात्मा सिद्ध भगवान अनन्त आनन्द का किसलिए सेवन करे? आहाहा! कैसी शैली से बात ली है! सातवीं गाथा।

१३०) उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं सयलु वि कालु जिय सिद्ध वि सेवहिँ सोइ॥७॥

अन्वयार्थः—जो उत्तम अविनाशी सुख को नहीं देवे, तो मोक्ष उत्तम भी नहीं हो सकता,... आहाहा! मोक्ष में तो अनन्त सुख है, अतीन्द्रिय आनन्द है। आहाहा! यदि अतीन्द्रिय आनन्द न हो तो सिद्ध उस आनन्द को कैसे सेवे? उत्तम सुख है, उत्तम सुख। ओहो! निर्विकल्प आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का सेवन सिद्ध को है। इसका नाम मोक्ष है। जिसे अपने अतीन्द्रिय आनन्द में परद्रव्य की कोई अपेक्षा नहीं। दुनिया में जैसे यह लक्ष्मी, स्त्री, परिवार हो तो मैं सुखी हूँ, ऐसी जो अपेक्षा है, वह दु:खी है। आहाहा!

सिद्ध में अपने मोक्षसुख में किसी परद्रव्य की अपेक्षा नहीं। अपना स्वभाव ही ऐसा है। अतीन्द्रिय आनन्द अपने आत्मा में शक्ति और सत्त्व और गुण का गोदाम प्रभु, भगवान आत्मा तो अनन्त आनन्द का गोदाम है। यह तुम्हारे गोदाम में डालते हैं न पैसा-बैसा? यह केसर के डिब्बे हों। मुम्बई में बड़े गोदाम होते हैं। हजारों केसर के डिब्बे, चाय की बोरियाँ, लाख-लाख बोरियाँ। बड़ा गोदाम। होता है वह तो। हमारे पालेज में

हमारी दुकान में भागीदार है न? उसके घर में १३ गोदाम हैं। पालेज। भरूच और वड़ोदरा के बीच। तेरह गोदाम हैं। ५०-५० हजार, ६०-६० हजार के एक-एक। तेरह गोदाम। घर के, हों! घर के। घर की दुकान है, घर के मकान हैं। पैसे हैं। वहाँ नौ वर्ष मैं रहा हूँ। हमारी दुकान थी न! पिताजी की दुकान थी। पालेज नहीं रास्ते में? भरूच और वड़ोदरा के बीच पालेज आता है। वहाँ। वहाँ मैं नौ वर्ष रहा हूँ। संवत् १९५९ से ६८। संवत् १९५९ से ६८। ६४ वर्ष पहले। हमारे भागीदार बुआ के पुत्र हैं। वे गुजर गये। उन्हें तीन लड़के हैं। घर का है वहाँ। पैसेवाले हैं। उनके लड़के को ३० लाख रुपये हैं। गोदाम है, दुकान है।

मुमुक्षु : वहाँ तो रुपये हैं, उसकी आपने महिमा की।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दु:खी है बेचारा, ऐसा कहना है यहाँ। उस गोदाम में दु:ख है। इस गोदाम में सुख है। भगवानजीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : रुपया हो उसे करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये किसके बाप के हैं? जड़ के हैं। करे क्या? उसके कारण से आवे और उसके कारण से जाये। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : दान में दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दान में दे तो मन्द राग है, पुण्य है। धर्म नहीं। आहाहा! धूल में भी कहीं (सुख) नहीं। दु:खी है बेचारे। यह रहे नहीं? मलूकचन्दभाई। इनके दो लड़के मुम्बई में, नहीं? पूनमचन्द। उसके पिता हैं ये। पूनमचन्द मलूकचन्द यह मलूकचन्द। पूनमचन्द के पास पाँच करोड़। बड़ा लड़का है न्यालचन्द, वह वहाँ है— स्वीट्जरलैण्ड। उसके पास चार करोड़। यह नौ करोड़ों का बाप है। इसे कुछ नहीं मिलता, हों! यह तो लड़कों ने कमाये हैं। उसमें इनका हक नहीं।

मुमुक्षु : बाप तो कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप कहलाये परन्तु हक नहीं इसे खर्च करने का। आहाहा! यह संसार ऐसा है पूरा। धूलधाणी।

यहाँ कहते हैं, ऐसा जो उत्तम सुख अतीन्द्रिय मोक्ष में न हो... **इसलिए मोक्ष सबसे**

उत्तम है। जो मोक्ष में परमानन्द नहीं होता तो हे जीव! सिद्ध परमेष्ठी भी सदाकाल... आहाहा! जब से मोक्ष हुआ तब से अनन्त काल... अनन्त काल अतीन्द्रिय आनन्द का सेवन है। आहाहा! यह पाँच-पचास लाख, एक-दो-पाँच-दस करोड़। वह तो पाँच-पच्चीस वर्ष रहे और उसमें ब्लड प्रेशर का दर्द हो और ऐं... ऐं... करता हो वापस उसमें भी वह। है न उसे ब्लड प्रेशर का दर्द है। पूनमचन्द को। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! सुख तो देख। अतीन्द्रिय सुख यदि मोक्ष में न हो तो सिद्ध किसलिए सादि-अनन्त सेवे? आहाहा! जब से आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, अपने मोक्ष के मार्ग में उत्पन्न हुआ, वह मोक्ष की पर्याय सादि-अनन्त अतीन्द्रिय का सेवन सिद्ध भगवान करते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी थोड़ा सुख, उसमें फिर उकताहट आवे। महिमा बहुत करे, लो न! ओहोहो! तुम ऐसे... बहुत प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाये)।

मुमुक्षु : उसमें तो पैसा देना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा दे और यों ही महिमा करे, लो न कोई। महिमा करते-करते रात्रि में नींद आवे तो (कहे), बन्द रखो। बन्द रखना। क्यों? परन्तु सुख है न? तेरी महिमा करता है, तेरी प्रशंसा करता है, तू सुखी है तो फिर निषेध किसलिए करता है? बन्द करो, भाई! मुझे नींद आती है। भगवानजीभाई! यह बारोट और सब आते हैं न? महिमा करे बड़े-बड़े लम्बे पूंछड़े। बारोट-बारोटी। आहाहा! परन्तु रात्रि में फिर बन्द करो, कहे। रात्रि में आठ बजे बाद बन्द करो। क्यों? सुनने में सुख है न? तेरी प्रशंसा सुनने में तुझे मजा आता है न? तो मजा को छोड़ देना है? अब नहीं... अब नहीं... धूल भी मजा नहीं। यह तो सादि-अनन्त मजा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिसे आत्मा आनन्द का नाथ जिसकी सेवा की... आहाहा! पूर्ण आनन्द और ज्ञान सम्पन्न प्रभु आत्मा तो... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है। एक बार कहा नहीं था? शकरकन्द। यह शकरिया नहीं? शकरकन्द। तुम्हारे क्या कहते हैं? शकरकन्द। शकरकन्द है (उसकी) एक छाल है ऊपर की लाल जरा। उसे न देखो तो पूरा शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् मिठास का पिण्ड है। उसके ऊपर की छाल है न? छिलका। वह छिलका न देखो तो पूरा शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। उसे शकरकन्द कहते हैं। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा... आहाहा!

पुण्य और पाप के दो विकल्प की छाल है, वह छिलका है। उस छिलके के पीछे अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा है। आहाहा! कुछ खबर नहीं होती। समझ में आया? उस शकरकन्द को बाफ कर करते हैं। यह शिवरात्रि होती है न? शिवरात्रि में करते हैं लोग। शिवरात्रि होती है न विष्णु की? तब बाफते हैं और फिर उसमें शक्कर डालकर खाते हैं। यह तो शक्कर नहीं, यह तो अतीन्द्रिय आनन्द स्वतन्त्र पूर्ण है। आहाहा!

भगवान! तुझमें तो अतीन्द्रिय आनन्दकन्द पड़ा है, सुखकन्द। यह आया नहीं उसमें? 'शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर...' यह भजन में आता है। आहाहा! 'शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर।' भगवान आत्मा सुखकन्द मनोहर है। आहाहा! अरे! कुछ खबर नहीं। सुनने में आता नहीं, विचार में ले नहीं, प्रतीति में कैसे ले? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सिद्ध भगवान को इतना अतीन्द्रिय आनन्द है... सहज आत्मस्वरूप जो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप था, उसका ध्यान करके, मोक्षमार्ग करके जो अतीन्द्रिय आनन्द हुआ, वह अतीन्द्रिय आनन्द सादि-अनन्त सेवन करते हैं। आहाहा! जिसे एक समय का भी अन्तर विरह नहीं। आहाहा! ऐसे सिद्ध भगवान मोक्षदशा, प्रभु! तू उसका प्रयत्न कर, ऐसा कहते हैं। यह सब थोथा करके मर गया। समझ में आया? **क्यों सेवन करते? कभी भी न सेवते।**

भावार्थः-यह मोक्ष अखण्ड सुख देता है,... देखो! आहाहा! समकिती में तो अभी अल्प सुख है। और मुनि होते हैं सच्चे सन्त, चारित्रवन्त, उन्हें तो बहुत अतीन्द्रिय आनन्द होता है। वह सन्तदशा अलग है। अभी मानते हैं, ऐसी नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान... जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी, कस्तूरी मृग की नाभि में है, उसकी कीमत मृग को नहीं। गन्ध आती है तो बाहर से मानों कुछ होगा, ऐसे खोजने जाता है, बाहर खोजने जाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा की नाभि अर्थात् अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द है। परन्तु वह आनन्द पर में शोधता है। स्त्री में है, पैसे में है, इज्जत में है, हमारी प्रशंसा करे उसमें मजा है। बड़े अभिनन्दन के पूंछड़े दे। यह अभिनन्दन देते हैं न? तुमको अभिनन्दन। तुमने बहुत ऐसे काम किये और बहुत ऐसे काम किये। धूल में भी नहीं अब, सुन न! पागल पागल को अभिनन्दन दे।

यहाँ तो परमात्मा को अभिनन्दन देते हैं ज्ञानी। आहाहा! जिसमें अनन्त आनन्द, अनन्त सुख देते हैं। **इसीलिए उसे सिद्ध महाराज सेवते हैं,...** है? आहाहा! शरीर नहीं,

वाणी नहीं, मन नहीं, पुण्य और पाप के विकल्प संस्कार नहीं, अकेले अतीन्द्रिय आनन्द की मौजूदगी परमात्मा मोक्ष में, अनन्त अतीन्द्रिय सुख की अस्ति, मौजूदगी... आहाहा! उस अखण्ड सुख को सिद्ध महाराज भोगते हैं। लो, सिद्ध महाराज कहे। समझ में आया? यह तो स्वयं ने डाला है। अन्दर में शब्द नहीं। नहीं? महाराज। भगवन्त है। '**सिद्धा भगवन्तः**' ऐसा है। महाराज शब्द अन्दर नहीं है। यह रखा सिद्ध भगवान। ऐसा। आहाहा! यह णमो सिद्धाणं। ऐसे परमात्मा मोक्ष तो अनन्त सुख को अनुभव करते हैं। आहाहा!

मोक्ष परम आह्लादरूप है,... आहाहा! यहाँ तो पाँच-पच्चीस वर्ष कदाचित् बाहर के सुख की कल्पना, कल्पना है। सुख कहाँ है? यह रहे और मर जाये जब हाय... हाय... अरे रे! मैं कहाँ जाऊँगा? यह कुछ साथ में नहीं आया। यह पाप किया जिसके लिये, वह सब पड़े रहे और मुझे पाप लेकर चला जाना है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि... आहाहा! मोक्ष तो वह दशा... आहाहा! **परम आह्लाद...** परम आह्लाद। आनन्द की उल्लसित दशा अन्दर। आहाहा! **अविनश्वर है,...** वह परमानन्ददशा मोक्ष की अविनश्वर—नाश न पावे। आहाहा! इसने मोक्षतत्त्व को जाना नहीं। मोक्षतत्त्व कैसे प्रगट हो? वह तो आत्मा से (प्रगट होता है)। वह आत्मा तो नहीं परन्तु मोक्षतत्त्व की पर्याय कितनी, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

मन और इन्द्रियों से रहित है,... मोक्ष की पर्याय—सिद्ध भगवान की दशा मन और इन्द्रिय से तो रहित है। आहाहा! **इसीलिए उसे सदाकाल सिद्ध सेवते हैं,...** आहाहा! मोक्ष के मार्ग को सेवन करनेवाले भी जब सुखी हैं... परन्तु वह मोक्षमार्ग की दशा अल्प सुख है। धर्मदशा, वह अल्प सुख है। धर्म उसे कहते हैं कि जिसमें आनन्द आवे। उसका नाम धर्म। आहाहा!

मुमुक्षु : सिनेमा देखने से आनन्द बहुत आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। दु:खी है बेचारा वहाँ। ऐसे आँख फोड़कर देखे। राग में—जहर में लिप्त हो गया है। आहाहा! छोटा बालक होता है न? ज्येष्ठ महीने का समय हो। धूप बहुत गर्मी हो। डबल दूध बहुत पिया हो। डेढ़ वर्ष का बालक हो और ऐसी धूप-गर्मी हो। फिर पतला दस्त हो जाये, बहुत दूध पीवे इसलिए। पतला दस्त हो तो उसे ठण्डा लगे। देखा है कभी यह सब? वह ठण्डा, फिर हाथ छुआवे। उसे

चाटे। ऐसे जगत के सुख हैं। राग-द्वेष के दस्त करके राग-द्वेष को सेवन करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, सिद्ध परमात्मा मोक्षदशा... आहाहा! यह करनेयोग्य है और यह प्रयत्न करना, ऐसा यहाँ कहना है। सब तेरे थोथा छोड़ दे। मर गया है अनादि काल से। आहाहा! **सदाकाल सिद्ध सेवते हैं, केवलज्ञानादि गुणसहित सिद्धभगवान निरन्तर निर्वाण में ही निवास करते हैं,...** आहाहा! णमो सिद्धाणं। सिद्ध भगवान मुक्त में, अनन्त आनन्द आदि गुण में निवास करते हैं। आहाहा! है? **निवास करते हैं,... सिद्धभगवान निरन्तर निर्वाण में ही निवास करते हैं, ऐसा निश्चित है।** आहाहा! फिर से यहाँ अवतार धारण करे, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। अन्य में कहते हैं न कि बहुत राक्षस आवे और भक्तों को कष्ट पड़े, तब भगवान अवतार धारण करते हैं। यह बात झूठी है। मोक्ष हुआ उसे अवतार नहीं होता। जो चना सींक गया। क्या कहाँ? जलाया। भुन गया, वह अब कभी उगता नहीं। चना-चना। उगता है न? पकता है, तब भुंगड़ा होता है। भुंगड़ा कहते हैं न? वह उगता है? बोबे तो उगे? इसी प्रकार मोक्ष हुआ आत्मा का... आहाहा!

मुमुक्षु : सब विकार जला दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार जला डालकर जन्म-मरणरहित आत्मा के आनन्द की दशा, मोक्षदशा (प्रगट हुई)। आहाहा! उसमें तो अनन्त आनन्द है।

सिद्धों का सुख दूसरी जगह भी ऐसा कहा है... आधार दिया है। सिद्धभक्ति है। सिद्धभक्ति की गाथा सातवीं हैं। सिद्धभक्ति आती है। उसमें आता है। कैसा सुख है? **इसका अभिप्राय यह है कि इस अध्यात्म-ज्ञान के सिद्धों के...** आहाहा! अपने आत्मा के ज्ञान से सिद्धों को जो सुख होता है। णमो सिद्धाणं। उन सिद्ध की व्याख्या करते हैं। सिद्ध कहो या मोक्ष कहो। आहाहा! **अध्यात्म-ज्ञान के सिद्धों के जो परमसुख हुआ है, वह कैसा है कि अपनी-अपनी जो उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है,...** क्या कहते हैं? यह आनन्द उत्पन्न हुआ, वह अपनी शक्ति से आत्मा में से उत्पन्न हुआ है, पर से नहीं। अपने उपादान से उत्पन्न हुआ है। आहाहा! **पर की सहायता से नहीं है, स्वयं (आप ही) अतिशयरूप है, सब बाधाओं से रहित है, निराबाध है, विस्तीर्ण है, घटती-बढ़ती से रहित है, विषय-विकार से रहित है, भेदभाव से रहित है, निर्द्वन्द्व है,...** ओहोहो! इतने तो बोल लिये हैं। **जहाँ पर वस्तु की अपेक्षा ही नहीं है,...** अनन्त आनन्द है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण २, रविवार
दिनांक-१०-१०-१९७६, गाथा-७, ८, प्रवचन-१००

परमात्मप्रकाश। सातवीं गाथा। सिद्ध में सुख अनन्त है, इसलिए सिद्ध सुख को सेवते हैं, ऐसा है यहाँ। संसार की पर्याय में दुःख है। मोक्ष की पर्याय अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें से उत्पन्न हुआ जो आनन्द, वह अनन्त है। उस अनन्त आनन्द को सिद्ध सादि-अनन्त सेवन करते हैं। यदि वह उत्तम सुख न हो तो सिद्ध सादि-अनन्त कैसे सेवन करे? ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ है।

अध्यात्म-ज्ञान के सिद्धों के जो... है? **अध्यात्म-ज्ञान के...** यह बात। अन्तर भगवान आत्मा। यह श्लोक है सिद्धभक्ति का। सिद्धभक्ति का सातवाँ श्लोक है। संस्कृत में। '**आत्मोपादानसिद्धं**' संस्कृत में है न? सिद्धभक्ति का सातवाँ श्लोक है। सिद्धभक्ति का सातवाँ श्लोक है। सिद्धभक्ति। सिद्ध कैसे हैं? कि जिन्हें आत्मा का अध्यात्मज्ञान। वस्तु जो अखण्ड ज्ञानस्वरूप वस्तु है, अखण्ड ज्ञान भेद बिना का पूर्ण, ऐसा जो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसके ध्यान से उत्पन्न हुआ। सिद्ध को जो सुख उत्पन्न हुआ है, वह अखण्ड भगवान आत्मा वस्तु, बसे हुए गुण उसमें हैं। वस्तु है। भले अरूपी है, परन्तु वस्तु है न! उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति अर्थात् वीतरागता, अनन्त स्वच्छता आदि जो वस्तु में बसे हुए हैं। वस्तु में वे गुण बसे हुए हैं, इसलिए उसे वस्तु कहा जाता है। आहाहा! इसने उस वस्तु को दृष्टि में कभी लिया नहीं। वह चीज़ है, मौजूद है। ऐसा अनन्त आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसका अखण्ड ज्ञान द्वारा **अध्यात्म-ज्ञान के सिद्धों के...** ऐसा कहकर व्यवहार विकल्प से सिद्ध का सुख उत्पन्न नहीं होता। ऐसा सिद्ध करना है। लोग यह कहते हैं न कि व्यवहार से निश्चय होता है, उसका यहाँ निषेध है। बहुत प्रकार लेंगे अभी।

अध्यात्म-ज्ञान के सिद्धों के जो परमसुख हुआ है,... आहाहा! निर्विकल्प जो आत्मा पदार्थ वस्तु है, अखण्ड आनन्द और अखण्ड ज्ञान, उसके ध्यान से। अर्थ में तो कहेंगे आगे, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता से उत्पन्न हुआ सिद्ध को सुख **हुआ है, वह कैसा है कि अपनी-अपनी जो उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है,...** अन्तर

आनन्दस्वरूप की शक्ति थी, उस उपादान से आनन्द की पर्याय प्रगट हुई है। बहुत थोड़ा, बहुत मक्खन है। अन्तर आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। उपादान—ध्रुव उपादान। उसमें से क्षणिक उपादान में अनन्त आनन्द आया है। आहाहा! समझ में आया? है? **उपादान-शक्ति...** अब यह उपादान-निमित्त के झगड़े सब। जहाँ हो वहाँ सोनगढ़ के नाम से उपादान और निमित्त, निश्चय और व्यवहार और क्रमबद्ध—यह पाँच झगड़े। देवीलालजी! खबर है न यह तो तुमको? भगवान!

मुमुक्षु : झगड़े या पाँच का समाधान?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लोग ऐसी वृत्ति उठाते हैं। इन्हें न बैठे, इसलिए क्या करे? वह भगवान है। द्रव्य तो साधर्मी प्रभु है। आहाहा! भगवानस्वरूप से परमात्मा है, वे सभी आत्मायें। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से वे सभी द्रव्य साधर्मी हैं। चन्दुभाई! आहाहा! कोई विरोधी है नहीं। कोई विरोध करता भी नहीं। कर क्या सकता है? भाई! आहाहा!

उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है,... कहो, फूलचन्दजी! यह निमित्त के झगड़े तुम्हारे सोनगढ़ के नाम से। निमित्त से होता नहीं, ऐसा माने। निमित्त हो। निमित्त से होता नहीं। इसी तरह व्यवहार हो, परन्तु व्यवहार से निश्चय नहीं होता। यह महासिद्धान्त है। समझ में आया? अरे! तुझे सुख के पंथ की बात है न, प्रभु! दुःखी चौरासी के अवतार में। आहाहा! निगोद में एक श्वास में अठारह भव। भाई! इसका विचार करे तो इसे खबर पड़े। निगोद के जीव में प्रभु! तू अनन्त बार रहा। निगोद की पर्याय, वह जीव नहीं। जीव तो अन्दर जो पूर्णानन्द का नाथ है, वह जीव है। आहाहा! परन्तु उस पूर्णानन्द के नाथ को जाने बिना अर्थात् कि वह पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसका अनादर करके, अर्थात् कि जिसका पूर्ण आनन्दस्वरूप जीवन है, जीवन जिसका पूर्ण आनन्द जिसका जीवन है, उस जीवन का हकार न करके नकार करके 'वह मैं नहीं'। आहाहा! ऐसी दृष्टि में इसने निगोद के एक श्वास में अठारह भव किये। ऐसे अनन्त बार। एक बार किये, ऐसा नहीं, ऐसे अनन्त बार (किये)। आहाहा! भाई! तू दुःखी है। वस्तुस्वरूप से सुख है। उस सुख से सुख उत्पन्न होता है। यह व्यवहार के विकल्प और निमित्त से वह उत्पन्न नहीं होता। दोनों बातें उड़ जाती हैं इसमें। आहाहा! ताराचन्दजी! यह झगड़े की बात करते हैं न, भाई!

मुमुक्षु : व्यवहार से भी नहीं और निमित्त से भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से भी नहीं।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव, स्वभाववान उसका ज्ञानस्वभाव, उसका माप क्या? आनन्दस्वभाव की हद क्या? उसकी परिमीतता—मर्यादा क्या? आहाहा! अनन्तज्ञान, अनन्त आनन्द जिसका स्वभाव, ऐसी स्वाभाविक वस्तु, उससे उत्पन्न हुआ आनन्द। आहाहा! है? **उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है,...** निमित्त से उत्पन्न हुआ, व्यवहार से उत्पन्न हुआ, उसका तो निषेध किया। निमित्त और व्यवहार हो। जब तक पूर्णता न हो, तब तक व्यवहार होता है। परन्तु उस व्यवहार से धर्म उत्पन्न होता है, (ऐसा नहीं है)। धर्म कहो या सुख कहो। आहाहा!

मुमुक्षु : यह झगड़ा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसे दृष्टि जब तक न बैठे, तब तक। पण्डितों को... किसी व्यक्ति का अनादर तो करने की बात नहीं, भाई! विपरीत मान्यता से तो बापू, प्रभु! उसे दुःख है, उसे दुःख है। और उसका फल भी भविष्य में दुःख की परम्परा है। अरे! ऐसे जीव का अनादर कैसे किया जाये? तिरस्कार कैसे किया जाये? वह जीव है, भगवान है। आहाहा! उसे भूलकर वर्तमान मिथ्याश्रद्धा—व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है, (ऐसा माने)। भाई! वह भाव दुःखरूप है। और उसकी परम्परा में ऐसे दुःख में यह जायेगा कि जिस दुःख का अन्त नहीं। ऐसे भगवान दुःखी हो, यह कहीं अच्छा है? समझ में आया?

यहाँ परमात्मा तो ऐसा कहते हैं, भाई! तू परमात्मा है। यह परमात्मप्रकाश है न! आहाहा! प्रभु! तू परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! उस परमात्मस्वरूप में से आनन्द उत्पन्न होता है। सिद्ध को जो आनन्द होता है, वह कहाँ से आया? आहाहा! वह अन्तर में परमानन्दस्वरूप है। कहेंगे आगे। अखण्ड ज्ञान का ध्यान करने से। यह आगे कहेंगे। अन्त में ऐसा है। अभेदरत्नत्रय... है। देखो! **अभेदरत्नत्रयमय समाधिकर उत्पन्न...** आठवीं गाथा में है। आठवीं गाथा में। **अभेदरत्नत्रयमय समाधिकर उत्पन्न...** भाषा। यह उपादान से उत्पन्न हुआ न, वह उपादान क्या? अभेदरत्नत्रय। इसे ऊपर ऐसा कहा,

देखो! **अपने शुद्ध ज्ञान, अखण्ड स्वभाव...** है? भाई! **अपने शुद्ध ज्ञान, अखण्ड स्वभाव जो निज आत्मद्रव्य...** यह आत्मद्रव्य। आहाहा!

उसका सम्यक् श्रद्धान ज्ञान,... उसका अन्तर **आचरणरूप जो अभेदरत्नत्रयमय समाधिकर उत्पन्न वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस उसके अनुभव से पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा के ध्यान में स्थिर होकर मुक्त होते हैं।** आहाहा! अकेला मक्खन है। भाई! तू परमानन्दस्वरूप है, अखण्ड ज्ञानस्वरूप है। उससे उत्पन्न हुआ अर्थात् उसका श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता द्वारा उत्पन्न हुआ। व्यवहार से या निमित्त से उत्पन्न हुआ नहीं। इस एक श्लोक में सब उड़ा देते हैं।

पर की सहायता से नहीं है,... यह चलता श्लोक। है? **उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है,...** अस्ति। **पर की सहायता से नहीं है,...** यह नास्ति। विकल्प और निमित्त और देव-गुरु के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **स्वयं (आप ही) अतिशयरूप है,...** यह श्लोक का ही अर्थ है, हों! **'आत्मोपादनसिद्धं स्वयमतिशय'** श्लोक ही है। स्वयं अतिशय-विशेषरूप-खास। स्वयं अतिशयरूप आनन्द है वह। आहाहा! अपने स्वभाव में से उत्पन्न हुआ सिद्ध का सुख। मोक्ष के लिये। यह मोक्ष अभिदर्शणीय है, ऐसा कहते हैं। ऐसी जो मोक्षदशा वह धर्मात्मा को अभिदर्शणीय है। अभिलाषा उसकी करनेयोग्य है। बाकी संसार की पर्याय छोड़ने योग्य है। आहाहा! यह अन्त में कहेंगे।

स्वयं (आप ही) अतिशयरूप है,... अर्थात्? यह सुख स्वयं अपने से ही विशेषरूप है। किसी पर के कारण से आनन्द आया है, ऐसा है नहीं। वह स्वयं ही अतिशयरूप है। वह अतीन्द्रिय उपादान में से उत्पन्न हुआ सुख वह स्वयं, अतिशय विशेषरूप खास वह सुख है। आहाहा! **सब बाधाओं से रहित है,...** उसे कुछ भी विघ्न हे नहीं। ऐसा सिद्ध का (सुख है)। यह मोक्षतत्त्व की व्याख्या करते हैं। फिर मोक्ष के फल की करेंगे। फिर मोक्ष के मार्ग की करेंगे। तीन प्रकार का वर्णन है इसमें—दूसरे अधिकार में। मोक्ष, मोक्ष का फल अनन्त ज्ञानादि और मोक्ष का कारण-सम्यग्दर्शन, ज्ञान। आहाहा! ऐसा जो स्वरूप **सब बाधाओं से रहित है,...** कोई भी बाधा-विघ्न उसे है नहीं। आहाहा! अव्याबाध सुख प्रगट हुआ है। वेदनीयरहित, कहा न!

निराबाध है,... नास्ति कही, फिर अस्ति कही। **निराबाध है, विस्तीर्ण है,...** आहाहा! यह सिद्ध का मोक्ष का सुख विस्तीर्ण—विस्तार... विस्तार... विस्तार... आहाहा! जिनके सुख का पट विस्तार है। आहाहा! तेरी यह दशा पूर्ण ऐसी है, ऐसा कहते हैं। **विस्तीर्ण है,...** आहाहा! आत्मा के आनन्द में से उत्पन्न हुई सिद्ध की पर्याय विस्तार... विस्तार... विस्तार... जिसमें कोई संकोच नहीं। जिसमें कुछ परिमितता—हद नहीं। ऐसा सुख विस्तीर्ण है। आहाहा! यह एक ही श्लोक में सिद्धभक्ति का वर्णन है। भक्ति करते हैं न यह लोग? साधु जब आहार ले न, तब सिद्धभक्ति करते हैं। आहार ले न आहार? तब सिद्धभक्ति करते हैं, फिर वे लेते हैं। विधि है ऐसी। आहाहा! उसमें का यह श्लोक है।

घटती-बढ़ती से रहित है,... आहाहा! वह विस्तीर्ण सुख उपादान से प्रगट हुआ, उसमें घटता और बढ़ता, ऐसा नहीं है, एकरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह अनन्त आनन्द सिद्ध में एकरूप है। घटता-बढ़ता है नहीं। आहाहा! फिर अन्त में कहेंगे, हों! कि संसार की यह सब पर्यायें हेय हैं। कहते हैं अन्त में। शान्तिभाई! यह तुम्हारे जवाहरात के सुख और कल्पना और सब धूल और हेय है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : भले हेय रहा, काम में तो आता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : काम धूल में आवे, दुःख आता है। स्मरण करे तो वहाँ दुःख होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आकर्षण बहुत रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकर्षण दुःख का रहता है। लोहचुम्बक लोहे के खींचे, वैसे अज्ञानी को मिथ्यात्व में पर का आकर्षण लगता है। आहाहा! बाहर की भभकावाली चीजें। भभक। शरीर, मकान, इज्जत, कीर्ति, शरीर की कोमलता, शरीर के सुन्दर अवयवों की रचना, रचना वह सब अज्ञानी को आकर्षित करती है, कहते हैं। समझ में आया? आनन्द का नाथ जो आकर्षण है, उसमें न जाकर यह आकर्षण करता है। आहाहा!

यह कहा नहीं था एक बार? श्मशान में वे हड्डियाँ होती हैं न? श्मशान में हड्डियाँ, उसमें से फासफूस होती है। फोसफरस होती है। चमक.. चमक... चमक...

होती है। लड़के दूर से देखें। हमारे श्मशान वहाँ नजदीक है। दरवाजे तक जायें, श्मशान तक न जायें। देखने जायें तब। उमराला। उसमें से चमक-चमक होती उन हड्डियों में से। ऐसा लगे कि यह भूत होगा। कोई भूत होगा, ऐसा लगे। दरवाजे तक जायें। भागो-भागो, भाई! यह तो भूत है। उसी प्रकार यह दुनिया की, यह हड्डियाँ बाहर की फोसफरस है। आहाहा! मूलचन्दभाई! यह आकर्षण है यह। लड़के अमेरिका पढ़ते हों और पाँच-दस हजार पैदा करते हों। आहाहा! वहाँ जाकर इकट्ठे खाने बैठें। तब... आहाहा! बापूजी आये हैं आज अमुक बनाओ। यह सब आकर्षण मार डालता है। अररर! प्रभु! तेरी जीवनज्योति चैतन्य विराजता है न! उसका आदर न करके, इसका आदर होने से इस जीवन की ज्योति का निषेध होने से, यह नहीं, ऐसी हिंसा होती है। आहाहा!

महा आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द उसका जीवता जीवन, जीवत्वशक्ति है न पहली, नहीं? जीवत्वशक्ति। 'जीवो' वहाँ से निकली है। दूसरी गाथा है न? **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** वहाँ से उठाकर निकाली है। जीवत्वशक्ति ली है। आहाहा! भगवान! तेरा जीवन तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य, ऐसे जीवन से तेरा जीवन है। उससे तेरा टिकना और उससे ही तेरी अस्ति है। उस अस्ति का स्वीकार न करके... आहाहा! शुभ-अशुभभाव का और उसके फल का यह बाहर का, पुण्य के फल की यह सब साधग्री और पाप के फल की प्रतिकूल (सामग्री), यह भाव और भाव के फल में आकर्षित होता है। भगवान का अनादर होता है।

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, वह जीवती ज्योति जीवन जिसका है, उसे वह नहीं, ऐसा कहता है। और यह मैं हूँ। आहाहा! विषय में सुख है और इज्जत में सुख है, बँगला पाँच-पचास लाख का बनाकर उसमें झूले में झूलता हो।

मुमुक्षु : आकुलता....

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता अकेला दु:ख है। आहाहा! परन्तु वहाँ मजा लगता है न। यह पंकज और सब लड़के बैठे हों चारों और उसमें बैठा हो, बापूजी-बापूजी करे, लो यह।

मुमुक्षु : ....बापूजी में दिन क्या बदला?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिन, दिवस में मजा पड़ता है। यह दिवस में ऐसा हो तो इसे मजा पड़ता है। दिन वळे है। आहाहा! प्रभु! वह सुख है नहीं, वह तो दुःख है। आहाहा! आत्मा के आनन्द को तो वह जलाता है। आत्मा के आनन्द के जीवन को वह सुलगाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह तो सुख ऐसा है कि **घटती-बढ़ती से रहित...** एकरूप आनन्द। आहाहा! जो प्रगट हुआ वह प्रगट हुआ, वह सादि-अनन्त (ऐसा का ऐसा रहता है)। **विषय-विकार से रहित है,...** लो, यह आया। बाहर के पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर का लक्ष्य है, वह विकार है, उसके बिना का यह आत्मा का सुख है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु। आहाहा! उसका जीवन विषयविकार रहित है। **भेदभाव से रहित है,...** आहाहा! उसमें भेद नहीं, वह तो अभेदरूप आनन्द है, कहते हैं। आहाहा! खण्ड-खण्ड नहीं। आहाहा! यह एक ही श्लोक है।

निर्द्वन्द्व है,... जिसमें द्वन्द्व नहीं। जिसमें दूसरा विकल्प नहीं, दोपना नहीं, ऐसा कहते हैं। एकरूप आनन्द, एकरूप आनन्द। आहाहा! 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद...' छहढाला में आता है न? 'लाख बात की बात...' आता है न? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' आहाहा! जो यह भगवान आनन्दस्वरूप है, उसका ध्यान कर न! यह विषय के विकार और पर का ध्यान आर्तध्यान और रौद्रध्यान, उसमें तो शान्ति पिलती है। जैसे तिल घाणी में पिलते हैं, उसी प्रकार भगवान आनन्द वहाँ आर्तध्यान और रौद्रध्यान में पिलता है। उससे रहित है तेरा स्वरूप, भाई! आहाहा! द्वंद्व रहित है। लो! कितने विशेषण दिये हैं! आहाहा!

जहाँ परवस्तु की अपेक्षा ही नहीं है,... जिसमें पर की अपेक्षा नहीं। स्व का ही आनन्द है अन्दर से। आहाहा! यह सब अनुकूल है, यह लोकालोक जानता है, इसलिए सुख है, ऐसा कहता है, ऐसा नहीं। क्या कहा यह? परवस्तु की अपेक्षा नहीं। लोकलोक जानने में आता है, इसलिए सुख है, ऐसा नहीं है। वह तो अपना सहज आनन्द सुख ही अपने से है। आहाहा! समझ में आया? **अनुपम है...** उसे उपमा किसकी देना? उसका सुख उसके जैसा। उसका सुख उसके जैसा। किसके जैसा? कि वहाँ उपमा दूसरी कोई लागू नहीं पड़ती। आहाहा!

अनन्त है,... वह सुख अनन्त है। अन्त नहीं। आहाहा! जिसके ज्ञान की पर्याय में अननत केवली ज्ञात होते हैं। वे ज्ञात होते हैं केवली नहीं, परन्तु उस पर्याय में इतनी सामर्थ्य है। आहाहा! इतना ही सुख वह अनन्त है। समझ में आया? यह तो मन्त्र है। आहाहा! कहो, शशिभाई! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! **अनन्त है, अपार है,...** पार नहीं जिसका। पार क्या हो? जहाँ स्वभाव में से स्वभाव प्रगट दशा (हुई) तो उस स्वभाव की पर्याय का पार क्या? ओहोहो! जैसे आकाश का पार नहीं कि अब कहाँ आकाश नहीं? आहाहा! दसों दिशाओं में आकाश कहाँ अब अन्त आया उसका? ज्ञेय आकाश का अन्त नहीं तो आकाश क्षेत्र-ज्ञ जो आत्मा, उसका जाननेवाला अपनी पर्याय में जाननेवाला, उसके सुख का अन्त क्या? आहाहा! यह पर्याय के सुख की दशा का वर्णन है, हों! सिद्ध की बात है न? आहाहा! उनके द्रव्य की तो क्या बात करना!

अनन्त है, अपार है, जिसका प्रमाण नहीं... आहाहा! जिसका कोई माप ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? माप नहीं अर्थात्? उस सुख का प्रमाण-ज्ञान तो होता है, परन्तु वह प्रमाण अप्रमाण वस्तु है, ऐसी चीज़ है। आहाहा! प्रमाण-सुख प्रमेय है, उसका ज्ञान प्रमाण है। आहाहा! परन्तु कहते हैं कि जिसका प्रमाण नहीं। अर्थात्? प्रमाण में तो आया है परन्तु प्रमाण नहीं जिसका, ऐसा वह सुख है। आहाहा! उसका भी ज्ञान में प्रमाण हो जाता है। देखो! यह परमात्मा का वर्णन! यह परमात्मप्रकाश है। आहाहा!

सदा काल शाश्वत् है,... यह सब उसके विशेषण है। जो आत्मा के अन्तर आनन्द में से अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट हुई, वह शाश्वत् है। है तो पर्याय। समझ में आया? परन्तु वह कायम रहनेवाली है। एक ओर केवलज्ञान पर्याय को नाशवान कहा है। नियमसार ३८ गाथा। सभी पर्यायें नाशवान हैं, वस्तु अविनाशी है। वह दूसरी अपेक्षा से। यह तो द्रव्य और त्रिकाली ध्रुव सिद्ध करने के लिये। यहाँ कहते हैं कि वह पर्याय सदा काल शाश्वत् है। आहाहा! क्या अपेक्षा है, उसे जानना चाहिए, बापू! किस नय का वाक्य है। एक ही पकड़े (तो नहीं चले)। वैसे तो केवलज्ञान को कूटस्थ कहा है न! पंचास्तिकाय में कूटस्थ कहा है। अर्थात् कि ऐसा का ऐसा रहता है, इस अपेक्षा से। वरना तो पलटता है, पलटता है। परन्तु उसकी वह वैसी की वैसी जाति ऐसी की ऐसी रहा करती है, इसलिए उसे कूटस्थ कहा है। कूटस्थ अर्थात् कूटस्थ शिखर जैसे

हिलता नहीं। कूट—शिखर-शिखर। उसी प्रकार यह केवलज्ञान कूटस्थ है। उसे यहाँ शाश्वत् कहा है। समझ में आया?

महा उत्कृष्ट है,... कितने विशेषण! महा उत्कृष्ट। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आहाहा! जिसके विषय का आनन्द तो जहर है। आहाहा! जहर का प्याला पीवे और मानता है कि मजा है। यह तो उत्कृष्ट सुख है। अकेला आनन्द का ही वेदन है, कहते हैं। आहाहा! ऐसे मोक्ष की अभिलाषा धर्मी को करना, ऐसा कहने के लिये यह कहते हैं। अन्त में कहेंगे, अन्त में। समझ में आया? आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय की भी अभिलाषा नहीं करना, ऐसा कहते हैं। निमित्त की भी अभिलाषा नहीं करना। ऐसे मोक्ष की अभिलाषा करना, ऐसा कहेंगे। आहाहा!

महा उत्कृष्ट, अनन्त सारता लिये हुए है। सार है, सार है। आहाहा! अनन्त सार है। ऐसा जो सिद्ध का सुख सार है। इसके अतिरिक्त सब असार है। इन्द्रिय के सुख, चक्रवर्ती के भोग, इन्द्र के भोग, वे सब असार हैं। आहाहा! सार-असार की व्याख्या आती है एक श्लोक में। अष्टपाहुड़ में कहीं टीका में आता है। सार-असार, असार-सार बहुत शब्द आते हैं बहुत। कहीं सब याद (रहते हैं)? कितने नाम दिये असार। आहाहा! **अनन्त सारता लिये हुए है। ऐसा परमसुख सिद्धों के है,...** लो! यह अन्तिम विशेषण। आहाहा! यह महामांगलिक। **ऐसा परमसुख सिद्धों के है, अन्य के नहीं है।** दूसरे को ऐसा सुख नहीं हो सकता। चक्रवर्ती को नहीं। आहाहा!

यहाँ तात्पर्य यह है... अब तात्पर्य कहते हैं—इसका सार। **हमेशा मोक्ष का ही सुख अभिलाषा करनेयोग्य है,...** लो, यह सार। संस्कृत है, हों! पाठ में है। अन्दर है। **'निरन्तरमभिलषणीयमिति भावार्थः।'** संस्कृत में है। **'निरन्तरमभिलषणीयमिति भावार्थः।'** आहाहा! निरन्तर ऐसे सुख की अभिलाषा करना। निरन्तर। आहाहा! समकिती जीव ने अपने आत्मा के आनन्द को जाना है, इसलिए पूर्ण आनन्द की निरन्तर अभिलाषा रखना। आहाहा! **हमेशा मोक्ष का ही सुख अभिलाषा करनेयोग्य है,...** यह आया, देखो! **और संसार-पर्याय सब हेय है।** है? **संसार-पर्याय सब हेय है।** व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह संसार-पर्याय है। आहाहा! ऐसा सुनना मुश्किल पड़े, ऐसा है। जिन्दगी ऐसे सेठिया रूप से गये सामने, हम सेठ। आहाहा! ऐसी बात है।

प्रभु! तू कौन है? बापू! आहाहा! और तुझमें से उत्पन्न होकर उपादान में में से, ध्रुव उपादान में से क्षणिक पर्याय में उपादान में उत्पन्न हुआ, दोनों उपादान हैं। समझ में आया? ध्रुव उपादान अनन्त आनन्द का दल। अनन्त, बेहद सुख का समुदाय। अस्ति, परमपदार्थ, मौजूद, ध्रुव, शाश्वत, अनादि-अनन्त, अकृत्रिम ऐसा जो ध्रुव उपादान। आहाहा! उसमें से आनन्द उत्पन्न हो, वह क्षणिक उपादान है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी तो बात है परन्तु अब लोगों को निमित्त से होता है... निमित्त से होता है। निमित्त है सही, वह तो अभी भाई ने लिखा है—कैलाशचन्दजी ने अभी (लिखा है)। वैसे तो विरोध करते हैं कैलाशचन्दजी यहाँ का। परन्तु ऐसा यह लिखा है कि सोनगढ़वाले निमित्त का निषेध नहीं करते परन्तु निमित्त को कर्ता नहीं मानते। बराबर है? फूलचन्दजी! बात तो ऐसी ही है। निमित्त नहीं है, ऐसा नहीं है। निमित्त से पर में कुछ होता नहीं। वह कर्ता नहीं है। क्योंकि परिणमन की पर्याय तो स्वतन्त्र परिणमन करनेवाले ने की है। निमित्त हो, निमित्त से वहाँ परिणमन होता है कर्ता, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार व्यवहार हो, वह अन्दर का निमित्त है, वह बाह्य का निमित्त है। व्यवहार हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत हो परन्तु वह निश्चय को करता है, ऐसा नहीं है। इतना बड़ा अन्तर है। अरेरे! मार्ग मुश्किल से हाथ आया, बापू!

मुमुक्षु : ....कार्य कहाँ करता है? कार्य में सहायक होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य में सहायक अर्थात् साथ में है, ऐसा सहाय का अर्थ है। आया नहीं, भाई अपने? इष्टोपदेश। धर्मास्तिकायवत्। सभी निमित्त धर्मास्तिकायवत् है। आत्मा और जड़ गति करें वह तो अपनी पर्याय के काल से गति करते हैं। वह निमित्त है। वह निमित्त यहाँ गति कराता है, ऐसा नहीं है। ऐसा यह अन्तर है।

मुमुक्षु : उदासीन निमित्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब उदासीन निमित्त। धर्मास्तिकायवत्, ऐसा कहा है। भले यह ध्वजा हिलती हो, ध्वजा। उसमें पवन, वह प्रेरक निमित्त है। तथापि प्रेरक निमित्त है तो उदासीन। उसके कारण ध्वजा चलती नहीं। यह बात... समझ में आया? यह ध्वजा ऐसे होती है न फर्र-फर्र छोर से। वह पवन के कारण... पवन के कारण (होती

है ?) नहीं। वह पवन तो वहाँ धर्मास्तिकायवत् निमित्त है। यह ऐसे-ऐसे होती है, वह अपनी पर्याय से होती है। पवन से नहीं। अब यह बात।

मुमुक्षु : पवन ध्वजा को तोड़-फोड़ डाले, ऐसी चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई कहते हैं कि तोड़ डाले। इतना तो निमित्त काम करता है, ऐसा (ये) कहते हैं। बापू! वह तोड़ने-फोड़ने की पर्याय उससे स्वयं से हुई है। पवन तो वहाँ निमित्तमात्र है। निमित्त ने किया नहीं। निमित्त है सही, परन्तु उस निमित्त ने तोड़ने का कार्य किया नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। लकड़ी में करवत पड़ती है ऐसे करवत। वह करवत निमित्त है। परन्तु वह टुकड़े हुए, वह करवत का कार्य नहीं। आहाहा! वह करवत का कर्तृत्व नहीं। निमित्त है परन्तु निमित्त करता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! सत्य का ऐसा स्वरूप है। त्रिलोकनाथ जिनवरदेव परमेश्वर...

मुमुक्षु : श्रीमद् कहते हैं कि एक तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति नहीं। क्योंकि कर नहीं सकता। यह श्रीमद् कहते हैं। श्रीमद् कहते हैं कि तिनके के दो टुकड़े करने की हमारी शक्ति नहीं। अर्थात् ? कि वे दो टुकड़े होते हैं, वे हम नहीं करते, ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा! तणखळुं समझे ? तिनका-तिनका। दो टुकड़े आत्मा नहीं कर सकता। यह टुकड़े होने के काल में अपने से—उपादान से होते हैं। आहाहा! तब उसको निमित्त कहा जाता है। परन्तु निमित्त कर्ता नहीं। ऐसी बात कहाँ लागों को गले उतारे।

मुमुक्षु : उपादान के पचास प्रतिशत रखो और निमित्त के पचास रखो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहता था न वह। वह भाई कहते थे। जीवणधर, जीवणधर। यहाँ आये थे न पहले सेठ के साथ। हुकमीचन्द सेठ। पचास प्रतिशत इसके रखो और पचास प्रतिशत इसके। बापू! सौ प्रतिशत रखो न निमित्त के और सौ प्रतिशत उपादान के रखो न! और हमारे दामोदर सेठ कहते थे। पुराने। (संवत्) १९७१ से बात उठायी। कर्म के कारण से विकार नहीं होता। विकार स्वयं से होता है। यह बात १९७१ में बाहर रखी। लाठी के चातुर्मास में। उसके कान में गयी, इसलिए फिर (कहता है कि) महाराज! इतना रखे। यह पचास नहीं भले। ५१ प्रतिशत पुरुषार्थ के और ४९

प्रतिशत कर्म के। दो प्रतिशत यहाँ बढ़ाये। ऐसा कहते थे। (संवत्) १९७१ के वर्ष की बात है। बहुत पुरानी (बात है)। कितने वर्ष हुए? ५६। ५६ वर्ष हुए। तब उसने कहा कि कर्म से कुछ नहीं होता, ऐसा नहीं, महाराज! कर्म के प्रतिशत ४९ रखो और विकार के प्रतिशत पुरुषार्थ से होता है तो उसके ५१ रखो। इतना बढ़ा न यहाँ? दोकड़ा समझते हो? यह प्रतिशत नहीं कहते? प्रतिशत कहते हैं न? प्रतिशत कहते हैं न? ताराचन्दजी! प्रतिशत कहते हैं। कहा, भाई! ऐसा नहीं। सौ में सौ प्रतिशत विकार स्वयं से होता है और सौ में सौ प्रतिशत कर्म निमित्ता में वहाँ निमित्त खड़ा है। आहाहा! यह बड़ा विवाद चलते-चलते स्थानकवासी में था पहले, फिर गया मन्दिरमार्गी में और अब हुआ दिगम्बर में। प्रभु! यहाँ तो इनकार करते हैं न!

मुमुक्षु : यहाँ से आगे जाये, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब कहाँ जाये अन्यत्र? सत्यदर्शन दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन, सनातन दर्शन। उसमें भी इस बात से खलबलाहट जगी। आहाहा!

कहते हैं कि **संसार-पर्याय सब हेय है।** ऐसा है न? उसमें से निकाला है, हों! उसमें—पाठ में नहीं। वहाँ तो '**अभिलषणीय**' बस, इतना है। '**निरन्तरमभिलषणीयमिति भावार्थः।**' बस। अर्थात् यह हेय है, ऐसा इसमें से निकाला। आहाहा! गजब श्लोक आया है। अकेले आनन्द की ही बात है। अतीन्द्रिय आनन्द सिद्ध क्यों सेवन करते हैं, यह गाथा है। इस गाथा में यह है। है? '**उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।**' तो उत्तम मोक्ष होगा नहीं। '**तो किं सयलु वि कालु जिय सिद्ध वि सेवहिं सोइ॥**' सिद्ध क्यों सदाकाल सेवन करे यदि उत्तम सुख न हो तो? आहाहा! यह तुम्हारे संसार का तो क्या थोड़ा बहुत कुछ... आहाहा!

कल तो वह विचार आया था। नहीं? बाई अभी गुजर गयी। वह बेचारी। अठारह दिन पहले गुजर गयी। गोवावाली। असाध्य थी न? डेढ़ वर्ष से। क्या कहलाता है तुम्हारा? हेमरेज। डेढ़ वर्ष। यहाँ उसकी लड़कियाँ हैं न। पोपटभाई की। उसके घर से अठारह दिन पहले गुजर गयी। आहाहा! यहाँ पैसा दो अरब चालीस करोड़। बँगला। उसमें भी ऐसा सुना, बहिन कहती थी कि असाध्य में पड़ गयी ऐसी की ऐसी करवट बदलते। तो हाथ टूट गया। असाध्य में और असाध्य में। हाथ टूट गया। डेढ़-डेढ़ वर्ष

से जड़ जैसा। अरेरे! और वह बेचारा जाये कहाँ? तिर्यंच योनि में जाये। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच। आहाहा! प्रभु.. प्रभु..! यह संसार के पर्दे। क्योंकि बेचारे व्यक्ति को मदिरा-माँस ऐसा तो कुछ होता नहीं। बनिया आर्य मनुष्य है। देव की गति के तो परिणाम हों नहीं वहाँ। मनुष्य होने की सरलता भी कहाँ? अरेरे! अरे! ऐसा संसार। एक क्षणभर भी रखनेयोग्य नहीं। आहाहा! मोक्ष की अभिलाषा कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। स्वर्ग की गति मिले, फिर भगवान के पास जाऊँगा। कितने ही ऐसा कहते हैं। अभी यह पुण्य करो, स्वर्ग में जाओ। भगवान के पास जाओ, वहाँ समकित प्राप्त करोगे। ऐसा और कितने ही कहते हैं।

मुमुक्षु : मोक्ष की अभिलाषा से मोक्ष दूर नहीं जाता?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिलाषा अर्थात् भावना। इच्छा की यहाँ बात नहीं है।

त्रिकाली स्वभाव में भावना—एकाग्रता करना, वह मोक्ष की अभिलाषा। मोक्ष की इच्छा से मोक्ष नहीं मिलता। आहाहा! ऐसे तो पंचाध्यायी में कहा है, भाई! हे खबर? सब अभिलाषा, वह मिथ्यात्व है। ऐसा कहा। खबर है, ख्याल है। यह तो यह आया इसलिए। भाई! पंचाध्यायी में ऐसा है। कोई भी अभिलाषा निरर्थक जाती है, अभिलाषा। वह दूसरी बात है। यहाँ तो आत्मा अनन्त आनन्द का नाथ प्रथु है, उसमें एकाग्र हो, वह मोक्ष की अभिलाषा। ऐसा। यह कहेंगे अभी। आठवीं गाथा में कहेंगे। नहीं तो ख्याल है। पंचाध्यायी में कोई भी अभिलाषा मिथ्यात्व है, ऐसा कहा है। क्योंकि अभिलाषा क्या, तुझे मोक्ष की इच्छा कर तो मोक्ष इच्छा से मिलता है ? परन्तु ऐसा आता है। उसमें नहीं आता वहाँ? 'समाधि बोधि इच्छता है।' नहीं? श्लोक आता है।

मुमुक्षु : दुक्खखहो, कम्मखहो....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बस यह। यह तो सब ख्याल तो होता है न चारों ओर का। वहाँ ऐसा कहा है कि धर्मात्मा दुःख का क्षय हो, पश्चात्?

मुमुक्षु : कर्म का....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म का क्षय होओ, बोधि का लाभ होओ।

मुमुक्षु : सुगति गमनम्।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुगति गमनम्। मोक्ष का गमनम्, उत्तम गति प्राप्ति होओ, ऐसा आता है। श्लोक आता है। वह अपेक्षा दूसरी है। वहाँ तो आत्मा अखण्ड आनन्द... यहाँ कहेंगे अभी। उसके ऊपर दृष्टि करके उसकी भावना कर। उसमें यह सब होगा। कर्म का क्षय होगा, दुःख का क्षय होगा, सुगति की प्राप्ति होगी। ऐसा। आहाहा! भाई! किस अपेक्षा से (बात है, यह जानना चाहिए)। शास्त्र में तो अनेक प्रकार के कथन होते हैं अनेक नय के, परन्तु जैसे समुचित हो, वैसा उसका अर्थ होना चाहिए न? चन्दुभाई! आहाहा! वहाँ ता कहे, 'दुःखखहो कर्मखहो' कर्म का क्षय होओ। यह तो एक भावना की बात है। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है, उसमें मेरी पूर्ण आनन्ददशा प्रगट हो, ऐसी अन्दर भावना है, उसमें दुःख का क्षय होता है, कर्म का क्षय होता है, बोधि का लाभ होता है, सुगति मिलती है। सुगति अर्थात् मोक्ष। आहाहा! यह सात गाथा हुई।

गाथा - ८

अथ सर्वेषां परमपुरुषाणां मोक्ष एव ध्येय इति प्रतिपादयति -

१३१) हरि-हर-बंभु वि जिणवर वि मुणि-वर-विंद वि भव्व।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि मुक्खु जि झायहिँ सव्व।।८।।

हरिहरब्रह्माणोऽपि जिनवरा अपि मुनिवरवृन्दान्यपि भव्याः।
परमनिरञ्जने मनः धृत्वा मोक्षं एव ध्यायन्ति सर्वे।।८।।

हरिहर इत्यादि। हरि-हर-बंभु वि हरिहरब्रह्माणोऽपि जिणवर वि जिनवरा अपि मुणि-वर-विंद वि मुनिवरवृन्दान्यपि भव्व शेषभव्या अपि। एते सर्वे किं कुर्वन्ति। परम-णिरंजणि परमनिरञ्जनाभिधाने निजपरमात्मस्वरूपे। मणु मनः धरिवि विषयकषायेषु गच्छत् सद् व्यावृत्त्य धृत्वा पश्चात् मुक्खु जि मोक्षमेव झायहिँ ध्यायन्ति सव्व सर्वेऽपि इति। तद्यथा। हरिहरादयः सर्वेऽपि प्रसिद्धपुरुषाः ख्यातिपूजालाभादिसमस्तविकल्पजालेन शून्ये, शुद्धबुद्धैकस्वभाव-निजात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नवीतराग-सहजानन्दैकसुखरसानुभवेन पूर्णकलशवत् भरितावस्थे निरञ्जनशब्दाभिधेयपरमात्मध्याने स्थित्वा मोक्षमेव ध्यायन्ति। अयमत्र भावार्थः। यद्यपि व्यवहारेण सविकल्पावस्थायां वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं तत्प्रतिबिम्बानि तन्मन्त्राक्षराणि तदाराधकपुरुषाश्च ध्येया भवन्ति तथापि वीतरागनिर्विकल्प-त्रिगुप्तिगुप्तपरमसमाधिकाले निजशुद्धात्मैव ध्येय इति।।८।।

आगे सभी महान पुरुषों के मोक्ष ही ध्यावने योग्य है ऐसा कहते हैं -

ब्रह्मा हरि-हर और जिनेश्वर तथा मुनीश्वर भव्य सभी।
कर एकाग्र निरंजन में मन मुक्ति को ध्याते सब ही।।८।।

अन्वयार्थ :- [हरिहरब्रह्माणोऽपि] नारायण वा इन्द्र, रुद्र अन्य ज्ञानी पुरुष [जिनवरा अपि] श्रीतीर्थंकर परमदेव [मुनिवरवृंदान्यपि] मुनिश्वरों के समूह तथा [भव्याः] अन्य भी भव्य जीव [परमनिरंजने] परम निरंजन में [मनः धृत्वा] मन रखकर [सर्वे] सब ही [मोक्षं] मोक्ष को [एव] ही [ध्यायंति] ध्यावते हैं। यह मन विषयकषायों में जो जाता है, उसको पीछे लौटाकर अपने स्वरूप में स्थिर अर्थात् निर्वाण का साधनेवाला करते हैं।

भावार्थ :- श्री तीर्थंकरदेव तथा चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव महादेव इत्यादि सब प्रसिद्ध पुरुष अपने शुद्ध ज्ञान, अखंड स्वभाव जो निज आत्मद्रव्य उसका

सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप जो अभेदरत्नत्रयमय समाधिकर उत्पन्न वीतराग सहजानंद अतीन्द्रियसुखरस उसके अनुभव से पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरंतर निराकार निजस्वरूप परमात्मा के ध्यान में स्थिर होकर मुक्त होते हैं। कैसा वह ध्यान है, कि ख्याति (प्रसिद्धि) पूजा (अपनी महिमा) और धनादिक का लाभ इत्यादि समस्त विकल्प-जालों से रहित है। यहाँ केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्ष-मार्ग बतलाया है, और अपना स्वरूप ही ध्यावने योग्य है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यवहारनयकर प्रथम अवस्था में वीतरागसर्वज्ञ का स्वरूप अथवा वीतराग के नाममंत्र के अक्षर अथवा वीतराग के सेवक महामुनि ध्यावने योग्य हैं, तो भी वीतराग निर्विकल्प तीन गुप्तिरूप परमसमाधि के समय अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करने योग्य है, अन्य कोई भी दूसरा पदार्थ पूर्ण अवस्था में ध्यावने योग्य नहीं है।।८।।

गाथा-८ पर प्रवचन

आगे सभी महान पुरुषों के मोक्ष ही ध्यावनेयोग्य है... आहाहा! महापुरुष जितने दुनिया में हो गये, उन सबको मोक्ष ही **मोक्ष ही...** ऐसी भाषा है। है? '**मोक्ष एव**' संस्कृत है। एकान्त हो जाता है। कथंचित् व्यवहार और कथंचित् मोक्ष, ऐसा करना चाहिए। तो अनेकान्त हो। इस श्लोक के ऊपर है कलश। है न? '**सर्वेषां परमपुरुषाणां मोक्ष एव ध्येय इति प्रतिपादयति**' आहाहा! यहाँ तो भाई मध्यस्थ पुरुष का काम है। आग्रह कहीं पकड़ा हो और उसे सिद्ध करना हो, यह बात नहीं। समझ में आया? दुनिया चाहे जो मानो, चाहे जो हो। वस्तु तो वस्तु रूप से है, वही रहेगी। उसमें कुछ फेरफार हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

सभी महान पुरुषों के मोक्ष ही... यह परमानन्दस्वरूप परमात्मदशा... आहाहा! वह **ध्यावनेयोग्य है...** ध्यान करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। ठीक! वहाँ अभिलाषा करने का कहा था न? यहाँ ध्यान करनेयोग्य कहा। वह ध्यान अन्दर का करना। पर्याय द्रव्य में ध्यान करे, तब ध्यान किया कहलाता है। आहाहा! **ऐसा कहते हैं:—**

१३१) हरि-हर-बंभु वि जिणवर वि मुणि-वर-विंद वि भव्व।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि मुक्खु जि झायहिँ सव्व॥८॥

आहाहा! वह भव है उसके ऊपर सब है।

१३४) हरि-हर-बंभु वि जिणवर वि मुणि-वर-विंद वि भव्व।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि मुक्खु जि झायहिँ सव्व ॥८ ॥

अन्वयार्थः—'हरिहर' नारायण... वासुदेव। **इन्द्र...** इन्द्र। **रुद्र...** शंकर। इन्द्र—यह स्वर्ग के इन्द्र। **इन्द्र, रुद्र अन्य ज्ञानी पुरुष श्री तीर्थंकर परमदेव...** जिनवरा। **'मुनिवरवृन्दा' मुनिश्वरों के समूह...** आहाहा! **तथा अन्य भी भव्य जीव...** अन्य भव्य जीव। आहाहा! **परम निरंजन में मन रखकर...** देखो, यह सार। परम निरंजन परमात्मा स्वयं शुद्ध, उसमें **मन रखकर...** यह सब सन्त, मुनि, आचार्य, जिनवरों के मुनि के झुण्ड, यह सब आ गया। आचार्य, उपाध्याय, साधु और अन्य भव्यजीव। आहाहा! **परम निरंजन में मन रखकर... 'परमनिरंजने'** भाषा ऐसी है न? **'परमनिरंजने'** भगवान आत्मा इसमें अंजन बिल्कुल नहीं, मैल नहीं, उदयभाव नहीं। आहाहा! जिसमें उदयभाव का अभाव है। अंजन अर्थात् उदयभाव। आहाहा! **'परमनिरंजने'** जिसमें उदयभाव का अभाव है, ऐसा परमस्वभावभाव निरंजन। आहाहा!

'मनः धृत्वा' ऐसे भगवान के मन को रोककर, एकाग्र होकर—ऐसा कहना है। **सब ही मोक्ष को ही ध्यावते हैं।** आहाहा! वे जिनवर भी मोक्ष को ही ध्याते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनि के वृन्द भी मोक्ष को ध्याते हैं, नारायण और रुद्र आदि भी मोक्ष को ध्याते हैं। आहाहा! **'मोक्षं एव'** ऐसा है न? **'ही-ही'** मोक्ष को **'एव'** मोक्ष ही, आहाहा! **ध्यावते हैं। यह मन विषय-कषायों में जो जाता है, उसको पीछे लौटाकर...** विषय शब्द से पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाव में जाता है। आहाहा! कठिन बात है। इन्द्रिय में कहा न? द्रव्य इन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और उसके विषय, यह सब तीनों इन्द्रियाँ हैं। (समयसार गाथा) ३१। **'जो इंदिये जिणित्ता'** आहाहा! तीन लोक के नाथ भगवान देव-गुरु-शास्त्र, पंच परमेष्ठी, उन्हें भी इन्द्रिय का विषय गिनकर इन्द्रिय कहा है। आहाहा! लोगों को कठिन लगे। परद्रव्य है न? वह इन्द्रिय का विषय है। अणीन्द्रिय का विषय तो स्वयं आत्मा है। आहाहा! इन तीन को जीतकर, ऐसा कहा है। इसका अर्थ कि तीन ओर से लक्ष्य छोड़कर। आहाहा!

उसको पीछे लौटाकर अपने स्वरूप में स्थिर अर्थात् निर्वाण का साधनेवाला करते हैं। लो! अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिरता, वह निर्वाण का साधन है। वह मोक्ष का कारण है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण ३, रविवार
दिनांक-११-१०-१९७६, गाथा-८, प्रवचन-१०१

आठवीं गाथा है। आठवीं का भावार्थ? परमात्मप्रकाश आठवीं गाथा का भावार्थ।

श्री तीर्थंकरदेव तथा चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, महादेव इत्यादि सब प्रसिद्ध पुरुष अपने शुद्ध ज्ञान, अखण्ड स्वभाव... देखो! यह वस्तु। **अपने शुद्ध ज्ञान, अखण्ड स्वभाव जो निज आत्मद्रव्य...** यह ध्यान में लेनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। ध्यान में उसका विषय बनानेयोग्य है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... शुद्ध ज्ञान अन्दर पवित्र ज्ञानस्वरूप, अखण्ड द्रव्यस्वभाव लेना है न! एकरूप अखण्ड। **स्वभाव जो निज आत्मद्रव्य...** ऐसा जो स्वभाव, वह निज आत्मद्रव्य। अपना आत्मद्रव्य ऐसा है। शुद्ध ज्ञान अखण्ड स्वभाव। **उसका सम्यक् श्रद्धान...** है? निकला मूलचन्दभाई को? आठवीं गाथा का भावार्थ है।

यह सब महापुरुष जो तीर्थंकर आदि, उन्होंने शुद्ध ज्ञान अखण्ड स्वभाव, ऐसा जो निज आत्मद्रव्य **उसका सम्यक् श्रद्धान...** शुरुआत यहाँ से होती है, कहते हैं। आहाहा! शुद्ध ज्ञान अखण्ड स्वभाव आत्मद्रव्य की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें आचरण। **जो अभेदरत्नत्रयमय समाधिकर...** आहाहा! जो अभेदरत्नत्रयस्वरूप शान्ति है। **समाधिकर उत्पन्न वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस...** आहाहा! शुद्ध ज्ञान अखण्ड स्वभाव, ऐसा जो आत्मद्रव्य, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, उससे उत्पन्न हुआ **वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रियसुख...** आहाहा! माल रखा है अकेला। वीतराग परमानन्द **सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस उसके अनुभव से...** अनुभव की व्याख्या की। भगवान पूर्ण ज्ञान अखण्ड स्वभाव आत्मद्रव्य, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र ऐसा जो अभेदरत्नत्रय अर्थात् निश्चयरत्नत्रय। उससे उत्पन्न होता, वर्तमान अनुभव में **वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस उसके अनुभव से पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा के...** यह अनुभव की व्याख्या की। अब अनुभव किसका करते हैं? आहाहा!

पूर्ण कलश की तरह... जैसे कलश पानी से पूर्ण भरा हो, उसी प्रकार इस कलश

की भाँति आत्मा है न, देखो न! **पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरन्तर निराकार...** सदा निराकार है, अरूपी है। ऐसा निजस्वरूप परमात्मा। आहाहा! ऐसे **निजस्वरूप परमात्मा के ध्यान में स्थिर होकर मुक्त होते हैं।** लो, यह मुक्ति का मार्ग। बहुत सरस बात है। ओहोहो! शुद्ध ज्ञान अखण्डस्वभाव, ऐसा जो आत्मद्रव्य, उसकी अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसा जो अभेद निश्चयरत्नत्रय, उससे उत्पन्न होता वीतराग परमसुखरस स्वाद-अनुभव। किसका? **पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा के...** आहाहा!

भगवान आत्मा **निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा...** आत्मा है। उसके ध्यान में **स्थिर होकर मुक्त होते हैं।** मुक्ति का यह उपाय है। आहाहा! समझ में आया? निमित्त और व्यवहाररत्नत्रय, यह मुक्ति का उपाय नहीं है। यह बन्धन का कारण है। इससे भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान अखण्ड एकरूप वस्तु, ऐसा जो आत्मद्रव्य, उसका ध्यान अर्थात् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह रत्नत्रय, वह ध्यान है। उससे उत्पन्न हुआ परम वीतराग सुखरस स्वभाव, ऐसा जो ध्यान, उससे मुक्त हुए। यह महापुरुष जो अनन्त मुक्त हुए, वे इस प्रकार से हुए हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार कहाँ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार गया व्यवहार में—मूढ़ में। कहो, समझ में आया?

इसीलिए तो कहा, पूर्ण ज्ञान अखण्ड स्वभाववाला तो तत्त्व है। और पूर्ण कलश से भरपूर निराकार निरन्तर निज स्वरूप परमात्मा। यह व्याख्या पूर्ण शुद्ध ज्ञान अखण्ड स्वभाव, ऐसा जो द्रव्य, उसकी यह व्याख्या की है कि **पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा...** वहाँ आत्मद्रव्य कहा था। पूर्ण शुद्ध अखण्ड ज्ञानस्वभाव ऐसा आत्मद्रव्य। यहाँ ऐसा कहा कि **पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरन्तर...** वहाँ ऐसा कहा शुद्ध ज्ञान अखण्ड। यहाँ **पूर्ण कलश की तरह भरे हुए निरन्तर निराकार...** भगवान आत्मा **निजस्वरूप परमात्मा के ध्यान में स्थिर होकर...** ओहोहो! तीन लाईनों में तो गजब बात की है! लो, यह चौदह पूर्व और बारह अंग का सार।

निराकार, निज स्वरूप—ऐसा जो परमात्मा, पूर्ण ज्ञान शुद्ध अखण्ड स्वभाववाला

तत्त्व। अर्थात् आत्मद्रव्य कहो, परमात्मा कहो। ऐसे आत्मा में ध्यान। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह अभेदरत्नत्रय, वह ध्यान है। दूसरे प्रकार से बात की। अभेदरत्नत्रय कहकर और ध्यान कहा उसे। पहले पूर्ण कलश शुद्ध, पूर्ण अखण्ड ज्ञानस्वभाव आत्मद्रव्य कहकर, यहाँ **निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा...** कहा। भाषा बदलकर बात की है। आहाहा! उसके **ध्यान में स्थिर होकर मुक्त होते हैं।** आहाहा! यह इसका उपाय और यह इसका मार्ग। समझ में आया?

दो प्रकार से आत्मा का वर्णन किया और दो प्रकार से मार्ग कहा। क्या दो प्रकार कहे? कि पूर्ण शुद्ध अखण्ड ज्ञानस्वभाव, वह आत्मा, ऐसा कहा—एक। दूसरा, निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा कहा। अर्थात् आत्मा का दो प्रकार से वर्णन किया। अब उसके मार्ग के दो प्रकार। मार्ग तो वह का वह है। समझ में आया? आहाहा! उसके दो प्रकार। क्यों ताराचन्दजी दूर कैसे बैठे? देरी से आये होंगे। समझ में आया? आहाहा! यह बारह अंग और चौदह पूर्व का सार जो आत्मा और उसका मार्ग, दोनों की व्याख्या है। समझ में आया? अर्थात् आत्मा को दो प्रकार से वर्णन किया है।

भगवान आत्मा वह पूर्ण शुद्ध ज्ञान अखण्ड स्वभाववाला तत्त्व और निरन्तर निराकार निज स्वरूप परमात्मा। यह तो उस आत्मा की व्याख्या की, वही परमात्मा (कहा)। दो प्रकार से कहा परन्तु प्रकार एक का वर्णन किया। अब उसके मार्ग के दो प्रकार, वह एक ही प्रकार है। आहाहा! कथन दो प्रकार से किया। भगवान पूर्ण शुद्ध देखनेवाले को देख। जाननेवाले को देख। उससे उत्पन्न होता परमवीतराग सुख और पूर्ण शुद्ध अखण्ड निज स्वरूप वीतराग निराकार, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह अभेदरत्नत्रय, वह ध्यान। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! गजब काम किया है!

तीन लाइन में वस्तु और वस्तु का मार्ग, मोक्ष का उपाय। **निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा के ध्यान में स्थिर होकर...** अथवा **अभेदरत्नत्रयमय समाधिकर उत्पन्न...** परमानन्द सुखरस, उसके अनुभव से। आहाहा! समझ में आया? मुक्त पाये। अनन्त तीर्थंकर, वासुदेव, बलदेव, प्रतिवासुदेव, शंकर, ये महापुरुष। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका अभेदरत्नत्रय अर्थात् निश्चयरत्नत्रय कहा, उसे यहाँ ध्यान कहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसमें ध्यान होकर **मुक्त होते हैं।** आहाहा!

अब **कैसा वह ध्यान है,...** अब ध्यान की व्याख्या वापस। पहले तो कही थी। अभेदरत्नत्रय ऐसा जो ध्यान। वस्तु जो भगवान आत्मा, उसकी सम्यक्श्रद्धा सन्मुख की, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, उसरूप ध्यान। अब वह ध्यान कैसा, उसकी विशेष व्याख्या करते हैं। आहाहा! इस संसार के पठन से दूसरे प्रकार का पठन है। ऐई! झवेरी! यह तुम्हारे पाप का पठन है न सब वह? विद्यालय का। वह अलग प्रकार का पठन है। आहाहा! परमानन्ददशा, ऐसा जो अनुभव, उससे परमानन्ददशा पूर्ण प्रगट हो। ऐसा कहा न?

सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस... कहा है न? **उसके अनुभव से...** आहाहा! वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रिय सुखरस अनुभव। उससे अतीन्द्रिय, पूर्ण अतीन्द्रिय सुखरूपी मोक्ष प्राप्त हो। आहाहा! **कैसा वह ध्यान है, कि ख्याति (प्रसिद्धि)...** अपनी प्रसिद्धि से रहित है वह। बाहर में प्रसिद्धि करना, मैं कुछ हूँ। ऐसा तो विकल्प है, वह तो दोष है। आहाहा! अपनी प्रसिद्धि करना है अन्दर में, उसे बाहर की प्रसिद्धि से रहित होना चाहिए। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपनी प्रसिद्धि। दुनिया पहिचाने कि यह धर्मी है, धर्म करता है। ऐसी जो प्रसिद्धि है, वह तो विकार है। आहाहा! **पूजा (अपनी महिमा)...** अपनी महिमा। मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ। ऐसी बाहर में महिमा होना। आहाहा! वह पाप है। **और धनादिक का लाभ...** धन, शिष्य माननेवालों का लाभ। आहाहा!

मुमुक्षु : धन से लाभ होता है, ऐसा तो इसमें आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ अर्थात्? यह मुझे हो तो ठीक, ऐसा भाव (हो), वह पाप है। धनादि कहा न? धन, इज्जत, शिष्य, माननेवाले, इसे पहिचाननेवालों का लाभ, वह पाप है। आहाहा! फूलचन्दजी! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : अधिक पहिचाने उसमें इसका क्या दोष? उसमें पाप कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न! प्रसिद्धि का भाव है, वही पाप है। उसे छोड़कर अन्तर ध्यान होता है। और वहाँ अटका, वह तो पर का ध्यान हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! दुनिया से दूसरा प्रकार है, बापू! आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में तो अकषायभाव (होता है)। उसमें ऐसे बाहर में प्रसिद्ध होऊँ, बाहर

में पहिचाने, मेरी प्रसिद्धि हो। इज्जत का, शिष्यों का, माननेवालों का, राजा, महाराज, सेठिया हमको माने। वह सब पापभाव है। आहाहा! धनादि शब्द में वह सब आया, हों! वे शिष्य, माननेवाले अधिक मुझे प्रसिद्ध हो बाहर माननेवाले। ओहो! ऐसे सेठिया माननेवाले हैं मुझे। राजा, महाराजा, हमको मानते हैं। ऐसा जो उसका लाभ। **इत्यादि समस्त विकल्प-जालो...** है सब। आहाहा! परमात्मप्रकाश। इसमें समयसार की छाप बहुत है, हों! समयसार।

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश कहो या समयसार कहो, क्या अन्तर पड़े? नाम में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक ही है। इसके अर्थ में—प्रस्तावना में आता है कि इन सब ग्रन्थों में कुन्दकुन्दाचार्यदेव का समयसार, उसकी सबमें छाप है।

समयसार अर्थात्... आहाहा! द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसे यहाँ पूर्ण ज्ञानस्वरूप अखण्ड कहा है, जिसे यहाँ निराकार निरन्तर निज स्वरूप कहा है, उसे समयसार कहते हैं। उसे यहाँ परमात्मा कहा। समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! बाहर में प्रसिद्ध होने का उत्साह, यह सब विकल्पजाल है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दोनों की इच्छा खोटी है। प्रतिकूलता हो, वह भी नहीं और अनुकूलता हो, वह भी नहीं।

वैसे तो एक जगह तुलसीदास कहते हैं। 'सुख के सिर शिला पड़ो, हरि हृदय से जाय, बलिहारी उस दुःख की, जहाँ पल-पल प्रभु समराय।' परन्तु यहाँ तो प्रतिकूलताएँ, वह इच्छा भी खोटी है। क्योंकि प्रतिकूलता हो तो अपने को अन्दर निवृत्ति मिले, यह खोटी बात है। अमरेली में एक बाबा—साधु था। है वहाँ उसकी समाधि का स्थान। फिर एक महिला होगी, उसे गर्भ रहा होगा। और उसे बहुत दुःख हुआ बाहर प्रसिद्ध होने पर। मरने जाती थी। कुँए में गिरने। उसमें वह बाबा कहे, बहिन! यह गर्भ मुझसे रहा है, ऐसा तू दुनिया को कह, जा। वह दुनिया मुझे माननेवाले हैं, भले माननेवाले घट जाये। अमरेली में हुआ है। उस बाबा का समाधिस्थान है। वह भी खोटी बात है। ऐसा

कि तेरा जीवन रहे और मेरा नाम तू तेरे लेना, जा। वह तो पुत्रीरूप से थी उसे तो। परन्तु ऐसा कि यह मेरी बहुत प्रसिद्धि है, और इस प्रकार से भी प्रसिद्धि घट जाये और भले मैं अकेला रहूँ। फूलचन्दभाई! यह तो सब सुना हुआ बहुत हो न! उस बाबा का स्थान वहाँ है। समाधि का। स्वयं जीते जी फिर समाधि ली है। जी-जीते जी।... उसके बाद। उसके कारण से नहीं। उस महिला के कारण से फिर स्वयं को मरण का भाव हुआ, इसलिए बड़ा खड्डा खुदवाकर अन्दर ... बाहर थोड़ा खड़ा रहकर भाषण किया थोड़ा। फिर अन्दर में समा जाता है। अज्ञान तो ऐसा है, सर्वत्र। वहाँ उसके लिये ऐसा कि मेरी प्रसिद्धि इस प्रकार से भले रुके। तो मुझे निवृत्ति मिलेगी। सब माननेवाले जहाँ-तहाँ आते हैं। समय मिलता नहीं। वह भी इच्छा खोटी है। यह तो वीतरागभाव है। आहाहा! ओहो! गजब काम किया है न!

धनादिक का लाभ इत्यादि समस्त विकल्प-जालों से... यह तो विकल्प का जाल है। आहाहा! यह सब दुःखरूप दशा है। आहाहा! उससे रहित। ध्यान की व्याख्या करनी है न? अभेदरत्नत्रय दर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्याख्या करनी है। या ध्यान की कहो। आहाहा! यहाँ तो प्रभु वीतरागता की बात है। कहीं ऐसा राग होकर बाहर में ललचा जाये, वह तो विघ्न करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे विकल्पजाल से रहित। गजब गाथा है, हों! आहाहा! आठवीं गाथा, दूसरे अधिकार की।

यहाँ केवल आत्म-ध्यान... देखो! **यहाँ केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्षमार्ग बतलाया है,...** है न? नियमसार में आता है न? भाई! ध्यान। सब व्रत, तप और वह सब अन्दर ध्यान है। ध्यान, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! सब नाम दो, वे सब ध्यान है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो वीतरागता को खोल दिया है। वीतरागता का घोंटन। आहाहा! जिसे पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द। यह व्याख्या मोक्ष की चलती है अभी, हों! मोक्ष का फल बाद में कहेंगे और मोक्ष का मार्ग बाद में कहेंगे। परन्तु मोक्ष के अधिकार में ही उसका कारण दे दिया है। समझ में आया? मोक्ष का फल है न, बाद में आयेगा।

मुमुक्षु : ११वीं गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ११वीं गाथा। ११वीं गाथा। हाँ, बस यह। **मोक्ष का फल अनन्त चतुष्टय...** ११वीं में हैं। और १२वीं गाथा में फिर मोक्ष का मार्ग आयेगा। परन्तु

यहाँ यह मोक्ष का अधिकार चलता है। परन्तु मोक्ष कैसे मिले, यह भी साथ में बात ले ली है। भले थोड़ा काल, परन्तु जो बात है वह अमृत है यह। भले धीरे से समझ में आये, थोड़ी समझ में आये, परन्तु यह तो अन्तर में अमृतसागर को उछाला है।

भगवान अमृतस्वरूप, वीतरागस्वरूप है न! कहा न? **वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस उसके अनुभव से...** यह **निरन्तर निराकार निजस्वरूप परमात्मा...** आहाहा! **यहाँ केवल आत्मध्यान...** यह तो एकान्त कर दिया। व्यवहार इकट्ठा हो, उसे निमित्त हो, ऐसा तो कहा नहीं। एकान्त यह ही मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार भी है तो अनेकान्त होता है, अभी बहुत ऐसा कहते हैं। यह तो एक ही मार्ग है, सम्यक् एकान्त। आहाहा! उसमें और यह कहते हैं अभी, सोनगढ़ अकेला निश्चय से ही मोक्षमार्ग कहता है। सोनगढ़ कहता है या भगवान कहते हैं?

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग स्वयं व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार भले हो। वह नहीं। वह व्यवहार कषाय की मन्दता की क्रिया, वह भी है तो अनेकान्त हो, नहीं तो एकान्त होता है। ऐई! ताराचन्दजी! यह तो एक समझने के लिये। वह बेचारा उसे जो बैठा हो वह। यह तो एक स्पष्टीकरण समझने के लिये। व्यक्ति की जवाबदारी व्यक्ति के ऊपर है, बापू! किसी व्यक्ति का यहाँ काम नहीं। आहाहा!

यहाँ तो त्रिलोक के नाथ सर्वज्ञदेव की कही हुई मार्गानुसारी यह सन्त, दिगम्बर सन्त मार्गानुसारी है। उनके मार्गानुसार चलनेवाले। केडा कहते हैं? पगदण्डी। आहाहा! ऐसा जो वीतराग ध्यानस्वभाव... आहाहा! दुनिया माने, न माने, प्रसिद्धि हो, न हो, माननेवाली की संख्या अधिक हो या थोड़ी हो या न हो, उसके साथ वस्तु को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कि हमको ऐसे बड़े-बड़े करोड़पति, अरबोंपति सेठिया मानते हैं। बड़े राजा-महाराजा मानते हैं। उससे क्या? आहाहा! अभिनन्दन दे। बड़े-बड़े राजा, रानियाँ, सेठिया। उसके साथ क्या सम्बन्ध है?

यहाँ केवल आत्मध्यान... है न? आठवीं गाथा। **वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस उसके अनुभव से पूर्ण कलश की तरह... 'भरितावस्थे निरंजनशब्दा-**

भिधेयपरमात्मध्याने' अब जरा व्यवहार की बात करते हैं। **केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्षमार्ग बतलाया है,...** आहाहा! ऐसा कहा न? देखो न! '**भरितावस्थे निरंजनशब्दा-भिधेयपरमात्मध्याने स्थित्वा मोक्षमेव ध्यायन्ति**' '**मोक्षमेव**' है न? आहाहा! एक राजा था और फिर रानी थी और फिर ऐसा हुआ, ऐसी बातें हो तो लोगों को ऐसा रस पड़े, रस। राग की बातों का रस-विकथा। यह तो वीतरागी मार्ग है, भाई!

और अपना स्वरूप ही ध्यावनेयोग्य है। है? वस्तु तो यह है। **केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्षमार्ग बतलाया है,...** अभेद रत्नत्रय को मोक्षमार्ग बतलाया है। अपने ध्यान को ही मोक्षमार्ग बतलाया है। आहाहा! और श्रद्धा-ज्ञान के .... विचारवाले ही सब होते हैं, ऐसा बन सकता है? इसलिए... सब विचार में अपने विचार में है, अभिप्राय है, तत्प्रमाण सब अभिप्रायवाले हों, ऐसा कैसे बने? संसार अनादि खड़ा है। आस्रव बन्धतत्त्व के आदर करनेवाले अनादि रहनेवाले हैं। तब नौ तत्त्व रहे न! आहाहा! इससे आत्मा को क्या? भले न माने।

यहाँ कहते हैं कि एक आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। है न? **अपना स्वरूप...** ऐसा वापस। वीतराग केवली तीर्थंकर नहीं। **अपना स्वरूप ही...** यह तो एकान्त हो गया। ही हो गया। ही। वे कहें, जिनमार्ग में 'ही' एकान्त नहीं होता। आता है न? श्रीमद् में आता है। वह तो दो प्रकार... वह तो द्रव्य से नित्य है और पर्याय से अनित्य है, ऐसा। एकान्त नित्य ही है और अनित्य नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! शुद्ध है और अशुद्धता नहीं, ऐसा नहीं है। पर्याय में अशुद्धता है, वस्तु शुद्ध है। शुद्ध ही है द्रव्य और पर्याय अनादि से, ऐसा नहीं। इस अपेक्षा से वहाँ कहा है। समझ में आया? श्रीमद् में आता है एक कागज-पत्र आता है। चार-पाँच लाईन का है।

मुमुक्षु : मेरा भगवान ही कहे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरा महावीर ही न कहे। किस अपेक्षा है?

मुमुक्षु : हिन्दी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चलता है। गुजराती में चले, वैसा हिन्दी में नहीं चलता। आहाहा! यह तो आता है न। हिन्दी बोली जाती है न? बोली जाती है हिन्दी अन्दर।

केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्षमार्ग बतलाया है,... यह हिन्दी नहीं? यह तो फिर इसका अर्थ गुजराती होता है। **केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्षमार्ग बतलाया है,...** अपना निज स्वरूप। यह वापस कहा। **अपना स्वरूप ही...** उसमें निश्चय कहा। व्यवहार तो लिया नहीं। एकान्त निश्चय ही। फिर कहेंगे बात कि व्यवहार आता है। आहाहा! **अपना स्वरूप ही...** भगवान अपना स्वरूप शुद्ध अखण्ड ज्ञान और वीतराग निराकार मूर्ति प्रभु, उसका ध्यान ही, उसका ध्यान ही **ध्यावनेयोग्य है।** आहाहा! ऐसा आत्मा ही ध्यावनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं।

पंचम काल है, इसलिए मार्ग कुछ दूसरा हो जाये? मार्ग दूसरा होगा? मार्ग तो जो है, वह है। आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह परमार्थ का पंथ एक ही है। पंचम काल हो। अरे! पंचम काल का अन्तिम (भाग) हो। मुनि होंगे अन्त में। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आराधक होंगे। पंचम काल के अन्त में आखिर में। आहाहा!

तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यवहारनयकर प्रथम अवस्था में वीतराग सर्वज्ञ का स्वरूप... परद्रव्य। उसके स्वरूप का विचार होता है। **अथवा वीतराग के नाममन्त्र के अक्षर...** ॐ आदि। **अथवा वीतराग के सेवक...** वीतराग के सेवक महामुनि। आहाहा! वे **ध्यावनेयोग्य हैं,...** यह विकल्प व्यवहार के काल में उसका विचार होता है, ऐसा कहते हैं। शुभभाव के काल में। समझ में आया? शुभभाव होता है, तब **वीतराग सर्वज्ञ का स्वरूप...** वीतराग अर्थात् मन्त्र के अक्षर और वीतराग कहे, परन्तु वीतराग-वीतराग तीन में यह लिया है। आहाहा! **वीतराग सर्वज्ञ का स्वरूप...** आहाहा! **वीतराग के नाममन्त्र के अक्षर अथवा वीतराग के सेवक महामुनि...** आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा का ध्यान करना, वह वीतरागभाव है। परन्तु वह उसमें रह नहीं सके, तब व्यवहार भी बीच में आता है। कहा न? **प्रथम अवस्था में...** परन्तु उस प्रथम अवस्था में भी उन **वीतराग सर्वज्ञ का स्वरूप...** ऐसा। और **वीतराग के नाममन्त्र के अक्षर अथवा वीतराग के सेवक महामुनि ध्यावनेयोग्य हैं,...** आहाहा! ऐसे विकल्प व्यवहार में होते हैं। अन्दर में, ध्यान में स्थिर न हो सके, तब ऐसा भाव होता है। है तो वह बन्ध का कारण।

मुमुक्षु : यह वीतराग पहली अवस्था में ध्यानेयोग्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यानेयोग्य अर्थात् पहले होता है। अन्दर वीतरागता होने से पहले यह होता है, इतना।

मुमुक्षु : व्यवहार से निश्चय होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा प्रश्न नहीं। वीतराग दृष्टि तो हुई है, परन्तु अन्दर स्थिरता नहीं, तब यह अवस्था होती है, ऐसा कहते हैं। अन्तर में ध्यान में स्थिर न रह सके, तब यह अवस्था होती है।

तो भी वीतराग निर्विकल्प तीन गुप्तिरूप परमसमाधि के समय अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,... लो! पंच महाव्रत का विकल्प आवे सही। पंच महामुनि का, वीतराग का। वीतराग के मन्त्र ॐ शान्ति... ॐ शान्ति... ॐ शान्ति... वह सब विकल्प होता है। अन्तर में जाने से पहले। दृष्टि तो हुई है परन्तु अन्दर में ध्यान में जाने से पहले कोई ऐसा भी होता है, इतनी बात है। है बन्ध का कारण।

मुमुक्षु : अपूर्ण अवस्था में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपूर्ण अवस्था में होता है न। पूर्ण में कहाँ है ?

तो भी... ऐसा होने पर भी **वीतराग निर्विकल्प तीन गुप्तिरूप परमसमाधि के (अन्दर ठहरता) समय अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,...** बस। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प अभेद। तीन गुप्ति—मन, वचन और काया से हटकर, परमसमाधि, परमशान्ति। क्योंकि वह विकल्प है, उसमें तो राग है, अशान्ति है। आहाहा! परन्तु अन्दर ध्यान में वीतरागपने स्थिर न हो, वहाँ यह भाव आता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक यह भाव आता है। आहाहा!

परमसमाधि के समय... अन्तर में ध्यान के काल में **अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,...** आहाहा! ऐसा मार्ग है। प्रथम अवस्था में यह कहा, इसलिए उससे निर्विकल्प हो सकता है, ऐसा नहीं। परन्तु निर्विकल्प दृष्टि और सम्यक्त्व हुआ है, तथापि वह ध्यान में स्थिर न रह सके, वहाँ ऐसा व्यवहार आता है। परन्तु वास्तव में तो उसे छोड़कर अन्तर में स्थिर होना, वह ध्यान करनेयोग्य है।

मुमुक्षु : .... आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आता है। वह तो बीच में आता है। आहाहा!

सविकल्प अवस्था, ऐसा है न? '**वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं तत्प्रतिबिम्बानि तन्मन्त्राक्षराणि तदाराधकपुरुषाश्च ध्येया भवन्ति**' होता है। व्यवहार का ध्येय होता है। परन्तु वह वस्तु का मूल स्वरूप नहीं है। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा में तो यहाँ तक कहा, '**परदव्वादो दुग्गइ**' ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। तेरे द्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य पंच परमेष्ठी का भी लक्ष्य करने से तुझे राग होगा, दुर्गति होगी। दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं होगी। आहाहा! आवे सही। पूर्ण वीतरागता न हो, वहाँ ऐसा व्यवहार होता है। परन्तु उससे निश्चय प्राप्त हो और व्यवहार, वह सुखरूप शान्ति है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात को सुननेवाले भी थोड़े होते हैं। हो...हा... हो...हा... होता हो, वहाँ ऐसा करो... ऐसा करो... **अन्य कोई भी दूसरा पदार्थ पूर्ण अवस्था में ध्यावनेयोग्य नहीं है।** अन्तर में ध्यान काल में दूसरी चीज़ ध्यान करनेयोग्य है नहीं। ओहोहो!

मुमुक्षु : पूर्ण अवस्था केवलज्ञान होगा तब होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अन्तर में ध्यान काल में। पूर्ण में स्थिरता काल में वह ध्यान पूर्ण हो गया है, वहाँ अन्दर। उसमें कोई दूसरी चीज़ आराधनेयोग्य नहीं है।

मुमुक्षु : निर्विकल्प अवस्था.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प अवस्था है।

यह आता है न समयसार की १२वीं गाथा में? '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभाव दरिसीहिं।**' '**परमभाव दरिसीहिं**' का अर्थ जयसेनाचार्य ने निर्विकल्प में स्थिर हुआ, ऐसा कहा है। केवल स्थिर हुआ, ऐसा नहीं वहाँ। अमृतचन्द्राचार्य ने ... है, खबर है। आहाहा! वहाँ ऐसा लिया है कि अन्तर में निर्विकल्प में '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभाव दरिसीहिं।**' वहाँ व्यवहार होता नहीं। वहाँ विकल्प होता नहीं। वहाँ '**परमभाव**' का अर्थ निर्विकल्पता किया है। केवलज्ञान नहीं। जयसेनाचार्य की टीका में। आहाहा!

मूल तो वस्तुस्वरूप जो है, पूर्ण शान्त अखण्ड ज्ञान, वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा, उसका ही ध्यान करनेयोग्य, उस ओर झुकनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। बस। समझ में

आया ? यह वस्तु है परमात्मस्वरूप। परमात्मप्रकाश है न! परमात्मा, यह आया था न ? निराकार निज स्वरूप परमात्मा आया था। वह परमात्मा ही स्वयं निज स्वरूप है। आहाहा! परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप। पूर्ण... पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा, उसका ही ध्यान करनेयोग्य है, बस। आहाहा! बहुत सरस। कल सिद्ध की गाथा आयी थी कि सिद्ध का सुख कैसा। उपादान से उत्पन्न हुआ। कितने विशेषण...! ओहोहो! दिगम्बर आचार्य भिन्न-भिन्नरूप से बात करे, परन्तु मूल बात को अलग-अलग प्रकार से विस्तार प्राप्त कराये। हेतु तो एक का एक हो परन्तु उसके विस्तार की पद्धति भिन्न-भिन्न होती है। आहाहा!

अन्य कोई भी दूसरा पदार्थ... निर्विकल्प ध्यान के काल में **ध्यावनेयोग्य नहीं है।** आहाहा! ज्ञानार्णव में ऐसा लिया। है न ? ज्ञानार्णव शास्त्र है न ? उसमें बहुत ध्यान की बात ली है। भगवान का ऐसा ध्यान करना। कमल में भगवान विराजते हैं। ॐध्वनि करते हैं। वह अशुभ विकल्प टालने के लिये शुभ विकल्प की स्थिति में वह होता है। परन्तु वह अन्तर में जाये, तब उसे उसकी आवश्यकता नहीं। उसके कारण अन्तर में जा सकता है, ऐसा भी नहीं है। आता अवश्य है। व्यवहार होता है। समझ में आया ? जैसे निमित्त होता अवश्य है, प्रत्येक चीज़ की पर्याय काल में, परन्तु निमित्त उसे करता नहीं। करता नहीं और निमित्त कहना।

कटोरी में घी है तो घी में वह कटोरी निमित्त है। परन्तु उसके आधार के लिये निमित्त है नहीं। कटोरी होती है, उसे क्या कहा जाता है ? कटोरी में। घी कटोरी के आधार से है। इसी प्रकार घी में कटोरी, बर्तन निमित्त है। परन्तु निमित्त कर्ता नहीं। अर्थात् कि उसके आधार से घी रहा है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह वह बातें! क्योंकि घी के रजकण में भी आधार नाम की शक्ति है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान (अपादान, अधिकरण) छह कारक शक्ति है। वह अपने आधार से रहा है वहाँ। बर्तन के आधार से नहीं। यह गजब बातें, बापू! ऐसा है।

मुमुक्षु : ....आधार से वासण है या वासण के आधार से...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ किसी के आधार से कोई नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आता है।

प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा में षट्कारक की शक्ति अनादि पड़ी है। कर्ता, वह शक्ति-गुण है। कर्म-कार्य होता है, करण-साधन होता है, सम्प्रदान-रखे, अपादान-उससे होता है, आधार-उससे होता है। आहाहा! समझ में आया? इस स्तम्भ के आधार से ऊपर के पत्थर रहे नहीं। स्तम्भ भले निमित्त कहलाये ऊपर को। परन्तु निमित्त कर्ता नहीं अर्थात् कि उसके आधार से वह नहीं। आहाहा! वस्तु स्वतन्त्र है न! यह लोगों को भारी कठिन पड़ता है। एक बार कहा था। वहाँ कैंची है न स्वाध्यायमन्दिर में? कैंची-कैंची। कहा, यह कैंची स्तम्भ के आधार से नहीं और कैंची के आधार से ऊपर की चीज़ नहीं। दीवार के आधार से कैंची नहीं। उस काल में वे परमाणु वहाँ ही आधार से रहने की अपने कारण से ऐसी शक्ति है। कैंची के आधार से रहा नहीं।

यह बापू! वस्तु का स्वभाव ऐसा सूक्ष्म है, इसलिए लोगों को स्पष्टीकरण बाहर से आया इसलिए कठिन पड़े। तो भी भाई ने अभी कैलाशचन्दजी ने लिखा है, सोनगढ़वाले निमित्त का निषेध नहीं करते परन्तु निमित्त से कार्य होता है, उसका निषेध करते हैं। यह बात उनकी सच्ची। इतना अपने सुल्टा लेते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह शब्द लिखा है, वह बराबर है। ऐसा कि निमित्त का निषेध नहीं करते, निमित्त है, परन्तु निमित्त से पर में होता है, वह निमित्त कर्ता नहीं। बात तो ऐसी है। समझ में आया? आहाहा! इस घोड़ी के आधार से यह पुस्तक रही है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। निमित्त है परन्तु निमित्त के आधार से रहा है, ऐसा कर्ता निमित्त इसका आधार नहीं। आहाहा! वीतराग का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म, भाई! वीतरागी भाव उत्पन्न करे, ऐसी यह बात है। आहाहा! लो, यह आठ गाथा हुई। दूसरे अधिकार की।

गाथा - ९

अथ भुवनत्रयेऽपि मोक्षं मुक्त्वा अन्यत्परमसुखकारणं नास्तीति निश्चिनोति –

१३२) तिहुयणि जीवहँ जत्थि णवि सोक्खहँ कारणु कोइ।
मुक्सु मुएविणु एक्कु पर तेणवि चिंतहि सोइ।।९।।

त्रिभुवने जीवानां अस्ति नैव सुखस्य कारणं किमपि।
मोक्षं मुक्त्वा एकं परं तेनैव चिन्तय तमेव।।९।।

तिहुयणि इत्यादि। तिहुयणि त्रिभुवने जीवहं जीवानां जत्थि णवि अस्ति नैव। किं नास्ति। सोक्खहं कारणु सुखस्य कारणम्। कोइ किमपि वस्तु। किं कृत्वा। मुक्सु मुएविणु एक्कु मोक्षं मुक्त्वेकं पर नियमेन तेणवि तेनैव कारणेन चिंतहि चिंतय सोइ तमेव मोक्षमिति। तथाहि। त्रिभुवनेऽपि मोक्षं मुक्त्वा निरन्तरातिशयसुखकारणमन्यत्पञ्चेन्द्रियविषयानुभवरूपं किमपि नास्ति तेन कारणेन हे प्रभाकरभट्ट वीतरागनिर्विकल्पपरमसामायिके स्थित्वा निजशुद्धात्मस्वभावं ध्याय त्वमिति। अत्राह प्रभाकभट्टः हे भगवन्नतींन्द्रियमोक्षसुखं निरन्तरं वर्ण्यते भवद्भिस्तच्च न ज्ञायते जनैः। भगवानाह हे प्रभाकरभट्ट कोऽपि पुरुषो निर्व्याकुलचित्तः प्रस्तावे पञ्चेन्द्रियभोगसेवा-रहितस्तिष्ठति स केनापि देवदत्तेन पृष्टः सुखेन स्थितो भवान्। तेनोक्तं सुखमस्तीति तत्सुख-मात्मोत्थम्। कस्मादिति चेत्। तत्काले स्त्रीसेवादिस्पर्शविषयो नास्ति भोजनादिजिह्वेन्द्रियविषयो नास्ति विशिष्टरूपगन्धमाल्यादिघ्राणेन्द्रियविषयो नास्ति दिव्यस्त्रीरूपावलोकनादिलोचनविषयो नास्ति श्रवणरमणीयगीतवाद्यादिशब्दनविषयोऽपि नास्तीति तस्मात् ज्ञायते तत्सुखमात्मोत्थमिति। किं च। एकदेशविषयव्यापाररहितानां तदेकदेशेनात्मोत्थसुखमुपलभ्यते वीतरागनिर्विकल्पस्व-संवेदनज्ञानरतानां पुनर्निरवशेषपञ्चेन्द्रियविषयमानसविकल्पजालनिरोधे सति विशेषेणोपलभ्यते। इदं तावत् स्वसंवेदनप्रत्यक्षगम्यं सिद्धात्मानां च सुखं पुनरनुमानगम्यम्। तथाहि। मुक्तात्मनां शरीरेन्द्रियविषयव्यापाराभावेऽपि सुखमस्तीति साध्यम्। कस्माद्धेतोः इदानीं पुनर्वीतराग-निर्विकल्पसमाधिस्थानां परमयोगिनां पञ्चेन्द्रियविषयव्यापाराभावेऽपि स्वात्मोत्थवीतराग-परमानन्दसुखोपलब्धिरिति। अत्रेत्थंभूतं सुखमेवोपादेयमिति भावार्थः। तथागमे चोक्तमात्मोत्थ-मतीन्द्रियसुखम् – 'अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं। अव्वुच्छिण्णं। च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं।।'।।९।।

अब तीन लोक में मोक्ष के सिवाय अन्य कोई भी परमसुख का कारण नहीं है, ऐसा निश्चय करते हैं –

तीन लोक में बिना मुक्ति के सुख का कोइ उपाय नहीं-
जीवों को, इसलिए नियम से चिन्तन करो मोक्ष का ही।।९।।

अन्वयार्थ :- [त्रिभुवने] तीन लोक में [जीवानां] जीवों को [मोक्षं मुक्त्वा] मोक्ष के सिवाय [किमपि] कोई भी वस्तु [सुखस्य कारणं] सुख का कारण [नैव] नहीं [अस्ति] है, एक सुख का कारण मोक्ष ही है [तेन] इस कारण तू [परं एकं तम् एव] नियम से एक मोक्ष का ही [विचिंतय] चिंतवन कर जिसे कि महामुनि भी चिंतवन करते हैं।

भावार्थ :- श्रीयोगीन्द्राचार्य प्रभाकरभट्ट से कहते हैं कि वत्स; मोक्ष के सिवाय अन्य सुख का कारण नहीं है, और आत्म-ध्यान के सिवाय अन्य मोक्ष का कारण नहीं है, इसलिये तू वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में ठहरकर निज शुद्धात्म स्वभाव को ही ध्या। यह श्रीगुरु ने आज्ञा की। तब प्रभाकरभट्ट ने बिनती की, हे भगवन्; तुमने निरंतर अतीन्द्रिय मोक्ष-सुख का वर्णन किया है, सो ये जगत के प्राणी अतीन्द्रिय सुख को जानते ही नहीं हैं, इन्द्रिय सुख को ही सुख मानते हैं। तब गुरु ने कहा कि हे प्रभाकर भट्ट; कोई एक पुरुष जिसका चित्त व्याकुलता रहित है, पंचेन्द्रिय के भोगों से रहित अकेला स्थित है, उस समय किसी पुरुष ने पूछा कि तुम सुखी हो। तब उसने कहा कि सुख से तिष्ट रहे हैं, उस समय पर विषय-सेवनादि सुख तो है ही नहीं, उसने यह क्यों कहा कि हम सुखी हैं। इसलिए यह मालूम होता है, सुख नाम व्याकुलता रहित का है, सुख का मूल निर्व्याकुलपना है, वह निर्व्याकुल अवस्था आत्मा में ही है, विषय-सेवन में नहीं। भोजनादि जिह्वा इन्द्रिय का विषय भी उस समय नहीं है, स्त्रीसेवनादि स्पर्श का विषय नहीं है, और गंधमाल्यादिक नाक का विषय भी नहीं है, दिव्य स्त्रियों का रूप अवलोकनादि नेत्र का विषय भी नहीं, और कानों का मनोज्ञ गीत वादित्रादि शब्द विषय भी नहीं हैं, इसलिये जानते हैं कि सुख आत्मा में ही है। ऐसा तू निश्चय कर, जो एकादेश विषय-व्यापार से रहित हैं, उनके एकोदेश थिरता का सुख है, तो वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञानियों के समस्त पंच इन्द्रियों के विषय और मन के विकल्प-जालों की रुकावट होने पर विशेषता से निर्व्याकुल सुख उपजता है। इसलिये ये दो बातें प्रत्यक्ष ही दृष्टि पड़ती हैं। जो पुरुष निरोग और चिंता रहित हैं, उनके विषय-सामग्री के बिना ही सुख भासता है, और जो महामुनि शुद्धोपयोग अवस्था में ध्यानारूढ़ हैं, उनके निर्व्याकुलता प्रगट ही दिख रही है, वे इन्द्रादिक देवों से भी अधिक सुखी हैं। इस कारण जब संसार अवस्था में ही सुख का मूल निर्व्याकुलता दीखती है, तो सिद्धों के सुख की बात ही क्या है? यद्यपि वे सिद्ध दृष्टिगोचर नहीं हैं, तो भी अनुमान कर ऐसा जाना जाता है, कि सिद्धों के भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म

नहीं, तथा विषयों की प्रवृत्ति नहीं है, कोई भी विकल्प-जाल नहीं है, केवल अतीन्द्रिय आत्मीक-सुख ही है, वही सुख उपादेय है, अन्य सुख सब दुःस्वरूप ही हैं। जो चारों गतियों की पर्यायें हैं, उनमें कदापि सुख नहीं है। सुख तो सिद्धों के है, या महामुनीश्वरों के सुख का लेशमात्र देखा जाता है, दूसरे के जगत की विषय-वासनाओं में सुख नहीं है ऐसा ही कथन श्रीप्रवचनसार में किया है। 'अइसय' इत्यादि। सारांश यह है, कि जो शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध ऐसे श्रीसिद्धपरमेष्ठी हैं, उनके अतीन्द्रिय सुख है, वह सर्वोत्कृष्ट है, और आत्मजनित है, तथा विषय-वासना से रहित है, अनुपम है, जिसके समान सुख तीन लोक में भी नहीं है, जिसका पार नहीं ऐसा बाधारहित सुख सिद्धों के है।।९।।

गाथा-९ पर प्रवचन

अब तीन लोक में मोक्ष के सिवाय अन्य कोई भी परमसुख का कारण नहीं है,... आहाहा! वहाँ पैसा, स्त्री, इज्जत, कीर्ति, यश, वह कोई सुख का कारण नहीं है।

मुमुक्षु : ....परम सुख का कारण, थोड़े सुख का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धूल भी नहीं। वह परमसुख वह सबको परम शब्द ही प्रयोग किया जाता है। परम अर्थात् वास्तविक सुख का कारण। आहाहा! यह पैसा सुख का कारण नहीं, स्त्री सुख का कारण नहीं। आहाहा! भाई ने लिखा है न? आटा हो, बर्तन हो, सब्जी हो, सब साधुन हो मिर्ची, नमक आदि। परन्तु वह कच्चा है। अग्नि बिना वह सब कच्चा है। अग्नि हो तो वह पक जाये। इसी प्रकार गुरु बिना यथार्थ अपनी दृष्टि से अर्थ करे, वह नहीं समझ में आये इसे। गुरुरूपी अग्नि बिना यह सब कच्चा है, ऐसा उसमें लिखा है। सम्यग्ज्ञानदीपिका में यह लिखा है। इसका अर्थ कैसे करना, यह गुरुगम बिना सब कच्चा है। तथापि निमित्त ने किया नहीं उसे। आहाहा! समझ में आया? समझाने में निमित्त होता है परन्तु निमित्त उसे समझाने का करता है, ऐसा नहीं। यह सब बड़ा फेरफार।

यहाँ कहते हैं कि तीन लोक में। देवलोक में भी सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। तीन लोक में आ गया या नहीं? आहाहा! सेठिया, मनुष्यपना, तिरछा में अरबोंपति-अरबोंपति। अभी अमेरिका में तो कितने अरबोंपति। वह कुछ सुख नहीं। मोक्ष के अतिरिक्त अन्य कहीं सुख नहीं। **ऐसा निश्चय करते हैं—** (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण ५, बुधवार
दिनांक-१२-१०-१९७६, गाथा-९, प्रवचन-१०२

परमात्मप्रकाश, ९ गाथा। ८ हुई न ८? ९वीं है।

अब तीन लोक में मोक्ष के सिवाय अन्य कोई भी परमसुख का कारण नहीं है,... परम सुख है, वह मोक्ष में ही है और उसके उपाय में आना, वह उसका मार्ग है। संसार के सब धर्म, अर्थ और काम में रुक जाना, वह तो बन्ध का कारण है, दु:ख का कारण है। अर्थात् सम्पूर्ण मोक्ष और अनन्त सुख मोक्ष है। **ऐसा निश्चय करते हैं—**

१३२) तिहुयणि जीवहँ जत्थि णवि सोक्खहँ कारणु कोइ।
मुक्सु मुएविणु एक्कु पर तेणवि चिंतहि सोइ॥९॥

अन्वयार्थ:—तीन लोक में... तीन लोक में स्वर्ग, नरक सब आ गया। मनुष्य, राजा, सेठ सब तीन लोक में आ गये। **तीन लोक में जीवों को मोक्ष के सिवाय कोई भी वस्तु सुख का कारण नहीं है,...** ओहोहो! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब सुख के कारण नहीं। देव, गुरु और शास्त्र भी सुख के कारण नहीं, ऐसा साथ में डाला। ऐसा कहा न? **तीन लोक में जीवों को मोक्ष के सिवाय कोई भी वस्तु...** तो यह आ गयी न उसमें? नहीं?

मुमुक्षु : ....सब आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया। लोगों को यह कठिन पड़ता है।

देव-गुरु-शास्त्र भी परवस्तु है। वह सुख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **तीन लोक में जीवों को मोक्ष के सिवाय... 'किमपि' कोई भी वस्तु सुख का कारण नहीं है,...** यह पुत्र अच्छा हो, अच्छी स्त्री मिले, इज्जत मिले, दस-बीस हजार का मासिक वेतन हो। वह सब सुख का कारण है या नहीं? आहाहा! आत्मा की पूर्ण पवित्रता प्रगट हो, वह सुख है। इसके अतिरिक्त किसी वस्तु में सुख नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह जवाहरात, पैसे और मकान बड़े तीन-तीन लाख के, दस लाख के। वे कोई सुख के कारण नहीं। दु:ख के निमित्त हैं सब। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्तमात्र है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का निमित्त है। निमित्त है। उससे दुःख नहीं। दुःख तो स्वयं करता है।

मुमुक्षु : दुःख स्वयं खड़ा करता है, तब उसे निमित्त कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तब निमित्त कहलाता है। दुःख तो उसे अपनी उल्टी पर्याय में करता है। पर का आश्रय लेकर दुःख खड़ा करता है। आहाहा! परवस्तु कहीं दुःख का कारण नहीं है। वह तो निमित्त है। निमित्त कहीं दुःख कराता नहीं। आहाहा! यह मानता है कि मुझे इसमें ठीक पड़ता है। लड़के कमाऊ जगे, पाँच-पच्चीस लाख पैदा हो। शरीर ठीक हो, स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत, समधी, रिश्तेदार अनुकूल हो तो हम सुखी हैं, ऐसा कहे।

यहाँ तो वहाँ तक कहा कि यह एक मोक्ष। अर्थात् कि आत्मा में सुख है और उस सुख की प्राप्ति मोक्ष में है। अर्थात् अपनी पूर्ण पर्याय में है। ऐसे सुख के अतिरिक्त **कोई भी वस्तु...** आहाहा! परवस्तु है न? स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह तो परद्रव्य—परवस्तु है। ऐसे देव-गुरु और शास्त्र, वह परवस्तु है। आहाहा! कठिन बातें हैं। यहाँ तो यह कहते हैं परमात्मप्रकाश योगीन्द्रदेव। **कोई भी वस्तु सुख का कारण नहीं है, एक सुख का कारण मोक्ष ही है...** एक ही कारण है। यहाँ तो एकान्त कहा। कथंचित् मोक्ष में भी सुख है और कथंचित् बाह्य पदार्थ में भी सुख है, ऐसा अनेकान्त यह नहीं। **एक सुख का कारण मोक्ष ही है...** दूसरा कोई कारण है नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव भी सुख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। मोक्ष के अतिरिक्त कोई सुख का कारण नहीं। उसमें यह आ गया या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार-फ्यवहार कब था वहाँ? व्यवहार, वह दुःख का कारण है। कठिन बात, बापू! वीतरागमार्ग।

मुमुक्षु : कथंचित् नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् दुःख। कथंचित् दुःख। परद्रव्य है न? परद्रव्य के आश्रय से तो राग ही होता है। राग, वह दुःख है। सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा! देव, गुरु,

धर्म की श्रद्धा, वह भी एक विकल्प, राग है। आहाहा! वह सुख का कारण नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो, देवीलालजी! ऐसी बात है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनवरदेव (ऐसा फरमाते हैं), एक आत्मा की पवित्र पूर्ण दशा मोक्ष, वही सुख का कारण है। दूसरा कहीं सुख का कारण है नहीं। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार। व्यवहार तो राग है। राग तो दुःख का कारण है, आकुलता है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द की—मोक्ष की प्राप्ति करे, वही सुख का कारण है।

इस कारण तू नियम से एक मोक्ष का ही चिन्तवन कर... देखो! चिन्तवन अर्थात् एकाग्रता कर, ऐसा। पूर्णानन्द की प्राप्ति ऐसा जो मोक्ष, उसका अन्दर आत्मा के आनन्द में ध्यान लगा। चिन्तवन अर्थात् ध्यान। वह ध्यान आ गया है अपने। समझ में आया? मोक्ष—पूर्ण आनन्द सिद्धपद, वह मोक्ष है और उसका कारण तो आत्मद्रव्य है। क्योंकि मोक्ष सुख, वह आत्मा में है। भगवान आत्मा में आनन्द है। उस आनन्द का ध्यान कर। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह तीन अभेद रत्नत्रय, वह ध्यान है। आहाहा! यह कहेंगे। **जिसे कि महामुनि भी चिन्तवन करते हैं।** देखो! महा सन्त, वे आत्मध्यान करते हैं। मुनि अर्थात् साधु... अभी यहाँ कहेंगे।

योगीन्द्राचार्य प्रभाकर भट्ट से कहते हैं... दिगम्बर मुनि योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि, जंगलवासी। वे अपने शिष्य को कहते हैं **हे वत्स...** हे शिष्य! **मोक्ष के सिवाय अन्य सुख का कारण नहीं है, और आत्म-ध्यान के सिवाय अन्य मोक्ष का कारण नहीं है,...** देखो! आहाहा! बहुत संक्षिप्त। मोक्ष की दशा के अतिरिक्त कोई सुख का कारण नहीं है और **आत्म-ध्यान के सिवाय अन्य मोक्ष का उपाय (कारण) नहीं है,...** आहाहा! है? **आत्म-ध्यान के सिवाय...** क्योंकि आत्मा में आनन्द है। उसका ध्यान करना, अन्दर में एकाग्र होना। 'एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं।' आहाहा! जिसे मोक्ष करना है, उसे आत्मा में दृष्टि लगाना चाहिए। क्योंकि वहाँ—आत्मा में आनन्द है। आहाहा!

आत्म-ध्यान के सिवाय... देखो! देव-गुरु-शास्त्र का ध्यान भी नहीं। वह राग है। आहाहा! प्रतिमा की पूजा, भक्ति, यात्रा, वह सब राग है। आहाहा! वह मोक्ष का

कारण नहीं। स्वरूप पूर्ण न प्रगट हो, तब तक ध्यान में आवे। न रह सके तब वह शुभभाव होता है, परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं। ऐसा है। आहाहा! है यह ? दो बातें कीं। **मोक्ष के सिवाय अन्य सुख का कारण नहीं है, और आत्म-ध्यान के सिवाय अन्य मोक्ष का कारण नहीं है,...** आहाहा! दो बातें तो सीधी की। आत्मा जैसा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसमें उसे दृष्टि लगानी पड़ेगी। वह दृष्टि उसमें जाने से ज्ञान उसमें स्थिर हो और उसमें स्थिर होता है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह ध्यान है। वही मोक्ष का एक उपाय है। कहो, समझ में आया ?

इसलिए.... गुरु शिष्य को कहते हैं, इस कारण से। इस कारण से अर्थात् ? मोक्ष के अतिरिक्त सुख नहीं और आत्मध्यान के अतिरिक्त मोक्ष का उपाय नहीं। **इसलिए तू वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में ठहरकर...** ठीक! आत्मध्यान के अतिरिक्त मोक्ष का कारण नहीं। कहा न ? यह ध्यान की व्याख्या की अब। वीतराग निर्विकल्प समाधि। आहाहा! किसी भी प्रकार का दया, दान, भक्ति, व्रत का भी विकल्प छोड़कर, वीतराग निर्विकल्प अभेद शान्ति, अन्तर में आनन्द के नाथ में, प्रभु आनन्द का नाथ है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर संग्रहालय है, उसमें निर्विकल्प वीतराग समाधि। भाषा देखो! देखो! यह मुनि की दशा! इसे मुनि कहते हैं। आहाहा!

वीतरागनिर्विकल्पसमाधि... समाधि अर्थात् शान्ति। वीतरागी अभेद अकषाय शान्ति, वह मोक्ष का उपाय है। समझ में आया ? यह तो बहुत कठिन पड़े। इसका कोई दूसरा साधन होगा या नहीं ? वह स्वयं ही साधन है। उसके साधन का दूसरा कोई साधन नहीं है। परन्तु कहीं व्यवहार को साधन कहा है न ? यह तो व्यवहार है, उसका ज्ञान कराया है। राग की मन्दता उस भूमिका में कितनी किस प्रकार की होती है, उसका इसे ज्ञान कराया है। वह साधन नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्यवहार साधन, निश्चय साध्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ज्ञान कराया है। कहा नहीं ? व्यवहार ऐसा ही होता है, वहाँ ऐसा उसका ज्ञान कराया है। व्यवहार साधन नहीं है। नहीं है, उसे कहना, इसका नाम व्यवहारनय।

मुमुक्षु : नहीं, उसे कहना अर्थात् खोटा कहना (हुआ)।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार खोटा ही है। व्यवहार असत्य है। व्यवहार अभूतार्थ है। आहाहा! ऐसी बात है।

वीतराग अभेद शान्ति से स्थिर होकर, आनन्द में स्थिर हो... आनन्द में स्थिर हो। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप है। शुद्ध उसका अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। अभी। आहाहा! उसमें स्थिर हो। अतीन्द्रिय आनन्द में दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता कर। आहाहा! यह मोक्ष का उपाय है। यह तो चौथे काल की बात होगी, कोई ऐसा कहे। पाँचवें काल में तो कुछ दूसरा मार्ग होगा या नहीं? 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' पाँचवाँ काल हो या चौथा काल हो। आहाहा!

वीतराग निर्विकल्प अर्थात् रागरहित समाधि अर्थात् शान्ति, उसमें स्थिर हो। **निज शुद्धात्म स्वभाव को ही ध्या।** आहाहा! निज स्वभाव शुद्धात्मा, निज शुद्धात्मस्वभाव। भगवान आत्मा का शुद्ध पवित्रस्वभाव, वीतरागस्वभाव, शान्तरसस्वभाव, अकषाय त्रिकाल जिसका स्वरूप है, उसमें स्थिर हो। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन लगता है। गृहस्थाश्रम के लिये दूसरा धर्म नहीं? दान, दया, भक्ति, पूजा वह मोक्षमार्ग नहीं? उसे होता है यह, परन्तु यह मोक्षमार्ग नहीं; बन्धमार्ग है। बहुत कठिन, भाई! अरे! सत्य सुनने को मिलता नहीं, अरे! वह कहाँ जाये? चौरासी के अवतार। आहाहा! यहाँ बड़ा अरबोंपति सेठिया गिना जाता हो और मरकर सूकर के गर्भ में जाये, कुत्ती के गर्भ में जाये। आहाहा! यह दशा। जिसने ऐसे आत्मा के मोक्ष के उपाय का साधन यह किया नहीं, वह तो संसार में भटकनेवाला है। तो संसार में तो नरक और निगोद भी आ जाते हैं। आहाहा!

उसमें स्थिर हो और **शुद्धात्मस्वभाव को ही...** भाषा है? '**ही**' कथंचित् शुद्धात्मा का ध्यान और कथंचित् रागरूप व्यवहार मोक्ष का मार्ग, ऐसा नहीं है। **निज शुद्धात्मस्वभाव को ही ध्या।** ध्यान कर। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञान कर, दृष्टि की पर्याय में उसकी श्रद्धा कर और चारित्र की पर्याय में उसमें स्थिर हो। आहाहा! व्यवहारमोक्षमार्ग, वह तो कथन कहनेमात्र निरूपण है। व्यवहार मोक्षमार्ग है नहीं। (यदि दो मोक्षमार्ग हो) तो दो मोक्ष के मार्ग के दो फल आवें। निश्चयमोक्षमार्ग का फल मोक्ष निश्चय। व्यवहारमोक्षमार्ग का फल व्यवहार मोक्ष, ऐसा होगा? वह तो पुण्य है, राग है। क्योंकि दो मार्ग हो तो दो के फल आवे न?

भगवान आत्मा वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह, हों! अज्ञानी और अन्यमति आत्मा कहते हैं, वह नहीं। जिनवरदेव वीतराग परमेश्वर केवली ने जो आत्मा देखा और कहा, ऐसा परमानन्दस्वरूप प्रभु, उसका एक का ध्यान कर, कहते हैं। आहाहा! **यह श्री गुरु ने आज्ञा की।** भाषा देखो! श्रीगुरु की यह आज्ञा है। आहाहा! व्यवहार कर और व्यवहार से होगा, यह आज्ञा नहीं। आहाहा! ऐसा है न उसमें? बापू!

मुमुक्षु : आत्मा के ध्यान में स्थिर न हो, तब तक पंच परमेष्ठी का ध्यान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान करे तो विकल्प है। होता है, यह तो कहा न। अशुभ से बचने को शुभभाव होता है, परन्तु (वह) मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु : करना तो पड़ेगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना पड़ेगा नहीं, आयेगा। जहाँ अन्तर में स्थिर न हो सके, वहाँ तक ऐसे शुभभाव आयेंगे। आहाहा! परन्तु वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। बीच में वह बन्ध का मार्ग होता है। आहाहा! ऐसी बात बहुत कठिन। अनन्त काल से... आहाहा! जंजीर से निकले, नहीं आया उसमें? वह दिव्य शक्तिमान प्रभु... आहाहा! जिसका अनन्त बल, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता ऐसा दिव्यशक्तिमान भगवान है। स्वयं ऐसा है। ऐसा दिव्यशक्तिमान जिससे जंजीर से— राग के बन्धन में से निकले, वह कर, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में वीतरागभाव से कल्याण होता है, वीतरागमार्ग में राग से होवे तो वह वीतरागमार्ग नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो रागमार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो रागमार्ग। वीतरागमार्ग नहीं हुआ।

भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है। आत्मा वीतरागस्वरूप ही त्रिकाल है। उसका अन्दर ध्यान करके वीतरागता प्रगट होना, वह मोक्ष का मार्ग है। यह लोगों को एकान्त लगता है। क्या करे? क्या हो? बहुतों को एकान्त (लगता) है। भगवान! यह परमात्मा क्या कहते हैं, देखो न! योगीन्द्रदेव सन्त दिगम्बर मुनि हैं यह। आहाहा! प्रभु! मार्ग तो यह है। बदल डालेगा दूसरे प्रकार से तो नहीं मिलेगा। भटकना नहीं टलेगा, परिभ्रमण की घाणी में पिलेगा। आहाहा!

यह श्रीगुरु ने आज्ञा की। है? आहाहा! सन्तों और धर्मात्मा सर्वज्ञ के साधक जीवों, मुनियों की तो यह आज्ञा है, कहते हैं। परमेश्वर जिनेश्वरदेव के साधक जीवों, मुनियों, धर्मात्मा वीतरागी, वीतरागी मुनि वे तो हैं। मुनि को वीतरागदशा प्रगट हुई होती है। आहाहा! तीन कषाय का अभाव, अकेली वीतरागता प्रगट हुई है। उन गुरु की यह आज्ञा है। आहाहा! समझ में आया? वाह! **तब प्रभाकर भट्ट ने विनती की,...** प्रभु! आप अतीन्द्रिय सुख की बात करते हो, परन्तु वह अतीन्द्रिय सुख क्या है? अतीन्द्रिय सुख मोक्ष में और उसके उपाय में भी अतीन्द्रिय सुख है। आहाहा! क्योंकि पूर्ण अतीन्द्रिय सुख का कारण अपूर्ण अतीन्द्रिय सुख है। वीतराग निर्विकल्पभाव कहो या सुख कहो। वह है क्या यह? तुम ऐसी सब बात करते हो।

शिष्य ने प्रश्न किया, **हे भगवन! तुमने निरन्तर अतीन्द्रिय मोक्ष-सुख का वर्णन किया है,...** अतीन्द्रिय मोक्षसुख। जिसमें इन्द्रिय का सुख नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा मोक्ष, उसका आपने वर्णन किया। **सो ये जगत के प्राणी अतीन्द्रिय सुख को जानते ही नहीं हैं,...** आहाहा! जगत के प्राणी अतीन्द्रिय **सुख को जानते ही नहीं हैं,...** जानते ही नहीं। यह इन्द्रिय के सुख। राजा, सेठिया, देव वे सब इन्द्रिय सुख की कल्पना में-दुःख में पड़े हैं बेचारे। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! इन्द्रिय के सुख में पड़े हैं। तुम सब लाखोंपति भटकते, उस पैसे पर लक्ष्य जाये, वह राग और दुःखी है।

मुमुक्षु : समुद्र में डाल देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ इसके थे, वह डाल दे? डालने की क्रिया यह कहाँ कर सके, ऐसा है? रखने की कर सकता नहीं, डालने की कर सकता नहीं। वह तो जड़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : तिजोरी में पड़े तो भले पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़े तो पड़े रहेंगे। इसके रखने से रहेंगे? इसके निकालने से निकलेंगे? ममता करे कि मैं इसे रखूँ। या छोड़ने का दया-दान के भाव करे तो शुभभाव पुण्य करे। वह धर्म नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है। ऐसी बात कहीं है नहीं। जिनवर परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। सबने भ्रमणा खड़ी करके बातें की हैं। आहाहा!

जगत के प्राणी अतीन्द्रिय सुख को जानते ही नहीं हैं, इन्द्रिय सुख को ही सुख मानते हैं... वह तो इन्द्रिय सुख को माने पैसा, इज्जत, कीर्ति... आहाहा! स्त्री का शरीर पुरुष भोगे, पुरुष का स्त्री (भोगे)। वह माँस और हड्डियाँ, चमड़ी... आहाहा! उसके ऊपर लक्ष्य जाकर इन्द्रिय सुख को मानो हम सुख भोगते हैं। उसे वह जानता है बेचारे। उन्हें अतीन्द्रिय सुख की तो गन्ध भी नहीं। इन्द्रियसुख है दुःख। आहाहा!

तब श्री गुरु ने कहा कि हे प्रभाकर भट्ट... मैं एक दृष्टान्त देता हूँ, उसे सुन। गुरु शिष्य को कहते हैं कि मैं दृष्टान्त देता हूँ, उसे सुन। उसमें से अतीन्द्रिय सुख का न्याय निकालना। **कोई एक पुरुष जिसका चित्त व्याकुलता रहित है,...** बैठा है। अकेला शान्त होकर। और **पंचेन्द्रिय के भोगों से रहित...** उस समय पंचेन्द्रिय के भोग है नहीं। एकान्त अकेला बैठा है ऐसे। **अकेला स्थित है, उस समय किसी पुरुष ने पूछा कि तुम सुखी हो। तब उसने कहा कि सुख से तिष्ट रहे हैं,...** हम तो सुख में हैं। यह बाहर की आकुलता नहीं, पाँच इन्द्रिय का भोग नहीं और बैठा है अकेला। इस अपेक्षा से बात लेते हैं। **तब उसने कहा कि सुख से तिष्ट रहे हैं,...** हम तो सुख में हैं। शान्ति में बैठे हैं। ऐसा कहता है। **उस समय पर विषय-सेवनादि सुख तो है ही नहीं,...** समझे? आहाहा!

उसने यह क्यों कहा कि हम सुखी हैं। श्रवण में कोई प्रशंसा नहीं, आँख से कोई रूप देखने का नहीं, रस से चखने का नहीं, स्पर्श से भोगने का नहीं। इस प्रकार से बैठा है और ऐसा कहता है कि मैं सुखी हूँ। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो अब। **सुख नाम व्याकुलता रहित का है,... उसने यह क्यों कहा कि हम सुखी हैं। इसलिए यह मालूम होता है, सुख नाम व्याकुलता रहित है, सुख का मूल निर्व्याकुलपना है,...** सुख का मूल तो व्याकुलता, विकल्पता रहित है। **वह निर्व्याकुल अवस्था आत्मा में ही है,...** वह निर्विकारी सुख ही आत्मा में है। **विषय-सेवन में नहीं।** इसलिए वह सुखी हूँ, कहा। कुछ नहीं दूसरा। रूप देखता नहीं, गन्ध सूँघता नहीं, भोग नहीं, स्पर्श नहीं। आहाहा! तथा प्रशंसा आदि सुनता नहीं। ऐसे बैठा है। **सुख का मूल निर्व्याकुलपना है, वह निर्व्याकुल अवस्था आत्मा में ही है, विषय-सेवन में नहीं।** आहाहा!

भोजनादि जिह्वा इन्द्रिय का विषय भी उस समय नहीं है,... जब ऐसा कहता है कि मैं सुखी बैठा हूँ, उस समय भोजन, आहार-पानी और इन्द्रिय के विषय का तो है

नहीं। खाता नहीं और बैठा है और कहता है कि मैं सुखी हूँ। आहार नहीं, भोजन नहीं, पानी नहीं। **दिव्य स्त्रियों का रूप अवलोकनादि नेत्र का विषय भी नहीं,...** स्त्री का सेवन नहीं-स्पर्श। **और गन्धमाल्यादिक नाक का विषय भी नहीं है,...** माला या फूल सूँघता है, वह भी नहीं। नाक का विषय नहीं। फूल सूँघे उस समय। और **दिव्य स्त्रियों का रूप अवलोकनादि नेत्र का विषय भी नहीं,...** उस समय तो स्त्री का रूप भी देखता नहीं। **और कानों का मनोज्ञ गीत वादित्रादि शब्द विषय भी नहीं हैं,...** वाजिन्त्र बजते हों, प्रशंसा (होती हो) वह भी नहीं। आहाहा! **इसलिए जानते हैं कि सुख आत्मा में ही है।** यह एक दृष्टान्त लिया। पाँच इन्द्रिय के विषय नहीं, तथापि ऐसा कहते हैं, कैसे भाई? सुख में बैठा सुखी हूँ। पाँच इन्द्रिय के विषय तो नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा में ही सुख है। समझ में आया? दृष्टान्त कैसा लिया है, देखो न! आहाहा!

अरे! इसने आत्मा की दरकार नहीं की। चौरासी के अवतार में जहाँ-जहाँ अवतरित हुआ, वहाँ-वहाँ अपना मानकर फँस गया है। आहाहा! मैं एक पर से भिन्न चीज़ हूँ। उस विकल्प से—शुभाशुभराग से भी भिन्न आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसी रुचि कभी की नहीं। आहाहा! विद्यमान चीज़ जैसी है, वैसी उसे मानी नहीं। और पर में सुख है, उसके घेरे में घिर गया। आहाहा! भोजन, गन्ध में, स्त्री आदि देखना, है न सब? आहाहा! अवलोकन, कान का सुनना कुछ... उससे ... बस, उसमें पड़े हैं। वाजिन्त्र बजते हों, कोई प्रशंसा करता हो, ओहो! तुम तो बहुत महापुरुष, तुमने तो ऐसे काम किये, तुमने तो ऐसे काम किये, देश की सेवा की, तुमने यह किया। ऐसी महिमा सुने तो प्रसन्न होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा यहाँ कुछ नहीं, तथापि वह कहता है कि मैं सुखी हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि पर में सुख है नहीं। सुख निवृत्ति में है। ऐसा लेना है। पाँच इन्द्रिय के विषय की निवृत्ति में सुख है। अर्थात् कि आत्मा में सुख है, ऐसा सिद्ध किया। दृष्टान्त बराबर है कि या नहीं? आहाहा! **इसलिए जानते हैं कि सुख आत्मा में ही है। ऐसा तू निश्चय कर,...** आहाहा! **जो एकादेश विषय-व्यापार से रहित हैं, उनके एकोदेश थिरता का सुख है,...** एक अंश भी पाँच इन्द्रिय के विषय से रहित है, एकदेश—एक भाग, पाँच इन्द्रिय के विषय के व्यापार से रहित है **उनके एकोदेश थिरता का सुख**

है,... एक अंश उसे आत्मा में स्थिरता का सुख है। आहाहा! पाँचों इन्द्रियों के विषयों के व्यापार से एकदेश भी निवृत्ति पावे तो इतना एकदेश आत्मा में सुख है। आहाहा!

तो वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञानियों के समस्त पंच इन्द्रियों के विषय... जब पाँच इन्द्रिय के विषय एक अंश भी छूटकर बैठा है, उसे भी इतना एक अंश का स्थिरता का सुख है। आहाहा! **तो वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञानियों के...** आहाहा! जिसे आत्मा का ज्ञान अन्तर में प्रगट हुआ, वीतरागी स्वसंवेदन। राग बिना का स्व-अपना प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन। आहाहा! **ज्ञानियों के समस्त पंच इन्द्रियों के विषय और मन के विकल्प-जालों की रूकावट होने पर विशेषता से निर्व्याकुल सुख उपजता है।** आहा! न्याय समझ में आता है? पाँच इन्द्रिय के भोग की ओर की प्रवृत्ति का एक अंश भी जहाँ छूटा, वहाँ अन्दर में आत्मा में इतनी स्थिरता आ गयी, उतना सुख है, तो जिसे सर्व व्यापार छूट गया और वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थिर हुआ, उसका उसे पूर्ण सुख है। आहाहा!

वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानी... कठिन बात पड़े भगवान! परन्तु भाई! तू आत्मा है न! बाल, युवा, स्त्री, पुरुष वह तू नहीं, वह तो जड़ की दशा है। इसी प्रकार बनिया, हरिजन और ब्राह्मण, वह कहीं आत्मा नहीं है। वह तो शरीर की जाति की दशा है। आहाहा! इसी प्रकार तू राग और पुण्यवाला नहीं। क्योंकि वह विकारदशा है। विकाररहित तेरा स्वरूप निर्विकारी सुख का—आनन्द का कन्द है। सुखकन्द मनोहर। आहाहा! कस्तूरी मृग की नाभि में कस्तूरी। कस्तूरी मृग की नाभि में कस्तूरी, परन्तु उसकी कीमत उसे है नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की कस्तूरी से भरपूर भगवान आत्मा है। कैसे जँचे? आहाहा! उस कस्तूरी की सुगन्ध देखकर कस्तूरी मृग बाहर ऐसे... ऐसे... करता है। यहाँ होगी... यहाँ होगी... यहाँ होगी। परन्तु यहाँ है ऐसी, उसमें नजर करता नहीं। इसी प्रकार अज्ञानी अनादि से पाँच इन्द्रियों के विषयों में मानो सुख है, वह सुखाभास देखकर वहीं का वहीं दौड़ता है। अन्तर में आत्मा में सुख है, वहाँ नजर नहीं करता। आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन अर्थात् अन्तर में नजर करना। समझ में आया? सम्यक्—सत्य दर्शन अर्थात् कि सत्य वस्तु की ओर नजर करना, वह सम्यग्दर्शन, वह सम्यग्ज्ञान।

आहाहा! यहाँ तो अकेले निश्चय की ही बात की है। व्यवहार से होगा, यह तो बात इसमें तो की नहीं। अन्यत्र कहा वह तो निमित्त का ज्ञान कराया। पूर्वापर विरुद्ध बात होती है वीतराग में? जिनवाणी में पूर्वापर विरुद्धता नहीं होती। वीतरागमार्ग तो पूर्वापर विरोधरहित है। आहाहा! अभी तो धन्धा आदि चौबीस घण्टे में छह-सात घण्टे सोता हो। *(नोट - यहाँ से कैसेट में ऊपर का पैरेग्राफ फिर से आता है।)* कितने ही सोते हों तो नींद भी नहीं आती, गोलियाँ लेना पड़े। बड़े शहर में व्यापार और धन्धा। रात्रि में नींद न आवे नींद। चाय-बाय पीवे, एकाध-दो गोली ले नींद की। पश्चात् नींद आ जाये। वह बेचारा दुःखी।

यह मार नहीं डाला बेचारे को? वहाँ फिरोजाबाद, छदामीलाल करोड़ोंपति। चालीस-पचास लाख का तो दान किया हुआ है। दिगम्बर जैन। बड़ा सेठ। छदामीलाल। गत वर्ष आया था बेचारा वहाँ। हम बेंगलोर थे न, वहाँ आया था। उसका कोई व्यक्ति होगा नेपाल का व्यक्ति नौकर। उसे कुछ नहीं था। दो व्यक्ति। पैसे होंगे या चाहे जो कारण हो, छुरे से मार दिया। लो, यह पैसा और यह बँगला बड़ा। आहाहा! परदेश का व्यक्ति होगा कोई नौकर पुराना। पैसा-बैसा... यह कल भाई ने बात नहीं की? मूलचन्दभाई ने। उनके भाई माणेकलाल आते हैं न? डेढ़ सौ तौला सोना उनका आदमी ले गया। डेढ़ सौ तौला सोना। दस हजार रुपये रोकड़। आदमी नौकर होगा, उसी और उसी में रहता होगा घर में। परन्तु कोई नहीं था तो लेकर चला गया। यह स्थिति संसार की है। होवे तो भी कहाँ सुख है और न हो तो भी कहाँ सुख है उसमें? आहाहा!

यहाँ तो आचार्य महाराज जरा पाँच इन्द्रिय के विषय बाहर से भी छूटकर अकेला बैठा है। तो वह कहते हैं, कैसे है? मजा है। विषय तो पाँच इन्द्रियों के भोग तो हैं नहीं। अकेला है और ऐसा कहता है, सुखी हूँ। इसका अर्थ हुआ कि आत्मा में सुख है। ऐसा दृष्टान्त लिया है। सुख आत्मा में है, सुख बाहर में नहीं। तो जिसे एकदेश भी छूटने से सुखी हो, जिसने सर्वथा छोड़ दिया है। सन्तों ने तो निर्विकल्प वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानियों को समस्त इन्द्रिय-विषय छूट गये। उन्हें तो मन का विकल्प जाल छूट गया है। आहाहा! मुनि जिसे कहते हैं, वीतरागी सन्त जिसे कहते हैं... आहाहा! उन्हें तो **मन के विकल्प-जालों की रूकावट होने पर विशेषता से निर्व्याकुल सुख उपजता है।**

अकेला आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, उसे मुनिपना कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की लहर करता हो अन्दर में। जंगल में बसे नग्नरूप से और अतीन्द्रिय आनन्द की लहर अन्दर से उत्पन्न हो, उसके सुख की क्या बात करना? कहते हैं। वह सुखी है। 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया।' तीन कषाय का अभाव करके जिसे अन्दर आनन्द प्रगट हुआ है, वह सन्त सुखी है। बाकी सब पैसेवाले और सब स्त्रीवाले और पैसेवाले, पुत्रवाले, इज्जतवाले। कितने वाळा? एक वाळा निकले तो चिल्लाहट मचाता है। यह पैर में, पानी वैसा हो तो वाळा निकलता है न, वाळा? वाळा कहते हैं? एक वाळा से चिल्लाहट मचाये। तो यह तो कितने वाळा? ऐई! शान्तिभाई! पुत्रवाला, स्त्रीवाला, पुत्रीवाला, दामादवाला, मकानवाला, कीर्तिवाला।

मुमुक्षु : .... अनुकूलता दोनों का मेल कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल कहाँ है? आहाहा! सब वाळा लगे हैं।

भगवान आत्मा जिसे कहते हैं कि पर का लक्ष्य छोड़कर, मन के विकल्प भी छोड़कर जिसने निर्विकल्पता वीतरागपने के ढलान में, रस में पड़े हैं, उनके सुख की क्या बात करना! आहाहा! है?

इसलिए ये दो बातें प्रत्यक्ष ही दृष्टि पड़ती हैं। दो बातें तो प्रत्यक्ष नजर में आती हैं, ऐसा कहते हैं। **जो पुरुष निरोग और चिन्तारहित हैं,...** निरोग है और चिन्ता कुछ नहीं। **उनके विषय-सामग्री के बिना ही सुख भासता है, और जो महामुनि...** उसकी तो क्या बात करना, कहते हैं। ओहोहो! **शुद्धोपयोग अवस्था में ध्यानारूढ़ है,...** देखो! मुनि है, वे आत्मा के ध्यान में शुद्धोपयोग में (आरूढ़ हैं)। दया, दान, विकल्प है, वह तो अशुद्ध उपयोग है। आहाहा! उससे छूटकर अन्तर में शुद्धोपयोग। क्योंकि शुद्ध आत्मा है, उसका उपयोग अर्थात् शुद्ध उपयोग। शुद्धस्वरूप परमात्मा स्वयं है, उसका व्यापार—उपयोग, वह शुद्धोपयोग। आहाहा!

महामुनि शुद्धोपयोग अवस्था में ध्यानारूढ़ है,... अन्तर के ध्यान में मस्त है। आहाहा! **उनके निर्व्याकुलता प्रगट ही दिख रही है,...** उनके तो आकुलतारहित सुख प्रगट दिखता है। आहाहा! **वे इन्द्रादि देवों से भी अधिक सुखी हैं।** इन्द्रों को तो इन्द्रिय

के सुख हैं और मुनियों को अतीन्द्रिय का सुख है। उनसे अधिक सुख कहा, वह तो अपेक्षा से कहा।

मुमुक्षु : जाति एक नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति में ही अन्तर है। इन्द्र के इन्द्राणी सुख और अतीन्द्रिय सुख की जाति में अन्तर है। आहाहा! इन्द्रों का सुख वह तो दु:ख है, जहर है और यह अमृत आत्मा का सुख, वह तो आनन्द है। आहाहा!

मुमुक्षु : सातवें में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छठवें में भी आनन्द है न। विकल्प है, उतना दु:ख है। आनन्द है। सातवें गुणस्थान में अत्यन्त निर्विकल्पदशा है। सच्चे सन्त होते हैं मुनि, जिनवर की आज्ञा प्रमाण, उन्हें तो छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आता है। क्षण में सप्तम गुणस्थान विकल्परहित ध्यान, क्षण में विकल्प आवे, परन्तु तीन कषाय का अभाव है, उतना तो सुख है। समझ में आया ? आहाहा! सामग्री का अभाव है परन्तु सुख का सद्‌भाव है। बाहर की सामग्री का अभाव है। अन्तर के सुख के साधन की सामग्री का सद्‌भाव है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें भी सुनी न हो। वे कहे, दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, पूजा करो, भक्ति करो, भगवान की आँगी रचो। वह सब विकल्प है, वह तो राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा ही था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही था। और यह किया था तुम सबने। यह था न ? आहाहा!

इन्द्रादि देवों से भी अधिक सुखी हैं। आहाहा! **इस कारण जब संसार अवस्था में ही सुख का मूल निर्व्याकुलता दिखती है,...** आहाहा! संसारदशा में भी इन्द्रिय के विषय की विकल्पता छोड़कर, आत्मा के सुख का अंश वहाँ आता है। आहाहा! **सुख का मूल निर्व्याकुलता दिखती है, तो सिद्धों के सुख की बात ही क्या है ?** भगवान परमात्मा णमो सिद्धाणं, उन सिद्ध के सुख की बात तो क्या करना ? आहाहा! उन्हें तो अनन्त-अनन्त सुख और अनन्त आनन्द है। आहाहा!

यद्यपि वे सिद्ध दृष्टिगोचर नहीं है,... अब जरा सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। वर्तमान

सिद्ध इसे दृष्टिगोचर नहीं अभी। **तो भी अनुमानकर ऐसा जाना जाता है,...** परन्तु अनुमान से जानते हैं या नहीं कि वर्तमान यहाँ भावकर्म, द्रव्यकर्म जड़ है यहाँ, उन्हें ये नहीं हैं। **सिद्धों के भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म नहीं, तथा विषयों की प्रवृत्ति नहीं है,...** आहाहा! **कोई भी विकल्प-जाल नहीं है,...** मन का भी, ऐसा कहते हैं। **केवल अतीन्द्रिय आत्मिक-सुख ही है,...** देखो! अनुमान से भी सिद्ध कराया। आहाहा! समझ में आया? **केवल अतीन्द्रिय आत्मिक...** बाहर की सामग्री का अभाव है, विकल्प का अभाव है। आहाहा! विषय की प्रवृत्ति नहीं, विकल्प का जाल नहीं। **केवल अतीन्द्रिय आत्मिक-सुख ही है, वही सुख उपादेय है,...** आहाहा! यही आनन्द आदरनेयोग्य है, बाकी कोई आदरनेयोग्य है नहीं। आहाहा!

अन्य सुख सब दुःखरूप ही हैं। यह पाँच इन्द्रिय के विषय सब सुख कल्पना, वह दुःख है, जहर है। आहाहा! शरीर के स्पर्श का सुख, वह दुःख है। नाक के सुगन्ध के भाव—प्रसन्नता, वह दुःख है। भोजन के रस के इन्द्रिय में मिठास, मैसूर आदि पर लक्ष्य जाने से राग है, वह दुःख है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय का भाव दुःख है। **अन्य सुख सब दुःखरूप ही हैं। जो चारों गतियों की पर्यायें हैं, उनमें कदापि सुख नहीं है।** ठीक! यह मनुष्यगति हो या देवगति हो। चारों गतियाँ कही न? यह नरकगति हो या तिर्यंचगति हो या मनुष्यगति हो या देवगति हो। चारों पर्याय में **कदापि सुख नहीं है।** कहीं गति में सुख नहीं है। आहाहा! चार गति ही स्वयं पराधीन और दुःखरूप है। आहाहा! ऐसा निश्चय सत्य मार्ग लोगों को सुनने को मिला न हो बेचारों को। ऐसी की ऐसी जिन्दगी मजदूरी करके (पूरी करे)। बड़े मजदूर। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान रखे सब। और कागज-बागज लावे हाथ में। पतंग हाथ में रखे। पतंग भले ऊँचे जाये, परन्तु डोरा हाथ में होता है न! काम वहाँ भले करे, परन्तु यहाँ कागज-बागज आवे, ऐसा करते हैं, बापू! आहाहा! यह तो एक दृष्टान्त, हों! दुनिया में ऐसा ही चलता है। आहाहा!

महामुनिश्वरों के सुख का लेशमात्र देखा जाता है,... देखो! आहाहा! मुनि तो उसे कहते हैं कि जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो, अतीन्द्रिय आनन्द का जिन्हें

स्वादिष्ट हो। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उन्हें इष्ट हो। विषय का सुख जिन्हें अनिष्ट हो। आहाहा! बापू! मुनिपना किसे कहें ? बहुत कठिन बात, भाई! जिसे गणधरदेव–तीर्थंकर के वजीर, दिवान नमस्कार करें, वह चीज़ कैसी होगी! मुनिपना कैसा होगा, बापू! मुनि! आहाहा! गजब दशा!

कहते हैं कि **महामुनिश्वरों के सुख का लेशमात्र देखा जाता है, दूसरे के जगत की विषय–वासनाओं में सुख नहीं है... दूसरे के जगत की विषय–वासनाओं में सुख नहीं है ऐसा ही कथन श्री प्रवचनसार में किया है।** लो! टीका में प्रवचनसार का दृष्टान्त (उद्धरण) देते हैं। **सारांश यह है कि जो शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध ऐसे श्री सिद्धपरमेष्ठी हैं,...** आहाहा! **शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध...** जिन्हें शुद्धोपयोग से सिद्धपद प्राप्त हुआ। आहाहा! वह शुभउपयोग मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। अभी बड़ा विवाद यह है। सोनगढ़ के सामने या शास्त्र के सामने।

मुमुक्षु : भगवान के सामने।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के सामने। आहाहा!

इस शुभोपयोग से कुछ कल्याण होगा, ऐसा कहो, कहते हैं। अरे! भगवान! कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु ने तो ऐसा कहा है कि जो संसार में प्रवेश कराये, उसे अच्छा कैसे कहें ? शुभराग तो संसार में भव उत्पन्न करता है। उसे अच्छा कैसे कहें ? है ?

शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध... यह सिद्ध तो शुद्धोपयोग की प्रसिद्ध से सिद्ध हुए हैं। आहाहा! **ऐसे श्री सिद्धपरमेष्ठी हैं,...** शुद्ध उपयोग के फलरूप से सिद्धपद मिला है। आत्मा के आनन्द का शुद्ध व्यापार अन्तर में यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम रहित, उससे सिद्धपद मिला है। **उनके अतीन्द्रिय सुख है,...** लो! थोड़ी व्याख्या है। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण ५, बुधवार
दिनांक-१३-१०-१९७६, गाथा-९ से ११, प्रवचन-१०३

यह परमात्मप्रकाश चलता है। नौवीं गाथा। **सुख तो सिद्धों के है...** मोक्ष में सुख है। धर्म, अर्थ और काम में सुख नहीं। धर्म अर्थात् कि क्रियाकाण्ड जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह भाव शुभराग है, उसमें सुख नहीं। सुख तो एक मोक्ष में है। समझ में आया? लक्ष्मी में सुख नहीं; काम—विषयवासना भोग, वह सुख नहीं; वह तो दुःख है। और मुनि का जितना व्यवहारधर्म है, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण इत्यादि, वह भी राग है, उसमें सुख नहीं। आहाहा! वह दुःख है।

यहाँ (कहते हैं), **सुख तो सिद्धों के है, या महामुनीश्वरों के सुख का लेशमात्र देखा जाता है,...** सच्चे सन्त दिगम्बर मुनि हो, सच्चे, जिन्हें सम्यग्दर्शनसहित आत्मा के अनुभवसहित जिन्हें चारित्र होता है, उन्हें थोड़ा सुख है। सिद्ध से थोड़ा सुख है। समझ में आया? है न? सच्चे मुनि तो उन्हें कहते हैं कि जिन्हें आनन्द का अनुभव हो। मात्र पंच महाव्रत पालन करे या अट्ठाईस मूलगुण (पालन करे), वे कहीं साधु नहीं हैं। समझ में आया? अन्दर आनन्द का अनुभव हो। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव होकर, तीन कषाय का अभाव होकर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हो, उसे मुनि कहते हैं और उन मुनि को आनन्द होता है। समझ में आया?

दूसरे के जगत की विषय-वासनाओं में सुख नहीं है... चाहे तो करोड़पति, अरबपति धूल के स्वामी हो, पैसा-धूल अर्थात् पैसे के स्वामी, वे सब बेचारे दुःखी प्राणी हैं।

मुमुक्षु : दुःखी और बेचारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बेचारे अर्थात् माँगते हैं पर को और अन्दर में वस्तु है, उसकी खबर नहीं। अन्तर आत्मा में आनन्द है, उसकी तो खबर नहीं और पैसा, कीर्ति और बाहर की अनुकूलता माँगे, वह तो भिखारी है, रंक है, रंक। शास्त्र में उसे वरांका कहा है। शान्तिभाई!

मुमुक्षु : पैसादार को सुखी....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसादार कब (सुखी) था? पैसा कहाँ इसके बाप के थे? पैसा तो जड़ है, पैसा तो धूल है। ताराचन्दजी! पैसा करोड़ हो या अरब हो, वह तो धूल-मिट्टी जड़ पुद्गल है। उसका स्वामी कहाँ से हुआ? उसका स्वामी हो तो वह तो जड़ है। भैंस का स्वामी पाडा होता है; उसी प्रकार लक्ष्मी का स्वामी हो, वह तो जड़ है, मूढ़ है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **दूसरे के जगत की विषय-वासनाओं में...** जिसकी दृष्टि पर के ऊपर है, अपना आनन्दस्वरूप भगवान, उसकी तो खबर नहीं। पर में—विषयवासना में जिसकी लालसा है, वे सब दुःखी हैं। बराबर होगा? ताराचन्दजी! नेमिदासभाई! आहा! देखो न! यह बेचारे अभी मर गये। नहीं? मुम्बई। ९५ लोग। दिल्ली से प्लेन आया था। वह प्लेन जाता था मद्रास। तो मुम्बई में जहाँ ऊपर ले गये, वहाँ खटका हो गया, नीचे उतरा, वहाँ जलकर भस्म। आहाहा! कितने ही गृहस्थ होंगे। दिल्ली से आया था। मुम्बई से मुद्रास का ४०० रुपये का टिकिट। मुम्बई से मुद्रास का ४०० रुपये का एक टिकिट। दिल्ली से आता होगा। मद्रास से आगे जाता था। आहाहा! एकदम जलकर भस्म। किसी के पैर टूट गये, किसी के हाथ कट गये। उसके पंख होते हैं न? पंख में भरते हैं न? क्या कहते हैं? पेट्रोल। पेट्रोल... पेट्रोल। उसके पंख होते हैं न? उसमें पेट्रोल भरा हो। वहाँ अग्नि लगी तो पेट्रोल सुलगा। आहाहा! वे बेचारे मरकर कहाँ जाते होंगे? बहुत तो ढोर में-पशु में जाये। क्योंकि मदिरा, मांस न खाते हों और ममता हो। यह मेरे, यह मेरे। व्यापार करने गये हों, उसे लक्ष्मी... आहाहा! बहुत करोड़पति, अरबोंपतिवे मरकर पशु होनेवाले हैं। धर्म की खबर नहीं होती। पुण्य तो है नहीं। नया पुण्य कितना है, उसकी खबर नहीं। अकेली ममता... ममता... ममता। यह पैसे मेरे, यह स्त्री, परिवार (मेरे)। यह कहते हैं, देखो न!

दूसरे के जगत की विषय-वासनाओं में... उसे तो पर की वासना है। आहाहा! अरेरे! तिर्यंचगति में बहुत संख्या है। बहुत लोग जो माँस और मदिरा नहीं खाते (-पीते) हों, और अन्दर धर्म भी नहीं और जिसे दया, दान, व्रत, तपादि का पुण्य भी न हो, वे मरकर (तिर्यंच में जानेवाले हैं)। बड़े सेठिया होंगे बेचारे। वहाँ से केराला जाता थे। आहाहा! ऐसी दशा अनन्त बार हो गयी। यह आत्मा देह से और राग से भिन्न

है। देह तो जड़ मिट्टी–धूल है परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वह राग है। उस राग से प्रभु आत्मा भिन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा की जिसे अन्तर्दृष्टि नहीं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! चाहे तो बाहर से साधु हुआ हो, नग्न मुनि दिगम्बर (हो), परन्तु अन्दर में जो व्रतादि की क्रिया है, वह मेरी है और मुझे लाभदायक है (ऐसा मानता है तो) वह मिथ्यादृष्टि है। उसे तो लेशमात्र सुख नहीं है। आहाहा!

यह तो पहले कहा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', छहढाला में आता है, छहढाला। 'मुनिव्रत धार...' अट्ठाईस मूल, पंच महाव्रत, हजारों रानियों का त्याग किया। मुनिव्रत लिया, दिगम्बर हुआ। दिगम्बर, हों! श्वेताम्बर में तो मुनि होते ही नहीं। सच्चे साधु होते ही नहीं।

मुमुक्षु : णमो लोए सव्व साहुणं तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह साधु। णमो लोए, सब साधु कहाँ हैं? महा आत्मा के आनन्द का अनुभव हो और अतीन्द्रिय सुख का वेदन हो और जब तक पूर्ण न हो, तब तक पंच महाव्रत के विकल्प हों, जिनकी नग्न दशा हो गयी हो, उसे मुनि कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कोई मुनि नहीं है। मात्र नग्न हो जाये, वह भी मुनि नहीं है और नग्न हो और पंच महाव्रत पालता हो, वह भी मुनि नहीं है। आहाहा! अन्दर में जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव हो,... यह कहा था न? मुनि को लेश सुख है, मुनि को आनन्द का अनुभव है। आहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! जिनवरदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर का सम्यग्दर्शन मार्ग, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र कोई अलौकिक है। वह अन्यत्र कहीं नहीं है। वीतराग परमेश्वर जिनवरदेव के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं सत्य मार्ग नहीं है। उसमें भी यह होना चाहिए। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुख का सागर है। उसकी पुण्य–पाप के विकल्प से दृष्टि छूटकर... कल दोपहर में बहुत आया था, अन्तर में आनन्द में दृष्टि होना... आहाहा! और अन्दर आनन्द का, जितने अनन्त गुण आत्मा में हैं, उन सबका एक अंश जिसे सम्यग्दर्शन में वेदन में आता है, ऐसी तो सम्यग्दर्शन की दशा है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन जहाँ नहीं, वहाँ तो व्रत और मुनिपना, वे सब बाहर के खोखा, वह थोथा है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! यह यहाँ एक लाईन में कहते हैं।

मुनिवरों को, सिद्धों को तो सुख है ही, परन्तु **महामुनीश्वरों के सुख का लेशमात्र...** सच्चे मुनि हों, उन्हें आनन्द होता है। आहाहा! **दूसरे के जगत की विषय-वासनाओं में सुख नहीं है, ऐसा ही कथन श्रीप्रवचनसार में किया है।**

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त प्रवचनसार में कहनेवाले। भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९। भगवान सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं, महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ गये थे। दिगम्बर मुनि, मोरपिच्छी-कमण्डल। भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये। यह प्रवचनसार। है? प्रवचनसार भगवान की दिव्यध्वनि सुनी, वह प्र-वचन। प्र अर्थात् दिव्यध्वनि, दिव्यवचन। उनका सार। आहाहा! साक्षात् भगवान विराजते हैं। महाविदेह में सीमन्धर भगवान (विराजते हैं, उनका) करोड़ पूर्व का आयुष्य है। पाँच सौ धनुष का देह है। दो हजार हाथ ऊँचा! विराजते हैं। वर्तमान समवसरण में विराजते हैं। इन्द्र आदि सभा में जाते हैं। सिंह, बाघ, इन्द्र, देव, राजा, महाराजा सब वहाँ व्याख्यान में सभा में जाते हैं। आहाहा! त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर भगवान के श्रीमुख से वाणी सुनकर यह प्रवचनसार बनाया है।

प्रवचनसार में कहते हैं, **सारांश यह है कि जो शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध...** आहाहा! शुद्ध उपयोग से सिद्धपद प्राप्त होता है। क्या कहते हैं? आत्मा का जो मोक्ष होता है, णमो सिद्धाणं, वह सिद्धपद जो होता है, वह अपने शुद्ध उपयोग से होता है। पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव तो अशुद्ध मलिन भाव हैं। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह पापभाव है और दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि के भाव पुण्य है। दोनों भाव अशुद्ध हैं, मैल है। उनसे रहित भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पवित्र है। उस शुद्ध का जो उपयोग, व्यापार हो, उसे शुद्धोपयोग कहा जाता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! अरे! अनन्त काल से यह चौरासी में दुःखी है। अभी जरा शरीर निरोग लगे, उसमें पाँच-पचास लाख पैसा (रुपये) हों, स्त्री ठीक हो, लड़के कमाऊ हो तो हम ठीक हैं। धूल भी नहीं। दुःखी... दुःखी... दुःखी दुःख में जल गया है। आनन्द का भान नहीं। अन्दर प्रभु आनन्दस्वरूप है। आहाहा! उसके भान बिना (दुःखी है)।

कहते हैं, **शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध ऐसे श्रीसिद्धपरमेष्ठी हैं,...** आहाहा! भगवान

आत्मा का मोक्ष होता है, वह तो शुद्ध उपयोग से होता है। शुद्ध उपयोग अर्थात् पुण्य और पाप के भाव से रहित भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध है, उसका उपयोग अर्थात् अन्दर में व्यापार, वीतरागी परिणाम शुद्ध उपयोग से मुक्ति होती है। समझ में आया? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! **शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध ऐसे श्रीसिद्धपरमेष्ठी हैं,...** आहाहा! अनन्त सिद्ध भगवान। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' आती है न पहली गाथा? अनन्त सिद्ध भगवान हुए। छह महीने आठ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं। भगवान केवली परमात्मा जिनवर का वचन है। छह महीने आठ समय। समय बहुत छोटा है। क, बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं। छह महीने आठ समय में, इस दुनिया में जीवों की इतनी संख्या है कि उसमें से ६०८ मुक्ति पाते हैं। ऐसा-ऐसा अनन्त काल हुआ तो अनन्त सिद्ध परमात्मा हैं। वे सिद्ध परमात्मा शुद्ध उपयोग से हुए हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह व्रत और तप और अपवास, वह सब शुभभाव है। वह शुद्ध नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बातें, भाई! अनन्त काल हुआ इसे। आहाहा!

उनके अतीन्द्रिय सुख है,... सिद्ध भगवान परमात्मा को अतीन्द्रिय सुख है। जिन्होंने शुद्ध उपयोग से प्राप्त किया। शुद्ध उपयोग, पवित्र व्यापार, वीतरागी उपयोग अन्दर। आहाहा! शुभ-अशुभभाव है, वह तो रागभाव है। यह तो शुद्ध उपयोग वीतरागभाव है। आहाहा! आत्मा, वह वीतरागस्वरूपी ही आत्मा है। उसके अन्तर-सन्मुख होकर जो शुद्ध व्यापार होता है, उसे यहाँ शुद्ध उपयोग कहते हैं। उस शुद्ध उपयोग से मुक्ति होती है। आहाहा! यहाँ तो अभी सुना भी न हो कि शुद्ध उपयोग क्या है? शान्तिभाई! एक तो पैसा मानो बाहर में ठीक से हो तो मानो हो गया। मर गया उसमें। लड़के कुछ कमाऊ हों। पाँच-पच्चीस लाख का मकान हो। हो गया, ऐसे मानो हम सुखी हैं। मर गया है, सुन न! तेरे स्वभाव में सुख है, उसका तो अनादर करता है और बाहर में सुख, ऐसा आदर करता है। ... पर की हिंसा कौन कर सकता है? आहाहा!

रागरहित अपने—निज शुद्धस्वभाव का उपयोग, उसका अन्तर व्यापार, उससे सिद्ध हुआ जाता है। उन्हें अनन्त सुख है। **वह सर्वोत्कृष्ट है,...** परमात्मा सिद्ध को सर्वोत्कृष्ट सुख है। चक्रवर्ती और बलदेव और इन्द्र को भी वह सुख नहीं। समकिती हो और थोड़ा सुख हो, वह दूसरी बात है। **और आत्मजनित है,...** आहाहा! यह विषयसुख

तो रागजनित है। चाहे तो स्त्री का विषय हो, चाहे तो कीर्ति में प्रशंसा सुने, उसमें ठीक लगे, वह तो सब राग विकार दु:ख का प्रसंग है। वह तो दु:ख है। आहाहा! यह तो आत्मजनित सुख है। भगवान सिद्ध परमात्मा को आत्मजनित, भगवान आनन्दस्वरूप है, उससे उत्पन्न हुआ आनन्द है। आहाहा! समझ में आया?

तथा विषय-वासना से रहित है,... अपने आनन्द-सुख में तो विषयवासना का अभाव है। आहाहा! विषय की वासना, वह तो दु:ख है। आहाहा! **अनुपम है,...** शुद्ध उपयोग से प्राप्त हुआ सिद्ध भगवान का सुख अनुपम है। जिसे कोई उपमा नहीं। **जिसके समान सुख तीन लोक में भी नहीं है,...** आहाहा! **जिसका पार नहीं, ऐसा बाधारहित सुख सिद्धों के है।** इसलिए मोक्ष का प्रयत्न करना, ऐसा कहते हैं। यह बात पहले आ गयी। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। चार का पुरुषार्थ है। धर्म शब्द से दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह धर्म अर्थात् पुण्य। वह पुण्य का पुरुषार्थ है। लक्ष्मी का पुरुषार्थ, वह पाप का पुरुषार्थ है और भोग का पुरुषार्थ, वह पाप का पुरुषार्थ है। यह पुण्य-पाप दोनों का पुरुषार्थ संसार है। आहाहा! और यह मोक्ष पुरुषार्थ, वह चौथा पुरुषार्थ है। आहाहा! यह नौवीं गाथा पूरी हुई।

गाथा - १०

अथ यस्मिन् मोक्षे पूर्वोक्तमतीन्द्रियसुखमस्ति तस्य मोक्षस्य स्वरूपं कथयति -

१३३) जीवहँ सो पर मोक्खु मुणि जो परमप्पय-लाहु।
कम्म-कलंक-विमुक्काहँ णाणिय बोल्लहिं साहू।।१०।।

जीवानां तं परं मोक्षं मन्यस्व यः परमात्मलाभः।
कर्मकलङ्कविमुक्तानां ज्ञानिनः ब्रुवन्ति साधवः।।१०।।

जीवहं इत्यादि। जीवहं जीवानां सो तं पर नियमेन मोक्खु मोक्षं मुणि मन्यस्व जानीहि हे प्रभाकरभट्ट। तं कम्। जो परमप्पय-लाहु यः परमात्मलाभः। इत्थंभूतो मोक्षः केषां भवति। कम्म-कलंक-विमुक्काहं ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मकलङ्कविमुक्तानाम्। इत्थंभूतं मोक्षं के ब्रुवन्ति। णाणिय बोल्लहिं वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनो ब्रुवन्ति। ते के। साहू [1]साधवः इति। तथाहि। केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारभूतस्य हि परमात्मलाभो मोक्षो भवतीति। स च केषाम्। पुत्रकलत्रममत्वस्वरूपप्रभृतिसमस्तविकल्परहितध्यानेन भावकर्मद्रव्यकर्म-कलङ्करहितानां भव्यानां भवतीति ज्ञानिनः कथयन्ति। अत्रायमेव मोक्षः पूर्वोक्तस्यानन्तसुख-स्योपादेयभूतस्य कारणत्वादुपादेय इति भावार्थः।।१०।। एवं मोक्षमोक्षफलमोक्षमार्गादिप्रति-पादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये सूत्रदशकेन मोक्षस्वरूपनिरूपणस्थलं समाप्तम्।

आगे जिस मोक्ष में ऐसा अतीन्द्रियसुख है, उस मोक्ष का स्वरूप कहते हैं -

कर्म कलंक विमुक्त जीव को परमात्मा का लाभ हुआ।
वही मोक्ष है-ऐसा जानो ज्ञानी मुनि ने बतलाया।।१०।।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकरभट्ट; जो [कर्मकलंकविमुक्तानां जीवानां] कर्मरूपी कलंक से रहित जीवों को [यः परमात्मलाभः] जो परमात्म की प्राप्ति है [तं परं] उसी को नियम से तू [मोक्षं मन्यस्व] मोक्ष जान, ऐसा [ज्ञानीनः साधवः] ज्ञानवान् मुनिराज [ब्रुवंति] कहते हैं, रत्नत्रय के योग से मोक्ष का साधन करते हैं, इससे उनका नाम साधु है।

---

१. पाठान्तर :- साधवः इति = रत्नत्रयवेष्टमेन
मोक्षसाधका = साधव इति।

भावार्थ :- केवलज्ञानादि अनंतगुण प्रगटरूप जो कार्यसमयसार अर्थात् शुद्ध परमात्मा का लाभ वह मोक्ष है, यह मोक्ष भव्यजीवों के ही होता है। भव्य कैसे हैं कि पुत्र कलत्रादि परवस्तुओं के ममत्व को आदि लेकर सब विकल्पों से रहित जो आत्म-ध्यान उससे जिन्होंने भावकर्म और द्रव्यकर्मरूपी कलंक क्षय किये हैं, ऐसे जीवों के निर्वाण होता है, ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं। यहाँ पर अनंत सुख का कारण होने से मोक्ष ही उपादेय है।।१०।।

गाथा-१० पर प्रवचन

आगे जिस मोक्ष में ऐसा अतीन्द्रिय सुख है, उस मोक्ष का स्वरूप कहते हैं:—

अन्वयार्थः—हे प्रभाकर भट्ट... योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त हैं। जंगल में बसते थे। मुनि तो जंगल में बसते थे। समझ में आया? दिगम्बर नग्न मुनि, जिन्हें वस्त्र का धागा भी नहीं और जंगल में आनन्द... आनन्द... आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द में रमते थे। आहाहा! वह अतीन्द्रिय सुख मोक्ष में है। उस मोक्ष का स्वरूप कहते हैं। योगीन्द्रदेव प्रभाकर भट्ट शिष्य को कहते हैं। योगीन्द्रदेव मुनि हैं, दिगम्बर हैं, आनन्द के अनुभवी हैं। आहाहा! अकेला नग्नपना और पंच महाव्रत, वह कोई मुनिपना नहीं है। वह तो बाहर का क्रियाकाण्ड है, वह तो अभव्य भी ऐसा करता है। आहाहा! यहाँ तो योगीन्द्रदेव, अपना प्रभाकर भट्ट शिष्य है, उससे कहते हैं। दसवीं (गाथा)।

१३३) जीवहँ सो पर मोक्खु मुणि जो परमप्पय-लाहु।
कम्म-कलंक-विमुक्काहँ णाणिय बोल्लहिँ साहू॥१०॥

आहाहा! **कर्मरूपी कलंक से रहित जीवों को...** जो आठ कर्म से रहित हो गये। **जो परमात्मा की प्राप्ति है,...** परमात्मा अर्थात् आत्मा की उन्हें प्राप्ति है। **उसी को नियम से तू मोक्ष जान,...** शिष्य को कहते हैं। योगीन्द्रदेव सन्त मुनि हैं। आनन्द के अनुभवी हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी। मुनि तो उसे कहते हैं। आहाहा! वे मुनि अपने शिष्य को कहते हैं। **कर्मरूपी कलंक से रहित जीवों को जो परमात्मा की प्राप्ति...** अर्थात् सिद्धपद होता है, **उसी को नियम से तू मोक्ष जान, ऐसा ज्ञानवान मुनिराज कहते हैं,...**

यह कौन कहते हैं ? कि केवली अथवा सन्त ऐसा कहते हैं। सच्चे ज्ञानवान सन्त ऐसा कहते हैं कि कर्मकलंकरहित परमात्मा की प्राप्ति, वह नियम से सुख है। ज्ञानी, सर्वज्ञ और मुनि ऐसा कहते हैं। है ? **ज्ञानवान मुनिराज कहते हैं, रत्नत्रय के योग से मोक्ष का साधन करते हैं, इससे उनका नाम साधु है।** आहाहा! साधु, भगवान जिनवरदेव के शासन में उसे साधु कहते हैं कि **रत्नत्रय के योग से मोक्ष का साधन करते हैं,...** आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप की दृष्टि—सम्यग्दर्शन, अपने आनन्दस्वरूप का ज्ञान और अपने आनन्द की रमणता, वह रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। तत्त्वार्थसूत्र में पहला सूत्र है न! सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। उमास्वामी (कृत) तत्त्वार्थसूत्र। सम्यग्दर्शन, वह निश्चय सम्यग्दर्शन की बात है, व्यवहार की नहीं। यह निश्चयरत्नत्रय की बात है।

अपना आत्मा ज्ञान का... कल आया था न ? भर है, वह तो पुंज है। ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा है। आहाहा! यह आत्मा का अन्तर अनुभव (होना), वह सम्यग्दर्शन है। उसका ज्ञान—भगवान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान। शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! और स्वरूप आनन्द में रमणता, आनन्द का विशेष वेदन, आनन्द का भोजन करते हैं। मुनि आनन्द का भोजन करते हैं। आहाहा! अरे! यह बात। इस रत्नत्रय के योग से। ऐसे रत्नत्रय के व्यापार से मोक्ष का साधन करते हैं। मोक्ष का साधन करते हैं, उसे साधु कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : योग से अर्थात् ? निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय इकट्ठा करके ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की यहाँ बात नहीं है। निश्चयरत्नत्रय।

मुमुक्षु : योग से अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : योग कहा न, तीन का योग—सम्बन्ध। बात की न! बात की। रत्नत्रय के योग से। रत्नत्रय के व्यापार से। समझ में आया ? सूक्ष्म बात, बापू! यह अपूर्व बात है। अभी तो सुनने को मिलना मुश्किल है। जहाँ हो, वहाँ बाहर की बातें। यह व्रत करो और अपवास करो और यात्रा करो और वर्षीतप करो। उसमें धर्म है, ऐसा लोग मानते हैं। आहाहा! यह सब तो क्रियाकाण्ड है, राग की बात है। कदाचित् मन्द

राग हो, मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधता है, धर्म नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व साथ में है, पुण्य को धर्म मानता है। आहाहा! हम धर्म करते हैं। यह सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण करते हैं न? वह तो विकल्प है। सामायिक तो सम्यग्दर्शन बिना सामायिक आयी कहाँ से? आत्मा समता... सामायिक अर्थात् समता। आय अर्थात् लाभ। आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु है। उसका अन्तर अनुभव हो, तब सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। पश्चात् स्वरूप में स्थिर हो तो सामायिक की स्थिरता वीतरागी दशा होती है। इसका नाम सामायिक है। यहाँ तो अभी कुछ भान न हो और लेकर बैठे, णमो अरिहंताणं... इच्छामि पडिकमणा, तस्सम मिच्छामि दुक्कडम्। तावकायेठाणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसरे। यह अप्पाणं क्या और वोसरे क्या? बापू! मार्ग अलग, बापू! भगवान वीतराग परमेश्वर का निश्चय सत्यमार्ग बहुत दुर्लभ है। आहाहा! पहले सुनकर पहले श्रद्धा तो करे। व्यवहारश्रद्धा विकल्पसहित। कि मार्ग तो यह है।

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसका अन्तर में स्वस्वभावसन्मुख होकर, राग से विमुख होकर,... आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव की अन्तर्मुख की अन्तर प्रतीति, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। उस वस्तु का अन्तर में ज्ञान चिदानन्द भगवान आत्मा अपने परमात्मस्वरूप का ज्ञान और उसमें रमणता, उसे रत्नत्रय कहा जाता है। कोई चीज़ महँगी ले तो मूल्य देते हैं न? पाँच लाख या दस लाख का हीरा लेना हो तो पैसा दे तो रत्न दे न? इसी प्रकार यह रत्नत्रय दे तो मुक्ति होती है। आहाहा! यह रत्नत्रय यह समकित। अरे! यह तो अभव्य भी मानता है। सुन न! परद्रव्य की श्रद्धा, वह कहाँ समकित है।

अपना भगवान पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय सुख से भरपूर प्रभु, उसके सन्मुख होकर, उसके ज्ञान का वेदन करके प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उसका नाम तो अभी चौथा गुणस्थान है। पश्चात् उस आनन्द में विशेष रमणता थोड़ी हो जाये, उसका नाम पंचम गुणस्थान श्रावक कहलाता है। यह वाडा के श्रावक, वे श्रावक नहीं। आहाहा! कोथली में, थैली में काली जीरी भरी हो और ऊपर से नाम लिखे शक्कर। तो वह काली जीरी शक्कर हो जाती है? इसी प्रकार जिसे अभी पुण्य-पाप के परिणाम में मिठास है, वह दया, दान के परिणाम से मुझे धर्म है, वह धर्म का कारण है, ऐसा मिथ्यात्व का जोर पड़ा है। उसे नाम दे कि श्रावक है। वह काली जीरी को शक्कर का

नाम देने जैसा है। ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा! अपूर्व मार्ग है। पूर्व में कभी किया नहीं। पूर्व में कभी किया नहीं, वर्तमान में सुनने को मिलना मुश्किल पड़ता है। आहाहा!

यह कहते हैं, **इससे उनका नाम साधु है।** आहाहा!

भावार्थ:—केवलज्ञानादि अनन्त गुण प्रगटरूप कार्यसमयसार... क्या कहते हैं? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द जो अरिहन्त को प्रगट होते हैं, उसे कार्यसमयसार कहते हैं। अरिहन्त भगवान—णमो अरिहंताणं। उनकी दशा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता, ऐसी अनन्त शक्तियों की प्रगटता अनन्त हो गयी। वह अनन्त गुणरूप प्रगटरूप। शक्तिरूप तो सबमें है, ऐसा कहते हैं। सभी भगवान आत्मा में शक्तिरूप तो ज्ञान, आनन्द है ही। तो शक्ति में से अन्दर से प्रगट होना, बाहर आना। आहाहा! **केवलज्ञानादि अनन्त गुण प्रगटरूप...** भाषा समझ में आयी? आहाहा! जो **कार्यसमयसार अर्थात् शुद्ध परमात्मा का लाभ, वह मोक्ष है,...** आहाहा!

यह मोक्ष भव्य जीवों के ही होता है। आहाहा! अभव्य का मोक्ष नहीं होता। जीव के दो प्रकार हैं। जैसे मठ, मूँग आदि गोरडू होता है। गोरडू को क्या कहते हैं। गोरडू होता है न? चाहे जितना पानी डाले परन्तु सीझता नहीं। चूरा होता है। आटा होकर पापड़ हो, परन्तु सीझता नहीं। ऐसे अनन्त अभव्य जीव होते हैं। आहाहा! उन्हें कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। मोक्ष तो भव्य का ही होता है। है? **मोक्ष भव्य जीवों के ही होता है। भव्य कैसे हैं...** वे भव्य कैसे हैं? **पुत्र कलत्रादि (स्त्री आदि) परवस्तुओं के ममत्व को आदि लेकर सब विकल्पों से रहित...** आहाहा! सब विकल्प। विकल्प अर्थात् राग। सब रागरहित **जो आत्म-ध्यान...** आत्मध्यान। भगवान आत्मा को त्राटक-विषय बनाकर, ध्यान में आत्मा को विषय बनाया। आहाहा!

आत्म-ध्यान उससे जिन्होंने... भव्य जीवों ने **भावकर्म...** अर्थात् पुण्यपरिणाम। भावकर्म है न? पुण्य, दया, दान, व्रत, तप के भाव, वे पुण्य परिणाम हैं, भावकर्म है। उसका भी जिन्होंने नाश कर दिया। आहाहा! बात ऐसी लगे लोगों को। सम्प्रदाय में पड़े हों और यह सुना हो तो ऐसा लगे, यह क्या है? यह वह जैनदर्शन होगा? ऐसा वीतरागमार्ग होगा? हम तो ऐसा सुनते थे, छह काय की दया पालना, अपवास करना,

कन्दमूल न खाना, रात्रिभोजन नहीं करना। ऐसा सुनते थे। अब ऐसा मार्ग होग जैन का? बापू! वीतरागमार्ग यह है, हों! आहाहा!

अब वहाँ दुकान पर यह मानते थे। पालेज। भरूच और वडोदरा के बीच पालेज है न? वहाँ पिताजी की दुकान थी। अभी दुकान है। मुझे तो दुकान छोड़े ६३ वर्ष हुए। दुकान चलती है, पालेज में। नौ वर्ष वहाँ रहे। सब करते थे। सामायिक करते, प्रतिक्रमण करते। शाम को मैं ही प्रतिक्रमण कराता था। भगत कहलाता था न, छोटी उम्र से। मैं तो छोटी उम्र से सूर्यास्त पूर्व भोजन करता था। (संवत्) १९६५ के वर्ष से। रात्रि में आहार-पानी का त्याग। १९६५ के वर्ष से कितने वर्ष हुए? रात्रि में आहार-पानी नहीं। भगत कहलाता था। हम मानते थे कि हम धर्म करते हैं। आहाहा! फिर बात तो दूसरी निकली। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भव्यजीव का मोक्ष होता है। कैसे भव्यजीव को? यह कहते हैं न? **सब विकल्पों से रहित...** विकल्प अर्थात् रागरहित **जो आत्म-ध्यान उससे जिन्होंने भावकर्म...** ऐसे ध्यान से भावकर्म अर्थात् पुण्यपरिणाम **द्रव्यकर्म...** अर्थात् जड़, वह **कलंक क्षय किये हैं,...** वह कलंक है। आहाहा! गजब है, नाथ! यह शुभभाव दया का, दान का, व्रत का, अपवास का, वह शुभभाव है, वह कलंक है। वह आत्मा का स्वरूप नहीं। वह मैल है। आहाहा! है न? पाठ है न? पाठ। '**कम्म-कलंक-विमुक्काहँ**' पाठ है न? तीसरा (पद)। कर्मकलंक। वह कर्मकलंक। पुण्यपरिणाम भी कलंक है, कलंक है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! तीसरा पद है, दसवीं गाथा। तीसरा पद। आहाहा! द्रव्यकर्म और भावकर्म का कलंक **क्षय किये हैं,...** आहाहा! जिसने आत्मध्यान से भगवान के ऊपर ध्यान अन्दर लगाकर भावकर्म और द्रव्यकर्म जो कलंक है, उसका क्षय किया है। आहाहा!

ऐसे जीवों के निर्वाण होता है,... है? ऐसे भव्य जीव की मुक्ति होती है। निज आत्मा का ध्यान करके ध्यान में लीन होता है, तब पुण्य और पाप के भाव कलंक हैं, उनका नाश होता है, ऐसे जीव की मुक्ति होती है। आहाहा! ओहोहो! संसार... संसार, देखो न! वे बेचारे बैठकर मद्रास जाते होंगे। पैसेवाले हों, वे चार सौ (खर्च करे)। एक टिकिट के ४०० रुपये। दिल्ली से तो और कितने ही होंगे। दिल्ली से आया था। दिल्ली

से मुम्बई ९०० ? कहो। ९०० वे और ४०० यह, १३०० रुपये का टिकिट। इससे आगे जाता होगा। मद्रास से आगे नहीं जाता होगा ? कहाँ जाता होगा ? कल कोई कहता था, आगे जाता है। कोई कहता था, आगे जाता है। १३०० रुपये का टिकिट। गृहस्थ होंगे तब जाते होंगे न ? आहाहा! अरेरे! उसे आत्मा क्या ? बेचारे पैसेदार व्यक्ति। हड... हड... हड... सुलग गया। हाथ टूटे, किसी के पैर टूट गये, मुँह जल गया। आहाहा! एकदम भडका होता होगा ? अन्दर में होता होगा। क्या कहलाता है ? उसकी मशीन होती है न ? मशीन। एक बार उसका बड़ा व्यक्ति था न, हम उसमें बैठे थे न! महाराज! देखने के लिये पधारो न! उसका चलानेवाला होता है न। तीन-तीन हजार के वेतनदार बड़े। हम उसमें बैठे थे। महाराज! देखने तो आओ। चार-चार हजार का वेतन। सिक्ख आते हैं न ? सरदार... सरदार। हम बैठे थे न ? वह मानो कि यह तो महाराज है। हमारे साथ दूसरे आदमी बैठे हों। प्लेन में बैठे थे। अन्दर देखने आओ, पधारो। आहाहा! यह अन्दर से सुलगता होगा। दो पंखों में भरा हो पेट्रोल। क्योंकि डाले कहाँ पेट्रोल ? आहा! अन्दर भी दावे तब.... हवा के लिये नहीं होता ? ऐसे दबावे तो हवा (निकलती)। है न, सब देखा है न। प्लेन में बहुत बार बैठे हैं न। दबावे तब हवा आवे। ऐसे दबावे तो प्रकाश हो। आहाहा! वहाँ भी सब सुलगता होगा न ? भड़ाका बोलते होंगे। आहाहा! यह दशा। आत्मा के भान बिना की यह दशायें। वापस जाना दुर्गति। कोई कोई इसे... क्योंकि ममता... ममता बहुत हो। सुलगने का हो तो बेचारे करे तो सही। भगवान भगवान करो सब। आहाहा! जिसको जो इष्टदेव हो वह। अरेरे! आहा! ऐसे अवतार अनन्त बार हुए हैं, हों! उसकी बात नहीं अकेली। इस जीव को भी भूतकाल में अनन्त बार यह दशा हो गयी है। अनन्त काल... अनन्त काल... आहाहा! कहीं भव का, काल का अन्त है ? आदि है ? ऐसे का ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... भूतकाल चला गया। आहाहा! कहते हैं, तुझे मनुष्यपना मिला, प्रभु! अब तेरे धर्म के अवसर का काल है। आहाहा! तू आत्मा कौन है, उसे पहिचान, प्रभु! आहाहा! तू कौन है अन्दर ? सच्चिदानन्द प्रभु है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। समझ में आया ?

ऐसे जीवों के निर्वाण होता है,... ऐसा जो आत्मा का ध्यान करता है... आहाहा! ऐसे जीवों का मोक्ष होता है। **ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं।** ऐसा अनन्त सर्वज्ञ और अनन्त

सन्त ज्ञानीजन ऐसा कहते हैं। अपने आत्मा के ध्यान से मुक्ति होती है; दूसरे से होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह उस यात्रा की बात नहीं करते? सम्मेदशिखर। 'एक बार वन्दे जो कोई, नरक, पशु (गति) न होय।' उसमें क्या भला हुआ? नरक, पशु न हो तो। वह तो शुभभाव है। सम्मेदशिखर की यात्रा, गिरनार की यात्रा, वह सब शुभभाव है, धर्म नहीं। वह तो इतना पाप से बचने का भाव है। परन्तु वह भाव धर्म नहीं, उससे मोक्ष नहीं मिलता, उससे संवर-निर्जरा नहीं होती।

मुमुक्षु : थोड़ी भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ी भी नहीं। हमारे सेठ जानेवाले हैं न। सुनते थे। नेमिदास जानेवाले हैं। निकले हैं, उसके लिये। यात्रा। लड़कों को अभी विद्यालय में अवकाश होता है न? इसलिए सेठ निकले हैं। मोटर में जायेंगे। नेमिदास सेठ। उनकी ९१ वर्ष की उम्र है। ९० और १। ९१ हुए न? आहाहा!

आत्मा में अनन्त ज्ञान और आनन्द भरे हैं, उसका जो ध्यान करता है, उसे भावकर्म तथा द्रव्यकर्म की कलंकता नाश पाती है और उसका मोक्ष होता है, ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं। अनन्त ज्ञानी यह कहते हैं। व्यवहार से मुक्ति होती है, ऐसा ज्ञानी नहीं कहते। समझ में आया? आहाहा! बात भारी कठिन पड़े, हों! उसमें नये लोग हों और कभी सुना न हो, उसे लगे, यह क्या कहते हैं? कभी वहाँ सुनने आते होंगे न? मुम्बई सुनने आते होंगे न? एक बार? लो, बापू! यह कहीं एक बार सुनने से पता लगे, ऐसा नहीं है। आहाहा! पहले तो अन्दर से ऐसी घनघनाहट हो जाये। हाय! हाय! यह दया पालते हैं, व्रत करते हैं, अपवास करते हैं (वह धर्म नहीं)?

बापू! वह तो विकल्प है, भाई! तुझे खबर नहीं। वह तो राग की वृत्ति का उत्थान है, पुण्य है। वह तो जीव को कलंक है। कलंक कहा न? ऐसा मार्ग है, बापू! वीतरागमार्ग। परमेश्वर वीतराग अनन्त सर्वज्ञ... यहाँ कहा न? **ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं।** आहाहा! अनन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ, सच्चे सन्त-मुनि इस प्रकार से मोक्ष का उपाय कहते हैं। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! बात ऐसी है, बापू! क्या हो? दूसरे रास्ते ले गये हैं और इस रास्ते आना बहुत कठिन। बाहर में माना हो। आहाहा!

ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं। यहाँ पर अनन्त सुख का कारण होने से मोक्ष ही

उपादेय है। आहाहा! आदरणीय हो तो सिद्धपद और मोक्ष है। दूसरा कुछ आदरणीय है नहीं। आहाहा! **अनन्त सुख का कारण होने से...** अनन्त आनन्द। मोक्ष अर्थात् सिद्धपद में तो अनन्त आनन्द है। उसका **कारण होने से मोक्ष ही उपादेय है।** अंगीकार करनेयोग्य एक ही है। आहाहा! ऐसी मोक्ष की व्याख्या हुई। दूसरे अधिकार में तीन व्याख्या है। मोक्ष की व्याख्या, मोक्ष के फल की व्याख्या और मोक्ष के कारण की व्याख्या। उसमें अभी तक मोक्ष का अधिकार हुआ। अब मोक्ष का फल (कहते हैं)। मोक्ष में क्या फल आता है? आनन्द। यह एक गाथा में कहेंगे। फिर मोक्ष का मार्ग २१ गाथा में (कहेंगे)। मोक्ष का मार्ग २१ गाथा में (कहेंगे)। आहाहा!

शरीर में शूल चढ़े, दायें-बायें। आहाहा! डबल निमोनिया हो। वह फिर अरबोंपति हो तो भी... अरे! हाय... हाय..! (करे)। वह महिला अभी मर गयी, नहीं? गोवा... गोवा में अपने शान्तिलाल खुशाल थे। कौन सा गाँव कहलाता है वह? लींबडी के पास पणासणा। पणासणा देखा है, हमने सब गाँव देखे हैं। पणासणा के वह स्थानकवासी जैन। ३०-३२ वर्ष पहले कुछ नहीं था। वहाँ गये और करते... करते... करते... दो अरब चालीस करोड़ हो गये। दो अरब चालीस करोड़। वह डेढ़ वर्ष पहले मर गये। डेढ़ वर्ष पहले उसकी बहू को हेमरेज हुआ, हेमरेज। उसकी दवा के लिये गोवा से मुम्बई आये। थोड़े दिन पश्चात्... उनकी लड़कियाँ-भानेज यहाँ है। उनकी बहिन की लड़कियाँ अपने ६४ (ब्रह्मचारिणीयों) में हैं। ६४ बाल ब्रह्मचारी हैं न? उसमें दो लड़कियाँ बाल ब्रह्मचारी हैं। उनकी बहिन की लड़कियाँ। वह रात्रि में डेढ़ बजे उठा होगा और दर्द हुआ होगा। आया था, उसकी बहू (पत्नी) के लिये। मुझे दुखता है, बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर आने से पहले भाईसाहेब उड़ गये परलोक में। उनकी बहू हेमरेज में। डेढ़ वर्ष से हेमरेज में थी। अठारह दिन, उन्नीस दिन, बीस दिन पहले मर गयी। गोवा में। अपने दशाश्रीमाली बनिया था। दशाश्रीमाली पणासणा का। थोड़ा पुण्य होगा। ३०-३२ वर्ष जरा आया... जाओ! यह संसार... संसार। आहाहा! डेढ़ वर्ष से हेमरेज था। असाध्य। दिन का ५०० रुपये का खर्च था। गृहस्थ व्यक्ति न, इसलिए... क्या कहलाता है? नर्स को रखा हो। खाने-पीने का हो न? चढ़ाते होंगे न? वह तो असाध्य। बड़ा खर्च। इसमें एक बार करवट बदलने गयी वहाँ नीचे गिर गयी तो हाथ

टूट गया। तो भी कुछ खबर नहीं। साध्य नहीं न! असाध्य में है। आहाहा! यह दशायें, बापू! ऐसी दशा तेरी अनन्त बार हो गयी है। आहाहा!

अनन्त काल हुआ, अनन्त काल हुआ... अनन्त काल... आहाहा! आदि है काल की? ऐसे अनन्त काल में क्या अनन्त बार नहीं हुआ? इसे नहीं हुआ एक सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। आहाहा! नहीं हुआ मोक्ष और नहीं हुआ मोक्ष का मार्ग। बन्ध और बन्ध का मार्ग इसने अनादि से सेवन किया है। आहाहा! बराबर है? आहाहा! भाई! जरा विचार कर, विचार कर तो खबर पड़े। दीर्घ विचार कर कि यह कब का है? आहाहा! भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा है। आहाहा!

शकरकन्द की बात नहीं की थी? यह शकरकन्द नहीं होता, शकरकन्द? उसके ऊपर की लाल छाल जरा है, उसे लक्ष्य में से छोड़ दो तो अकेला शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड। यह शकरकन्द... (गुजराती में) शकरिया कहलाता है न? तुम्हारे क्या कहलाता है? शकरकन्द कहते हैं। एक पतली लाल छाल जरा। उसे लक्ष्य में से छोड़ दो तो अकेला शकरकन्द है। शकर अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड। इसलिए उसे शकरकन्द कहते हैं।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प की छाल लक्ष्य में से छोड़ दे तो अन्दर आनन्द का कन्द प्रभु है। उस आनन्द के नाथ को सम्हाल। उसका ध्यान और उसके मोक्षमार्ग से तुझे मोक्ष होगा। उस मोक्ष का फल क्या है? यह ११वीं गाथा में कहते हैं। ११। आहाहा! है न?

इस प्रकार मोक्ष का फल और मोक्ष-मार्ग का जिसमें कथन है, ऐसे दूसरे महाअधिकार के दस दोहों में मोक्ष का स्वरूप दिखलाया। दस दोहे में मोक्ष का स्वरूप कहा। एक दोहे में उसका फल कहेंगे, २१ दोहों में उसका मार्ग कहेंगे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। यह ११वीं गाथा है। विशेष कहा जायेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११

अथ तस्यैव मोक्षस्यानन्तचतुष्टयस्वरूपं फलं दर्शयति -

१३४) दंसणु णाणु अणंत-सुहु समउ ण तुट्टइ जासु।
सो पर सासउ मोक्ख-फलु बिज्जउ अत्थि ण तासु।।११।।

दर्शनं ज्ञानं अनन्तसुखं समयं न त्रुटयति यस्य।
तत् परं शाश्वतं मोक्षफलं द्वितीयं अस्ति न तस्य।।११।।

दंसणु इत्यादि। दंसणु केवलदर्शनं णाणु केवलज्ञानं अणंत-सुहु अनन्तसुखम् एतदुपलक्षणमनन्तवीर्याद्यनन्तगुणाः समउ ण तुट्टइ एतद्गुणकदम्बकमेकसमयमपि यावन्न त्रुटयति न नश्यति जासु यस्य मोक्षपर्यायस्याभेदेन तदाधारजीवस्य वा सो पर तदेव केवलज्ञानादिस्वरूपं सासउ मोक्ख-फलु शाश्वतं मोक्षफलं भवति। बिज्जउ अत्थि ण तासु तस्यानन्तज्ञानादि-मोक्षफलस्यान्यद् द्वितीयमधिकं किमपि नास्तीति। अयमत्र भावार्थः। अनन्तज्ञानादिमोक्षफलं ज्ञात्वा समस्त रागादित्यागेन तदर्थमेव निरन्तरं शुद्धात्मभावना कर्तव्येति।।११।। एवं द्वितीय-महाधिकारे मोक्षफलकथनरूपेण स्वतन्त्रसूत्रमेकं गतम्।

आगे मोक्ष का फल अनंत चतुष्टय है, यह दिखलाते हैं -

जिसके दरशन ज्ञान और सुख आदि अनन्त गुणों की खान।
कभी नष्ट नहिं होती है वह शाश्वत शिवफल, अन्य नहीं।।११।।

अन्वयार्थ :- [यस्य] जिस मोक्ष-पर्याय के धारक शुद्धात्मा के [दर्शनं ज्ञानं] अनंत सुखं] केवलदर्शन, केवलज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य इन अनंत चतुष्टयों को आदि देकर अनंत गुणों का समूह [समयं न त्रुटयति] एक समयमात्र भी नाश नहीं होता, अर्थात् हमेशा अनंत गुण पाये जाते हैं। [तस्य] उस शुद्धात्मा के [तत्] वही [परं] निश्चय से [शाश्वतं फलं] हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल [अस्ति] है, [द्वितीयं न] इसके सिवाय दूसरा मोक्षफल नहीं है, और इससे अधिक दूसरी वस्तु कोई नहीं है।

भावार्थ :- मोक्ष का फल अनंत ज्ञानादि जानकर समस्त रागादिक का त्याग करके उसी के लिये निरंतर शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिये।।११।।

इस प्रकार दूसरे महाधिकार में मोक्ष-फल के कथन की मुख्यताकर एक दोहा-सूत्र कहा।

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण ६, गुरुवार
दिनांक-१४-१०-१९७६, गाथा-११ से १३, प्रवचन-१०४

परमात्मप्रकाश की ११वीं गाथा। दस गाथा हुई न? कल १० गाथा पूरी हुई। **इस प्रकार मोक्ष का फल और मोक्ष-मार्ग का जिसमें कथन है, ऐसे दूसरे महाधिकार के दस दोहों में मोक्ष का स्वरूप दिखलाया।** कल यहाँ तक आया।

आगे मोक्ष का फल अनन्त चतुष्टय है, यह दिखलाते हैं:—

१३४) दंसणु णाणु अणंत-सुहु समउ ण तुट्टइ जासु।
सो पर सासउ मोक्ख-फलु बिज्जउ अत्थि ण तासु॥११॥

अन्वयार्थः—जिस मोक्ष-पर्याय के धारक... मोक्ष, वह पर्याय है। संसार एक विकारी पर्याय है; मोक्षमार्ग, वह अविकारी अपूर्ण पर्याय है और मोक्ष पूर्ण निर्मल पर्याय है। द्रव्य-गुण नहीं। द्रव्य, वह त्रिकाल है और गुण भी त्रिकाल है। सूक्ष्म बात है। द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या ही अभी (लोप हो गयी), जो जैनदर्शन का पहला एकड़ा। द्रव्य जो आत्मा द्रव्य है, वह तो त्रिकाल है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण है, वह भी त्रिकाल है। तीनों काल रहनेवाले। एक समय नहीं, तीनों काल रहनेवाले। तीनों काल उसमें रहते हैं। द्रव्य भी त्रिकाल रहता है और उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति ऐसे अनन्त गुण, वे भी आत्मा में त्रिकाल रहते हैं और संसार, मोक्षमार्ग तथा मोक्ष, ये तीनों पर्याय है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, देखो!

जिस मोक्ष-पर्याय के धारक... ऐसा लिया न? शब्दार्थ। **जिस मोक्ष-पर्याय के धारक शुद्धात्मा...** भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध वस्तु वह तो है, परन्तु अन्तर में आत्मा का ध्यान करने से जो मोक्षपर्याय प्रगट होती है, ऐसी मोक्षपर्याय का धारक शुद्धात्मा। निर्मल केवलज्ञानादि जो मोक्षदशा, उसे धारण करनेवाला शुद्धात्मा। है? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोगों को बाहर का स्थूलपना अन्यथा मिला है, वस्तुस्थिति पूरी रह गयी है। आहाहा!

जिस मोक्ष-पर्याय के... मोक्ष, जो अनन्त सिद्धपद होता है, वह पर्याय है। संसार, यह मिथ्यात्व आदि, अज्ञान आदि पर्याय है और मोक्षमार्ग जो निश्चय है, वह भी पर्याय

है। और मोक्ष है, वह भी पूर्ण पर्याय-अवस्था है। तो कहते हैं कि **जिस मोक्ष-पर्याय के धारक शुद्धात्मा...** है न? भगवान शुद्धात्मा द्रव्य और गुण से तो त्रिकाल शुद्ध है ही, वह अपनी पर्याय में—अवस्था में—हालत में शुद्ध पूर्णता प्राप्त करता है, इसका नाम मोक्ष की पर्याय कहा जाता है। ताराचन्दजी!

केवलदर्शन... भगवान मोक्ष प्राप्त करता है और सिद्धपद जो पर्याय है, उसमें तो केवलदर्शन। पाठ में अनन्त सुख है। अन्त में। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख। केवल लेना। पूर्ण ज्ञान। मोक्ष में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, अनन्त पूर्ण सुख और अनन्त वीर्य है। आहाहा! **इन अनन्त चतुष्टयों के आदि देकर अनन्त गुणों का समूह...** गुण शब्द से पर्याय। पर्याय कही न पहले? आहाहा! मोक्ष में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, इन अनन्त चतुष्टयसहित दूसरे अनन्त गुण। अनन्त-अनन्त दूसरी पर्यायें। उसे यहाँ अनन्त गुणों का समूह (कहा)। **'समयं न त्रुटयति' एक समयमात्र भी नाश नहीं होता,...** आहाहा! मोक्ष में अनन्त ज्ञान जो आत्मानुभव से उत्पन्न हुआ, भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण पवित्रता का पिण्ड जो है, उसका ध्यान करने से, अन्तर में एकाग्र होने से जो मोक्षपर्याय प्रगट हुई, वह अनन्त गुणों का समूह है। गुण अर्थात् पर्याय। उसके अनुभव में एक समय भी अन्तर नहीं पड़ता। निरन्तर... निरन्तर, अनन्त आनन्द का अनुभव। निरन्तर अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र का अनुभव। आहाहा! यह मोक्ष का फल। इस संसार का फल चार गति में भटकना। मिथ्यात्व और अज्ञान के सेवन से नरक और निगोद, चार गति में भटकना, वह संसार का फल। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समय-समय में आनन्द है, ऐसा कहते हैं। एक समय का विरह नही। **'न त्रुटयति'** है न? **'समयं न त्रुटयति',** एक समय भी नाश नहीं होता। निरन्तर अनन्त आनन्द। पर्याय, हों! अवस्था। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त गुणों का-पर्यायों का समूह, उसका एक समय भी उसे विरह नहीं पड़ता। आहाहा!

आज सवेरे एक बात सुनी, भाई! उसमें बैठे न? प्लेन में। प्लेन में। उसमें कितने ही व्यक्ति तो पहले एक गोली लेकर बैठे। ऐसी गोली ही हाथ में रखे। कदाचित् सुलगे

और वह गोली ले लेवे तो असाध्य हो जाये। इसलिए फिर जलते हुए दु:ख न हो। यह तो कोई कहता था। हम तो कोई व्यक्ति बातें करे, वह सुनी हो। अन्दर बैठे। वह गोली लेकर ही बैठे। कदाचित् सुलगे... वह कुछ कहता था। आहाहा! पहले से ही मानो मरूँगा। आहाहा! वह जहाँ सुलगे तो वह गोली ले लेवे, असाध्य हो जाये। फिर सुलगे तो (दु:ख न हो)। आहाहा! यह संसार।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट करे, उसे मोक्ष होता है, वह कभी मरता नहीं, टूटता नहीं, एक समय टूटता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग भी बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा अनन्त गुण का समूह है। वह शक्ति। और पर्याय में अनन्त गुणसमूह, वह पर्याय-अवस्था है। समझ में आया? जैसे सोना है, सोना-स्वर्ण। स्वर्ण, वह द्रव्य है और उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन, वे उसके गुण हैं। और उसमें अँगूठी, कुण्डल, कड़ा होता है, वह उसकी अवस्था है, वह पर्याय है। समझ में आया? स्वर्ण-सोना है। पाँच रुपया, दस रुपये का हो। वह स्वर्ण द्रव्य-पदार्थ है। उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन, वह उसकी शक्ति-गुण है और अँगूठी, कड़ा, कुण्डल होता है, वह उसकी पर्याय-अवस्था है। इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वर्ण की भाँति वस्तु है, वह द्रव्य त्रिकाल है और जिस तरह सोना में पीलापन, चिकनापन आदि गुण है, उसी प्रकार आत्मा में अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं, वह त्रिकाल है। समझ में आया? फिर सोना में से जैसे कड़ा, कुण्डल, अँगूठी होती है, उसी प्रकार आत्मा में अनन्त आनन्द की शक्ति में से पर्याय में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान प्रगट होता है, वह पर्याय है। ऐसा वीतराग का मार्ग है। कहो, भगवानजीभाई! समझ में आया?

द्रव्य, गुण और पर्याय, वह तो जैनदर्शन का पहला एकड़ा है। वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ने पहले से द्रव्य, गुण, पर्याय का... श्वेताम्बर में उत्तराध्ययन में २८वाँ एक अध्ययन है। पहले (संवत्) १९८० में शुरु किया था। १९८० के वर्ष, बोटाद... बोटाद चातुर्मास के शेषकाल में शुरु किया था। द्रव्य, गुण और पर्याय की व्याख्या पहली। बड़ी सभा थी। ३५० घर हैं न। १५०० लोगों की बड़ी सभा। यह तो (संवत्) १९८० के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? ५२ वर्ष पहले की बात है।

व्याख्यान चलता था। द्रव्य, गुण, पर्याय पहला-पहला सुने इसलिए लोगों को... यह तो अलौकिक बात है।

भगवान आत्मा जो वस्तु है, वह तो द्रव्य है। द्रव्य अर्थात् पदार्थ। और उसमें त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, वीर्य-पुरुषार्थ ऐसे अनन्त गुण हैं, उसकी शक्ति—त्रिकाल गुण है और उसमें से जो अवस्था होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्याराग, वह भी विकारी पर्याय है। और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वह निर्विकारी पर्याय है और उससे मोक्ष होता है, वह पूर्ण निर्विकारी पर्याय है। आहाहा! ऐसी चीज़ है, भगवान!

कहते हैं, एक समयमात्र नाश नहीं होता। **हमेशा अनन्त गुण पाये जाते हैं।** मोक्ष अर्थात् सिद्ध में अनन्त गुण की शक्ति जो है, उसकी व्यक्तता-प्रगटता अनन्त गुण की पर्याय सदा प्रगट होती है। आहाहा! **उस शुद्धात्मा के वही निश्चय से हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल है,...** इस मोक्ष का फल। कायम रहनेवाला। आहाहा! जिसमें अपना आत्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से साधन करके अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन है, उसका अन्तर में अनुभव, निर्विकल्प श्रद्धा, राग के अवलम्बन बिना, त्रिकाली के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन जो पहली भूमिका है, वह पर्याय है। इसी प्रकार त्रिकाली वस्तु का ज्ञान, सम्यक् वेदन, ज्ञान, वह भी पर्याय / अवस्था है और त्रिकाली में स्थिर होना—रमणता-चारित्र-चरना-स्वरूप में रमना, स्वरूपे चरणं चारित्रं। चारित्र, वह कोई देह की क्रिया या पंच महाव्रत के विकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! यह अपने वहाँ स्वाध्यायमन्दिर में लिखा है न! वे प्रवचनसार के शब्द हैं। स्वरूपे चरणं चारित्रं। अपना स्वरूप जो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति अर्थात् चारित्र की वीतराग शक्ति—आत्मा में गुण है, उसमें रमना। आहाहा! चरना, चरना। जैसे पशु घास चरता है न? घास। पशु घास चरता है या नहीं? इसी प्रकार धर्मी अपने आनन्द को चरता है। उसका नाम चारित्र है। ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के मार्ग से जो मोक्ष की पर्याय प्रगट होती है, उसमें एक समय भी विरह नहीं पड़ता। वह हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल है। है अन्दर? **हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल है, इसके**

सिवाय दूसरा मोक्षफल नहीं है,... इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मोक्ष का फल नहीं है। मोक्ष होता है, फिर अवतार लेना पड़े, भक्तों को कष्ट पड़े तो अवतार (लेना पड़े)। वे लोग गीता में कहते हैं न? यदा... यदा... ऐसा है नहीं। एक बार चना सिंक गया, तत्पश्चात् वह उगता नहीं। मिठास देता है। कच्चा चना हो, कच्चा, उसे खाये तो तुराश दिखती है और बोबे तो उगता है। बोबे समझे? उगे। और सेंकने से कचाश-तुराश का नाश होता है, मिठास प्रगट होती है और बोबे तो उगता नहीं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष को जलाता है, अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से, अन्तर आनन्द की रमणता से तीनों को जला डालता है तो जैसे चना सेंकने से मिठास आती है, उसी प्रकार आत्मा के धर्म में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! समझ में आया? यह चना खाये न? भुना हुआ चना कहते हैं न? बनिया धन्धा करते समय कहते हैं न कुछ भला हुआ? ऐसा कहे न पैसा बैसा! ऐई! शान्तिभाई! कहाँ गये? ... बनिया व्यापार करे तब (पूछे), कुछ भला हुआ? पाँच-पच्चीस हजार मिले या नहीं। धूल में भी भला नहीं।

मुमुक्षु : शुक्रवार के डाळिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुक्रवारा डाळिया तो यह। शुक्र अर्थात् अपना जो अनन्त वीर्य है, उस वीर्य से अन्दर पुरुषार्थ करके अज्ञान का नाश करके, सम्यग्ज्ञान, आनन्दादि प्रगट हुए, वह अपने चने की मिठास है—वह आत्मा की मिठास है। आहाहा! खबर नहीं क्या है! धर्म बाहर से (मान लिया)।

हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल है, इसके सिवाय दूसरा मोक्षफल नहीं है, और इससे अधिक दूसरी वस्तु कोई नहीं है। मोक्ष से अधिक दूसरी कोई चीज़ जगत में है, ऐसा नहीं है। उसका मार्ग भी कोई अलौकिक है। वह मार्ग अब कहेंगे। यह तो उसका फल कहते हैं। आहाहा!

भावार्थः—मोक्ष का फल अनन्त ज्ञानादि जानकर... मोक्ष का फल अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द जानकर, **समस्त रागादिक का त्याग करके...** देखो! विकल्पमात्र वृत्ति उठती है, जो शुभ और अशुभराग, सबको छोड़कर... आहाहा! **उसी के लिये निरन्तर शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिए।** आहाहा! शुद्धात्मा पवित्र निर्मलानन्द प्रभु, अन्तर

में निरन्तर उसका ध्यान करके भावना करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया? **मोक्ष का फल अनन्त ज्ञानादि जानकर समस्त रागादिक का त्याग...** आहाहा! **उसी के लिये...** मोक्ष के लिये। **निरन्तर शुद्धात्मा....** ध्रुव निरंजन निराकार आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा है, वह शुद्धात्मा। पर्याय में अशुद्ध है, उसका नाश करने के लिये निज शुद्धात्मा का ध्यान करना। आहाहा! **भावना करनी चाहिए।** वह शुद्धात्मा पूर्णानन्द प्रभु अन्दर है, उसकी एकाग्रतारूपी भावना करनी चाहिए। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह मोक्ष का फल कहा। एक गाथा में।

मोक्ष की व्याख्या पहले की। दस दोहे में मोक्ष का व्याख्या की। दस दोहे में। योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर सन्त। सन्त हों, वे सब दिगम्बर ही होते हैं। जंगल में बसते थे। समझ में आया? और अन्दर अपने अतीन्द्रिय आनन्द के साधन अन्दर में रमते थे, उनकी देह की दशा नग्न हो जाती है। और अन्दर में विकल्प उठे तो पंच महाव्रत के विकल्प उठते हैं, परन्तु उसे वह हेय मानते हैं—छोड़नेयोग्य मानते हैं। समझ में आया? यह योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। मुनिराज जंगल में रहनेवाले हैं। प्रभु! यदि तुझे मोक्ष चाहिए तो इस शुद्धात्मा का निरन्तर ध्यान करना। आहाहा! इस ध्यान का अर्थ निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। वह ध्यान है। समझ में आया? आहाहा!

वह सुलगता था। कितने ही उसे विदा करने आये थे, ऐसा कहते हैं। खड़े थे, देखते थे। आहाहा! वहाँ सुलगा। मुर्दे देखे। यह दशा अनन्त बार हुई है, भाई! अनन्त काल में तुझे भी ऐसी दशा अनन्त बार हो गयी है। एक मिथ्यात्व के कारण से। मिथ्यात्व अर्थात् राग से धर्म मानना, पुण्य से धर्म मानना, पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, पर से मुझे में कुछ लाभ होता है, ऐसी जो मिथ्याश्रद्धा-मिथ्यात्व के कारण से ऐसे दुःख सहन करना पड़े। समझ में आया? आहाहा!

यह ११वीं गाथा मोक्ष के फल की हुई। मोक्ष की दस गाथा, फल की एक और मोक्ष के मार्ग की इक्कीस। **इस प्रकार दूसरे महाधिकार में मोक्ष-फल के कथन की मुख्यताकर एक दोहा-सूत्र कहा।** लो।

आगे उन्नीस दोहापर्यन्त... २९? उन्नीस... उन्नीस। उन्नीस अर्थात् उन्नीस न? **उन्नीस दोहापर्यन्त निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग का व्याख्यान करते हैं:—**

गाथा - १२

अथानन्तरमेकोनविंशतिसूत्रपर्यन्तं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गव्याख्यानस्थलं कथ्यते तद्यथा–

१३५) जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरु दंसणु णाणु चरित्तु।
ते पुणु तिण्णि वि अप्पु मुणि णिच्छएँ एहउ वुत्तु।।१२।।

जीवानां मोक्षस्य हेतुः वरं दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्।
तानि पुनः त्रीण्यपि आत्मानं मन्यस्व निश्चयेन एवं उक्तम्।।१२।।

जीवहं इत्यादि। जीवहं जीवानां अथवा एकवचनपक्षे 'जीवहो' जीवस्य मोक्खहं हेउ मोक्षस्य हेतुः कारणं व्यवहारयेन भवतीति क्रियाध्याहारः। कथंभूतम्। वरु वरमुत्कृष्टम्। किं तत्। दंसणु णाणु चरित्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयम्। ते पुणु तानि पुनः तिण्णि वि त्रीण्यपि सम्यग्दर्शज्ञानचारित्राणि अप्पु आत्मानमभेदनयेन मुणि मन्यस्व जानीहि त्वं हे प्रभाकरभट्ट णिच्छएं निश्चयनयेन एहउ वुत्तु एवमुक्तं भणितं तिष्ठतीति। इदमत्र तात्पर्यम्। भेदरत्नत्रयात्मको व्यवहारमोक्षमार्गः साधको भवति अभेद रत्नत्रयात्मकः पुनर्निश्चयमोक्षमार्गः साध्यो भवति, एवं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधकभावो ज्ञातव्यः सुवर्णसुवर्णपाषाणवत् इति। तथा चोक्तम् – 'सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे। ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।।'।।१२।।

आगे उन्नीस दोहापर्यंत निश्चय और व्यवहार मोक्ष–मार्ग का व्याख्यान करते हैं –

परम ज्ञान दर्शन चारित्र जीव को मुक्ति–कारण है।
ये तीनों आत्मा ही जानो यह निश्चय नय का मत है।।१२।।

अन्वयार्थ :– [जीवानां] जीवों के [मोक्षस्य हेतुः] मोक्ष के कारण [वरं] उत्कृष्ट [दर्शन ज्ञानं चारित्रम्] दर्शन ज्ञान और चारित्र हैं [तानि पुनः] फिर वे [त्रीण्यपि] तीनों ही [निश्चयेन] निश्चयकर [आत्मानं] आत्मा को ही [मन्यस्व] जाने [एवं] ऐसा [उक्तम्] श्री वीतरागदेव ने कहा है, ऐसा हे प्रभाकरभट्ट; तू जान।

भावार्थ :– भेदरत्नत्रयरूप व्यवहार–मोक्ष–मार्ग साधक है, और अभेदरत्नत्रयरूप निश्चय–मोक्षमार्ग साधनेयोग्य है। इस प्रकार निश्चय व्यवहारमोक्ष–मार्ग का साध्य–साधकभाव, सुवर्ण सुवर्ण–पाषाण की तरह जानना। ऐसा ही कथन श्रीद्रव्यसंग्रह में

कहा है। 'सम्मद्दंसण' इत्यादि। इसका अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीनों ही व्यवहारनयकर मोक्ष के कारण जानने, और निश्चय से उन तीनोंमयी एक आत्मा ही मोक्ष का कारण है।।१२।।

गाथा-१२ पर प्रवचन

१२ (गाथा)।

१३५) जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरु दंसणु णाणु चरित्तु।
ते पुणु तिण्णि वि अप्पु मुणि णिच्छएँ एहउ वुत्तु॥१२॥

अन्वयार्थः—जीवों के... भगवान आत्मा **मोक्ष के कारण उत्कृष्ट दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं...** मूल तो निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र लेना है। निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के यहाँ टीका में दो प्रकार लेंगे। परन्तु वास्तव में तो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा अन्दर है ही। जैसे स्वर्ण स्वर्ण की शक्ति से भरपूर ही है। सोना। उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुण की शक्ति से भरपूर ही है। उसकी ओर कभी नजर की नहीं। समझ में आया? जिसे भगवान आत्मा कहते हैं, वह तो शुद्ध चैतन्यघन है।

यह कहा था न एक बार? 'प्रभु तुम जाणग रीति...' 'प्रभु तुम जाणग रीति' सर्वज्ञ परमात्मा को कहते हैं, हे नाथ! 'प्रभु तुम जाणग रीति' पूरा जगत देखते हो। 'निज सत्ता से शुद्ध...' सहुने—अपने को पेखते हैं। हमारे आत्मा को तो आप निज सत्ता से शुद्ध जानते हो। जो पुण्य और पाप, शरीर, कर्म, वह तो परचीज़ जड़ है। आहाहा! हे नाथ! सर्वज्ञ परमात्मा जिनवरदेव! आप हमको निज शुद्ध सत्तास्वरूप आत्मा देखते हो। पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे आत्मा नहीं। वह तो विकार है, अनात्मा है। आहाहा! हे परमात्मा सर्वज्ञदेव! आप हमारी आत्मा की दशा, आत्मा की स्थिति शुद्ध सत्ता, पवित्र अस्तित्व, शुद्ध सत्ता है, ऐसे हमारे आत्मा को आप देखते हो। आहाहा! ऐसी जो निज शुद्ध सत्ता भगवान देखते हैं, उस निज शुद्ध सत्ता को श्रद्धा-ज्ञान में नजर से देखे तो उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया? तो उसने सम्यक् अर्थात् सत्य ऐसी प्रतीति की अथवा देखा। दोनों लेंगे। देखना भी लेंगे। समझ में आया? आहाहा!

मोक्ष के कारण उत्कृष्ट दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं फिर वे तीनों ही... इस प्रकार से लिया। तीन है, वह पर्यायनय से। है तो निश्चय, परन्तु तीन (भेद) पड़े न? सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र। त्रिकाली भगवान आत्मा की अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की पर्याय और सम्यक्चारित्र की पर्याय, यह तीन भेद हुए तो उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! यह सद्भूतव्यवहार। वह दूसरा व्यवहार कहेंगे, वह असद्भूत। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया? यह आत्मा जो है... वस्तु है न? प्रभु पदार्थ है वह तो। अरूपी, परन्तु पदार्थ है। अरूपी तो धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल भी है और रूपी यह पुद्गल जड़ है।

भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। भगवान जिनेश्वरदेव ने जाति से छह द्रव्य (देखे हैं)। संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। ऐसे भगवान केवली ने छह द्रव्य देखे हैं। छह में एक आत्मा और धर्मास्ति आदि पाँच हैं, वे अरूपी हैं और यह पुद्गल रूपी है। पाँच अरूपी में भी आत्मा चैतन्य अरूपी है। वे जड़ अरूपी हैं। समझ में आया? आहाहा!

चैतन्य अरूपी प्रभु आत्मा की श्रद्धा—आत्मा की श्रद्धा। पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्यघन विज्ञानघन मैं हूँ, ऐसी अन्दर में रागरहित निर्विकल्प प्रतीति, निर्मल श्रद्धा वीतरागी पर्याय (हो), उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! और इस भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य का ज्ञान, इसका ज्ञान—स्वसंवेदनज्ञान। शास्त्रज्ञान और दूसरे ज्ञान, वे कहीं ज्ञान नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? यह वकालत और डॉक्टर और एम.ए. और सब होते हैं न? वह तो सब अज्ञान है। कुज्ञान है। ज्ञान तो परमात्मा उसे कहते हैं, जो ज्ञानस्वरूप तू है, उस ज्ञान का ज्ञान करना। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु का ज्ञान। और उसमें रमणता—लीनता, आत्मा में लीनता (होना), यह तीन पर्याय है। यह **तीनों निश्चयनयकर आत्मा को ही जाने...** यह तीन कहना, वह पर्यायनय से व्यवहार से है। आहाहा! अर्थ में व्यवहार दूसरा लेंगे, परन्तु यहाँ मूल बात तो यह है।

वहाँ प्रवचनसार में भी यह है न? २४२ गाथा। पर्यायनय से... २४२ गाथा है। (प्रवचनसार अर्थात्) भगवान की दिव्यध्वनि का सार। **'भेदात्मक होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है' ऐसा पर्यायप्रधान व्यवहारनय से उसका प्रज्ञापन है...** क्या

कहते हैं। २४२ है। है न? **(श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग) भेदात्मक होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है...** यह भेदात्मक अर्थात्? व्यवहार विकल्प नहीं। अपने चैतन्यस्वभाव का सम्यग्दर्शन, निर्मल निश्चय सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र यह तीन पर्यायप्रधान कथन है, इसलिए व्यवहार कथन कहा। आहाहा! तीन भेद पड़े न? आत्मा में एकाकार, वह निश्चय है। है? देखो!

पर्याय प्रधान व्यवहारनय से उसका प्रज्ञापन है... अभेदात्मक होने से 'एकाग्रता मोक्षमार्ग है'... एकाग्रता। तीन भेद नहीं। भगवान आत्मा में एकाग्रता, बस। आहाहा! अरे! ऐसी बात अभी सुनने को मिलती नहीं। लोगों का प्रचार बहुत दूसरा हो गया है। मूल बात पूरी पड़ी रही। वररहित बारात जोड़ दी। वर समझते हो? दूल्हा... दूल्हा। दूल्हा नहीं और बारात जोड़ दी। जान को क्या कहते हैं? बारात। दूल्हा नहीं और बारात जोड़ दी। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन, आत्मा क्या है? उसका सम्यग्दर्शन क्या? वह वर बिना जोड़ दिया, व्रत और तप और यह और वह और अमुक और ढींकणा। आहाहा!

यहाँ भगवान यह कहते हैं, प्रवचनसार चरणानुयोग का कथन है, तो भी ऐसा है। आहाहा! **'एकाग्रता मोक्षमार्ग है' ऐसा द्रव्यप्रधान निश्चयनय से उसका प्रज्ञापन है...** आहाहा! **सभी पदार्थ भेदाभेदात्मक होने से...** भेद-अभेदात्मक होने से **वे दोनों मोक्षमार्ग है...** (अर्थात्) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा एकाग्रता। **ऐसे प्रमाण से उसका प्रज्ञापन है।** आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, हों! क्या कहा यह? देखो! यहाँ कहते हैं। **फिर वे तीनों ही निश्चयनयकर आत्मा को ही जानें...** यह निश्चय आया, यह द्रव्यप्रधान आया। और पहले तीन कहे, वे पर्यायप्रधान व्यवहार कथन है। समझ में आया? फिर टीकाकार जरा असद्भूत व्यवहार भी लेंगे। यह तो सद्भूत व्यवहार। द्रव्य की पर्याय-अवस्था है, सच्चा मोक्षमार्ग। निश्चय निर्विकल्प आनन्द की पर्याय, आनन्द का ज्ञान, आनन्द में रमणता, वह तीन पर्याय है, इस अपेक्षा से भेद करके व्यवहार कहा। आहाहा!

तीनों ही निश्चयनयकर आत्मा को ही जानें, ऐसा श्री वीतरागदेव ने कहा है,... यह निश्चय से कहा है। आहाहा! **ऐसा है प्रभाकर भट्ट!...** योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर सन्त आत्मध्यानी, ज्ञानी आनन्द में रमनेवाले जंगल में (रहनेवाले), शिष्य को कहते हैं, हे शिष्य! तू ऐसा जान। आहाहा! है? **वीतरागदेव ने कहा है, ऐसा हे प्रभाकर भट्ट! तू**

जान। वीतरागदेव ने ऐसा कहा है। आहाहा! क्या कहते हैं, उसे पहले समझण में लेना कठिन पड़े। मार्ग बापू! अनादि का अनजाना है। आहाहा! अनन्त बार साधु हुआ है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' यह छहढाला में आता है। मुनिव्रत धार—दिगम्बर मुनि हुआ, पंच महाव्रत लिये, हजारों रानियों का त्याग किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार' यह अनन्त बार ग्रैवेयक (गया)। ऊपर ग्रैवेयक है वहाँ उत्पन्न हुआ। परन्तु 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण भी राग है और दुःख है। आहाहा!

भगवान आत्मा इस राग से भिन्न निज परमात्मस्वरूप का दर्शन, ज्ञान, चारित्र में आनन्द है। समझ में आया? उसमें भी तीन प्रकार का कथन करना, वह पर्यायप्रधान व्यवहारनय है। आहाहा! ऐसा उपदेश है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनवरदेव तीर्थंकर का यह उपदेश है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अशुद्ध... अशुद्ध। यह डालेंगे। यह व्यवहार डालेंगे, यह असद्भूतव्यवहार है। वास्तव में तो यह सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! नवलचन्दभाई! आहाहा! प्रवचनसार में भी यह कहा है २४२ में। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सच्चे हों, उसे भी पंच महाव्रत आदि विकल्प होता है, परन्तु है वह राग, है वह बन्ध का कारण। उसे यहाँ निमित्त गिनकर, वह मोक्षमार्ग है—ऐसा कहेंगे। इस प्रकार व्यवहार पर आरोप करके कहेंगे। आहाहा! समझ में आया? अब इतने इसे कहाँ पहुँचना? अभी तो कुछ निवृत्ति नहीं मिलती। बाईस घण्टे घर के काम और उसमें एकाध-दो घण्टे मिलें तो सुनने जाये तो उसमें ऐसा मिले कि यह करो... यह करो... यह करो। व्रत करो और तप करो और यह करो। चीज़ क्या है, (उसकी खबर नहीं होती)।

मुमुक्षु : श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं, कुगुरु लूट लेते है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लूट लेते हैं। श्रीमद् ने ऐसा कहा है। समय नहीं मिलता, घण्टा भर मिले और सुनने जाये तो कुगुरु लूट ले। ऐसा लिखा है। उसे धर्म के नाम से अधर्म बतावे, उसमें धर्म है, ऐसा बतावे। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! यह तुम सब सेठियाओं ने ऐसा ही किया है न अभी तक। नहीं? आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव फरमाते हैं। मुनि कहते हैं, वह वीतराग ही कहते हैं। वे मुनि भी वीतराग हैं। जिन्हें तीन कषाय का अभाव है। वह वीतरागी मुनि हैं। आहाहा! वे कहते हैं, **वीतरागदेव ने कहा है, ऐसा हे प्रभाकर भट्ट! तू जान।**

भावार्थः—भेदरत्नत्रयरूप व्यवहार-मोक्षमार्ग साधक है,... पश्चात् व्यवहार डालेंगे। परन्तु वास्तव में निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह साधक है। व्यवहार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह फिर बाद में। यहाँ तो यह वस्तु है। यह भेदरत्नत्रय व्यवहार, वह तो पर्याय में निश्चय है, वह तीन है; इसलिए व्यवहार कहा है। फिर इसमें से दूसरा असद्भूतव्यवहार निकालेंगे।

भेदरत्नत्रयरूप व्यवहार-मोक्षमार्ग साधक है और अभेदरत्नत्रयरूप निश्चय मोक्षमार्ग साधनेयोग्य है। तीन प्रकार के दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह साधक है। साधक होकर एकाग्रता होना, वह साध्य है। फिर टीकाकार जरा... हेतु शब्द पड़ा है न, उसमें से निकाला। पाठ में '**मोक्खहँ हेउ**' है न ? यह छहढाला में डाला है न ? नियत का हेतु। नियत का हेतु कहा है न, इसलिए इस हेतु शब्द में से दूसरा व्यवहार निकाला है। आहाहा! वह तो तीन शुद्ध पर्याय है, वह व्यवहार है। पर्यायनय से कथन आया न! तत्त्वार्थसूत्र में भी आया है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्गः, यह पर्यायनय से कथन है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ में एकाग्र होना, भेद नहीं परन्तु अभेद होना, यही निश्चयमार्ग है। समयसार, गाथा १६वीं में तो ऐसा कहा, नहीं ? कि पर्याय के तीन भेद हैं, वे व्यवहार हैं, वह मलिन है, ऐसा कहा। मेचक। मेचक कहा है। क्या कहा ? सुनो, भाई! आहाहा! आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु अन्दर है, उसके श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तीन भेद, वह व्यवहार है, वह मेचक है। उसे मलिन कहा है। आहाहा! १६वीं गाथा में है। भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर किसे कहते हैं ? वह कौन है ? जिसे एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में 'क' बोले उसमें असंख्य समय—काल जाता है। ऐसा एक समय में जिसने तीन काल-तीन लोक देखे। ऐसे जो जिनवर

परमात्मा, उन्होंने जो मार्ग कहा, वह अलौकिक है। लौकिक दुनिया से भिन्न है।

भेदरत्नत्रयरूप व्यवहार-मोक्षमार्ग साधक है और अभेदरत्नत्रयरूप निश्चय मोक्षमार्ग साधनेयोग्य है। इस प्रकार निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का साध्य-साधकभाव,... अब जरा व्यवहार डालते हैं। **सुवर्ण सुवर्ण-पाषाण की तरह जानना।** यह व्यवहार की बात है। राग है। उसमें से अशुद्ध व्यवहार निमित्तरूप से जानने के लिये निकाला है। आहाहा!

ऐसा ही कथन द्रव्यसंग्रह में कहा है। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (सिद्धान्तिदेव) ने द्रव्यसंग्रह बनायी है। है न? यह है न? उस द्रव्यसंग्रह में गाथा-३९। अन्दर गाथा है न?

सम्मद्दं सणणाणं वरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहार णिच्छयदो तत्तियमईओ णिओ अप्पा॥३९॥

वहाँ यह डाला है। पाठ तो ऐसा डाला है। देखा? '**सम्मद्दं सणणाणं वरणं मोक्खस्स कारणं जाणे। ववहार**' व्यवहार। साथ में भेद। '**णिच्छयदो तत्तियमईओ णिओ अप्पा**' निज आत्मा है। वहाँ डाला है यह, परन्तु जरा उसमें से व्यवहार निकाला। आहाहा! ३९ गाथा है न? नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। '**सम्मद्दं सणणाणं वरणं मोक्खस्स कारणं जाणे। ववहार**' यह व्यवहार। '**णिच्छयदो तत्तियमईओ णिओ अप्पा।**' लो! **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र को व्यवहारनय से मोक्ष का कारण जानो।** यह पर्यायनय। और निश्चय से **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रमय निज आत्मा को मोक्ष का कारण जानो।** टीका में व्यवहार डाला है। उसमें भी। वह व्यवहार यहाँ डाला है। ज्ञान कराया है।

इसका अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन... आत्मा पवित्र पूर्ण भगवान की अन्तर में अनुभव करके प्रतीति (होना), यह सम्यग्दर्शन है। यह धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का पहला सोपान है। आहाहा! **सम्यग्ज्ञान...** सच्चिदानन्द ज्ञानस्वरूप का ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान और ज्ञान में रमणता, वह चारित्र। **ये तीनों ही व्यवहारनयकर मोक्ष के कारण जानने और निश्चय से उन तीनोंमयी एक आत्मा ही मोक्ष का कारण है।** यहाँ तक तो अभी पर्याय और द्रव्य डाला है। फिर टीका में डालेंगे। शुद्ध पर्याय की बात है। आहाहा! व्यवहार समझावे न। यह बारह गाथा (पूरी हुई)।

गाथा - १३

अथ निश्चयरत्नत्रयपरिणतो निजशुद्धात्मैव मोक्षमार्गो भवतीति प्रतिपादयति -

१३६) पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।
दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि।।१३।।

पश्यति जानाति अनुचरति आत्मना आत्मानं य एव।
दर्शनं ज्ञानं चारित्रं जीवः मोक्षस्य कारणं स एव।।१३।।

पेच्छइ इत्यादि। पेच्छइ पश्यति जाणइ जानाति अणुचरइ अनुचरति। केन कृत्वा। अप्पिं आत्मना कारणभूतेन। कं कर्मतापन्नम्। अप्पउ निजात्मानम्। जो जि य एव कर्ता दंसणु णाणु चरित्तु दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं भवतीति क्रियाध्याहारः। कोऽसौ भवति। जिउ जीवः य एवाभेदनयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं [१]भवतीति मोक्खहं कारणु निश्चयेन मोक्षस्य कारणं एक एव सो जि स एव निश्चयरत्नत्रयपरिणतो जीव इति। तथाहि। यः कर्ता निजात्मानं मोक्षस्य कारणभूतेन आत्मना कृत्वा पश्यति निर्विकल्परूपेणावलोकयति। अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानापेक्षया चलमलिनागाढपरिहारेण शुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपेण निश्चिनोति न केवलं निश्चिनोति वीतरागस्वसंवेदनलक्षणाभेदज्ञानेन जानाति परिच्छिनत्ति। न केवलं परिच्छिनत्ति। अनुचरति रागादिसमस्तविकल्पत्यागेन तत्रैव निजस्वरूपे स्थिरीभवतीति स निश्चयरत्नत्रयपरिणतः पुरुष एव निश्चयमोक्षमार्गो भवतीति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। तत्त्वार्थश्रद्धानरुचिरूपं सम्यग्दर्शनं मोक्षमार्गो भवति नास्ति दोषः, पश्यति निर्विकल्परूपेणावलोकयति इत्येवं यदुक्तं तत्सत्तावलोकदर्शनं कथं मोक्षमार्गो भवति यदि भवति चेत्तर्हि तत्सत्तावलोकदर्शनम-भव्यानामपि विद्यते तेषामपि मोक्षो [२]भवति स चागमविरोधः इति। परिहारमाह। तेषां निर्विकल्पसत्तावलोकदर्शनं बहिर्विषये विद्यते न चाभ्यन्तरशुद्धात्मतत्त्वविषये। कस्मादिति चेत्। तेषामभव्यानां मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्यु-पशमक्षयोपशमक्षयाभावात् शुद्धात्मोपादेय इति रुचिरूपं सम्यग्दर्शनमेव नास्ति चारित्रमोहोदयात् पुनर्वीतरागचारित्ररूपं निर्विकल्पशुद्धात्म सत्तावलोकनमपि न संभवतीति भावार्थः। निश्चयेनाभेद-रत्नत्रयपरिणतो निजशुद्धात्मैव मोक्षमार्गो भवतीत्यस्मिन्नर्थे संवादगाथामाह - 'रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि। तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।।'।।१३।।

---

१. पाठान्तर :- भवतीति = भवति २. पाठान्तर :- भवति = भवतु

आगे निश्चयरत्नत्रयरूप परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहते हैं –

जो आत्मा को आत्मा से ही जानता और देखता है।
और अनुचरण करे उसी का इसको ही शिवमार्ग कहा।।१३।।

अन्वयार्थ :– [य एव] जो [आत्मना] अपने से [आत्मानं] आपको [पश्यति] देखता है, [जानाति] जानता है, [अनुचरति] आचरण करता है, [स एव] वही विवेकी [दर्शनं ज्ञानं चारित्रं] दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप परिणत हुआ [जीवः] जीव [मोक्षस्य कारणं] मोक्ष का कारण है।

भावार्थ :– जो सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को आपकर निर्विकल्परूप देखता है, अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान की अपेक्षा चंचलता और मलिनता तथा शिथिलता इनका त्यागकर शुद्धात्मा ही उपादेय है, इस प्रकार रुचिरूप निश्चय करता है, वीतराग स्वसंवेदनलक्षण ज्ञान से जानता है और सब रागादिक विकल्पों के त्याग से निज स्वरूप में स्थिर होता है, सो निश्चयरत्नत्रय को परिणत हुआ पुरुष ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया कि हे प्रभो; तत्त्वार्थश्रद्धान रुचिरूप सम्यग्दर्शन वह मोक्ष का मार्ग है, इसमें तो दोष नहीं और तुमने कहा कि जो देखे वह दर्शन, जानें वह ज्ञान, और आचरण करे वह चारित्र है। सो यह देखनेरूप दर्शन कैसे मोक्ष का मार्ग हो सकता है? और जो कभी देखने का नाम दर्शन कहो तो देखना अभव्य को भी होता है, उसके मोक्ष–मार्ग तो नहीं माना है? यदि अभव्य के मोक्ष–मार्ग होवे, तो आगम से विरोध आवे। आगम में तो यह निश्चय है कि अभव्य को मोक्ष नहीं होता। उसका समाधान यह है कि अभव्यों के देखनेरूप जो दर्शन है, वह बाह्यपदार्थों का है, अंतरंग शुद्धात्मतत्त्व का दर्शन तो अभव्यों के नहीं होता, उसके मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों का उपशम क्षयोपशम क्षय नहीं है, तथा शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन भी उसके नहीं है, और चारित्रमोह के उदय से वीतराग चारित्ररूप निर्विकल्प शुद्धात्मा का सत्तावलोकन भी उसके कभी नहीं है। तात्पर्य यह है, निश्चयकर अभेदरत्नत्रय को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसी ही द्रव्यसंग्रह में साक्षीभूत गाथा कही है। 'रयणत्तयं' इत्यादि। उसका अर्थ ऐसा है कि रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर अन्य (दूसरी) द्रव्यों में नहीं रहता, इसलिये मोक्ष का कारण उन तीनमयी निज आत्मा ही है।।१३।।

गाथा-१३ पर प्रवचन

१३ (गाथा)।

आगे निश्चयरत्नत्रयरूप परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है... देखो! वास्तव में निश्चयरत्नत्रय। निश्चयरत्नत्रय, हों! व्यवहार नहीं, निश्चय। अपने आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्विकल्प वीतरागी पर्याय है। तीनों वीतरागी पर्याय है। उससे परिणत हुआ—वीतरागी पर्याय से परिणत हुआ—परिणमता हुआ **निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है...** निज शुद्धात्मा ही मोक्षमार्ग है। आहाहा! यह मार्ग की गाथा है। **ऐसा कहते हैं—**

अन्वयार्थ:—जो अपने से आपको देखता है,... यह '**पश्यति**' है न, उसमें से निकालेंगे। देखना और श्रद्धा करना निकालेंगे। आहाहा! **जो अपने से आपको देखता है,...** आहाहा! जैसे पर को देखता है, वह तो पर का पराधीन ज्ञान है। आहाहा! अपने आत्मा को अन्दर देखता है। उसमें से श्रद्धा करता है, देखता है, दोनों आये। अपनी आत्मा की श्रद्धा करता है। देखकर श्रद्धा करता है। आहाहा! समझ में आया? यह शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के विकल्प जो राग है, उससे रहित भगवान आत्मा अन्दर है। भगवान ने कहा है। परमात्मा है न यह? वह परमात्मस्वरूप ही आत्मा अन्दर है। परन्तु कभी प्रतीति की नहीं, समझा नहीं, नजर की नहीं। बाहर में ऐसी की ऐसी जिन्दगी निकाली। गधा मजदूरी। आहाहा!

अपने आत्मा को देखना। आहाहा! जिसकी पर्याय जो ज्ञान है, अपनी पर्याय-अवस्था, उस ज्ञान से ज्ञाता को देखना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? इसमें से निकालेंगे—अचक्षुदर्शन। देखना है न? तो अचक्षुदर्शन अन्दर से निकाला। अकेला देखना तो अभव्य को भी है। यह आयेगा। उसमें से निकालेंगे। वह नहीं। अपना अन्तर भगवान शुद्धात्मा पवित्र आत्मा भगवतस्वरूप परमात्मस्वरूप अपना है, उसे देखना। उसकी श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी-पहला सोपान-पहला पगथिया है। पगथिया होते हैं न? सोपान। सीढ़ियाँ। इसी प्रकार यह धर्म का पहला सोपान है। आहाहा! अपना आत्मा अन्दर निराकुल अनाकुल

आनन्दस्वरूप पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता की शक्ति से भरपूर भगवान, उसे देखना। आहाहा! देखनेवाले को कभी देखा नहीं। समझ में आया?

जैसे सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर दिखता है। सूर्य का प्रकाश। पृथ्वी और प्रकाश कभी एक नहीं होते। सूर्य का प्रकाश है, वह पृथ्वी पर ऐसे पसरता है, परन्तु पृथ्वी और प्रकाश एक नहीं होते। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रकाश-सूर्य रागादि सबको देखता है, परन्तु राग में एकत्व नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें। यह प्रकाश है, देखो! यह प्रकाश कागज पर पसरा है तो कागजरूप प्रकाश हुआ है? आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य का प्रकाश अपने को जानता है और पर को जानने में भी पसरता है, परन्तु वह ज्ञान है, पर के साथ एकत्व नहीं होता। राग में या विकल्प में या शरीर में किसी में (एकत्व नहीं होता)। जानता है सबको, परन्तु उसमें एकत्व नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा को देखना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। शान्तिभाई! ऐसा सूक्ष्म है। मणिभाई तो अभी मुश्किल से पहली बार सुनते हैं। सूक्ष्म बातें बहुत, बापू! आहाहा! है?

अपने से... वापस ऐसा। **अपने से आपको देखता है,...** ऐसी भाषा है। अपने से आपको देखना। ऐसा शब्दार्थ है न? आत्मा की निर्मल पर्याय द्वारा अपने से अपने को—आत्मा को देखना। आहाहा! विकल्प या राग की मदद-सहायता बिना। आहाहा! **जो अपने से आपको देखता है,...** यह सम्यग्दर्शन। **जो अपने से आपको जानता है,...** ऐसा लेना। आहाहा! सामने पुस्तक है न? देखो न! क्या आया? आहाहा! जो कोई अपने से अर्थात् अपनी ज्ञानपर्याय से आपको—अपने द्रव्य को जानता है, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! **जो अपने से आपको आचरण करता है,...** आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। परन्तु यहाँ एक साधारण दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब इसे पाखाने में दस्त उतरे। इतने तो अपलक्षण। सिगरेट पीवे न? सिगरेट। तब पाखाने में दस्त उतरे। इतने तो अपलक्षण। अब उसे कहे कि यह भगवान आत्मा अन्दर (विराजता है)।

उसे कितनी ही राग की मन्दता तो पहले होनी चाहिए। जिससे उसे स्वभाव

समझने में अन्दर जाने में अनुकूल पड़े। तीव्र राग हो, उसमें अन्दर नहीं जा सकता। मन्द राग भी नहीं जा सकता, परन्तु मन्दराग में थोड़ी कषाय मन्द हुई हो तो उसे छोड़कर अन्दर में जा सकता है। अशुभ को छोड़कर अन्दर में नहीं जा सकता। आहाहा! समझ में आया? इस अपेक्षा से वहाँ व्यवहार कहने में आया है।

अपने को **अपने से आपको आचरण करता है,...** यह क्या होगा? अपनी वीतरागी पर्याय से अपने आत्मा की रमणता करना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प आदि होते हैं, वह चारित्र नहीं। आहाहा! है? यह तीनों में लेना। जो कोई अपने से अपने को देखता है, अर्थात् श्रद्धा करता है। जो कोई अपने से अपने को जानता है, वह ज्ञान। जो कोई अपने से आपको अनुचरता है—आचरण करता है—अन्तर में रमणता (करता है)।

'स एव' वही विवेकी... आहाहा! वह विवेकी—पर से भिन्न पड़नेवाला **दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणत हुआ...** अन्दर दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूपी अवस्था हुई अन्दर **जीव मोक्ष का कारण है। परिणत हुआ जीव मोक्ष का कारण है।** ऐसा कहा। आहाहा! समझ में आया? पर्याय से परिणमित हुआ जीव। वीतरागमार्ग है न! तो अपना वीतरागस्वरूप है त्रिकाल, उसे वीतरागी पर्याय से श्रद्धा करना, वीतरागी पर्याय से जानना और वीतरागी पर्याय में परिणमित होना, ऐसे तीनों से परिणमित जो जीव है, वह मोक्ष का कारण है। मोक्ष का मार्ग यह है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण ७, शुक्रवार
दिनांक-१५-१०-१९७६, गाथा-१३-१४, प्रवचन-१०५

परमात्मप्रकाश। १४वीं गाथा।....

मुमुक्षु : १३वीं रह गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : १३वीं रह गयी? कहाँ तक रह गयी?

मुमुक्षु : भावार्थ

पूज्य गुरुदेवश्री : भावार्थ बाकी? ठीक।

भावार्थ :— जो सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को आपकर निर्विकल्परूप देखता है,... क्या कहते हैं? धर्मी जीव की दृष्टि त्रिकाली आत्मा निर्विकल्प शुद्ध अखण्ड ज्ञानघन है, उस पर उसकी दृष्टि होती है। सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में इसने यह अभ्यास में नहीं लिया। **सम्यग्दृष्टि जीव...** अर्थात् सच्ची दृष्टिवाला आतमा **अपने आत्मा को...** अपने आत्मा को, पर नहीं। **अपने आत्मा को आपकर...** अपने द्वारा **निर्विकल्परूप देखता है,...** निर्मल वीतरागी पर्याय से अपने आत्मा को देखता है। ऐसी बात है। धर्म यह चीज़ है। इस धर्म बिना अनन्त काल से दुःखी... दुःखी... दुःखी है। वर्तमान में जरा सुविधा देखे, उसमें आकर्षित हो जाता है। यह मिथ्या भ्रम है। अन्तर में भगवान आत्मा परिपूर्ण अखण्ड ज्ञान... कल दोपहर में आया था, नहीं? अखण्ड ज्ञान। पूर्ण ज्ञानस्वरूप पदार्थ-वस्तु। अखण्ड अर्थात् जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं। पर्याय का भेद, वह व्यवहार में जाता है। भले पर्याय विषय करती है त्रिकाल का, परन्तु पर्याय को पृथक् करने पर वह व्यवहार के विषय में जाती है।

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि... जिसे सुख के पंथ में जाना है। इस दुःख के पंथ में अनादि से दौड़ गया है। बराबर होगा? यह सब पैसेवालों को तुम्हारे लोग सुखी कहते हैं। धूलवालों को, धूल-धूल। दो-पाँच करोड़ हो तो सुखी है। दुःखी है, भाई! वह पराधीन पर में सुख खोजता है, वह मिथ्याभ्रम अज्ञान दुःख है।

मुमुक्षु : सुख मिलता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ सुख है? दुःख है। अज्ञानी मानता है। राग है, वह तो दुःख है। आहाहा! वह वास्तव में तो राग है, लक्ष्मी का, बाहर की सुविधा का, वह तो जहर है। उसकी इसे खबर नहीं। क्योंकि आत्मा तो अतीन्द्रिय अमृत आनन्दस्वरूप है। भगवान आत्मा देह में अतीन्द्रिय अमृत आनन्दस्वरूप है। उससे शुभराग हो या अशुभ। वह तो अशुभराग है। लक्ष्मी ठीक और वह तो जहर है। आत्मा का आनन्द कभी देखा नहीं, जाना नहीं, इससे उसे इस राग में मजा है, ऐसा अज्ञानी मानता है। और उसके कारण चौरासी लाख के अवतार में भटक रहा है। आहाहा! तब धर्मीजीव सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव, जिसकी सच्ची दृष्टि है, सत्य स्वरूप की दृष्टि है, वह जीव **अपने आत्मा को...** सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर, वे तो पर आत्मा हैं। पर को मानना, वह तो राग है। अपने को अन्तर मानना, वह निर्विकल्प वीतराग है। आहाहा!

अपने आत्मा को आपकर... अपने से। अर्थात्? राग बिना के आत्मा का जो स्वभाव वीतराग शुद्ध, उस शुद्ध स्वभाव द्वारा, शुद्ध स्वभाव द्वारा पर्याय में **निर्विकल्परूप देखता है,...** भगवान आत्मा को तो अभेद एकरूप देखता है। आहाहा! अभी तो सुनना मुश्किल पड़े कि क्या कहते हैं यह। एक शब्द में कितना डाला है! देखो! आहाहा! जो कुछ ज्ञान में परवस्तु रागादि से (लेकर) दूसरी सभी चीज़ें जो ज्ञात होती है, वे ज्ञान में नहीं। ज्ञान उन्हें जानता है—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। उसकी तो नहीं, परन्तु उन्हें जानता है, ऐसा कहना व्यवहार है। वास्तव में तो अपना ज्ञानस्वभाव और पर को जानने का अपना स्वभाव, उस अपने स्वभाव को जानता है। आहाहा! धर्म चीज़ अपूर्व है, जिससे जन्म-मरण के अन्त आवे, चौरासी के अवतार में परिभ्रमण मिटे, वह चीज़ अलौकिक है।

कहते हैं, भगवान! **सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को आपकर...** अपने आनन्दस्वरूप भगवान को, **आपकर...** आनन्द वीतरागी पर्यायकर वस्तु को **निर्विकल्परूप देखता है,...** आहाहा! लो! यह तो कल दोपहर में आया था, अखण्ड प्रतिभास। आहाहा! धर्म का मार्ग ऐसी चीज़ है। शान्ति से और सब आग्रह छोड़कर समझे तो समझ में आये ऐसा है। जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, वह सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है।

बाकी तो यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा करे, वह भवभ्रमण करता है। भव में भटकने जायेगा। पुण्य होगा तो वह पुण्य संसार में जायेगा। आहाहा!

यहाँ तो **निर्विकल्परूप देखता है, अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान की अपेक्षा चंचलता और मलिनता तथा शिथिलता इनका त्यागकर शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** आहाहा! चंचलता छोड़कर तत्त्वार्थश्रद्धान की अपेक्षा से विकल्प की मलिनता और शिथिलता। आहाहा! चंचलता, मलिनता और शिथिलता, यह तीन प्रकार का जो दोष है... आहाहा! उसे छोड़कर **त्यागकर शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** भगवान पूर्णानन्द शुद्ध स्वरूप, वह विज्ञानकन्द, आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! वही सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। अंगीकार और आदरणीय हो तो वह चीज़ है। आहाहा!

अब यह शुद्धात्मा क्या है और पर्याय धर्म फिर सम्यग्दर्शन और... अरे! अज्ञानी अनादि काल से मूढपने में... आहाहा! अनन्त काल इसने गँवाया। जिस काल का अन्त नहीं। है... है... है... है... है... भूतकाल। ऐसे भव में अनन्त भव निगोद के किये, लट के किये, कीड़े-कौवे के किये। अनन्त सेठाई के भी किये। यह धूल के धनी हैं। पैसा है न? वह धूल है—मिट्टी है। आहाहा! उसका धनी भी अनन्त बार हुआ परन्तु अपना धनी हुआ नहीं। आहाहा!

शुद्धात्मा ही... यहाँ से इसका उपोद्घात बाँधा है। पश्चात् व्यवहार कहेंगे। परन्तु यहाँ तो पहला शुद्धात्मा परम पवित्र प्रभु आनन्दकन्द ध्रुव जो है... है... है... है... है... है... अनादि-अनन्त वस्तु है आत्मा, ऐसा जो त्रिकाली भाव, वही धर्मी जीव को आदरणीय है, इसके अतिरिक्त कोई चीज़ आदरणीय नहीं है। समझ में आया? **इस प्रकार रुचिरूप निश्चय करता है,...** है न? इस प्रकार रुचि अन्दर रुचि, पोषाण, पूर्ण शुद्ध आत्मा का पोषाण। पोषाण समझते हो? यह व्यापारी माल लेने जाये, (उसमें) पोसाता हो वह माल ले न। ढाई रुपये का मण हो और यहाँ तीन में बिकता हो तो ले न! परन्तु ढाई रुपये के मण में सवा दो में बिकता हो, उसे पोसाता माल कहा जायेगा? ऐई! इसी प्रकार जिसे आत्मा पोसाता है, कहते हैं। आहाहा! जिसे निमित्त का पोसाण नहीं, राग का नहीं, पर्याय का भी नहीं। आहाहा! एक समय की अवस्था का भी नहीं।

मुमुक्षु : तत्त्वश्रद्धान की अपेक्षा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तत्त्वार्थश्रद्धान, यह सम्यक् निश्चय है। यहाँ निश्चय की बात है। व्यवहार तत्त्व की यहाँ बात नहीं।

रुचिरूप निश्चय करता है,... आहाहा! समझ में आया? यह तो अपूर्व की बातें हैं, बापू! ऐसे तो धर्म के नाम से तो अभी धमाधम चलती है चारों ओर। धर्म बापू! एक क्षण का धर्म जो जन्म-मरण के अन्त को लावे, वह धर्म अलौकिक है। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव जिनवरदेव परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि **शुद्धात्मा ही उपादेय है, उस प्रकार रुचिरूप निश्चय करता है,...** आहाहा! यह दर्शन-श्रद्धा। यह दर्शन की बात की।

वीतराग स्वसंवेदनलक्षण ज्ञान से जानता है,... यह ज्ञान की बात की। आहाहा! जिसे अन्दर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का वह समुद्र आत्मा है। आहाहा! उस आत्मा का स्वरूप अन्दर परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! कहाँ बैठे?

मृग की नाभि में कस्तूरी, परन्तु उसे कस्तूरी बैठती नहीं। मृग जैसे प्राणी, उसकी नाभि में कस्तूरी। कीमती कस्तूरी। उसी प्रकार इस अन्तर आत्मा में अनन्त आनन्द और ज्ञान भरपूर कस्तूरी है, भगवान! आहाहा! परन्तु मृग जैसे प्राणी, जिसे बाहर पुण्य और पाप के भाव की रुचि और पुण्य-पाप के भाव अर्थात् पुण्य के फल यह धूल मिले, सेठाई राजा आदि, उसका जिसे प्रेम—ऐसे मृग, अपने में भरपूर आनन्द की रुचि नहीं करता। आहाहा! 'मनुष्यस्वरूपे मृगा चरन्ति।' मनुष्य का स्वरूप परन्तु है हिरण जैसे, वे मृग हैं। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द का कन्द प्रभु है, स्वयं है ऐसा, उसकी जिसे रुचि नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि भ्रम में पड़ा है। आहाहा!

कल की वह एक बात सुनी थी न! बड़ा आदमी था। बड़ा आदमी। वह बहुतों को जीतकर बहुत... कोई उसे मार डालेगा, ऐसा दुश्मन का भय भी बहुत। बड़ा व्यक्ति। जल गया न उसमें? यह कहते हैं कि गोली रखता था। एक गोली रखता था। मरने की। ऐसे देखो तो बड़ा पैसा है। ऐसा कि कोई ऐसा जाने कि मैं अकेला हूँ और यह तो दुश्मन है। मारेगा मुझे। इसलिए गोली ले ले, मरने के लिये। आहाहा!

मुमुक्षु : बेसुध हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बेसुध हो जाये। यह दशा... यह दशा... ऐसी दशायें इसने अनन्त बार की, भगवान! अनादि काल का है, अनादि काल का है। आत्मा कहीं नया है? नया होता है? वह तो अनादि से है, है और है। उसमें ऐसे अवतार। उसे गोली खाकर मर जाना और कहाँ जाना है, उसकी खबर है? वह तो मानो हो गया। अभी अपने को दु:ख था, वह छूट गया, लो! आहाहा! अन्तर आत्मा शाश्वत् वस्तु नित्यानन्द प्रभु है। आहाहा! उसकी तो इसे खबर नहीं। आहाहा! वह वापस मरकर माँस आदि खाता हो तो नरक में जाये। आर्य व्यक्ति माँस आदि न खाता हो तो ढ़ोर में जाये—पशु में जाये।

मुमुक्षु : देव में न जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : देव में क्या, मनुष्य में भी न जाये। लट, चींटी, कौआ, कुत्ता, शूकर, बन्दर में जाये। आहाहा!

यहाँ परमेश्वर ऐसा कहते हैं, जिसे भगवान पूर्ण शुद्ध पवित्र पिण्ड है, वह उपादेय है और उसकी रुचि, वह निश्चय करता है, वह सम्यग्दर्शन। आहाहा! और **वीतराग स्वसंवेदनलक्षण ज्ञान से जानता है...** आहाहा! शास्त्र से नहीं, पर से नहीं। अन्तर में राग से रहित होकर वीतरागी पर्याय से स्वसंवेदन—अपना अपने से प्रत्यक्ष वेदन करे, उससे आत्मा को जाने, इसका नाम ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! यह सब तुम्हारे डॉक्टर के, एम.ए. के... एम.ए. कहलाता है? क्या कहलाता है वह? एम.बी.बी.एस. और यह वकील सब एम.ए. वाले। यह सब जवाहरातवाले के अभ्यास जवाहरात के, वह सब कुज्ञान है। कुाान है। आहाहा! अरे! इसे खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि तुझे ज्ञान सच्चा कब कहलाये? आहाहा! राग का भाव है, उससे हटकर वीतरागी स्वरूप आत्मा है, उसे वीतरागी पर्याय द्वारा जानना। आहाहा! लो! फूलचन्दजी! १४४ जैसा आया था। आहाहा! बापू! जन्म-मरण से रहित (होने का) मार्ग बहुत अलौकिक है। बाकी तो यह सेठ हो, देव हो और भिखारी अनन्त बार हुए, अनन्त बार हुए। अरबोंपति अनन्त बार हुआ, धूल में। मरकर वापस नरक में गया। आहाहा! यह तो कहा था न? यह परमात्मप्रकाश में नहीं? आगे गाथा है न? इसमें ही है न? इसकी गाथा आगे है। पूर्व के पुण्य के कारण वैभव मिले—यह धूल का। पाँच-

पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़। यह पूर्व के पुण्य के कारण, हों! इसके पुरुषार्थ के कारण नहीं।

मुमुक्षु : पहले इतने रुपये नहीं मिलते किसी को। अभी लोगों को ढ़ेर के ढ़ेर होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतने सब पैसे नहीं थे पहले। बात सच्ची। अब पैसे (दिखते हैं)। ममता बहुत बढ़ गयी। पहले दस हजार रुपये (हो) तो ऐसा बड़ा साहूकार सेठिया कहलाते थे। अभी तो लाख, दो लाख तो विधवा-रांड के पास होते हैं। आहाहा! उसकी कोई गिनती ही नहीं।

मुमुक्षु : हमारे पास लाख दो लाख न हो तो भगवान को .... दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा?

मुमुक्षु : मेरे पास लाख, दो लाख नहीं हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे करोड़ों, अरबोंपति अनन्त बार होकर, दुःखी होकर मरकर ढ़ोर में गया है। इसे खबर नहीं, भाई! इसने कभी आत्मा और क्या है यह और क्या यह लीला सब हो रही है? उसमें मैं कौन हूँ पृथक्, इसका कभी विचार भी नहीं किया। धर्म के नाम से भी बाहर के व्रत, तप, अपवास, भक्ति और पूजा और उसी और उसी में डुल गया। वह भी राग की क्रिया है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **वीतराग स्वसंवेदनलक्षण ज्ञान से...** आहाहा! सम्यग्ज्ञान जो मोक्ष का मार्ग, उस सम्यग्ज्ञान का लक्षण क्या? सम्यग्दर्शन, जो मोक्ष का मार्ग, उसका लक्षण शुद्धात्मा की रुचि और शुद्धात्मा को उपादेय करना है। अब मोक्ष का मार्ग जो दूसरा अवयव ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान कहना किसे? कि वीतराग स्वसंवेदन, वह विकल्प अर्थात् राग से रहित अपनी जो निर्मल, आत्मा की निर्मल दशा, उस निर्मल दशा द्वारा स्व अर्थात् अपने को, सं अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन करना, इसका नाम ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! शर्तें बड़ी। शास्त्र के पठन भी अनन्त बार किये। आहाहा! उसका भी ठिकाना कहाँ है अभी?

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान, जिसे मोक्ष के मार्ग का भाग-अवयव कहते हैं, वह ज्ञान अर्थात् क्या? वीतराग—राग बिना की दशा, **स्वसंवेदनलक्षण ज्ञान...** स्व अर्थात् अपने को जाने, ज्ञान से वेदन करे, उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! आहाहा! यह सब प्रोफेसर हो न तुम तो बड़े संस्कृत के? संस्कृत के प्रोफेसर हैं। यह सब संस्कृत के प्रोफेसर अज्ञानी मूढ है। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् है, ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से स्वभाववान है, उसे उसके स्वभाव से—स्वभाव की पर्याय से—स्वसंवेदन से जाने, उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। भाषा तो सादी आती है, परन्तु अब भाव दूसरे क्या लाना? आहाहा!

अरे! कभी दरकार की नहीं। मेरा क्या होगा? इस देह से छूटकर कहाँ जाऊँगा? यह आत्मा कहीं मर जाता है? देह छूटा (तो) यह आत्मा मरता है? आत्मा जन्मता है? आत्मा तो है, वह है अनादि से। आहाहा! शरीर का संयोग हो, उसे जन्म कहते हैं, शरीर का वियोग हो, उसे मरण कहते हैं। भगवान आत्मा जन्मता भी नहीं और मरता भी नहीं। आहाहा! वह तो वस्तु है अन्दर। उसका ज्ञान... आहाहा! वह **ज्ञान से जानता है...** दो बोल हुए। फिर व्यवहार डालेंगे भले, परन्तु व्यवहार जानना, ऐसा कहेंगे। आदरना, ऐसा नहीं कहेंगे। जानना कहेंगे और जानने से तुझे आगे परम्परा मोक्ष होगा, इतनी बात करेंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह अंग और नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ा। वह तो परलक्ष्यी है। अपना ज्ञान नहीं आया। यह भगवान ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान नहीं आया। आहाहा! बापू! कठिन बातें, भाई! त्रिलोकनाथ जिनेश्वर तीर्थंकरदेव परमात्मा इन्द्रों और गणधरों की सभा में परमात्मा यह कहते थे। वह यह बात है। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। सीमन्धर भगवान तीर्थंकररूप से विराजते हैं। वे यह बात करते हैं। दिव्यध्वनि में यह बात आती है। यह बात मुनि लाये और दुनिया को कहते हैं। समझ में आया?

दो बोल हुए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, जो धर्मरूप मोक्ष का मार्ग, उसकी व्याख्या की। अब तीसरा, चारित्र। **जब सब रागादिक विकल्पों के त्याग से...** पुण्य और पाप दोनों राग हैं। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह पाप है और दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप, यह पुण्य का विकल्प पुण्य है। दोनों राग है। आहाहा! इन दोनों राग से रहित होकर। **सब रागादिक...** कहा न? **सब रागादिक...** अर्थात् पुण्य-पाप के दोनों रागादि भाव। उसके **विकल्पों के त्याग से...** उस राग के विकल्प के त्याग से **निज स्वरूप में स्थिर होता है,...** आहाहा! भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसमें रमणता—स्थिर होना, इसका नाम चारित्र है। चारित्र, यह नग्न हो गया या वस्त्र बदलकर बैठे और पंच महाव्रत लेकर बैठे, वह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा! है?

स्वरूप में स्थिर होता है, सो निश्चयरत्नत्रय को परिणत हुआ पुरुष... यह निश्चय अर्थात् सत्य, रत्नत्रय अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र से वह परिणत हुआ। उस पर्याय से परिणत हुआ—परिणमन हुआ। **पुरुष ही मोक्ष का मार्ग है।** पहले यह सिद्ध किया। आहाहा! शुद्ध उपादान, शुद्ध आत्मा की रुचि, ऐसा निश्चय हुआ, वह सम्यग्दर्शन, और शुद्ध आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान और सर्वथा राग, समस्त राग, कोई भी विकल्प राग के त्यागरूप अपने स्वरूप में—चैतन्यमूर्ति में स्थिर (होना), वह चारित्र। इस निश्चयरत्नत्रय से हुआ, परिणत हुआ। पर्याय में निश्चयरत्नत्रय से परिणमन किया। वह **पुरुष ही...** वह आत्मा ही **मोक्ष का मार्ग है।** वस्तु तो यह है। समझ में आया? है। सामने पाठ है न पुस्तक में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया... योगीन्द्रदेव हैं, मुनि हैं, आत्मज्ञानी, ध्यानी आनन्द में झूलनेवाले। मुनि तो दिगम्बर होते हैं, जंगल में रहते हैं और आत्मा का आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... ऐसे योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त मोक्ष के मार्ग से परिणत होते हुए, उनका शिष्य प्रभाकर भट्ट है, वह प्रश्न करता है कि **हे प्रभो! तत्त्वार्थश्रद्धान रुचिरूप सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष का मार्ग है, इसमें तो दोष नहीं...** तत्त्वार्थ अर्थात् अन्दर वस्तुस्वरूप शुद्ध आनन्द, उसकी रुचि और दृष्टि... छहढाला में आता है न? 'आत्मरुचि भला है।

मुमुक्षु : 'परद्रव्यते भिन्न आत्म...' ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। परद्रव्य से भिन्न। परद्रव्य से भिन्न। भगवान आत्मा

अन्दर। यह सब हड्डियाँ, शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, स्त्री, परिवार वे सब परद्रव्य हैं, वह तो मेरी दूसरी चीज़ है। उसमें आत्मा कहाँ है? अन्दर रागादि है, वह भी आत्मा नहीं। वह तो पुण्य के परिणाम, पुण्य-पाप के। वह परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि। भगवान पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु की रुचि-निश्चय, उसे आपने सम्यग्दर्शन कहा। समझ में आया?

इसमें तो दोष नहीं और तुमने कहा कि जो देखे वह दर्शन... अब यहाँ आया। '**पश्यति**' है न? '**पश्यति**' शब्द पाठ में है न? '**आत्मना पश्यति जानाति अनुचरति**' मूल में है। अब इस '**पश्यति**' की व्याख्या पूछता है। आपने तो आत्मा को ऐसे देखना और श्रद्धा करना, उसे समकित कहा। परन्तु पाठ में तो '**पश्यति**' है। **तुमने कहा कि जो देखे, वह दर्शन,...** समझे? आत्मा को देखे, वह समकित। **जाने, वह ज्ञान...** आहाहा! **और आचरण करे, वह चारित्र है।** उस स्वरूप में आनन्द में, अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में लीन होना, चरना, जमना वह चारित्र है। **सो यह देखनेरूप दर्शन कैसे मोक्ष का मार्ग हो सकता है?** यह प्रश्न। यह '**पश्यति**' में से निकाला है। देखनेमात्र से उसे **कैसे मोक्ष का मार्ग हो सकता है? और जो कभी देखने का नाम दर्शन कहो तो देखना अभव्य को भी होता है,...** अभव्य जीव है जीव। जैसे मठ और मूँग होते हैं न? मठ और मूँग गोरडु-गोरडु। मठ और मूँग और उड़द। उसमें गोरडु मूँग हो, गोरडु मठ हो, वह पानी से सीझता नहीं, कभी पिघलता नहीं। उसका चूरा करके पापड हो परन्तु पिघलता नहीं। ऐसे जीव अभव्य हैं। क्रियाकाण्ड बहुत करे, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, परन्तु वे आत्मा को देख नहीं सकते। यह प्रश्न किया है यहाँ। **देखने का नाम दर्शन कहो तो देखना अभव्य को भी होता है, उसके मोक्षमार्ग तो नहीं माना है?** भगवान ने तो अभव्य को मोक्षमार्ग कहा ही नहीं। वह आत्मा को देखता नहीं। और तुम कहते हो कि देखे, वह मोक्षमार्ग। तो अभव्य तो देखता नहीं। और दर्शन तो है। देखता है परन्तु आत्मा को देखता नहीं। **अभव्य को मोक्षमार्ग होवे, तो आगम से विरोध आवे।** देखे, इसलिए अभव्य को भी मोक्षमार्ग कहो तो आगम से विरोध आता है। १७१ पृष्ठ पर है। १७१ पृष्ठ है कुछ इसमें। 'आँखों से देखना... चारों में आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है।' इसमें ७१ में है। वह इसके साथ... फिर आयेगा १७१।

यहाँ शिष्य का प्रश्न है कि '**पश्यति**' आत्मा को देखे, वह दर्शन। **तो देखना अभव्य को भी होता है, उसके मोक्षमार्ग तो नहीं माना है?** भगवान तो मोक्षमार्ग का इनकार करते हैं। आगम से विरुद्ध है। अभव्य को कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। **आगम में तो यह निश्चय है कि अभव्य को मोक्ष नहीं होता।**

उसका समाधान यह है कि अभव्यों के देखनेरूप जो दर्शन है, वह बाह्यपदार्थों का है,... देखो! अभव्य देखता है, वह बाह्य पदार्थ को देखता है। अन्दर का नहीं। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप सच्चिदानन्द ऐसा उसका स्वभाव है, उसे वह देखता नहीं। बाह्य को देखता है। **अन्तरंग शुद्धात्मतत्त्व का दर्शन तो अभव्यों के नहीं होता,...** अन्तरंग शुद्धात्मा, रागरहित पर्याय से आत्मा को देखना, वह अभव्य को नहीं होता। आहाहा! अन्तरंग। वह बाह्य की सामग्री ली। **शुद्धात्मतत्त्व का दर्शन तो अभव्यों के नहीं होता, उसके मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों का उपशम क्षयोपशम क्षय नहीं है,...** उसे मिथ्यात्व आदि का नाश कभी नहीं होता। वह सदा मिथ्यादृष्टि है। **तथा शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन भी उसके नहीं है,...** शुद्धात्मा। आहाहा! पूर्ण पवित्र अखण्ड ज्ञानघन, विज्ञानघन आत्मा की **रुचिरूप सम्यग्दर्शन भी उसके नहीं है,...**

मुमुक्षु : कर्मों का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मों का कारण कहाँ आया? श्रद्धा का कारण आया। मिथ्याश्रद्धा का कारण आया। मिथ्याश्रद्धा के कारण से।

शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन भी उसके नहीं है, और चारित्रमोह के उदय से वीतरागचारित्ररूप निर्विकल्प शुद्धात्मा का सत्तावलोकन भी उसके कभी नहीं है। आहाहा! राग के कारण से, चारित्रमोह है न राग? **वीतराग चारित्ररूप निर्विकल्प शुद्धात्मा...** रागरहित शुद्धात्मा निर्विकल्प जो है, उसका **सत्तावलोकन भी उसके कभी नहीं है।** उसकी सत्ता का ज्ञान उसे कभी नहीं होता। आहाहा! अपने शुद्धस्वभाव की सत्ता, शुद्धस्वभाव का असितत्व, उसकी श्रद्धा तो अभव्य को कभी नहीं होती। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वभाववाला है। आहाहा! राग पुण्य-पाप है, वह तो मलिनता पर है। आत्मा अन्दर सत्ता, पूर्ण सत्ता, वह तो शुद्ध

पवित्र है। ऐसे **शुद्धात्मा का सत्तावलोकन भी उसके कभी नहीं है।** आहाहा! शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा की श्रद्धा तो अभव्य को कभी नहीं होती। आहाहा! बहुत सरस बात है। १३वीं गाथा। '**पश्यति**' की व्याख्या की।

तात्पर्य यह है निश्चयकर अभेदरत्नत्रय को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है। भावार्थ और तात्पर्य, इसका यह रहस्य है कि **निश्चयकर अभेदरत्नत्रय को परिणत...** अभेदरत्नत्रय परिणत। अभेदरत्नत्रय का अर्थ शुद्ध वस्तु की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह अभेद, यह निश्चयरत्नत्रय। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयकर अभेदरत्नत्रय को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसा ही द्रव्यसंग्रह में साक्षीभूत गाथा कही है।** लो! गाथा कही है। द्रव्यसंग्रह-४०। द्रव्यसंग्रह की ४०वीं गाथा। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने द्रव्यसंग्रह बनाया है, उसकी यह ४०वीं गाथा है।

उसका अर्थ ऐसा है कि रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर अन्य (दूसरे) द्रव्यों में नहीं रहता,... क्या कहते हैं? कि भगवान आत्मा पवित्र जो त्रिकाली शुद्ध है, शुद्ध, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह अपने द्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य में नहीं है। **दूसरे द्रव्यों में नहीं रहता, इसलिए मोक्ष का कारण उन तीनमयी निज आत्मा ही है।** लो! आहाहा! मूल चीज़ आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। उसका कभी विचार नहीं किया। आत्मा-आत्मा (उसे छोड़कर) सब बातें। व्रत करो, तप करो, दान करो, दया करो, भक्ति करो, यात्रा करो। वर छोड़कर बारात। जान समझे? बारात। वर नहीं और बारात जोड़ दी। उसी प्रकार आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और सब क्रियाकाण्ड में जोड़ दिया। उसमें जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह कुछ मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा!

रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर... भगवान आत्मा... अनजाने व्यक्ति को तो यह सुनना, यह क्या कहते हैं? कभी सुना न हो और मूढ़ता में ऐसी की ऐसी जिन्दगी व्यतीत की हो। मणिभाई! यह तो थोड़े दिन से चढ़ते हैं न! यह तो एकदम अनजाने, अभी कोई शब्द ही कान में न पड़े हों। क्या कहते हैं यह चीज़? क्या कहते हैं यह धर्म? आहाहा! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और निर्विकल्प वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान और रागादि रहित चारित्र। क्या कहते हैं यह? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि द्रव्यसंग्रह नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती नग्न दिगम्बर मुनि, उनकी साक्षी दी है कि इसमें भी यह कहा है कि **रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में नहीं रहता,...** आहाहा! अपना निज स्वरूप जो शुद्ध चैतन्यघन, उसकी रुचि, ज्ञान और रमणता वह तो अपनी पर्याय है। आत्मा को छोड़कर विकल्प और पर में वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए मोक्ष का कारण उन तीनमयी निज आत्मा ही है।** आहाहा! दर्शन, ज्ञान, चारित्र। '**अप्पाणं चेव णिच्छयदो**' समयसार की १६वीं गाथा, नहीं? आत्मा स्वयं... आहाहा! इस देह से भिन्न, कर्म से भिन्न—पृथक् और दया, दान, विकल्प के राग से भिन्न। आहाहा! किसे खबर कहाँ है? ऐसा जो शुद्ध आत्मा नित्यानन्द प्रभु अनादि-अनन्त, वह आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है। उन **तीनमयी निज आत्मा...** उन तीनमयी। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनमय आत्मा। आहाहा! वह मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : यह तो नहीं दिखता....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता है, यही दिखता है। नहीं दिखता—ऐसा किसने निर्णय किया? नहीं दिखता—ऐसा किसने निर्णय किया? यह ही दिखता है। आहाहा! मैं दिखता नहीं। यह दिखता नहीं—ऐसा निर्णय किसने किया? वह निर्णय करनेवाला ही दिखता है। शान्तिभाई! लोगों को विचार कहाँ है? यह पूरी प्रथा बदल गयी। पूरी मोक्ष के मार्ग की... वीतराग परमेश्वर जो सत्य मोक्ष का मार्ग कहते हैं, वह बात पूरी फेरफार... फेरफार (हो गयी)। जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, वह वस्तु। जन्म-मरण हुआ करे, स्वर्ग और नरक। यह पुण्य-पाप से स्वर्ग-नरक मिलते हैं। आहाहा!

इसलिए मोक्ष का कारण उन तीनमयी निज आत्मा... निज आत्मा। भगवान परमात्मा की श्रद्धा नहीं, वह तो व्यवहार—राग है। यह चौदहवें में डालेंगे। जानना, व्यवहार को जानना। यह १३ गाथा हुई।

गाथा - १४

अथ भेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारमोक्षमार्गं दर्शयति -

१३७) जं बोल्लइ ववहारु-णउ दंसणु णाणु चरित्तु।
तं परियाणहि जीव तुहुँ जें परु होहि पवित्तु।।१४।।

यद् ब्रूते व्यवहारनयः दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्।
तत् परिजानीहि जीव त्वं येन परः भवसि पवित्रः।।१४।।

जं इत्यादि। जं यत् वोल्लइ ब्रूते। कोऽसौ कर्ता। ववहारु-णउ व्यवहारनयः। यत् किं ब्रूते। दंसणु णाणु चरित्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं तं पूर्वोक्तं भेदरत्नत्रयस्वरूपं परियाणहि परि समन्तात् जानीहि। जीव तुहुं हे जीव त्वं कर्ता। जें येन भेदरत्नत्रयपरिज्ञानेन परु होहि परः उत्कृष्टो भवसि त्वम्। पुनरपि किंविशिष्टस्त्वम्। पवित्तु पवित्रः सर्वजनपूज्य इति। तद्यथा। हे जीव सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपनिश्चयरत्नत्रयलक्षणनिश्चयमोक्षमार्गसाधकं व्यवहारमोक्षमार्गं जानीहि। त्वं येन ज्ञातेन कथंभूतो भविष्यसि। परंपरया पवित्रः परमात्मा भविष्यसि इति। व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गस्वरूपं कथ्यते। तद्यथा। वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादि-सम्यक्श्रद्धान-ज्ञानव्रताद्यनुष्ठानरूपो व्यवहारमोक्षमार्गः निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञाना-नुष्ठानरूपो निश्चयमार्गः। अथवा साधको व्यवहारमोक्षमार्गः, साध्यो निश्चयमोक्षमार्गः। अत्राह शिष्यः। निश्चयमोक्षमार्गो निर्विकल्पः तत्काले सविकल्पमोक्षमार्गो नास्ति कथं साधको भवतीति। अत्र परिहारमाह। भूतनैगमनयेन परंपरया भवतीति। अथवा सविकल्पनिर्विकल्प-भेदेन निश्चयमोक्षमार्गो द्विधा, तत्रानन्तज्ञानरूपोऽहमित्यादि सविकल्परूपसाधको भवति, निर्विकल्पसमाधिरूपो साध्यो भवतीति भावार्थः।। सविकल्पनिर्विकल्प-निश्चयमोक्षमार्गविषये संवाद गाथामाह - 'जं पुण सगयं तच्चं सवियप्पं होइ तह य अवियप्पं। सवियप्पं सासवयं णिरासवं विगय संकप्पं।' ।।१४।। एवं पूर्वोक्तैकोनविंशतिसूत्रप्रमित-महास्थलमध्ये निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गप्रतिपादनरूपेण सूत्रत्रयं गतम्। इदानीं चतुर्दशसूत्रपर्यन्तं व्यवहारमोक्षमार्गप्रथमावयवभूतव्यवहारसम्यक्त्वं मुख्यवृत्या प्रतिपादयति। तद्यथा -

---

आगे भेदरत्नत्रयस्वरूप-व्यवहार वह परम्पराय मोक्ष का मार्ग है, ऐसा दिखलाते हैं। -

दर्शन ज्ञान चरित को नय-व्यवहार कहे शिवमार्ग सदा।
हे आत्मन्! तू जान उसे जिससे हो परम पवित्र दशा।।१४।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [व्यवहारनयः] व्यवहारनय [यत्] जो [दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्] दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को [ब्रूते] कहता है, [तत्] उस व्यवहाररत्नत्रय को [त्वं] तू [परिजानीहि] जान, [येन] जिससे कि [परः पवित्रः] उत्कृष्ट अर्थात् पवित्र [भवसि] होवे।

भावार्थ :- हे जीव, तू तत्त्वार्थ का श्रद्धान, शास्त्र का ज्ञान, और अशुभ क्रियाओं का त्यागरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहारमोक्ष-मार्ग को जान, क्योंकि ये निश्चयरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्ष-मार्ग के साधक हैं, इनके जानने से किसी समय परम पवित्र परमात्मा हो जायगा। पहले व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति हो जावे, तब ही निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति हो सकती है, इसमें संदेह नहीं है। जो अनन्त सिद्ध हुए और होवेंगे वे पहले व्यवहाररत्नत्रय को पाकर निश्चयरत्नत्रयरूप हुए। व्यवहार साधन है, और निश्चय साध्य है। व्यवहार और निश्चय मोक्ष-मार्ग का स्वरूप कहते हैं -वीतराग सर्वज्ञदेव के कहे हुए छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय, इनका श्रद्धान, इनके स्वरूप का ज्ञान और शुभ क्रिया का आचरण, यह व्यवहारमोक्ष-मार्ग है, और निज शुद्ध आत्मा का सम्यक् श्रद्धान स्वरूपका ज्ञान, और स्वरूप का आचरण यह निश्चयमोक्ष-मार्ग है। साधन के बिना सिद्धि नहीं होती, इसलिये व्यवहार के बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं होती। यह कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया कि हे प्रभो; निश्चयमोक्ष-मार्ग जो निश्चयरत्नत्रय वह तो निर्विकल्प है, और व्यवहाररत्नत्रय विकल्प सहित है, सो वह विकल्प-दशा निर्विकल्पपने की साधन कैसे हो सकती है? इस कारण उसको साधक मत कहो। अब इसका समाधान करते हैं। जो अनादिकाल का यह जीव विषय कषायों से मलिन हो रहा है, सो व्यवहार-साधन के बिना उज्जल नहीं हो सकता, जब मिथ्यात्व अव्रत कषायादिक की क्षीणता से देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करे, तत्त्वों का जानपना होवे, अशुभ क्रिया मिट जावे, तब गुरु वह अध्यात्म का अधिकारी हो सकता है। जैसे मलिन कपड़ा धोने से रँगने योग्य होता है, बिना धोये रंग नहीं लगता, इसलिये परम्पराय मोक्ष का कारण व्यवहाररत्नत्रय कहा है। मोक्ष का मार्ग दो प्रकार का है, एक व्यवहार, दूसरा निश्चय, निश्चय तो साक्षात् मोक्ष-मार्ग है, और व्यवहार भूतनयगमनय से परम्पराय है। अथवा सविकल्प निर्विकल्प के भेद से निश्चयमोक्षमार्ग भी दो प्रकार का है। जो मैं अनंतज्ञानरूप हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ, ऐसा 'सोऽहं' का चिंतवन है, वह तो सविकल्प निश्चय मोक्षमार्ग है, उसको साधक कहते हैं, और जहाँ पर कुछ चिंतवन नहीं है, कुछ बोलना नहीं है, और

कुछ चेष्टा नहीं है, वह निर्विकल्पसमाधिरूप साध्य है, यह तात्पर्य हुआ। इसी कथन के बारे में द्रव्यसंग्रह की साक्षी देते हैं। 'मा चिट्ठह' इत्यादि। सारांश यह है, कि हे जीव, तू कुछ भी काय की चेष्टा मत कर, कुछ बोल भी मत, मौन से रहे, और कुछ चिंतवन मत कर। सब बातों को छोड, आत्मा में आपको लीन कर, यह ही परमध्यान है। श्रीतत्त्वसार में भी सविकल्प-निर्विकल्प निश्चयमोक्ष-मार्ग के कथन में यह गाथा कही है कि 'जं पुण सगयं' इत्यादि। इसका सारांश यह है कि जो आत्मतत्त्व है, वह भी सविकल्प-निर्विकल्प के भेद से दो प्रकार का है, जो विकल्प सहित है, वह तो आस्रव सहित है, और जो निर्विकल्प है, वह आस्रव रहित है ।।१४।।

इस तरह पहले महास्थल में अनेक अंतस्थलों में से उन्नीस दोहों के स्थल में तीन दोहों से निश्चय व्यवहार मोक्ष-मार्ग का कथन किया।

नोट - इसी गाथा का शब्दश: संस्कृत के गुजराती अनुवाद का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है। (प्रवचन में गुरुदेवश्री ने इस पर भी स्पष्टीकरण किया है, इसलिए यहाँ यह अनुवाद दिया जा रहा है।)

अब भेदरत्नत्रयात्मक व्यवहारमोक्षमार्ग को दर्शाते हैं :-

भावार्थ:-हे जीव! तू सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चय-मोक्षमार्ग के साधक ऐसे व्यवहारमोक्षमार्ग को जान-कि जिसे जानने से तू परम्परा से पवित्र परमात्मा होगा।

व्यवहार-निश्चयमोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं। वह इस प्रकार - वीतराग सर्वज्ञप्रणीत छह द्रव्यादि का सम्यक् श्रद्धान, उनका सम्यग्ज्ञान और व्रतादि का अनुष्ठानरूप व्यवहारमोक्षमार्ग है; निज शुद्ध आत्मा के सम्यक्श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् अनुष्ठानरूप निश्चयमोक्षमार्ग है; अथवा व्यवहारमोक्षमार्ग साधक है; निश्चयमोक्षमार्ग साध्य है।

यह कथन सुनकर यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया कि निश्चयमोक्षमार्ग तो निर्विकल्प है, उस समय (निर्विकल्प मोक्षमार्ग के समय तो) सविकल्प मोक्षमार्ग तो होता नहीं। तो फिर व्यवहारमोक्षमार्ग किस प्रकार साधक है? यहाँ प्रश्न का परिहार करते हैं :- भूतनैगमनय से परम्परा से (साधक) है। अथवा निश्चयमोक्षमार्ग सविकल्प-निर्विकल्प के भेद से दो प्रकार का है। वहाँ 'मैं अनन्त ज्ञानरूप हूँ, इत्यादि सविकल्परूप साधक है और निर्विकल्प समाधिरूप साध्य है, ऐसा भावार्थ है।'

सविकल्प-निर्विकल्प निश्चयमोक्षमार्ग के विषय में इसी अर्थ की साक्षीभूत (मेलवाली) गाथा (श्री देवसेनकृत श्री तत्त्वसार गाथा-५) में भी कहा है कि -

जं पुण सगयं तच्चं सवियप्पं होइ तह य अवियप्पं।
सवियप्पं सासवयं णिरासवं विगय संकप्पं।।

(अर्थ :- और जो आत्मतत्त्व है, वह भी सविकल्प और निर्विकल्प के भेद से दो प्रकार का है। उसमें जो सविकल्प है, वह तो आस्रवसहित है और जो निर्विकल्प है, वह आस्रवरहित है।) १४।

गाथा-१४ पर प्रवचन

आगे भेदरत्नत्रयरूप-व्यवहार वह परम्परा मोक्ष का मार्ग है,... अब यहाँ व्यवहार बताते हैं।

मुमुक्षु : परम्परा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा का अर्थ उससे रहित होता है। यहाँ लगे हैं न बहुत सब। यह तो सम्यग्दृष्टि निश्चय है, उसे यह व्यवहाररत्नत्रय परम्परा मोक्ष के कारण का आरोप दिया जाता है। आहाहा! राग है, वह तो आस्रव है। यह कहेंगे अन्दर। निश्चय और व्यवहार के वापस दो भेद करेंगे। अन्दर निश्चय के दो भेद करेंगे। निर्विकल्प स्वरूप अन्दर, वह निश्चय है और विकल्प से विचार करता है, वह भी निश्चय है, परन्तु वह विकल्प है, वह आस्रव है। आहाहा! पृष्ठ लिखा है न तब। यह पृष्ठ लिखा है, १४वीं गाथा का।

मुमुक्षु : इसका गुजराती.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती किया हुआ है।

भेदरत्नत्रयरूप-व्यवहार वह परम्परा... अर्थात्? जो भगवान शुद्ध चैतन्य की निश्चयदृष्टि, निश्चयज्ञान, निश्चयरमणता, उसे जो व्यवहार हो, उसकी बात है। अकेले अज्ञानी का व्यवहार, उसे परम्परा नहीं होता। समझ में आया? क्योंकि निश्चय है, जहाँ आत्मा की श्रद्धा—ज्ञान और रमणता, वहाँ पूर्णता नहीं होती, उसे यह व्यवहार आये

बिना नहीं रहता। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्रज्ञान, भक्ति, यात्रा ऐसा भाव आवे, परन्तु वह राग है। उसका ज्ञान निमित्त से कराया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा न? व्यवहाररत्नत्रय वह मोक्षमार्ग नहीं, परन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से उसका आरोप करके कथन किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। टोडरमलजी (कृत)। व्यवहार अभूतार्थ है। वह मोक्षमार्ग है नहीं, परन्तु आरोप से निमित्त का ज्ञान कराने के लिये, शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में अपूर्णता के कारण वह राग-व्यवहार अन्दर होता है। इस राग को मोक्षमार्ग कहा है, यह निरूपण—कथन की अपेक्षा से है। वास्तविक यह है नहीं। यह टोडरमलजी सातवें अध्याय में (कहते हैं)। आहाहा! यह जिस दिन पढ़ा था, (संवत्) १९८२ के वर्ष में। ८२, हों! ओहोहो! यह वह लेखन! ऐसी बात कहीं है नहीं। वस्तुस्थिति यह है। राजकोट में (पढ़ा था)। (संवत्) १९८२ कितने वर्ष हुए? ५०। ५० वर्ष पहले की बात है। १४ (गाथा)।

१३७) जं बोल्लइ ववहारु-णउ दंसणु णाणु चरित्तु।
तं परियाणहि जीव तुहुँ जें परु होहि पवित्तु॥१४॥

भाषा देखो न! '**जं बोल्लइ**' कहते हैं, कथन करते हैं, ऐसा शब्द है। निरूपण है, ऐसा शब्द है। उसे जान, ऐसा कहते हैं, हों! पाठ में तो ऐसा कहते हैं। जान। जिसे अन्तर आत्मा में शुद्ध चैतन्य भगवान की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता (हुए हैं), उसे अभी राग बाकी है, व्यवहार। उसे '**बोल्लइ**' उसका निरूपण है कि व्यवहाररत्नत्रय है। आहाहा! भाषा देखो न! '**तं परियाणहि**' उसे जान। निश्चयवाले को व्यवहार आता है, उसे तू जान। और उससे तेरी पवित्रता फिर पूर्ण होगी, ऐसा।

हे जीव... है? **व्यवहारनय जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को कहता है,...** देखा! '**ब्रूते**' बोलता है, कहता है। आहाहा! **उस व्यवहाररत्नत्रय को तू जान,...** जान। ज्ञान करना पड़े न? ज्ञान तो होता है न? व्यवहार आता है न बीच में? पूर्ण वीतराग न हो, तब तक निश्चय के भानवाले को भी यह व्यवहार आये बिना रहता नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, ऐसा भाव आता है। वह पुण्यभाव है। उसे व्यवहारनय से मोक्षमार्ग का आरोप से कथन करके आता है। आहाहा! समझ में आया?

उस व्यवहाररत्नत्रय को तू जान, जिससे कि उत्कृष्ट अर्थात् पवित्र होवे। पश्चात्

जान, यह व्यवहार है—ऐसा जानकर, व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसकी सन्धि की है। आहाहा! निश्चय अपना आत्मा, उसके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भूमिका में व्यवहार होता है। जाना हुआ प्रयोजवान, इसलिए '**परियाण**' कहा है। तीसरे पद में। जानना। और उस जानने से तुझे उसे छोड़कर परम्परा मुक्ति होगी। समझ में आया? आहाहा! **जिससे उत्कृष्ट अर्थात् पवित्र होवे।** भाषा तो ऐसी है। व्यवहारनय का कथन है न? उस व्यवहार को जान, **जिससे कि उत्कृष्ट अर्थात् पवित्र होवे।** पूर्ण दशा तुझे प्राप्त होगी। यह व्यवहारनय का कथन। निमित्त का ज्ञान कराते हैं। ऐसा व्यवहार होता है, निमित्तरूप से होता है। उससे परम्परा अर्थात् उसे छोड़कर होगा, इसलिए उसे परम्परा कहा गया है।

भावार्थ :- हे जीव! तू तत्त्वार्थश्रद्धान... यह व्यवहार की बात है, हों! पहले आयी थी तत्त्वार्थश्रद्धान की निश्चय की बात आयी थी। **तत्त्वार्थश्रद्धान रुचिरूप निश्चय सम्यग्दर्शन...** १३ में। यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार, विकल्प-राग है। **शास्त्र का ज्ञान...** यह विकल्प-राग है। **और अशुभ क्रियाओं का त्यागरूप...** यह यहाँ है शुभभाव, शुभ-पुण्यभाव। अशुभ का त्याग और पुण्यभाव। यह **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहारमोक्षमार्ग को जान,...** उसे व्यवहारमोक्षमार्ग जान। निरूपण अपेक्षा से उसे कहने में आया है। आहाहा! मोक्षमार्ग दो नहीं हैं। मोक्षमार्ग का निरूपण—कथन दो प्रकार से है। मोक्षमार्गप्रकाशक में यह सब आया है। टोडरमलजी का। यह स्पष्टीकरण है। उसका निरूपण अर्थात् बोल्लई... कहा न? कथन है। आहाहा! अब इसमें सब विवाद उठे हैं—झगड़े। वे और टोडरमलजी का माने नहीं। भाई! उन्होंने तो शास्त्र का स्पष्टीकरण किया है। टोडरमलजी ने तो शास्त्र में जो बात संक्षेपरूप से, सामान्यरूप से थी, उसे खोलकर स्पष्ट किया है। आहाहा! यह बात है। उनके घर की बात नहीं। परन्तु अब क्या हो अभी? उन्हें उड़ा दिया, खोटा ठहराया कि टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं, ऐसा कहा। अर र र! प्रभु-प्रभु! तुझे शोभा नहीं देता, भाई! जैनदर्शन में भगवान! ऐसा कहाँ से कहा तूने प्रभु? आहाहा!

क्योंकि ये निश्चयरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग के साधक हैं,... व्यवहार साधक कहा जाता है। साधक भी उपचार से कथन है। निमित्त का ज्ञान कराने को निश्चय

मोक्षमार्ग को व्यवहार साधक है, यह निरूपण-कथन उपचार से कथन किया गया है। शास्त्र के अर्थ करने में बड़ा अन्तर पड़ा है न! ऐसा आवे वहाँ ग्राहक हो जाये बड़े। तो पहली तेरहवीं गाथा में कहा, वह क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है उसे अभी। जिसे आत्मज्ञान-दर्शन-चारित्र हुआ, उसे वीतरागता नहीं अर्थात् राग है, उसे व्यवहार से साधक कहकर उसका ज्ञान कराया है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण ८, शनिवार
दिनांक-१६-१०-१९७६, गाथा-१४, प्रवचन-१०६

(नोट - यह प्रवचन ५२ मिनिट ४६ सेकेण्ड का है। अधूरा चालू होता है।)

भगवान पूर्ण शाश्वत, उसका स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष वेदन होना, वह ज्ञान है और उसमें रमणता। आनन्दस्वरूप भगवान... सूक्ष्म बात है, प्रभु! उसमें लीनता-रमणता होना, वह चारित्र है। परन्तु यह तीन जो है, ये तीनों हैं तो निश्चय निर्विकल्प हैं, परन्तु तीन भेद है, वे पर्यायनय से कहे गये हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विकल्पवाला व्यवहार नहीं, यह अब आयेगा। समझ में आया? यह कल कहा था न? प्रवचनसार की २४२ गाथा है। उसमें गाथा में ऐसा कहा है कि पर्यायनय से जो तीन—दर्शन, ज्ञान, चारित्र—निर्विकल्प दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी पर्याय, वे तीन पर्यायनय से कहने में आये हैं। २४२ गाथा, प्रवचनसार में है। और निश्चय से तो आत्मा में अभेद एकाग्रता, वह निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार।

यह (संयतत्वरूप अथवा श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग) भेदात्मक होने से, 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है' ऐसा पर्यायप्रधान व्यवहारनय से उसका प्रज्ञापन है... २४२। सूक्ष्म है, भाई! समझ में आया? बताओ, है? प्रवचनसार। तत्त्वार्थसूत्र में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग (कहा है), वह पर्यायनय से कथन है।

मुमुक्षु : वह पूरा शास्त्र ही पर्याय का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पूरा पर्याय का ही शास्त्र है।

यहाँ यह कहा, देखो! संस्कृत है। '**भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन, एकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधानेन**' क्या कहते हैं? आहाहा! अपना चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्ध शाश्वत् वस्तु शाश्वत् है, है और है। आदि-मध्य-अन्तरहित। उसकी दृष्टि निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान और अन्तर में रमणता, यह तीन भेद पर्यायनय से-व्यवहारनय से कहने में आये हैं। आया? यह संस्कृत है न?

देखो! **'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग' इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन।** आहाहा! ऐसा मार्ग है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य पूर्ण आनन्दघन पर्याय के भेद बिना की चीज़, उसकी अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और रमणता—वीतरागी पर्याय, पर्यायनय से उसे व्यवहारनय कहा गया है। आहाहा!

'एकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन' संस्कृत है। **'एकाग्र्यं मोक्षमार्ग'** द्रव्य में एकाग्र। भेद नहीं। **'इत्याभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन, विश्वस्यापि भेदाभेदात्मकत्वात्तदुभयमिति प्रमाणेन प्रज्ञप्तिः'** तीन बोल कहे। क्या कहा? भगवान आत्मा शरीर, वाणी से भिन्न है, राग से भिन्न है। परन्तु यहाँ तो एक समय की पर्याय में उस पर्याय से भी द्रव्य भिन्न है। समझ में आया? तो वह द्रव्य जो है, उसमें भेद बिना की एकाग्रता, वह निश्चयप्रधान द्रव्यप्रधान निश्चयधर्म—निश्चयमोक्षमार्ग है। और वह द्रव्य जो वस्तु है, उसकी पर्यायप्रधान सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो सत्य निश्चय, हों! परन्तु पर्याय है, इसलिए पर्यायप्रधान, वह व्यवहारनय से उसे मोक्षमार्ग कहा है। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी है और फिर गाथा आ गयी। पहले कहा, व्याख्यान बन्द करो, पश्चात् फिर स्वाध्याय चलेगी। भाई कह गये थे। श्रीचन्दजी। आहाहा!

भगवान! मार्ग तो ऐसा है, भाई! समझ में आया? यह तो संस्कृत है। और पश्चात्.... देखो! **पर्यायप्रधान व्यवहारनय से उसका प्रज्ञापन है।** यह तो व्यवहारनय। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निश्चयपर्याय है, वह भी पर्यायप्रधान व्यवहारनय से कथन है। आहाहा! और **अभेदात्मक होने से 'एकाग्रता मोक्षमार्ग है' ऐसा द्रव्यप्रधान निश्चयनय से उसका प्रज्ञापन है...** आहाहा! पहले तो लोगों को समझना (कठिन)। और **समस्त पदार्थ भेदाभेदात्मक होने से 'वे दोनों मोक्षमार्ग हैं'....** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में एकाग्रता, वह प्रमाण है। समझ में आया?

२४२ में तीन बोल लिये। अपना स्वरूप जो पूर्ण आनन्दकन्द रागरहित, ऐसे स्वभाव की एकाग्रता, एकाग्रता, भेद नहीं, वह एकाग्रता द्रव्यप्रधान निश्चयनय मोक्षमार्ग है और वह पर्याय जो है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय, सत्य मोक्ष का मार्ग, वह पर्यायप्रधान वह व्यवहारनय का मोक्षमार्ग है और दोनों एक साथ ज्ञात होते हैं,

वह प्रमाण है। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली में एकाग्रता, इसका निश्चय का भी ज्ञान करना और पर्याय का—वीतरागी पर्याय का ज्ञान करना, वह व्यवहार का (ज्ञान)। दोनों का ज्ञान। परन्तु निश्चय रखकर। एकाग्रता जो है, द्रव्य की एकाग्रता है, उस निश्चय को रखकर पर्याय की व्यवहार की मिलान करना। परन्तु उसे रखकर मिलान की तो दोनों को प्रमाण कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? प्रमाण में निश्चय तो अन्दर रखा है। साथ में पर्याय की मिलान किया है, इसलिए दोनों को प्रमाण कहा गया है।

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आता? फिर से कहते हैं। आहा! अभी तो विशेष प्रमाण में भी निषेध करना है।

पहले ऐसा कहा है कि जो चैतन्यवस्तु अखण्ड अनन्त गुण का, अनन्त शक्ति का एकरूप द्रव्य। गुण और गुणी का भेद भी जिसमें नहीं, ऐसी जो एकरूप वस्तु है, उसमें एकाग्रता करना, वह द्रव्यप्रधान निश्चयनय से मोक्षमार्ग है। और उस द्रव्य में पर्याय लेना, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागीपर्याय, आनन्द की पर्याय, अनाकुल शान्ति के वेदनवाली तीनों पर्यायें, वह पर्यायप्रधानता से व्यवहारनय से उसे मोक्षमार्ग कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चयमोक्षमार्ग को व्यवहारनय....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा। पण्डितजी! और दोनों का साथ में ज्ञान करना, परन्तु पहले (निश्चय) रखकर। वस्तु जो अखण्ड में एकाग्रता को निश्चय को लक्ष्य में रखकर, पर्याय से व्यवहारनय से जो कहा, उसकी मिलान किया तो उसे प्रमाणज्ञान कहा जाता है। आहाहा! शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

सोलहवीं गाथा में तो ऐसा कहा, समयसार कलश में, दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो पर्याय है, वह मेचक है। पर्याय—सच्ची पर्याय, हों! त्रिकाली भगवान आत्मा वस्तु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता, उस निर्मल वीतरागी पर्याय को वहाँ मेचक कहा है। मेचक अर्थात् व्यवहार है। और त्रिकाली अभेद अखण्ड का अनुभव, वह निश्चय है।

वह अमेचक है। दो बात। राजमलजी की टीका में इसका अर्थ ऐसा लिया है कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य अखण्ड, उसकी पर्याय से कहना कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, इस निर्मल पर्याय से लेना, वह भी मेचक अर्थात् मलिन है। विकल्प नहीं। यह पर्याय के तीन भेद, वह व्यवहार मलिन है। आहाहा! कलशटीका में है। लेना है? (कलश-१६)।

चेतनद्रव्य मलिन है। मेचक का अर्थ मलिन किया, पण्डितजी! आहाहा! गजब बात है। **किसकी अपेक्षा से मलिन है? सामान्यपने अर्थग्राहक शक्ति का नाम दर्शन है, विशेषपने अर्थग्राहक शक्ति का नाम ज्ञान है और शुद्धत्वशक्ति का नाम चारित्र है—ऐसा शक्तिभेद करने से एक जीव तीन प्रकार से होता है, इसलिए मलिन कहने का व्यवहार है।** आहाहा! नवलचन्दभाई! यह थोड़ी सूक्ष्म बात थी। कहा, पण्डितजी है, बात रख दो। आहाहा! विषय ऐसा है। है?

चेतनद्रव्य निर्मल है; किसकी अपेक्षा से निर्मल है? 'स्वयम् एकत्वतः' द्रव्य का सहज निर्भेदपना होने से;—ऐसा निश्चयनय कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? और उसमें तो फिर लिया है, स्वात्मानुभवमनन (ग्रन्थ) है। धर्मदास क्षुल्लक का स्वात्मानुभवमनन। है यहाँ? नहीं होगा। स्वात्मानुभवमनन, सम्यग्ज्ञान दीपिका में जो स्त्री के सब प्रश्न उठे हैं न? वह सम्यग्ज्ञान दीपिका धर्मदास क्षुल्लक का है। दिगम्बर धर्मदास क्षुल्लक। ज्ञानी की वाणी है। वह सोनगढ़ की नहीं। सोनगढ़ की पुस्तक भी नहीं। लोगों को तत्त्व की कुछ खबर नहीं।

उस सम्यग्ज्ञान दीपिका में लिया है, वैसा ही प्रश्न स्वात्मानुभवमनन में लिया है। वही दृष्टान्त दिया है। बताया था, कल दोपहर में बताया था। कल दोपहर में बताया था। यहाँ तो तीसरी बात कहनी है। उसमें तो ऐसा लिया है कि जो पर्यायभेद से है अशुद्ध है और द्रव्य से वह शुद्ध है। यह सोलहवीं गाथा। आहाहा! क्या कहा? फिर से। फूलचन्दजी! यह वस्तु जो ज्ञायकस्वरूप चैतन्य पवित्र पिण्ड प्रभु, उसके दर्शन-ज्ञान और चारित्र निर्मल पर्याय है, परन्तु वह पर्याय है न, तो वहाँ सोलहवें कलश में मेचक कहा, व्यवहार कहा। कलश टीकाकार ने मलिन कहा। स्वात्मानुभवमननकार ने अशुद्ध कहा। समझ में आया?

अब ऐसे बदल डालो तो शुद्ध द्रव्य की एकाग्रता, वह अमेचक है। शुद्ध द्रव्य की एकाग्रता, वह निश्चय है और शुद्ध द्रव्य की एकाग्रता, वह शुद्ध है। इस प्रकार जब मलिन, अशुद्ध और व्यवहार (कहा) तो यहाँ निर्मल, शुद्ध और निश्चय। आहाहा! समझ में आया? बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा! भगवान के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि तो ऐसी है। पश्चात् निश्चय है, वहाँ व्यवहार कैसा होता है, यह बात चौदहवीं गाथा में चलती है। समझ में आया? यह तो रात्रि में बहुत... बराबर यह आनेवाला है। अभी बदल डाला, हों! अभी तक स्वाध्याय करनी थी। भाई श्रीचन्द्रजी ने आकर कहा, पण्डितजी दो दिन रहनेवाले हैं। आहाहा!

भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! तेरी चीज़ तो एक समय में शुद्ध कन्द प्रभु आनन्दकन्द है। आहाहा! जैसे शकरकन्द होता है न? शकरकन्द नहीं? (गुजराती में) शक्करिया (कहते हैं)। शकरकन्द कहते हैं न? वह शकरकन्द जो है, उसकी ऊपरी लाल छाल है, लाल छाल—छिलका, उसे निकालकर देखो तो वह शकरकन्द है। शकरकन्द का अर्थ शक्कर की मिठास का पिण्ड। शक्कर कहते हैं न? शक्करिया-शक्कर। आहाहा! ताराचन्दजी! यह वैष्णव लोग शिवरात्रि में खाते हैं न? वह लाल छाल जरा सी है। बाकी तो वह शकरकन्द है। पूरा शक्कर अर्थात् चीनी, शक्कर की मिठास का पूरा पिण्ड है। आहाहा! उसे वास्तव में शकरकन्द कहा जाता है। शकरकन्द।

इसी प्रकार यह आत्मा, जो पुण्य और पाप के शुभ-अशुभ जो विकल्प उठते हैं, वह तो ऊपर लाल छाल जैसी चीज़ है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के विकल्प उठते हैं, वह शुभराग लाल छाल है। वह आत्मा नहीं। वह शकरकन्द नहीं; उसी प्रकार वह आत्मा नहीं। जैसे वह लाल छाल, वह शकरकन्द नहीं; उसी प्रकार यह पुण्य परिणाम वे आत्मा नहीं। आहाहा! शुभ और अशुभ विकल्प की छाल है, उसका लक्ष्य छोड़कर अन्दर देखो तो वह अकेला आनन्द का कन्द ही है। आहाहा! यह शकरकन्द की बात इसे बैठती है।

मुमुक्षु : दिखती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखती है। वह दिखती है, वह देखनेवाला कौन है, उसे नहीं देखता। दिखता है, वह तो ऐसा दिखता है, यह। परन्तु जो देखता है, वह देखनेवाला

अपने को देखता है, वह क्या है ? आहाहा ! देखनेवाला अपने को देखे तो वह आनन्दमूर्ति है । आहाहा ! समझ में आया ? जाननेवाला ज्ञात होता है, वह तो आनन्दकन्द यह आत्मा है । अरेरे ! सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी में—दिव्यध्वनि में गणधर और सन्तों और इन्द्रों के बीच यह बात आती थी । वह यह बात है । अरे भगवान !

यहाँ कहते हैं, वह तो टीका ली थी । उसमें कलश है । प्रवचनसार । प्रवचनसार का कलश है । **इस प्रकार, प्रतिपादक के आशय के वश, एक होने पर भी अनेक होता होने से...** देखो ! भगवान आत्मा एकरूप होने पर भी,... होवा छतां हिन्दी में भाषा आती है ? होने पर भी । **(अर्थात् अभेदप्रधान निश्चयनय से एक-एकाग्रतारूप-होने पर भी कहनेवाले के अभिप्राय अनुसार भेदप्रधान व्यवहारनय से अनेक भी अनेक का अर्थ—दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भी—होता होने से)....** आहाहा ! एकरूप वस्तु है, उसे तीन प्रकार दर्शन, ज्ञान, चारित्र सम्यक् निश्चय मोक्षमार्ग तीन प्रकार का कहना, वह व्यवहार है । यह भेदप्रधान व्यवहारनय से कथन है । आहाहा ! समझ में आया ? **एकता को (एकलक्षणपने को)...** नीचे अर्थ किया है । **द्रव्यप्रधान निश्चयनय से मात्र एकाग्रता एक ही मोक्षमार्ग का लक्षण है ।** एकाग्रता एक ही । **पर्यायप्रधान व्यवहारनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप त्रिक मोक्षमार्ग का लक्षण है ।** समझ में आया ?

एकता को (एकलक्षणपने को) तथा त्रिलक्षणपने को प्राप्त जो अपवर्ग का (मोक्ष का) मार्ग उसे लोक दृष्टाज्ञाता में परिणति बाँधकर (-लीन करके) अचलरूप से अवलम्बन करो कि जिससे यह (लोक) उल्लसती चेतना के अतुल विकास को अल्प काल में प्राप्त करे । आहाहा ! भगवान आत्मा... यह पंचास्तिकाय में लिया है, भाई ! नहीं ? व्यवहार मोक्षमार्ग पहले आता है । निश्चयसहित । वहाँ डाला है । अनादि वासना रहित । पंचास्तिकाय १७२ गाथा में । आहाहा ! दिगम्बर सन्तों की शैली तो अलौकिक है ! पूर्वापर विरोधरहित है । आहाहा ! परन्तु समझने में बहुत प्रयत्न चाहिए । यह तो अन्तर का प्रयत्न है । आहाहा ! अकेले शास्त्राान से भी पता नहीं लगता । समझ में आया ? आहाहा ! यह कलश है, हों !

इत्येवं प्रतिपत्तुराशयवशादेकोऽप्यनेकीभवं-
स्त्रैलक्षण्यमयैकतापुपगतो मार्गोऽपवर्गस्य यः ।

द्रष्टृज्ञात-निबद्धवृत्तिमचलं लोकस्तमास्कन्दता-
मास्कन्दत्यचिराद्विकाशमतुलं येनो ल्लसन्त्याश्चितेः ॥१६॥

भगवान आत्मा... आहाहा! पूर्ण शुद्ध द्रव्य अखण्ड आनन्दकन्द की दृष्टि, एकाग्रता से वह निश्चय है और पर्याय के तीन भेद हैं, निश्चयमोक्षमार्ग, हों! जो तत्त्वार्थसूत्र में कहा, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, यह पर्यायप्रधान कथन है। आहाहा! इन तीन से भी जानो और अन्दर में एकाग्र होओ। समझ में आया? तो अल्प काल में तुझे अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होगी। अल्पकाल में मुक्ति होगी। संसार के दाह से रहित शान्ति का समुद्र उल्लसित हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

स्वात्मानुभवमनन, धर्मदास क्षुल्लक बहुत अध्यात्मज्ञानी। उन्होंने अध्यात्म की दृष्टि में बहुत दृष्टान्त दिये हैं, बहुत दृष्टान्त। सम्यग्ज्ञान दीपिका में तो दृष्टान्त... दृष्टान्त। और स्वात्मानुभवमनन में बहुत मनन किया है। कितनी ही वेदान्त की गाथा रखी है, यहाँ को लगती हो वह। इसलिए यहाँ प्रकाशित करने का इनकार किया था। यह सम्यग्ज्ञान दीपिका प्रकाशित करो। वह नहीं। उसमें भी ऐसी बात आयी, बहुत सूक्ष्म और पीछे शब्दावली है, उसमें तो सब शास्त्र के, भिन्न-भिन्न शास्त्रों के... बहुत शास्त्र देखे, उनकी वाक्यावली की है। उसमें यह एक लिखा है कि भगवान आत्मा... आहाहा! एकरूप है, वह शुद्ध है और तीन पर्याय से कहना, वह अशुद्ध है। आहाहा! व्यवहार....

सुनो! कि जो निश्चय वस्तु अखण्ड है, उसकी एकाग्रता, वह निश्चय। और पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मल है, वह सद्भूतव्यवहार है। पर्याय है, वह सद्भूतव्यवहार है और फिर जो व्यवहार का विकल्प आता है, वह असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! यह सब भाषा....

मुमुक्षु : बहिरंग व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विकल्प आता है, होता है। उसे जानना। (समयसार) बारहवीं गाथा में कहा न? 'तदात्वे'। जाना हुआ प्रयोजनवान है। संस्कृत में। बारहवीं गाथा (में है)। 'तदात्वे'—उस समय में। भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन की अनुभवदृष्टि वह तो निश्चय सम्यक्त्व है। वह भूतार्थ के आश्रय से होता है। त्रिकाल भूतार्थ शाश्वत

वस्तु के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। फिर पर्याय में जितनी अभी शुद्धता अल्प रही है, थोड़ी अशुद्धता हुई, उसे जानना, यह 'तदात्वे'। उस-उस समय में जानना, वह प्रयोजनवान है। क्योंकि समय-समय में शुद्धता बढ़ती है, अशुद्धता घटती है। सम्यग्दृष्टि को स्वभाव के आश्रय से समय-समय में शुद्धता बढ़ती है, अशुद्धता घटती है। तो वह समय-समय में जो शुद्धता बढ़ी और अशुद्धता घटी, उस समय में उसका ज्ञान करना, उस समय में ज्ञान करना, बस। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो चौदहवीं गाथा आयाी, उसका यह उपोद्घात बाँधा जाता है। हिम्मतभाई! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

अब कहते हैं, १३वीं गाथा में निश्चयरत्नत्रय की बात कही। अपने यह १३वीं। १३वीं में ऐसा आया। देखो! फिर से देखो! १३वीं गाथा देखो!

१३६) पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।
दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि॥१३॥

वास्तव में तो वहाँ भी ऐसा लिया, **जो अपने से आपको देखता है, जानता है, आचरण करता है, वही विवेकी दर्शन-ज्ञान-चारित्रयप परिणत हुआ...** इन तीन में परिणत हुआ **जीव मोक्ष का कारण है।** आहाहा! पर्याय को व्यवहार कहकर इन तीन से परिणत हुआ जीव, मोक्ष का कारण है, (ऐसा कहा)। आहाहा! १३वीं ऐसा कहा। आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु के दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। यह छठवें गुणस्थान की बात है। अब यहाँ छठवें गुणस्थान में व्यवहार कैसा होता है, यह बात चलती है। समझ में आया?

आगे भेदरत्नत्रयस्वरूप-व्यवहार वह परम्पराय मोक्ष का मार्ग है, ऐसा दिखलाते हैं:—१४-१४। छठवें में निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, परन्तु पूर्ण नहीं। तो वहाँ व्यवहार रत्नत्रय का भेद विकल्प आता है। वह परम्परा कारण, सीधा नहीं। उसे छोड़कर मोक्ष होगा। अथवा उसे छोड़कर सप्तम गुणस्थान होगा। समझ में आया? आहाहा!

अन्वयार्थ:—व्यवहारनय जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को कहता है, उस व्यवहाररत्नत्रय को तू जान,... आहाहा! है? '**परिजानीहि**'। **जिससे कि उत्कृष्ट अर्थात् पवित्र होवे।** छठवीं भूमिका में निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र की अल्पता है। तो वहाँ व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प आते हैं। उन्हें छोड़कर उत्कृष्ट सप्तम गुणस्थान हो जाता है। यह उत्कृष्ट। समझ में आया? यह १२वीं गाथा में जयसेनाचार्य ने लिया है न? १२वीं

में। निर्विकल्पता ली है। **'अपरमे द्विादा भावे'** परमभाव में निर्विकल्पता ली है। अमृतचन्द्राचार्य ने तेरहवाँ गुणस्थान लिया है। जयसेनाचार्यदेव ने निर्विकल्पता ली है। उस निर्विकल्पता में है, वह परमभाव में है और विकल्प में आया, वह अपरमभाव में है। समझ में आया? यहाँ इस व्यवहार की बात है। **जिससे कि उत्कृष्ट अर्थात् पवित्र होवे।**

भावार्थः—हे जीव! तू तत्त्वार्थ का श्रद्धान,... यह व्यवहार की बात है। असद्भूत व्यवहार की बात है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निश्चय है, उस भूमिका में यह व्यवहार आता है। **तत्त्वार्थ का श्रद्धान, शास्त्र का ज्ञान,...** देखो! शास्त्र का ज्ञान। पहले आत्मा का ज्ञान था। आत्मा के दर्शन, ज्ञान, चारित्र थे। १३वीं गाथा में। अब यह **तत्त्वार्थ का श्रद्धान, शास्त्र का ज्ञान, और अशुभ क्रियाओं का त्याग...** पाप के परिणाम का त्याग। ऐसे **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहारमोक्षमार्ग को जान,...** है न? इसे जान। पाठ में है न? **'परियाणहि'।** उसे जान। आहाहा! जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक ऐसे विकल्प आते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा, पूजा, भक्ति, यात्रा आदि भाव आते हैं, परन्तु वह भाव राग है। समझ में आया?

तो कहते हैं, उस **व्यवहार मोक्षमार्ग को जान,...** क्यों? **क्योंकि ये निश्चयरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग के साधक हैं,...** छठवें गुणस्थान का विकल्प है, वह सातवें का साधक है। उस विकल्प को साधक कहा। निश्चय से तो छठवें गुणस्थान की जो निर्मल पर्याय है, वही सातवें की निर्मल पर्याय का कारण है। साधक तो वह है। परन्तु व्यवहार साधक यह कहा है। आहाहा! जैसे मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने कहा, कि अपने शुद्ध स्वरूप के सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह तो निश्चय है और साथ में जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प उठता है, उसे आरोप से व्यवहार समकित कहा जाता है। व्यवहार। वह निरूपण-कथन की शैली में दो प्रकार हैं। वस्तु तो एक ही प्रकार से है परन्तु कथन-निरूपण (दो प्रकार से है)। यह शब्द यहाँ आये। **'बोल्लइ'** शब्द है। **'बोल्लइ'** शब्द है न? १४ में। **'बोल्लइ'** कथन। आहाहा! इस व्यवहार के कथन में जो आता है, वह बात यहाँ हम करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वहाँ ऐसा कहा, कि व्यवहार आता है, उसे जान। अरे! योगसार में भी कहा है।

योगसार नहीं ? निश्चय की बात करके फिर कहा है कि छह द्रव्य आदि को जान, प्रयत्न से जान, ऐसा कहा है। पण्डितजी ! योगीन्द्रदेव का योगसार है न ? उसकी गाथा है। यह षट्द्रव्य की गाथा है। षट्द्रव्य प्रयत्न से जान।

मुमुक्षु : जानो करि प्रयत्न से।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयत्न करके जान, यह व्यवहार है। विकल्प आता है। पूर्ण वीतरागता न हो तो व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं, परन्तु उस व्यवहार से निश्चय होता है, यह कथन व्यवहार का है। अभूतार्थनय का कथन है। आहाहा ! समझ में आया ? क्या करे ?

क्योंकि ये निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चयमोक्षमार्ग के साधक हैं,... व्यवहार। टोडरमलजी ने वहाँ निश्चयाभास और व्यवहाराभास (उभयाभासी के प्रकरण) में कहा है कि अपना स्वरूप जो चैतन्य है, उसका सम्यग्दर्शन, वह तो यथार्थ है, परन्तु साथ में जो व्यवहार दर्शन का विकल्प उठता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह है तो राग, (परन्तु) राग में आरोप करके निश्चय का आरोप किया कि यह व्यवहार समकित है। व्यवहार समकित है नहीं। वह तो राग है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान, वह तो राग-विकल्प है, तथापि यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग जब है तो उस समय में उसका आरोप करके; है तो बन्ध का कारण, परन्तु आरोप से निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उसे व्यवहार कहा है। समझ में आया ? और निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण जानना। उसमें है। आहाहा ! ऐसा निश्चय-व्यवहार का लक्षण सर्वत्र जानना। उस साधक में यह आया। समझ में आया ? आहाहा ! व्यवहार साधक का यह लक्षण है। यह आरोपित लक्षण है। समझ में आया ? टोडरमलजी ने तो बहुत काम किया है। टोडरमल, बनारसीदास बहुत... शास्त्र की सामान्य बात संक्षेप में थी, उसका स्पष्टीकरण, विशेष स्पष्टीकरण किया है। उनके घर की कोई बात नहीं है। आहाहा ! परन्तु आग्रह छोड़कर मध्यस्थता से विचार करे तो उसे यह बात बैठे। आहाहा !

इनके जाने से किसी समय परम पवित्र परमात्मा हो जायेगा। छठवें गुणस्थान में विकल्प आता है तो उसे छोड़कर सप्तम हो जायेगा, और उसे छोड़कर केवलज्ञान भी हो

जायेगा। आहाहा! **पहले व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति हो जावे,...** यह छठवें गुणस्थान की बात है। पहले व्यवहार का अर्थ, अकेला व्यवहार नहीं, निश्चयसहित में छठवें गुणस्थान में पहले व्यवहार आता है, उसकी बात है। समझ में आया? **तब ही निश्चयरत्नत्रय की...** सातवें में अभेद निश्चय हो जाता है न? **प्राप्ति हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं है।** आहा! समझ में आया? आज बहुत बात ऐसी थी। कहा, पण्डितजी है तो प्रवचन तो चले। आहाहा! पण्डितजी का प्रभावना में बड़ा हाथ है न! आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, बापू! यह कहीं किसी का बनाया हुआ नहीं, यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

जो अनन्त सिद्ध हुए और होवेंगे, वे पहले व्यवहाररत्नत्रय को पाकर निश्चय-रत्नत्रयरूप हुए। प्रथम छठवें गुणस्थान में आने के बाद सातवें में आये और फिर मोक्ष हुआ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सातवें में से (सीधे) आठवें में जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं जाये। यह छठवें गुणस्थान, कहा न। छठवें से व्यवहार कहा है। सर्वत्र ऐसा कहा है। निश्चय से तो पहले सातवाँ आता है। परन्तु आचार्य ने बहुत जगह ऐसी शैली ली है। छठवें गुणस्थान में आता है, वह व्यवहार है। वे विकल्प हैं न! उसे छोड़कर सातवें में आता है, वह निश्चय है। प्रवचनसार में पहले लिया है। बीच में राग का कण आता है। परन्तु उसे उल्लंघकर सातवें में निश्चय में आ जाता है। प्रवचनसार पहली पाँच गाथायें। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की शैली तो अलौकिक बात! कहीं ऐसी नहीं। अन्यत्र कहीं नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर और स्थानकवासी में भी यह मार्ग है नहीं। समझ में आया? यह मार्ग दूसरा। यह तो बहुत दुःख लगे। श्वेताम्बर और स्थानवासी को तो टोडरमलजी ने पाँचवें अध्याय में अन्यमत कहा है। समझ में आया? टोडरमलजी, मोक्षमार्गप्रकाशक में पाँचवें अध्याय में, जैसे वेदान्त, वैशेषिक, ईश्वरकर्ता माननेवाले ऐसे श्वेताम्बर, ऐसे ढूंढिया स्थानकवासी—सबको अन्यमत में डाला है। वह जैनमत नहीं। ऐसी बात (सुनते हुए) दुःख लगे। भाई! क्या करें? मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा! समझ में आया? है न? अन्यमत है, जैन नहीं। यह तो वीतराग दिगम्बर सन्त तो केवली के पथानुगामी! आहाहा! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने जो कहा, उस

मार्ग में वे तो चलनेवाले हैं। कथनपद्धति तो देखो इनकी! आहाहा! ऐसी कहीं नहीं है। आहाहा!

पहले व्यवहाररत्नत्रय को पाकर निश्चयरत्नत्रयरूप हुए। छठवें गुणस्थान में व्यवहाररत्नत्रय है न? तीन है न? तीन कब होते हैं? भाई! (छठवाँ गुणस्थान हो) तब। ऐई! क्या कहना है? कि पहले व्यवहाररत्नत्रय—तीन। परन्तु वे तीन कब होते हैं? जिसे यहाँ तीन सम्यग्दर्शन (आदि) छठवें में प्रगट हुए हैं, उन्हें व्यवहाररत्नत्रय तीन होते हैं। समझ में आया? आहाहा! **व्यवहार साधन है और निश्चय साध्य है।** छठवें गुणस्थान का जो विकल्प है, उसे पंचास्तिकाय में भी व्यवहार साध्य-साधन कहा है। कहा है न? व्यवहार साध्य-साधन। है यह। आहाहा! विकल्प को व्यवहार साधन कहा है, वह आरोप से कहा है। जैसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो राग है, उसे समकित कहा है। राग की पर्याय को समकित कहा, वह आरोप से कहा है। समझ में आया? इसी प्रकार इस राग को—व्यवहार को साधन कहा, वह आरोप से कहा है। व्यवहार का ऐसा कथन है। आहाहा! और निश्चय साध्य है।

व्यवहार और निश्चयमोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं—वीतराग सर्वज्ञदेव के कहे हुए छह द्रव्य,... भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। जिनेश्वरदेव परमेश्वर ने छह द्रव्य (जाने हैं)। छह द्रव्य को जानना, वह अभी व्यवहार है। श्रद्धा करना, वह व्यवहार है। योगसार में भी यह लिया है। गाथा है। कितनी गाथा है? छह द्रव्य को प्रयत्न से जानना। कितनी गाथा है? गाथा याद नहीं। ३५ देखो तो। इसमें है? देखो, ३५।

छह दव्वइं जे जिण-कहिया णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया ते जाणियहि पयत्त॥३५॥

है? पहले निश्चय की बात की है, देखो! ३४।

अप्पा अप्पई जो मुणइ जो परभाउ चएइ।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु जिणवरु एम भणेइ॥३४॥

यह निश्चय। ३४

जो आत्मा से आत्मा को जानता है (अपने से अपने को जानता है) और जो

परभाव को छोड़ देता है, वह शिवपुरी में जाता है... यह निश्चय और उसके साथ यह छह द्रव्य आदि जानना, वह व्यवहार। समझ में आया? आहाहा! आज तो बहुत आधार देना पड़े।

मुमुक्षु : ३७।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३७? '**जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि छंडिवि सहु ववहारु**' यह तो व्यवहार छोड़कर निर्मल करने की बात है। '**जिण-सामिउ इमइ भणेइ**' तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं। '**लहु पावइ भवपारु ॥३७॥**' व्यवहार छोड़कर निश्चय में आता है, वह मोक्ष पाता है। व्यवहार बीच में आता है, उसका ज्ञान कराते हैं। समझ में आया? लो, यह आया।

वीतराग सर्वज्ञदेव के कहे हुए छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ,... स्वात्मानुभवमनन और सम्यग्ज्ञान दीपिका में तो सात तत्त्व में जीवतत्त्व वह जीव है और छह तत्त्व वे अजीव हैं, ऐसा कहा है। पण्डितजी! क्या कहा? सात तत्त्व में पहले तत्त्व को जीव कहा और दूसरों को अजीव कहा है। पर्याय है न? संवर, निर्जरा और मोक्ष भी पर्याय है, नाशवान है न? नियमसार में ३८वीं गाथा में ऐसा कहा है कि सात तत्त्व जो है, वह नाशवान है। त्रिकाली जीव एक अविनाशी है। वह दृष्टि का विषय है। केवलज्ञान तत्त्व, मोक्षतत्त्व, संवर, निर्जरातत्त्व, वह एक समय की पर्याय है तो वहाँ नाशवान कहा। अविनाशी त्रिकाली शाश्वत वस्तु, वह अविनाशी है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि **सात तत्त्व...** छह द्रव्य में एक जीवद्रव्य, दूसरे पाँच अजीव द्रव्य। सात तत्त्व में एक जीव, छह अजीव। नौ पदार्थ में एक जीव, आठ अजीव, ऐसा कहा है। आहाहा! पंचास्तिकाय में एक जीव अस्तिकाय, दूसरे अजीव।

इनका श्रद्धान, इनके स्वरूप का ज्ञान और शुभ क्रिया का आचरण,... शुभभाव **यह व्यवहारमोक्षमार्ग है,...** वह व्यवहार मोक्षमार्ग छठवें गुणस्थान में निश्चयसहित (होता है)। निर्विकल्प निश्चय सातवें में है, परन्तु यह विकल्प जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्मल है, वह छठवें में है परन्तु अपूर्ण है। साथ में यह व्यवहार मोक्षमार्ग है। आहाहा! **निज शुद्ध आत्मा का सम्यक् श्रद्धान...** अब देखो! **निज शुद्ध आत्मा का सम्यक् श्रद्धान, स्वरूप का ज्ञान,...** अपने निज स्वरूप की श्रद्धा, वह निश्चय। **निज**

शुद्ध आत्मा का सम्यक् श्रद्धान, स्वरूप का ज्ञान, और स्वरूप का आचरण... भगवान आनन्द में रमणता, अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। अब व्यवहार सिद्ध करते हैं।

साधन के बिना सिद्धि नहीं होती,... निश्चय साधन तो यह शुद्ध है, परन्तु व्यवहार साधन बीच में आया, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? साधन दो प्रकार के कहे, उसका निरूपण दो प्रकार का है। यह क्या कहा? जैसे मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है, ऐसे मार्ग कहो या साधन कहो। साधन का निरूपण दो प्रकार से है। साधन तो निश्चय एक ही है। आहाहा! पण्डितजी! कठिन बात लगे। वहाँ सर्वत्र कहा न? साधन किस अपेक्षा से? वह तो व्यवहार साधन है। निश्चय है, उसे निश्चय तो है, पूर्ण निश्चय नहीं। सप्त या परमात्मा नहीं। इसलिए उसे व्यवहार कहकर साधन कहा गया है। आहाहा! समयसार नाटक में तो यह कहा, साधन है, वह बाधन है। तो राग-द्वेष की बात तो क्या करना? वह बाधक है। आहाहा! जो-जो साधक है, वह-वह बाधक है। तो राग-द्वेष की बात तो क्या करना? ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

ठीक, आज पण्डितजी की उपस्थिति में सब (स्पष्टीकरण हुआ)। कल तो रविवार है न, व्याख्यान चलेगा। कल तो रविवार है, व्याख्यान चलेगा। स्वाध्याय बाद में रखेंगे। रविवार को मेहमान आते हैं न! भावनगर से आते हैं। सोमवार को भाई है। मंगलवार को करेंगे। फिर यहाँ आनेवाले हैं। चतुर्दशी को मुम्बई से बहुत लोग आनेवाले हैं। ८८वीं जयन्ती की प्रार्थना के लिये घाटकोपर से (आनेवाले हैं)। मद्रास से भी आनेवाले हैं। वहाँ नया दिगम्बर मन्दिर हुआ है। हम वहाँ गये थे। तब उसका शिलान्यास किया। छोटा दिगम्बर मन्दिर है परन्तु वह कमरे के ऊपर है। मेडी कहते हैं न? यह मन्दिर बनाया है, यह बहुत विशाल बनाया है। मुमुक्षुओं ने बनाया है। वे भी आनेवाले हैं। (जन्म) जयन्ती की तीन जगह से प्रार्थना है। एक तो जामनगर से बड़ी प्रार्थना है। क्योंकि अपने महाजन हैं...

मुमुक्षु : सोनगढ़ भी तैयार...

पूज्य गुरुदेवश्री : नैरोबी में करोड़पति हैं। श्वेताम्बर (थे, वे) दिगम्बर हो गये हैं। करोड़पति है। नैरोबी। एक जेठालाल है। पत्र आया था। करोड़पति है। श्वेताम्बर

महाजन सब दिगम्बर हो गये। वहाँ ३५-४० घर हैं। गृहस्थ लोग हैं। दो तो करोड़पति हैं। दूसरे पन्द्रह, बीस-बीस लाखवाले बहुत हैं। बहुत श्वेताम्बर दिगम्बर हो गये। यहाँ का वाँचन करके। वहाँ से पत्र आया है। हम आनेवाले हैं। मद्रास से है। ८८वाँ वर्ष लगता है। इस वैशाख शुक्ल-२, ८८। माँग है। उन्होंने तो यहाँ तक लिखा है, भाई! किसने लिखा है? ऐसा कि आठवीं विभुशक्ति है न? जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व। ४७ शक्तियाँ हैं न? आत्मा में अनन्त गुण हैं, उसमें एक विभुत्व नाम की शक्ति है। आठवीं शक्ति के आठ यहाँ करने हैं। ऐसा लिखा है। मद्रास न?

यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार है। **इसलिए व्यवहार के बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं होती। यह कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया कि हे प्रभो, निश्चयमोक्षमार्ग जो निश्चयरत्नत्रय वह तो निर्विकल्प है,...** उसमें यह विकल्प कहाँ से आया? पूर्व में विकल्प था, उसे नैगमनय से साधन कहा गया है। वर्तमान हुआ है तो अपने से परन्तु पूर्व विकल्प था, उसे आरोप करके कहा गया है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण ९, रविवार
दिनांक-१७-१०-१९७६, गाथा-१४, प्रवचन-१०७

परमात्मप्रकाश, १४वीं गाथा चलती है न! यहाँ प्रश्न आया है, देखो! **शिष्य ने प्रश्न किया...** थोड़ा चला है। **शिष्य ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! निश्चयमोक्षमार्ग जो निश्चयरत्नत्रय वह तो निर्विकल्प है,...** है? पण्डितजी! **और व्यवहाररत्नत्रय विकल्प सहित है,...** यह प्रश्न है। क्या कहते हैं? कि निश्चयरत्नत्रय तो अन्दर निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और चारित्र है तथा व्यवहाररत्नत्रय तो विकल्प-राग है। तो राग, वह निर्विकल्पता का कारण कैसे होगा? ऐसा प्रश्न है। समझ में आया? वस्तु भूतार्थ जो त्रिकाल है, उसके आश्रय से निर्विकल्प दृष्टि आदि प्रगट होती हैं, कहीं व्यवहार के आश्रय से प्रगट नहीं होती। तो व्यवहार तो विकल्प है, उसे तुमने साधन कैसे कहा? समझ में आया? निश्चय को साध्य कहा और इसे साधन क्यों कहा? यह विकल्प है न? उसका उत्तर (देते हैं)। **इस कारण उसको साधक मत कहो।** शिष्य का प्रश्न है। उसका समाधान। यह जो अब कथन है, वह थोड़ा टीकाकार का नहीं है। वह दौलतरामजी का है। उतना कथन। कितना?

जो अनादि काल का यह जीव विषय कषायों से मलिन हो रहा है,... यह टीकाकार का नहीं है। यह दौलतरामजी का है। टीकाकार ब्रह्मदेव का नहीं। टीका में नहीं। टीका में तो परम्परा मोक्ष का कारण व्यवहाररत्नत्रय है, यहाँ (तक है)। खबर है। परन्तु इन्होंने जरा स्पष्टीकरण किया है। अनादि काल से जीव विषय कषाय से मलिन हो रहा है, **सो व्यवहार-साधन के बिना उज्ज्वल नहीं हो सकता,...** अर्थात् मिथ्यात्व, अव्रत, कषायादि क्षीण, कुछ मन्द न हो, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा हो और उसकी श्रद्धा में मन्दता न हो, ऐसी क्षीणता न हो तो अध्यात्म की बात सुनकर अधिकारी नहीं होता, इतनी बात है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा और विषयकषाय का तीव्र प्रेम, उसमें यदि मन्दता न हो तो वह अध्यात्म की बात सुनने के योग्य भी नहीं। समझ में आया? श्रीमद् ने कहा न? 'त्याग वैराग्य न चित्त में' वह यह कहा है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा तो छूटनी चाहिए और विषयकषाय का तीव्र रुचि-प्रेम, वह तो इसे छूटना

चाहिए, तो यह अध्यात्म की बात सुन सकेगा। समझ में आया ? तथापि उससे प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है। 'त्याग वैराग्य न चित्त में, होय न उसको ज्ञान, अटके त्याग वैराग्य में...' वापस यदि उस राग की मन्दता में अटक गया तो वह अन्तर स्व का आश्रय नहीं ले सकेगा। समझ में आया ? ऐसी बात है।

उज्ज्वल नहीं हो सकता, जब मिथ्यात्व अव्रत कषायादिक की क्षीणता से देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे, तत्त्वों का जानपना होवे,... यह तो सम्यग्दर्शन पाने से पहले की बात करते हैं। पाठ में तो सम्यक् निश्चय है, वहाँ व्यवहार कैसा है, यह बतलाना है। **तत्त्वों का जानपना होवे, अशुभ क्रिया मिट जाये, तब गुरु वह अध्यात्म का अधिकारी हो सकता है। जैसे मलिन कपड़ा धोने से रंगने योग्य होता है, बिना धोये रंग नहीं लगता,...** यह पण्डितजी—दौलतरामजी का स्पष्टीकरण है। टीकाकार का स्पष्टीकरण अब आयेगा। निर्विकल्पदशा है, निश्चय आत्मा के सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों कहने में तो छठवें गुणस्थान की बात ली है। टीकाकार का पाठ है। छठवें गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। परन्तु अभी विकल्प है, व्यवहार है। तो उसे छोड़कर निर्विकल्पदशा सप्तम गुणस्थान में होती है। यह बात कहनी है। परन्तु बात यह कही।

परम्पराय मोक्ष का कारण व्यवहाररत्नत्रय कहा है। यह टीकाकार का स्पष्टीकरण है। क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं ? कि आत्मा निश्चय से प्राप्त करता है, वह तो अपने आश्रय से ही प्राप्त करता है। भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। यह तो महासिद्धान्त। तीनों काल। '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' (समयसार गाथा ११)। शाश्वत् वस्तु, नित्य ध्रुव वस्तु, द्रव्य वस्तु के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। यह तो त्रिकाली नियम और त्रिकाली सिद्धान्त है। परन्तु यहाँ व्यवहार बीच में आता है, उसे बताते हैं अथवा निश्चय सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् भी राग की मन्दता का व्यवहार आता है। निमित्त, उस निमित्त का ज्ञान कराते हैं। व्यवहार कहे उसे सत्यार्थ माने तो श्रद्धा विपरीत है। यह आया है न ? टोडरमलजी। निश्चय कहे, वह सत्यार्थ है और उसकी श्रद्धा करे, वह सम्यक् है। व्यवहार कहे, उसकी रद्धा करे तो मिथ्यात्व है। समझ में आया ? व्यवहार आता है और पहले विकल्प कहा, वह नैगमनय से कहने में

आया है। यह कहते हैं, देखो! मोक्ष का मार्ग, वह नैगमनय से कहा है—भूतनैगमनय से। अर्थात् जैसे यह आता है न? नि:शंक। अंजनचोर। अंजनचोर। अंजनचोर की पहली नि:शंकता है, उसे व्यवहार कहकर निश्चय पाया है तो पाये हुए की पूर्व दशा कैसी थी, यह बतलाना है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है। अंजनचोर निश्चय तो स्वभाव का आश्रय लिया तब हुआ है। परन्तु पूर्व में उसका एक व्यवहार और व्यवहार का भी एक अंग। नि:शंक तो एक अंग है। वह व्यवहार का अंग है। उसे समकित कहा। वह तो निश्चय पाया हुआ है, उसका आरोप करके उसे व्यवहार कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! महा बड़ी गड़बड़ इसमें है।

मुमुक्षु : अटपटा लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अटपटा.... लोगों को व्यवहार का प्रेम है न! अनादि का प्रेम है, वहाँ वह अटका है। आहाहा! वस्तु है, वह तो निरपेक्ष है। अन्तर स्वभाव के आश्रय से प्राप्त करे, उसमें किसी पर की अपेक्षा है नहीं। परन्तु नैगमनय से ऐसा कहने में आवे कि पूर्व में विकल्प था, उसे अभी टालकर निर्विकल्प हुआ। इसलिए नैगमनय से व्यवहार से परम्परा कारण कहने में आया है। परन्तु यह प्राप्त करे उसे।

मुमुक्षु : व्यवहार छोड़े उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़े उसे, कहा न? पावे उसे यह कहा है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। बहुत गड़बड़ चली है न! इसमें से लोग गड़बड़ करते हैं।

बात यह है कि निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना तो व्यवहार कहलाता ही नहीं। पहले तो यह सिद्धान्त। निश्चय सम्यक्त्व बिना व्यवहार कहो तो व्यवहारमूढ़ कहने में आया है। (समयसार) ४१३ गाथा। वह तो व्यवहारमूढ़ है। परन्तु जब निश्चय हुआ तब राग की मन्दता, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि होती है, उसे व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप करके कहा है। है नहीं। वह व्यवहार मोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग नहीं है। वह तो निरूपण कथन में दो प्रकार आये हैं, वस्तुरूप से दो नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात। वह यहाँ परम्परा मोक्ष का कारण व्यवहाररत्नत्रय को कहा। वह विकल्प। पूर्व में विकल्प था न, शुभराग।

मुमुक्षु : .... हुआ तब परम्परा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाया तो कहा, बस। यह बात। अभाव किया और पाया, तब पूर्व के कारण से नैगमनय से व्यवहार कहा। ताराचन्दजी! ऐसी बात है।

अंजनचोर भी जब निश्चय सम्यक्त्व पाया, तब पूर्व के निःशंक अंग को उसका कारण कहा। मोक्षमार्गप्रकाशक में इसका स्पष्टीकरण है कि निश्चय में व्यवहार का निमित्त (था) और व्यवहार का भी निःशंक तो एक अंश है, एक अंग है। व्यवहार पूरा नहीं। उस निःशंकता को निश्चय समकित का कारण कहा। वह तो पाया है, उसे पूर्व का आरोप करके कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया?

अब यहाँ फिर से। **मोक्ष का मार्ग दो प्रकार का है, एक व्यवहार, दूसरा निश्चय। निश्चय तो साक्षात् मोक्षमार्ग है,...** स्वआश्रय तो साक्षात् मोक्षमार्ग है। निश्चय अर्थात् स्वआश्रय। वस्तु स्वभाव पूर्णानन्द प्रभु विज्ञानघन के आश्रय से मोक्ष हो, वह तो निश्चय यथार्थ है। और पराश्रय जो व्यवहार है, वह तो परम्परा आरोप देकर कहा है, वास्तव में वह कारण नहीं है। यह कहते हैं, देखो! अथवा **व्यवहार (भूतनैगमनय से) परम्परा है।** ऐसा कहा न? परम्परा का अर्थ यह कि विकल्प छोड़कर विशेष निर्विकल्प होगा, विशेष, हों! पहले है तो सही, निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो है, उसमें व्यवहार विकल्प आया, वह निश्चयमोक्षमार्ग साक्षात् मोक्ष का कारण है। विकल्प परम्परा (कारण)। क्योंकि उसे छोड़ेगा, तब पूर्ण होगा। इस कारण उसे परम्परा कहने में आया है।

मुमुक्षु : व्यवहार परम्परा अर्थात् व्यवहार को छोड़कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर। वह तो राग है।

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार राग करते-करते होगा? राग करते-करते निश्चय वीतराग होगा? या राग को छोड़े, तब वीतराग होगा? यह तो कहा, पंचास्तिकाय में कि परम्परा अर्थात्? देव के क्लेश आदि भोगेगा। पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में कहा है। परम्परा कषाय में क्लेश भोगेगा। उसे परम्परा कहने में आया है। निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो है परन्तु यह व्यवहार आया, उसे परम्परा कहा। परम्परा का अर्थ ऐसा लिया कि

देवादि में क्लेश भोगेगा। देव आदि अर्थात् यहाँ पुण्यभाव है तो क्लेश होगा, वहाँ से मनुष्य होगा तो वहाँ भी दुःख भोगेगा। यह क्लेश भोगकर परम्परा अर्थात् पश्चात् छोड़कर वीतराग होगा। समझ में आया? इसमें बड़ी गड़बड़ है।

मुमुक्षु : जरा अधिक स्पष्टता अपेक्षित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्पष्टता तो कितनी की, कल भी बहुत की थी।

वास्तव में तो... रात्रि में कहा था और कल सवेरे कहा था। आत्मा वस्तु तो वस्तु है, वह तो पूर्ण शुद्ध ध्रुव शाश्वत् वस्तु है। उस शाश्वत् वस्तु के आश्रय से सत्यदर्शन अर्थात् निश्चय समकित, सत्यज्ञान अर्थात् निश्चय ज्ञान, सत्य आचरण—रमणता अर्थात् निश्चय चारित्र, इन तीन बोल को भी व्यवहार कहा है। (समयसार) १६वीं गाथा के कलश में। और १६वीं गाथा में यह कहा है।

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥१६॥

यह १६वीं गाथा है। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय चारित्र, वह पर्याय है। उसे '**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं**' साधु को तीन की सेवना करना, यह व्यवहार है। पर्यायनय से कथन किया गया है। क्योंकि लोग पर्यायनय से समझते हैं इसलिए। इसका स्पष्टीकरण वहाँ १६वीं गाथा में नीचे किया है। समझ में आया? आहाहा! '**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं**' नित्य यह तीन निश्चय पर्याय की सेवना करना। '**ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो**'। इन तीन को छोड़कर अकेला आत्मा एकाकार, वह निश्चय है। आहाहा! शशीभाई! समझ में आया? इन तीन भेद को भी... क्या कहा? मेचक। मेचक कहा। आहाहा! मेचक कहा, मलिन कहा, अशुद्धता कही। तीन बोल है। आहाहा!

आत्मा वस्तु है। अनादि-अनन्त शाश्वत् पदार्थ, ज्ञानकन्द, आनन्दकन्द, ईश्वरताकन्द, पूर्णानन्द वस्तु के आश्रय से निश्चय—सत्य दर्शन, सत्य ज्ञान, सत्य चारित्र होता है। परन्तु वे तीन हैं, वह पर्यायनय से कहने में आया है। जो तत्त्वार्थसूत्र में कहा, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, वह पर्यायनय से कथन है। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र

जो दसलक्षणी पर्व में—पर्यूषण में हमेशा वाँचते हैं। परन्तु वह भी पर्यायनय का कथन है। निश्चय सम्यक्, निश्चय ज्ञान, निश्चय चारित्र, ऐसे तीन भेद हुए न? तो वह पर्यायनय का कथन है। यह कल में कहा था, नहीं? २४२ गाथा, प्रवचनसार। उसमें बताया था कि यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन पर्याय है, वह पर्यायनय का, व्यवहारनय का कथन है और तीन भेद को छोड़कर अकेले आत्मा में लीन होना, वह निश्चय द्रव्यप्रधान कथन है। यह २४२ गाथा, प्रवचनसार की टीका और उसका कलश, दो में यह आया है। कल यह बताया था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **एक व्यवहार, दूसरा निश्चय, निश्चय तो साक्षात् मोक्षमार्ग है, और व्यवहार परम्पराय है।** अर्थात् विकल्प छूटकर, बाद में होगा, इसलिए उसे परम्परा (कारण) कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्यायनय का कथन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह व्यवहार कथन है निश्चय की पर्याय का, परन्तु यह तीन पर्याय है, उसका कथन है; इसलिए यह पर्यायनय का कथन है। परन्तु है तो निश्चय। वह व्यवहार समकित नहीं। परन्तु तीन भेद से कथन किया न? तो वह पर्यायनय का कथन है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **अथवा सविकल्प-निर्विकल्प के भेद से निश्चयमोक्षमार्ग भी दो प्रकार का है।** निश्चय के दो भेद। निश्चयमोक्षमार्ग के दो भेद। उसमें स्पष्टीकरण देखो! यह टीकाकार का स्पष्टीकरण है। **जो मैं अनन्तज्ञानरूप हूँ....** आहाहा! मैं अनन्त ज्ञान (स्वरूप हूँ)। ज्ञानस्वभाव है, वह अनन्त है। जिसका स्वभाव है ज्ञान, वह अपरम्परा अपार स्वभाव है। वह अनन्त ज्ञान हूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है, ऐसा कहते हैं, उसे व्यवहार कहने में आता है। वह आस्रव है। आहाहा! **मैं शुद्ध हूँ....** पवित्र। **एक हूँ,...** यह त्रिकाल एकरूप है न! आहाहा! **सोहं,...** वह मैं। ऐसा **चिन्तवन है, वह तो सविकल्प निश्चय-मोक्षमार्ग है।** देखो! सविकल्प है, राग है। परन्तु स्व के

आश्रय का प्रश्न है न! मैं अखण्ड हूँ, अनन्त हूँ, इस अपेक्षा से निश्चयमोक्षमार्ग का सविकल्प भेद कहा। वह सविकल्प भी आस्रव है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : उसके साथ निश्चय परिणति साथ में चलती है या नहीं चलती?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है, उसकी बात नहीं। यहाँ तो विकल्प उठता है, उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहा जाता है। निश्चय तो है, यहाँ तो निर्विकल्प को निश्चयमोक्षमार्ग (कहा) और सविकल्प को निश्चयमोक्षमार्ग, उसे निश्चय कहना है। स्व के आश्रय से भेद उठा है, इस अपेक्षा से निश्चय कहना है। अकेला सविकल्प है, ऐसा नहीं, परन्तु उस निश्चय में अन्दर दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है। यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिखा है। सविकल्प द्वारा निर्विकल्प। नहीं? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में बहुत स्पष्टीकरण है। सविकल्प द्वारा निर्विकल्प (होता है)। अर्थात् निश्चय की दशा है तो सही, परन्तु पहले विकल्प आता है कि मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, एक हूँ, ऐसे विकल्प उठते हैं तो उस विकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है, ऐसा वहाँ कहा है। विकल्प द्वारा निर्विकल्प का अर्थ (यह है कि) उस विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प होता है तो विकल्प द्वारा कहने में आया है। आहाहा! ताराचन्दजी! ऐसी बात है, भाई!

वह तो सविकल्प निश्चयमोक्षमार्ग है,... देखो! **उसको साधक कहते हैं,...** ठीक! मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ... यह तो अपने नय में आ गया। १४२ (गाथा)। मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, एक हूँ, परिपूर्ण हूँ, ऐसा जो विकल्प उठे, वह भी निश्चयनय का पक्ष है। निश्चयनय के ज्ञान के अंश के उस राग में अटकना, वह पक्ष है। समझ में आया? व्यवहार से बन्ध है। अनेक है। उस व्यवहार को गौण करके कहा गया है। व्यवहार को गौण करके कहा गया है परन्तु निश्चय में मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, यह जो कहा, **मैं अनन्त ज्ञानरूप हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ, ऐसा सोहं...** ऐसा जो विकल्प, वह निश्चयनय के विकल्प का एक पक्ष है। आहाहा! प्रवीणभाई! उसे भी छुड़ाया है। क्योंकि निश्चयनय के पक्ष में भी जो विकल्प उठा है, वह राग है, वह आस्रव है, वह आकुलता है, दुःख है। आहाहा! उसे यहाँ साधक कहना, वह भी व्यवहारनय है। उसे कहना तो निश्चय है। समझ में आया? है?

वह तो सविकल्प निश्चयमोक्षमार्ग है, उसको साधक कहते हैं,... अन्दर में यह विकल्प उठता है। निश्चयनय के पक्ष का विकल्प। आहाहा! उसे साधक कहते हैं। वह साधक भी आरोप से कथन है। साधक तो राग से भिन्न पड़कर प्रज्ञाब्रह्म, प्रज्ञाछैनी से राग को छेदकर अन्दर में एकाग्र हुआ तो निश्चय साधक तो वह है। जहाँ प्रज्ञाछैनी कहा न? निश्चय साधक तो वह है, परन्तु उसमें यह विकल्प आया, उसे व्यवहार साधक का आरोप दिया। उसमें निश्चय का आरोप दिया। जैसे निश्चय सम्यग्दर्शन है, अपने आश्रय से अनुभव-वेदन हुआ, उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है, वह है तो राग, परन्तु उसे समकित का आरोप देकर व्यवहार समकित कहा है। समझ में आया? ऐसा यहाँ साधक में लेना। साधक दो प्रकार के नहीं। जैसे मोक्षमार्ग दो प्रकार के नहीं। मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है। मार्ग एक ही है। उसी प्रकार साधक दो प्रकार के नहीं, साधक तो एक ही प्रकार का है। आहाहा! साधक कहो या मार्ग कहो, वह तो सब एक ही है। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : निश्चयनय का आरोप दिया गया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आरोप कहा न। मोक्षमार्गप्रकाशक, देखो!

'अब मोक्षमार्ग तो कहीं दो है नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है।' निरूपण अर्थात् कथन। इसी प्रकार साधक भी दो प्रकार से नहीं, साधक का निरूपण दो प्रकार से है, ऐसा लेना। आहाहा! है? 'जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपण किया, वह तो निश्चय है। जहाँ मोक्षमार्ग तो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है अर्थात् सहचारी है।' राग की मन्दता साथ में है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि। उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहें, वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है। निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र यह लक्षण है। इसी प्रकार यह साधकपने भी यह लक्षण ले लेना। आहाहा! व्यवहार साधक कहा, वह आरोप से और निश्चय मोक्षमार्ग में विकल्प को साधन कहा, वह भी आरोप से। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ तो वहाँ तक लिया है कि सच्चा निरूपण, वह निश्चय है। है न? और उपचार निरूपण, वह व्यवहार है। निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार का मोक्षमार्ग है। परन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग और एक व्यवहार मोक्षमार्ग... फिर भाषा कैसी है? एक निश्चय

मोक्षमार्ग और एक व्यवहार मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। इससे यह टोडरमलजी का पण्डितों को नहीं जँचता, इसलिए ऐसा कहते हैं न? बनारसीदास और टोडरमलजी अध्यात्म की भाँग पीकर सब नाचे हैं। ललितपुर में (ऐसा कहते हैं)। अरे! भगवान!

मुमुक्षु : टोडरमल को भ्रम था, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और रतनचन्दजी कहते हैं। रतनचन्दजी कहते हैं, दो मोक्षमार्ग न माने, वह भ्रम है। यह (टोडरमलजी) कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग माने वह भ्रम है। क्या हो? वह आत्मा है, परन्तु उसे उस प्रकार का स्वयं आश्रय से न बैठे, तब तक क्या हो? आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं, देखो! एक निश्चय मोक्षमार्ग और एक व्यवहार मोक्षमार्ग, ऐसे दो मानना मिथ्या है। निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार दोनों को उपादेय माने, वह भी भ्रम है। क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप परस्पर विरोधता सहित है। क्योंकि शास्त्र में ग्यारहवीं गाथा में कहा है कि व्यवहार अभूतार्थ है और सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता। किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है, वह तो व्यवहार है। आहाहा! किसी अपेक्षा से उपचार से अन्यथा कहता है, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसी बात है। व्यवहार साधक कहा, वह भी निमित्त का ज्ञान कराने को। है तो अन्यथा दूसरी बात।

इसी प्रकार निश्चय मोक्षमार्ग के दो प्रकार—विकल्प जो है, वह भी आस्रव है। आहाहा! समझ में आया? उसका—निश्चय का कथन दो प्रकार से कहा। परन्तु विकल्प है, वह आस्रव है। आस्रव के कारण से निर्विकल्प होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प द्वारा निर्विकल्प अर्थात् विकल्प को छोड़े तब निर्विकल्प होता है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में पाठ तो ऐसा है।

मुमुक्षु : पहले सविकल्प होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सविकल्प हो, वह दूसरी बात है, परन्तु उसके कारण निर्विकल्प

होता है (ऐसा नहीं है)। इसमें है न! इसमें रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न? सविकल्प द्वार द्वारा, ऐसा पाठ है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। **सविकल्प द्वार से ही निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहते हैं।** वहाँ भी यह लिया है, हों! द्वारा, द्वार द्वारा, ऐसा है। विकल्प द्वार द्वारा अन्दर में जाता है। वह द्वार छोड़कर जाता है। यह स्पष्टीकरण भाई ने बहुत किया है। धर्मदास क्षुल्लक ने। बड़ा चित्र दिया है। हाथ का। यह नित्य है, वह अनित्य है, एक है, उस द्वार से भी जाता है अन्दर में। उस द्वार को पकड़ने योग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? धर्मदास क्षुल्लक ने बहुत सरस किया है। उसमें से विवाद उठाया कि सम्यग्ज्ञान दीपिका में यह है, वह सोनगढ़ का है। अरे! प्रभु! सोनगढ़ व्यभिचारी मार्ग है, ऐसा (वे लोग) कहते हैं। अरे! प्रभु! भगवान! भगवान! यह तुझे शोभा नहीं देता। भाई! वह आत्मा है, भाई! अरेरे! आहाहा!

प्रभु! तू तो पूर्णानन्द का नाथ है न, भाई! उससे तुझे आनन्द मिलेगा और यह विकल्प से माने और राग से माने, प्रभु! यह तो दुःख होगा। दुःख होगा, दुःख। आनन्द दुःख में पिल जायेगा। आहाहा! यह व्यवहार से होता है और ऐसा झूठा आरोप करना, बापू! उसमें विपरीत अभिप्राय में वर्तमान भी दुःख है, प्रभु! तुझे भविष्य में भी यह आनन्द दुःख में दब जायेगा। यह वस्तु है, भाई! समझ में आया? देखो न! लो! विकल्परहित, यहाँ कहा न?

मैं अनन्त ज्ञानरूप हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ, ऐसा सोहं का चिन्तवन है,... ऐसा यहाँ (रहस्यपूर्ण चिट्ठी में) है, देखो! निज स्वरूप में **अनेक प्रकार की अहंबुद्धि धारता है, 'मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ'—इत्यादि विचार होने पर सहज ही आनन्द तरंग उठती है, रोमांच (उल्लसित) होते हैं, तत्पश्चात् ऐसे विचार तो छूट जाये,...** यह विकल्प द्वारा उसमें कहा। शैली तो सब... टोडरमल, बनारसीदास आदि पण्डितों ने बहुत सरस बात (की है)। बनारसीदास ने तो सामान्य का विशेष स्पष्टीकरण किया है, स्पष्टीकरण है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में भी सामान्य बात जो है, उसका स्पष्टीकरण किया है। एक बार भाई कैलाशचन्दजी ने कहा था कि जो-जो आधार है, उसका आधार कहाँ है, यह आप खुल्ला करो तो बहुत अच्छा। मैंने कहा, इतना अधिक समय यहाँ कहाँ है? उसमें जो है न? वह किस-किस शास्त्र के आधार का उसमें है। सब शास्त्र

के ही आधार हैं। समझ में आया ? टोडरमलजी ने घर का कुछ कहा नहीं। बनारसीदासजी ने घर का कहा नहीं। भाई ! जो आचार्यों के हृदय थे, अन्तर का जो अभिप्राय था, उसे उन्होंने खुल्ला किया है। इसलिए लोगों को जरा कठिन लगता है।

यह तो कहा नहीं वहाँ ? बन्ध अधिकार में। पर को जिलाऊँ, मारूँ, सुखी करूँ, दु:खी करूँ, यह अध्यवसाय मिथ्यात्व है। क्योंकि वह कर नहीं सकता। तो आचार्य कहते हैं कि हम तो ऐसा कहते हैं कि पर को जिलाता हूँ, ऐसा मानना मिथ्यात्व है, तो पर के आश्रय से जो व्यवहार है, वह सब छुड़ाया है और छुड़ाकर निष्कम्प निश्चय में रहे, वह बात बतायी है। अमृतचन्द्राचार्य (कृत) २७२ गाथा का उपोद्घात। २७२ गाथा का उपोद्घात। २७२ गाथा में तो यह आया, 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' वह विकल्पवाला नय नहीं। व्यवहार है, उसे छुड़ाया है। आहाहा ! मार्ग ऐसा है, बापू ! तेरा पद अन्दर पड़ा है।

कहा था न कल ? विज्ञानरसकन्द भगवान है वह तो। आहाहा ! एक समय की पर्याय की भूल न देखो। एक समय की भूल। एक 'क' बोले, उसमें असंख्य समय में एक समय, उसकी भूल। राग की रुचि छोड़ दे तो वह प्रभु विज्ञानरस भगवान है। आहाहा ! ध्रुव भगवान है, नित्यानन्द भगवान, शाश्वत भगवान है। आहाहा ! अविनाशी भगवान है। केवलज्ञान की पर्याय तो नाशवान है। आहाहा ! नियमसार में ३८ गाथा में कहा— संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य-पाप आदि तो नाशवान है। अविनाशी त्रिकाल भगवान नित्यानन्द ध्रुव स्वरूप, वह अविनाशी है। आहाहा ! वह अविनाशी भगवान है। केवलज्ञान की पर्याय भगवान है, परन्तु वह नाशवान भगवान है। आहाहा !

दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो ! कहाँ उठाकर रखते हैं ? बापू ! वहाँ जा न ! तू भगवान है न ! उसका अनादर करेगा तो हिंसा है। राग और अल्पज्ञपने का आदर करेगा तो प्रभु पूर्णानन्द के नाथ का अनादर (हुआ), इसलिए वह तो हिंसा है। अर्थात् कि ऐसा जीवन मैं नहीं, इतना मैं नहीं, इसका नाम हिंसा है। आहाहा ! पर की हिंसा या पर की दया तो कौन पालता है ? कोई पाल नहीं सकता। स्वयं पूर्णानन्द का नाथ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु का स्वीकार अर्थात् 'है'—ऐसा स्वीकार, उस जीवन्त ज्योति को प्रतीति में लिया, वह उसका जीवन अर्थात् वह सम्यग्दर्शन है और जीवन्त ज्योति

भगवान परमात्मस्वरूप का आदर नहीं करके, उसका अनादर करके रागादि और अल्पज्ञपने की पर्याय का आदर करना, वह तो है, वह नहीं—ऐसा कहा, इसलिए वह तो हिंसा हुई। आहाहा! पूर्ण स्वरूप है, ध्रुव भगवान है, उसका आदर न करके राग का, निमित्त का और अल्पज्ञ का-तीन का; निमित्त का आदर, राग का आदर और अल्पज्ञ एक समय की पर्याय का आदर, उसमें त्रिकाल का अनादर हुआ। आहाहा! अर्थात् कि मैं वह त्रिकाली ध्रुव नहीं। है, वह नहीं, इसका नाम हिंसा है। आहाहा! समझ में आया?

अब यहाँ आये अपने। **जहाँ पर कुछ चिन्तवन नहीं है, कुछ बोलना नहीं है,...** 'माचिट्ठेह' आता है न? द्रव्यसंग्रह में। यह दृष्टान्त देंगे। **कुछ बोलना नहीं है, और कुछ चेष्टा नहीं है, वह निर्विकल्पसमाधिरूप साध्य है,...** देखो! उस विकल्प को व्यवहार से साधक कहा। किस विकल्प को? मैं निर्विकल्प हूँ, शुद्ध हूँ, पूर्ण हूँ—ऐसा जो विकल्प। निश्चय मोक्षमार्ग का वह प्रकार। स्व के आश्रय से उत्पन्न होते विकल्प को यहाँ निश्चय कहा, अपेक्षा से। बाकी है तो वह बन्ध का कारण। आहाहा! **निर्विकल्पसमाधिरूप साध्य है,...** और सविकल्प निश्चयमोक्षमार्ग साधक। दो आये न? सविकल्प निश्चयमोक्षमार्ग, साधक; निर्विकल्प मोक्षमार्ग, वह साध्य। समझ में आया? पर की अपेक्षा नहीं। यहाँ तो स्व की अपेक्षा में मैं पूर्ण शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, एक हूँ, अखण्ड हूँ—ऐसे स्व के आश्रय का विकल्प, उसे निश्चयमोक्षमार्ग साधकरूप से कहा है। वह उपचार से है। और पूर्णानन्द निर्विकल्प समाधि की दृष्टि, पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन का निर्विकल्प अनुभव, वह निश्चयमोक्षमार्ग, वह साध्य है। उसको व्यवहार से साधक कहा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है, भाई!

मुमुक्षु : साधक नहीं और साधक कहना....

पूज्य गुरुदेवश्री : जो नहीं है, उसे निमित्त आदि की अपेक्षा से कहना, इसका नाम व्यवहार। यह आ गया न उसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक में। वह वस्तु नहीं, परन्तु निमित्त आदि का ज्ञान कराने को (कहा है)। निमित्त आदि क्यों लिया है?—कि भेद का ज्ञान कराने के लिये। यह तीन पर्याय है, वह भेद है। निमित्तादि शब्द पड़ा है। निमित्त और भेद, वह दो का ज्ञान कराने को इसे व्यवहार कहा गया है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? उसमें यह है। निमित्तादि की अपेक्षा, अभी वाँचा न?

जिनमार्ग में किसी जगह तो निश्चयनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है, उसे तो सत्यार्थ ऐसा ही जानना। किसी जगह व्यवहारनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है। देखो! व्यवहारनय की मुख्यतासहित कथन है। उसे, ऐसा है नहीं, परन्तु निमित्त आदि की अपेक्षा से उपचार किया है। निमित्त आदि। अर्थात् निमित्त और भेद। आहाहा! राग को साधन कहा, वह भी निमित्त का ज्ञान कराने को और तीन को कहा, तीन पर्याय भेदवाली, वह भी भेद है, उसका ज्ञान कराया है। आहाहा! कहो, शशीभाई! देखो! निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है। इस प्रकार जानने का नाम दोनों नयों का ग्रहण है, परन्तु दोनों नयों के व्याख्यान को समान और सत्यार्थ जानकर, यह भी सच्चा और यह भी सच्चा, ऐसे भ्रमरूप प्रवर्तने से तो दोनों नयों का ग्रहण करना कहा नहीं। बहुत स्पष्टीकरण किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत स्पष्टीकरण है। व्यवहार के पक्षवाले को तो यह मान्य नहीं होता। इसलिए अभी उड़ाते हैं न। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) नहीं। अरे... भगवान! तेरे हित की बात है न! आहाहा!

कुछ चेष्टा नहीं है, वह निर्विकल्प समाधिरूप साध्य है, यह तात्पर्य हुआ। इसी कथन के बारे में द्रव्यसंग्रह की साक्षी देते हैं। देखो! '**मा चिट्ठह**' है न? **सारांश यह है कि हे जीव! तू कुछ भी काय की चेष्टा मत कर, कुछ बोल भी मत,...** यह वाणी आयी। **मौन से रहे...** यह वाणी का आया, अब विकल्प—मन का आया। **कुछ चिन्तवन मत कर।** तीनों आये। मन से भी नहीं। आहाहा! **सब बातों को छोड़, आत्मा में आपको लीन कर,...** आहाहा! यह मार्ग है। **आत्मा में आपको...** अपनी निर्मल पर्याय को वहाँ लीन कर। राग से नहीं, पर से नहीं। आहाहा! **आत्मा में आपको लीन कर, यह ही परम ध्यान है।** आहाहा! मोक्ष का मार्ग यह है, भाई! सूक्ष्म बात, बापू!

भगवान! सुख के पंथ में जाने का पंथ तो यह है। बाकी दुःख के पंथ में तू अनादि से दौड़ गया है, प्रभु! आहाहा! इस आस्रव के पंथ में—राग के पंथ में (दौड़ गया है)। आहाहा! दुनिया में कितने दुःख होते हैं, देखो न! इस राग के पंथ में दौड़ने से तो दुःख के पंथ में दौड़ गया है। यह सुख के पंथ में जाना हो तो... आहाहा! इस आत्मा में लीन हो, वह सुख के पंथ में जाना है। आहाहा! पहले यह पक्ष और निर्णय तो करे कि यह वस्तु तो यह है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी शरण में जाना, उसका

आश्रय लेना, उसमें आत्मा की निर्मल पर्याय द्वारा लीन होना, बस! यह एक वस्तु है। बारह अंग न... ऐसा कहा न? बारह अंग में भी आत्मध्यान-अनुभूति करने को कहा है। कलशटीका में आता है। कलशटीका है न? बारह अंग भी विकल्प है। परन्तु बारह अंग में अनुभूति कही है। आहाहा! यह कलशटीका में है। राजमलजी कृत टीका। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! इसकी हाँ तो कर। आहाहा! भले कठिन लगे। अभ्यास नहीं, इसलिए इसे यह दुष्कर लगे। अभ्यास से यह सरल चीज़ है। यह है, उसे प्राप्त करना है, उसमें बाहर में कहाँ जाना है इसे। आहाहा! वस्तु भगवान विज्ञानरस, विज्ञानरस कहा है न? विज्ञानशक्ति, विज्ञानसामर्थ्य, विज्ञानस्वभाव। ऐसा विज्ञान स्वभावरूप भगवान ध्रुव। आहाहा! उसमें लीन होना। आया न? वह परमध्यान है। उसका नाम ध्यान है, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। यह व्यवहार-निश्चय का आज बहुत आया। प्रवीणभाई! तुम सब आये हो... भाई नहीं आये अभी? नहीं आये। नवरंगभाई। देरी से आयेंगे, ठीक! आहाहा! अरे! भाई! इसमें वाद-विवाद कहाँ है? 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।' नाटक समयसार में कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : खोजी जीवे, वादी मरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : शोधक जीवे। खोजी जीवे, वादी मरे। हमारे दामोदर सेठ के साथ बड़ी बात चली थी। (संवत्) १९८३ के वर्ष। वे बाहर के बहुत आग्रही थे न! कहा, टोडरमलजी कहते हैं, काललब्धि कोई वस्तु नहीं। १९८३ के वर्ष की बात है। १७ और ३२, कितने वर्ष हुए? ४९। एक सेठ थे। आग्रही थे। पैसेवाले थे। उस समय उनके पास दस लाख थे। साठ वर्ष पहले तो दस लाख किसी के पास थे न! आजकल तो अब... अभी के पच्चीस लाख, वे पूर्व के एक लाख। वे बहुत आग्रही थे। वे कहे, नहीं। निश्चय काल होनेवाला होगा, तब होगा। परन्तु वह काललब्धि है, परन्तु काललब्धि का ज्ञान किसे होता है? धारणा की है कि इस काल में होता है। ऐसी धारणा की, उसमें ज्ञान कहाँ आया? काललब्धि का ज्ञान तो उसे होता है कि जो ज्ञायक की दृष्टि करता है, उसे काललब्धि का ज्ञान होता है। तो उसे काललब्धि यथार्थ है। कहा, देखो! टोडरमलजी तो ऐसा कहते हैं। काललब्धि कोई वस्तु नहीं। आता है? सातवें (अधिकार) में। जिस समय में हुआ, वह काललब्धि और वह भाव हुआ, वह भवितव्यता। वह भी पुरुषार्थ

से होता है, ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा! काललब्धि वस्तु तो है, नहीं है, ऐसा नहीं है। परन्तु उस काललब्धि का यथार्थ ज्ञान किसे होता है? जिसने ज्ञायकभाव की दृष्टि की, उसे काललब्धि का यथार्थ ज्ञान हुआ कि इस काल में हुआ।

मुमुक्षु : इसका अर्थ तो ऐसा हुआ कि जिसे आत्मज्ञान हो, उसका सब ज्ञान सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही सब सच्चा है। उसे पाँचों कारण कहे नहीं वहाँ भाई ने? टोडरमलजी ने नौवें अधिकार में। एक कारण हो, वहाँ पाँचों कारण साथ में ही हैं। आहाहा! काललब्धि है, वहाँ पुरुषार्थ है, स्वभाव है, भवितव्यता है, निमित्त का अभाव है। पाँचों ही कारण एकसाथ हैं। उसमें क्या है? आहाहा! टोडरमलजी ने तो बहुत काम (किया है)। स्वयं माना है, ऐसा होना चाहिए, ऐसा छोड़कर सत्य क्या है, इसके ऊपर उसका लक्ष्य (होना चाहिए)।

विकल्पसहित है, वह तो आस्रवसहित है... आहाहा! है न? ऊपर संस्कृत में है। '**सवियप्पं होइ तह य अवियप्पं। सवियप्पं सासवयं णिरासवं**' देवसेनाचार्य कृत तत्त्वसार गाथा-५। देवसेनाचार्य हुए है न? उन्होंने बनाया है तत्त्वसार, हों! तत्त्वार्थसार नहीं। तत्त्वसार, उसकी पाँचवीं गाथा है। गाथा-५। यहाँ उतारी है, मैंने इसमें लिखा है। आहाहा!

आत्मा जो वस्तु है, शाश्वत् वस्तु है, शाश्वत् तत्त्व-पदार्थ है। उस सम्बन्धी के दो प्रकार करना। एक विकल्पसहित और एक निर्विकल्प। उस सम्बन्धी के दो भेद में भी विकल्प, वह आस्रव है। आहाहा! पर की दया, व्रत, तप और भक्ति की तो बात कहाँ? वे तो आस्रव हैं। वे कहीं साधन है नहीं। आहाहा! अर्थ में दौलतरामजी ने कहा है, वह तो एक तीव्र मिथ्यात्व को मन्द करना, ऐसी उसकी दशा होती है तो उसे मिथ्यात्व के अभावरूप स्वभाव सुनने का अधिकारी होता है, ऐसा। समझ में आया? अपने यह पृष्ठ लिखा है, वह उसमें से लिखा है। क्योंकि बीच का भाग है, वह इसमें नहीं। इसलिए यह लिखा था। उसमें से यह पृष्ठ अलग किया है। लिखकर। यह बीच का भाग है न? भाई का—टीकाकार का नहीं है इसलिए।

और जो निर्विकल्प है, वह आस्रव रहित है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी

आत्मतत्त्व सम्बन्धी दो प्रकार के विचार चलते हैं। एक, विकल्पसहित और एक, निर्विकल्प अनुभवसहित है। उसमें विकल्पसहित है, वह आस्रव है और निर्विकल्प दृष्टि, अनुभव हुआ, वह संवर, निर्जरा है। आहाहा! समझ में आया? अधिकार जरा ऐसा आया था न, इसलिए निश्चय-व्यवहार का (स्पष्टीकरण अधिक आया)।

मुमुक्षु : फिर से लेने योग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो फिर यह पृष्ठ से लेंगे। यह पृष्ठ है न अपने? परमात्मप्रकाश अध्याय-२, गाथा-१४ की संस्कृत टीका का अनुवाद।

हे जीव!... टीका में है न? यह अपने बाहर प्रकाशित किया है। **सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप निश्चय रत्नत्रय है लक्षण जिसका, ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग का साधक व्यवहारमोक्षमार्ग को जान।** मोक्षमार्ग को जान। कल यह स्पष्टीकरण किया था कि जान है, वहाँ निश्चय है, वह व्यवहार को जानता है। और जहाँ निश्चय नहीं, वहाँ ४१३ गाथा में व्यवहारमूढ़ कहा है। उसे व्यवहार जानता है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह अर्थ कल किया था। जो अकेला व्यवहार है, वह तो निश्चय अनारूढ़, अनादिरूढ़, व्यवहारमूढ़—ऐसे तीन विशेषण दिये हैं। परन्तु यहाँ तो व्यवहार जान, ऐसा कहा है। अर्थात् निर्विकल्प है, उसमें व्यवहार आता है, उसे जान। '**परिजानीहि**' ऐसा पाठ में है। यह १४ वीं गाथा। '**परिजानीहि**' जिसे सम्यक् है, उसे '**परिजानीहि**' होता है। सम्यग्दर्शन नहीं और व्यवहार '**परिजानीहि**' उसे हो सकता ही नहीं। न्याय समझ में आता है? अरे! ऐसी बातें सूक्ष्म पड़ती हैं। भगवानजीभाई! मार्ग बापू!... अरेरे! यह अकेला है। उसे कौन सहाय है? कोई सहाय नहीं, कोई सहाय नहीं। सहाय स्वयं अपना आनन्द का शरण सहाय है। आहाहा! स्वयं विद्यमान चीज़ है, वह सहायक है। आहाहा! विकल्प भी जहाँ सहाय नहीं। एक समय की पर्याय का आश्रय भी सहाय नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान निश्चय है, मोक्षमार्ग का साधक व्यवहार है, उसे जान।

जिसे जानने से तू कैसा हो जायेगा? परम्परा से पवित्र परमात्मा होगा। अर्थात् व्यवहार है। निश्चय है, वहाँ व्यवहार है। वह व्यवहार छोड़कर तू परम्परा मोक्ष को प्राप्त करेगा। आहाहा! **व्यवहार-निश्चयमोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं। वह इस प्रकार—**

वीतरागसर्वज्ञप्रणीत छह द्रव्यादि का सम्यक्श्रद्धान, उनका सम्यग्ज्ञान और व्रतादि का अनुष्ठानरूप व्यवहारमोक्षमार्ग है, निज शुद्ध आत्मा के सम्यक्श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्अनुष्ठानरूप निश्चयमोक्षमार्ग है... देखा! निश्चयमोक्षमार्ग है, वहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग आरोपित है। **अथवा व्यवहारमोक्षमार्ग साधक है, निश्चयमोक्षमार्ग साध्य है।** यह व्यवहार से कहा।

साधक का कथन दो प्रकार से है। साधक दो प्रकार से नहीं। आहाहा! जैसे मोक्षमार्ग कारण जो है, मार्ग कहो या कारण कहो, अर्थात् वास्तव में कारण का निरूपण, दो प्रकार का है। वास्तविक कारण तो एक ही है। आहाहा! परन्तु उस तत्त्वार्थ राजवार्तिक में आता है न? दोनों—निश्चय और व्यवहार दो कारण से कार्य होता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में आता है। दूसरे कारण का ज्ञान कराया है। आहाहा! यहाँ शिष्य बोला। अब शिष्य का प्रश्न है। अब पूरा हो गया, समय हो गया....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण १०, सोमवार
दिनांक-१८-१०-१९७६, गाथा-१४ - १५, प्रवचन-१०८

यह गुजराती है। पृष्ठ है यह। पहली बात यहाँ यह है, यहाँ जो निश्चय-व्यवहार चलता है, वह एकसाथ है, उसकी बात चलती है। बारहवीं गाथा में सामने है, भाई! यह निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग चलता है। फिर निश्चय और फिर व्यवहार कहेंगे।

वास्तव में तो यहाँ छठवें गुणस्थान में जो निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उसे यहाँ अपूर्ण निश्चय गिनकर, साथ में व्यवहार कहा, वह व्यवहार पूर्ण निश्चय का कारण है, ऐसा आरोप से कथन किया गया है। भाई नहीं आज। पंचास्तिकाय में है न अपने? पंचास्तिकाय १७२ गाथा, नहीं? वह व्यवहार। १७२ में है। **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्न साध्यसाधनभाव को अवलम्बकर सुख से तीर्थ की शुरुआत करते हैं....** उसमें बहुत बात है। पाठ ऐसा है।

मुमुक्षु : जिसे निश्चय हो, उसे व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी बात है। व्यवहारनय उसे होता है। जिसे अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यघन निर्विकल्प की अन्तर प्रतीति अनुभव में हुई हो, और आत्मा का ज्ञान भी हुआ हो, आत्मा में स्थिरता भी छठवें गुणस्थान के योग्य हो, उसके साथ व्यवहार कैसा होता है, वह व्यवहार परम्परा कारण कहने में आया है। समझ में आया? क्योंकि **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्न साध्यसाधन...** यहाँ इसका अर्थ किया है। ३ है न? **मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को प्राथमिक भूमिका में, साध्य तो परिपूर्ण शुद्धता से परिणत आत्मा है और उसका साधन व्यवहारनय से (आंशिक शुद्धि के साथ-साथ रहा हुआ) भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं। इस प्रकार जीवों को व्यवहारनय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गये हैं।** वरना पाठ तो ऐसा है, **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से...** परन्तु व्यवहारनय किसे? जिसे छठवें गुणस्थान के योग्य अन्दर निश्चय आत्मप्रतीति अनुभव, आत्मा का ज्ञान और आत्मा में स्थिरता—रमणता छठवें गुणस्थान के योग्य हुए हों, उसे भेदवासित बुद्धिवाला जीव कहा गया है। १७२ गाथा में है। क्योंकि उसे अभी राग छठवें गुणस्थान में

व्यवहाररत्नत्रय का राग है। समझ में आया? ऐसी बात! क्योंकि यहाँ तीन बोल साथ में लिये हैं। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। ऐसा नहीं लिया कि दर्शन, ज्ञान और फिर व्यवहार, वह आगे साधन है, ऐसा नहीं लिया। समझ में आया? दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन निश्चय लिये हैं, परन्तु पूर्ण निश्चय नहीं, इसलिए उसके साथ व्यवहार है, उसे गिनने में आया है। यहाँ यह शैली है। समझ में आया?

अपना आत्मा, जो स्वरूप शुद्ध है, द्रव्यस्वभाव जो वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी निश्चय स्वआश्रित प्रतीति है और स्वआश्रय का आत्मज्ञान भी है और स्वआश्रय में अल्प स्थिरता भी है। ऐसी भूमिका में जो व्यवहार है, उसे परम्परा कारण कहा गया है। निश्चय है, वह साक्षात् कारण है और विकल्प है, वह परम्परा कारण है। परन्तु इस अपेक्षा से कहने में आया है। समझ में आया? यह बात है वहाँ। बारहवीं गाथा में कहा न? पण्डितजी! पहले १२वीं गाथा में है न? देखो!

दस गाथा पर्यन्त मोक्ष का अधिकार कहा। ग्यारहवीं में मोक्ष का फल कहा। और १२वीं से **उन्नीस दोहापर्यन्त निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग का व्याख्यान करते हैं:—** है? पण्डितजी! १२वीं। १२वीं के ऊपर पहली लाईन-पहली पंक्ति है न? **'अथान्तरमेकोनविंशतिसूत्रपर्यन्तं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गव्याख्यानस्थलं कथ्यते'** १२वीं गाथा के ऊपर। दस गाथा पर्यन्त मोक्ष का अधिकार चला। मोक्ष किसे कहते हैं? ११वीं में मोक्ष का फल अनन्त चतुष्टय कहा। १२वीं से निश्चय-व्यवहार का स्वरूप चलता है। पाठ है। देखो! **उन्नीस दोहापर्यन्त निश्चय और व्यवहार...** अकेला व्यवहार का नहीं। समझ में आया? **निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग का व्याख्यान करते हैं:—** तो वहाँ १२वीं में यह आया। १३वीं में निश्चय की बात आयी। अब १४वीं में निश्चय के साथ व्यवहार कैसा होता है, यह बात चली है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन!

मुमुक्षु : १५ में अकेला व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : १५वीं में अकेला व्यवहार कहते हैं। परन्तु वह निश्चय है उसे। छठवें गुणस्थान के योग्य तीन हैं। तीन साथ में लिये हैं न? दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन लिये हैं न?

१३६) पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।
दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि॥१३॥

दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन साथ में लिये हैं। अपना आत्मा जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसका दर्शन-स्वसन्मुख होकर प्रतीति होना, आत्मा के आनन्द के वेदन में प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन। और आत्मा चिदानन्द पूर्ण है, उसका ज्ञान करके आनन्दसहित का ज्ञान हो, वह स्वसंवेदन निश्चयज्ञान और स्वरूप में लीनता हो, परन्तु अपूर्ण लीनता है, इससे व्यवहार साथ में है, उस व्यवहार का वर्णन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में लेना है। यहाँ साथ में शुरु किये हैं। १३ में निश्चय कहा और १४ में निश्चयसहित व्यवहार कैसा होता है, यह बात चली। १४ में यह चला। अपने यहाँ पृष्ठ में चला है न?

यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया कि निश्चयमोक्षमार्ग तो निर्विकल्प है,... टीका में भी है। १४। **उस समय (निर्विकल्प निश्चयमोक्षमार्ग के समय तो) सविकल्प मोक्षमार्ग होता नहीं। तो फिर व्यवहारमोक्षमार्ग किस प्रकार साधक है?** क्या प्रश्न किया, समझ में आया? कि आत्मा जब सातवें गुणस्थान के निर्विकल्प ध्यान में है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निश्चय से एकत्व है, तब तो व्यवहार विकल्प है नहीं और तुम व्यवहार विकल्प को परम्परा साधक कहते हो, वह किस प्रकार मिलान खाता है? यह प्रश्न है। है न?

उसका समाधान **भूतनैगमनय से परम्परा से (साधक) कहते हैं।** यह छठवें गुणस्थान में स्वभाव के आश्रय से जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, वह तो है ही। साथ में व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, वह नैगमनय से कारण है, ऐसा कहने में आया है। उस विकल्प का अभाव करके सप्तम गुणस्थान आता है। परन्तु उस विकल्प को नैगमनय से उसका कारण कहा है। पण्डितजी! समझ में आया? भूतनैगमनय। उस समय है नहीं। परन्तु पूर्व में विकल्प था, छठवें गुणस्थान के योग्य दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो है, परन्तु साथ में विकल्प था, उस समय निर्विकल्प सप्तम गुणस्थान नहीं है। तो जब निर्विकल्प है, उसका कारण विकल्प तुम कहते हो तो निर्विकल्प के काल में विकल्प तो है नहीं। भूतनैगमनय से। प्रवीणभाई! समझ में आया? यह सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! व्यवहार तो...

पहले कहा था, जहाँ आत्मा के दर्शन, ज्ञान है नहीं, वहाँ तो व्यवहार को मूढ़ कहा है। ४१३ गाथा में। व्यवहारमूढ़ है। और इस १४वीं गाथा में तो '**परिजानीहि**' है।

व्यवहार को जाननेवाला है, ऐसा कहा है। समझ में आया? व्यवहार को जाननेवाला यहाँ कौन है? छठवें गुणस्थान में जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र आनन्दादि की पर्याय है, उसके साथ जो व्यवहार का विकल्प है, उसे '**परिजानीहि**'—जानना, बराबर जानना, यह बात चलती है। और वह विकल्प परम्परा कारण है अर्थात् उसे छोड़कर सप्तम में अन्दर स्थिर होगा अथवा पूर्ण निश्चय तो चौदहवें में अन्तिम समय में (होगा)। पूर्ण निश्चय तो चौदहवें (गुणस्थान) के अन्तिम समय में है। समझ में आया? परन्तु निर्विकल्पदशा में सप्तम में परमभाव कहने में आया है। बारहवीं गाथा। '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं**' जयसेनाचार्यदेव की टीका में वहाँ लिया है। सप्तम गुणस्थान में परमभाव लिया है। अमृतचन्द्राचार्य ने परमभाव चौदहवें में अन्त में लिया है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, जब तक निश्चय निर्विकल्प सप्तम गुणस्थान नहीं, अबुद्धिपूर्वक राग रहा, उसकी गिनती नहीं, वह निश्चय का कारण निश्चय से तो अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो शुद्ध है, वही कारण है। यह अपने पंचास्तिकाय में डाला है। भाई! इस श्लोक में। यह श्लोक है न? पहला व्यवहार आता है, उसका अर्थ किया है कि व्यवहार अर्थात् छठवें गुणस्थान का विकल्प, वह पहला गिनने में आया है, सप्तम बाद में गिनने में आया है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग भारी कठिन, भाई!

कहते हैं कि सविकल्प-निर्विकल्प भेद द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग भूतनैगमनय से परम्परा कहा। अब सविकल्प और निर्विकल्प भेद द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग दो प्रकार से कहा। एक अपना आत्मा शुद्ध निश्चय की दृष्टि, ज्ञान और रमणता अल्प तो हुए हैं, वह निर्विकल्प है। समझ में आया? और सविकल्प—मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है, वह निश्चय का दूसरा भेद सविकल्प आस्रववाला निश्चय है। आहाहा! है? **वहाँ 'मैं अनन्त ज्ञानरूप हूँ, इत्यादि सविकल्परूप साधक है...** यह छठवें गुणस्थान की दशा की बात करते हैं। **और निर्विकल्प समाधिरूप साध्य है, ऐसा भावार्थ है।** ऐसा समझना। आहाहा! टीका में आ गया है। देखो! १४ में आ गया है। अन्त में आ गया न?

सविकल्प निश्चयमोक्षमार्ग है, उसको साधक कहते हैं, और जहाँ पर कुछ चिन्तवन नहीं है, कुछ बोलना नहीं है, और कुछ चेष्टा नहीं है, वह निर्विकल्प समाधिरूप

साध्य है, यह तात्पर्य हुआ। 'मा चिट्ठह' द्रव्यसंग्रह का आधार दिया है। कुछ भी चेष्टा न कर, कुछ बोल नहीं, मौन रह, चिन्तवन न कर। **सब बातों को छोड़, आत्मा में आपको लीन कर, यह ही परमध्यान है।** यह निश्चय है। द्रव्यसंग्रह की (गाथा है)। समझ में आया? **श्री तत्त्वसार में भी सविकल्प-निर्विकल्प निश्चयमोक्षमार्ग के कथन में यह गाथा कही है...** यहाँ यह लिखा है। **इसका सारांश यह है कि जो आत्मतत्त्व है, वह भी सविकल्प-निर्विकल्प के भेद से दो प्रकार का है,...** आहाहा! अरे! सूक्ष्म बातें। **जो विकल्पसहित है, वह तो आस्रवसहित है,...** क्या कहते हैं, समझ में आया? निश्चय के दो प्रकार। एक अत्यन्त निर्विकल्प और एक सविकल्प। निश्चय के। सविकल्प क्यों लिया? कि अपने में अनन्त शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, इस अपेक्षा से उसे निश्चय कहा। परन्तु है तो विकल्प। वह विकल्प राग है, वह राग आस्रव है। आहाहा! और रागरहित आत्मा के आश्रय से जितने वीतरागी निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र प्रगट किये हैं, वह वीतरागी निर्विकल्प है। और वह पूर्ण निर्विकल्पता का कारण है तो यह निर्विकल्प (दशा), परन्तु व्यवहार से उस विकल्प को परम्परा कारण कहा गया है। कान्तिभाई! निश्चय-व्यवहार का बड़ा घोटाला अभी है। आहा!

यहाँ तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन है, उसके साथ व्यवहार है, उसकी बात ली है। जिसे दर्शन, ज्ञान है और चारित्र नहीं, उसकी बात यहाँ ली ही नहीं। बारह, तेरह लिये हैं। जिसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो है, अपने भगवान आत्मा का आनन्द का अनुभव, आनन्द में प्रतीति, आनन्द का ज्ञान और आनन्द में लीनता (हुए हैं)... आहाहा! ऐसी दशा तो छठवें गुणस्थान के योग्य है। समझ में आया? साथ में व्यवहार की बात करते हैं। और यह भी कहते हैं **'परिजानीहि'**—व्यवहार को बराबर जान। क्योंकि निश्चय हुआ है तो जगा है, तो उसे जाननेवाला कहा है। जिसे निश्चय नहीं, अकेला व्यवहार है, वह तो मूढ़ है। क्योंकि व्यवहार को जाननेवाला जगा नहीं। आहाहा! आज बराबर हिम्मतभाई नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो यह कहते हैं, **जो विकल्पसहित है, वह तो आस्रवसहित है, और जो निर्विकल्प है, वह आस्रवरहित है।** आहाहा! आत्मा अपने निर्विकल्प अभेद अनुभव में स्थित हो, सप्तम गुणस्थान में, तब तो विकल्प है नहीं, राग है नहीं। परन्तु जब छठवें

गुणस्थान में अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्मल है, उसके साथ व्यवहार का विकल्प है तो कहते हैं कि निश्चय जो परिणति है, वह साक्षात् निर्विकल्पता का कारण है और विकल्प है, वह परम्परा कारण है। इसलिए उसका अभाव करके होगा। भूतनैगमनय से (कहा)। अरे! ऐसी बातें हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है। आहा! देखो! अब १५वीं गाथा के ऊपर।

इस तरह पहले महास्थल में अनेक अन्तस्थलों में से उन्नीस दोहों के स्थल में तीन दोहों से निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन किया। भाई! १२वें में जो शुरु किया था निश्चय-व्यवहार स्वरूप का, वह यहाँ तीन गाथायें कहीं। तीन गाथाओं में यह निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में कहे हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : छठवें गुणस्थान में निश्चय-व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें गुणस्थान में निश्चय-व्यवहार दोनों हैं।

मुमुक्षु : चौथे में?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे में चारित्र नहीं, इसलिए उपचार से मोक्षमार्ग है।

मुमुक्षु : प्राथमिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ प्राथमिक छठवाँ गुणस्थान लेना। यहाँ तो छठवाँ प्राथमिक यह लेना है। प्राथमिक मिथ्यात्वसहित की (बात नहीं है)। वह तो जरा दौलतरामजी ने स्पष्टीकरण कोष्टक में किया। टीका में नहीं है। समझ में आया?

जैसे १२वीं गाथा में... सम्यग्दर्शन की बात ११वीं गाथा में कही। अब इसके साथ मिलाते हैं। ११वीं में ऐसा कहा कि भूतार्थ भगवान पूर्णानन्द प्रभु के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, यह निश्चय। अब १२वीं में कहा, निश्चय तो हुआ, तो उसे व्यवहार है या नहीं? अपनी पर्याय में निर्बलता से जो अशुद्धता है और शुद्धता की अल्पता है, उसे व्यवहार कहते हैं। उसे व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया? वहाँ चौथे गुणस्थान सहित की बात है। यद्यपि उसमें दूसरी गाथा से तीन से लिया है।

जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं॥२॥

यह तीन से लिया है। दूसरी गाथा से। वहाँ चारित्रप्रधान है तो इस शैली से लिया

है। **'चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण'** अपने आनन्द में प्रतीति, ज्ञान और रमणता है, वह स्वसमय है और राग में रमणता और राग में लक्ष्य है, वह परसमय है। आचार्य हैं न, मुनि हैं तो तीन को साथ में लेते हैं। समझ में आया? और यहाँ जो ११वीं से लिया, उसमें अकेले सम्यग्दर्शन की बात ली है। और दोपहर में १४४ लिया, वहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान दो से लिया। वहाँ चारित्र नहीं लिया। आहाहा! समझ में आया? ताराचन्दजी! बात बहुत गम्भीर, भाई! पक्षपातवालों को यह कठिन पड़े, ऐसा है।

यहाँ कहते हैं, देखो! **इस तरह पहले महास्थल में...** १२वीं गाथा से १९ गाथा शुरु की न? **अनेक अन्तस्थलों में से उन्नीस दोहों के स्थल में तीन दोहों से...** १२, १३ और १४। हुई न? **तीन दोहों से निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन किया।** क्या कहा? १२, १३ और १४ से १९ गाथा पर्यन्त निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन करेंगे। ऐसा शुरु किया। उसमें से १२, १३ और १४ में निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन किया। दोनों का किया। समझ में आया? अब **आगे चौदह दोहापर्यन्त व्यवहार मोक्षमार्ग का पहला अंग व्यवहार सम्यक्त्व को मुख्यता से कहते हैं:—** परन्तु निश्चय दृष्टि, ज्ञान है, उसे व्यवहार समकित कैसा होता है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? क्योंकि १४ गाथा में **'परिजानीहि'** कहा न? व्यवहार है, उसे जान। है न व्यवहार? पूर्ण नहीं तो बीच में व्यवहार आता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत का विकल्प, यह सब राग है, यह व्यवहार छठवें में आता है, होता है, तो वह जाननेयोग्य है—**'परिजानीहि'**। आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया? निश्चयसहित व्यवहार जाननेयोग्य है। उसमें से निश्चय-व्यवहार दो की बात तो तीन गाथाओं में की—१२, १३ और १४। अब १५ में निश्चय तो है, उसका व्यवहार तीन है—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, उसमें व्यवहार समकित कैसा होता है, उसकी बात चलती है।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, उसे व्यवहार कैसा होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे व्यवहार कैसा होता है, उसकी बात चलती है। आहाहा! समझ में आया?

चौदह दोहापर्यन्त व्यवहार मोक्षमार्ग का पहला अंग व्यवहार सम्यक्त्व को मुख्यता से कहते हैं:— देखो!

गाथा – १५

१३८) दव्वइँ जाणइ जहठियइँ तह जगि मण्णइ जो जि।
अप्पहँ केरउ भावडउ अविचलु दंसणु सो जि।।१५।।

द्रव्याणि जानाति यथास्थितानि तथा जगति मन्यते य एव।
आत्मनः सम्बन्धी भावः अविचलः दर्शनं स एव।।१५।।

दव्वइं इत्यादि। दव्वइं द्रव्याणि जाणइ जानाति। कथंभूतानि। जहठियइं यथास्थितानि वीतरागस्वसंवेदनलक्षणस्य निश्चयसम्यग्ज्ञानस्य परंपरया कारणभूतेन परमागमज्ञानेन परिच्छिनत्तीति। न केवलं परिच्छिनत्ति तह तथैव जगि इह जगति मण्णइ मन्यते निजात्मद्रव्य–मेवोपादेयमिति रुचिरूपं यन्निश्चयसम्यक्त्वं तस्य परंपरया कारणभूतेन – 'मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट्। अष्टौ शङ्कादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः' इति श्लोककथितपञ्चविंशति–सम्यक्त्वमलत्यागेन श्रद्दधातीति। एवं द्रव्याणि जानाति श्रद्दधाति। कोऽसौ। अप्पहं केरउ भावडउ आत्मनः संबंधिभावः परिणामः किंविशिष्टो भावः। अविचलु अविचलोऽपि चलमलिनागाढदोषरहितः दंसणु दर्शनं सम्यक्त्वं भवतीति। क एव। सो जि स एव पूर्वोक्तो जीवभाव इति। अयमत्र भावार्थः। इदमेव सम्यक्त्वं चिन्तामणिरिदमेव कल्पवृक्ष इदमेव कामधेनुरिति मत्वा भोगाकांक्षास्वरूपादिसमस्तविकल्पजालं वर्जनीयमिति। तथा चोक्तम् – 'हस्ते चिन्तामणिर्यस्य गृहे यस्य सुरद्रुमः। कामधेनुर्धने यस्य तस्य का प्रार्थना परा।।'।।१५।।

आगे चौदह दोहापर्यंत व्यवहारमोक्ष–मार्ग का पहला अंग व्यवहारसम्यक्त्व को मुख्याता से कहते हैं –

जग में जो हैं द्रव्य यथास्थित उनको उस रूप लखे।
और करे श्रद्धान यही अविचल सम्यक्त्व जीव का है।।१५।।

अन्वयार्थ :– [य एव] जो [द्रव्याणि] द्रव्यों को [यथास्थितानि] जैसा उनका स्वरूप है, वैसा [जानाति] जानें, [तथा] और उसी तरह [जगति] इस जगत में [मन्यते] निर्दोष श्रद्धान करे, [स एव] वही [आत्मनः संबंधी] आत्मा का [अविचलः भावः] चलमलिनावगाढ दोष रहित निश्चल भाव है, [स एव] वही आत्मभाव [दर्शनं] सम्यक्दर्शन है।

भावार्थ :– यह जगत् छह द्रव्यमयी है, सो इन द्रव्यों को अच्छी तरह जानकर

श्रद्धान करे, जिसमें संदेह नहीं वह सम्यग्दर्शन है, यह सम्यग्दर्शन आत्मा का निज स्वभाव है। वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन निश्चयसम्यग्ज्ञान उसका परम्पराय कारण जो परमागम का ज्ञान उसे अच्छी तरह जान, और मन में मानें, यह निश्चय करे कि इन सब द्रव्यों में निज आत्मद्रव्य ही ध्यावने योग्य है, ऐसा रुचिरूप जो निश्चयसम्यक्त्व है, उसका परम्परायकारण व्यवहारसम्यक्त्व देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा उसे स्वीकार करे। व्यवहारसम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं, उनको छोड़े। उन पच्चीस को 'मूढ़त्रयं' इत्यादि श्लोक में कहा है। इसका अर्थ ऐसा है कि जहाँ देव-कुदेव का विचार नहीं है, वह तो देवमूढ़, जहाँ सुगुरु-कुगुरु का विचार नहीं है, वह गुरुमूढ़, जहाँ धर्म-कुधर्म का विचार नहीं है, वह धर्ममूढ़ ये तीन मूढ़ता; और जातिमद, कुलमद, धनमद, रूपमद, तपमद, बलमद, विद्यामद, राजमद ये आठ मद। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, इनकी और इनके आराधकों की जो प्रशंसा वह छह अनायतन और निःशंकितादि आठ अंगों से विपरीत शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़ता, परदोष-कथन, अथिरकरण, साधर्मियों से स्नेह नहीं रखना, और जिनधर्म की प्रभावना नहीं करना, ये शंकादि आठ मल, इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष हैं, इन दोषों को छोड़कर तत्त्वों की श्रद्धा करे, वह व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा जाता है। जहाँ अस्थिर बुद्धि नहीं है, और परिणामों की मलिनता नहीं, और शिथिलता नहीं, वह सम्यक्त्व है। यह सम्यग्दर्शन ही कल्पवृक्ष, कामधेनु चिंतामणि है, ऐसा जानकर भोगों की वाँछारूप जो विकल्प उनको छोड़कर सम्यक्त्व का ग्रहण करना चाहिये। ऐसा कहा है 'हस्ते' इत्यादि जिसके हाथ में चिन्तामणि है, धन में कामधेनु है, और जिसके घर में कल्पवृक्ष है, उसके अन्य क्या प्रार्थना की आवश्यकता है? कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि तो कहने मात्र हैं, सम्यक्त्व ही कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि है, ऐसा जानना।।१५।।

गाथा-१५ पर प्रवचन

१५।

१३८) दव्वइँ जाणइ जहठियइँ तह जगि मण्णइ जो जि।
अप्पहँ केरउ भावडउ अविचलु दंसणु सो जि॥१५॥

अन्वयार्थः—जो द्रव्यों को जैसा उनका स्वरूप है, वैसा जानें,... छह द्रव्य,

छह द्रव्य। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं। तो छह द्रव्य का ज्ञान करना, यह ज्ञान से पहले बात ली है, यह व्यवहार है। समझ में आया? साथ में निश्चय तो है। यह कहेंगे। **द्रव्यों को जैसा उनका स्वरूप है, वैसा जानें, और उसी तरह इस जगत में निर्दोष श्रद्धान करे, वही आत्मा का चलमलिनावगाढ दोष रहित निश्चल भाव है,...** वह विकल्प जो है, वह व्यवहार है, परन्तु उसके साथ जो निश्चल अविचल भाव है, वह निश्चय है। दोनों बातें साथ में ली हैं। देखो! **वही आत्मभाव सम्यग्दर्शन है।** है न? पण्डितजी! यह आत्मभाव सम्यग्दर्शन है, यह निश्चय कहा। आहाहा! '**स एव**' है न? '**स एव**' सम्यग्दर्शनं। देखो! आहाहा! **'जहठियइं यथास्थितानि वीतरागस्वसंवेदनलक्षणस्य निश्चयसम्यग्ज्ञानस्य परंपरया कारणभूतेन'** पहले ज्ञान लिया है। टीका में पहला ज्ञान लिया है।

भावार्थः—यह जगत छह द्रव्यमयी है, सो इन द्रव्यों को अच्छी तरह जानकर श्रद्धान करे, जिसमें सन्देह नहीं वह सम्यग्दर्शन है, वह सम्यग्दर्शन... आत्मभाव, यह निश्चय लिया। छह द्रव्य का विकल्प है, वह व्यवहार है और आत्मा के स्वभाव का भान और स्थिरता हुई, वह आत्मभाव है। वह विकल्प आत्मस्वभाव नहीं। समझ में आया? है? सम्यग्दर्शन आत्मा का निजस्वभाव है। अन्तर है, नहीं? यह पुस्तक परमात्मप्रकाश।

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन निश्चयसम्यग्ज्ञान... क्या कहते हैं? देखो! पहले सम्यग्ज्ञान तो है, परन्तु वीतराग स्वसंवेदन पूर्ण नहीं, ऐसा वीतराग स्वसंवेदन निश्चयसम्यग्ज्ञान **उसका परम्पराय कारण...** समझ में आया? **परमागम का ज्ञान...** शास्त्र का ज्ञान, वह विकल्प है, व्यवहार है। वह पूर्ण निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान का व्यवहार कारण कहा गया है। ऐसा सब याद कितना रखे लोग? वह तो दया करो और व्रत पालो और अपवास करो, सीधा-सट्ट था। वह तो राग है, राग की क्रिया है। जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं तो व्यवहार भी नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यहाँ कहते हैं, **वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन निश्चयसम्यग्ज्ञान...** निश्चय सम्यग्ज्ञान जो है। निश्चय सम्यग्ज्ञान कहाँ लिया है? वास्तव में तो सातवें में लिया है।

वास्तव में तो पूर्ण ज्ञान चौदहवें गुणस्थान में अन्त में लिया है। केवलज्ञान के समय भी ज्ञान पूर्ण हुआ परन्तु आत्माश्रित जो तीन की एकता है, वह तीन की एकता पूरी नहीं हुई। तो तीन की एकता चौदहवे के अन्तिम समय में गिनने आयी है। वरना ज्ञान तो केवल (ज्ञान) हुआ तो पूर्ण हो गया है। दर्शन पहले चौथे (गुणस्थान) से पूर्ण सम्यग्दर्शन हुआ है। चारित्र हुआ बारहवें में, तो भी चौदहवें के अन्तिम समय में किसलिए लिया? आत्मा की तीन की एकता, उसे लिया है। आत्मा की तीन की एकता का आचरण तो चौदहवें में अन्त में होता है और तुरन्त मोक्ष होता है। समझ में आया? है? देखो!

इसमें पहले ज्ञान लिया है, हों! दर्शन बाद में लेते हैं। **वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन निश्चयसम्यग्ज्ञान उसका परम्परा कारण जो परमागम का ज्ञान उसे अच्छी तरह जान,...** छठवें गुणस्थान में जो अपना निश्चयज्ञान है, परन्तु वीतराग स्वसंवेदन पूर्ण ज्ञान नहीं, तो उसमें छठवें गुणस्थान में जो परमागम का ज्ञान है, वह विकल्प है, तो निर्विकल्प स्वसंवेदन की पूर्णता का व्यवहार कारण कहा गया है। नैगमनय जो पहले कहा था न?

मुमुक्षु : भूतनैगमनय से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... यह। अपेक्षा से। **और मन में जाने,...** परमागम। **यह निश्चय करे कि इन सब द्रव्यों में निज आत्मद्रव्य ही ध्यावनेयोग्य है,...** देखो! व्यवहार जाने, परन्तु वापस उसमें से निश्चय यह करे कि **सब द्रव्यों में निज आत्मद्रव्य ही ध्यावनेयोग्य है, ऐसा रुचिरूप जो निश्चयसम्यक्त्व है,...** अब उसके व्यवहार समकित की बात करते हैं। पहले निश्चय वीतराग स्वसंवेदनज्ञान का कारण परमागम आदि व्यवहार कारण कहा। अब निश्चय वीतराग समकित है, उसका व्यवहार समकित कारण क्या है, यह कहते हैं। पहले ज्ञान की प्रधानता ली है। समझ में आया? पहले ज्ञान लिया है न? देखो न! ज्ञान की मुख्यता ली है, दर्शन बाद में लिया है। क्यों? देखो!

सब द्रव्यों में निज आत्मद्रव्य ही ध्यावनेयोग्य है, ऐसा रुचिरूप जो निश्चय-सम्यक्त्व है,... अब समकित की व्याख्या की। ज्ञान के बाद समकित। **उसका परम्परायकारण व्यवहारसम्यक्त्व देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा...** यह व्यवहार विकल्प है। उसे परम्परा कारण कहा गया है। क्योंकि विकल्प को छोड़कर स्थिरता होगी। समझ में आया? **व्यवहारसम्यक्त्व देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा उसे स्वीकार करे।**

व्यवहारसम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं,... व्यवहार समकित के। आहाहा! निश्चय समकित के साथ व्यवहार समकित के जो विकल्प हैं, उसके पच्चीस दोष हैं, वे दोष छोड़ना। **उनको छोड़े।** है न? **उन पच्चीस को 'मूढ़त्रयं' इत्यादि श्लोक में कहा है। इसका अर्थ ऐसा है कि जहाँ देव-कुदेव का विचार नहीं है,...** देव-कुदेव का जहाँ विचार नहीं, **वह तो देवमूढ....** है। ऐसा मुनि को, सच्चे ज्ञानी को तो होता नहीं। ऐसा व्यवहार होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। **जहाँ सुगुरु-कुगुरु का विचार नहीं है, वह गुरुमढ़...** है। सद्‌गुरु परमात्मस्वरूप के साधक निर्ग्रन्थ किसे कहा जाता है? आहाहा! और कुगुरु किसे कहा जाता है? जो राग से धर्म मनाते हैं, राग करते-करते धर्म होगा, (ऐसा उपदेश देते हैं), वे सब कुगुरु हैं। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। किसी व्यक्ति की बात नहीं है। वह तो भगवान आत्मा है। आहाहा!

देव-कुदेव का विचार नहीं, वह देवमूढ़। सुगुरु-कुगुरु का विचार नहीं, वह गुरुमूढ है। आहाहा! यह तो अभी व्यवहार की बात करते हैं। इस व्यवहार के पच्चीस दोष हैं। निश्चय में तो अपना समकित है। उसके साथ पूर्ण दशा नहीं तो बीच में व्यवहार समकित का विकल्प आता है। वह ऐसा है कि जिसमें कुदेव, कुगुरु की मूढ़ता नहीं। कुगुरु, कुशास्त्र की जिसमें मूढ़ता नहीं। **जहाँ धर्म-कुधर्म का विचार नहीं है,...** धर्म तो वीतरागी पर्याय, वह धर्म है। रागादि आते हैं, वह धर्म नहीं। आहाहा! यह तो अभी व्यवहार की बात करते हैं। इसका **विचार नहीं है, वह धर्ममूढ़—ये तीन मूढ़ता...** रहित। तीन मूढता रहित व्यवहार समकित का विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जानना... जानना... जानना। वस्तु का स्वरूप ज्ञानस्वरूप है तो उसमें जानना... जानना ही आता है। आहाहा! विकल्प आता है। कल कहा न? परन्तु वह कर्ता होकर उसका कर्म नहीं। है, व्यवहार समकित का विकल्प आता है। निश्चय सम्यग्दर्शन की भूमिका में अथवा निश्चय ज्ञान, दर्शन और चारित्र की भूमिका में पूर्ण स्थिरता नहीं, वहाँ ऐसा व्यवहार आता है। वह व्यवहार विकल्प है। वह विकल्प है, वह मेरा कर्तव्य है और मेरा कर्म है, ऐसा नहीं। परन्तु है, उसे जानना—ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे में नहीं होता। यह तो तीन साथ में लेकर बताते हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों के साथ व्यवहार है, वह बताना है। अकेले दर्शन, ज्ञान की बात नहीं। समझ में आया? यहाँ तो तीन की बात साथ में की न! १२, १३, १४ (गाथा)। निश्चय दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन है, उसके साथ व्यवहार कैसा होता है, उसकी बात चलती है। आहाहा! कहाँ आया? यहाँ आये।

तीन मूढ़ता... रहित। निश्चय सम्यग्दृष्टि को व्यवहार समकित में भी तीन मूढता रहित भाव होते हैं। आहाहा! आज तो जरा सूक्ष्म विषय था न! यह तो बारहवें से दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों शुरु किये न? १२वीं से देखो न, १२वीं गाथा में कहा न? वहाँ से— १२वीं से शुरु किया है न? देखो! **निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग का व्याख्यान करते हैं।** वहाँ से शुरु किया है। निश्चय और व्यवहार दोनों का शुरु किया है। तीन गाथा। और १२वीं पाठ है न? '**जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरु दंसणु णाणु चरित्तु**' है? १२वीं गाथा। अकेले दर्शन, ज्ञान नहीं लिये।

१३५) जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरु दंसणु णाणु चरित्तु।
ते पुणु तिण्णि वि अप्पु मुणि णिच्छएँ एहउ वुत्तु॥१२॥

तीन पर्याय से कहने में आया। निश्चय से तो आत्मा एकस्वरूप है। उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। आहाहा! यहाँ तीनों की बात साथ में है। अकेले दर्शन, ज्ञान की बात नहीं। १३वीं में भी है। देखो!

१३६) पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।
दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि॥१३॥

तीनों साथ में लेते हैं। अब व्यवहार लिया। यहाँ १४ में। '**जं बोल्लइ ववहारु-णउ**' आता है न? कहा जाता है, कथन है, निरूपण है। व्यवहार का निरूपण है। व्यवहार वस्तु है नहीं—धर्म नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के साथ ऐसा विकल्प आता है, उसे आरोप करके, निरूपण करके व्यवहार कहने में आया है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात में याद कितनी रखना इसे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध के कारण को मोक्षमार्ग का आरोप किया है। साथ में निमित्त और सहचर देखकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में चार बोल लिये हैं। निश्चय-व्यवहाराभास का जहाँ लिया है, वहाँ यह लिया है। समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग तो है नहीं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मोक्षमार्ग दो नहीं। परन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग का निरूपण किया, वह निश्चय है। जहाँ मोक्षमार्ग तो नहीं नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त-सहचारी साथ में है न? ऐसा विकल्प आता है न? उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं। चार बोल लिये हैं। निमित्त, सहचर, उपचार से, मोक्षमार्ग। आहाहा! यह व्यवहार मोक्षमार्ग है। इतनी स्पष्टता तो टोडरमलजी ने की है। आहाहा!

(संवत) १९८२ के वर्ष में जब पहली बार मिला न? पचास वर्ष हुए। तब पढ़ते समय तो इतनी धुन चढ़ी थी... न खाना, न पीना, न बोलना, कहीं ठीक नहीं लगता था।

मुमुक्षु : अभी तक उतरी कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी चीज़! ओहोहो! यह! यह अधिकार, हों! यह पूरा अधिकार पृष्ठ में लिख लिया है। (संवत्) १९८४ के वर्ष में। पुस्तक नहीं रखते थे। यह निश्चय-व्यवहाराभास का अधिकार है न? यहाँ बगसरा है, वहाँ १९८४ के वर्ष में लिख लिया था। रखा है हमारे पास। १९८४। ४८ वर्ष हुए। पहले वाँचन में ५० वर्ष हुए। यह तो पण्डितजी के जन्म से पहले की सब बात है।

क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है। आहाहा! व्यवहार को साधक कहा, वह आरोपित कथन है। साधक नहीं, बाधक है। आहाहा! समझ में आया? सच्चा निरूपण, वह निश्चय; उपचार निरूपण, वह व्यवहार। निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार से मोक्षमार्ग जानना। परन्तु एक (निश्चय) मोक्षमार्ग और एक व्यवहार मोक्षमार्ग, ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुत स्पष्टीकरण किया है। व्यवहार है सही, परन्तु वह व्यवहार आरोप से मोक्षमार्ग कहा है। है तो बन्धमार्ग। फूलचन्दजी! यह मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग न माने तो धर्म नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व कौन है और पर कौन है, यह जाने बिना भेदज्ञान बिना धर्म कहाँ से होगा? स्व चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द और पर विकल्प, इन दो के भेदज्ञान बिना धर्म कहाँ से होगा? दो है। दो का भेदज्ञान किये बिना (धर्म होगा नहीं)। आहाहा! धर्म, बापू! सूक्ष्म है, भाई! लोग मानते हैं, माने कि यह यात्रा कर ली, भक्ति की और पूजा की, व्रत पालन किये और अपवास किये। वह तो सब राग की क्रिया है। वह भी सम्यग्दर्शन के भान बिना की।

मुमुक्षु : ....कोई पूजा नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? भाव आये बिना रहेगा नहीं। अशुभ से बचने के लिये भाव आता है। आता है, वह अलग बात है, उसमें धर्म मानना, वह दूसरी बात है। समझ में आया? नास्तिक तो है ही। राग को धर्म मानता है, वह नास्तिक है। आस्तिक तो उसे कहते हैं कि राग से भिन्न अपने स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और अनुभव करे, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान है। वह आस्तिक है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

अपने तो यहाँ तीन बोल लेने थे न? बारहवीं गाथा में तीन बोल हैं, तेरहवीं में, चौदहवीं में तीन बोल हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र। दर्शन, ज्ञान दो और व्यवहार, ऐसा नहीं लिया। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन है, उसके साथ व्यवहार है, उसकी बात की है। देवीलालजी! १५वीं गाथा।

तीन मूढ़ता रहित, आहाहा! अपने स्वरूप की दृष्टि निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर भी, साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प व्यवहार समकित आता है, उसमें भी तीन मूढ़तारहित भाव है, उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? **जातिमद...** अभी तो व्यवहार समकित के दोष कहते हैं। जाति का मद। जिस माता के कुल में जन्मा... माता के पक्ष को जाति कहते हैं। बड़ी माँ, दीवान आदि हो तो हमारी माता ऐसी हैं। यह मद, वह मिथ्यात्व का भाव है। आहाहा! जाति आत्मा में कहाँ है? आत्मा की जाति तो आनन्द जाति है। माता की जाति का अभिमान भ्रमणा है। व्यवहार में ना करते हैं, ऐसी जाति का अभिमान करना नहीं। आहाहा! समझ में आया? **कुलमद...** पिता

का। हमारे पिताजी ऐसे बड़े थे, करोड़पति थे, अरबपति थे, राजा थे, प्रमुख थे, सेठ थे। तो उसमें क्या हुआ ? हमारा सेठ कुटुम्ब है। कुटुम्ब कहाँ है ? प्रभु ! आत्मा को कुल से पहिचानना, वह चीज़ है ? कुल है कहाँ ? आहाहा ! परकुल का अभिमान। व्यवहार समकित में उसे छोड़ना, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! है ?

धनमद... लक्ष्मी का अभिमान, वह व्यवहार समकित में दोष है। लक्ष्मी जड़ है, मिट्टी है, अजीव है। मैं लक्ष्मीवान हूँ, यह व्यवहार समकित में दोष है। यह मद उसे होता नहीं। आहाहा ! फूलचन्दजी ! लो, यह सब पैसेवाले हैं। आहा ! कुल... कुल आया न ? **धनमद...** धन का मद। यह व्यवहार समकित में दोष है। दोष निकालकर व्यवहार समकित निर्मल करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! निश्चय के साथ विकल्प है, उसमें ऐसा दोष नहीं होना चाहिए। आहाहा ! लो, भगवानजीभाई ! यह सब पैसेवाले हैं, करोड़पति। यह साथ में करोड़पति बैठा है। रतिभाई घीया... घीया। पैसा क्या है ? धूल है।

मुमुक्षु : धूल बिना सब्जी नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल बिना ही सब्जी आती है। आत्मा परद्रव्य बिना ही टिक रहा है।

मुमुक्षु : पैसा न हो तो सब्जी नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब्जी-बब्जी क्या है ? यह पैसा कहाँ अपनी चीज़ है ? यह प्रश्न हुआ था। (संवत्) २०१० के वर्ष में, बोटाद में व्याख्यान चलता था। २०१० के वर्ष। २२ वर्ष (पहले) महाराज ! आप पैसे का इनकार करते हो, परन्तु पैसा बिना चलता नहीं। कहा, सुनो ! आत्मा ने परद्रव्य के अभाव से ही चला आता है।

मुमुक्षु : उसके बिना चलता नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता नहीं, ऐसा तुम कहते हो, परन्तु उसके बिना ही रहा है। अपने से रहा है और परद्रव्य के अभाव से रहा है। क्या परद्रव्य की सहायता से रहा है ? ताराचन्दजी ! ऐसी बात है, भाई ! यह तो निश्चय सम्यग्दृष्टि के साथ व्यवहार समकित विकल्प होते हैं, उसमें ऐसा दोष नहीं होना चाहिए। आहाहा !

मुमुक्षु : ....एकत्वबुद्धि हो तो दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकत्वबुद्धि, वह दोष है और अभिमान, वह दोष है। एकत्वबुद्धि का दोष तो मिथ्यात्व में आया। यह तो व्यवहार समकित में दोष है। एकत्व नहीं।

रूपमद,... शरीर की सुन्दरता का मद। यह तो हड्डियाँ, माँस, चमड़ी है। इसकी सुन्दरता क्या? यह तो श्मशान की फासफूस है। आहाहा! निश्चय सम्यग्दृष्टिवन्त को व्यवहार समकित के राग में ऐसे रूपमद का अभाव होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? आहा! सुन्दर रूपवाले कितने ही बेचारे बैठे होंगे। सान्ताक्रुज में प्लेन जल गया न? प्लेन। बड़े गृहस्थ धनाढ्य थे। एक तो बहुत बड़ा व्यक्ति था। बड़े-बड़े बहुतों को जीता था, इसलिए गोली रखता था। कोई दुश्मन मिल जाये और मार डाले तो? तो गोली खा लेना। असाध्य हो जाये, फिर भले मारे। आहाहा! अरेरे! यह वह जीवन, पशु जैसा जीवन है न! आहाहा! भले पैसा हो। दो-पाँच-दस करोड़, पच्चीस करोड़। धूल में... मरकर नरक में जानेवाला है वह। आहाहा! यह कहा न?

परमात्मप्रकाश में ६०वीं गाथा में आया है। ६०वीं। '**पुण्णेण होइ विहवो**' पुण्य से वैभव मिलता है, पुरुषार्थ से नहीं। ६०वीं गाथा अपने चलता है, इस अधिकार में। है? **पुण्य से घर में धन होता है...** नीचे अर्थ। **धन से अभिमान...** होता है। देखो! मद। **मान से बुद्धिभ्रम होता है।** बुद्धिभ्रम होता है कि हम पैसेवाले। उसे कमाना आता नहीं। कहो, भगवानजीभाई! इनके पास करोड़ रुपये हैं, परन्तु सादापन दिखाई दे इसलिए नहीं लगता। यहाँ तो कहते हैं, बुद्धिभ्रम होता है। **बुद्धि के भ्रम होने से पाप होता है, इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे।** आचार्य महाराज कहते हैं कि ऐसा पुण्य हमें— धर्मात्मा को न हो। आहाहा!

यहाँ तो व्यवहार समकित का दोष बताते हैं। वह दोष निकालकर व्यवहार समकित बराबर होना चाहिए। निश्चय तो है ही, साथ में उसे ऐसा व्यवहार होता है। आहाहा! **तपमद,...** मैंने अपवास किये। आठ अपवास, दस अपवास, महीने के अपवास, उसका मद, वह व्यवहार समकित में दोष है। आहाहा! ऐसा मद नहीं होना चाहिए। तपमद छोड़कर व्यवहार समकित (निर्मल करना)। है तो वह शुभराग, परन्तु उसमें यह मद नहीं होना चाहिए। वह अशुभभाव है, ऐसा कहते हैं। **बलमद,...** शरीर का बल। शरीर में बहुत बल हो, उसका मद हो। वह एक कौन था बड़ा? गामा पहलवान।

दो मोटर चलती हो तो हाथ रखकर खड़ी रख दे। ऐसा पहलवान था। मोटर को ऐसे हाथ रखे। वह मरते समय उसका फोटो आया था। मक्खी यहाँ थी, उसे उड़ाने की शक्ति नहीं थी। हमने सब देखा है, फोटो देखा है। दो मोटर को ऐसे खड़ी रख दे। बापू! इस जड़ का मद तुझे क्या काम है? आहाहा! समझ में आया? उसका फोटो आया था। बैठा था, उसमें यहाँ मक्खी आयी। मक्खी उड़ाने की (शक्ति नहीं थी)। ऐई! उसके काल में हुआ था न? घ्रुजारी... घ्रुजारी। एक क्षण में उड़ जायेगा... एकदम। अभी जरा व्यापार में है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं,... **बलमद...** बल का मद नहीं होना चाहिए।

विद्यामद... यह जानपने का मद। शास्त्र के पठन का मद, यह व्यवहार समकित में दोष है। शास्त्र का जानना हुआ, उसमें क्या हुआ? वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है। चाहे तो ग्यारह अंग का हो, नौ पूर्व की लब्धि हो, उसका अभिमान, वह व्यवहार समकित में दोष है। आहाहा! निश्चय में तो विकल्पमात्र मेरा नहीं, ऐसी दृष्टि हुई है। परन्तु व्यवहार में विकल्प आया, उसमें ऐसा मद होना नहीं चाहिए। आहाहा! थोड़ा शास्त्र का जानपना करे और हमको आता है, बस ऐसा है। तुम क्या जानते हो उसमें? ऐसी बात नहीं होती, भाई! आहाहा! यहाँ तो केवलज्ञान के समक्ष मतिज्ञान, श्रुतज्ञान भी अनन्तवें भाग में है। सम्यग्ज्ञान में तो व्यवहार ज्ञान का अभिमान किसका हो? आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान परमात्मदशा अपनी, उसके अनन्तवें भाग में उसके सामने तो सम्यक् मति-श्रुतज्ञान है। आहाहा! उसका भी अभिमान नहीं हो तो फिर बाहर के ज्ञान का अभिमान, वह अभिमान नहीं होता।

राजमद... ईश्वर... ईश्वर-प्रमुख। प्रमुखरूप से, सेठरूप से, राजरूप से हो, उसका मद। प्रमुख है, सेठ है, किसी जगह वाँचनकार मुख्य है। आहाहा! राज अर्थात् ईश्वरमद। मूल तो ईश्वरमद कहना है। राजमद के बदले ईश्वरमद। ईश्वरता अर्थात् महत्ता। बाहर की कोई भी महत्ता का पद है, उसे राजमद शब्द प्रयोग किया है। ईश्वरमद। सेठाई का मद, पैसे का मद, राज का मद, बड़ी रानी हो, बड़े राजा की रानी मिली हो, उसका मद। हम तो साधारण हैं परन्तु रानी कैसी मिली! जदसण में है न? जदसण का राजा पुत्री उसे देता था कि जो भैंस चराता था, उसे पुत्री दी। जदसण...

जदसण दरबार। आलाखाचर था न? अपनी पुत्री ऐसे साधारण को दी थी। मोढ कैसा कहलाये? बिछीया के पास मोढुका, हमको मिलता था। हमारे पास आया था। वह भैंस चराता था। उसे ऐसा कि आधीन रहेगा, पुत्री के आधीन रहेगा। इसलिए भैंस चराता हो उसे राजा ने पुत्री दी। बेचारा हमारे पास आया था। महाराज! तीन अंगुल की चीज़ में लोग विषय में मूर्छित हो जाते हैं। बेचारा ऐसा कहता था। हमारे पास सब आवे तो सही न! तीन अंगुली की विषय की वासना में मनुष्य मूर्च्छा खा जाता है। ऐसा बेचारा कहता था। नाम भूल गये। वह हमारे पास आया था बोटाद। यह मद नहीं होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह आठ मद (हुए)।

कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, इनकी और इनके आराधकों की प्रशंसा... आहाहा! व्यवहार समकित में यह छह दोष नहीं होना चाहिए। कुगुरु की मान्यता, प्रशंसा नहीं। कुदेव की नहीं, कुधर्म की नहीं और उनके सेवक की नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। समझ में आया? कुगुरु, कुधर्म और कुशास्त्र अथवा कुदेव की प्रशंसा नहीं, उनके सेवकों की प्रशंसा नहीं। यह छह अनायतन हैं। धर्म के स्थान नहीं। व्यवहार धर्म के भी स्थान नहीं। यह व्यवहार स्थान भी नहीं। अनायतन—आयतन नहीं—स्थान नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म का आयतन आत्मा।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से तो आत्मा, वही आयतन है न! यहाँ तो व्यवहार की बात चलती है। निश्चय आयतन तो आत्मा है। भाई ने लिखा है न? न्यालचन्दभाई सोगानी। आयतन तो आत्मा है। अनन्त गुण की पर्याय का स्थान तो यह आत्मा है। वह तो व्यवहार आयतन है। व्यवहार की बात चलती है न?

छह अनायतन हैं। **और निःशंकादि आठ अंगों से विपरीत...** समकित के आठ गुण है न? समकित के आठ लक्षण। निःशंक आदि। उनसे विरुद्ध **शंका...** का नाश होना चाहिए। व्यवहार समकित, व्यवहार में उसे शंका नहीं होनी चाहिए। आहाहा! **कांक्षा,...** पर की इच्छा नहीं होनी चाहिए। **विचिकित्सा...** ग्लानि नहीं होनी चाहिए। ग्लानि। **मूढता,...** मूढता नहीं होनी चाहिए, देव-गुरु-शास्त्र आदि में, व्यवहार में। **परदोष-कथन,...** परदोष के कथन नहीं। निन्दा नहीं। किसकी निन्दा करे? वस्तु का स्वरूप बतावे परन्तु किसी की निन्दा नहीं। व्यक्ति है, वह भगवान है। आहाहा! **अथिरकरण,...**

अपने को अस्थिर हो जाना, उसे छोड़ दे। **साधर्मियों से स्नेह नहीं करना,...** यह व्यवहार में दोष है। साधर्मी के प्रति प्रेम होना चाहिए। वस्तुदृष्टिवन्त हो, ज्ञान हो, साधर्मी के प्रति (प्रेम होना चाहिए)। निश्चय से तो भगवान आत्मा द्रव्य साधर्मी है। द्रव्यरूप से तो साधर्मी है। पर्यायरूप से भूल है, उसे जानना। आहाहा! **और जिनधर्म की प्रभावना नहीं करना, ये शंकादि आठ...** दोष है। **ये शंकादि आठ मल, इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष हैं, इन दोषों को छोड़कर तत्त्वों की श्रद्धा करे, वह व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा जाता है।** आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन की भूमिका में ऐसा व्यवहार समकित के पच्चीस दोष रहित होता है तो उसे व्यवहार समकित कहते हैं। है तो वह पुण्यबन्ध का कारण, मोक्ष का कारण तो निश्चय है। समझ में आया? वह समकित कैसा है? कहते हैं। आहाहा!

जहाँ अस्थिर बुद्धि नहीं है, और परिणामों की मलिनता नहीं, और शिथिलता नहीं, वह सम्यक्त्व है। यह सम्यग्दर्शन ही कल्पवृक्ष, कामधेनु चिन्तामणि है,... आहाहा! **ऐसा जानकर भोगों की वांछारूप जो विकल्प उनको छोड़कर सम्यक्त्व का ग्रहण करना चाहिए।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण १२, बुधवार
दिनांक-२०-१०-१९७६, गाथा-१५ से १७, प्रवचन-१०९

परमात्मप्रकाश, १५ गाथा। अन्तिम पैराग्राफ है न? **यह सम्यग्दर्शन ही कल्पवृक्ष,...** यहाँ तक आया है। क्या कहते हैं? आत्मा जो स्वभाव है, उसका तो सर्वज्ञ—सर्वदर्शी स्वभाव है। सर्वज्ञ—सर्वदर्शी। त्रिकाली उसका स्वभाव तो वह है। उसकी दृष्टि करना। निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, राग का छोड़कर, एक समय की पर्याय का भी लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली सर्वज्ञ—सर्वदर्शी वस्तु है, उसमें अन्तर में एकाग्र होकर जो निश्चय सम्यग्दर्शन होता है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन कल्पवृक्ष है। आहाहा! समझ में आया? **सम्यग्दर्शन ही कल्पवृक्ष,...** है। जैसे कल्पवृक्ष में माँगे, वह चीज़ मिलती है, अथवा उसमें हो, वह मिलती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसका अन्तर में व्यवहार के विकल्प को भी छोड़कर (दृष्टि करना)। चलती है तो व्यवहार समकित की व्याख्या, परन्तु व्यवहार समकित है, वह शुभ विकल्प है, राग है। उससे कुछ निश्चय समकित नहीं होता।

मुमुक्षु : परम्परा कारण है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा कारण का अर्थ यह कि उसका अभाव करके। समकित का परम्परा कारण नहीं। सम्यग्दर्शन में दर्शन, ज्ञान और चारित्र में जो व्यवहाररत्नत्रय, वह परम्परा कारण है। समझ में आया? परम्परा का अर्थ उसका अभाव करके। वीतरागभाव, वह कहीं रागभाव से प्रगट होता है? स्वयं प्रभु आत्मा वीतरागमूर्ति है। अपूर्व बात है न, भगवान! इसने कभी किया नहीं। इसने अनादि से व्यवहार के क्रियाकाण्ड में रुककर माना है कि हम कुछ धर्म करते हैं। वह धर्म नहीं। आहाहा!

व्यवहार जो परम्परा कारण कहा, वह तो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वहाँ जो व्यवहार है, वह परम्परा अर्थात् कि जितना स्व का आश्रय लेकर पर का आश्रय छोड़कर जितना दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह साक्षात् कारण है। और उसके साथ राग है, वह परम्परा अर्थात् पश्चात् अभाव करेगा और फिर निर्विकल्प वीतरागता होगी, वह साक्षात् मोक्ष का कारण होगा। बात बहुत कठिन, भाई! आहाहा! यह अभी व्यवहार के बड़े झगड़े चलते हैं। वह यहाँ कहते हैं।

सम्यग्दर्शन ही कल्पवृक्ष,... अन्तर में दृष्टि-अनुभव सम्यक् हुआ, उसे कल्पवृक्ष मिला। अब उसे जितनी अन्तर एकाग्रता होती है, उतना आनन्द फटेगा (विकसित होगा)। आहाहा! जितना वह आत्मा में, आनन्द में... आनन्द का अनुभव तो हुआ सम्यग्दर्शन में। सम्यग्दर्शन होने पर जितने द्रव्य में, जितनी संख्या से शक्तियाँ और गुण हैं, उनका एक अंश व्यक्त तो चौथे गुणस्थान में हो जाता है। जितनी गुण-शक्ति है, उसका एक अंश व्यक्त (हो जाता है)। ऐसी बातें हैं, भाई! इससे उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का (अंश आता है)। निश्चय सम्यक् में आनन्द का वेदन भी आता है। समझ में आया? ऐसा जो निश्चय सम्यग्दर्शन, वह कल्पवृक्ष है। अब उसे मिला पूरा भगवान सर्वज्ञ—सर्वदर्शी।

(समयसार) १६० गाथा में कहा है न, भाई! नहीं? १६० में। पुण्य-पाप अधिकार में। '**वह सर्व ज्ञानी-दर्शी अरु, निज कर्मरज-आच्छाद से...**' निज कर्म की रज शब्द प्रयोग किया है। टीका में तो निज अपराध के कारण, ऐसा लिया है। तब बंशीधरजी थे और जीवणधर थे और यह चर्चा चली। पुरुषार्थ, अपना अपराध है, पुरुषार्थ का अपराध है। आहाहा! भगवान तो सर्वज्ञ—सर्वदर्शी स्वरूप ही आत्मा का है। राग नहीं, अल्पज्ञ नहीं। आहाहा! समझ में आया? परिभ्रमण करते हुए इसे यह आत्मा क्या चीज़ है, यह अन्दर हाथ आयी नहीं। और हाथ आने का प्रयत्न किया नहीं। आहाहा! धूलधाणी बाहर में सब कमाना और कमाना और भोग और बहुत तो आगे जाकर पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि। दोनों बन्ध के कारण हैं।

मुमुक्षु : ऐ.... परम्परा मोक्ष का कारण...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परम्परा मोक्ष का कारण अभाव का कारण है। राग कभी कारण होता ही नहीं। यह पंचास्तिकाय में कहा है। वह परम्परा अर्थात् क्या? कि राग के फलरूप से स्वर्ग के क्लेश भोगेगा। अग्नि की दाह की भाँति। चन्दन वृक्ष जैसे अग्नि से जला हुआ हो, ऐसा यह राग का दुःख उसे स्वर्ग में होगा। वह क्लेश भोगकर फिर मनुष्यपना पाकर जब राग का अभाव करेगा, तब वह केवलज्ञान पायेगा। पंचास्तिकाय में है न! बात तो आयी है, बापू! आहाहा!

व्यवहार तो राग है। यह कहा नहीं वहाँ? (समयसार) पुण्य-पाप अधिकार,

गाथा-१५६ गाथा में—**विद्वान्जन भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करे,...** विद्वान् शास्त्र वाँचकर-पढ़कर भी व्यवहार में वर्तन करते हैं परन्तु निश्चय के आश्रय से मुनि को मोक्ष है। व्यवहार में वर्तन करनेवालों को है नहीं। देवीलालजी! विद्वत्जन। कितनी है? १६२? ६० पहले। ६० पहले है। **विद्वान्जन भूतार्थ तज...** अरे! शास्त्र के पढ़नेवालों तुम विद्वान ऐसे कैसे हुए? कहते हैं। आहाहा! व्यवहार में वर्तन करे। और जयसेनाचार्य ने तो ऐसा कहा है, विद्वानजन व्यवहार में वर्तन न करे। ऐसा कहा वहाँ। अर्थ ऐसा है वहाँ। आहाहा!

भगवान आत्मा परमात्म वीतरागमूर्ति प्रभु है। उसका अनुभव अर्थात् कि द्रव्य जैसा है, उसे अनुसरकर होना, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन मुक्ति का कारण है। व्यवहार समकित तो राग है। वह आगे दूसरे प्रकार से कहेंगे। यह दूसरे प्रकार से बाद की गाथा में कहेंगे। १७ में। ऐसा कि गृहस्थाश्रम में निश्चय समकित तो है ही उपादान, तथापि उसे तुम वीतरागचारित्रवाला समकित कहते नहीं? यह दूसरी अपेक्षा है वहाँ। वहाँ आगे निश्चय सम्यक् गृहस्थाश्रम में भरत चक्रवर्ती आदि को था। शुद्ध भगवान उपादेय आत्मा, ऐसा अनुभव में समकित निश्चय ही था। परन्तु अव्रती है, अर्थात् व्रत के चारित्र का अभाव है। इसलिए पुण्य के परिणाम पूजा, दान के, भक्ति में जुड़ता है, इससे उसे वह वीतरागचारित्र की अपेक्षा से उसे सराग समकित कहा गया है। १७वीं में आयेगा। १७ गाथा है न? है तो निश्चय वीतराग समकित तो वीतराग है। आहाहा! उसे उस राग की प्रधानता से वीतरागता में जो निश्चय लीनता चाहिए, वैसी नहीं है, इस अपेक्षा से राग के दोष की अपेक्षा से समकित निश्चय होने पर भी सराग समकित कहकर व्यवहार कहा है। १७वीं में आयेगा। समझ में आया? अरे! कथन शैली ऐसी है। आहाहा!

प्रभु स्वयं वीतराग है, उसका तत्त्व न मिले, तब तक उसका सब व्यर्थ है। आहाहा! यह दुनिया के बाहर के चमत्कार सब श्मशान की होली है। प्रभु आनन्द का नाथ अन्दर है... आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है। एक भाषा से कहें तो वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही है। जब ज्ञानस्वरूप कहें तो ज्ञानगुण से कहते हैं। आनन्द से, अतीन्द्रिय आनन्द से कहें तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही भगवान है। प्रत्येक

का (आत्मा) भगवान है, हों! आहाहा! उसकी अन्तर में संयोग की दृष्टि छूटी, संयोगीभाव की दृष्टि छूटी, एक समय की पर्याय अल्पज्ञता है, वह उसका स्वरूप पूर्ण नहीं। पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ सर्वदर्शी अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय वीर्य का वह पिण्ड है। आहाहा!

ऐसा जो निश्चयसम्यग्दर्शन, वही कल्पवृक्ष है। अब अन्दर में जितनी एकाग्रता होगी, उतना आनन्द झरेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, जो आनन्द इन्द्रों के इन्द्रासन में हजारों-करोड़ों देवांगनाओं के साथ विषय में राग है, वह तो जहर है। यह तो अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! इस अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव की जो प्रतीति निश्चिय वीतरागी समकित है। है तो वह समकित वीतराग ही वह। आगे दूसरी अपेक्षा लेंगे। वह कल्पवृक्ष है।

वह कामधेनु है। आहाहा! गाय होती है न, जब चाहिए तब दूध दे, उसका नाम कामधेनु। इसी प्रकार आत्मा जब चाहिए, वहाँ अन्दर जाये तो उसे आनन्द मिले। आहाहा! वह कामधेनु गाय है आत्मा—सम्यग्दर्शन। आहाहा! वह गाय होती है न? वढवाण में थी नहीं? दादभावाला के थी। कामधेनु गाय थी। जब चाहिए तब। जब चाय पीने का मन हो और तब दूध चाहिए तो उस समय दूध दे। उसमें तो सवेरे और शाम दो बार दे। साधारण ऐसा है न? सवेरे दूध और शाम को (दूध) ऐसे दो बार दूहे। वह तो जब चाहे, मेहमान आये और दूध चाहिए तो दूध तैयार। दूहे तो तैयार दूध। उसे कामधेनु गाय कहते हैं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा... शान्तिभाई! भाई! आहाहा! वह निर्विकल्प राग रहित आनन्द का सागर प्रभु है। भाई! तुझे तेरी कीमत नहीं। तुझे तेरी खबर नहीं, तेरी तुझे कीमत नहीं, तेरी तुझे महत्ता की महिमा नहीं। आहाहा! यह पुण्य के परिणाम कुछ किये और या उसके फलरूप से धूल मिली—दो-पाँच-दस करोड़।

मुमुक्षु : वह धूल कामधेनु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर है वहाँ। मोटर दे। आहाहा! मोटर में कुचलकर मरते हैं। अभी कितने ही आये थे। आहाहा! न हो तो मोटर उसकी छाती पर बैठी होती है। मोटर को मोटर के प्रमाण में निभाना (यह उपाधि है)।

मुमुक्षु : यह तो बहुत रुपये हों....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छाती पर इसे बहुत जोर होता है यह सब। चोर आयेंगे तो? कोई राजा लूटेगा तो? कुटुम्बी मार डालेंगे तो? कुटुम्बी का जोर हो। वह राजा हुआ न एक? नहीं बड़ा राजा? एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी। कैसा राजा?

मुमुक्षु : ईराक का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसके कुटुम्ब ने मार डाला। इतनी बड़ी आमदनी। चौबीस घण्टे में छत्तीस लाख की आमदनी। चौबीस घण्टे में छत्तीस लाख की आमदनी। इतनी तो, बारह महीने की कितनी? देश छोटा है परन्तु उसे पेट्रोल के कुँए बहुत मिले। इतने अधिक कुँए निकले। पेट्रोल... पेट्रोल... पेट्रोल... पेट्रोल... ढ़ेर पैसे के। एक घण्टे में डेढ़ लाख की आमदनी। उसके परिवार ने मार डाला, उसका वैभव भोगने के लिये। आहाहा! कुटुम्बी का...

मुमुक्षु : जीया वहाँ तक तो वैभव भोगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। जीया वहाँ तक दुःखी का सरदार था। आहाहा! सिर फोड़ता था राग के साथ। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, कहते हैं कि वह जिसे प्रगट हुआ, उसे कामधेनु हुआ। आहाहा! जब-जब भावना करे, तब-तब उसे अन्दर से आनन्द आवे। प्रगट हुआ है इतना आनन्द और शान्ति तो सदा ही है, परन्तु जब अन्दर में एकाग्र हो, तब विशेष आनन्द उसे होता है। आहाहा! ऐसा जिसे कामधेनु समकित प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उसे चिन्तामणि कहते हैं। समकित को चिन्तामणि (कहते हैं)। चिन्तवन करे उतना दे। उसमें अन्दर एकाग्र हो, उतना आनन्द प्राप्त हो अन्दर। आहाहा! आनन्द का कन्द हाथ आया। आहाहा! समझ में आया? यह विषय के आनन्द तो जहर है, अकेले जहर के प्याला हैं। आहाहा! प्रभु ने तो ऐसा कहा कि जो शुभभाव है... लोगों को कठिन लगता है, वह जहर है। तो अशुभभाव की क्या बात करना? आहाहा! अमृत का सागर भगवान, उससे उल्टा शुभभाव, वह जहर है। तो फिर विषय और यह पैसा-लक्ष्मी में जो आनन्द माने, वह तो अशुभभाव का जहर है। भगवानजीभाई! आहाहा!

भगवान जिनवरदेव त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, प्रभु! कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि तू है। आहाहा! तू सब प्रकार से पूरा है, प्रभु! आहाहा! किसी भी गुण से वह अपूर्ण और अधूरा नहीं। गुण से। प्रत्येक गुण और प्रत्येक शक्ति से पूरा है। यह आता है न कहीं? तू नहीं अधूरा। भक्ति में कहीं आता है। तू पूरी बात से पूरा।

मुमुक्षु : तू सब बातें पूरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। तू सब बातें पूरा। आता है। बहिनें गाती हैं वहाँ भक्ति में। तू सब बातें पूरा। अधूरा। वह छुरा-छुरा ऐसा आया न? उसमें छुरा आया था। छुरा। घेवर में छुरा। घेवर में जैसे छुरा। छुरा अर्थात् शक्कर। मुट्ठी शक्कर। ऐसा यह घेवर में छुरा ऐसा भगवान है, कहते हैं। आहाहा! अरेरे! उसे खबर नहीं होती। बादशाह तीन लोक का भिखारी होकर घूमता है। आहाहा!

एक प्रश्न किया था। धर्मदास का ज्ञानप्रकाश है न तीसरा ग्रन्थ? तीन लोक का नाथ कौन है? कि तीन लोक का नाथ तू है। आहाहा! क्योंकि तीन काल-तीन लोक को जानने की सामर्थ्य तुझमें है, ऐसा तू है। किसी का करना या किसी से अपने को हो, ऐसा तू नहीं है। परन्तु पूर्ण बातें पूरा। आहाहा! भाषा से नहीं, भाव से ऐसा है यह। तू सब बातें पूरा। किसी बात से अधूरा नहीं। अरेरे! यह कैसे बैठे इसे? यह आत्मतत्त्व की बात सर्वज्ञ वीतराग जिनवरदेव ने परमेश्वर ने जगत को फरमायी है, परन्तु इसे सुनने को मिलती नहीं, सुने तो इसे जँचती नहीं यह बात। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! तू तो चिन्तामणि है न! वह चिन्तामणि धूल है, वह तो पत्थर पैसा-बैसा दे। यह चिन्तामणि भगवान तो आनन्द को दे। आहाहा! 'शुद्धता विचारे ध्यावे, शुद्धता में केलि करे।' आता है न? आनन्द धारा बरसे। आहाहा! प्रभु! तू है ऐसा तुझे प्रतीति में तो ले। इस विश्वास के जहाज में चढ़ा इसे। तेरा जहाज तैरता होगा। आहाहा! लोगों को उस व्यवहार का रस है न! इसलिए व्यवहार से होता है, यह बड़ा विवाद है। प्रभु स्वयं अपने ऊपर विवाद करता है कि हमको यह व्यवहार है न, राग है न, उससे होगा। भाई! तू वीतराग है न! वीतरागस्वभाव की परिणति से वीतरागता होगी। वह राग से होगी नहीं। हो, व्यवहार आता है, राग होता है। व्यवहारनय का विषय समकिती को होता है, परन्तु उससे निश्चय स्वभाव में जा सके, उसमें से, ऐसा नहीं है।

उसका अभाव करके अन्दर जा सकता है। ऐसा उसका तत्त्व है। आहाहा! ऐसा...

ऐसा जानकर... देखो! **भोगों की वांछारूप जो विकल्प, उनको छोड़कर...** आहाहा! पर के भोग की वांछा, यह तो जहर की वांछा है, कहते हैं। आहाहा! स्त्री का, पुरुष का भोग जो है, अरे! पाँच इन्द्रिय के विषय का जो भोग है, वह तो जहर का वेदन है। आहाहा! जहर के प्याले में उस निर्विकल्प रस को भूल जाता है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि... सामने ऐसा लिया। इस अनुभव के लिये, यह अनुभव की वांछा छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसमें पुण्य और पुण्य के फल की भी वांछा है, उसे भोग की-जहर की वांछा है। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी जो सम्यग्दर्शन पाती है, तो उसे भोग की वांछा होती नहीं, रुचि होती नहीं। आहाहा! उसकी रुचि तो भगवान आनन्द में पड़ी है। पोसाता है आत्मा। पोषाण में आत्मा है। राग का पोसाण नहीं। आता है, आता है राग। आहाहा! परन्तु उसकी रुचि नहीं। तथा उसका आश्रय करे तो लाभ हो, ऐसी बुद्धि नहीं। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्यस्वरूप का आश्रय करें तो कल्याण होगा, ऐसी दृष्टि है। समझ में आया? **भोगों की वांछारूप...** पाँच इन्द्रिय की ओर के... अणीन्द्रिय में जाना है न, ऐसा कहते हैं। अर्थात् पाँचों ही इन्द्रियों की ओर के झुकाव के भोग की वांछा, इच्छा... आहाहा! ऐसा **जो विकल्प, उनको छोड़कर सम्यक्त्व का ग्रहण करना चाहिए।** आहाहा! '**जो इंदिये जिणित्ता**' आया है, वह तो दूसरे प्रकार से कहा है। वह इन्द्रियों की ओर की वांछा जो है... आहाहा! उसे छोड़। और **सम्यक्त्व का ग्रहण करना चाहिए।** आहाहा! **ऐसा कहा है,...**

अब दृष्टान्त। **जिसके हाथ में चिन्तामणि है,...** आहाहा! **धन में कामधेनु है, और जिसके घर में कल्पवृक्ष है,...** हाथ में, धन में और घर में, तीन बातें ली हैं। जिसके हाथ में चिन्तामणि है, वह माँगे उसे बाहर से मिले। धन में कामधेनु है। आहाहा! **और जिसके घर में कल्पवृक्ष है, उसके अन्य क्या प्रार्थना की आवश्यकता है?** आहाहा! **कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि तो कहने मात्र हैं,...** वह तो धूल के लिये है। आहाहा! **सम्यक्त्व ही कल्पवृक्ष,...** आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु की अनुभव होकर प्रतीति (होना), वह कल्पवृक्ष है, वह कामधेनु है, वह **चिन्तामणि है, ऐसा जानना।** आहाहा! यह १५ गाथा हुई। १६।

गाथा - १६

अथ यै षड्द्रव्यैः सम्यक्त्वविषयभूतैस्त्रिभुवनं भृतं तिष्ठति तानीदृक् जानीहीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं कथयति -

१३९) दव्वइँ जाणहि ताइँ छह तिहुयणु भरियउ जेहिं।
आइ-विणास-विवज्जियहिं णाणिहि पभणियएहिं।।१६।।

द्रव्याणि जानीहि तानि षट् त्रिभुवनं भृतं यैः।
आदिविनाशविवर्जितैः ज्ञानिभिः प्रभणितैः।।१६।।

दव्वइं इत्यादि। दव्वइं द्रव्याणि जाणहि त्वं हे प्रभाकभट्ट ताइं तानि परमागमप्रसिद्धानि। कतिसंख्योपेतानि छह षडेव। यैः द्रव्यैः किं कृतम्। तिहुयणु भरियउ त्रिभुवनं भृतम्। जेहिं यैः कर्तृभूतैः। पुनरपि किंविशिष्टैः। आइ-विणास-विवज्जयहिं द्रव्यार्थिकनयेनादिविनाश-विवर्जितैः। पुनरपि कथंभूतैः। णाणिहि पभणियएहिं ज्ञानिभिः प्रभणितैः कथितैश्चेति। अयमत्राभिप्रायः। एतैः षड्भिर्द्रव्यैर्निष्पन्नोऽयं लोको न चान्यः कोऽपि लोकस्य हर्ता कर्ता रक्षको वास्तीति। किं च। यद्यपि षड्द्रव्याणि व्यवहारसम्यक्त्वविषयभूतानि भवन्ति तथापि शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मानुभूति रूपस्य वीतरागसम्यक्त्वस्य नित्यानन्दैकस्वभावो निजशुद्धात्मैव विषयो भवतीति।।१६।।

आगे सम्यक्त्व के कारण जो छह द्रव्य हैं, उनसे यह तीनलोक भरा हुआ है, उनको यथार्थ जानो, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं -

उन छह द्रव्यों को तुम जानो त्रिभुवन जिनसे भरा हुआ।
आदि-अन्त बिन जो अनादि से, ज्ञानीजन ने यही कहा।।।१६।।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकरभट्ट, तू [तानि षट्द्रव्याणि] उन छहों द्रव्यों को [जानीहि] जान, [यैः] जिन द्रव्यों से [त्रिभुवनं भृतं] यह तीन लोक भर रहा है, वे छह द्रव्य [ज्ञानिभिः] ज्ञानियों ने [आदिविनाशविवर्जितैः] आदि अंतकर रहित द्रव्यार्थिकनय से [प्रभणितैः] कहे हैं।

भावार्थ :- वह लोक छह द्रव्यों से भरा है, अनादिनिधन है, इस लोक का आदि अंत नहीं है, तथा इसका कर्ता, हर्ता व रक्षक कोई नहीं है। यद्यपि ये छह द्रव्य व्यवहार

-सम्यक्त्व के कारण हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागसम्यक्त्व का कारण नित्य आनंद स्वभाव निज शुद्धात्मा ही है।।१६।।

गाथा-१६ पर प्रवचन

आगे सम्यक्त्व के कारण जो छह द्रव्य हैं, उनसे यह तीन लोक भरा हुआ है,... छह द्रव्य से भरा है न चौदह ब्रह्माण्ड? **उनको यथार्थ जानो, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं :—**

१३९) दव्वइँ जाणहि ताइँ छह तिहुयणु भरियउ जेहिँ।
आइ-विणास-विवज्जियहिँ णाणिहि पभणियएहिँ ॥१६॥

अन्वयार्थः—हे प्रभाकर भट्ट!... योगीन्द्रदेव सन्त-मुनि दिगम्बर आचार्य हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में (लीन हैं)। समझ में आया? आहाहा! कहाँ न पाँचवीं गाथा में? पाँचवीं गाथा में नहीं कहा? आनन्द प्रचुर, मुनि को प्रचुर आनन्द का अनुभव है। चौथे गुणस्थान में प्रचुर नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का अंश, स्वाद आया है। परन्तु छठवें में मुनि को सातवें-छठवें में (प्रचुर आनन्द का वेदन है)। आहाहा! वह मुनिपना किसे कहे, भाई! जिसे प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द के झरने बहते हैं। आहाहा! जिनका सत् जागकर उठा है। आहाहा! चारित्र की रमणता में उन्हें तो प्रचुर आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! वह मुनिपना है।

यहाँ कहते हैं कि **उन छहों द्रव्यों को जान...** व्यवहार से कहा, हों! निश्चयवाले को अभी पूर्ण वीतरागता न हो, तब यह छह द्रव्यों को जानकर उनकी श्रद्धा आदि का व्यवहार आये बिना नहीं रहता। तथापि उस व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! होता है, वहाँ व्यवहार होता है। वीतराग नहीं तब तक। आयेगा। १७वीं गाथा में आयेगा। **हे प्रभाकर भट्ट! तू उन छहों द्रव्यों को जान, जिन द्रव्यों से यह तीन लोक भर रहा है,...** आहाहा! तू ज्ञान-दर्शन से भरा है, छह द्रव्य से पूरा लोक भरा है।

वे छह द्रव्य ज्ञानियों ने आदि-अन्तकर रहित द्रव्यार्थिकनय से कहे हैं। छह द्रव्यों का नाश नहीं, उनका अन्त नहीं, उनकी शुरुआत नहीं। अनादि से छह द्रव्य जगत

है। भगवान ने छह द्रव्य-पदार्थ देखे हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, छह द्रव्य अनादि-अनन्त भरपूर भगवान ने चौदह ब्रह्माण्ड (देखा है)। आहाहा! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती। आहाहा!

भावार्थः—यह लोक छह द्रव्यों से भरा है, अनादिनिधन है,... अनादि-अनिधन अर्थात् कि अनादि-अनन्त। अनादिनिधन है न? निधन अर्थात् अन्त। अन आदि और अ-अन्त, ऐसा लेना बीच में। **इस लोक का आदि अन्त नहीं है, तथा इसका कर्ता, हर्ता...** नहीं। कोई ब्रह्मा ने किया हो और शंकर नाश करे, विष्णु रक्षण करे—ऐसा है नहीं। आहाहा! **कर्ता, हर्ता (नाशकर्ता) व रक्षक कोई नहीं है।** आहाहा! ऐसा छह द्रव्य से भरा है। निश्चय समकिती को भी ऐसे छह द्रव्य का ज्ञान और श्रद्धा करनी चाहिए। व्यवहार। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें आ गया। पुद्गल का जाने न। पुद्गल के आधार से पर है। पर को जाने। चैतन्य के अतिरिक्त पाँच, वह सब पुद्गल है। पुद्गल अर्थात् अजीव है। अजीव जाने तो पाँच आ गये। जीव जाने, उसमें स्वयं आ गया। आहाहा!

मुमुक्षु : .... दूसरे न जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो कहे व्यवहार से।

यद्यपि ये छह द्रव्य... देखो! अब न्याय देते हैं। निश्चय सम्यग्दृष्टि है, उसे व्यवहार समकित में छह द्रव्य की श्रद्धा होती है। छह द्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान और वह राग होता है। **यद्यपि ये छह द्रव्य व्यवहारसम्यक्त्व के कारण हैं,...** विषय है। समझ में आया? आहाहा! वह छह द्रव्य की श्रद्धा, वह व्यवहार विषय का कारण, व्यवहार समकित का कारण राग है। **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागसम्यक्त्व का कारण...** आहाहा! परमात्मप्रकाश है न यह तो? वह परमात्मप्रकाशस्वरूप ही तेरा है, ऐसा कहते हैं। परमात्मप्रकाशस्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मपना आयेगा कहाँ से? कहीं बाहर से आये ऐसा है? आहाहा! परमात्मस्वरूप ही तेरा है, बापू! सब परमात्मा हैं अनन्त। आहाहा!

मुमुक्षु : शक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति कहो, स्वभाव कहो, (सामर्थ्य) कहो। शक्ति स्वभाव है न उसका? परमात्मस्वभाव ही उसका है। पर्याय में प्रगट हो, तब परमात्मा हो।

छह द्रव्य व्यवहारसम्यक्त्व के कारण हैं, तो भी... देखा! देखो! अन्दर है, हों! यह। **'षड्द्रव्याणि व्यवहारसम्यक्त्वविषयभूतानि भवन्ति तथापि शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मानुभूति रूपस्य वीतरागसम्यक्त्वस्य नित्यानन्दैकस्वभावो'** देखा! **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप...** भगवान आत्मा शुद्ध, उसका अनुभव, उसके अनुभव का वीतरागसमकित... आहाहा! उस **शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागसम्यक्त्व का कारण...** वे छह द्रव्य व्यवहार समकित का कारण था। अब **शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागसम्यक्त्व का कारण...** कौन? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

नित्य आनन्द एक स्वभाव... 'एक' शब्द पड़ा रहा है यहाँ। **नित्य आनन्द एक स्वभाव निज शुद्धात्मा...** ही कारण है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को अन्दर... परमार्थ की बात सुनने को मिलती नहीं, इसलिए कहाँ जाये बेचारे? आहाहा! व्यवहार समकित में छह द्रव्य कारण हैं। परन्तु निश्चयनय में कौन कारण है? कि **शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप...** आहाहा! **वीतराग सम्यक्त्व का कारण नित्य आनन्द एक स्वभाव निज शुद्धात्मा ही है।** निश्चय सम्यग्दर्शन वीतराग समकित का कारण, सत्य दर्शन सम्यग्दर्शन पूर्ण स्वरूप की प्रतीति ऐसा सत्यदर्शन। आहाहा! शुद्धात्मानुभूति वीतराग समकित का कारण नित्य आत्मा। अभेद नित्य आनन्द। नित्यानन्द एक स्वभाव है न पाठ में? नित्यानन्द एक स्वभाव। वह स्वभाव लिया। कायमी आनन्द का एक स्वभाव ऐसा निज शुद्धात्मा ही। वह निश्चयनय शुद्धात्मानुभूति वीतराग का कारण, वह आत्मा है। आहाहा! क्या कहा यह?

शुद्ध निश्चयनय से देखें—यथार्थ दृष्टि से तो शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग समकित का कारण नित्यानन्द एक स्वभाव ऐसा एक आत्मा। आहाहा! व्यवहार समकित का कारण, यह छह द्रव्य कहा। छह द्रव्य व्यवहार समकित का विषय कहो, कारण कहो। और यह **शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग सम्यक्त्व का कारण...** अथवा उसका विषय, वह वीतराग समकित का विषय **नित्य आनन्द एक स्वभाव निज शुद्धात्मा...**

वापस द्रव्य। नित्य आनन्द एक स्वभाव ऐसा शुद्धात्मा। आहाहा! ऐसा है।

शुद्धात्मा ही है। भाषा ऐसी है। है? '**निजशुद्धात्मैव**' '**ऐव**' है अन्दर। '**निजशुद्धात्मैव**' कैसा शुद्धात्मा? '**नित्यानन्दैकस्वभावो**' नित्यानन्द एकरूप स्वभाव। नित्य आनन्द एकरूप स्वभाव। आहाहा! '**निजशुद्धात्मैव विषयो भवतीति**' निश्चयनय वीतराग समकित का विषय नित्य आनन्द एक स्वभाव ऐसा आत्मा उसका विषय अर्थात् ध्येय है और कारण है। आहाहा! समझ में आया? अरे! उसका ज्ञान तो करे पहले। उसके ज्ञान में इस बात को संग्रहे तो सही। लोग नहीं कहते? भाई! तेरे लक्ष्य में तो बात ले। आहाहा! बहुत सरस बात ली है। व्यवहार को तो यहाँ उड़ा दिया है। व्यवहार समकित का विषय तो छह द्रव्य है। निश्चय समकित का विषय तो यह भगवान है, ऐसा कहते हैं। दिशा में अन्तर हो गया पूरा।

मुमुक्षु : व्यवहार समकित निश्चय का कारण कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण कहाँ रहा इसमें? परन्तु लोग ऐसा कहते हैं। सोनगढ़ के नाम से यह बात निश्चय की आयी न, तो लोगों ने इसे उड़ाया। नाम से आयी है, परन्तु है तो भगवान की। आहाहा!

छह द्रव्य व्यवहार समकित का विषय है और निश्चय समकित का विषय निज द्रव्य है। दो ऐसी भाषा की है। छह द्रव्य, उसमें अनन्त सिद्ध भी आ गये, लाखों केवली आ गये, तीर्थंकर आ गये छह द्रव्य में। आहाहा! यह व्यवहार समकित का विषय है। अर्थात् व्यवहार समकित का यह कारण है, अर्थात् यह राग का कारण है। सामने डाला है न दे, देखो! वीतराग समकित कहा है न? सामने वीतराग है। आहाहा! छह द्रव्य, वह राग का कारण है। व्यवहार समकित अर्थात् राग। आहाहा! और वीतराग समकित का कारण... आहाहा! नित्य एक स्वभाव आनन्द। नित्यानन्द एक स्वभाव शुद्धात्मा। आहाहा! उसे कारण कहा है। उसके—व्यवहार के कारण से निश्चय होता है, ऐसा तो कहा नहीं।

मुमुक्षु : अरिहन्त को जाने....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अरिहन्त को जाने तो वह अन्दर आत्मा को जाने, तब अरिहन्त को जाना, ऐसा व्यवहार उसे लागू पड़ता है, यहाँ व्यवहार से बात की है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर, फिर अन्तर में जाये। पर्याय में गुण को मिलावे, गुण में

द्रव्य में अभेद करके दृष्टि करे, तब इसने आत्मा को जाना। तब अरिहन्त पर्याय में निमित्त हुई इसे। निमित्त। निमित्त से हुआ नहीं। यह बात है न। निमित्त से हुआ, ऐसा कहा जाता है परन्तु निमित्त से कार्य हुआ, वहाँ (ऐसा नहीं है) निमित्त है अवश्य। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय कहाँ है? यह तो उसे पहले ऐसा ख्याल आया कि केवलज्ञान ऐसा होता है। पश्चात् यह मिलान करने गया तो निमित्त कहने में आवे। परन्तु उस निमित्त से हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग, बापू! वीतरागमार्ग नहीं परन्तु तेरे स्वभाव का मार्ग ही यह है। आहाहा! तू तीन लोक का नाथ अन्दर विराजे प्रभु, आहाहा! सिद्ध की पर्याय की अनन्त पर्याय का पिण्ड अन्दर भगवान है। आहाहा! परन्तु उसे निज आत्मा की महिमा नहीं होती। पर की महिमा। बहुत तो पर्याय में पुण्य हो या ज्ञान का उघाड़ हो, क्षयोपशम हो, उसकी महिमा है इसे। आहाहा! परन्तु यह राग और क्षयोपशम की महिमा, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : मान तो मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान मिले इसे। मान तो इसे कहे 'लही भव्यता मोटु मान।' तीर्थंकर कहे कि यह समकिती जीव है, इसके अतिरिक्त मान किसका चाहिए है? आनन्दघनजी कहते हैं, 'लही भव्यता मोटु मान।' जिसे ज्ञानी कहे कि यह भव्य और पात्र जीव है, अब इसे किसका मान चाहिए है? और 'कौन अभव्य त्रिभुवन अपमान?' और परमात्मा ऐसा कहे कि यह धर्म के लिये नालायक है। आहाहा! चन्दुभाई! अब इसे किसका अपमान चाहिए है? कहते हैं। निगोद में जायेगा, उसकी ऐसी दशा होगी। आहाहा! बात में तो बहुत अन्तर है, भाई! दुनिया की पद्धति और परम्परा की रीति इस मार्ग से बहुत बदल गयी है। आहाहा!

छह द्रव्य, वह राग का कारण है, वह राग का विषय है। भगवान नित्यानन्द एक स्वभाव आत्मा, वह वीतरागी समकित का विषय है, वह वीतरागी समकित का कारण है। अब इतना तो स्पष्ट किया है। कहो, रतिभाई! आहाहा! पूरा अन्तर है। अब लोग कहते हैं, व्यवहार से भी होता है, ऐसा न माने तो एकान्त है। ऐसी सब बातें (करते

हैं)। अब विवाद यह उठा। आहाहा! निमित्त से नहीं होता तो यह मानते हैं, वह एकान्त है। ऐसा (वे) कहते हैं। आहाहा!

बहुत सरस बात। १६वीं गाथा में पूरी-पूरी बात की है। सोलह आना। दो सिद्धान्त सिद्ध किये कि छह द्रव्य व्यवहारसमकित का विषय कहो, कारण कहो। अर्थात् कि छह द्रव्य भगवान त्रिलोकनाथ भी उसमें आये, वे व्यवहार का कारण-विषय, राग का विषय, राग का कारण। आहाहा! ऐसा आया या नहीं? प्रवीणभाई! राग का विषय। तीन लोक के नाथ छह द्रव्य में आये, अनन्त सिद्ध आये। आहाहा! अनन्त निगोद आये, वह तो एक ओर रखो। छह द्रव्य अर्थात् कि अनन्त सिद्ध, वे व्यवहार समकित का कारण है। आहाहा! अर्थात् कि राग का कारण है। चेतनजी! आहाहा! ऐसी बात है। अब इस सिद्धान्त को इस प्रकार से न समझे और दूसरे प्रकार से ले। किसी जगह कैसे कथन किस अपेक्षा से आये हों। आहाहा! यह तो भाई ने कहा है न सम्यग्ज्ञान दीपिका में? जैन आदि, विष्णु आदि के आचार्यों के कहने में हाथी के बाहर के दाँत हैं। अन्दर का आशय तो वे जाने, ऐसा कहे। यह बाहर की—व्यवहार की बातें आवे न? वह तो सब बाहर के दाँत की बातें हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि दो बात। यह आत्मा नित्यानन्द एक स्वभावरूप शुद्ध आत्मा एक ओर तथा एक ओर छह द्रव्य। छहों द्रव्य में पाँच परमेष्ठी भी आ गये, शास्त्र भी आ गये। देव-गुरु-शास्त्र तीनों छह द्रव्यों में आ गये। आहाहा! यह व्यवहार समकित का कारण अर्थात् विषय अर्थात् राग का कारण यह है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग! रसिकभाई! आहाहा!

भगवान! तू परमेश्वर है। तेरी परमेश्वरता तुझे न बैठे, पामरता बैठे, वह तो मिथ्यात्व भ्रम है। आहाहा! सिद्धान्त तो क्या कहा? ... आहाहा! कि छह द्रव्य व्यवहार समकित अर्थात् शुभराग, उसका वह विषय है। छह द्रव्य शुभराग का कारण है। भगवान भी राग का कारण है। आहाहा! फूलचन्दजी! ऐसा मार्ग है, प्रभु। अरे! तुझे जँचे नहीं, रुचे नहीं, भाई! व्यवहार में, वर्तन में प्रेम, वह तो अनादि का है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि अकेला शुद्ध द्रव्य ही एकान्त वीतराग समकित का कारण है, ऐसा कहा न? कि कथंचित् यह और कथंचित् छह द्रव्य और व्यवहार। ऐसा कहा?

वहाँ तो ऐसा कहा '**निजशुद्धात्मैव**' '**ऐव**' अर्थात् वही। आहाहा! त्रिकाली भगवान शुद्ध पूर्णानन्द का नाथ, नित्य आनन्द एक स्वभावी वस्तु, वही समकित का कारण है। वही सम्यग्दर्शन का विषय है, वही समकिती का ध्येय है। आहाहा! व्यवहार समकित का ध्येय छह द्रव्य पर है। उसमें तो स्पष्ट बात कही। ऐसे व्यवहार से होता है और निश्चय से होता है। ऐसी दो बात नहीं ली। परन्तु ऐसा है कहाँ से? क्योंकि व्यवहार जो छह द्रव्य की श्रद्धा में परमेष्ठी आये, परन्तु उस राग का विषय बाह्य है। राग की दशा की दिशा, राग की दशा, उसकी दिशा बाहर है। आहाहा! और वीतरागदशा, उसकी दिशा अन्तर है। १६वीं गाथा में बहुत कहा। आहाहा! टीका में है, हों! यह।

मुमुक्षु : .... व्यवहार से निश्चय।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से निश्चय नहीं होता। व्यवहार से हो कैसे? होता है। निश्चय समकितवाले को व्यवहार होता है। केवली न हो तब तक। दान, पूजा, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा। परन्तु वह सब राग है और राग का विषय वह पर है। आहाहा! तब वीतराग सम्यग्दर्शन अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन शुद्धात्मा की, शुद्ध आत्मा के अनुभवरूप वीतराग समकित, उसका विषय कहो, उसका कारण कहो तो नित्य आनन्द एक स्वभाव शुद्धात्मा कहा। अब उसमें कथंचित् यह और कथंचित् यह, ऐसा तो कुछ कहा नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसा कहा है? कथंचित् व्यवहार आता है। कथंचित् व्यवहार से भी स्व विषय होता है और कथंचित् निश्चय से भी स्वविषय स्व अर्थात् कारण होता है। सोनगढ़ के नाम से यह बड़ा विवाद है अभी। सोनगढ़ भी कहाँ था और नाम भी कहाँ था यहाँ? नाम भी जड़ का है। यह तो शरीर का नाम है। आत्मा को नाम भी कहाँ था? आहाहा!

मुमुक्षु : अन्धकार का अभाव हो तो प्रकाश हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्धकार का अभाव हो तो प्रकाश होता है न? यह तो कहे, अन्धकार से उजाला होता है। व्यवहार राग, वह अन्धकार है। उससे चैतन्य का प्रकाश समकित हो। यहाँ तो वीतरागी समकित का प्रकाश, वह निज आत्मा है, कारण में। उसका कारण निज आत्मा है। आहाहा! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' लिया यह तो। यह (समयसार) ११वीं गाथा है। आहाहा!

गाथा - १७

अथ तेषामेव षड्द्रव्याणां संज्ञां कथयति चेतनाचेतनविभागं च कथयति -

१४०) जीउ सचेयणु दव्वु मुणि पंच अचेयण अण्ण।
पोग्गलु धम्माहम्मु णहु कालें सहिया भिण्ण।।१७।।

जीवः सचेतनं द्रव्यं मन्यस्व पञ्च अचेतनानि अन्यानि।
पुद्गलः धर्माधर्मौ नभः कालेन सहितानि भिन्नानि।।१७।।

जीउ इत्यादि। जीउ सचेयणु दव्वु चिदानन्दैकस्वभावो जीवश्चेतनाद्रव्यं भवति। मुणि मन्यस्व जानीहि त्वम्। पंच अचेयण पञ्चाचेतनानि अण्ण जीवादन्यानि। तानि कानि। पोग्गलु धम्माहम्मु णहु पुद्गलधर्माधर्मनभांसि कथंभूतानि तानि कालें सहिया कालद्रव्येण सहितानि। पुनरपि कथंभूतानि। भिण्ण स्वकीयस्वकीयलक्षणेन परस्परं भिन्नानि इति। तथाहि। द्विधा सम्यक्त्वं भण्यते सरागवीतरागभेदेन। सरागसम्यक्त्वलक्षणं कथ्यते। प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्या-भिव्यक्तिलक्षणं सरागसम्यक्त्वं भण्यते, तदेव व्यवहारसम्यक्त्वमिति तस्य विषयभूतानि षड्द्रव्याणीति। वीतरागसम्यक्त्वं निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं वीतरागचारित्राविनाभूतं तदेव निश्चयसम्यक्त्वमिति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं भवतीति बहुधा व्याख्यातं पूर्वं भवद्भिः, इदानीं पुनः वीतरागचारित्राविनाभूतं निश्चयसम्यक्त्वं व्याख्यातमिति पूर्वापरविरोधः कस्मादिति चेत्। निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं निश्चय-सम्यक्त्वं गृहस्थावस्थायां तिर्थंकरपरमदेवभरतसगररामन्पाण्डवादीनां विद्यते, न च तेषां वीतराग-चारित्रमस्तीति परस्परविरोधः, अस्ति चेत्तर्हि तेषामसंयतत्वं कथमिति पूर्वपक्षः। तत्र परिहारमाह। तेषां शुद्धात्मोपादेयभावनारूपं निश्चयसम्यक्त्वं विद्यते परं किंतु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रतप्रतिज्ञाभङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यन्ते। शुद्धात्मभावनाच्युताः सन्तः भरतादयो निर्दोषिपरमात्मनामर्हत्सिद्धानां गुणस्तववस्तुस्तवरूपं स्तवनादिकं कुर्वन्ति तच्चरित-पुराणादिकं च समाकर्णयन्ति तदाराधकपुरुषाणामाचार्यो-पाध्यायसाधूनां विषयकषायदुर्ध्यान-वञ्चनार्थं संसारस्थितिच्छेदनार्थं च दानपूजादिकं कुर्वन्ति तेन कारणेन शुभरागयोगात् सराग-सम्यग्दृष्टयो भवन्ति। या पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञा वीतरागचारित्राविनाभूतस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। वस्तुवृत्त्या तु तत्सम्यक्त्वं सरागसम्यक्त्वाख्यं व्यवहारसम्यक्त्वमेवेति भावार्थः।।१७।।

आगे उन छह द्रव्यों के नाम कहते हैं -

जीव चेतना सहित, अचेतन युक्त द्रव्य हैं पाँच कहे।
पुद्गल धर्म अधर्म और आकाश काल हैं भिन्न कहे।।१७।।

अन्वयार्थ :- हे शिष्य, तू [जीवः सचेतनं द्रव्यं] जीव चेतनद्रव्य है, ऐसा [मन्यस्व] जान, [अन्यानि] और बाकी [पुद्गलः धर्माधर्मौ] पुद्गल धर्म, अधर्म, [नभः] आकाश [कालेन सहिता] और काल सहित जो [पंच] पाँच हैं, वे [अचेतनानि] अचेतन हैं और [अन्यानि] जीव से भिन्न हैं, तथा ये सब [भिन्नानि] अपने-अपने लक्षणों से आपस में भिन्न (जुदा-जुदा) हैं, काल सहित छह द्रव्य हैं, काल के बिना पाँच अस्तिकाय हैं।

भावार्थ :- सम्यक्त्व दो प्रकार का है, एक सरागसम्यक्त्व दूसरा वीतरागसम्यक्त्व, सरागसम्यक्त्व का लक्षण कहते हैं। प्रशम अर्थात् शान्तिपना, संवेग अर्थात् जिनधर्म की रुचि तथा जगत से अरुचि, अनुकंपा परजीवों को दुःखी देखकर दया भाव और आस्तिक्य अर्थात् देव-गुरु-धर्म की तथा छह द्रव्यों की श्रद्धा इन चारों का होना वह व्यवहार-सम्यक्त्वरूप सरागसम्यक्त्व है, और वीतरागसम्यक्त्व जो निश्चयसम्यक्त्व वह निजशुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागचारित्र से तन्मयी है। यह कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया। हे प्रभो, निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व का कथन पहले तुमने अनेक बार किया, फिर अब वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व है, वह व्याख्यान करते हैं, सो यह तो पूर्वापर विरोध है। क्योंकि जो निज शुद्धात्मा ही उपादेय हैं, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व तो गृहस्थ में तीर्थंकर परमदेव भरत चक्रवर्ती और राम, पांडवादि बड़े-बड़े पुरुषों के रहता है, लेकिन उनके वीतरागचारित्र नहीं है। यही परस्पर विरोध है। यदि उनके वीतरागचारित्र माना जावे, तो गृहस्थपना क्यों कहा? यह प्रश्न किया। उसका उत्तर श्रीगुरु देते हैं। उन महान् (बड़े) पुरुषों के शुद्धात्मा उपादेय है ऐसी भावनारूप निश्चयसम्यक्त्व तो है, परन्तु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है। जब तक महाव्रत का उदय नहीं है, तब तक असंयमी कहलाते हैं, शुद्धात्मा की अखंड भावना से रहित हुए भरत, सगर, राघव, पांडवादिक निर्दोष परमात्मा अरहंत सिद्धों के गुणस्तवन वस्तुस्तवनरूप स्तोत्रादि करते हैं, और उनके चारित्र पुराणादिक सुनते हैं, तथा उनकी आज्ञा के आराधक जो महान पुरुष, आचार्य, उपाध्याय, साधु उनको भक्ति से आहारदानादि करते हैं, पूजा करते हैं। विषय कषायरूप खोटे ध्यान के रोकने के लिये तथा संसार की स्थिति के नाश करने के लिये ऐसी शुभ क्रिया करते हैं। इसलिये शुभ राग के संबंध से सम्यग्दृष्टि हैं, और इनके निश्चयसम्यक्त्व भी कहा जा सकता है, क्योंकि वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व के परम्पराय साधकपना है। अब वास्तव में (असल में) विचारा जावे, तो गृहस्थ अवस्था में इनके सरागसम्यक्त्व ही है और जो सरागसम्यक्त्व है, वह व्यवहार ही है, ऐसा जानो।।१७।।

गाथा-१७ पर प्रवचन

अब १७वीं गाथा। बड़ी लम्बी है।

आगे उन छह द्रव्यों के नाम कहते हैं:— छह द्रव्य है न? यह कहा पहले कि छह द्रव्य, वह व्यवहार समकित का कारण है। परन्तु छह द्रव्य है कौन? ऐसा कहकर लम्बा विस्तार करेंगे। १७।

१४०) जीउ सचेयणु दव्वु मुणि पंच अचेयण अण्ण।
पोग्गलु धम्माहम्मु णहु कालेँ सहिया भिण्ण॥१७॥

अन्वयार्थ:—हे शिष्य! तू जीव चेतनद्रव्य है, ऐसा जान,... यह चेतनद्रव्य जान, ऐसा। चेतनद्रव्य भगवान आत्मा। छह द्रव्य में भी जीव है, वह चेतनद्रव्य है। यह छह द्रव्य की बात करते हैं अभी। जान। **और बाकी पुद्गल...** यह शरीर, वाणी, मन, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल **सहित जो पाँच है, वे अचेतन हैं और जीव से भिन्न हैं,...** आहाहा! चेतनस्वरूप भगवान आत्मा से पाँच अचेतन तो अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! शरीर, वाणी, मन यह सब तो अचेतन जड़, मिट्टी है। चेतन से भिन्न है। आहाहा! छह द्रव्य में अजीव में यह शरीर आया। वाणी, मन, कर्म यह सब अजीवद्रव्य में आया। एक चेतनद्रव्य, वह आत्मा है। छह द्रव्य में भी भी यहाँ तो अभी। छह द्रव्य की व्यवहार श्रद्धा करने में भी मन, वाणी, देह यह सब अजीव और पुद्गल में गये। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार श्रद्धा में भी इस प्रकार है। निश्चय सम्यग्दर्शन की भूमिका में छह द्रव्य का कारण समकित का कारण, उसमें यह आया। आहाहा! मन, वाणी, देह पुद्गल है, अजीव है।

तथा ये सब अपने-अपने लक्षणों से आपस में भिन्न (जुदा-जुदा) हैं,... लो! ऐसी दो बात ली। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने लक्षण से भिन्न है। यहाँ दो बातें की। एक चेतन द्रव्य से पाँच द्रव्य अचेतन भिन्न और वह प्रत्येक द्रव्य भी अपने-अपने लक्षण से पर से भिन्न। आहाहा! यह व्यवहार समकित में भी ऐसी इसे श्रद्धा होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **तथा ये सब अपने-अपने लक्षणों से आपस में भिन्न (जुदा-जुदा) हैं, काल सहित छह द्रव्य हैं।** असंख्य कालद्रव्य हैं। काल अस्ति

है, परन्तु अस्तिकाय नहीं। काल बिना पाँच अस्तिकाय है। यह तो अभी व्यवहार समकित के कारणरूप छह द्रव्य की श्रद्धा की पहिचान कराते हैं। जिसे निश्चय समकित हो, उसे ऐसा व्यवहार समकित पूर्ण वीतराग न हो, तब तक होता है—ऐसा कहते हैं। तथापि वह व्यवहार समकित निश्चय का कारण नहीं। होता है, वस्तु है। जैसे निमित्त वस्तु है, परन्तु निमित्त पर का करता नहीं। उसी प्रकार व्यवहार वस्तु है, परन्तु व्यवहार निश्चय को करता नहीं। इसमें बड़ा अन्तर है। आहाहा!

भावार्थः—सम्यक्त्व दो प्रकार का है, एक सरागसम्यक्त्व दूसरा वीतराग सम्यक्त्व, सरागसम्यक्त्व का लक्षण कहते हैं। प्रशम अर्थात् शान्तिपना,... सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था पाँच है न? **शान्तिपना, संवेग अर्थात् जिनधर्म की रुचि तथा जगत से अरुचि,...** संवेग। **अनुकम्पा परजीवों को दुःखी देखकर दया भाव और आस्तिक्य अर्थात् देव-गुरु-धर्म की तथा छह द्रव्यों की श्रद्धा...** देखो! आहाहा! सराग समकित के यह प्रकार हैं। उसे देव-गुरु-धर्म की, छह द्रव्य की श्रद्धा (होती है) **इन चारों का होना, वह व्यवहारसम्यक्त्वरूप सरागसम्यक्त्व है,...** आहाहा! आगे अधिक कहेंगे।

और वीतरागसम्यक्त्व जो निश्चयसम्यक्त्व, वह निजशुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग-चारित्र से तन्मयी है। यहाँ जरा बदलेंगे अब। **वीतरागसम्यक्त्व जो निश्चय-सम्यक्त्व, वह निजशुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागचारित्र से तन्मयी है।** आहाहा! **यह कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया है। हे प्रभो! निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व का कथन पहले तुमने अनेक बार किया,...** निज शुद्धात्मा ही उपादेय, आदरणीय है अन्दर। जिसमें निमित्त, राग और पर्याय भी नहीं। उपादेय में। आहाहा! जिसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष भी उपादेय नहीं। आहाहा! है न? निज शुद्धात्मा ही अन्दर दृष्टि में आदरणीय है। **ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व का कथन पहले तुमने अनेक बार किया, फिर अब वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व है, वह व्याख्यान करते हैं, सो यह तो पूर्वापर विरोध है।** इसका स्पष्टीकरण करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण १३, गुरुवार
दिनांक-२१-१०-१९७६, गाथा-१७, प्रवचन-११०

परमात्मप्रकाश, गाथा १७। यहाँ तक (चला है)। फिर से लेते हैं। देखो!

देव-गुरु-धर्म की तथा छह द्रव्यों की श्रद्धा इन चारों का होना... प्रशम, संवेग, निर्वेग, अनुकम्पा, आस्था। इन चार का अस्तित्व, वह व्यवहार समकित, सराग समकित है। ध्यान रखना जरा, आज दूसरी अपेक्षा है। **और वीतरागसम्यक्त्व जो निश्चयसम्यक्त्व वह निजशुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागचारित्र से तन्मयी है।** यह क्या कहते हैं? छठवें गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है। परन्तु साथ में राग है, इससे गिनकर उसे सराग समकित कहने में आया है। चारित्रदोष के सम्बन्ध से। समकित तो वहाँ निश्चय है। अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य, वह उपादेय है, ऐसी दृष्टि चौथे गुणस्थान में निश्चय से है। वह छठवें में भी है। परन्तु यहाँ दूसरी अपेक्षा लेते हैं। यह अब शिष्य का प्रश्न है।

जो निश्चयसम्यक्त्व वह निजशुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागचारित्र से तन्मयी है। ऐसा आचार्य ने कहा। क्या कहा यह? कि निश्चय समकित है, वह वीतरागचारित्र से एकमेक होता है, उसे निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं। यहाँ गुरु का जवाब सुनकर शिष्य को फिर प्रश्न होगा। क्या कहा यह? कि छठवें गुणस्थान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, है तो वह आत्मा के आश्रय से हुई दृष्टि, इसलिए है तो वह निश्चय। परन्तु साथ में राग का भाग चारित्र का दोष है, इस अपेक्षा से उसे सराग समकिती अथवा छठवें गुणस्थान में उसे व्यवहार कहने में आया है। फिर जब वीतरागचारित्र होता है, तब वीतरागचारित्र के सहित जो समकित है, उसे निश्चय समकित वीतरागचारित्र की अपेक्षा से कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा!

यह कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया। शिष्य ने प्रश्न किया। **प्रभु! निज शुद्धात्मा ही उपादेय है...** शुद्ध भगवान पूर्णानन्द आत्मा, वही पर्याय में वर्तमान ज्ञान की पर्याय में त्रिकाली शुद्ध आत्मा, वही आदरणीय, उपादेय और ध्येय है। ऐसा तो आपने कहा था। समझ में आया? आहाहा! **निज शुद्धात्मा ही...** ऐसा शब्द है न? निमित्त भी

नहीं, राग भी नहीं और पर्याय भी नहीं। शुद्ध आत्मा जो ध्रुव, अनादि-अनन्त शाश्वत् चीज़, वही सम्यग्दर्शन की पर्याय में उपादेय है। उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है। **ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व का कथन पहले तुमने अनेक बार किया,...** समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, स्वच्छता, वीतरागता ऐसा जो शुद्धात्मा, वही पर्याय में आदरणीय और उपादेय है। और उसे आपने निश्चय समकित कहा है। समझ में आया?

फिर अब वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व है, वह व्याख्यान करते हैं, सो यह तो पूर्वापर विरोध है। शिष्य का प्रश्न समझ में आता है? कि प्रथम आप ऐसा कहते थे, क्या कहते थे? कि शुद्ध आत्मा पूर्णानन्द का नाथ उपादेय है, उसकी दृष्टि वह निश्चय है। और यहाँ फिर आप कहते हो कि वीतरागचारित्र हो, तब निश्चय समकित होता है। यह तो पूर्वापर विरोध हुआ। समझ में आया? क्या अपेक्षा है, यह समझना चाहिए। **वह व्याख्यान करते हैं, सो यह तो पूर्वापर विरोध है। क्योंकि जो निज शुद्धात्मा ही उपादेय हैं, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व तो गृहस्थ (अवस्था) में तीर्थंकर...** परमेश्वर को भी होती है गृस्थाश्रम में तीर्थंकर मुनि न हो, तब तक गृहस्थाश्रम में भी निश्चय समकित तो उन्हें होता है। चौथे-पाँचवें गुणस्थान में होता है। निश्चय है।

परमदेव भरत चक्रवर्ती... देखो! गृहस्थाश्रम में थे परन्तु निश्चय समकित तो है। शुद्ध भगवान आत्मा ही आदरणीय है। निमित्त, राग और पर्याय नहीं। ऐसी अन्तर में अनुभव की दृष्टि हुई, वह तो **भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती और राम, पाण्डवादि...** रामचन्द्रजी महापुरुष गृहस्थाश्रम में थे। पाण्डव गृहस्थाश्रम में थे। **बड़े-बड़े पुरुषों के रहता है,...** क्या कहा यह? बड़े-बड़े पुरुषों को भी गृहस्थाश्रम में निश्चय समकित तो आप कहते आये हैं और होता है। रतिभाई!

लेकिन उनके वीतरागचारित्र नहीं है। गृहस्थाश्रम में तीर्थंकरदेव, भरत आदि चक्रवर्ती उन्हें कहीं वीतराग चारित्र नहीं है। तथापि आप तो पहले से कहते आये हो कि उन्हें निश्चय समकित होता है। शुद्ध उपादान आत्मा को उपादेय गिनकर जो अनुभव हुआ, उसका नाम समकित और वह निश्चय है। **यही परस्पर विरोध है।** शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया फूलचन्दजी! क्या कहा, समझ में आया? आप पहले ऐसा कहते

आये हो कि गृहस्थाश्रम में भी तीर्थंकरों को, चक्रवर्ती को शुद्ध भगवान आत्मा आनन्दरूप उपादेय है, ऐसी दृष्टि और रुचि हुई है, उसे आपने निश्चय सत्य समकित कहा है। यहाँ और आप वीतरागचारित्र हो, तब निश्चय समकित होता है, ऐसा जो आप कहते हो तो पूर्वापर विरोध हो गया। समझ में आया? शान्तिभाई! सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा! देवीलालजी!

आप तो अभी तक ऐसा कहते थे कि यह आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान शुद्ध चैतन्यघन, शुद्धात्मा, वह अन्तर में उपादेय, आदरणीय, सत्कार, स्वीकार करनेवाले को निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा तो आप अभी तक कहते आये हो। और यहाँ ऐसा कहते हो कि निश्चय सम्यग्दर्शन तो वीतरागचारित्र हो, वहाँ होता है। चारित्र की वीतरागता होती है, वहाँ निश्चय होता है। यह तो पूर्वापर विरोध हुआ। देवीलालजी! आहाहा! **लेकिन उनके वीतरागचारित्र नहीं है।** रामचन्द्रजी, पाण्डव, तीर्थंकर गृहस्थाश्रम में (थे), उन्हें वीतरागचारित्र नहीं। वे तो असंयमी हैं या संयमी-संयमी कोई होता है।

यदि उनके वीतरागचारित्र माना जावे, तो गृहस्थपना क्यों कहा? भरत चक्रवर्ती, तीन ज्ञान के धनी तीर्थंकर गृहस्थाश्रम में हैं। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। जिन्हें छियानवें हजार तो स्त्रियाँ थीं। वे गृहस्थाश्रम में थे। उन्हें वीतरागचारित्र तो नहीं। समझ में आया? वे तो असंयमी थे। और कोई पाँचवें गुणस्थान में तीर्थंकर आदि आगे गये हों। परन्तु वह कहीं वीतरागचारित्र उन्हें नहीं था। **यह प्रश्न किया। वीतरागचारित्र माना जावे, तो गृहस्थपना क्यों कहा? यह प्रश्न किया।**

उसका उत्तर श्रीगुरु देते हैं। उन महान (बड़े) पुरुषों के शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसी भावनारूप निश्चयसम्यक्त्व तो है,... पूर्ण वीतरागचारित्रसहित का नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन जो निश्चय है, वह तो है। आहाहा! यह सब बात करते हैं न कि जयसेनाचार्य में चौथे गुणस्थान में सरागसमकित कहा है, व्यवहार समकित कहा है, निश्चय नहीं। ऐई! चेतनजी! तुम्हारे मित्र। यह तो पूर्व की... आहाहा! यहाँ कहते हैं, सुन, भाई! **उन महान (बड़े) पुरुषों के शुद्धात्मा उपादेय है...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि का ध्येय तो शुद्धात्मा ही है। शुद्धात्मा ही है। आहाहा! और उसे ध्येय बनाने से ही सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : भावना लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना का अर्थ एकाग्र है। निश्चय से तो एकाग्र है। समकित की अपेक्षा से, हों!

ऐसी भावनारूप निश्चयसम्यक्त्व तो है,... परन्तु वह वीतरागचारित्रसहित नहीं है, इसलिए भाषा ऐसी ली है। आहाहा! **परन्तु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है।** यह ली है। अस्थिरता है अभी। चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में आदि अस्थिरता रागभाग आता है न दोष! आहाहा!

मुमुक्षु : कषाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : कषायसहित के राग को, यहाँ है तो निश्चय, परन्तु कषायसहितवाले को सराग कहकर व्यवहार कहेंगे। चारित्र की प्रधानता से बात करते हैं। क्या कहा, समझ में आया? है तो आत्मा अन्दर शुद्धात्मा की प्रतीति-अनुभव हुआ। वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। परन्तु साथ में चारित्र का दोष है, इस अपेक्षा से उसे सराग कहकर व्यवहार समकित कहा गया है। चारित्रदोष की अपेक्षा से। वस्तु की दृष्टि समकित की अपेक्षा से तो निश्चय है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : कठिन पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है परन्तु धीरे-धीरे तो कहा जाता है। प्रवीणभाई! कहते हैं, कठिन पड़े ऐसा है। आहाहा!

बात तो ऐसी कही कि सम्यग्दृष्टि का ध्येय तो शुद्धात्मा ही है। पूर्ण द्रव्यस्वभाव। और इसीलिए उस द्रव्यस्वभाव का उपादेयरूप से अनुभव हुआ, उस समकित को निश्चय समकित ही कहा जाता है। समकित की अपेक्षा से। परन्तु उसके साथ राग का दोष है, अस्थिरता है, विषयवासना आती है। युद्ध का राग आता है। इत्यादि... इत्यादि। इस अस्थिरता की अपेक्षा से उसे वीतरागचारित्र नहीं है। और वीतरागचारित्र के साथ जो निश्चय चाहिए, वह नहीं है। इसलिए उसे सरागसमकित कहने में आता है। समकित तो निश्चय है वीतराग। समझ में आया?

मुमुक्षु : वीतराग हो, उसे सराग कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चारित्रदोष की अपेक्षा से उसे सराग कहना, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : अस्थिरता का?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्थिरता है न। समझ में आया? है तो निश्चय, परन्तु चारित्र की प्रधानता से यहाँ कथन किया गया है। वीतरागचारित्र जहाँ आगे अस्थिरता है वहाँ आगे उसे समकित को निश्चय वीतरागचारित्र की अपेक्षा से निश्चय कहना। और नीचे सराग है छठवें गुणस्थान में अभी। पंच महाव्रतादि के भाव शुभादि है। और गृहस्थाश्रम में भी शुभभाव है। इससे शुभराग के सम्बन्ध से जो समकित है, उसे सराग समकित चारित्र की अपेक्षा से कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! इस अपेक्षा से व्यवहार। चारित्र की अपेक्षा से उसे व्यवहार कहा। वीतरागता नहीं, इस अपेक्षा से। समझ में आया? अरे! इसे यह समझना पड़ेगा, बापू!

अनन्त काल में दुःखी हो गया है। चौरासी के अवतार कर-करके अनन्त अवतार किये। दुःखी... दुःखी... दुःखी... इसके दुःख की बातें शास्त्र करे। भाई! तेरे दुःख की क्या बातें करना, बापू! अनन्त काल में तूने दुःख सहन किये हैं। यह देव और सेठाई में भी दुःख ही है। राग का दुःख है वहाँ। क्लेश है, आनन्द का अभाव है। आहाहा! उसे मिटाने के लिये प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन तो इसे प्रगट करना चाहिए। वह सम्यग्दर्शन कैसे हो? वह शुद्धात्मा पूर्णानन्द द्रव्यस्वभाव, उसे पर्याय में ध्यान का विषय बनाकर, पर्याय ध्यान, उसका विषय द्रव्य को बनाकर... आहाहा! और जिसकी अन्तर में, यह आत्मा आनन्द है, ऐसा ज्ञान हुआ, उसमें जो रुचि हो, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? भले राग का दोष हो, परन्तु समकित की अपेक्षा से उसे निश्चय कहते हैं। परन्तु अब राग के दोष सहित जब कहना हो... समझ में आया? तब उसे व्यवहार समकित (कहा जाता है)। वह सरागपना है न? वीतरागता आयी नहीं। क्योंकि आत्मा का जैसा वीतरागस्वरूप है, वस्तु तो वीतरागस्वरूप है, उसकी प्रतीति और अनुभव हुआ है, परन्तु वीतरागता पर्याय में आयी नहीं। आहाहा! इस अपेक्षा से वीतरागचारित्र की अपेक्षा लेकर उस समकित को; है तो निश्चय पहले से, परन्तु चारित्र की वीतराग की अपेक्षा से उसे निश्चय समकित कहा। यहाँ दूसरी बात करेंगे अभी। समझ में आया? बहुत समय का विषय चलता है कि निश्चय चौथे-चौथे (में होता है)। अब यहाँ चौथे, पाँचवें, छठवें में भी सराग है, ऐसा कहते हैं। किस

अपेक्षा से कहा ? क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसका अनुभव और प्रतीति हुई है, परन्तु वीतरागता पर्याय में आयी नहीं, तब तक राग के दोष की अपेक्षा से, चारित्र के दोष की अपेक्षा से उस समकित को सराग कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! प्रेमचन्दजी ! आहाहा !

मुमुक्षु : चारित्र का जोर देना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्रदोष का अभाव करने के लिये बात की है। समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो !

पुरुषों के शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसी भावनारूप निश्चयसम्यक्त्व तो है, परन्तु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है। जब तक महाव्रत का उदय नहीं है,... यह तो गृहस्थाश्रम लिया पहले ? **तब तक असंयमी कहलाते हैं,...** जब तक चारित्र नहीं, छठवाँ गुणस्थान नहीं, तब तक तो वह असंयमी कहलाता है। आहाहा ! **शुद्धात्मा की अखण्ड भावना से रहित...** देखो ! **शुद्धात्मा की अखण्ड भावना से रहित हुए...** अन्दर में शुद्धात्मा की अखण्ड भावना में स्थिर नहीं, तब **भरत, सगर, राघव, पाण्डवादिक...** राघव अर्थात् राम। भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती, राघव अर्थात् राम, पाण्डव आदि **निर्दोष परमात्मा अरहन्त सिद्धों के गुणस्तवन वस्तुस्तवनरूप स्तोत्रादिक करते हैं,...** शुभराग से।

रामचन्द्रजी आदि। **सगर आदि भरत आदि निर्दोष परमात्मा अरहन्त सिद्धों के गुणस्तवन...** करते थे। वह शुभराग है। **वस्तुस्तवनरूप स्तोत्रादिक करते थे,...** वस्तु जैसी है, उसका विकल्प से स्तवन, गुणग्राम करते थे। पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है, शुद्ध है, अखण्ड है, ऐसे विकल्प द्वारा वस्तु की स्तुति भी करते थे। गुण और द्रव्य, ऐसे दो लिया, भाई ! गुणस्तवन और वस्तुस्तवन। गुणस्तवन कि भगवान आत्मा अनन्त आनन्द, ज्ञान, दर्शन आनन्द आदि गुणस्तवन। वस्तुस्तवन-द्रव्यस्वभाव, पूर्ण है—ऐसा स्तवन। वह वस्तुस्तवन भी है तो विकल्प। समझ में आया ? आहाहा !

वस्तुस्तवनरूप स्तोत्रादिक करते थे,... स्तवन करते थे, भक्ति करते थे। **और उनके चारित्र पुराणादिक सुनते थे,...** चारित्र और पुराणादि सुनते थे। **उनकी आज्ञा के**

आराधक जो महान पुरुष, आचार्य, उपाध्याय, साधु उनको भक्ति से आहारदानादि करते थे,... निश्चय सम्यग्दृष्टि हैं परन्तु व्यवहार में रागसहित क्रिया में जुड़ते थे। यह क्रियायें राग की। पूजा करते थे। **आचार्य, उपाध्याय, साधु...** आहाहा! **उनको भक्ति से आहारदानादि करते थे,...** यह शुभभाव है न? **विषय कषायरूप खोटे ध्यान के रोकने के लिये तथा संसार की स्थिति...** सम्यग्दृष्टि है परन्तु राग घटाते हैं, उतनी संसार की स्थिति घट जाती है। समझ में आया? राग कषाय है, वह स्थिति और रस पाड़नेवाला है न? योग है, वह प्रकृति और प्रदेश का कारण है तथा कषाय है, वह स्थिति और अनुभाग का कारण है। तो शुभभाव में कर्म की स्थिति घटती है। उतना संसार घटता है। समझ में आया? परन्तु यह सम्यग्दर्शनसहित की बात है।

मुमुक्षु : शुभ से धर्म होता है, ऐसा आया सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे धर्म होता है, ऐसा यहाँ नहीं कहा।

यहाँ तो निश्चय शुद्ध की परिणति सम्यक् की है, परन्तु साथ में वीतराग स्थिरता नहीं है, इसलिए उसे... ऐसा कहा न? **शुद्धात्मा की अखण्ड भावना से रहित...** ऐसा कहा। अखण्ड भावना जो अन्दर स्थिर होना, वह भावना नहीं। इसलिए यह शुभभाव आता है। **संसार की स्थिति के नाश करने के लिये ऐसी शुभ क्रिया करते हैं।** लो, ठीक! एक ओर कहे कि सम्यग्दृष्टि शुभ का कर्ता नहीं। वह शुभभाव का ज्ञाता है। किस अपेक्षा से कहते हैं?

मुमुक्षु : आचार्य मतभेदवाले....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; मतभेद बिल्कुल नहीं। कहो, चेतनजी! यह तुम्हारे विकासचन्दजी यह कहते हैं। विकास।

इसलिए शुभराग के सम्बन्ध से सम्यग्दृष्टि है,... देखो! शुभक्रिया करते हैं। परिणमन है न? इस अपेक्षा से कर्ता भी कहा जाता है। करनेयोग्य है, इस अपेक्षा से नहीं। जिसे प्रवचनसार में कहा कि शुभपरिणति करते हैं। समकिती छठवें में भी शुभ करते हैं। ऐसा ज्ञान जानता है। दृष्टि की अपेक्षा के विषय में नहीं आता। परन्तु दृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान बराबर जानता है कि आंशिक अंश राग जितना परिणमन

है, वह मेरा कर्तृत्व है। और आंशिक अंश राग का भोक्तापना, वह मेरा भोक्तापना है। आहाहा! ऐसा ज्ञान जानता है। अरे! ऐसी बातें।

दोपहर में ऐसा कहा था कि शुभभाव का कर्ता समकिती नहीं। अभी कहते हैं कि शुभक्रिया करता है। यह असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। व्यवहार आता है न अन्दर? जब तक वीतराग नहीं हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ, वीतराग नहीं, इसलिए उसे शुभभाव अशुभ को टालने के लिये आता है। यह कहेंगे। **विषय कषायरूप खोटे ध्यान के रोकने के लिये...** लो! अशुभ को रोकने के लिये शुभभाव आता है, तथापि वह है पुण्यबन्ध का कारण। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....स्थिति घटावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिति का अर्थ कि कषाय से स्थिति है और कषाय घटाया है तो स्थिति घटती है, ऐसा कहा। कषाय से स्थिति और रस पड़ता है, तो तीव्र कषाय हो तो स्थिति, रस अधिक होता है, मन्दराग कषाय से संसार की स्थिति, कर्म की घटती है, कम करता है, ऐसा। समझ में आया? आज का अधिकार जरा... ऐसा मार्ग है, बापू! आचार्यों ने वीतरागचारित्र का जोर देकर यहाँ बात की है। आहाहा!

संसार की स्थिति के नाश करने के लिये ऐसी शुभक्रिया करते हैं। इसलिए... देखो! अब आया। **शुभराग के सम्बन्ध से सम्यग्दृष्टि हैं,...** वह राग है न शुभभाव? उसके सम्बन्ध से उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, ऐसा कहते हैं। अर्थात् चारित्रदोष के सहितवाले को सरागसमकिती कहा। समकित तो समकित ही है निश्चय। परन्तु चारित्र के दोषसहितवाले को सरागसमकित कहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....व्यवहार कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे व्यवहार कहेंगे। परन्तु छठवें गुणस्थान में अभी पूर्ण वीतरागता नहीं, इसलिए उसे व्यवहार कहेंगे। छठवें तक व्यवहार कहेंगे। यहाँ तो अभी गृहस्थाश्रम की बात ली है। नहीं तो छठवें गुणस्थान तक व्यवहार है और सातवें में फिर निश्चय है। आहाहा! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : बहुत से पण्डित कहते हैं कि सातवें और आठवें में ही निश्चय होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब खोटी बातें हैं। यह तो उन्हें क्रिया का जोर देना है। यहाँ तो चारित्र का जोर देकर वीतरागचारित्र होता है, वहाँ निश्चय समकित है, ऐसा कहना है। उन लोगों को तो ऐसा कहना है, बहुत ऊँची शुभ क्रिया करे और सातवें में जाये, तब निश्चय समकित होता है। ऐसा (वे) कहते हैं। ऐसा यहाँ नहीं है।

यहाँ तो राग का–शुभ का दोष है, उसकी अपेक्षा से समकित अनुभव तो निश्चय है, वह निश्चय है। परन्तु रागवाला है, इसलिए उस चारित्रदोष की अपेक्षा से सरागसमकित कहा है। और उसे व्यवहार भी कहा है, इस अपेक्षा से। उसका अभाव करके जब अनुभव में वीतरागचारित्र में स्थिर हो, तब उसे निश्चय चारित्रसहित (कहा जाता है)। अथवा दूसरे प्रकार से कहेंगे यहाँ। दूसरे प्रकार से कहेंगे। देखो!

इनके निश्चयसम्यक्त्व भी कहा जा सकता है, क्योंकि... लो, एक दूसरी बात कहते हैं। **वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व के परम्पराय साधकपना है।** क्या कहा यह? कि वीतरागचारित्र से तन्मय ऐसा निश्चय समकित उसका। वह सरागसमकित। समकित तो निश्चय है परन्तु रागवाला है, वह वीतरागी चारित्र का परम्परा कारण है। वीतरागी चारित्र का परम्परा कारण है, इसलिए उसे भी निश्चय समकित कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक निश्चित....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चित ही है सब। जिस अपेक्षा से जहाँ कहा, उसी अपेक्षा से उसे जानना चाहिए। कहो, ताराचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय सम्यक्त्व का स्पष्टीकरण बहुत अच्छा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्पष्टीकरण किया। चन्दुभाई! यह स्पष्टीकरण तो...

मुमुक्षु : निश्चय समकित को व्यवहार समकित कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से? राग सम्बन्ध की अपेक्षा से। राग की मुख्यता गिनकर उसे व्यवहार समकित कहा। परन्तु वस्तु तो निश्चय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहा न कि निश्चय समकितसहित सराग है, इससे उसकी परम्परा कारण निश्चय वीतरागसहित समकित का रागसहित समकित, समकित तो निश्चय है परन्तु वह रागसहित है, वह परम्परा कारण कहा। उसे छोड़कर वीतराग चारित्र होगा, इसलिए परम्परा कारण कहा। अरे! आज सब कुछ अटपटा है। आज धनतेरस है। लक्ष्मीपूजन। स्वरूप लक्ष्मीपूजन, हों! स्वरूपलक्ष्मी। आहाहा!

स्वरूप ही वीतरागस्वरूप ही है। उसकी दृष्टि—रुचि हुई, इस अपेक्षा से समकित को निश्चय कहा परन्तु वीतरागस्वरूप है, स्वयं ऐसी परिणति वीतरागचारित्र न हो, तब तक सराग के सम्बन्ध से समकित गिनकर उसे व्यवहार कहा है। फूलचन्दजी! समझ में आया? और इसलिए ऐसा भी कहा है। कहा न? **इनके निश्चयसम्यक्त्व भी कहा जा सकता है, क्यों...** किसे? उस रागसहित समकिती को भी निश्चयसमकित कहा जाता है। क्यों? उसका कारण है। आहाहा! समझ में आया? यह तो धनतेरस है। नयी बात सब इसे समझनी पड़ेगी न! आहाहा!

वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व के परम्परा साधकपना है। देखा! सम्यग्दर्शन अनुभव सत्य तो निश्चय है। परन्तु राग के दोष को प्रधान गिनकर उसे सराग समकित कहा है। परन्तु वह सराग समकित भी वीतरागी चारित्र जो निश्चय समकित है, उसका परम्परा कारण है। क्योंकि वह राग टालकर निश्चय वीतराग होगा, इसलिए निश्चय समकित भी होगा। वह वीतरागसहित का। उसका यह कारण गिनकर परम्परा निश्चय समकित कहा है। आहाहा! समझ में आया? देवीलालजी! प्रकार तो ऐसे हैं, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : एक निश्चय समकित कहना और उसे और उसे व्यवहार कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से? वह राग का भाग है, उसके सम्बन्ध से नहीं कहा? **शुभराग के सम्बन्ध से...** भाषा तो वहाँ स्पष्ट है अन्दर। **इसलिए शुभराग के सम्बन्ध से सम्यग्दृष्टि हैं,...** आहाहा! समझ में आया? यहाँ चारित्र की वीतरागता का वजन देना है। जैसा उसका स्वरूप वीतराग है, ऐसी ही वीतरागता पर्याय में आवे, ऐसी सहित के समकित को निश्चय कहा गया है। और ऐसी वीतरागता, वस्तु स्वयं वीतरागस्वरूप है, वैसी वीतरागता पर्याय में न आवे और राग हो, तब तक समकित को

चारित्र के दोष की अपेक्षा से व्यवहावर समकित कहा है। न्याय... आहाहा! नवरंगभाई! यह सब पहलू अब समझना कब? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय समकित है। परन्तु चारित्र के दोषवाला गिनकर सराग कहने में आया। चारित्र की अपेक्षा से। है तो वीतराग समकित। समकित कहीं सराग और वीतराग दो नहीं है। समकित तो चौथे में वीतराग ही समकित है। और ज्ञान जो स्वसंवेदन है, वह भी वीतराग ही ज्ञान है। और जितने अंश में स्वरूप-आचरण है, इतना वह वीतरागी अकषायभाव का चारित्र है। आहाहा! रसिकभाई! इतने सब भंग पड़े। आहाहा! उसे समझना पड़ेगा न, बापू! किस अपेक्षा से निश्चय और किस अपेक्षा से व्यवहार? आहाहा!

भगवान आत्मा, समकिती को चौथे गुणस्थान में ध्येय तो शुद्धात्मा ही है। उसके ध्येय में पर्याय, राग और निमित्त है नहीं। राग भी ध्येय में नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन के ध्येय में अर्थात् आदरणीय में शुद्ध पूरा पूर्ण आत्मा ही आदरणीय है। आहाहा! वह पर्याय भी ध्येय में नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग भी ध्येय में नहीं। समझ में आया? अर्थात् उपादेय में नहीं। अब यहाँ समकित में तो शुद्ध आत्मा वस्तु पूर्ण परमात्मस्वरूप। परमात्मप्रकाश है न? वस्तु से, शक्ति से, स्वभाव से तो भगवान परमात्मा ही है। वह तो पर्याय में भेद है। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा, यह तो पर्याय के भेद हैं। वस्तु रूप से तो परमात्मा ही है। यदि परमात्मा न हो तो परमात्मा की पर्याय होगी कहाँ से? कोई बाहर से आवे, ऐसा है? आहाहा! समझ में आया? इसलिए यहाँ परमात्मदशा वीतरागचारित्र न हो, तब तक के समकित को चारित्र की अपेक्षा से सराग कहने में आया है। और चारित्र की वीतरागता हुई, वहाँ चारित्र की अपेक्षा से इस समकित को निश्चय कहने में आया है। समझ में आया? समकित की अपेक्षा से तो चौथे में निश्चय है।

मुमुक्षु : चारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की अपेक्षा से। शान्ति थोड़ी है न। वहाँ शान्ति बहुत है। आहाहा!

वीतराग चारित्र में स्थिर हो गया है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... उपशमरस। आता है न? 'उपशम रस बरसे तेरे नयन में।' स्थिर हो गये हैं अन्दर। आहाहा! जहाँ आगे शासन में शासन बढ़ता है या नहीं, ऐसा जहाँ विकल्प का अवकाश नहीं। उपदेश देने का उसमें शासन कौन बढ़ा, धर्म प्राप्त हुए बढ़े या नहीं? ऐसा विकल्प भी जहाँ नहीं। आहाहा! आता है न, प्रभु! आपने उपदेश दिया परन्तु फिर शासन में फल को? क्या? वे तो वीतराग हैं, क्या फल देखे? आहाहा! वह तो उनके ज्ञान में है सब। आहाहा! वाणी द्वारा उपदेश आया, वह आ गया। आहाहा!

ओह! परमात्मा, परमात्मप्रकाश है न? अर्थात् परमात्मस्वरूप भगवान का वर्तमान पर्याय में आदर करनेयोग्य तो द्रव्य है। वर्तमान ज्ञान की और श्रद्धा की पर्याय में पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण प्रभु अखण्ड, अभेद शुद्धात्मा, वही ध्येय है, वही उपादेय है, वही श्रद्धा में आदरणीय है। समझ में आया? परन्तु जैसा वह है, वैसी स्थिरता आयी नहीं। जैसा वह वीतरागस्वभाव से भगवान आत्मा है, वैसी वीतराग स्थिरता आयी नहीं। उसकी अपेक्षा से राग के सम्बन्धवाले समकित को सराग समकित कहने में आया है। इसमें ही बड़ा विवाद है न!

मुमुक्षु : अभी यही विवाद चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाद चलता है। चौथे में आवे। भाई विकास का तो यही प्रश्न आया है। बारम्बार लेख-लेख। जयसेनाचार्य की टीका में भी ऐसा आता है। समयसार में। क्या अपेक्षा है? आहाहा!

वास्तव में तो छठवें गुणस्थान में भी जो विकल्प है, इसलिए उसे व्यवहार कहा है, लो! और निर्विकल्प हो, उसे निश्चय कहा है। नहीं तो छठवें में तो निश्चय दर्शन है, निश्चय ज्ञान है। भले स्थिरता अल्प है। परन्तु चारित्र है छठवें में। तीन कषाय के अभाव का चारित्र है। परन्तु उस गुणस्थान में विकल्प का संग है, इस अपेक्षा से उसे व्यवहावर कहने में आया है। और उसका अभाव करके शुद्धि जो थी, वह बढ़ गयी तो उसे ऐसा कहा कि विकल्प द्वारा विकल्प का अभाव करके निश्चय हुआ। अथवा विकल्प से परम्परा निश्चय हुआ, ऐसा कहने में आया है। परन्तु है तो वह विकल्प का अभाव होकर होता है वहाँ। आहाहा! सातवाँ। निर्विकल्प आनन्द के ध्यान में। बारहवें

गुणस्थान में जयसेनाचार्य ने तो यह लिया है कि परमभाव जो निर्विकल्प में स्थित है, उसे व्यवहार होता नहीं। जानना, ऐसा व्यवहार होता नहीं, ऐसा। अमृतचन्द्राचार्य ने (समयसार में) परमभाव को निर्विकल्प वीतरागता ली है, केवलज्ञान। '**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं। ववहारदेसिदा पुण जे दु...**' इस गाथा का विवाद सबको। देखो! व्यवहार का उपदेश किया। अब उपदेश की बात नहीं वहाँ। वह तो जाना हुआ प्रयोजनवान है। परन्तु वे सेठ ऐसा कहते थे बेचारे वहाँ दिल्ली में। साहूजी यह कहे। वे पण्डित कहे सही न! व्यवहार का उपदेश है। भाई! उपदेश की व्याख्या नहीं। वहाँ तो व्यवहार है, उसे जानना, ऐसी उसकी व्याख्या है। टीका में ऐसा है। परमभाव जो वीतराग हुआ, उसे फिर व्यवहार नहीं है। अथवा निर्विकल्प ध्यान में आया, उसे व्यवहार नहीं है। अव्यक्तरूप से राग रहा, उसे फिर यहाँ गिना नहीं। समझ में आया? परन्तु अपरम में... समझ में आया? परन्तु अपरम भाव में स्थित। अर्थात् कि पर्याय में निर्मलता शुद्ध नहीं, निर्मलता कम है, राग का अंश आता है। ऐसा जो अपरमभाव है, उसे जानना। उसे है, ऐसा जानना। वह व्यवहार का प्रयोजन है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... अबुद्धिपूर्वक के राग को....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे गिना नहीं फिर। ध्यान में है न अकेला? अकेला ध्याता, ध्यान और ध्येय भी भेद चला गया है। अकेला आनन्द का अनुभव। उस आनन्द का अनुभव करता हूँ, ऐसा विकल्प भी कहाँ है वहाँ? आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक है, भाई! लोगों ने वर्तमान के क्रियाकाण्ड में ही सब समाहित कर दिया है। बस, यह तपस्या करना, व्रत करना। यह राग है और वह भी मिथ्यादृष्टिसहित है।

यहाँ तो सम्यग्दृष्टिसहित का राग भी दोषवाला गिनकर समकित को व्यवहार कह दिया। आहाहा! प्रवीणभाई! ऐसी बात है। समझ में आये ऐसी है। इसमें कुछ न समझ में आये, ऐसा नहीं है। भाषा तो सादी है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक बात को खूँटे बाँधना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खूँटे ही बाँधा है। दर्शन की अपेक्षा से क्या? और चारित्र की अपेक्षा से क्या? ऐसे खूँटे बाँधा है। समझ में आया? कान्तिभाई! दो में निर्धार एक करना चाहिए या नहीं? ऐसा कहते हैं। निर्धार ही है।

मुमुक्षु : आप तो कहते हो, दोनों का निर्धार।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों का निर्धार। परन्तु किस अपेक्षा से? दर्शन की अपेक्षा से निश्चय का निर्धार, चारित्र की अपेक्षा से व्यवहार का निर्धार और चारित्र की वीतरागता का कारण रागसहित है, आगे जाने का है, इसलिए परम्परा निश्चय समकित उसे कहा। समझ में आया? कहो, हिम्मतभाई! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। आहाहा! यह लक्ष्मी पूजन है।

मुमुक्षु : ऐसा सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं। सब बात कहाँ गुम हो गयी। आहाहा!

रात्रि में तो कहा था न कि जो कषाय-राग होता है, वह एक समय की पर्याय में षट्कारक से स्वतन्त्र है। उसे द्रव्य का कारण नहीं, गुण का कारण नहीं और निमित्त का कारण नहीं। आहाहा! जब एक विकारी पर्याय का एक अंश भी उस समय का, वह उत्पन्न होने का उसका काल ही था। निजक्षण-जन्मक्षण है वह। यह १०२ गाथा में पाठ है। तथापि वह उत्पन्न हुआ राग, उस राग को द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं, उस राग को निमित्त के कारकों की अपेक्षा नहीं। आहाहा! तो फिर जहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन की पर्याय है। आहाहा! वास्तव में तो वह पर्याय के षट्कारक से परिणम रही समकित की निर्मल पर्याय है, उसे द्रव्य का कारण नहीं, गुण का कारण नहीं और कर्म के अभाव का कारण नहीं। प्रवीणभाई! रात्रि में बहुत कहा था। आहाहा! भाई! मार्ग अलग, बापू! प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? आहाहा!

कहते हैं, एक ओर ऐसा कहे। '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' समयसार की ११वीं गाथा में ऐसा कहे, सम्यग्दृष्टि कैसे होता है? कि त्रिकाल भूतार्थ का आश्रय करे तो होता है। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारक के परिणमन से स्वतन्त्र परिणम रही है। जिसे द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! फूलचन्दजी! यह तो वीतरागमार्ग है, प्रभु! आहाहा! यह कोई पक्षकार की बात नहीं। आहाहा! उसमें तो ऐसा कहा है—बन्ध अधिकार में, भाई! ऐसा कि चारित्र का कारण यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं, इसलिए चारित्र नहीं है। यह अपेक्षा है। बाकी चारित्र की जो पर्याय होती है, उसे कोई सम्यग्दर्शन-ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। हो भले।

मुमुक्षु : सब गुण का परिणमन उसके....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! उसे द्रव्य-गुण की आवश्यकता नहीं, तथा उसे दूसरे गुण की पर्याय की आवश्यकता नहीं।

मुमुक्षु : कर्म के अभाव की आवश्यकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव तो कहीं रह गया। आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वरूप है। वह जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उसके ज्ञान में न आवे, तब तक सत्य प्रतीति नहीं होती। छगनलालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ओर गुरुदेव कहो कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना का चारित्र, चारित्र नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? यह तो बात की अभी। बन्ध अधिकार में ऐसा कहा। किस अपेक्षा से बात है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, वहाँ उसे चारित्र हो, इतनी अपेक्षा। बाकी वास्तविक अपेक्षा चारित्र की पर्याय जो होती है, वह षट्गुण की कर्ता-कर्म-करण की अपेक्षा से चारित्र की पर्याय स्वतन्त्र होती है। उसे द्रव्य-गुण की आवश्यकता नहीं, निमित्त की आवश्यकता नहीं, पूर्व की पर्याय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह तो कहा था रात्रि में। १०१ गाथा, प्रवचनसार। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का समय है, उसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, व्यय की अपेक्षा नहीं, ध्रुव की अपेक्षा नहीं। कहो, आहाहा! एक ओर कहे कि ध्रुव के आश्रय से समकित होता है। ऐई! प्रवीणभाई! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' आहाहा! भगवान! किस अपेक्षा से बात चलती है, उसे समझ, बापू! तू तीन लोक का नाथ है। भाई! तेरे गीत गाते केवली कह सके नहीं, ऐसी तू वस्तु अन्दर भगवान है, बापू! आहाहा! भूल जा सब। शरीर, वाणी, मन, राग भूल जा। वह तुझमें है नहीं। आहाहा! अरेरे! तेरी निर्मल वीतरागी पर्याय होने में जिसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, षट्कारक का स्वतन्त्र परिणमन है। उसे व्यवहार से निश्चय हो, यह कहाँ रहा? बापू!

मुमुक्षु : व्यवहार के अभाव से निश्चय होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभाव का यहाँ काम नहीं। अभाव की अपेक्षा भी यहाँ

नहीं। यहाँ तो अपने से उत्पाद चारित्र की पर्याय का सद्भाव स्वयं से उस समय में है। जिसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं, जिसे उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! और व्यय को भी उत्पाद और ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु, बापू! प्रवचनसार— भगवान की दिव्यध्वनि का सार। आहाहा! एक ओर वाँचे और एक ओर में पकड़े, परन्तु दूसरी कौन सी अपेक्षायें हैं, उन्हें (जाने नहीं तो गड़बड़ होती है)। आहाहा! वहाँ तो निकाल दिया।

एक ओर यहाँ कहे कि '**भूदत्थमस्सिदो**' इसका अर्थ ही यह है कि सब ऐसा होता है। इसे नजर कहाँ करनी है ?—कि द्रव्य में। यह हेतु, इसका योगफल है। पर्याय तो स्वतन्त्र होती है, परन्तु इस पर्याय का लक्ष्य कहाँ जाता है ? इतनी बात है। तथापि उस पर्याय में द्रव्य का ज्ञान आता है, द्रव्य की श्रद्धा आती है, तथापि पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय होती है, वह षट्कारक से स्वतन्त्र परिणमती है। आहाहा! उसे पूर्व का मोक्षमार्ग था, इसलिए यह केवलज्ञान होता है—ऐसी भी जिसे अपेक्षा नहीं, व्यय की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! वह सत् ऐसा है। ऐसी बात! सत् का जिसे निर्णय हो, उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाती है। उसे करने का यह है। आहाहा! 'वाद विवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का धन्धा। वाद विवाद करे सो अन्धा।' वाद-विवाद से पार आवे, ऐसा नहीं प्रभु। उसी के और उसी के आचार्य के शब्दों में ही आगे-पीछे का मेल नहीं खाय तो वाद-विवाद उठेगा। प्रवचनसार ऐसा कहे कि निर्मल पर्याय को द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं। समयसार कहे कि समकित को द्रव्य का आश्रय है। यह वहाँ लक्ष्य जाता है, इतनी अपेक्षा से आश्रय है। ऐई! फूलचन्दजी! ऐसा मार्ग है। बापू! मस्तिष्क को—ज्ञान को फैलाना पड़ेगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में होता है। अंश तो साथ में होता है। परन्तु पूर्ण चारित्र नहीं, इस अपेक्षा से गिनकर यहाँ बात है। क्योंकि वीतरागस्वरूपी ही भगवान है।

परमात्मस्वरूप ही द्रव्यस्वभाव जिसका परमात्मस्वरूप ही वर्तमान परमात्मस्वरूप ही है। शक्ति से कहो, स्वभाव से कहो, गुण से कहो, वह परमात्मा ही है। ऐसे परमात्मा की प्रतीति... आहाहा! उस प्रतीति को भी परमात्मा के द्रव्य की आवश्यकता नहीं।

आहाहा! नवरंगभाई! यह तो सब कहाँ का कहाँ गया! रतिभाई! आहाहा! भाई! इसका योगफल यह है कि एक-एक पर्याय स्वयं से होती है, वह सत् है। सत् को पर का हेतु नहीं हो सकता। आहाहा! जिसे द्रव्य का हेतु नहीं। आहाहा! तथापि वहाँ कहने में आवे तो समकित कैसे होता है?—कि ऐसे नजर बदले तो होता है। ऐसा। नजर जो ऐसे (परसन्मुख) है, वह ऐसे (स्वसन्मुख) होती है, इस अपेक्षा से कहा है। समझ में आया? समझ में आये इतना समझो, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर का (मार्ग है)। देवीलालजी! आहाहा! गम्भीर मार्ग, बापू! आहाहा! जरा सुने न दो-चार दिन, आठ दिन तो खबर पड़े कि यह क्या कहते हैं, बापू! यह कोई पक्ष की बात नहीं, भाई! यह तो वस्तु के स्वरूप की बात है। उसे तुम निश्चयाभास करके, एकान्त है, ऐसा करो, बापू! भाई! दूसरा क्या हो? आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहा कि वीतरागी समकित हो या वीतरागी चारित्र हो, उसे कोई व्यय और ध्रुव की अपेक्षा नहीं। उसे व्यवहार हो तो यह हो, यह अपेक्षा कहाँ गयी? बापू! प्रवीणभाई! वस्तु तो ऐसी है, प्रभु! तू भगवान है न, नाथ! आहाहा! अरे! तुझे तेरी खबर नहीं, प्रभु! तुझमें आनन्द की खान पड़ी है, ज्ञान की खान पड़ी है। केवलज्ञान की पर्याय निकाल तो अनन्त-अनन्त निकाले तो भी वह गुण कम हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा तो जिसका ध्रुव गुण है। आहाहा!

शुभराग के सम्बन्ध से सम्यग्दृष्टि हैं, और इनके निश्चयसम्यक्त्व भी कहा जा सकता है,... देखो! जिसे रागसहित के समकित को सराग कहा, उसे भी निश्चयसमकित कहा जाता है। किस अपेक्षा से? इसमें यहाँ अभी की अपेक्षा से। कि वह पूर्ण वीतराग चारित्र को प्राप्त करानेवाला है। इसका अभाव होकर वहाँ जायेगा। फिर वीतराग चारित्रसहित समकित का कारण होने से उसे निश्चयसमकित भी कहने में आता है। आहाहा! चारित्र का दोष होने पर भी वह आगे जाकर वीतराग होगा, इसलिए उसे निश्चयसमकित भी कहने में आता है। वस्तुरूप से तो निश्चयसमकित है, परन्तु राग के कारण से उसे सराग कहकर व्यवहार कहा था, उसे वीतराग के काल के चारित्र का कारण गिनकर, उस सहज समकित को भी निश्चयसमकित कहने में आता है। आहाहा! भगवान! तेरी बलिहारी है, नाथ! तू कौन है? कहाँ है? कितना है, इसकी तुझे खबर

नहीं। आहाहा! यह सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे के साथ समन्वय करने जाये, प्रभु! समन्वय किस प्रकार होगा? भाई! सत् और असत् का समन्वय किस प्रकार होगा? भगवान! तेरा स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

अब वास्तव में (असल में) विचारा जावे,... निश्चय तो कहा। वीतरागचारित्र को प्राप्त करेगा, ऐसा भले अभी सराग है। चारित्र की अपेक्षा से। परन्तु वीतराग को प्राप्त करेगा, इसलिए सरागसमकित को भी निश्चयसमकित कहा जाता है। **वास्तव में विचारा जावे, तो गृहस्थ अवस्था में इनके सरागसम्यक्त्व ही है...** उस चारित्र के दोष की अपेक्षा से। समझ में आया? धनतेरस के दिन यह गाथा ऐसी आयी, लो! आहाहा! वे सब कल आनेवाले हैं, नहीं? कल दोपहर को आनेवाले हैं। तुम्हारे मुम्बई। आहाहा!

गृहस्थ अवस्था में इनके सरागसम्यक्त्व ही है... वापस देखा? उसमें **निश्चय-सम्यक्त्व भी कहा जा सकता है,... और जो सरागसम्यक्त्व है, वह व्यवहार ही है,...** किस अपेक्षा से कहा? समझ में आया? चेतनजी! चारित्र नहीं और राग है, उसके सम्बन्धवाला गिनकर चारित्र के दोषवाला सम्बन्ध गिनकर उसे व्यवहारसमकित कहा जाता है। परन्तु व्यवहारसमकित जो विकल्प व्यवहारसमकित है, जो निश्चयसमकित के साथ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है, उसे व्यवहारसमकित कहते हैं। वह यह नहीं। वह अलग, यह अलग। यह विशेष बात आयेगी...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १८

अथानन्तरं सूत्रचतुष्टयेन जीवादिषड्द्रव्याणां क्रमेण प्रत्येकं लक्षणं कथ्यते -

१४१) मुत्ति-विहूणउ णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
णियमिं जोइय अप्पु मुणि णिच्चु णिरंजणु भाउ।।१८।।

मूर्तिविहीनः ज्ञानमयः परमानन्दस्वभावः।
नियमेन योगिन् आत्मानं मन्यस्व नित्यं निरञ्जनं भावम्।।१८।।

मुत्तिविहूणउ इत्यादि। मुत्ति-विहूणउ अमूर्तः शुद्धात्मनो विलक्षणया स्पर्शरसगन्धवर्ण-वत्या मूर्त्या विहीनत्वात् मूर्तिविहीनः। णाणमउ क्रमकरणव्यवधानरहितेन लोकालोक-प्रकाशकेन केवलज्ञानेन निर्वृत्तत्वात् ज्ञानमयः। परमाणंद-सहाउ वीतराग परमानन्दैक-रूपसुखामृतरसास्वादेन समरसीभावपरिणतस्वरूपत्वात् परमानन्दस्वभावः। णियमिं शुद्धनिश्चयेन। जोइय हे योगिन्। अप्पु तमित्थंभूतमात्मानं मुणि मन्यस्व जानीहि त्वम्। पुनरपि किंविशिष्टं जानीहि। णिच्चु शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वान्नित्यम्। पुनरपि किंविशिष्टम्। णिरंजणु मिथ्यात्वरागादिरूपाञ्जनरहितत्वान्निरञ्जनम्। पुनश्च कथंभूतमात्मानं जानीहि। भाउ भावं विशिष्टपदार्थम् इति। अत्रैवंगुणविशिष्टः शुद्धात्मैवोपादेय अन्यद्धेयमिति तात्पर्यार्थः।।१८।।

आगे चार दोहों से छह द्रव्यों के क्रम से हरएक के लक्षण कहते हैं -

मूर्त रहित है आत्मा ज्ञान स्वरूप परम आनन्द स्वभाव।
हे योगी! यह जीव सुनिश्चित नित्य निरंजनरूप स्वभाव।।१८।।

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, [नियमेन] निश्चय करके [आत्मानं] तू आत्मा को ऐसा [मन्यस्व] जान। कैसा है आत्मा? [मूर्तिविहीनः] मूर्ति से रहित है, [ज्ञानमयः] ज्ञानमयी है, [परमानंदस्वभावः] परमानंद स्वभाववाला है, [नित्यं] नित्य है, [निरंजनं] निरंजन है, [भावम्] ऐसा जीवपदार्थ है।

भावार्थ :- यह आत्मा अमूर्तीक शुद्धात्मा से भिन्न जो स्पर्श-रस-गंध-वर्णवाली मूर्ति उससे रहित है, लोक-अलोक का प्रकाश करनेवाले केवलज्ञानकर पूर्ण है, जोकि केवलज्ञान सब पदार्थों को एक समय में प्रत्यक्ष जानता है, आगे-पीछे नहीं जानता, वीतरागभाव परमानंदरूप अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से समरसी भाव

को परिणत हुआ है, ऐसा हे योगी; शुद्ध निश्चय से अपनी आत्मा को ऐसा समझ, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से बिना टाँकी का घडया हुआ सुघटघाट ज्ञायक स्वभाव नित्य है। तथा मिथ्यात्व रागादिरूप अंजन से रहित निरंजन है। ऐसी आत्मा को तू भली-भाँति जान, जो सब पदार्थों में उत्कृष्ट है। इन गुणों से मंडित शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, और सब तजने योग्य हैं।।१८।।

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण १४, शनिवार
दिनांक-२२-१०-१९७६, गाथा-१८, प्रवचन-१११

नोट - यह प्रवचन बैटरी वाला है इसलिए आवाज में फर्क रहेगा।

परमात्माप्रकाश, गाथा-१८। **आगे चार दोहों से छह द्रव्यों के कर्म से हरएक के लक्षण कहते हैं:—** छह द्रव्य कहा न व्यवहारश्रद्धा में। निश्चयश्रद्धा में तो छह द्रव्य। उनके साथ व्यवहारश्रद्धा के छह द्रव्य का विकल्प, उस जाति का ज्ञान होता है। छह द्रव्य के स्वरूप में आत्मा घटित किया है।

१४१) मुत्ति-विहूणउ णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
णियमिं जोइय अप्पु मुणि णिच्चु णिरंजणु भाउ॥१८॥

अन्वयार्थः—हे योगिन! अपने शिष्य को कहते हैं। योगीन्द्रदेव मुनि हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदन में स्थित हैं। परन्तु उन्हें विकल्प आया है। शिष्य पूछता है, इसलिए उसका उत्तर देते हैं। शिष्य को कहते हैं कि हे शिष्य! **निश्चय करके...** वास्तव में **तू आत्मा को ऐसा जान।** आत्मा जो है, ऐसा जान। **कैसा है आत्मा? मूर्ति से रहित है,...** वस्तु है, वस्तु है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं, इसलिए वस्तु नहीं—ऐसा नहीं। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, रूप से रहित अमूर्त अरूपी पदार्थ है। ऐसा कहते हैं। इन्द्रियग्राह्य नहीं। वह अणीन्द्रिय ग्राह्य है। क्योंकि मूर्तिरहित है। है न शब्द? **ज्ञानमयी है,...** त्रिकाल ज्ञानी, हों! लोकालोक को जाने, ऐसी शक्ति से त्रिकाल ज्ञानमय है। **परमानन्द स्वभाववाला है,...** भगवान तो परम अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव है। आहाहा! उसके आनन्द के लिये बाहर में शोधने का नहीं। वह अन्तर परमानन्द का गंज प्रभु है। उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। पर्याय में राग और दुःख है, वह आत्मा नहीं।

आत्मा तो अन्तर ज्ञानमय मूर्तपनेरहित और परमानन्द स्वभाववाला है। ऐसा उसे भान होना चाहिए। धर्मी को ऐसा आत्मा जो भासित हो। अनन्त-अनन्त गुण का स्वभाववाला नित्य। पर्याय है, वह उसका... परन्तु वस्तु नित्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नित्य-अनित्य ऐसा नहीं कहा वहाँ। पर्याय को, एक समय की है, उसे गौण करके वस्तु है, वह नित्य है। शाश्वत है, भगवान आत्मा। **निरंजन है...** उसे कोई मैल नहीं। कर्म के उदय का मैल, वह वस्तु में नहीं। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे तू जान। जिससे तुझे परमानन्द की प्राप्ति होगी, ऐसा कहते हैं। यह उसका उपाय और यह उसकी चीज़। आहाहा! **निरंजन है, ऐसा जीवपदार्थ है।** '**भाउ**' शब्द है न? अर्थात् भाव। भाव अर्थात् पदार्थ। ऐसा भगवान जो पदार्थ अन्दर है। आहाहा!

भावार्थः—यह आत्मा अमूर्तिक शुद्धात्मा से भिन्न... भगवान आत्मा अमूर्तिक है, शुद्धात्मा है, उससे भिन्न जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्ति, उससे रहित है। आहाहा! यह स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण यह शरीर, वाणी, मन, यह सब वह चीज़ स्थितिरहित है। उस चीज़ में नजर करे तो निधान प्राप्त हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कैसा है? **लोक-अलोक का प्रकाश करनेवाले केवलज्ञानकर पूर्ण है,...** यह पर्याय की बात नहीं। अकेला ज्ञान, केवलज्ञान, अकेला ज्ञानस्वरूप। पूर्ण केवलज्ञानस्वरूप वह स्वयं आत्मा है। लोकालोक को जानने की शक्तिवाला वह तत्त्व है। आहाहा! लोकालोक में कोई द्रव्य को करे, रचे—ऐसा नहीं, परन्तु लोकालोक को जाने, वह शक्ति है। समझ में आया?

केवलज्ञान **लोक-अलोक का प्रकाश करनेवाले...** केवलज्ञान अर्थात् पर्याय की यह बात नहीं। उसके गुण की बात है। आहाहा! भगवान आत्मा का गुण लोकालोक को जाने, ऐसा है। ४९ गाथा में कहा न? कि अव्यक्त के छह बोल में पहला बोल। छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है, व्यक्त है। उससे भगवान आत्मा छह द्रव्य से भिन्न है, अव्यक्त है। उसका अर्थ स्वात्मानुभवमनन में क्षुल्लक धर्मदास ने ऐसा किया है कि आत्मा सप्तम (द्रव्य) हो जाता है। आत्मा सातवाँ जो छह द्रव्य को जाननेवाला, छह द्रव्य से भिन्न। आहाहा! अनन्त केवली और सिद्धों को जाननेवाला, तथापि अनन्त सिद्धों से पृथक्। आहाहा! कहो, देवजीभाई! ऐसा देव है। आहाहा! अरे! इसकी खबर नहीं होती। खबर

नहीं होती। यह बाह्य पदार्थ देखे, उसकी महिमा। बहुत तो अन्दर पाप के भाव में मिठास की महिमा। विषय, भोग, वासना। और बहुत तो शुभपरिणाम करे, उसकी महिमा, कि जो वस्तु में नहीं। उसकी महिमा करने से स्व की महिमा का अनादर होता है। क्योंकि वह वस्तु अनन्त आनन्द के रत्न से भरपूर चीज़ है। आहाहा!

वह एक दृष्टान्त दिया है न अनुभवप्रकाश में? एक रत्नदीप था। रत्नदीप। उसमें रत्न के मकान थे। रत्न की खान में रहता वह जीव। पाठ में आ गया न। अनुभवप्रकाश में। रत्नदीप था, उसमें रत्न के मन्दिर थे और रत्न के भण्डारों की खान। रत्न से भरपूर। उसमें एक जीव रहता था। परन्तु उसे कीमत नहीं थी। एक कन्दोरा था कन्दोरा। उसमें एक नीलमणि अन्दर में रह गयी। यह नीलमणि है, उसकी कीमत कुछ नहीं। कन्दोरा था उसमें नीलमणि था। वह देश में आया। उसमें सरोवर में नहाने गया। वहाँ एक पानी सब हरा। अब उसमें वह खड़ा था कि यह क्या? यह रत्न क्या है? पानी ऐसा हरा हुआ। नीलमणि रत्न लगता है। उसे लेकर राजा के पास गया। साहेब! इसे करोड़ सोना-मोहर का भण्डार भरा है, वह इसे दो और यह नीलमणि मुझे दो। करोड़ों सोना-मोहर की, करोड़ों... उसके .... वह तो... ऐसी चीज़ है यह? अरे...! मैं रहता था, वहाँ तो रत्न के भण्डार, रत्नदीप, रत्नमन्दिर और रत्न के भण्डार थे। मुझे तो कुछ खबर नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा अनन्त आनन्द के रत्न के दीप में अन्दर रहता है। प्रवीणभाई! आहाहा! बात तो ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रत्नदीप कहाँ से? वह तो दृष्टान्त में बात ली है। कि सिद्धान्तनिष्ठ है, वह तो रत्न-रत्न भण्डार भगवान है अन्दर। आहाहा! लोकालोक को जाने, ऐसा ज्ञानरत्न, अनन्त आनन्द—सुख को दे, ऐसा आनन्द रत्न। अनन्त-अनन्त पदार्थ को स्व की श्रद्धा करे, ऐसा श्रद्धा रत्न, ऐसे अनन्त गुण के रत्न का भण्डार भगवान है। ताराचन्दजी! यह तुम्हारे वह दो हजार का वेतन और पाँच हजार का वेतन और पचास, लाख, करोड़ और उसकी कोई कीमत नहीं यहाँ कुछ। फूलचन्दजी! आहाहा!

अरे... मैं तो वहाँ रत्न के मन्दिर में रहता था। मैं रत्न के ढ़ेर में सोता-बैठता था।

मुझे खबर नहीं कि इसकी कीमत होगी। इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर की पर्याय में जो रहता है, उसे खबर नहीं कि अन्दर करोड़, अनन्त रत्न का भरपूर (भण्डार) है। पर्याय में उसकी बुद्धि है। बहुत तो भाव पुण्य और पाप के विकल्प हैं, उसमें इसकी बुद्धि है। वह चीज़ है, उसकी तो इसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह शरीर और हड्डियाँ, चमड़ी, यह सब चमक-चमक लगे, मानो अच्छे हैं। वह तो धूल-मिट्टी है, कहते हैं। वह मूर्त बिना की वह चीज़ है। आहाहा! बाहर के चमक के, भभक के जो पदार्थ, उनसे प्रभु अन्दर भिन्न है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि मूर्तरहित है, तथापि वह पदार्थ है ऐसा। महानपदार्थ है। आहाहा! और अनन्त रत्नों से भरपूर, वह सागर है। आहाहा! वह ज्ञान का क्षयोपशम का अंश आता है विशेष। नौ पूर्व की लब्धि होती है, वहाँ इसे ऐसा हो जाता है कि मुझे यह सुख है। उस अंश में अन्दर प्रगट जो वस्तु है, उसकी इसे खबर नहीं। ग्यारह अंग का ज्ञान हो, बारह अंग न हो समकित को। परन्तु नौ पूर्व की लब्धि हो, उसकी एक समय की पर्याय में उलझ गया वहाँ यह। ओहोहो! मुझे तो कितना ज्ञान हुआ! परन्तु अन्दर भगवान आत्मा ऐसे नौ पूर्व की लब्धि, परन्तु अनन्तगुणा ज्ञान अन्दर है। समझ में आया?

ऐसा ज्ञानस्वभाव और अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, अतीन्द्रिय श्रद्धास्वभाव, अतीन्द्रिय चारित्रस्वभाव, अतीन्द्रिय कर्ता-कर्मस्वभाव। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण के रत्न का भण्डार है। उसके समीप की पर्याय में रहता था। परन्तु वह यह क्या चीज़ है? उसकी इसे खबर नहीं। उसके समीप में रहता था। पर्याय है, उस पर्याय में रहता है न? आहाहा! वह आत्मा परम आनन्दसहित है। लोकालोक में।

जो कि केवलज्ञान सब पदार्थों को एक समय में प्रत्यक्ष जानता है, आगे-पीछे नहीं जानता,... अकेला केवलज्ञान है। केवलज्ञान जो पर्याय है, वह तो एक समय की है। उसमें लोकालोक को जाननेवाला ... है। तो ऐसी तो अनन्त पर्याय का पिण्ड वह ज्ञानगुण है। केवलज्ञान की पर्याय एक समय की तीन काल-तीन लोक को जाने। और उससे अनन्तगुणा लोकालोक को कल से... होवे तो भी जाने। यह अपने आ गया है। बेल का दृष्टान्त। बेल है, वह जहाँ तक मण्डप है, वहाँ तक लम्बी होती है। यह बेल-बेल नहीं? वनस्पति की। वह जहाँ तक बाँस का मण्डप हो, वहाँ तक जाती है। फिर

ऊपर-ऊपर जाये। परन्तु आगे जाने की शक्ति नहीं, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार यह लोकालोक मण्डप है, इसे जानने की एक समय की पर्याय में सामर्थ्य है। इसलिए इतनी ही... पर्याय की बात है यह तो। आहाहा!

चैतन्य भगवान कौन है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! एक समय में जिसने तीन काल-तीन लोक जाने, इससे अनन्तगुणा हो तो भी जानता। यह बेल आगे यदि मण्डप होता तो आगे जाती। इसी प्रकार लोकालोक, तीन काल से विशेष हो तो उसे जाने। आहाहा! अरे! क्या है यह? ऐसी एक समय की पर्याय जो अनन्त केवलियों को जाने। आहाहा! एक समय की पर्याय अनन्त केवली को, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह ज्ञानगुण रत्न है। ऐसा कहा न? ज्ञानमय कहा न? आहाहा! ज्ञानमय की व्याख्या की। है न अन्दर आया था न? '**नियमेन आत्मानं मन्यस्व**' ज्ञानमय। परन्तु इससे रहित है, ऐसा कहा। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श... है। उसमें विकल्प नहीं, नित्यपना नहीं। वह वास्तव में विकल्प मूर्त है। आहाहा! अचेतन है, उसका इसमें अभाव है। ऐसा जो भगवान आत्मा ज्ञानमय है, ऐसा कहा। ज्ञानवाला है, ऐसा नहीं। ज्ञानवाला है, यह भेद पड़ गया। आहाहा! वह तो ज्ञानमय है। उसे जरा विचार में ले तो खबर पड़े न! ऐसा का ऐसा सुने, ऐसा का ऐसा निकाल डाले, बापू! उसे लक्ष्य में तो ले तू। आहाहा! कि जिसका ऐसा स्वरूप, जो पर्याय में तीन काल-तीन लोक जाने, उससे अनन्तगुणा जाने, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जो एक ही ज्ञानरत्न, ऐसे ज्ञानरत्न में इतनी शक्ति, उसमय तू है। उस ज्ञानमय तू है। ज्ञानवाला है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? शक्कर मिठासमय है, मिठासवाली है, ऐसा भी नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानमय है। आहाहा! ऐसा कहकर वह राग नहीं, पुण्य नहीं, परन्तु पर्याय नहीं। वह तो ज्ञानमय वस्तु है। समझ में आया? ऐसे आत्मा को इसने कभी जानने का प्रयत्न नहीं किया। दूसरा सब जाना। शास्त्र जाने, भगवान की दिव्यध्वनि सुनी, समवसरण में तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि सुनी, भगवान के दर्शन किये, अनन्त बार भगवान की पूजा की, समवसरण में मणिरत्न के दीप से (पूजा की)। जय नाथ! वह सब परवस्तु है, वह तो विकल्प है। आहाहा!

जिसमें पहले यह कहा कि मूर्तरहित है अर्थात् विकल्परहित ही वह है। आहाहा!

तब है क्या? रहित कहा पहले तो। अस्ति कैसी? अस्ति ज्ञानमय है। आहाहा! राग के विकल्पसहित दया, दान का, व्रत का (विकल्प) उठे, वह भी विकल्प मूर्त है। स्थूल कहा था न? पुण्य-पाप (अधिकार) में। स्थूल-स्थूल। स्थूल ऐसे इस संकल्प को छोड़ा, परन्तु स्थूल ऐसे पुण्यभाव को नहीं छोड़ा। सामायिक की प्रतिज्ञा की, परन्तु उस प्रतिज्ञा में यह नहीं किया। आहाहा! संकल्प को छोड़ा स्थूल, परन्तु स्थूल शुभराग को नहीं छोड़ा... आहाहा! भगवान तो सूक्ष्म है। मूर्तरहित कहा न? तो सूक्ष्म अरूपी है। आहाहा!

उसमें यह रागादि तो नहीं, यह तो नास्ति हुई। अस्ति क्या है? ओहो! सन्तों ने करुणा की। मार्ग को सरल करके, सरल करके। अनुभवप्रकाश में आता है। आहाहा! उसका ... यहाँ तक कहते हैं, उसका वणस्तम्भ मैंने रोपा है। चन्दुभाई! अनुभवप्रकाश में। आहाहा! वह ज्ञानमय है, आनन्दमय है। आहाहा! ऐसे अनन्त रत्न का भण्डार भगवान है। उसके अनुभव से प्रतीति करके रणस्तम्भ रोपा है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। समझ में आया? रणस्तम्भ रोपा है। ऐसा जिसे आना हो वह। हम उपस्थित हैं पर को जीतने के लिये। आहाहा! मिथ्यात्व को जीता है, अब राग-द्वेष आदि को जीतने के लिये रणस्तम्भ रोपा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा का स्वरूप है, उसका तू अनुभव कर, ऐसा कहते हैं। बाकी सब ठीक है। आहाहा!

तू रत्न का भण्डार है। शरीरप्रमाण तेरी चौड़ाई भले हो। चौड़ाई की अपेक्षा से कहीं वस्तु की कीमत नहीं है। उस चौड़ाई में उसके स्वभाव की शक्ति की कीमत है। निगोद के एक अंश में एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर हैं निगोद, उस एक-एक शरीर में अनन्त आत्मायें और एक-एक आत्मा में अनन्त आनन्द, अनन्त रत्न भरे हैं। वह निगोद का जीव... है न? आहाहा! यहाँ नित्य आत्मा को नित्य कहा है न? पर्याय तो गौण की है।

... जिसमें अनन्त भगवान विराजते हैं। आहाहा! अनन्त चैतन्य अनन्त रत्न से भरपूर वे आत्मायें हैं। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। आहाहा! ऐसा तू आत्मा है। आहाहा!

आगे-पीछे नहीं जानता,... ऐसी उसकी शक्ति है। आगे-पीछे न जाने, ऐसा नहीं, सब जाने, ऐसा कहते हैं। पहले यह जाने और बाद में यह जाने, ऐसा नहीं है। है

न? **आगे-पीछे नहीं जानता,...** एक साथ जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे कितने ही कहते हैं न कि केवलज्ञानी को भविष्य की पर्याय हो, वह वर्तमान में न जाने, परन्तु हो तब जाने। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि उस द्रव्य में भविष्य की पर्याय अभी प्रगट नहीं अथवा जब प्रगट होगी, ऐसा वे जानते हैं। प्रत्यक्ष केवलज्ञान जानता है। आहाहा! बापू! तेरी तुझे खबर नहीं। तू केवलज्ञान का पिण्ड है। आहाहा! इस बाहर के रत्न को धूल में मसल डाला है तूने आत्मा को। पर में-विकल्प में। पर के प्रति अधिकपने में ऐसा अनन्त रत्नमय भगवान, उसका तूने निषेध किया है, प्रभु! आहाहा! यह हिंसा की है। आहाहा! हिंसा का अर्थ कि जीवत्व है, उसका नाश किया। उसमें जीवत्व जीवन उसका है। इसके लिये तो पहले ज्ञानमय, आनन्दमय। इसलिए अब आनन्द की व्याख्या करते हैं। आहाहा!

ऐसा भगवान आनन्द का सागर प्रभु, आनन्दस्वरूप त्रिकाल है। ऐसे आनन्दमय आत्मा को जान। दूसरा सब जाना, वह सब मुफ्त में निरर्थक गया है। दुनिया के चतुर हैं वकील, डॉक्टर ऐसे वे पढ़े हुए, ऐई! यह जवाहरात के सब पारखी।

मुमुक्षु : जवाहरात....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहता था। उस ओर है यहाँ। पूनमचन्द गोदीका। नीलमणि ऐसी है... वह ... डबल हो जाये। कहता था। बताया था एक बार हमको। बीच में नीलमणि बताया था नीलमणि। उसमें से कहे कितने ही लाखों रुपये आयेंगे। धूल में भी नहीं। वह उसकी कीमत है। एक उसका नौकर है। वह उसे साफ करता है। महीने में तीन हजार वेतन देते हैं। कहते थे। एक महीने में तीन हजार वेतन। मासिक। मेरे पास आया था। महाराज मैं इसमें काम करता हूँ। मुझे बाहर जाऊँ तो पाँच हजार मिले। यहाँ ... रुपये... तीन हजार। मासिक तीन हजार साफ करने के। उसमें से एक-एक मणि ऐसी निकले कि लाखों की आमदनी। लाखों। मिला हो दो-पाँच हजार में। उसके लाखों। धूल में अन्दर में... उसे यह।

ऐसा चैतन्य अनन्त रत्न, उसमें आनन्द पड़ा है पूर्णानन्द। उसकी इसे कीमत नहीं, उसका इसे माहात्म्य नहीं। उसके क्षेत्र की स्वरूप की अस्ति की स्वीकृति नहीं। आहाहा! यह दूसरी सब सबकी स्वीकृति। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! प्रभु! एक

बार गुलाँट तो खा। पर्याय को पर में झुकाया है, उस पर्याय को एक बार अन्तर में तो झुका। आहाहा! भगवान! तेरी कीमत तो कर तू पर्याय में। तेरी कीमत तू पर्याय में तेरी तो है। तेरी पर्याय में तेरी कीमत तो कर। आहाहा! इसके लिये यह वर्णन किया है, छह द्रव्य और आत्मा। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **एक समय में प्रत्यक्ष जानता है, आगे-पीछे नहीं जानता,...** आहाहा! अब सुख की बात करते हैं। आनन्द में आता है। अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु। आहाहा! लिया है न साथ में। परमानन्दस्वभाव अर्थात् सर्वस्वभाव। उसमें ज्ञानमय था, इसमें परमानन्दस्वरूप। अलग प्रकार से बात करते हैं। वह परमानन्द इसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानमय वह वस्तु है, उसमें यह ज्ञान उसका स्वभाव है, ऐसा कहा। परन्तु ज्ञानमय कहकर ज्ञानस्वभाव है पूरा, उसमें तन्मय है। और यह आनन्द जिसका स्वभाव है, परमानन्द जिसका स्वभाव है। उसका स्वभाव स्वरूप ही परमानन्द है। आहाहा! कहो, बलुभाई! बाहर की सबकी महिमा का सार यह ... अन्दर रह गया।

परमानन्दरूप... स्वभाव। आहाहा! ऐसा कहकर परमानन्द, परम-आनन्द उसका स्वभाव ही है। और उसका सत् है, उसका सत्त्व परमानन्दमय है। वह सत् है स्वरूप, उसका स्वभाव सत्य परमानन्दमय है। आहाहा! परमानन्दस्वभाव है। आहाहा! परमात्मप्रकाश। समझ में आया? उसके आगे उसकी पर्याय की कीमत नहीं। उस परमानन्दस्वभाव की कीमत है। ऊँची चीज़ हो न कि ठोकर न खाने दे उसे। ये काँच के बर्तन होते हैं न। काँच के बर्तन। ठोकर लगे तो टूट जायें। बलुभाई! तुम्हारे उस शीशे में पानी भरा है या नहीं? ... मैं था न ... रामजीभाई थे। बोतलें भरी हुई पानी की। ... उसमें एक बोतल फूटी हो। इतनी बड़ी बोतलें थी नहीं? काँच की। आहाहा! उसे फूटने न दे, उस काँच को ठोकर लगने न दे। आहाहा! इसी प्रकार परमानन्दस्वभाव है, उसे ठोकर लगने न दे। समझ में आया? आहाहा!

राग के प्रेम में भगवान को ठोकर लगती है। तोड़ डालता है आत्मा को। प्रवीणभाई! आहाहा! भगवान! स्वभाव परमानन्द से रहित होओ, वह यह राग दुःखरूपभाव है। आहाहा! दया के, दान के, भक्ति के भाव राग, वह दुःखरूप भाव है। उसकी कीमत करने से चैतन्य रत्न को ठोकर लगे तो टूट जाता है। उसकी दृष्टि से। है तो है, उसकी

दृष्टि में वह फोड़ डालता है। पूरा तत्त्व है परमानन्दमय प्रभु है। उसे उस प्रकार से न मानकर... आहाहा! जरा शुभभाव हुआ। शुभ, हों! ... महिमा तो क्या करे? आहाहा!

शुभभाव में पुण्य की महिमा हो गयी, इसे यह अनन्त रत्नवाले चैतन्य को ठोकर मारकर फोड़ दिया। अर्थात् कि वह नहीं। आहाहा! आचार्य ने यहाँ छह द्रव्य में आत्मा के लक्षण वर्णन किये हैं। छह द्रव्य में आत्मा के लक्षण वर्णन करते हैं। आहाहा! ऐसे लक्षण से लक्ष्य हो ऐसा है। वह राग, पुण्य और व्यवहार से लक्ष्य हो, ऐसा नहीं। आहाहा! वह वस्तु ऐसी है। समझ में आया? कहा नहीं था? अलिंगग्रहण में यति को बाह्य यति को कितने आचरण का शुभराग जो है, वह सब ... है। मुनिधर्म है जितना रागादि का व्यवहार, वह सब चैतन्य में नहीं। ... धर्म नहीं ... आया था। ... पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति, व्यवहार जो है, वह आत्मा में नहीं। समझ में आया?

आत्मा उसकी कीमत करने जायेगा तो यहाँ ... आहाहा! यह काँच के ... काँच के ... आते हैं न? काँच के... बड़ा ... क्या? ... तुम्हारे ... भाई की ओर से .... वह जरा सी ठोकर लगे, टुकड़े। आहाहा! यह भगवान आत्मा परमानन्द का ज्ञानस्वभाव, ज्ञानमय कहा, ज्ञानस्वभाव। स्वभाववान का ज्ञानमय स्वभाव है। अभेद है। परमानन्द स्वभावमय है। आहाहा! उसे यहाँ से विरुद्ध ... भाव शुभभाव हो, उसकी कीमत करने से भगवान का अनादर किया है। आहाहा! इसलिए एक बार तू तेरी इस चीज़ का आदर तो कर, कहते हैं। ... पर्याय आदि का आदर दृष्टि में से छोड़कर... आहाहा! यह उघाड़ हुआ, नौ पूर्व की लब्धि परन्तु उसकी कोई कीमत की नहीं। ऐसा कहते हैं। वह वस्तु नहीं। यहाँ तो ग्यारह अंग का ज्ञान हो तो भी वह वस्तु नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो अभी ठिकाने न हो वहाँ। आहाहा! सुन न अब। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! बापू!

ग्यारह अंग का ज्ञान है, उसमें तो अठारह हजार पद हैं। एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक हैं और एक-एक... उसके दोगुने लेते-लेते... की है। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! तेरी पर्याय में उसकी कीमत तूने की, परन्तु जिसकी है, उसकी कीमत तूने की नहीं। आहाहा! समझ में आया? ... की। उसका जो जानपना हो, ऐसा करे। बातचीत करे, दूसरे को... अधिक लगे। ... उसकी लगे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अर्थात् उस आत्मा को जाना नहीं, बापू! जाननेवाले को जाना नहीं।

देखनेवाले को देखा नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा कैसा है?

वीतरागभाव परमानन्दरूप... देखा! उस संसार में यह विषय के भोग और पैसे के... वह सब दुःखरूप भाव है, रागरूप भाव है। आहाहा! इन्द्राणी का भोग। वह तो शरीर के रोग दो दिन न खाये तो ऐं... ऐं... हो जाये। बुखार आया हो तीन दिन, वहाँ तो मुख म्लान हो जाये। यह तो इन्द्राणी जिसे हजार ... करे। ... ऐसे इन्द्राणी के भोग का भाव जहर है। आहाहा! उस जहर की कीमत में अनन्त आनन्द भगवान... यहाँ तो क्या कहना है? कि वह राग है, उसके सामने वीतराग। समझ में आया?

वीतरागभाव परमानन्दरूप... वहाँ 'एक' शब्द रह गया है भाई वहाँ। वीतरागभाव परमानन्दरूप एक। **अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से...** 'एक' शब्द रह गया है। यह दो जगह 'एक' शब्द रह गया है। आगे भी ... 'एक' सब जगह भूल जाते हैं। एकरूप वह बतलाना है। आहाहा! है संस्कृत में। '**वीतराग परमानन्दैकरूपसुखामृत-रसास्वादेन**' ... एक शब्द ... सब जगह एक छोड़ देना। आहाहा! **वीतरागभाव परमानन्दरूप...** ऐसा। वीतरागभाव परमानन्दरूप प्रभु! आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वभाव। परमानन्दरूप कहा न? परमानन्दस्वभाव। स्वभाव परमानन्दस्वभाव। जैसे शक्कर का मिठास स्वभाव, वैसे भगवान का परमानन्दस्वभाव। आहाहा! अब उसे आत्मा क्या है, इसकी बात सुनना ... यह धर्म-धर्म करके बातें करे सब। सामायिक किये और प्रतिक्रमण किये, प्रौषध किये। किसके, बापू! चीज़ की तो खबर नहीं। आहाहा! अज्ञान किया है। ... पच्चीस सामायिक की है। ...हमारे बोटाद में करते थे ... घण्टे में ३० सामायिक। ... करके। ३० सामायिक... घण्टे ... ३० सामायिक। २४ घण्टे की ३० सामायिक। ...

भगवान परमानन्दमय प्रभु ज्ञानमय है। परमानन्द जिसका स्वभाव है। स्वभाव की हद है, यह। जिसका परमानन्दस्वभाव, वीतरागी परमानन्दस्वभाव। आहाहा! वीतरागी परमशुद्ध स्वभाव। एक। एकरूप जिसका। वीतरागी परमानन्दस्वरूप एकरूप है त्रिकाल। चन्दुभाई! ऐसी बात है, प्रभु! मूल चीज़ की खबर नहीं होती। धर्म हो जाये। मर गया अनन्त काल से। अशुभभाव किये अनन्त बार, शुभ भी अनन्त बार किये। उसमें कुछ हुआ नहीं। आहाहा! जिसमें झुकने का झुकाव था, वह झुकाव किया नहीं। जिस पर्याय

में द्रव्य की कीमत आँकना चाहिए, वह आँकी नहीं। उस पर्याय में पुण्य-पाप के फल की कीमत आँकी। चेतनजी! आहाहा! लड़के कुछ सात-आठ अच्छे हों, स्त्री ठीक हो, करोड़पति की पुत्री आयी हो, दस लाख लेकर आयी हो। ओहोहो! सुखी हैं। मूढ़ है, सुन न! पाप में पड़ा है। तेरा नाथ अन्दर परमानन्दस्वरूप है।

देखो! वीतरागभाव। भाव लिया है, हों! परमानन्दरूप एक **अतीन्द्रिय सुखस्वरूप...** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुखस्वरूप। **वीतराग परमानन्दरस एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से...** आहाहा! जिसके अमृत के रस के स्वाद से। आहाहा! **समरसी भाव को परिणत हुआ है,...** है? ... आहाहा! वीतरागभाव **परमानन्दरस एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से समरसी भाव को परिणत हुआ है, ऐसा है योगी...** आहाहा! ऐसा ... है। परमानन्द वीतरागस्वरूप एक अतीन्द्रिय सुख के अमृत के स्वाद से समरसी भाव से परिणत हुआ है। वीतरागभावरूप तेरी दशा है। आहाहा! उसे तू ऐसा जान। आहाहा!

परिणत हुआ है ऐसा हे योगी... वीतरागी परिणत होकर उसमें ... ... आहाहा! **वीतरागभाव परमानन्दरूप एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से...** अन्तर में आनन्द के स्वाद से **समरसी भाव को परिणत हुआ है,...** वीतराग परिणति से परिणत हुआ **ऐसा है योगी! शुद्ध निश्चय से अपनी आत्मा को ऐसा समझ।** ऐसे वीतरागभाव से परिणत आत्मा को ऐसा समझ। आहाहा! भाई! बातें सब अलग बात हैं। सम्प्रदाय में बात नहीं मिलती। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, ... आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना चाहते हैं कि ऐसे आत्मा को तू ज्ञानमय परमानन्दस्वभाव का वीतरागी परमानन्द एक अतीन्द्रिय सुख के अमृत के रस के स्वाद से परिणमित जान। आहाहा! परिणमित जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहा!

'ज्ञानमयः परमानन्दस्वभावः नित्यं निरंजनं' यह सब होकर जान। समझ में आया? ... सहावो। नित्य निरंजन भाव। ऐसा जान। परन्तु किस प्रकार से जान? आहाहा! वह तो ... दशा से बात ली है। **वीतरागभाव परमानन्दरूप एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से...** यह उसका स्वाद लेता हो। आहाहा! अमृत के आनन्द के स्वभाव का स्वाद लेता हो, उसमें उसे परमानन्दसुख है, ऐसा जानने में आता

है। क्या कहा, समझ में आया... भाई? कहते हैं कि यह परमानन्दमय प्रभु है, वह किसे जानने में? उस परमात्मा को तू जान। परन्तु किस प्रकार से जान? कैसे ज्ञात हो? आहाहा! वीतराग परमानन्द अमृत के स्वाद में पर्याय में स्वाद में परिणत होकर तू जान। आहाहा! प्रवीणभाई! ऐसा कुछ था वहाँ तुम्हारे? आहाहा! परमानन्दस्वभाव है। स्पष्टीकरण ऐसा किया। उसे जान, ऐसा कहा न? जान-जान। जान है न अन्दर? **'योगिन् नियमेन आत्मानं मन्यस्व'** शब्द पड़ा है। १८वीं गाथा। अर्थ है न शब्दार्थ? शब्दार्थ है। **हे योगी! निश्चय करके तू आत्मा को ऐसा जान। 'मन्यस्व'** है न? शब्दार्थ है। मूल पाठ। मूल पाठ में। मूल गाथा में। **'मन्यस्व'** अर्थात् जान। परन्तु जान, कैसे जान? आहाहा! अकेला... है, इस प्रकार से जाना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान के क्षयोपशम में उसे यह परमानन्द है, ज्ञानमय है। यह उसने जाना नहीं। आहाहा! उसे तो बात धारणा में आयी है। जानने में आयी नहीं। आहाहा! ओहोहो! दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो। ऐसी बात मिलना मुश्किल है। ऐसी वस्तु है। और लौकिक एकान्त है, एकान्त है, ऐसा कहे। व्यवहार से ज्ञात होता है, इसका भी निषेध करते हैं। अकेले ज्ञान में धारणा करे, उससे ज्ञात होता है, इसका भी निषेध किया। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

ऐसा आत्मा है, वह जिसे व्यवहार से ज्ञात होता है। व्यवहाररत्नत्रय साधन और निश्चय साध्य, ऐसा नहीं है। वह तो साधन का ज्ञान कराया है। आहाहा! ऐसे ज्ञान के उघाड़ में वह धारणा में बात आयी, वह भी उसने जाना नहीं। वस्तु है वह ज्ञान में, स्वाद में आयी नहीं, तब तक उसने जाना नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई! ऐसा दिगम्बर धर्म है। किसी के घर की कहाँ बात है? ... थे वहाँ। यह अनादि से चला आता है। ऐसा ही है। ओहोहो! परन्तु क्या स्पष्टीकरण किया है न!

ज्ञानमय परमानन्दस्वभाव, ज्ञानमय जान। उसके सन्मुख होकर वीतराग परमानन्द के अमृत के रस के स्वाद से तू उसे जान। और वह स्वाद कैसा? समरसी। है? **स्वाद से समरसी भाव को परिणत हुआ है,...** आहाहा! ऐसे **अमृत के रस के स्वाद से समरसी भाव को परिणत हुआ है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान के साथ अमृत के रस के स्वादसहित वीतरागी परिणति से उसे जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह दिगम्बर मुनि कहते हैं। दिगम्बर में जन्मे, उन्हें भी खबर नहीं। चेतनजी! बात तो ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसे इस प्रकार से जान। भगवान परमानन्द का स्वाद लेकर। ऐसा। ज्ञानमय है, परमानन्दस्वभाव है, नित्य है, उसे जान। उस जान में यह डाला। कि ज्ञानमय है तो ज्ञान की परिणति द्वारा जान। आनन्द है तो आनन्द के स्वाद द्वारा जान। आहाहा! वह वीतरागस्वरूप है तो समरसी वीतराग की परिणति द्वारा जाना। व्याख्या तो ऐसी है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न (समयसार की) पाँचवीं गाथा में? '**तं एयत्तंविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाहेज पमाणं...**' मैं दिखाऊँ तो अनुभव से प्रमाण करना। ... आहाहा! समझ में आया? पाँचवीं गाथा में। '**एयत्तंविहत्तं**' भगवान आत्मा अपने स्वभाव से एकत्व है। विभाव के विकल्प से वह विभक्त है। '**तं एयत्तंविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' मेरे वैभव से मैं तुझे कहूँगा। भगवान ने कहा, इसलिए कहूँगा—ऐसा नहीं। श्वेताम्बर में ऐसा आता है। ... भगवान ऐसा कहते थे। यहाँ कहे, मैं निजवैभव से कहूँगा। बड़ा अन्तर है।

'**जदि दाहेज पमाणं...**' प्रमाण करना। ... समरसी स्वभाव द्वारा। ज्ञानमय वस्तु को ज्ञान के परिणमन से जान, परमानन्द रस है उसे आनन्द के स्वाद से जान, वीतरागीभाव वस्तु, उसे वीतरागी समरसी परिणति से जान। आहाहा! चन्दुभाई! है ऐसी बात! दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह वस्तु ऐसी स्पष्ट किसी ने नहीं की। दूसरों के साथ समन्वय करना। समन्वय करो। यह वस्तु है। किसके साथ समन्वय करे, भाई! किसी के साथ विरोध नहीं भगवान हो। वे सब भगवान हैं। द्रव्य से भगवान हैं। आबाल-गोपाल वस्तुस्वरूप भगवानस्वरूप है। उसकी पर्याय में भूल है। जिसकी पर्याय की भूल टाली, वह दूसरे पर्याय की... आहाहा! ...

यहाँ कहते हैं, **वीतरागभाव परमानन्दरूप एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से समरसी भाव को परिणत हुआ है,...** आहाहा! '**परमाणंद-सहाउ वीतराग परमानन्दैकरूपसुखामृतरसास्वादेन समरसीभावपरिणतस्वरूपत्वात्**' है? '**परमानन्दस्वभावः।**' वहाँ परमानन्दस्वभाव ... संस्कृत है। **ऐसा है योगी...** आहाहा! **शुद्ध निश्चय से अपनी आत्मा को ऐसा समझ,...** हे मुनि! शुद्ध निश्चय से ऐसे आत्मा को तू आत्मा जान। आहाहा! है? **ऐसा समझ,...** आहाहा! ऐसी बात थोड़ी हो परन्तु

सत्य है, उसे जान। बड़ी-बड़ी बातें लम्बी-लम्बी करे... आहाहा!

भगवान ज्ञानस्वरूप है। वैसे तो ज्ञानस्वरूप है, ऐसा जानना किस प्रकार? परिणति द्वारा ज्ञात होता है। आहाहा! भगवान तो परमानन्द स्वभाव है। ज्ञात कैसे हो? यह अमृत के रस के स्वाद से ज्ञात होता है। भगवान वीतरागस्वरूप है। परमानन्द किस प्रकार ज्ञात हो? समरसी परिणति वीतराग परिणति द्वारा ज्ञात हो। आहाहा! गजब काम करते हैं। ऐसा मार्ग है। ...दिगम्बर सन्त केवली के पथानुगामी हैं। केवली ने ... आहाहा! लोगों को सत्य सुनने को नहीं मिलता, वे बेचारे कहाँ जायें? आहाहा!

कहते हैं, **शुद्ध निश्चय से अपनी आत्मा को ऐसा समझ, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से बिना टांकी का घडया हुआ सुघटघाट...** सुघटघाट। अघड़ित परन्तु सुघट। आनन्दमय भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत का सागर वह है। आहाहा! सुघटघाट। **ज्ञायक एक स्वभाव...** वहाँ भी लेना। वहाँ एक है। **ज्ञायक एक स्वभाव नित्य है।** यह नित्य की व्याख्या करते हैं। ज्ञानमय की की है, ... की नित्य की अब करते हैं। यह नित्य की व्याख्या करते हैं। **एक द्रव्यार्थिकनय से...** द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु की दृष्टि से वस्तु को **बिना टांकी का घडया हुआ...** गढ़ा है वह ... सुघटघाट। आहाहा! आनन्दघन प्रभु। चैतन्य चिन्तामणि... समकित ... समकित होवे ... आहाहा! मार्ग ऐसा है। ... लगता एकान्त है। यह व्यवहार से होता है, यह तो आता नहीं। यहाँ तो इनकार करते हैं। व्यवहार होता है, ऐसा नहीं, और निश्चय में ... किस प्रकार ज्ञात हो? चन्दुभाई! आहाहा! ... लगता है। व्यवहार से हो वह ... व्यवहार से ज्ञात होता है। परन्तु व्यवहार वस्तु में नहीं न! व्यवहार तो राग है। शुभराग है। आहाहा!

अब ... व्यवहार किसे कहना? आहाहा! राग से ज्ञात हो? जिसमें राग नहीं, वह राग से ज्ञात हो? जिसमें समरसी भाव है तो समरसीभाव से ज्ञात होता है। आहाहा! उसमें अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, वह अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से ज्ञात होता है। आहाहा! वह ज्ञानमय भगवान है, उसके सन्मुख होकर, सम्यग्ज्ञान की परिणति द्वारा ज्ञात होता है। ... आहाहा! समझ में आया? विशेष आयेगा, लो...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज कृष्ण १५, शनिवार
दिनांक-२३-१०-१९७६, गाथा-१८, प्रवचन-११२

आज भगवान के मोक्ष का दिन है। नैगमनय से आरोप से। भूतकाल में हो गये हैं न वे तो ? उन्हें अभी कहना, यह एक नैगमनय के कथन हैं। भगवान इस चतुर्दशी की पिछली रात्रि में मोक्षमार्ग की तीन जो पर्याय दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उनकी पूर्ण हुई। चौदहवें में को। आहाहा! उसका व्यय हुआ और मोक्ष का उत्पाद हुआ। वास्तव में वह मोक्ष के उत्पाद की पर्याय का वह जन्मक्षण ही था। आहाहा! उस काल में, जैसे मिट्टी में से घड़ा होने का जन्मक्षण होता है, तो घड़ा होता है। निमित्त हो। कुम्हार आदि डोरी, कहा है भले। परन्तु वह कहीं उससे नहीं होता उसमें। कहेंगे अभी। धर्मास्ति, अधर्मास्ति सहायक कारण है, उसका अर्थ समझना चाहिए न ? साथ में एक दूसरी चीज़ है। उसी प्रकार भगवान ने जब मोक्ष की पर्याय प्रगट की, तब कालादि निमित्त है। द्रव्य, परन्तु उससे हुआ नहीं। निश्चय से तो ऐसा है कि मोक्ष की पर्याय स्वयं षट्कारकरूप से परिणम कर उत्पन्न हुई है। लालचन्दभाई! आहाहा!

जब विकारभाव भी षट्कारकरूप से परिणमन होकर उत्पन्न होता है। क्योंकि विकार वह द्रव्य और गुण में नहीं है। तब पर्याय में स्वतन्त्र एक समय में मिथ्यात्व का भाव हो या राग-द्वेष का हो, एक क्षण में वह विकार, वह पर्याय विकार की कर्ता, पर्याय विकार का उसका कर्म-कार्य। आहाहा! एक समय में छह बोल उसकी स्वतन्त्रता वे प्रसिद्ध करते हैं और उस स्वतन्त्रता का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता का फल स्व के ऊपर लक्ष्य जाये, तब वीतरागता होती है। सम्यग्दर्शन, वह वीतराग पर्याय है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन एक वीतरागी पर्याय का ही जन्मक्षण-उत्पत्तिकाल है। वह भी सम्यग्दर्शन की पर्याय अपने षट्कारक से परिणमन होकर उत्पन्न हुई है। जिसे द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। तथापि द्रव्य का सहारा कहा जाता है। आहाहा! वीतरागी तत्त्व...

आज तो मोक्ष का दिन है न ? केवल—मोक्षपर्याय हुई, उसे मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय का काल था और मोक्ष की पर्याय का उत्पन्न (होने का) काल—समय था।

वस्तु ध्रुवरूप से तो उसका क्षण है। आहाहा! वह मोक्ष की पर्याय भी जो पूर्ण हुई... आहाहा! मोक्षमार्ग के कारण हुई, ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। क्योंकि मोक्षमार्ग की पर्याय का तो व्यय होता है। वह व्यय उत्पाद का कारण कैसे होगा? आहाहा! तो उत्पाद का कारण तो उत्पाद स्वयं है। परन्तु उत्पाद का व्यवहार कारण कहना हो तो द्रव्य का आश्रय विशेष हुआ इसलिए। समझ में आया? ऐसा जो जन्मक्षण परमात्मा का... आहाहा! उस काल में परमात्मा (को) पूर्ण आनन्द और अव्याबाध (प्राप्त हुआ)। पूर्ण आनन्द तो तेरहवें गुणस्थान में हुआ था, परन्तु यहाँ तो पूर्ण आनन्द—अव्याबाध आनन्द की प्राप्ति हुई। भगवान को वहाँ। उसे दिवाली दिन कहा जाता है। दि अर्थात् स्वकाल को उसने वाळयो। आहाहा! परमात्मदशा की दशा, वह स्वकाल। स्वकाल वह पर्याय का स्वकाल। आहाहा! उसमें उसने अपनी पर्याय को उत्पन्न किया। आहाहा! इसलिए उसे दि-वाली—दिवाली कहा जाता है। फिर बाहर में यह तो यह दीपक करे और ऐसा करे और वैसा करे, वह सब व्यवहारिक बातें हैं। आहाहा!

भगवान सादि-अनन्त सिद्धपर्याय को प्राप्त हुए। अनादि-शान्त संसार की अवस्था को कर दिया। आहाहा! संसारदशा जो अनादि की है, उसका वहाँ अन्त उस क्षण में आया। और सिद्ध की पर्याय अनन्त काल रहने की है, उसका उत्पत्ति काल उस समय आया। आहाहा! समझ में आया?

इसी तरह सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का क्षण-काल, वही क्षण-काल मिथ्यात्व के नाश का क्षण-काल है। और वही ध्रुव का क्षण-काल है। उस-उस ध्रुव का। उस-उस ध्रुव का अर्थात्? पहले की पर्याय गयी, नयी पर्याय हुई इतना जरा ध्रुव में... अपूर्ण पर्याय गई, पूर्ण पर्याय हुई, इतनी ध्रुव की अपेक्षा से वहाँ रही है। वहाँ अपूर्ण गयी और पूर्ण हुई, इसलिए वहाँ ध्रुव में पूर्णता है, उसमें कुछ न्यूनता हुई नहीं। समझ में आया? वह तो पूर्णानन्द ध्रुव तो है परन्तु पूर्व की पर्याय की अपूर्णता गयी। गयी कहाँ? कि वहाँ। ध्रुव में गयी। यहाँ जो क्षायिकभाव का समकित आदि कहलाता था, मोक्षमार्ग की पर्याय, वह अन्दर गयी, तब पारिणामिकभाव हो गयी, ध्रुव हो गयी। आहाहा! यह तत्त्व की मर्यादा और स्थिति यह है। उसमें कोई आगे-पीछे फेरफार करे तो बन सके, ऐसा नहीं है। यह कठिन पड़े जगत को। क्रमबद्ध।

उत्पत्तिकाल में कारण तो सर्वत्र लिये जाते हैं। ... इसमें भी आयेगा, सहायक कारण। इसमें १९ में। धर्मास्ति को सहायक कारण कहेंगे। परन्तु इसका अर्थ उस सहायक कारण ने वह पर्याय उत्पन्न की है, ऐसा नहीं है। उस पर्याय का तो उत्पत्ति काल था, स्वयं से हुई है। पर कारण की भी उसे निश्चय से अपेक्षा नहीं है। वयवहार से है, ऐसा निमित्त का ज्ञान कराने के लिये यह बात की है। यह वस्तु की स्थिति है। भगवान ने ऐसी जानी और भगवान ने ऐसा कहा था। आहाहा! यह आज दिवाली का दिन है। लोग तो लड्डू चढ़ाते हैं। कौन जाने... सवेरे भाई ने प्रश्न किया था, हिम्मतभाई (ने) कि यह लड्डू चढ़ाते हैं, वह कुछ खबर नहीं कि क्या है? आधार क्या है? लड्डू चढ़ाते हैं न? यह व्यवहार चला आता है या क्या है? लड्डू चढ़ाते हैं न? आज रखे थे किसी ने। भगवान की ओली की तब किसी ने रखे थे, दो। यह पद्धति होगी या क्या होगा? कहा, अपने को कहीं शास्त्र की खबर नहीं। आहाहा! यह पद्धति है, वह है।

मुमुक्षु : अन्दर की पद्धति, वह सच्ची पद्धति।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पद्धति है। अपने यहाँ १८वीं गाथा चलती है।

भावार्थ फिर से। १८वीं गाथा का भावार्थ। परमात्मप्रकाश, १८वीं गाथा। **यह आत्मा अमूर्तिक शुद्धात्मा से भिन्न जो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाली मूर्ति उससे रहित है,...** पहला पाठ है न मूर्तिरहित। पहला पाठ है। **'मुत्ति-विहूणउ'** है? १८वीं गाथा। **'मुत्ति-विहूणउ'** उसकी व्याख्या। **यह आत्मा अमूर्तिक शुद्धात्मा से भिन्न...** भगवान आत्मा तो अमूर्तिक है। भले अमूर्तिक हो, परन्तु वस्तु है। ऐसा सिद्ध करना है। मूर्तरहित है। मूर्तरहित है परन्तु अमूर्तिक वस्तु है। अमूर्तपना अर्थात् कोई तुच्छपना है, ऐसा नहीं। जिसमें मूर्तरहित है परन्तु जिसकी अमूर्तता की प्रधानता है, उसकी यह महिमा है। अमूर्त तो धर्मास्ति भी है परन्तु इस मूर्तरहित में तो इसकी महिमा अनन्त आनन्द और ज्ञान की अमूर्तता, यह इसकी महिमा है। अमूर्त होने पर भी भगवान में; भगवान अर्थात् यह आत्मा, उसे भगवान कहते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता ऐसा मूर्तरहित पदार्थ होने पर भी, ऐसे अमूर्त स्वभावों से परिपूर्ण भरपूर पदार्थ है। परमात्मप्रकाश है न यह? मूर्तरहित अमूर्त परमात्मा है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा!

यह सब गाथायें गम्भीर हैं। मूर्तरहित अमूर्त, परन्तु परमात्मा अमूर्तस्वरूप है पूरा। और वास्तव में तो वह अमूर्तपना निर्मल अमूर्त पर्याय द्वारा ही जानने में आता है। समझ में आया? यह अमूर्त है, अमूर्त है, अरूपी है, उसका भान सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन की पर्याय में होता है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान, वह भी अमूर्त है। समझ में आया? आहाहा! उस अमूर्त द्वारा अमूर्त ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसे अमूर्त है, परन्तु उसकी प्रतीति कब आवे? यह सम्यग्दर्शन जो अमूर्त है, तब उसे अमूर्त पदार्थ की प्रतीति आवे। आहाहा! समझ में आया? मूर्तरहित है। अब विशेष (कहते हैं)।

'मुत्ति-विहूणउ णाणमउ' 'णाणमउ' शब्द पड़ा है, इसकी व्याख्या। **लोक-अलोक का प्रकाश करनेवाले केवलज्ञानकर पूर्ण है,...** यह पर्याय की बात नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानमय। ज्ञानवाला, ऐसा नहीं कहा। ज्ञानमय है। कैसा ज्ञान? केवल ज्ञान, केवल ज्ञान—अकेला ज्ञान। केवल, यह पर्याय की बात नहीं। समझ में आया? ऐसा जो आत्मा है, उसे तू जान। यह जानने में पूरी बात लेंगे। समझ में आया? वह **केवलज्ञानकर पूर्ण है,...** आहाहा! परन्तु वह कब ज्ञात हो? यह कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! **जो कि केवलज्ञान सब पदार्थों को एक समय में प्रत्यक्ष जानता है,...** केवलज्ञान एक समय में शक्तिरूप का यहाँ वर्णन है। शक्तिरूप वह लोकालोक को जाने, ऐसा ही उसका शक्ति स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में वह नहीं और आवरण से रुका है, निमित्त से, यह यहाँ बात नहीं। यहाँ तो केवलज्ञान परिपूर्ण शक्ति का सत्त्व पूरा है कि जो लोकालोक को, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा!

आगे-पीछे नहीं जानता,... आगे-पीछे जाने क्या? जिस-जिस समय में जिस-जिस प्रकार से जहाँ द्रव्य की क्रमबद्धपर्याय भूत की तो गयी, भविष्य की है नहीं, तथापि भविष्य की जो होगी, वैसी ज्ञान में वर्तमान में-पर्याय में ज्ञात होती है। परन्तु शक्ति में ऐसी ही शक्ति अन्दर है, कहते हैं। आहाहा! जो पर्याय भविष्य की वर्तमान नहीं, उसे वर्तमान जाने... जब वह लोग ऐसा कहते हैं कि जो नहीं, उसे वर्तमान जाने तो विपरीत होगा गया। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आगामी कल यह वार है, यह खबर नहीं पड़ती?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ खबर नहीं पड़ती? रोटी का आटे का लोया लिया।

तो उसमें रोटी होगी, इसका ख्याल नहीं आता वहाँ? होने से पहले ख्याल नहीं आता? लोया कहते हैं न आटे को? आटा-आटा। उसमें से काटी हुई लोई निकालते हैं न थोड़ा? निकाला वहाँ ख्याल में ही है उसे कि यह रोटी होगी। करूँगा तो होगी, ऐसा नहीं। होगी। समझ में आया? दूसरी बात। करूँगा तो होगी, ऐसा नहीं। नहीं होने पर भी होगी, उसका ख्याल आ गया वापस। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग बहुत अपूर्व है। सूक्ष्म है, अपूर्व है, उसका फल अपूर्व आनन्द है। समझ में आया?

अब कहते हैं कि ऐसा जो अमूर्त और ज्ञानमय प्रभु, किसे प्रतीति में आवे और किसे जानने में आवे? आहाहा! समझ में आया? ऐसा शास्त्र से सुना, इसलिए उसने जाना, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्र से धारणा की कि यह अमूर्त है और यह पूर्ण केवलज्ञानमय है, यह ज्ञान पूर्ण है—ऐसी धारणा की, इससे इसने जाना, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! सूक्ष्म बातें हैं यह। आहाहा!

दिवाली का दिन है। परमात्मा मोक्ष पधारे, देखो! 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' मोक्ष क्या है? अनन्त समाधि शान्ति, वीतरागता, अनन्त आनन्द, उसका नाम मोक्ष है। मोक्ष तो नास्ति से कहा जाता है। वास्तव में दु:ख का नाश। ऐसे मुक्ति कहा जाता है न? मुक्ति तो अस्ति है, परन्तु दु:ख का (नाश होकर), ऐसा करके मुक्ति हुई न? संसार का अभाव, वह मुक्ति। मुक्ति कही। किससे मुक्त हुआ? दु:ख से अथवा अपूर्ण अवस्था से। आहाहा! समझ में आया?

यह अब कहते हैं कि ऐसा जो मूर्त भगवान और ज्ञानमय जो लोकालोक को जाने, ऐसा जो उसका स्वभाव, ऐसी उसकी शक्ति, ऐसा उसका ध्रुवपना, ऐसे को—आत्मा को जाने। ऐसा शब्द है न? देखो! **'मुत्ति-विहूणउ णाणमउ परमाणंद-सहाउ'** इसे इकट्ठा डालेंगे। यह परमानन्दस्वभाव के साथ डालेंगे अब। **'णियमिं जोइय अप्पु मुणि णिच्चु णिरंजणु भाउ'** आहाहा! **'मुणि'** है न? **'मुणि'** शब्द पड़ा है न? यह **'मन्यस्व'** कहो या जान कहो। **'मुणि'** शब्द है न? नीचे है **'मन्यस्व'** **'मन्यस्व'** का संस्कृत में **'मन्यस्व'** लिया है। संस्कृत का वह नहीं लिया। समझ में आया? क्या? **'मुणि'** जो पाठ का शब्द है, वह शब्दार्थ में नहीं लिया। शब्दार्थ में संस्कृत का शब्द लिया है। क्या कहा, समझ में आया? पाठ के शब्द हैं, वे शब्दार्थ में—अन्वयार्थ में नहीं लिये। इसका

संस्कृत है, उसे अर्थ में लिया है। पाठ है '**मुणि**', संस्कृत है '**मन्यस्व**'। शब्दार्थ में भी यह आया, देखो! हे '**योगिन्**' इसका शब्दार्थ ऊपर, शुरुआत में। **हे योगी! निश्चय करके,... 'नियमेन' निश्चय करके तू आत्मा को ऐसा... 'मन्यस्व' जान।** यह जान की बात अन्दर में अब विशेषता बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? '**मन्यस्व**' आहाहा! और यह परमानन्द रह गया तो इकट्ठा डाल देंगे इसमें। मूर्तरहित ज्ञानमय परमानन्दस्वभाव, ऐसा पाठ लिया है। परमानन्दस्वभाव। अब ऐसा जो परमानन्द ज्ञानस्वभाव, मूर्तिरहित, उसे जान। गुरु ऐसा कहते हैं। योगीन्द्रदेव सन्त हैं। तीन कषाय का अभाव (हुआ है)। प्रचुर आनन्द के स्वसंवेदन की भूमिका में बैठे हैं। प्रचुर आनन्द। छठवें गुणस्थान में मुनि हैं न? आहाहा! पाँचवीं गाथा में आता है न (समयसार में)? प्रचुर स्वसंवेदन। आनन्द जिसका ट्रेडमार्क है। अनुभव का रजिस्टर्ड हुआ ट्रेडमार्क क्या है? कि आनन्द। आहाहा! इसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान में आनन्द आवे, वह उसका ट्रेडमार्क है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। यह अब कहते हैं। आहाहा!

वीतरागभाव परमानन्दरूप... देखा! अब जाने किस प्रकार? ऐसा मूर्तरहित ज्ञानमय परमानन्दस्वभाव। अब उस परमानन्दस्वभाव का वर्णन अकेला परमानन्दरूप ऐसा न लेकर परमानन्दस्वभाव के परिणमन से उसे जान। लालचन्दभाई! आहाहा! क्या कहते हैं? **वीतरागभाव...** क्योंकि वस्तु वीतरागस्वरूप है। उसे वीतरागभाव की परिणति से जान। आहाहा! यह तो कल आ गया है। यह तो यह नया है न जरा। नये आये हैं न कितने ही। समझ में आया?

वीतरागभाव, वह अमूर्त होने पर भी वह स्वरूप वीतरागभाव है। वह यहाँ नहीं कहना। परन्तु वीतरागभाव की परिणति द्वारा उसे जान। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **वीतरागभाव परमानन्दरूप...** अब परमानन्द का स्वभाव कहा था न पाठ में-गाथा में? उसे यहाँ ले लिया इकट्ठा। वह वीतरागभावरूप परिणमन, परमानन्दस्वभावरूपी परिणमन... आहाहा! वीतरागभावरूपी परिणमन से वीतरागभाव को जान। परमानन्द स्वभाव की परिणति से परमानन्दस्वभाव को जान। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग। सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी शैली की बात कहीं है नहीं। वस्तु की स्थिति यह है। आहाहा!

जैसे कहा न अपने? भाई! १४४ में कहा। भाई! कर्ता-कर्म में। यह परिपूर्ण ऐसा है, यह सम्यग्दर्शन में परिणति में यह श्रद्धा की जाती है। ऐसी श्रद्धा-श्रद्धा ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन की परिणति में यह ऐसी श्रद्धा की जाती है। अर्थात् दिखता है, ऐसा लिया न! पहले दिखता है, ऐसा लिया है। फिर देखने का अर्थ श्रद्धा की जाती है। सम्यक् निर्विकल्प प्रतीति में, राग से रहित निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की प्रतीति में यह आत्मा की श्रद्धा की जाती है।... दिखता है, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा! ... है। है... है... है... परन्तु प्रगट पर्याय बिना 'है'—ऐसा कहाँ से आया? आहाहा!

वीतराग ... है, हों! ... भगवान वीतरागस्वरूप है। अमूर्त परन्तु वीतरागस्वरूपी प्रभु है। चारित्र है न? अकषायभाव है। वीतरागमूर्ति ही है वह। ... उसे वीतराग परिणति द्वारा जान। आहाहा! परमानन्दस्वरूप। वहाँ शब्द 'एक' पड़ा रहा है। परमानन्दरूप एक शब्द चाहिए। है वहाँ? टीका में। टीका में है। अर्थ में पड़ा है। **वीतरागभाव परमानन्दरूप...** एक स्वभाव। एक लिया है, एक लिया है। उस एक स्वभाव को एक परिणति विकल्प रहित अभेद परिणति से... जान। आहाहा! लालचन्दभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

वीतरागस्वरूप प्रभु को उस वीतरागी परिणति से जान। ऐसे जान-जान, ऐसा नहीं। आहाहा! परमानन्दस्वरूप, उसे परमानन्द की शुद्धता की परिणति द्वारा आनन्द के वेदन द्वारा, स्वाद द्वारा जान। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात पड़े परन्तु मार्ग यह है। इसके ज्ञान में बात पहले बैठनी तो चाहिए। ऐई! चन्दुभाई! आहाहा!

वीतरागभाव परमानन्दरूप... एक। आहाहा! एकस्वरूप, यह परिणति की बात है अभी। क्या कहा? वीतराग परमानन्दरूप एक परिणति की बात है यह। वस्तु एकरूप है त्रिकाल, उसे एकरूप परिणति से जान। अनेक प्रमाण नहीं काम आवे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एकरूप स्वभाव। परमानन्दस्वभाव कहा न? वह एकरूप है। पर्याय का भेद भी नहीं वहाँ। ऐसा परमानन्द ज्ञानमय, मूर्तिरहित, ज्ञानमय परमानन्दरूप एकस्वभाव। उसे वीतराग परिणति द्वारा, परमानन्द की परिणति द्वारा, एकरूप की परिणति द्वारा (जान)। आहाहा! **अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से...** आहाहा! कितना भरा है, देखो! ...भाई! ऐसा है यह। उसका अर्थ ऐसा कहना चाहते

हैं कि इसे जानने के लिये निमित्त और व्यवहार की अपेक्षा है नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई! यह लोग जो चिल्लाहट मचाते हैं न सब, व्यवहार से निश्चय होता है। प्रभु! ऐसा नहीं, हों! तू ऐसा पंगु नहीं। आहाहा! तेरी महिमा को कलंक लगता है। व्यवहार से होगा, राग से होता है? आहाहा! राग की व्यवहार की जिसे अपेक्षा नहीं। आहाहा! जिसे जानने के लिये निर्मल परिणति की अपेक्षा है। चन्दुभाई! आहाहा! थोड़ा भी सत्य होना चाहिए, बापू! लम्बी बड़ी-बड़ी बातें करे और उसमें सत्य वस्तु क्या है, वह तो हाथ आवे नहीं। समझ में आया?

अतीन्द्रिय। वह वस्तु अतीन्द्रिय है, इससे अतीन्द्रिय सुख के स्वाद से ज्ञात हो, ऐसी है। समझ में आया? वीरजीभाई! ऐसी बातें हैं। **अतीन्द्रिय सुखस्वरूप...** परमानन्द शब्द लिया न पहला? उस पूर्णानन्दस्वभाव परिणति का... लिया है। परिणति द्वारा ऐसे परमानन्दस्वभाव को मूर्तरहित ज्ञानमय को जान। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं कुछ? किस अपेक्षा से कहा जाता है, उस विवक्षा को जानना चाहिए। समझ में आया? बहुत अपेक्षा। भाई कहते थे न? चन्दुभाई कहते थे कि बहुत अपेक्षा। बहुत अपेक्षा। केवलज्ञानमय वस्तु है, चाहे जितनी अपेक्षा ... आहाहा! वह तो भगवान ज्ञानमय है, ऐसा कहा न? अब उसे जानने के लिये उसमें चाहे जो अपेक्षा हो तो जानने की सामर्थ्यवाला है। इस प्रकार हो और इस प्रकार न हो, ऐसी अपेक्षा उसके ज्ञान में यथार्थ... आहाहा! क्योंकि वह तो लोकालोक को जाने, ऐसा तो उसका स्वभाव है। आहाहा! उसमें तो कोई अपेक्षा और सब आ गयी या नहीं? आहाहा!

अतीन्द्रिय सुखस्वरूप... वह भी वापस **अमृत के रस के स्वाद से...** इस राग का-पुण्य का स्वाद है, वह तो जहर का स्वाद है। आहाहा! व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा कहते हैं न? उसे उड़ाते हैं। समझ में आया? एकान्त है, ऐसा कहते हैं। निश्चय से होता है और व्यवहार से होता है, यह अनेकान्त है। व्यवहार से नहीं होता, उसका एकान्त है, ऐसी सोनगढ़ के सामने पुकार है। सोनगढ़ के सामने नहीं, यह भगवान के सामने (पुकार है), ऐसा कह। आहाहा!

भगवान! तू भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! अलिंगग्रहण का कहा नहीं था? छठवाँ बोल कहा था। अलिंगग्रहण का छठवाँ बोल। इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा

नहीं। इन्द्रिय से जाने, ऐसा नहीं। इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा भगवान नहीं। वह अतीन्द्रिय पर्याय से ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा!

भगवान आत्मा बाल-गोपाल देह में मुक्तस्वरूप विराजते हैं। भगवानस्वरूप से भगवत स्वरूप से है। पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे। समझ में आया? इस प्रकार सब आत्मा साधर्मी है। विरोधी कोई नहीं, प्रभु! उसका स्वभाव ही ऐसा है, ऐसा जिसने जाना, उसे सबका स्वभाव ही ऐसा है, उसे आत्मा जानता है। उसे वैर कैसा, विरोध कैसा? तत्त्वैषु मैत्री, गुणेषु प्रमोद। तत्त्वेषु—सब आत्माओं के प्रति मैत्री है। सब आत्मा साधर्मी हैं। यह द्रव्यरूप से... आहाहा! समझ में आया? मित्र और शत्रु है कहाँ? आहाहा! समझ में आया? ऐसा उसका स्वभाव है। वह वीतरागभाव से अर्थात् मित्र और शत्रु के विकल्प बिना ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! कहो, ईश्वरभाई! ईश्वरभाई किसी समय आवे, चन्दुभाई बहुत बार आते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा में जो प्रभुत्व है—ईश्वरशक्ति पूर्ण प्रभुत्वशक्ति है। ईश्वर शक्ति है न, सातवीं। आठवीं विभुत्व है। यह ... आया। शान्तिभाई कहे ... ऐसा कि आठवीं विभुत्वशक्ति है, उसमें से यह दो आठ आते हैं ... शान्तिभाई आये हैं या नहीं? ... ऐसा कहते हैं। आठवीं विभुत्वशक्ति है न? जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व। दो आठडा आये न? ८८ (जन्मजयन्ती) आती है न!

यहाँ तो मुझे दूसरा कहना है। विभुत्व और प्रभुत्व यह प्रत्येक शक्ति में इनका रूप है। क्या कहा? आनन्दशक्ति है, उसमें भी विभुत्वशक्ति का रूप है। विभुत्वशक्ति नहीं। आहाहा! और प्रभुत्वशक्ति है, वह प्रभुत्वशक्ति नहीं परन्तु प्रभुत्वशक्ति का उसमें रूप है। समझ में आया? ऐसे ईश्वरशक्ति है, इसलिए प्रभुत्व, ज्ञान में ईश्वरता इस शक्ति के कारण नहीं। स्वयं। ज्ञान ज्ञान की ईश्वरता, ज्ञान ज्ञान की अस्तित्वता, ज्ञान की ज्ञान की वस्तुत्वता, ज्ञान की ज्ञान में प्रमेयत्वता। प्रमेयगुण लिया। आहाहा! चिद्विलास में आया है। ज्ञान की पर्याय के षट्कारक। चिद्विलास में। एक-एक के छह कारक। पर्याय में, हों! वे तो ध्रुव हैं। आहाहा! ऐसे प्रत्येक गुण के षट्कारक अपने कारण से है। शक्ति है त्रिकाल। कर्ता, कर्म त्रिकाल है, इसलिए यह है—ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा भण्डार है ... समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर से कहो यह बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा कि जैसे आत्मा है, वह ज्ञानस्वरूप है और अस्तित्वगुण भिन्न है। तथापि ज्ञान 'है', यह अस्ति है, यह उसका अपना रूप है। वह अस्तित्वगुण के कारण नहीं। ऐसे ज्ञान में यह प्रभुत्वशक्ति भरी है। वह शक्ति उसमें नहीं। उसमें ही ईश्वरशक्ति का प्रभुत्व स्वयं के कारण से है। ज्ञान में ईश्वरता अपने कारण से है। ईश्वरशक्ति के कारण से नहीं। ऐसे ज्ञानपर्याय कर्ता प्रमाण है, वह कर्ता शक्ति है, उसके कारण से नहीं। आहाहा!

अरे! भगवान तीन लोक के नाथ। तू तीन लोक का नाथ है। 'जिनपद सो ही है आत्मा।' 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप इस प्रकार से है। वजुभाई! जैसे आनन्दगुण है, तो आनन्दगुण में अस्तित्वगुण है, वह नहीं। परन्तु आनन्द का अस्तित्व स्वयं से है, ऐसा उसका रूप है। अस्तित्वगुण के कारण आनन्द है, ऐसा नहीं। आनन्दगुण का अस्तित्व रूप है, उसके कारण अस्तित्व है। आहाहा! इसी तरह ईश्वरता, प्रभुत्व नाम का एक सातवाँ गुण है। वह शक्ति प्रत्येक गुण में नहीं, परन्तु उसका रूप प्रत्येक गुण में है। प्रभुत्वशक्ति ज्ञान में है, दर्शन में है, आनन्द में है। शक्ति भिन्न है परन्तु उसका रूप प्रत्येक गुण में है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्व ही उसका स्वरूप की इतना सामर्थ्य है। अनेक गुण का अनेक रूप अर्थात् उसका स्वरूप। यह शक्ति बिना उसका स्वरूप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक द्रव्य कहाँ रहा? ऐसे अनन्त... वापस अनन्त गुण और अनन्त... सब होकर द्रव्य है। आहाहा! बापू! भगवान! तू कितना बड़ा है, उसकी यह बात चलती है।

आज तो भगवान के मोक्ष का दिन है न! पूर्णानन्द... हो गये। प्रभु! यदि तुम ... न हो तो तुम्हें किस ... परमात्मप्रकाश। प्रभु! तुम बड़े हो, इसलिए सिर पर रखे हैं।

और उस ... जीव को, तुमको वे खींच नहीं सकते। अनन्त जीव तुम थोड़े और वे अधिक। तो थोड़े हैं, उसे थोड़े जीव को खींचकर वहाँ ले जाये, ऐसा कहे। थोड़े हैं, इसलिए अनन्त में खींचकर वापस संसार में आवे, (ऐसा नहीं है)। परमात्मप्रकाश में है। यह तो वीतरागमार्ग है।... परमात्मा के प्रति प्रेम को भी जिसमें—वस्तु में अवकाश नहीं। आहाहा! उनके प्रेम से प्राप्त हो। आहाहा! समझ में आया? यह मूल में सब भरा है। कल थोड़ा चला था, नहीं? कहा, यह नये आये हैं। फिर ऐसा का ऐसा आवे? वह का वह आवे? बहुत नया आवे। आहाहा!

भगवान! शरीर को भूल जा। कर्म नहीं, राग नहीं, पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। अरे! एक समय की पर्याय नहीं। आहाहा! और ऐसे जो अनन्त गुण, एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप, ऐसे अनन्त गुण... आहाहा! कितने गुण? आकाश के प्रदेश... प्रभु! कहाँ अन्त है? आकाश... आकाश... आकाश... ऐसे चारों ओर अरूपी। कहाँ उसका छोर? छोर (होवे) तो बाद में क्या? आहाहा! ऐसा जो अन्त बिना का आकाश, उसके जो प्रदेशों की संख्या... यह क्या कहे? आहा! उससे अनन्तगुणे एक भगवान के रूप हैं यह। अनन्तगुणे गुण हैं। और अनन्त जितने गुण हैं, उनका एक-एक गुण में अनन्त रूप है और उसकी एक-एक परिणति में षट्कारक का परिणमन है। षट्कारक गुण है, इसलिए नहीं। एक उत्पाद का काल जो षट्कारक में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय को है, उसे कोई ध्रुव की अपेक्षा नहीं। जिसमें अनन्त गुण का रूप, ऐसे गुणों की भी जिसे—परिणति को अपेक्षा नहीं। आहाहा! भगवान का मोक्ष है न आज! पर्याय में। आहाहा! गुण की खान भरी है बड़ी। आहाहा! पर्याय में वह पूरा द्रव्य आवे नहीं, परन्तु पर्याय में पूरे द्रव्य का सामर्थ्य कितना है, वह श्रद्धा-ज्ञान में आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो मार्ग, बापू! अलौकिक है।

मुमुक्षु : ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप ऐसा। तेरा अपना ऐसा स्वरूप है। उसकी खबर नहीं जगत को। भिखारी होकर... आहाहा! कोडी-कोडी का भिखारी ... भटक मरा है। यह अनुभवप्रकाश में आता है। आहाहा! तीन लोक का नाथ, जहाँ-तहाँ जरा मुझे (मान) दो, मुझे अच्छा कहो, मुझे बड़ा कहो, पैसेवाला कहो, भिखारी माँगा करता है। कोड़ी-

कोड़ी का भिखारी। भगवान को भूल गया।

मुमुक्षु : .... आत्मा में नहीं, इसलिए माँगना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि आत्मा में यह पैसा नहीं, इसलिए माँगना पड़ता है। भगवानजीभाई! आहाहा! वह जिसमें नहीं, उसे माँगे, वह भिखारी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! सम्यग्दर्शन और उसका विषय इतना है।

यह वहाँ १४४ में कहा न? वह शैली यहाँ ली है। सम्यग्दर्शन के काल में वह श्रद्धा की जाती है, उस काल में उसका ज्ञान होता है। ज्ञान में आया है, ज्ञात हुआ, तब उसका ज्ञान हुआ। आहाहा! शास्त्र से जाना, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! जिस ज्ञान की परिणति में ज्ञायक ज्ञात हुआ, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। जिस श्रद्धा में पूरा भगवान उसकी पाचनशक्ति श्रद्धा की इतनी है। जैसे अग्नि में पाचक शक्ति है कि चाहे जितने अनाज को पका दे। इसी प्रकार श्रद्धा की इतनी पाचन शक्ति है कि द्रव्य को स्पर्श किये बिना, छुए बिना, वह पूर्ण अनन्त गुण के रूप को श्रद्धा कर ले, जान ले, मान ले। आहाहा! भगवान! ऐसा तू है, हों! उस महत्ता को हीन न होने दे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वीतरागभाव परमानन्दरूप एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप...** आहाहा! **अमृत के रस के स्वाद से...** उस अमृत के रस के स्वादरूप आत्मा परिणमता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और उसमें ऐसा कहा है न कि सर्व गुणांश, वह समकित, ऐसा कहा न? भाई! सर्व गुणांश, वह समकित। श्रीमद् ने (ऐसा कहा) और अपने यहाँ रहस्यपूर्ण चिट्ठी में (ऐसा आता है), चौथे गुणस्थान में ज्ञानादि एकदेश सर्व प्रगट हो जाते हैं। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। केवली को सर्व गुण पूर्ण प्रगट होते हैं। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। देवीलालजी! ऐसी बातें हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल ११, रविवार
दिनांक-२४-१०-१९७६, गाथा-१८ से २२, प्रवचन-११३

परमात्मप्रकाश १८वीं गाथा। यहाँ तक आया है। नित्य। नित्य तक आया है न? पहले कहा था कि आत्मा मूर्तरहित है, ऐसा कहा था। यह सब आत्मा के विशेषण हैं न। भगवान आत्मा मूर्तरहित है, उसे अमूर्त परिणति से देख। ज्ञानमय है। भगवान आत्मा तो ज्ञानमय है। सवेरे कहा था न? यह प्रकाश जो है, वह अज्ञान है। सूर्य, चन्द्र आदि का जो प्रकाश है, उसमें ज्ञान नहीं। उस प्रकाश का प्रकाशित करनेवाला जो है, वह प्रकाश चैतन्यप्रकाश है। समझ में आया? अरे! यह प्रकाश जलहल ज्योति, चन्द्र की, सूर्य की, नक्षत्र की, तारा की, दीपक की, बिजली की। आहाहा!

भाई! जब आत्मा में राग है, वह भी अज्ञान है, अन्धकार है। उसमें प्रकाश नहीं, आत्मा की किरण नहीं। आहाहा! इसलिए राग को जहाँ अन्धकार कहा या अज्ञान कहा तो फिर यह बाह्य प्रकाशित करना है, वह तो अज्ञान है। आहाहा! उस अज्ञान का प्रकाशित करनेवाला भगवान चैतन्य प्रकाश, वह इस प्रकाश से भिन्न है। जैसे राग से भिन्न है, वैसे यह सब चन्द्र-सूर्य के प्रकाश, सबसे (भिन्न है)। भगवान तीर्थंकर को भामण्डल होता है। भा-प्रकाश का मण्डल। वह भी अज्ञान है। सूर्य का प्रकाश होता है न? भगवान के शरीर का तेज तो चन्द्र-सूर्य (की) जिसकी समक्ष कुछ गिनती नहीं। ऐसी आभा। आभा—भा-मण्डल। आहाहा! वह भी अज्ञान है। उसमें ज्ञान नहीं—उसमें आत्मा नहीं। आहाहा! आत्मा तो ज्ञानमय है। ऐसा कहा न? आहाहा! वह तो प्रकाश की मूर्ति, ज्ञानप्रकाश की मूर्ति है। उसे तो ज्ञानप्रकाश के प्रकाश से देख, ऐसा कहते हैं। राग के अन्धकार से या इस प्रकाश के प्रकाश से वह नहीं ज्ञात होगा। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानमय है। पश्चात् परमानन्दस्वभाव है, वहाँ ऐसा कहा था कि भगवान परमानन्दस्वभाव, उसे वीतरागी आनन्द के स्वाद की परिणति से देख। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या चलती है।

सम्यग्दर्शन, वह सुप्रभात है। सुप्रभात उसे कहा है न? समयसार नाटक में सुप्रभात सम्यग्दर्शन को कहा है। अर्थ में कलशटीका में केवलज्ञान को सुप्रभात कहा

है। केवलज्ञान और केवलदर्शन जलहल ज्योति, उसे सुप्रभात कहा है। समयसार नाटक में सम्यग्दर्शन को सुप्रभात कहा है। उस सुप्रभात की व्याख्या में। आहाहा!

जो प्रकाश भगवान आत्मा चैतन्य का नूर और अतीन्द्रिय आनन्द का प्रवाह का ध्रुव प्रवाह, ध्रुव प्रवाह। वह क्या? अतीन्द्रिय आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... ऐसा ध्रुव प्रवाह है। समझ में आया? अरे! ऐसी व्याख्या। ध्रुव और प्रवाह। ध्रुव-ध्रुव रहता है न ऐसा का ऐसा? उसे शास्त्र में प्रवाह कहा है। ध्रुव प्रवाह। जैसे वह पानी के पूर का प्रवाह ऐसे जाता है, यह ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसे परमानन्दस्वभाव की ध्रुवता को... आहाहा! उसे रागरहित अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादवाली दशा से जान। आहाहा! ऐसी बात है। नित्य का आया। नित्य का टंकोत्कीर्ण का आया। सुघट घाट ज्ञायक एक स्वभाव नित्य है। आया न यहाँ तक? अर्थ में है यहाँ तक।

अब निरंजन की व्याख्या चलती है। भगवान आत्मा निरंजन है। अर्थात्? मिथ्यात्व रागादि भाव जो अंजन है... आहाहा! मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, वह अंजन—मैल है। उससे रहित वह निरंजन है। आहाहा! है न अपने १८वाँ? १८वें की अन्तिम तीन लाईन। निरंजन की व्याख्या चलती है। मूर्तरहित की हो गयी, ज्ञानमय की हो गयी, परमानन्द की हो गयी और नित्य की हो गयी। आहाहा! निरंजन की चलती है। आहाहा! भगवान आत्मा निरंजन है अर्थात्? मिथ्यात्व—विपरीत मान्यता, जो पुण्य वह धर्म है, पाप में मजा है, बाहर की आकर्षण की चीज़ें जो हैं, उनमें कहीं रुचि का भाग पड़ा है, वह सब मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

मिथ्यात्व रागादिरूप अंजन से... वह मैल है। उससे **रहित निरंजन है। ऐसी आत्मा को तू भलीभाँति जान,...** अर्थात् कि निरंजन को निरंजन परिणति से जान। आहाहा! मिथ्यात्व और रागादि अंजन-मैल है और भगवान उससे रहित निरंजन है। तो वह निरंजन ज्ञात कैसे हो? कि सम्यग्दर्शन और वीतरागी परिणति से निरंजन ज्ञात होता है। आहाहा! उसका नाम सुप्रभात कहा जाता है। आहाहा! भगवान प्रभात-भोर होकर प्रभात हुआ। आहाहा! अन्दर आत्मा का आनन्द और ज्ञानस्वभाव, जो मिथ्यात्व और राग के भाव से निरंजन है, उसे मिथ्यात्वरहित जो सम्यग्दर्शन, रागरहित जो वीतरागी परिणति, ऐसी जो निरंजन दशा, निरंजन दशा, उस द्वारा निरंजन को जान। ऐसी बात है।

है? **ऐसी आत्मा को तू भलीभाँति जान,...** ऐसे आत्मा को, ऐसा आत्मा है, उसे भलीभाँति जान। ऐसा कहा न? भलीभाँति कब ज्ञात हुआ कहलाये? कि वह परिणति निर्मल होकर जाने तब। आहाहा! समझ में आया?

जो सब पदार्थों में उत्कृष्ट है। सब पदार्थ में यह भगवान आत्मा ही उत्कृष्ट है। आहाहा! उससे कोई उत्कृष्ट चीज़ जगत में नहीं है। आहाहा! सर्वोत्कृष्ट भगवान महान पदार्थ। प्रवचनसार की १९२वीं गाथा में कहा है। अतीन्द्रिय महान पदार्थ है वह। अतीन्द्रिय महान वस्तु है, वस्तु है। ध्रुव है, नित्यानन्द प्रभु है, उसे भलीभाँति जान। आहाहा! वह सबमें उत्कृष्ट है। **इन गुणों से मण्डित शुद्ध आत्मा ही उपादेय है,...** ऐसे गुणों से सहित शुद्धात्मा उपादेय है। समझ में आया? **और सब तजने योग्य हैं।** दूसरी बात कहें तो वह बात ३६वीं गाथा में आ गयी है कि जिसे आत्मा उपादेय है, उसे रागादि विकल्प, वह हेय है। समझ में आया? और जिसे रागादि उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! ३६वीं गाथा है। ३६-३६। अर्थ में साधारण किया है। पाठ में ऐसा है। अर्थ में मूढ़ आत्मा कहा है। टीका में ऐसा नहीं है। टीका में अन्यत्र जीव को हेय है, ऐसा कहा है। रागादि हेय है, वह तो बहुत जगह आता है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा। लोगों को यह बात कठिन पड़ती है। ऐसा जो राग है, वह हेय है। चैतन्य के उपादेय के समक्ष वह हेय है। सम्यग्दृष्टि में निर्मल परिणति द्वारा वह उपादेय ग्रहण किया, उसे राग हेय हो गया। और जिसने राग को उपादेय गिना, उसे भगवान वीतरागस्वरूपी आत्मा हेय हो गया। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात भारी कठिन। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा का राग वह भी जो उपादेय माने, उसे भगवान हेय हो गया। कहो, समझ में आया? लोगों को यह कठिन पड़ता है।

सब तजने योग्य हैं। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य के अतिरिक्त रागादि भाव और एक समय की पर्याय भी दृष्टि में से तो हेय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो दृष्टि का विषय उपादेय है, पूरा आत्मा उपादेय (होता है), वह पर्याय भी लक्ष्य करे, वह पर्याय हेय है। आहाहा! समझ में आया? यह नियमसार की ३८ गाथा में कहा नहीं? कि पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सभी पर्यायें नाशवान हैं। केवलज्ञान भी नाशवान है। आहाहा! पर्याय है न? अविनाशी भगवान उस पर्याय से भिन्न है।

आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, उसे एक ओर सुप्रभात कहना। एक ओर उसके कारण को—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सुप्रभात कहना, एक ओर उस सुप्रभात की पर्याय को हेय कहना। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा! बापू! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! आहाहा! केवलज्ञान और संवर, निर्जरा मोक्ष का मार्ग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मिथ्यात्वरहित, वह परिणति भी (हेय है)। अभी तो पुण्य हेय मानने में इसे पसीना उतरता है।

मुमुक्षु : उसमें तकरार करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तकरार करता है। आहाहा! शुभभाव हेय? और शुभभाव से आत्मा (प्राप्त) नहीं होता? एकान्त है। अरे! भगवान! सुन न नाथ! तेरा अनादर होता है उसमें। तू भगवानस्वरूप है वह राग की उपादेयबुद्धि में, भगवान! तेरा हेयपना (हो जाता है)। तू नहीं... नहीं... तू नहीं, ऐसा हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसमें यह बाहर के भभका, शरीर, वस्त्र और गहने, मुर्दे को शृंगार करे। गहने (पहने) और टीका तिलक करे। यहाँ लौंग और यह यहाँ, और नाक में फूल। आदमी कान में फूल डालता है। अपने भगवानदास सेठ नहीं? भगवानदास सेठ। हमारे गांडाभाई डालते थे। फावाभाई नहीं? हमारे धीरुभाई फावाभाई थे न? मनहर आया नहीं? मनसुख! कल आयेगा। हमारे फावाभाई का पुत्र है न, मनहर।

मुमुक्षु : मैं छोटा था, तब पहनता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! ठीक! यह होते हैं कितने ही। कान में छिद्र करावे न? कान में छिद्र करावे। हमारे वे मनहर के पिता फावाभाई थे। मनहर के पास अभी बहुत पैसे हो गये हैं। ६० लाख। उनके पिता और सब थे समझने जैसे थे। परन्तु वह तो पुण्य के कारण से है। वह कहीं कोई बुद्धि के कारण से नहीं। ऐसा होगा न? मनसुख!

मुमुक्षु : आपके पास तो ऐसा ही कहा जाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह लड़के तो अब हैं। मनसुख और वह तो सब रुचि से ... आहाहा! इनके पिता की अपेक्षा... आहाहा! अरे! प्रभु! क्या पैसा? यहाँ तो जहाँ राग को हेय कहा। वहाँ राग का फल जो पैसा, वह तो हेय में हेय है। आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहना है कि जिसे केवलज्ञान की पर्याय, जिसे अपने सुप्रभात सिद्ध करना है। वह प्रभात आया न यहाँ ? **मिथ्यात्व रागादिरूप अंजन से रहित निरंजन...** भगवान को सम्यग्दर्शन से पहिचानना, वह सुप्रभात है। यह अधिकार मिथ्यात्वरहित का ही आया। समझ में आया ? सम्यक् श्रद्धा द्वारा ऐसे परमात्मा का भरोसा प्रगट करना। आहाहा! अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता। जिसमें से केवलज्ञान की पर्याय और अनन्त आनन्द की पर्याय प्रगट हो, अनन्त काल तक, तो भी जिसकी ज्ञान और आनन्द की खान ऐसा भगवान कम हो, ऐसा नहीं। उस खान में कम हो, ऐसा नहीं, इतनी खान है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी जो सम्यक्, मिथ्यात्वरहित सम्यग्दर्शन से उसे जानना, मानना, वह भी एक सुप्रभात है। उसे नया वर्ष लगा, उसे काल बदला। उसे काल बदला। राग को अपना मानता था, तब वह दुष्काल था। आहाहा! पर्याय में दुष्काल था। आहाहा!

मुमुक्षु : राग को मानता था वह तो आप कहते हो। उसे कहाँ खबर है कि मैं राग को मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले उसे खबर नहीं परन्तु मानता है न वह ? खबर न हो परन्तु मानता है। यदि न मानता हो तो उसे आत्मा का आनन्द आना चाहिए। इतना तो इसे जँचता है या नहीं ? कि राग को जो आदरणीय मानता है, उसे आनन्द नहीं है। उसमें आनन्द नहीं, दु:ख है, इतना तो इसे ख्याल में आना चाहिए न ? आहाहा! और जिसने राग और मिथ्यात्व को छोड़कर... आहाहा! पूर्णानन्द की सम्यक् प्रतीति और रागरहित स्वरूपाचरण (प्रगट किये), वह चौथे की अपेक्षा से। अनन्तानुबन्धी गया तो स्वरूपाचरण हुआ, ऐसी दृष्टि और स्थिरता द्वारा वह आत्मा निरंजन ज्ञात हुआ, ऐसा है। आहाहा! उसे यहाँ नया वर्ष लगा। वह नया काल लगा। सादि अनन्त सिद्ध होने की सगाई की।

'सगपण समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवार सुगाढी' आनन्दघनजी में आता है। आनन्दघनजी का वांचा है न सब। 'समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवार सुगाढी।' जितना परिवार अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसके साथ समकित के साथ सगाई की सबने। आहाहा! अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, उसे जिसने सम्यक् प्रतीति में लिया, उसने अनन्त गुण के परिवार के साथ सगाई की। आहाहा! समझ में आया ?

फूलचन्दजी! यह सब बातें दूसरी-दूसरी है। आहाहा! और जिसे इस सम्यग्दर्शन का प्रभात उगा, दूज उगे, उसे पूर्णिमा हुए बिना रहती नहीं। इसी प्रकार जिसे भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन में पूर्णानन्द की प्रतीति पचना, पाचक हो गया, सम्यग्दर्शन ने पूर्ण को पाचक किया। पचाया, माना। अपूर्ण पर्याय में पूर्णानन्द को पचाया। समझ में आया? आहाहा! इसलिए उसे प्रभात उगा। वह दूज हुई, उसे पूर्णिमा अर्थात् केवलज्ञान होकर ही रहेगा।

श्रीमद् में तो ऐसा आता है कि यदि एक बार समकित हुआ, फिर तू इनकार कर कि केवलज्ञान नहीं हो, फिर वह नहीं चलेगा। आहाहा! दूज उगी, उसे पूर्णिमा न हो, ऐसा कोई विघ्न बीच में करे, (ऐसा) नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात देखी? क्या कहा यह? जिसने भगवान आत्मा को सम्यग्दर्शन से प्रतीत किया, जाना, उसे केवलज्ञान लेने में कोई विघ्न नहीं हो सकता। जैसे दूज उगी और पूर्णिमा हो, उसमें विघ्न कभी नहीं होता। तीन काल-तीन लोक में दूज उगी, उसकी पूर्णिमा होगी ही। पड़ने-फड़ने की बात यहाँ नहीं है। आहाहा! वस्तु जो भगवान आत्मा निरंजन निराकार, उसे निरंजन निराकार की निर्मल प्रतीति द्वारा स्वीकार किया, सत्कार किया, आदर किया, उपादेय हुआ, उसे केवलज्ञान होने में बीच में विघ्न नहीं है। वह केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। फिर वह महाप्रभात हो गया। आहाहा! एक समय में केवलज्ञान जलहल ज्योति... जलहल ज्योति। जिसे—इस प्रकाश को अज्ञान कहा। आहाहा! जलहल ज्योति सूर्यप्रकाश वह अज्ञान है, वह प्रकाश अज्ञान है। उस प्रकाश में ज्ञान कहाँ है? समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा की ओर सन्मुख होकर जहाँ उसे स्वीकार किया, वहाँ चैतन्य का प्रकाश, ज्ञानमय प्रकाश प्रगट हुआ। यह तो अज्ञानमय प्रकाश है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य की ज्योति जलहल ज्योति। श्रीमद् में यह शब्द आता है। जलहल ज्योति भगवान। आहाहा! उसमें आता है न ज्योति? 'स्वयं ज्योति सुखधाम'। यह आता है न? 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन।' उस चैतन्यघन में असंख्य प्रदेश डाले हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं यह होते नहीं। शुद्ध-पवित्र है, बुद्ध-ज्ञान का पिण्ड है और चैतन्यघन है—असंख्य प्रदेशी है। आहाहा! और वह असंख्य प्रदेशी क्षेत्र ऐसा है कि जिसमें आनन्द के ही अंकुर फूटते हैं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा की प्रतीति करके, अनुभव

करने से उन असंख्य प्रदेशों में आनन्द पके ऐसा वह क्षेत्र है। दुःख पके ऐसा वह क्षेत्र नहीं। आहाहा! तेरा क्षेत्र ऐसा है, तेरा भाव ऐसा है। असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है द्रव्य का। और तेरा भाव जो है, वह अनन्त गुणों का पिण्ड है। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसने आत्मा के गीत सुने नहीं। भगवान कौन है अन्दर? आहाहा!

कहते हैं कि जिसे मिथ्यात्व और राग के अंजन से रहित... आहाहा! निरंजन भगवान को जिसने पहिचाना, श्रद्धा और ज्ञान में वह वस्तु आ गयी। वस्तु आ गयी अर्थात्? वस्तु के स्वरूप का भाव आ गया। वस्तु भले वस्तु में रह गयी। समझ में आया? परन्तु जितना वस्तु का और गुण का सामर्थ्य है, उतना श्रद्धा की पर्याय में सब आ गया। आहाहा! समझ में आया? उसे यहाँ दिन लगा, ऐसा कहा। वर्ष लगना उसे कहा, बापू! आहाहा! बाकी सब रात्रि अन्धकार लगा है। यह नूतन वर्ष की बौनी है। आहाहा!

और सब तजने योग्य हैं। अब जरा २२ में लेंगे। २२, वह पुद्गल का अधिकार है न? जरा २२ लो। २२।

गाथा - २२

अथजीवपुद्गलकालद्रव्याणि मुक्त्वा शेषधर्माधर्माकाशान्येकद्रव्याणीति निरूपयति-

१४५) जीउ वि पुग्गलु कालु जिय ए मेल्लेविणु दव्व।
इयर अखंड वियाणि तुहुँ अप्प-पएसहिं सव्व।।२२।।

जीवोऽपि पुद्गलः कालः जीव एतानि मुक्त्वा द्रव्याणि।
इतराणि अखण्डानि विजानीहि त्वं आत्मप्रदेशैः सर्वाणि।।२२।।

जीउ वि इत्यादि। जीउ वि जीवोऽपि पुग्गलु पुद्गलः कालु कालः जिय हे जीव ए मेल्लेविणु एतानि मुक्त्वा दव्व द्रव्याणि इयर इतराणि धर्माधर्माकाशानि अखंड अखण्डद्रव्याणि वियाणि विजानीहि तुहुं त्वं हे प्रभाकरभट्ट। कैः कृत्वाखण्डानि विजानीहि। अप्पपएसहिं आत्मप्रदेशैः। कतिसंख्योपेतानि सव्व सर्वाणि इति। तथाहि। जीवद्रव्याणि पृथक् पृथक् जीवद्रव्यगण-नेनानन्तसंख्यानि पुद्गलद्रव्याणि तेभ्योऽप्यनन्तगुणानि भवन्ति। धर्माधर्माकाशानि पुनरेकद्रव्याण्येवेति। अत्र जीवद्रव्यमेवोपादेयं तत्रापि यद्यपि शुद्धनिश्चयेन शक्त्यपेक्षया सर्वे जीवा उपादेयास्तथापि व्यक्त्यपेक्षया पञ्च परमेष्ठिन एव, तेष्वपि मध्ये विशेषेणार्हत्सिद्धा एव तयोरपि मध्ये सिद्धा एव, परमार्थेन तु मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामनिवृत्तिकाले स्वशुद्धात्मैवोपादेय इत्युपादेयपरंपरा ज्ञातव्येति भावार्थः ।।२२।।

आगे जीव, पुद्गल, काल ये तीन द्रव्य अनेक हैं, और धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक हैं, ऐसा कहते हैं। -

जीव काल एवं पुद्गल बिन धर्म अधर्म और आकाश।
रहें अखण्डित निज प्रदेश में और सर्व व्यापी पहचान।।२२।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [त्वं] तू [जीवः अपि] जीव और [पुद्गलः] पुद्गल, [कालः] काल [एतानि द्रव्याणि] इन तीन द्रव्यों को [मुक्त्वा] छोड़कर [इतराणि] दूसरे धर्म, अधर्म, आकाश [सर्वाणि] ये सब तीन द्रव्य [आत्मप्रदेशैः] अपने प्रदेशों से [अखंडानि] अखंडित हैं।

भावार्थ :- जीवद्रव्य जुदा जुदा जीवों की गणना से अनंत हैं, पुद्गलद्रव्य उससे भी अनंतगुणे हैं, कालद्रव्याणु असंख्यात हैं, धर्मद्रव्य एक है, और वह लोकव्यापी है, अधर्मद्रव्य भी एक है, और वह लोकव्यापी है, ये दोनों द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं, और

आकाशद्रव्य अलोक अपेक्षा अनंतप्रदेशी है, तथा लोक अपेक्षा असंख्यातप्रदेशी हैं। ये सब द्रव्य अपने-अपने प्रदेशोंकर सहित हैं, किसी के प्रदेश किसी से नहीं मिलते। इन छहों द्रव्यों में जीव ही उपादेय है। यद्यपि शुद्ध निश्चयसे शक्ति की अपेक्षा सभी जीव उपादेय हैं, तो भी व्यक्ति की अपेक्षा पंचपरमेष्ठी ही उपादेय हैं, उनमें भी अरहंत सिद्ध ही है, उन दोनों में भी सिद्ध ही हैं, और निश्चयनयकर मिथ्यात्वरागादि विभावपरिणाम के अभाव में विशुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा जानना।।२२।।

गाथा-२२ पर प्रवचन

आगे जीव, पुद्गल, काल ये तीन द्रव्य अनेक हैं, और धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक हैं,... ऐसा कहकर अन्दर आत्मा की बात करेंगे।

१४५) जीउ वि पुग्गलु कालु जिय ए मेल्लेविणु दव्व।
इयर अखंड वियाणि तुहुँ अप्प-पएसहिँ सव्व।।२२।।

भावार्थ:—जीवद्रव्य जुदा-जुदा जीवों की गणना से अनन्त हैं,... अर्थात् कोई ऐसा कहता है कि एक ही व्यापक जीव है, उसे यहाँ उत्थापित किया। एक ही सर्वव्यापक आत्मा (इस मान्यता का खण्डन किया)। समयसार की शैली से कितनों को ऐसा लगता है कि यह वेदान्त के ढाला में समयसार को ढाला है। वह नाथुराम प्रेमी थे। नाथुराम प्रेमी न? मुम्बई में थे। नाथुराम प्रेमी दिगम्बर पण्डित, वे ऐसा कहते थे। उन्हें खबर नहीं, बापू! ऐसा कि उस शुद्ध और बुद्ध को केवली, ऐसा आता है न वेदान्त में? अत्यन्त शुद्ध है। एक ही वस्तु है। सर्वव्यापक है। उसके ढाला में ऐसा कि यहाँ ढाला है। क्यों? कि ११वीं गाथा में ऐसा कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है, ऐसा कहा। वेदान्त भी कहता है कि पर्याय नहीं। चन्दुभाई! परन्तु किस अपेक्षा से कहा? पर्यायमात्र नहीं, ऐसा कहा। झूठी है, ऐसा कहा न? असत्यार्थ है, ऐसा कहा न? अभूतार्थ का अर्थ असत्यार्थ है, झूठा है। किस अपेक्षा से? मुख्य को निश्चय, मुख्य वह निश्चय। निश्चय, वह मुख्य ऐसा नहीं। मुख्य वस्तु जो त्रिकाली है, मुख्य है, उसे निश्चय करके सम्यग्दर्शन होता है। इस अपेक्षा से पर्याय की अस्ति है। अनन्त पर्यायें अभूतार्थ—झूठी है, इसका अर्थ गौणरूप से उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। गौण करके उसे झूठी कहा है। अभाव

करके झूठी नहीं कहा। इसलिए वेदान्त के ढाला में ढाला, ऐसा लोग कहते हैं, तुझे खबर नहीं, भाई! वीतरागमार्ग और कुन्दकुन्दाचार्य की शैली कोई अलौकिक है। उन्होंने पर्यायमात्र को झूठी कहा है।

और कोई ऐसा कहता है, अभूतार्थ है परन्तु असत्यार्थ नहीं। ले। अब उसमें अर्थ में कहा है अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ। और जयसेनाचार्य ने तो असत्यार्थ कहा है। परन्तु असत्यार्थ उसे दिक्कत उठती है। पर्याय है न? परन्तु बापू! किस अपेक्षा से असत्यार्थ कही? सम्यग्दर्शन को प्रगट करने में मुख्य को निश्चय कहकर पर्याय को असत्य कहा। पर्यायदृष्टि छुड़ाने के लिये, पर्याय की ओर के झुकाव को छोड़ने के लिये (ऐसा कहा है)। यह प्रयोजन है। आहाहा! प्रयोजन से जीव को मुख्य कहकर निश्चय कहा और पर्याय को मुख्य के साथ गौण करके झूठा कहा। ऐसा लेना चाहिए। ऐसा लिखा है अन्दर। समझ में आया? आहाहा!

मुख्य भगवान आत्मा सर्वोत्कृष्ट, कहा न अभी? वहाँ आ गया न! सर्वोत्कृष्ट प्रभु है न! आहाहा! उसे मुख्य कहकर, वही निश्चय है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि वही सत्य है। आहाहा! और पर्यायें अनन्त हैं, उन्हें गौण कहकर झूठी है, ऐसा कहा है। वस्तु नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? वेदान्त के ढाले में ढाला तो यहाँ तो कहते हैं कि अनन्त जीव है, देख न! द्रव्य अनन्त जीव कहाँ, पुद्गल कहाँ, काल कहाँ। और धर्मास्ति, अधर्मास्ति तो किसी जगह किसी धर्म में है ही नहीं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति तो सर्वज्ञ भगवान ने ही कहा है। एक उन्होंने ही जाना है।

इस जगत में छह द्रव्यों में अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश। यह सर्वज्ञ के सिवाय ऐसे छह द्रव्य कहीं कहे नहीं। समझ में आया? क्योंकि उन्होंने जाने और देखे नहीं। समझ में आया? जैसे श्वेताम्बर कालद्रव्य नहीं मानते। वे पाँच द्रव्य की पर्याय को कालद्रव्य कहते हैं। कालद्रव्य भिन्न है, ऐसा नहीं मानते। इसका अर्थ ऐसा है कि उनकी परिणति शुद्ध हुई नहीं। इससे निमित्त कालद्रव्य होता है, उसे नहीं मानते। यदि काल में—स्वकाल में शुद्ध परिणति हो तो वह परकाल निमित्त होता है, ऐसा साथ में ज्ञान आवे। आहाहा! समझ में आया इसमें? जिसे वह शुद्ध परिणति हुई नहीं—स्वकाल, उसे परकाल

निमित्त है, ऐसी बात उसने उड़ा दी। न्याय समझ में आता है ? यहाँ तो दिगम्बर सन्त तो सुकाल, शुद्ध परिणति है, वह स्वकाल है, तो वह परकाल होता है। वह निमित्त हो तो छह द्रव्यों में असंख्य कालाणु हैं, ऐसा सिद्ध किया है। सूक्ष्म बात है थोड़ी। समझ में आया ?

यहाँ यह कहा। **जीवद्रव्य जुदा-जुदा जीवों की गणना से अनन्त हैं,...** गणना से अनन्त है। जातिरूप से एक है। गिनती करने जाये तो अनन्त-अनन्त है। **पुद्‌गलद्रव्य उससे भी अनन्तगुणे हैं, कालद्रव्याणु असंख्यात हैं,...** देखो ! **धर्मद्रव्य एक है, और वह लोकव्यापी है,...** पूरे लोक में रहा हुआ है। यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। यह सर्वज्ञ सुप्रभात जिसे उगा है, उसने यह देखा है। समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञान, ज्ञेय प्रमाण है—ऐसा आता है न ? भाई ! प्रवचनसार में। ज्ञेय, लोकालोक है। इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान में जो वस्तु है अनन्त, उसका अनन्त यहाँ ज्ञान हुआ है। वह स्वयं से (हुआ है)। उसमें यदि उसका विषय कम कर डाले तो यहाँ ज्ञान कम होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तो न्याय—लॉजिक से तत्त्व है। न्याय समझ में आता है ? इसे ज्ञान में अनन्त विषय जितने द्रव्य हैं, अनन्त विषयरूप से पर है, उसमें से इतने विषय को ज्ञान, ज्ञेय प्रमाण है। वह जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जाननेयोग्य वह ज्ञान पूर्ण है। उस ज्ञेय में यदि कम करे तो उसके ज्ञान का विषय कम (हुआ) तो ज्ञान कम हो गया।

मुमुक्षु : आत्मा भी कम हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा कम हो गया। आहाहा ! क्या शैली परमात्मा की ! आहाहा ! चारों ओर से देखो तो सत्य ही खड़ा होता है। आहाहा !

धर्मास्ति, अधर्मास्ति भी ज्ञान का विषय है, व्यवहार। समझ में आया ? पंचास्तिकाय में पीछे आता है। केवलदर्शन का भी वह विषय है, ऐसा कहा। भले केवलदर्शन सामान्य है। पूरा विषय है। ओहोहो ! उस पूर्ण विषय में से कुछ कम कोई करे तो उसने ज्ञान जाना नहीं और ज्ञान की पूर्णता उसे सिद्ध नहीं होती, पूर्ण होने की प्रतीति नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **ये दोनों द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं,...** वे दो कौन? धर्मास्ति और अधर्मास्ति। **और आकाशद्रव्य अलोक अपेक्षा अनन्त प्रदेशी है,...** अपने ले जाना है अन्यत्र अभी। अनन्त प्रदेशी अनन्त द्रव्य... आहाहा! **लोक अपेक्षा असंख्यातप्रदेशी हैं। ये सब द्रव्य अपने-अपने प्रदेशोंकर सहित हैं,...** अपने-अपने प्रदेशों से सहित है। किसी प्रदेश का उसे कोई कारण है नहीं। आहाहा! **किसी के प्रदेश किसी से नहीं मिलते।** किसी के प्रदेश किसी में मिलते नहीं, मिलावट होती नहीं। आहाहा! अनन्त सिद्ध एक क्षेत्र में रहे, तथापि प्रत्येक सिद्ध के प्रदेश का क्षेत्र व्यापक, अत्यन्त भिन्न है। पाँच सौ धनुष के अन्दर इतने में अनन्त सिद्ध हैं। परन्तु उसमें एक-एक सिद्ध के प्रदेश दूसरे सिद्ध के प्रदेश से अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? और उस क्षेत्र में अनन्त निगोद है। जहाँ सिद्ध भगवान हैं, वहाँ उनके पेट में अनन्त निगोद है। उसके प्रदेश भिन्न है। उसका वह दुःख वेदता है और सिद्ध आत्मा हैं, वे आनन्द वेदते हैं। आहाहा!

एक क्षेत्र में रहे हुए, आकाश के प्रदेश की अपेक्षा से। आहाहा! यह सगे-सम्बन्धी तो पृथक्-पृथक् प्रदेश में है। स्त्री, पुत्र, परिवार। यहाँ तो एक प्रदेश में रहे हुए वे अनन्त निगोद। आहाहा! सिद्ध के जहाँ असंख्य प्रदेश हैं, वहाँ अनन्त निगोद के अनन्त प्रदेश हैं। यद्यपि सिद्ध के असंख्य प्रदेश हैं, वहाँ दूसरे अनन्त सिद्ध हैं। उन प्रत्येक के अनन्त प्रदेश हैं वहाँ। अनन्त सिद्ध होकर इतने क्षेत्र में अनन्त प्रदेश हैं। उसमें निगोद के अनन्त प्रदेश, उसमें ऐसे रहते हैं। आहाहा! तथापि प्रत्येक के प्रदेश भिन्न-भिन्न, प्रत्येक का सुख-दुःख भिन्न-भिन्न। आहाहा! समझ में आया?

भाई ने—सोगानी ने लिया है कि अनन्त निगोद के जीव हैं, वे हमको प्रतीति में हैं। हमको प्रत्यक्ष हो जाओ अब। है न उसमें? एक पृष्ठ में है, उस ओर ऊपर। द्रव्यदृष्टि प्रकाश। आहाहा! यह तो उनकी महिमा गाते हैं कि अनन्त निगोद है, उसकी हमको प्रतीति है, उसका हमको ज्ञान है। हमने माना है। आहाहा! परन्तु कितने अनन्त! परन्तु सब में प्रभु हमको प्रतीति में परोक्ष रीति से है, वह अब ज्ञान में प्रत्यक्ष हो जाओ। इसमें जरा गम्भीरता है।

यहाँ यह कहते हैं। आहाहा! **किसी के प्रदेश किसी से नहीं मिलते। इन छहों**

द्रव्यों में जीव ही उपादेय है। देखो! आया। योगफल अब आया। **छहों द्रव्यों में जीव ही...** एक जीव ही आदरणीय है। **यद्यपि शुद्ध निश्चय से शक्ति की अपेक्षा सभी जीव उपादेय हैं,...** व्यवहार से, हों! वह। शक्ति अपेक्षा से सब साधर्मी भगवान है। अभव्य का आत्मा भी शक्ति अपेक्षा से भगवान है। आहाहा! समझ में आया? इतनी महत्ता अन्दर बैठना, बापू! यह बात... इतनी महत्ता और इतनी चीज़ें अनन्त, अन्त नहीं ऐसी। आहाहा! उसे वह प्रतीति में, विश्वास में निर्विकल्प प्रतीति के अतिरिक्त आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वहाँ तक उसे दखल-दखल कुछ गहरे... गहरे... गहरे... गहरे... भले वाडारूप से माने परन्तु गहरे अन्दर उसका अनन्त का समाधान नहीं होता। आहाहा!

शुद्ध निश्चय से शक्ति की अपेक्षा सभी जीव उपादेय हैं,... यह नूतन वर्ष है। उसमें अनन्त आत्मायें भगवान पूर्ण है, इस अपेक्षा से तो सब उपादेय है। उसकी परिणति निकाल डालो। भगवान आत्मा वह स्त्रीलिंग भी नहीं, नहीं पुरुषलिंग, नहीं मनुष्यलिंग, नहीं तिर्यंचलिंग, नहीं रागमय... आहाहा! नहीं मिथ्यात्वमय। वस्तु में मिथ्यात्व कैसा? वस्तु जो भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, वह शुद्ध निश्चय से शक्ति अपेक्षा से तो वह उपादेय है। स्व की अपेक्षा से निश्चय, पर की अपेक्षा से उपादेय। पर की अपेक्षा की अपेक्षा चलती है। पर में जीव के अनन्त जीव, वे व्यवहार से उपादेय हैं। निश्चय से तो स्व उपादेय है, ऐसा कहेंगे। परन्तु व्यवहार के उपादेय में भी हम इन अनन्त जीवों को डालते हैं। आहाहा! समझ में आया? देवजीभाई! मार्ग ऐसा, बापू!

यह तो तीन लोक के नाथ... जिनकी एक समय में लोकालोक की अस्ति है, इसलिए जाने, ऐसा नहीं, ऐसी पर्याय का सामर्थ्य है। और ज्ञेय प्रमाण उस ज्ञान की महत्ता है। ज्ञेय अनन्त, उनके गुण अनन्त, उनके प्रदेश प्रत्येक के भले असंख्य और आकाश के अनन्त (प्रदेश), ऐसी जो अनन्त महिमावाली चीज़, अनन्त जिसका अन्त नहीं, इतने प्रदेश को भी पर्याय मान लेती है। पररूप से जानती है उसे। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि ज्ञान का स्वपरप्रकाशक स्वभाव प्रगट हुआ, उसमें स्व को जाना, ऐसा पर को भी जानने का अपने सामर्थ्य से उसे जानता है। उसे अर्थात् अपने को। आहाहा!

शुद्ध निश्चय से... यह नूतन वर्ष है न! यह सब आत्मा को भगवान गिनकर उपादेय गिना। जगत में कोई वेरी या दुश्मन है नहीं, मित्र या सज्जन कोई है नहीं। वह तो सब व्यवहार की, पर्याय की अपेक्षा से बातें! द्रव्य की अपेक्षा से... आहाहा! जितने भगवान आत्माओं की संख्या है, वे सब साधर्मीरूप से शक्ति अपेक्षा से तो परमात्मा हैं। है? **सभी जीव उपादेय है,...**

रात्रि में एक कहा था कि भाई! यह पैसेवाले बहुत होते हैं, वे पशु में जाये। इसका अर्थ कि जिसे धर्म नहीं और जिसे सत्समागम में शास्त्र का श्रवण-मनन में दो-चार घण्टे व्यतीत करना चाहिए, वह समय व्यतीत नहीं करता, इसलिए उसे भी पुण्य नहीं, भाई! धर्म तो एक ओर रहा। यह बात है। आहाहा! जो भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी सम्यग्दर्शन की प्रतीतिरूपी धर्म तो नहीं और वह चौबीस घण्टे पैसे में हा... हा... हा... होली सुलगा ही करती है उसमें। पूनमभाई आये हैं या नहीं? गये? बस! घड़ीक में आकर चले गये। आहाहा! इस पैसे की होली में पूरे दिन पाप अकेला पाप, हों! धर्म तो नहीं और अकेला पाप। और पुण्य भी नहीं। हमेशा दो-चार घण्टे शास्त्र श्रवण, वाँचन, देवदर्शन, यह सुनना, सत्समागम करना, ऐसा जिसे दो-चार घण्टे चौबीस घण्टे में नहीं है। ऐई! उसे तो अकेला पाप है। और वह मध्यम पाप है, इसलिए तिर्यंच में जानेवाले हैं।

मुमुक्षु : एक सिद्धान्त ऐसा है कि जवानी में कमा लेना और वृद्धापन में धर्म करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर जायेगा वृद्धपन में होगा। यह वीरजीभाई ने एक बार मुझे कहा, वहाँ। वह कहा था न मुझे। वहाँ कहा था एक बार। वीरजीभाई ऐसा कहते थे। अभी कमा लें। परन्तु अभी कमाये कौन? और वृद्धावस्था किसकी और आयेगी या नहीं, इसकी खबर नहीं। ऐई! शान्तिभाई! यह वहाँ अन्तिम वर्ष। (संवत्) १९९०-९०।

मुमुक्षु : सोना की नदी बहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो और हमारे भाई कहते हैं। नरोत्तम का लड़का नहीं?

वावडीवाला। नरोत्तम बड़े का लड़का शान्ति है न? ऐसा कि पैसा कमा लें। अब धूल भी नहीं, सुन न। आहाहा! बहुत लोग हैं ऐसे। वीरजीभाई तब १९९० में आये थे। वढवाण थे न जब? १९९० में अभी सम्प्रदाय में थे। बहुत लोग, तीन-तीन हजार लोग सभा में। १९९० के वर्ष में। वढवाण। ३४-३४ आर्जिका और समवसरण जैसा ऊँचा किया हुआ सब। लोग बहुत थे न? पाट वह विवाह का पाट होता है न? वह पाट लगाकर ऊँचा किया हुआ। उसमें वे वीरजीभाई आये हुए। १९९० के वर्ष की बात है। उस समय एकान्त में दूसरी बात है। उन्होंने इतना कहा। मैंने कहा, यह वह क्या है? कहे, अभी कमा लें। फिर... अभी अर्थात् क्या? पाप अभी कर लें, फिर पुण्य धर्म करेंगे। आहाहा!

इष्टोपदेश में तो यहाँ तक कहा है कि कोई मनुष्य कादव चोपड़कर फिर कुँआ खोदे और पानी से स्नान करूँगा। उसी प्रकार पहले पैसा कमा लें और फिर अपने दान करेंगे। इष्टोपदेश में ऐसा है। दान करने के लिये पाप करे तो उसका अर्थ हुआ फिर वह तो पुण्य की बाद बात है। अभी पहले पैसा पैदा करें, मैल लगाये शरीर को, फिर कुँआ खोदकर पानी निकालकर स्नान करूँगा। आहाहा! ऐई! बलुभाई! यह तो बात सब अलग प्रकार की है। इष्टोपदेश में आया है। गाथा में टीका में लिखा है। आहाहा! अपने दान देना है, इसलिए हम बहुत कमायें, फिर दान करेंगे। वह शरीर को कादव चोपड़कर, कुँआ खोदकर पानी निकालने जैसा है। कब निकले पानी और क्या हो, उसका कुछ ठिकाना है नहीं। समझ में आया? भाई! वीतराग का मार्ग पूरी दुनिया से अलग प्रकार है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **शुद्ध निश्चय से शक्ति की अपेक्षा सभी जीव उपादेय हैं,...** परन्तु वह जीव पर है न? इसलिए व्यवहार से सर्व जीव उपादेय है, ऐसा कहा है। भाई! उसमें शब्द यह नहीं परन्तु ऐसा है। समझ में आया? सर्व जीव अर्थात् अपने से भिन्न हैं न, इसलिए व्यवहार है। आहाहा! अब स्व को—आत्मा को उपादेय अन्त में लेंगे। **शुद्ध निश्चय से शक्ति की अपेक्षा सभी जीव उपादेय हैं,...** अब व्यक्ति की अपेक्षा प्रगट पर्याय जिसकी निर्मल हुई है। यह तो शक्तिरूप सभी भगवान आत्मायें हैं। उस शक्ति की अपेक्षा से उपादेय व्यवहार से अपनी अपेक्षा से पर है तो व्यवहार कहने में

आता है। व्यवहार से सब आत्मायें उपादेय है। शक्ति और शुद्धता। वस्तु भगवान शक्तिस्वरूप उसका है। परमात्मस्वरूप ही वह है। यह परमात्मप्रकाश है न! व्यक्ति की अपेक्षा। व्यक्ति अर्थात् प्रगटता। जिसे वे गुण प्रगट हुए हैं, इस अपेक्षा से **पंच परमेष्ठी ही उपादेय हैं,...** पाँच परमेश्वर उपादेय है, वह व्यवहार से। परद्रव्य है न? आहाहा! समझ में आया? ऐसी रुचि... मार्ग बैठे नहीं।

इसलिए वहाँ कहा न? जिसे अकेला परद्रव्य के प्रति प्रेम की श्रद्धा का राग है, उसे जो उपादेय मानता है, उसे भगवान हेय हो जाता है। देखा न यह? ३६ गाथा। अर्थ में जरा मूढ़ता, ऐसा लिया है। टीका में ऐसा नहीं। टीका में आत्मा हेय है, ऐसा लिया है। टीका में ऐसा है। व्याख्या हो गयी है यहाँ। ज्ञानी को राग हेय है। तब अज्ञानी को आत्मा हेय है। दोनों में दिशा फेर है और दोनों की दशा में अन्तर है। दो की दिशा में अन्तर है लक्ष्य में, इसलिए दशा में अन्तर है। आहाहा! धर्मी को भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय स्वाद के रसीले जीव को, अतीन्द्रिय आनन्द के रसीले धर्मी को अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ एक ही उपादेय है। आहाहा! और राग के प्रेमियों को, राग के रसिकों को परद्रव्य उपादेय है। भगवान हेय है। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। समझ में आया? आहाहा!

व्यक्ति की अपेक्षा पंच परमेष्ठी ही उपादेय हैं, उनमें भी अरहन्त सिद्ध ही हैं,... अब पाँच में से दो निकाले। पंच परमेष्ठी—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—ये पाँच व्यवहार से उपादेय हैं। उस अनन्त की अपेक्षा से, व्यक्ति की अपेक्षा से। **उनमें भी अरहन्त सिद्ध ही हैं, उन दोनों में भी सिद्ध ही हैं...** एक। दो में से एक निकाला। यह सुप्रभात की (बौनी)।

मुमुक्षु : बहुत सरस प्रकाश किया आपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। आहाहा!

और निश्चयनयकर... आहाहा! अब निश्चय से आया। वह व्यवहार कहा था। पंच परमेष्ठी उपादेय है, यह व्यवहार। उसमें से अरिहन्त-सिद्ध, यह व्यवहार, उसमें से अकेले सिद्ध, यह व्यवहार। पर है न? आहाहा! पंचास्तिकाय में तो ऐसा कहा है कि सिद्धभक्ति अर्थात् अपनी भक्ति। पीछे गाथा है। ज्ञानी सिद्धभक्ति करते हैं। अर्थात् कि

सिद्ध अर्थात् अपनी। पर की नहीं। पर की बात यहाँ नहीं। आहाहा! परसिद्ध की भक्ति व्यवहार में, पुण्य में जाती है। परसिद्ध की भक्ति, वह पुण्य में जाती है। स्वसिद्ध की भक्ति पवित्रता में आती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

निश्चयनयकर मिथ्यात्वरागादि विभावपरिणाम के अभाव में... भाषा क्या है? कि कब निश्चय आत्मा उपादेय है? कब? किस काल में? आहाहा! **निश्चयनयकर मिथ्यात्वरागादि विभावपरिणाम के अभाव में...** आहाहा! समझ में आया? विपरीत मान्यता—पर में सुख है, पुण्य से धर्म होता है, पर में मजा है, ऐसी लालचवाले लोलुपियों को मिथ्यादृष्टि कहा है। वे आत्मा को नहीं देख सकते।

मुमुक्षु : अधिक भाग ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यह ही है। उसकी तो बात चलती है सब। आत्मा के अतिरिक्त राग से लेकर परपदार्थ में लोलुपी, लालचवाले अभिलाषी, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। उनसे भगवान आत्मा ज्ञात नहीं होता। उसे तो जिसमें लोलुपता है, वह उसे ज्ञात होगा। अज्ञान में। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयनयकर मिथ्यात्वरागादि...** अर्थात् राग-द्वेषादि विषय-वासना। ऐसे **विभावपरिणाम के...** देखो! मिथ्यात्व और रागादि सबको विभावपरिणाम कहा। वह व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह विभावपरिणाम है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहना है कि विभावपरिणाम से रहित हो, उसे आत्मा ज्ञात होगा। उसे आत्मा उपादेय होगा। आहाहा! यह बड़ी बातें। वे तो चिल्लाहट मचाये चिल्लाहट। व्यवहार से होता है, ऐसा न माने तो एकान्त है रे, एकान्त है। ऐसा करते हैं। क्या हो? बापू! प्रभु! मार्ग यह है, वहाँ दूसरा क्या करना? जिस पंथ से मार्ग कटता है, उससे कठोर आगे लगे, इससे कहीं मार्ग दूसरा हो जाता है, उसे बताया जाये? समझ में आया?

निश्चयनय से। अर्थात् यहाँ निश्चय डाला न? उसमें शुद्ध निश्चय से कहा था, वह तो उसकी शक्ति की अपेक्षा से कहा था। शुद्धनिश्चय से शक्ति... वह तो उसकी शक्ति की अपेक्षा से शुद्धनिश्चय पहले लागू पड़ा। अपनी अपेक्षा से वह शुद्धनिश्चय नहीं। समझ में आया? पहले में जो (कहा कि) 'शुद्धनिश्चय से शक्ति की अपेक्षा...' अर्थात् शुद्धनय से परशक्ति की अपेक्षा जीव को उपादेय है, ऐसा नहीं। परन्तु शुद्धनिश्चय

से उसकी शक्ति की अपेक्षा से जीव। ऐसे जीव ऐसे हैं। शुद्धनिश्चय की अपेक्षा से सभी जीव शुद्ध हैं, ऐसा वहाँ लेना है। समझ में आया? ऐसा धर्म कठोर। दया पालना या व्रत-अपवास करना, एकदम सीधा-सट्ट था। उसमें आया कि यह धर्म नहीं। आहाहा! बापू! तेरे कल्याण का मार्ग कोई दूसरे प्रकार का है। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ शुद्धनिश्चय से। यहाँ निश्चयनय से लिया। इसका स्वभाव शुद्ध निश्चय से पवित्र है, ऐसा कहना है। यहाँ निश्चय से अपना स्वभाव आदरणीय है आत्मा, ऐसा कहना है। आहाहा! यह थोड़ा सा ख्याल में आया। नूतन वर्ष है न! वह पुद्गल का था न १९ वीं गाथा। जरा ख्याल में रहे न! अधिक लोग हैं। आहाहा!

मिथ्यात्वरागादि विभावपरिणाम के अभाव में... यहाँ तो क्या कहा? मिथ्यात्व का तो अभाव परन्तु रागादि का अभाव कहा। व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, उसके अभावकाल में वह ज्ञात होता है, भाई! समझ में आया? आहाहा! अब यह कहे, यह व्यवहार से ज्ञात होता है। प्रभु! कहाँ मिलान आयेगा यह? समन्वय करो, कहते हैं। अब कहा नहीं था? यह प्रकाश अज्ञान है, ऐसा व्यवहार भी अज्ञान है। मिथ्यात्व नहीं, हों! मिथ्यात्व नहीं। मिथ्यात्व अलग और अज्ञान अलग। राग में ज्ञान का अंश नहीं, इसलिए अज्ञान। यह शुभराग है, वह मिथ्यात्व है, ऐसा नहीं। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करना, वह शुभराग है। मिथ्यात्व नहीं। मक्खनलालजी ने यह बड़ा विवाद निकाला है न। यह लोग देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। यह बड़ा प्रश्न चर्चा में बाहर आया है। अरे! भाई! किसने कहा? बापू! तू क्या करता है यह? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, वह मिथ्यात्व नहीं, वह शुभराग है। परन्तु राग से धर्म माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया?

विशुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा जानना। लो! यह मिथ्यात्व और राग के अभाव के काल में शुद्धात्मा एक उपादेय है। ऐसे काल में, भाव में। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २३

अथ जीवपुद्गलौ सक्रियौ धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि निःक्रियाणीति प्रतिपादयति-

१४६) दव्व चयारि वि इयर जिय गमणागमण-विहीण।
जीउ वि पुग्गलु परिहरिवि पभणहिं णाण-पवीण।।२३।।

द्रव्याणि चत्वारि अपि इतराणि जीव गमनागमनविहीनानि।
जीवमपि पुद्गलं परिहृत्य प्रभणन्ति ज्ञानप्रवीणाः।।२३।।

दव्व इत्यादि। दव्व द्रव्याणि। कतिसंख्योपेतानि एव। चयारि वि चत्वार्येव इयर जीवपुद्गलाभ्यामितराणि जिय हे जीव। कथंभूतान्येतानि। गमणागमणविहीण गमनागमन-विहिनानि निःक्रियाणि चलनक्रियाविहीनानि। किं कृत्वा। जीउ वि पुग्गलु परिहरिवि जीवपुद्गलौ परिहृत्य पभणहिं एवं प्रभणन्ति कथयन्ति। के ते। णाण-पवीण भेदाभेदरत्नत्रयाराधका विवेकिन इत्यर्थः। तथाहि। जीवानां संसारावस्थायां गतेः सहकारिकारणभूताः कर्मनोकर्मपुद्गलाः कर्मनोकर्माभावात्सिद्धानां निःक्रियत्वं भवति पुद्गलस्कन्धानां तु कालाणुरूपं कालद्रव्यं गतेर्बहिरङ्गनिमित्तं भवति। अनेन किमुक्त भवति। अविभागिव्यवहारकालसमयोत्पत्तौ मन्दगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुः घटोत्पत्तौ कुम्भकारवद्बहिरङ्गनिमित्तेन व्यञ्जको व्यक्तिकारको भवति। कालद्रव्यं तु मृत्पिण्डवदुपादानकारणं भवति। तस्य तु पुद्गलपरमाणोर्मन्दगतिगमनकाले यद्यपि धर्मद्रव्यं सहकारिकारणमस्ति तथापि कालाणुरूपं निश्चयकालद्रव्यं च सहकारिकारणं भवति। सहकारिकारणानि तु बहून्यपि भवन्ति मत्स्यानां धर्मदव्ये विद्यमानेऽपि जलवत्, घटोत्पत्तौ कुम्भकारबहिरङ्गनिमित्तेऽपि चक्रचीवरादिवत्, जीवानां धर्मदव्ये विद्यमानेऽपि कर्मनोकर्मपुद्गला गतेः सहकारिकारणं, पुद्गलानां तु कालद्रव्यं गतेः सहकारिकारणम्। कुत्र भणितमास्ते इति चेत्। पञ्चास्तिकायप्राभृतेश्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः सक्रियनिःक्रियव्याख्यानकाले भणितमस्ति - 'जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा। पुग्गलकरणा जीवा खंदा खलु कालकरणेहिं।।' पुद्गलस्कन्धानां धर्मद्रव्ये विद्यमानेऽपि जलवत् द्रव्यकालो गतेः सहकारिकारणं भवतीत्यर्थः। अत्र निश्चयनयेन निःक्रियसिद्धस्वरूपसमानं निजशुद्धात्मद्रव्य-मुपादेयमिति तात्पर्यम्। तथा चोक्तं निश्चयनयेन निःक्रियजीवलक्षणम् - 'यावत्क्रियाः प्रवर्तन्ते तावद् द्वैतस्य गोचराः। अद्वये निष्कले प्राप्ते निःक्रियस्य कुतः क्रिया।।'।।२३।।

आगे जीव पुद्गल ये दोनों चलन-हलनादि क्रियायुक्त हैं, और धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चारों निःक्रिय हैं, ऐसा निरूपण करते हैं -

जीव और पुद्गल बिन चारों धर्माधर्म गगन अरु काल।
गमनागमन रहित निष्क्रिय कहते केवलि अरु बहुश्रुतवान।।२३।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे हंस, [जीवं अपि पुद्गलं] जीव और पुद्गल इन दोनों को [परिहृत्य] छोड़कर [इतराणि] दूसरे [चत्वारि एव द्रव्याणि] धर्मादि चारों ही द्रव्य [गमनागमनविहीनानि] चलन हलनादि क्रिया रहित हैं, जीव पुद्गल क्रियावंत हैं, गमनागमन करते हैं, ऐसा [ज्ञानप्रवीणाः] ज्ञानियों में चतुर रत्नत्रय के धारक श्रुतकेवली [प्रणभंति] कहते हैं।

भावार्थ :- जीवों के संसार-अवस्था में इस गति से अन्य गति के जाने को कर्म-नोकर्म जाति के पुद्गल सहायी हैं। और कर्म नोकर्म के अभाव से सिद्धों के निःक्रियपना है, गमनागमन नहीं है। पुद्गल के स्कन्धों को गमन का बहिरंग निमित्तकारण कालाणुरूप कालद्रव्य है। इससे क्या अर्थ निकला? यह निकला कि निश्चयकाल की पर्याय जो समयरूप व्यवहारकाल उसकी उत्पत्ति में मंद गतिरूप परिणत हुआ अविभागी पुद्गलपरमाणु कारण होता है। समयरूप व्यवहारकाल का उपादानकारण निश्चयकालद्रव्य है, उसी को एक समयादि व्यवहारकाल का मूलकारण निश्चयकालाणुरूप कालद्रव्य है, उसी की एक समयादिक पर्याय है, पुद्गल परमाणु की मंदगति बहिरंग निमित्तकारण है, उपादानकारण नहीं है, पुद्गलपरमाणु आकाश के प्रदेश में मंदगति से गमन करता है, यदि शीघ्र गति से चले तो एक समय में चौदह राजू जाता है, जैसे घटपर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो मिट्टी का डला है, और बहिरंगकारण कुम्हार है, वैसे समयपर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो कालाणुरूप निश्चयकाल है, और बहिरंग निमित्तकारण पुद्गलपरमाणु है। पुद्गलपरमाणु की मंदगतिरूप गमन समय में यद्यपि धर्मद्रव्य सहकारी है, तो भी कालाणुरूप निश्चयकाल परमाणु की मंदगति का सहायी जानना। परमाणु के निमित्त से तो काल का समयपर्याय प्रगट होता है, और काल के सहाय से परमाणु मंदगति करता है। कोई प्रश्न करे कि गति का सहकारी धर्म है, काल को क्यों कहा? उसका समाधान यह है कि सहकारीकारण बहुत होते हैं, और उपादानकारण एक ही होता है, दूसरा द्रव्य नहीं होता, निज द्रव्य ही निज (अपनी) गुण-पर्यायों का मूलकारण है, और निमित्तकारण बहिरंगकारण तो बहुत होते हैं, इसमें कुछ दोष नहीं है। धर्मद्रव्य तो सब ही का गतिसहायी है, परंतु मछलियों को गतिसहायी जल है, तथा घट की

उत्पत्ति में बहिरंगनिमित्त कुम्हार है, तो भी दंड, चक्र, चीवरादिक ये भी अवश्य कारण हैं, इनके बिना घट नहीं होता, और जीवों के धर्मद्रव्य गति का सहायी विद्यमान है, तो भी कर्म-नोकर्म पुद्गल सहकारीकारण हैं, इसी तरह पुद्गल को कालद्रव्य गति सहकारीकारण जानना। यहाँ कोई प्रश्न करे कि धर्मद्रव्य तो गति का सहायी सब जगह कहा है, और कालद्रव्य वर्तना का सहायी है, गति सहायी किस जगह कहा है? उसका समाधान श्रीपंचास्तिकाय में कुंदकुंदाचार्य ने क्रियावंत और अक्रियावंत के व्याख्यान में कहा है। 'जीवा पुग्गल' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है कि जीव और पुद्गल ये दोनों क्रियावंत हैं, और शेष चार द्रव्य अक्रियावाले हैं, चलन-हलन क्रिया से रहित हैं। जीव को दूसरी गति में गमन का कारण कर्म है, वह पुद्गल है और पुद्गल को गमन का कारण काल है। जैसे धर्मद्रव्य के मौजूद होने पर भी मच्छों को गमनसहायी जल है, उसी तरह पुद्गल को धर्मद्रव्य के होने पर भी द्रव्यकाल गमन का सहकारी कारण है। यहाँ निश्चयनयकर गमनादि क्रिया से रहित निःक्रिय सिद्धस्वरूप के समान निःक्रिय निर्द्वंद्व निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, यह शास्त्र का तात्पर्य हुआ। इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थों में भी निश्चयकर हलन-चलनादि क्रिया रहित जीव का लक्षण कहा है। 'यावत्क्रिया' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है कि जब-तक इस जीव के हलन-चलनादि क्रिया है, गति से गत्यंतर को जाना है, तब तक दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध है, जब दूसरे का सम्बन्ध मिटा, अद्वैत हुआ, तब निकल अर्थात् शरीर से रहित निःक्रिय है, उसके हलन-चलनादि क्रिया कहाँ से हो सकती हैं; अर्थात् संसारी जीव के कर्म के सम्बन्ध से गमन है, सिद्धभगवान् कर्मरहित निःक्रिय हैं, उनके गमनागमन क्रिया कभी नहीं हो सकती।।२३।।

गाथा २३ से ३१ पर १९७५-७६ के वर्ष में प्रवचन उपलब्ध नहीं होने से १९६५-६६ के वर्ष में से लिये गये हैं।

वीर संवत् २४९२, पौष शुक्ल ६, मंगलवार
दिनांक-२८-१२-१९६५, गाथा-२३, २४, प्रवचन-८८

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की २२ गाथा हुई। २३वीं गाथा। **आगे जीव पुद्गल ये दोनों चलन-हलनादि क्रियायुक्त हैं, और धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चारों निःक्रिय हैं, ऐसा निरूपण करते हैंः—** क्या कहना है यह ? कि यह आत्मा जो है, वह शुद्ध द्रव्य वस्तुरूप से ज्ञायक शुद्ध आनन्दकन्द है। उसका जो निश्चय सम्यग्दर्शन जो

धर्म, उस निश्चय सम्यग्दर्शन में कारण तो वह आत्मद्रव्य है। समझ में आया? सम्यक् सच्ची श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, वह प्रथम धर्म है। उस सम्यग्दर्शन का कारण अथवा उसका विषय तो वह आत्मा, शुद्ध आत्मा वस्तु है। ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन के विषयरूप आत्मा कारण है। उस काल में आत्मा में जरा सक्रियपना गति आदि होती है, आत्मा में सक्रिय होता है न गति? वह और उस गति में दूसरे निमित्त पदार्थ, वे सब व्यवहार सम्यग्दर्शन में निमित्त है। क्या कहा? समझ में आया इसमें? निश्चय सम्यग्दर्शन में निश्चय वस्तु शुद्ध आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप ऐसा आत्मा निज पदार्थ, वह निश्चय श्रद्धारूपी धर्म, उसका कारण तो आत्मद्रव्य है।

अब, व्यवहार समकित जो शुभरागरूप भाव है, उसका विषय छह द्रव्य। उसमें जीव की गति आदि क्रिया होती है न, वह भी व्यवहार समकित का वह विषय है। क्या कहा? श्रद्धा में वह इसे लेना चाहिए कि आत्मा शुद्ध स्वरूप अखण्ड ज्ञायक ऐसी प्रतीति—श्रद्धा होने पर भी उसे उस काल में कुछ गति होती है न? गति। जीव चलता है। वह क्रिया जो होती है, वह वर्तमान पर्याय में उस जीव की अपनी योग्यता से है। उसे व्यवहार समकित में श्रद्धा करना चाहिए कि यह मेरी क्रिया मुझसे होती है। और उस क्रिया में दूसरे पुद्गल कर्म आदि या धर्मास्ति आदि निमित्त है, वह भी उसे इस प्रकार से श्रद्धा करना और मानना चाहिए। समझ में आया?

यह कहते हैं, देखो!

१४६)   दव्व चयारि वि इयर जिय गमणागमण-विहीण।
जीउ वि पुग्गलु परिहरिवि पभणहिँ णाण-पवीण ॥२३॥

अन्वयार्थः—हे हंस!... जीव को हंस कहा, हे हंस-विवेकी! तू आत्मा अखण्ड ज्ञायक है, उसकी प्रतीति तो करना। इसका नाम हंस कहा जाता है। **जीव और पुद्गल इन दोनों को छोड़कर दूसरे धर्मादि चारों ही द्रव्य चलन हलनादि क्रिया रहित हैं,...** धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश जहाँ पड़े हैं, वहाँ पड़े हैं। उन्हें गमन है नहीं। ऐसी तू बराबर श्रद्धा कर। **जीव पुद्गल क्रियावन्त हैं,...** और जीव तथा पुद्गल दोनों ऐसे गमन करते हैं। वह गमन करने की पर्याय की तुझमें योग्यता तेरी है, ऐसी व्यवहार समकित में श्रद्धा कर। समझ में आया?

गमनागमन करते हैं,... जीव और पुद्गल ऐसे एक जगह नहीं रहते। वह है अपनी योग्यता की पर्याय, गमन करने की और गमन होकर स्थिर होने की। ऐसा परमाणुओं का गमन करने का अपना पर्याय धर्म है उसका, और वह पर्याय स्थिर होती है, वह भी अपना धर्म है। परन्तु वह पर्याय का धर्म है और परद्रव्य का जो धर्म है और अपनी पर्याय में गति-स्थिरता का धर्म है, वह सब व्यवहार समकित के विषय में, छह द्रव्य में जाता है। समझ में आया?

यह गमनागमन जीव और पुद्गल ही क्रिया करते हैं। अपने से, हों! आत्मा एक स्थान से दूसरे स्थान में जाये, ऐसे हिले, वह अपनी पर्याय की योग्यता से गति करते हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : देह उसके कारण से गति करती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : देह के कारण से गति करती है, ऐसा कहते हैं। देह की क्रिया, उसे सहकारी निमित्त कहेंगे। उसमें कर्म पुद्गल को और उसे दोनों को सहकारी कहेंगे। परन्तु वह कर्म और पुद्गल और शरीर अपने-अपने कारण से ऐसे गति करते हैं। जीव अपने कारण से ऐसे गति करते हैं। तब वह गति करने में कर्म और पुद्गल नोकर्म, उसे निमित्त कहे जाते हैं और वह गति करने में धर्मास्ति भी निमित्त कहलाता है। यह वस्तु... समझ में आया?

ऐसी वस्तु वीतराग के अतिरिक्त व्यवहार समकित के विषय का स्वरूप इस प्रकार से है, वह अन्यत्र हो नहीं सकता। ऐसा बताने के लिये व्यवहार समकित के विषय को बतलाते हैं। समझ में आया? ज्ञात तो इसे करना पड़े। ऐसे का ऐसे बिना भान के चले, ऐसा यह मार्ग नहीं है। सर्वज्ञ वीतराग ने कहा हुआ आत्मा ऐसा पूर्णानन्द शुद्ध स्वरूप, सर्वज्ञ ने कहा हुआ, देखा हुआ, जाना हुआ ऐसा यह आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द का कन्द वस्तु, उसकी अन्तर्मुख की सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में विषय तो वह द्रव्य है। ऐसा आत्मा भगवान ने कहा, वैसा आत्मा। और इसके अतिरिक्त गति आदि की, स्थिरता की जो पर्याय जीव में होती है और दूसरे पाँच, छह द्रव्य दूसरे आत्मायें और दूसरी उनकी क्रियायें, वे सब सम्यग्दर्शन व्यवहार के विषय कारण गिनने में आते हैं। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय सम्यग्दर्शन के कारण में भगवान ने कहा हुआ शुद्ध आत्मा द्रव्य। समझ में आया? और व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में भगवान ने जाने हुए जीव और जड़, उनकी पर्याय क्रिया ऐसा करते हैं और उसमें निमित्तरूप से दूसरे हैं और दूसरे चार स्वयं अक्रिय है, ऐसा भगवान ने देखे हुए ऐसे, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन में निमित्त कारण होता है। समझ में आया इसमें? समझण का घर कभी देखा नहीं, उसकी दरकार नहीं की। यह करना... यह करना... यह करना... दया, व्रत, भक्ति और क्रियाकाण्ड, परन्तु वस्तु क्या है, उसे समझे बिना वह सब (क्रिया व्यर्थ है)।

कहते हैं कि दया आदि के परिणाम हों और जीव स्वयं ऐसे गति करे, वे सब व्यवहार समकित के विषय में जाते हैं, भाई! आहाहा! सत्य सम्यग्दर्शन, सत्य सम्यग्दर्शन के विषय में भगवान सत्य परम ब्रह्म स्वयं उसके सम्यग्दर्शन में वह कारण है। परन्तु उस काल में उस शुभरागरूपी ज्ञानसहित का एक भाग है कि जिसमें जीव और परमाणु गति करे, ऐसी क्रिया और वापस स्थिरता करके फिरे ऐसी क्रिया, वह जीव और पुद्गल में स्वयं के कारण से है और दूसरे चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। ऐसा सम्यग्दर्शन में अर्थात् उस सम्बन्धी के ज्ञान के विकल्प का वह विषय है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। समझ में आया?

यह क्या कहते हैं व्यवहार का विषय। आज तो और यह डाला। क्या डाला? क्या? यह जीव की क्रिया, क्रिया व्यवहार में डाली, व्यवहार समकित के विषय में डाली। यह तो दूसरी रीति से कहा अभी। एक निश्चय सम्यक् वस्तु, वह तो परमानन्द भगवान अखण्ड ऐसे ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा, वह सत्य दर्शन का कारण है। सत्य स्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, वह सत्य सम्यग्दर्शन सत् का वह कारण है। असत् अर्थात् व्यवहार समकित उपचार, उसका कारण वह जीव गति स्वतन्त्र करता है, स्थिरता करता है, गति करके, उसमें रागादि होते हैं, वे सब व्यवहार समकित के निमित्त में, कारण में, विषय में जाते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐ... भीखाभाई! इसी प्रकार जीव गति करे या स्थिर हो, उसमें निमित्त कर्म और शरीर है, वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन के निमित्त में, कारण में जाते हैं। और गति करे तब धर्मास्ति निमित्त है, वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में निमित्त में, कारण में जाता है। समझ में आया?

आहाहा! शैली तो... यह तो परमात्मप्रकाश है न, इसलिए इसका जो पूर्ण स्वरूप है।

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश का व्यवहार यह है....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कहते हैं। देखो! आज तो थोड़ा दूसरे प्रकार से कहा। अकेला स्वद्रव्य द्रव्य में उस जीव की क्रिया, सक्रियपना, राग-द्वेषपना, कम्पनपना आदि... समझ में आया? वह सब व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय कहने में आया आज। अपने से हो, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय। स्वयं पूरा, वह तो निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय। ऐ... देवानुप्रिया! आहाहा! यहाँ ऐसा कहना चाहते हैं।

परमात्मा तू स्वयं तो अखण्ड ज्ञान की मूर्ति है न, प्रभु! वह सत्य दर्शन का कारण है, सत्य सम्यग्दर्शन, धर्मदर्शन धर्मरूपी दर्शन का वह आत्मा कारण है। परन्तु उसके साथ उस ज्ञान की पूर्णता केवलज्ञान की नहीं और पूर्ण स्थिरता नहीं, इसलिए एक ज्ञान ऐसा काम करे कि, जो क्रिया करे, जीव गति करे, स्थिरता हो, उसे भी वह ज्ञान जानकर व्यवहार है, ऐसी श्रद्धा करता है। समझ में आया? वह उपचार समकित। गजब बात, भाई! निश्चय हो, तब वह क्रिया, गति, राग और दूसरे द्रव्य उसकी श्रद्धा को उपचार समकित, आरोप समकित, व्यवहार समकित कहा जाता है। यह निश्चय हो तो। तब उसके साथ में बात है न यह। यह बाकी रही हुई बात की श्रद्धा करनी चाहिए न! एक द्रव्य अखण्डानन्द प्रभु, वह सम्यग्दर्शन का कारण हुआ। तब दूसरी बात कुछ बाकी रह जाती है या नहीं? राग, द्वेष, सक्रिय, स्थिरता, दूसरे जीव, दूसरे परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल यह सब यहाँ तो एक सब ढ़ेर व्यवहार सम्यग्दर्शन का निमित्त, विषय और कारण कहे जाते हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया? एक बात रह गयी। **ऐसा ज्ञानियों में चतुर रत्नत्रय के धारक केवली श्रुतकेवली कहते हैं।** ऐसा चाहिए। केवली निकाल डालो,

मुमुक्षु : केवली और श्रुतकेवली।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, केवली निकाल डालना चाहिए। क्योंकि संस्कृत में पाठ में '**भेदाभेदरत्नत्रयाराधका**' है। समझ में आया? इन्होंने टीका ऐसी की है न! समुच्चय हो तो ज्ञान... ऐसी दिक्कत नहीं। '**भेदाभेदरत्नत्रयाराधका विवेकिन**' महासन्त, मुनि,

निश्चय और व्यवहार के आराधक जीव ऐसा कहते हैं। अर्थात् वह चतुर, ज्ञानियों में महा चतुर रत्नत्रय भेदाभेद और निश्चय के धारक, ऐसे श्रुतकेवली कहते हैं। श्रुतकेवली। वे श्रुतकेवली मुनि महा सन्त, वे व्यवहार समकित के यह छह द्रव्य और सक्रिय, अक्रियपना, वह सब व्यवहार समकित का विषय है, ऐसा भगवान बताते हैं। समझ में आया? छोटाभाई! वह एक विषय बाकी रह गया था न। उसका अपना भी बाकी रह गया है या नहीं? आहाहा! शास्त्र की रीति एक समझाने की और उसे इस रीति से सिद्ध करने की पद्धति है।

भावार्थ:—जीवों के संसार-अवस्था में इस गति से अन्य गति के जाने को कर्म-नोकर्म जाति के पुद्‌गल सहायी हैं। निमित्त है। एक गति में से अन्यत्र जाना, मनुष्य में से देव में (जाना)... समझ में आया? वहाँ इसे कर्म, आठ कर्म भी निमित्त है। गति की तो अपनी उपादान की योग्यता है, हों! वह निमित्त है कर्म और शरीर। तैजस और औदारिक आदि शरीर। यहाँ भी गति करता है न जरा? कर्म, नोकर्म जाति के पुद्‌गल निमित्त हैं। निमित्त हैं, दूसरी चीज़ एक निमित्त है। **और कर्म नोकर्म के अभाव से सिद्धों के निःक्रियपना है,...** सिद्ध को निष्क्रियपना स्वयं के कारण से है। तब उन्हें नोकर्म और नोकर्म का निमित्तपने भी अभाव है, ऐसा कहना है। समझ में आया? सिद्ध भगवान को कर्म, नोकर्म का निमित्तपना नहीं और अपने में भी सक्रियपना नहीं। निष्क्रियपना है स्वयं से स्वयं में उपादान। वह पर्याय का (उपादान) और दूसरे नोकर्म निमित्त नहीं। समझ में आया? **गमनागमन नहीं है।** सिद्ध को गमन नहीं, सिद्ध परमात्मा तो स्थिर है, मोक्ष में स्थित है।

पुद्‌गल के स्कन्धों का गमन का बहिरंग निमित्तकारण कालाणुरूप कालद्रव्य है। अब यह शरीर है न? पुद्‌गल, कर्म, यह वाणी, वह ऐसे गमन करते हैं न? देखो न! शरीर ऐसे गमन करता है न? उस गमन का बहिरंग निमित्त कारण, बाह्य निमित्त कारण। कालाणु एक कालद्रव्य है, उसे जानना चाहिए। और स्कन्ध में गमन स्वयं से होता है, उपादान से, ऐसा इसे जानना चाहिए। क्या कहा? यह शरीर इसके कारण से ऐसे उपादान से गति करता है। समझ में आया? ऐसा इसे व्यवहार समकित में जानना चाहिए। और उसमें—गमन करे उसमें... समझ में आया? निमित्त कारण बाह्य कालाणु

द्रव्य है। एक कालाणु पदार्थ है, वह इस शरीर को गति करने में निमित्त है। कहो, समझ में आया? देखो! यह लकड़ी है न? ऐसे-ऐसे करे न? वह होती है अपने उपादान के कारण से। परन्तु वहाँ एक काल नामक असंख्य द्रव्य दूसरे हैं, उनकी अन्दर पर्याय इसे निमित्त है। इस निमित्त की श्रद्धा और इसकी गति की क्रिया श्रद्धा करना और यह द्रव्य, गुण ऐसे हैं, ऐसी श्रद्धा करना, वह सब व्यवहार समकित का विषय कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अरूपी है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहाँ अरूपी है? यह क्या कहा? काल अरूपी है परन्तु यह रूपी है न? यह रूपी स्वयं से गति करता है। उसके द्रव्य, गुण को जानना और उसकी पर्याय गति करे, ऐसा उसे श्रद्धा करना चाहिए। स्वयं से, हों! ऐसी स्वयं से गति करती है, ऐसा व्यवहार समकित में, भाई! आता है, लो! ठीक। व्यवहार समकित में इतना तो आता है कि जीव और पुद्गल स्वयं से क्रिया करते हैं उस समय, ऐसा व्यवहार समकित में इसे श्रद्धा करना चाहिए। और उसे—पुद्गल को निमित्त कारण कालाणु द्रव्य है। और जीव में कर्म और नोकर्म निमित्त है और धर्मास्ति भी निमित्त है। यह विशेष लेंगे। यह सब स्वयं के कारण से गति क्रिया है, ऐसा व्यवहार समकिती श्रद्धा करता है। निमित्त कारण दूसरा है, ऐसा व्यवहार समकिती श्रद्धा करता है। जो इसकी क्रिया पर के कारण माने, उसे तो व्यवहार श्रद्धा के विषय की भी खबर नहीं। आहाहा! कहो, उसमें निकलता है या नहीं? भाई! व्यवहार समकित में निकलता है या नहीं? आहाहा! गजब!

कहा कि कर्म, नोकर्म और वाणी **पुद्गल के स्कन्धों को गमन का...** देखो! यह गमन अर्थात् पुस्तक ऊँची हो, यह हो, यह होठ हिले, उस गमन में, **बहिरंग निमित्तकारण...** अर्थात् कि गमन का उपादान तो उसकी अपनी पर्याय है। उपादान पर्याय स्वयं की है। ऐसे व्यवहार समकिती उसे ऐसी श्रद्धा करता है और **निमित्तकारण कालाणुरूप कालद्रव्य है।** ऐसा उसे निमित्तरूप से श्रद्धा करता है। **इससे क्या अर्थ निकला?** कहते हैं, अब ऐसा कहकर उसका अर्थ क्या निकला?

यह निकला कि निश्चयकाल की पर्याय जो समयरूप व्यवहारकाल... निश्चय

काल है एक अणु। अरूपी काल है असंख्य अणु। उसकी एक समय की पर्याय व्यवहार काल, **उसकी उत्पत्ति में मन्द गतिरूप परिणत हुआ अविभागी पुद्गलपरमाणु कारण होता है।** ध्यान रखो। यह कालाणु जो द्रव्य है, वह तो श्रद्धा करना परन्तु कालाणु एक समय की पर्याय है उत्पत्ति, उसे ऐसी श्रद्धा करना। उसमें मन्द गतिरूप परिणत हुआ पुद्गल द्रव्य निमित्त है, ऐसा उसे श्रद्धान करना। समझ में आया?

ध्यान रखना, भाई! कोई विषय ऐसा आवे। यह तो वीतरागमार्ग है। बहुत प्रकार के पहलू आते हैं। उसकी उत्पत्ति में, उत्पत्ति अर्थात् उपादान तो उसकी पर्याय है, कालद्रव्य उसकी समय की अवस्था का, ऐसा श्रद्धान करना। परन्तु उसे निमित्त कारण मन्द गति से परिणमित अविभागी पुद्गल का निमित्त कारण है, ऐसा उसे जानना। समझ में आया? यह तो धीरे-धीरे लेते हैं, हों! नहीं तो है तो एकदम ले लेने जैसी। जानने की बात है न। नयी बात निकली, लो! भाई (कहते हैं)। परन्तु व्यवहार समकित क्या है, उसे निर्णय (तो करना चाहिए न)। निश्चय समकित का कारण तो अकेला द्रव्य कहा। अखण्ड द्रव्य, अखण्डानन्द ज्ञायकमूर्ति। तब अब बाकी उसमें भी रह गया, पर में रह गया सब, वह कहाँ गया? समझ में आया? आहाहा!

ऐसा व्यवहार वीतराग ने कहा कि जड़ और चेतन स्वयं के कारण से गमन करे, ऐसी उनकी उपादान पर्याय है, ऐसा श्रद्धान करना और उसे निमित्त कारण जो द्रव्य है, उसे उस प्रकार से श्रद्धा करना। तब उसे व्यवहार समकित का यथार्थ विषय हुआ कहलाता है। इस व्यवहार समकित का भी ठिकाना न हो। एक निमित्त के कारण से उसमें होता है और इसके कारण से उसमें होता है, वह तो कहते हैं कि तेरे व्यवहार समकित के विषय का ठिकाना नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! आज दूसरे ढंग से बात आयी है, हों! थोड़ा सा और ऐसा हो गया। कहाँ से आयी? अन्दर से। (व्याख्यान) शुरु करते क्रिया में गया न मस्तिष्क कि क्रिया तो उसका स्वभाव नहीं। द्रव्य वस्तु ही समकित में कारण है। तो यह क्रिया किसका विषय हुआ? वह गयी कहाँ? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **पुद्गलपरमाणु कारण होता है। समयरूप व्यवहारकाल का उपादानकारण निश्चयकालद्रव्य है,...** देखो! काल नाम का अरूपी असंख्य पदार्थ है।

उनकी समय की उत्पत्ति का उपादान कारण वह है, ऐसा जानना और मन्द गति से (परिणमित) परमाणु निमित्त कारण है, ऐसा जानना। **उसी को एक समयादि व्यवहारकाल का मूलकारण निश्चयकालाणुरूप कालद्रव्य है, उसी की एक समयादिक पर्याय है,...** उसकी एक समय की पर्याय उसकी कालाणु की। **पुद्‌गल परमाणु की मन्दगति बहिरंग निमित्तकारण है,...** उसे पुद्‌गल को परमाणु मन्द गति से अपनी गति करे, वह अपना उपादान है परन्तु उसे यह निमित्त कारण है। परमाणु एक प्रदेश, ऐसे गमन करे, उसका उपादान स्वयं है। परन्तु काल की पर्याय उत्पत्ति में पुद्‌गल परमाणु मन्द गति से (गति करे वह) निमित्त है। गजब बात कही। समझ में आया? **उपादानकारण नहीं है,...** क्या कहा? इस कालद्रव्य की पर्याय उत्पत्ति में मन्द गति का परमाणु मूल कारण नहीं है। मूल कारण वह काल नाम का पदार्थ है, उसकी एक समय की अवस्था का उपादान कारण वह कालद्रव्य है। समझ में आया?

पुद्‌गल परमाणु आकाश के प्रदेश में मन्दगति से गमन करता है, यदि शीघ्र गति से चले तो एक समय में चौदह राजू जाता है,... एक रजकण एक समय में गति करे तो एक समय की पर्याय को कालाणु को निमित्त कहा जाता है परन्तु पूरा गति करे तो उसका स्वभाव है, उसका स्वभाव एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चलने का है, वह स्वयं के कारण से है। एक रजकण चौदह ब्रह्माण्ड में एक समय में गति करके चला जाता है। ऐसी भी उस परमाणु की एक पर्याय का धर्म है, ऐसा व्यवहार श्रद्धा में इसे लेना चाहिए। उसकी अपनी शीघ्र गति।

जैसे घटपर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो मिट्टी का डला (पिण्ड) है,... क्या कहा? इस घड़े की उत्पत्ति में मूल कारण तो मिट्टी का पिण्ड है, ऐसा इसे श्रद्धान करना चाहिए। मूल कारण कुम्हार नहीं। **और बहिरंगकारण कुम्हार है,...** मूल काल के साथ आधार देते हैं, मिलाते हैं। कुम्हार है। क्या कहा? यह घड़ा हो, उसका मूलकारण मिट्टी है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए और कुम्हार तो निमित्त कारण है, ऐसा निर्णय करना चाहिए। इसी प्रकार कालद्रव्य की मूल पर्याय का मूलकारण कालद्रव्य। मन्दगति से परमाणु परिणमा, वह तो निमित्तकारण जानना चाहिए।

वैसे समयपर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो कालाणुरूप निश्चयकाल है,

और बहिरंग निमित्तकारण पुद्‌गलपरमाणु है। पुद्‌गलपरमाणु की मन्दगतिरूप गमन समय में यद्यपि धर्मद्रव्य सहकारी है,... क्या कहते हैं? रजकण है न पुद्‌गल? उसकी मन्द गति गमन समय में यद्यपि धर्मद्रव्य सहकारी है। **तो भी कालाणुरूप निश्चयकाल परमाणु की मन्दगति का सहायक जानना।** तथापि कालाणु जो है न जगत द्रव्य? उसे निश्चय काल जो है, वह परमाणु की मन्द गति का सहायक जानना। दो सहायक कहते हैं, देखो! ध्यान रखना। पुद्‌गल परमाणु मन्द गति करे, तब धर्मद्रव्य निमित्त है। गति स्वयं से है, धर्मद्रव्य निमित्त है, तथापि पुद्‌गल मन्द गति करे, तब कालाणु निश्चिय काल भी निमित्तरूप है। एक उपादान के कारण में दो हैं, ऐसा इसे श्रद्धा करना चाहिए। आहाहा! ऐसा वीतराग के अतिरिक्त नहीं होता, इसलिए व्यवहार समकित के विषय को स्पष्ट करके पहिचान कराते हैं। समझ में आया न? ऊपर से बातें करे आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा है, निर्विकल्प करो, परन्तु क्या? किस प्रकार? भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जानकर छोड़ने का या जाने बिना छोड़ देना? खाकर छिलका निकलना या बिना खाये छिलका कर डालना? जानना कि, यह है। दृष्टि उससे छोड़कर द्रव्य के ऊपर लेना। ... ऐसे व्यवहार के विकल्प जानने में, श्रद्धा में होते हैं। समझ में आया? हेयरूप है परन्तु ज्ञेयरूप तो है या नहीं? ज्ञेयरूप हुए बिना हेय किस प्रकार करेगा? कठिन बात, भाई!

परमाणु के निमित्त से तो काल का समयपर्याय प्रगट होता है, और काल के सहाय से परमाणु मन्दगति करता है। (यह निमित्त अरसपरस) कोई प्रश्न करे कि गति का सहकारी धर्म है,... और तुमने पुद्‌गल गति में कालाणु कहाँ से डाला? क्या कहा? यह पुद्‌गल ऐसे गति करे तो भगवान ने ऐसा कहा, धर्मास्तिकाय का निमित्त है, उसमें और कालाणु का निमित्त कहाँ से घुसाया तुमने? **काल को क्यों कहा?**

उसका समाधान यह है कि सहकारीकारण बहुत होते हैं,... भाई! निमित्त कारण भी बहुत होते हैं। उपादान स्वयं से जो पर्याय परिणमे, वह एक ही स्वयं कारण है, निमित्त कारण तो बहुत होते हैं। बहुत होते हैं, उसमें बाधा क्या आयी? समझ में आया? उपादान स्वयं ही अपने से वह काम करता है। वह एक है, निमित्त बहुत होते

हैं। ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। बहुत निमित्त हैं, इसलिए यहाँ काम होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! काम तो स्वयं से होता है। घड़ा... समझ में आया? यह रोटी पकती है, वह अपने उपादान से पकती है। ऐसी इसे श्रद्धा करना चाहिए। परन्तु उसके निमित्त के समय तवा, अग्नि, स्त्री का हाथ इत्यादि निमित्त बहुत होते हैं, उसे निमित्तरूप से जानना चाहिए, परन्तु उनसे रोटी पकती है, ऐसा जानना नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह रोटी ऐसे होती है—फूलकर दडो होती है न? उस दडा में पुद्गल की ऐसी गति हुई, इसलिए धर्मास्ति का निमित्त है, परन्तु साथ में कालाणु का भी निमित्त है। ऐसी गति, ऊँचा हुआ न? उसमें कालाणु निमित्त है। बाह्य निमित्त यह स्त्री का हाथ और बहुत निमित्त है। वस्त्र ऐसे-ऐसे किया इत्यादि निमित्त। परन्तु वे सब निमित्त हैं। उपादान पर्याय स्वयं से होती है, ऐसी इसे श्रद्धा करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सहकारीकारण बहुत होते हैं, और उपादानकारण एक ही होता है,...** देखो! समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त में कुछ नम्बर है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नम्बर-बम्बर नहीं। निमित्त हैं सब। धर्मास्तिकाय का मुख्य निमित्त है। बाकी सब गौण निमित्त भी हैं, ऐसा कहेंगे। पानी में मछली चले, उसमें मूल निमित्त तो वह है। परन्तु यह एक पानी भी निमित्त है या नहीं? पानी निमित्त है या नहीं? एक बाह्य निमित्त है न? समझ में आया? आहाहा!

वस्तु की पर्याय की स्वतन्त्रता प्रसिद्ध करना और उस-उस काल में कितने निमित्त स्वतन्त्र निमित्त हैं, उन्हें भी प्रसिद्ध करना। यह तो वीतराग की ही कोई शैली है। समझ में आया? और वह भी व्यवहार ज्ञान का अथवा व्यवहार श्रद्धा का विषय है। निश्चय ज्ञान तो ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान का स्वसंवेदन ज्ञान, उसका कारण वह आत्मा है। व्यवहार ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? कितने ही कहते हैं, व्यवहार कहते नहीं। ऐसा व्यवहार इसने कभी सुना भी नहीं होगा, लो! अरे! भगवान! भाई!

प्रभु! ऐसा चैतन्यस्वरूप पूर्ण अखण्ड एक अभेद जहाँ दृष्टि करके दृष्टि का विषय हुआ तो उसकी पर्याय में बाकी तो बहुत रह गया। रागादि, भेदादि। समझ में आया? विकल्प, क्रिया, सक्रियपना आदि और दूसरे-दूसरे द्रव्य सब रह गये बहुत। वे

सब इसे ज्ञान में बराबर जानना चाहिए। उनका अस्तित्व है, ऐसा ज्ञान में स्वीकार करना। यह ही अकेला अस्तित्व है, ऐसा नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय अकेला अस्तित्व अखण्ड लिया, इसलिए उसकी पर्याय में सक्रियपना, रागपना इत्यादि-इत्यादि उसकी अस्ति नहीं, ऐसा नहीं। जैसे दूसरे द्रव्य, द्रव्य-गुण-पर्यायवाले नहीं, ऐसा नहीं है। सभी द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय से काम करते हैं, तब दूसरे को निमित्त कहा जाता है। इसलिए उससे कार्य होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

और उपादानकारण एक ही होता है, दूसरा द्रव्य नहीं होता,... देखो! उपादानकारण अर्थात्? यह जीव गति करता है न ऐसे? उसमें आत्मा स्वयं उपादानकारण है। वह स्वयं एक ही उपादानकारण है। पश्चात् उसे कर्म, नोकर्म निमित्त है, धर्मास्ति निमित्त, शरीर निमित्त आदि हो। भले बहुत निमित्त हों। उन निमित्त की श्रद्धा करना कि यह निमित्त इतने हैं। निमित्त है, ऐसा मानना परन्तु यह क्रिया होती है स्वयं से, उपादान से, ऐसा इसे मानना चाहिए। समझ में आया?

निज द्रव्य ही निज (अपनी) गुण-पर्यायों का मूल कारण है,... देखो! स्पष्टीकरण किया। निज द्रव्य ही निज गुण-पर्याय का कारण है। यह अपना द्रव्य ही अपने गुण और पर्याय का कारण है। समझ में आया? उस पर्याय का कारण वह स्वयं है न? यह क्रिया हो, राग हो, उस सब क्रिया का मूलकारण तो अपना द्रव्य है या नहीं? समझ में आया? **निज द्रव्य ही निज (अपनी) गुण-पर्यायों का मूलकारण है, और निमित्तकारण बहिरंगकारण तो बहुत होते हैं,...** देखो! यहाँ ऐसा कहकर सिद्ध किया। यहाँ द्रव्य सम्यक्त्व का विषय, ऐसा यहाँ नहीं कहना, भाई! यहाँ तो निज द्रव्य अपने गुण-पर्याय का कारण है, ऐसा सिद्ध करना है। जो कोई आत्मा है और उसके अनन्त गुणों का कारण निज द्रव्य और उसकी पर्याय विकारी, अविकारी का भी निज द्रव्य कारण है। उपादान कारण तो स्वयं है। क्या कहा?

सम्यग्दर्शन का निश्चय का विषय द्रव्य, वह बराबर है। परन्तु अब वह द्रव्य वर्तमान गुण अनन्त और उसकी पर्याय का कारण द्रव्य है। आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय विकारी हो या अविकारी हो, क्रिया हो या सक्रिय हो या गति करे या स्थिर हो,

उन सबका कारण जीवद्रव्य स्वयं उपादान है। दूसरे सब निमित्त कारण हैं, ऐसा मानना चाहिए। समझ में आया ?

और निमित्तकारण बहिरंगकारण तो बहुत होते हैं, इसमें कुछ दोष नहीं है। समझ में आया ? क्या कहा ? निज द्रव्य ही निज गुण—पर्याय का मूल कारण प्रत्येक में ऐसा लेना वापस, भाई ! पुद्गल में ऐसा लेना। यह परमाणु से परमाणु है, यह रजकण है, इनके गुण पर्याय का कारण तो रजकण ही है। फिर भले उसे धर्मास्ति का निमित्त कहो। काल का निमित्त कहे। पुद्गलकरण आता है न कालकरण ? भाई ! यह आयेगा अब। वे सब निमित्त कारण चाहे जो कहो। परन्तु परमाणु स्वयं अपनी गुण और अवस्था का कारण है। मूल उपादान कारण। समझ में आया ? समझ में आया या नहीं इसमें ? जमुभाई ! एक दृष्टान्त देकर कहना चाहिए। पैसा लो। एक पैसा है, लो न। एक पैसा है, वह ऐसे आता है। देखो ! अब उस पैसे में रजकण जो हैं और उसकी शक्तियों को, उसकी अवस्था का कारण वह रजकण है। दूसरा हाथ आदि निमित्त भले हो, परन्तु उपादान कारण तो उसका ही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रखे कौन ? धूल रखे वहाँ। एक साथ है उसमें रखना था कब ? कुछ बात की (खबर नहीं होती)। क्या करे ? यह बात ख्याल में आयी नहीं। ख्याल में आयी नहीं और इस प्रकार से सुनने की पद्धति मिली नहीं। ठीक न अब। इसका अर्थ यह कि, उसे उस प्रकार की समझने की योग्यता नहीं। ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा !

देखो न ! एक बात करते हुए भी कितनी करते हैं ! व्यवहार समकित, व्यवहार समकित। परन्तु व्यवहार समकित किसे कहना ? समझ में आया ? कि प्रत्येक द्रव्य-वस्तु छहों (द्रव्य) अपनी शक्तियाँ गुण और समय-समय में होती अवस्थायें विकारी या अविकारी, विभाविक या स्वाभाविक, उन सब गुण और पर्याय का कारण, वह द्रव्य मूलकारण है। समझ में आया ?

निमित्तकारण बहिरंगकारण तो बहुत होते हैं, इसमें कुछ दोष नहीं है। उसमें क्या बाधा है ? कहते हैं। **धर्मद्रव्य तो सब ही का गतिसहायी है,...** देखो ! धर्मद्रव्य तो

सब गति में सबको सहायक है। **परन्तु मछलियों को गतिसहायी जल है,...** इतना साधारण में कहा। धर्मास्तिकाय, वह तो सब जितने गति करें, पुद्‌गल और जीव एक साथ, उन सबको निमित्त है। अब मछली को वह जल ही निमित्त है। मछली गति करती है, वह स्वयं से (करती है)। मछली गति करती है स्वयं से, उसकी गति की क्रिया का उपादान कारण उसका आत्मा और उस शरीर की क्रिया का उपादान कारण उसके रजकण। परन्तु पानी उसे निमित्त—बहिरंग निमित्त कारण कहा जाता है। समझ में आया? ओहोहो! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

धर्मद्रव्य तो सब ही का गतिसहायी है, परन्तु मछलियों को गतिसहायी जल है,... एक भाग कर दिया। वह तो सबको सहायक कहा। पूरे अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु गति करे उन्हें, हों! स्थिर हो, उसकी बात नहीं अभी अधर्मास्ति की। गति करते हुए जितने जीव और पुद्‌गल हैं, उन सबको धर्मास्तिकाय का निमित्त है। परन्तु विशेष में एक पृथक्‌ता (कही है)। पानी में मछली गति करे तब पानी उसे निमित्त कहा जाता है। गति स्वयं से उपादान से करता है। पानी है, इसलिए गति करे—ऐसा नहीं है। समझ में आया? जैसे रेल, रेल अपने उपादान के कारण से ऐसे गति करती है। तब पटरी निमित्त है।

मुमुक्षु : पटरी न होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह प्रश्न ही कहाँ है? न हो तो न चले, किसने कहा? यह लिखा है, वह निमित्त को सिद्ध करने के लिये। रेल चलती है, उसमें सामान्यरूप से धर्मास्ति निमित्त है। सब गति की अपेक्षा से, सब गति की अपेक्षा से धर्मास्ति निमित्त है, रेल चले उसमें। परन्तु विशेषरूप से चलती है, उपादान स्वयं से, तब उसे पटरी निमित्त है। निमित्त बहुत हो, उससे क्या बाधा है? समझ में आया? देखो! यह पासडा है या नहीं? यह पासडा स्थिर हुआ है अपने उपादान कारण से, परन्तु इसे अधर्मास्ति निमित्त है। मूल सबको स्थिर में अधर्मास्ति निमित्त है। विशेषरूप से अभी दीवार निमित्त है, देखो! निमित्त, हों! उसके कारण से यहाँ रहा नहीं।

मुमुक्षु : दीवार निकाल डाले तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाले कौन? क्या कहा? यह तो मछली का दृष्टान्त धर्मास्ति

के लिये दिया है न, देखो! इसी प्रकार यहाँ अधर्मास्ति का दिया, यहाँ तो। अधर्मास्तिकाय जो स्थिर हुए, लकड़ी और जीव जहाँ स्थिर हुए हैं, उन्हें अधर्मास्ति का सब स्थिर को निमित्त है, सब स्थिर हुए को निमित्त है। परन्तु विशेषरूप से उसे वह निमित्त है। जैसे... समझ में आया? चूल्हा तवे को निमित्त है, ऐसे स्थिर में। तवा स्थिर हुआ है, उसे निमित्त अधर्मास्ति है। सब स्थिर को। परन्तु भेद करे तो उसे वह निमित्त है। परन्तु रह जाते हैं अपने कारण से। समझ में आया? इस प्रकार जैसा है, वैसी श्रद्धा करे, तब वह व्यवहार समकित का विषय सच्चा हुआ कहलाये। उसका ठिकाना न हो और... आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो ही सच्चा, भूल न ही हो उसमें। व्यवहार की भूल हो, उसे निश्चय की भूल होती है। समझ में आया? व्यवहार की भूल न हो और निश्चय खोटा हो। समझ में आया? ऐसा बतलाने जैसा वस्तु का स्वरूप है पर्याय का, राग का, अनन्त द्रव्यों का, इस प्रकार से वस्तु की स्थिति, उसकी श्रद्धा, ज्ञान में स्वतन्त्ररूप से है, ऐसा सब लेना चाहिए। आहाहा! कठिन बात! समझ में आया?

तथा घट की उत्पत्ति में बहिरंग निमित्त कुम्हार है, तो भी दण्ड, चक्र, चीवरादिक ये भी आवश्यक कारण हैं, इनके बिना घट नहीं होता,... अर्थात् कि निमित्त है, इतनी बात है। वह न हो और घड़ा उत्पन्न हो जाये, ऐसा नहीं है। घड़ा उत्पन्न के काल में अपने उपादान से घड़ा उस समय में, उस समय उत्पन्न हुआ उसमें उसे कुम्हार का निमित्त कहा जाता है। उसके साथ चक्र आदि, सब दण्ड आदि, डोरी आदि निमित्त कहे जाते हैं। हों बहुत। उपादान एक है, निमित्त बहुत होते हैं। परन्तु वे निमित्त बहुत हैं इसलिए उपादान से कार्य विशेष हुआ और एक हों, इसलिए थोड़ा हुआ, ऐसा नहीं है। उपादान तो स्वयं से ही स्वतन्त्र कार्य करता है। आहाहा! उपादान निमित्त का झगड़ा इसमें निकल जाये, ऐसा है। उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार में पड़े हो परन्तु यह नहीं करते। अरे!

और जीवों के धर्मद्रव्य गति का सहायी विद्यमान है,... धर्मद्रव्य गति सहायमान, **तो भी कर्म-नोकर्म पुद्गल सहकारी कारण हैं,...** क्या कहा? यह जीव एक गति में से

दूसरी गति में जाये अथवा ऐसा चले, उसमें धर्मास्ति का निमित्त है, उपादान स्वयं का है। तथापि उसे शरीर को अर्थात् नोकर्म, आठ कर्म और तैजस तथा कार्मण आदि शरीर, तैजस और औदारिक, वैक्रियक शरीर, वह सहकारी—साथ में (होते हैं)। साथ में कहते हैं न? आगे-पीछे कहाँ है वहाँ? साथ ही है। आहाहा! यह बड़ा विवाद। **इसी तरह पुद्गल को कालद्रव्य गति सहकारी कारण जानना।** लो! इस प्रकार पुद्गल को कालद्रव्य ऐसे पुद्गल गति करे, उसमें धर्मास्ति तो निमित्त है। वे दृष्टान्त दिये ऐसे, धर्मद्रव्य गति सहायक है जीव को, परन्तु कर्म और नोकर्म भी सहकारी है। इसी प्रकार पुद्गल को गति में धर्मास्ति तो निमित्त है। परन्तु कालद्रव्य गति में सहकारी कारण जानना। कालद्रव्य को गति में निमित्त कारण (जानना)। पुद्गल की गति में काल को निमित्त जानना।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि धर्मद्रव्य तो गति का सहायी सह जगह कहा है, और कालद्रव्य वर्तना का सहायी है,... कालद्रव्य तो वर्तना का सहायी है। **गति सहायी किस जगह कहा है?** तुमने यह और कहाँ डाला गति सहाय? कहाँ से डाला? उसका समाधान सुन।

उसका समाधान श्री पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्दाचार्य ने क्रियावन्त और अक्रियावन्त के व्याख्यान में कहा है। लो! पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहा है। है न? (गाथा-९८)

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति णय सेसा।
पुग्गलकरणा जीवा खंदा खलु कालकारणेहिं॥

इसका अर्थ ऐसा है कि जीव और पुद्गल ये दोनों क्रियावन्त हैं,... जीव और परमाणु दो ऐसे गति करते हैं। वह उपादान अपना। **और शेष चार द्रव्य अक्रियावाले हैं,...** वह अपना उपादान है। स्थिर (रहना वह)। **हलन-चलन क्रिया से रहित हैं।** धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, वह हलन-चलन रहित है। **जीव को दूसरी गति में गमन का कारण कर्म है, वह पुद्गल है...** एक जीव दूसरी गति में जाये, मनुष्य होकर स्वर्ग में जाये। जाता है उपादान स्वयं के कारण से। क्या? श्रेणिक राजा नरक में गये, वह उपादान कारण स्वयं का। परन्तु कर्म और नोकर्म उसे निमित्त कहा जाता है।

गति में भले धर्मास्ति निमित्त हो, परन्तु उसे कर्म और नोकर्म भी निमित्त कहा जाता है। कर्म, नोकर्म उन्हें नरक में ले गये, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कर्म है, वह पुद्गल है और पुद्गल को गमन का कारण काल है। लो! पुद्गल साथ में चले न वापस, जीव को गमन में धर्मास्ति तो सबको निमित्त है। ऐसे जीव गया, यहाँ से स्वर्ग में जाये, अब जीव और पुद्गल दो गमन करे, उन दोनों को धर्मास्ति निमित्त है। अब जीव को पुद्गल निमित्त है और पुद्गल को काल निमित्त है। समझ में आया? यह कहीं बहुत सूक्ष्म नहीं, हों! यह तो मात्र जानने की बात है।

मुमुक्षु : स्याद्वाद से सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद से सरल है।

जैसे धर्मद्रव्य के मौजूद होने पर भी मच्छों को गमनसहायी जल है,... जैसे धर्मद्रव्य की अस्ति है, सब जड़-चैतन्य की गति में, उसी प्रकार मछली को पानी अस्ति है। **उसी तरह पुद्गल को धर्मद्रव्य के होने पर भी द्रव्यकाल गमन का सहकारी कारण है।** पुद्गल द्रव्य यह परमाणु गति करे, यह शरीर, वाणी ऐसा बोले, लकड़ी चले, यह जो ऐसे चले। पाट, बाट जब चले न? वह हिले उसे धर्मास्ति तो निमित्त है, तथापि द्रव्य-काल गमन का सहकारी कारण है। कालद्रव्य भी उसे निमित्त कारण है। समझ में आया?

यहाँ निश्चयनयकर... अब अन्तिम योगफल। यह सब व्यवहार से जानकर श्रद्धा करनेयोग्य है, परन्तु अब निश्चय आदरनेयोग्य क्या? यह तो जाननेयोग्य कहा। वस्तु है तो ज्ञान तो उसका बराबर करना चाहिए न, ऐसा कहते हैं। **निश्चयनयकर गमनादि क्रिया से रहित...** देखो! यह क्रिया है, वह व्यवहार विषय हुआ। **निःक्रिय सिद्धस्वरूप के समान...** सिद्धस्वरूप समान आत्मा निष्क्रिय, आत्मा निष्क्रिय एकरूप वस्तु। गति-बति वह व्यवहार में गया। व्यवहारनय। **निःक्रिय निर्द्वन्द्व निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** देखा? भगवान आत्मा। दो द्वंद्व ही नहीं जिसमें, दो प्रकार नहीं, ऐसा एक प्रकार, एक प्रकार। कितने पहलू कहे? सब पहलू व्यवहार ज्ञान को जानने में है, व्यवहार समकित का विषय है। परन्तु भगवान निश्चय सम्यग्दर्शन में अकेला निष्क्रिय निर्द्वन्द्व, जिसमें द्वन्द्व ही नहीं, उपाधि नहीं, भेद नहीं। ऐसा निज शुद्धात्मा अपना पवित्र

आत्मा, उसे श्रद्धा में लेने योग्य है, वह सम्यग्दर्शन का कारण निर्द्वन्द्व आत्मा है, ऐसा कहते हैं। यह सब व्यवहार कारण कहे, वे जाननेयोग्य हैं। परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शन का कारण तो भगवान (स्वयं है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सार तो यही है न! वह जाननेयोग्य रह गया और आदरनेयोग्य यह रह गया। दो कहे। आदरनेयोग्य यह और जाननेयोग्य वह। यह जानकर आदरनेयोग्य, उसे जानकर छोड़नेयोग्य। आहाहा! समझ में आया? '**निजशुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति तात्पर्यम्।**'

भगवान आत्मा वह क्रियावाली गति या क्रिया करके स्थिर हो, गति स्थिर हो, राग-द्वेष हो या वह पर्याय का भाग हो, गुण-गुणी का भाग हो, वे सब जानने के लिये भले हो। आदरने के लिये तो एक वस्तु, एक स्वरूप अभेद शुद्ध निर्द्वन्द्व है, वही अन्दर श्रद्धा और ज्ञान में आदरणीय है।

मुमुक्षु : पहले जानना या पहले आदरना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाने बिना आदरेगा किसे? ज्ञान बिना यह आदरना किसका होगा? यह ज्ञान उसका हुआ, तब उसे आदरणीय माना। उसका ज्ञान हुआ, तब उसे हेय जाना। व्यवहार को जाना, तब उसे हेय जाना। इस निश्चय को ज्ञायक अखण्ड है, ऐसा जाना, तब उसे उपादेय करके आदरणीय माना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ऐसा ही होता है न पहले, उसमें क्या है? आदरनेयोग्य तो यह ही है। व्यवहार समकित का विषय आदरनेयोग्य है? व्यवहार समकित स्वयं ही आदरनेयोग्य नहीं। व्यवहार समकित विकल्प है। है, परन्तु है न? ऐसा कहते हैं। बातें ऐसी हैं, भाई! यह वीतराग अनेकान्त वस्तु यह है और यह भी है, यह आदरणीय है और यह जाननेयोग्य है, आदरणीय है नहीं। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। दो में से एक निकाल डाले-व्यवहार निकाल डाले तो निश्चय नहीं रहे, निश्चय निकाल डाले तो व्यवहार किसका यह? समझ में आया? आदरणीय नहीं, वे तो कहते हैं कि व्यवहार

है, उसे आदरणीय मानो। निश्चय आदरणीय मानो, तो दो को माना कहलाये। ऐसा नहीं है। दृष्टान्त देते हैं न कि यदि निश्चय को नहीं मानो तो तत्त्व का नाश होगा, व्यवहार को नहीं मानो तो तीर्थ का नाश होगा। इसलिए व्यवहार वह तीर्थ और व्यवहार, वह धर्म है, व्यवहार से धर्म होता है, ऐसा (वे) सिद्ध करते हैं। ऐसा नहीं है। व्यवहार नहीं मानो तो तीर्थ अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय राग, भेद, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान भेद, वह कुछ सिद्ध नहीं होंगे, ऐसा कहते हैं। आदरणीय (करने का) प्रश्न नहीं। निश्चय न मानो आत्मा अखण्डानन्द का आदर न करो, तब तो वस्तु कहाँ रही तेरी? समझ में आया?

इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थों में भी निश्चयकर हलन-चलनादि क्रिया रहित जीव का लक्षण कहा है। जीव का लक्षण सही। अमृताशीति में। **गति से गत्यन्तर को जाना है, तब तक दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध है,...** क्या कहा? एक गति से दूसरी गति में जब तक गमन करे, गति, हों! सिद्ध में गमन करे, वह नहीं, गति नहीं। यह एक गति से दूसरी गति, इसलिए ऐसा कहा न! एक गति से दूसरी गति करे, तब तक उसे दूसरे द्रव्य का निमित्त सम्बन्ध है। निमित्त सम्बन्ध है, हों! उससे हो, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। तब तक द्वैत है। द्वैत है न? पाठ में ऐसा है। **'द्वैतस्य गोचराः'।** संस्कृत पाठ है। **जब दूसरे का सम्बन्ध मिटा, अद्वैत हुआ,...** क्रिया मिटकर स्थिर हो गया तो निमित्त का सम्बन्ध छूट गया। कर्म और नोकर्म का सम्बन्ध था, वह नहीं रहा। **अद्वैत हुआ, तब निकल अर्थात् शरीर से रहित निःक्रिय है,...** निकल अर्थात् शरीर रहित और कल अर्थात् शरीर। शरीर रहित अकेला भगवान हो गया आत्मा, फिर उसे हलन-चलन रहा नहीं।

उसके हलन-चलनादि क्रिया कहाँ से हो सकती है,... वह स्थिर हुआ, उसे हलन-चलन कैसे हो अपने उपादान से? इसलिए उसे निमित्त भी कर्म, नोकर्म नहीं। कर्म, नोकर्म थे, इसलिए गति करता था, ऐसा नहीं है। कर्म, नोकर्म नहीं, इसलिए स्थिर हो गया, ऐसा नहीं। आहाहा! स्थिर जहाँ सिद्ध स्वयं गमन करते स्थिर हो गये तो उन्हें अब चलन नहीं, इसलिए निमित्त भी नहीं। यहाँ हलन-चलन का उपादान है, तो दूसरे निमित्त गति आदि, कर्म आदि, नोकर्म निमित्त है। बहुत सरस बात है। **अर्थात् संसारी जीव के कर्म के सम्बन्ध से गमन है,...** गमन की क्रिया उपादान से होती है, तब कर्म

का उसमें सम्बन्ध है, ऐसा लेना। वापस ऐसा नहीं कर्म का सम्बन्ध है, इसलिए गति करते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह तो ऊपर से डाला है इन्होंने। संसारी जीव राग-द्वेष, अज्ञान या अस्थिरता एक गति से दूसरी गति हो, वह सब है, तब तक उसे कर्म का सम्बन्ध है। **सिद्ध भगवान कर्मरहित निःक्रिय हैं,...** स्वयं के कारण से। भगवान स्वयं स्थिर शुद्ध पर्याय में स्थिर हो गये, गति रही नहीं। **उनके गमनागमन क्रिया कभी नहीं हो सकती।** कर्म सम्बन्ध नहीं। कहो, समझ में आया? लो! एक गाथा हुई।

दूसरे प्रकार से इस बार आया है, हों! व्यवहार समकित का सक्रियपना जानपना ऐसा विशेष स्पष्ट आया। यह उपादान उसका ही है। उसकी क्रिया में राग का, विकार का कारण वह द्रव्य ही है। उसकी पर्याय का अस्तित्व उसके कारण से है, उसकी पर्याय का अस्तित्व पर के कारण से नहीं। ऐसा भी उसका भेद भले भाव हो, परन्तु वह भाव स्वयं से है, ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। पर के कारण से है, ऐसा मानना नहीं चाहिए। परन्तु वहाँ पर एक निमित्त नहीं, ऐसा भी मानना नहीं चाहिए। निमित्त चीज़ है। समझ में आया?

गाथा - २४

अथ पञ्चास्तिकायसूचनार्थं कालद्रव्यमप्रदेशं विहाय कस्य द्रव्यस्य कियन्तः प्रदेशा भवन्तीति कथयति -

१४७) धम्माधम्मु वि एक्कु जिऊ ए जि असंख्य-पदेस।
गयणु अणंत-पएसु मुणि बहु-विह पुग्गल-देस।।२४।।

धर्माधर्मौ अपि एकः जीवः एतानि एव असंख्यप्रदेशानि।
गगनं अनन्तप्रदेशं मन्यस्व बहुविधाः पुद्गलदेशाः।।२४।।

धम्माधम्मु वि इत्यादि। धम्माधम्मु वि धर्माधर्मद्वितयमेव एक्कु जिउ एको विवक्षितो जीवः। ए जि एतान्येव त्रीणि द्रव्याणि असंख्य-पदेश असंख्येयप्रदेशानि भवन्ति। गयणु गगनं अणंत-पएसु अनन्तप्रदेशं मुणि मन्यस्व जानीहि। बहु-विह बहुविधा भवन्ति। के ते। पुग्गलदेस पुद्गलप्रदेशाः। अत्र पुद्गलद्रव्यप्रदेशविवक्षया प्रदेशशब्देन परमाणवो ग्राह्याः न च क्षेत्रप्रदेशा इति। कस्मात्। पुद्गलस्यानन्तक्षेत्रप्रदेशाभावादिति। अथवा पाठान्तरम्। 'पुग्गलु तिविहु पएसु'। पुद्गलद्रव्ये संख्यातासंख्यातानन्तरूपेण त्रिविधाः प्रदेशाः परमाणवो भवन्तीति। अत्र निश्चयेन द्रव्यकर्माभावादमूर्ता मिथ्यात्वरागादिरूपभावकर्मसंकल्पविकल्पाभावात् शुद्धिलोकाकाश-प्रमाणेनासंख्येयाः प्रदेशा यस्य शुद्धात्मनः स शुद्धात्मा वीतरागनिर्विकल्पसमाधिपरिणतिकाले साक्षादुपादेय इति भावार्थ।।२४।।

आगे पंचास्तिकाय के प्रगट करने के लिये कालद्रव्य अप्रदेशी को छोड़कर अन्य पाँच द्रव्यों में से किसके कितने प्रदेश हैं, यह कहते हैं -

एक जीव अरु धर्माधर्म द्रव्य के संख्यातीत प्रदेश।
है आकाश अनन्त प्रदेशी पुद्गल के हैं बहुविध देश।।२४।।

अन्वयार्थ :- [धर्माधर्मौ] धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य [अपि एकः जीवः] और एक जीव [एतानि एव] इन तीनों ही को [असंख्यप्रदेशानि] असंख्यात प्रदेशी [मन्यस्व] तू जान, [गगनं] आकाश [अनंतप्रदेशं] अनंतप्रदेशी है, [पुद्गलप्रदेशाः] और पुद्गल के प्रदेश [बहुविधाः] बहुत प्रकार के हैं, परमाणु तो एकप्रदेशी है, और स्कंध संख्यातप्रदेश, असंख्यातप्रदेश तथा अनंतप्रदेशी भी होते हैं।

भावार्थ :- जगत् में धर्मद्रव्य तो एक ही है, वह असंख्यातप्रदेशी है, अधर्मद्रव्य भी एक है, असंख्यातप्रदेशी है, जीव अनंत हैं, सो एक एक जीव असंख्यातप्रदेशी हैं, आकाशद्रव्य एक ही है, वह अनंत प्रदेशी है, ऐसा जानो। पुद्गल एक प्रदेश से लेकर अनंत प्रदेश तक है। एक परमाणु तो एक प्रदेशी है, और जैसे जैसे परमाणु मिलते जाते हैं, वैसे वैसे प्रदेश भी बढ़ते जाते हैं, वे संख्यात-असंख्यात अनंत प्रदेश तक जानने, अनंत परमाणु इकट्ठे होवें, तब अनंत प्रदेश कहे जाते हैं। अन्य द्रव्यों के तो विस्ताररूप प्रदेश हैं, और पुद्गल के स्कन्धरूप प्रदेश हैं। पुद्गल के कथन में प्रदेश शब्द से परमाणु लेना, क्षेत्र नहीं लेना, पुद्गल का प्रचार लोक में ही है, अलोकाकाश में नहीं है, इसलिये अनंत क्षेत्र प्रदेश के अभाव होने से क्षेत्र-प्रदेश न जानने। जैसे जैसे परमाणु मिल जाते हैं, वैसे वैसे प्रदेशों की बढ़वारी जाननी। इसी दोहा के कथन में पाठांतर 'पुग्गलु तिविहु पएसु' ऐसा है, उसका अर्थ यह है कि पुद्गल के संख्यात, असंख्यात, अनन्त प्रदेश परमाणुओं के मेल से जानना चाहिए, अर्थात् एक परमाणु एक प्रदेश, बहुत परमाणु बहु प्रदेश, यह जानना। सूत्र में शुद्धनिश्चयकर द्रव्यकर्म के अभाव से यह जीव अमूर्तीक है, और मिथ्यात्व रागादिरूप भावकर्म संकल्प विकल्प के अभाव से शुद्ध है, लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशवाला है, ऐसा जो निज शुद्धात्मा वही वीतरागनिर्विकल्पसमाधिदशा में साक्षात् उपादेय है, यह जानना।।२४।।

गाथा-२४ पर प्रवचन

आगे पंचास्तिकाय के प्रगट करने के लिये... छह द्रव्य है न? उसमें काल है, वह एक-एक अणु है। उसकी अस्ति है, परन्तु काय नहीं। ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा इसे बराबर व्यवहार ज्ञान में आना चाहिए। कोई उड़ा दे कि छह द्रव्य नहीं और अकेला आत्मा है और छह द्रव्य का क्या काम है? यह नहीं। ऐसा नहीं चलता, कहते हैं। छह द्रव्य का निर्णय करके उसमें से छाँटना एक आत्मा को। सक्रिय राग-द्वेषवाली पर्याय है, ऐसा निर्णय करके छाँटना अकेले आत्मा को। समझ में आया? **कालद्रव्य अप्रदेशी को छोड़कर...** काल है न? एक-एक प्रदेश है, उसे बहुत प्रदेश नहीं। **अन्य पाँच द्रव्यों में से किसके कितने प्रदेश हैं,...** वापस पाँच पदार्थ हैं। काल के अतिरिक्त, उसमें प्रदेश

कितने ? क्षेत्र कितना चौड़ा उनका ? यह भी इसे बराबर ज्ञान में व्यवहार समकित के विषय में जानना चाहिए।

१४७) धम्माधम्मु वि एक्कु जिऊ ए जि असंख्य-पदेस।
गयणु अणंत-पएसु मुणि बहु-विह पुग्गल-देस॥२४॥

अन्वयार्थ :—धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य और एक जीव इन तीनों ही को असंख्यात प्रदेशी तू जान,... देखो ! उनके क्षेत्र की बात करते हैं। आत्मा एक ही ऐसे अखण्ड पूरा आत्मा है, दूसरे द्रव्य नहीं और दूसेर क्षेत्र-वस्तु नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार समकित में ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य और जीव के असंख्य प्रदेश। भेद पड़ा न असंख्य प्रदेश ? वह सब व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय है।

मुमुक्षु : ऐसा जाने, उसे धर्म कहा जाये या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है, धर्म नहीं कहा जाता, व्यवहार धर्म कहा जाता है। निश्चय धर्म होवे तो, व्यवहार धर्म अर्थात् पुण्य। समझ में आया ?

मुमुक्षु : घरबार छोड़कर ऐसा सब करें तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : घर-बर कहाँ छोड़ा था ? कहाँ था तुम्हारे पास घर-बर। घर-बर कब घुस गया था, वह तुम छोड़कर आओ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा कौन करता था ? धन्धा किसने किया है ? कौन कहता है किया है ? राग-द्वेष को अज्ञान करता था। उसे छोड़कर आवे तो बैठे अन्दर में। कहो, समझ में आया ?

आकाश अनन्त प्रदेशी है, और पुद्गल के प्रदेश बहुत प्रकार के हैं, परमाणु तो एक प्रदेशी है, और स्कन्ध संख्यातप्रदेश, असंख्यातप्रदेश तथा अनन्त प्रदेशी भी होते हैं। इस प्रकार इसे बराबर जानना चाहिए, इसे ज्ञान में व्यवहार ज्ञान, व्यवहार श्रद्धा का विषय ऐसा होता है, निश्चय से तो आत्मा अखण्ड, वही आदरणीय है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५९२, पौष शुक्ल ७, बुधवार
दिनांक-२९-१०-१९६५, गाथा-२४ से २६, प्रवचन-८९

२४वीं गाथा है। यह व्यवहार समकित का विषय क्या है, यह चलता है। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन, वह तो आत्मा एकरूप अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह परद्रव्य का कर्ता नहीं और राग का वह कर्ता नहीं। परद्रव्य की अवस्था, आत्मा के अतिरिक्त अनन्त पदार्थ, उनकी अवस्था उनसे होती है, उसे आत्मा नहीं करता। बहिरबुद्धि, तीव्र बहिरबुद्धि ऐसा मानता है कि परपदार्थ के कार्य मैं करता हूँ और उससे अन्तर बहिरबुद्धि हो—बाहर की बुद्धि (हो) परन्तु राग-द्वेष और विकार का कर्ता, वह अन्तर में बहिरबुद्धि। विकार के परिणाम, वह जीव का कार्य है अथवा जीव के अस्तित्व में है। समझ में आया? वह भी मिथ्यात्वभाव के लक्षण में जाता है।

अन्तरबुद्धि, आत्मा अन्तर आत्मा, अन्तर स्वभावबुद्धि होने पर वह ज्ञान, दर्शन आदि आनन्द की दशा का ही कर्ता होता है। वह पुण्य-पाप व्यवहार और पर का कर्ता (नहीं होता)। पर का कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं है। अथवा पर का अस्तित्व तो अज्ञान में भी यहाँ नहीं है। समझ में आया? आत्मा के अस्तित्व में परपदार्थ का अस्तित्व तो यहाँ एक समयमात्र भी नहीं है। इसलिए उसका अपने में अस्तित्व मानना, वह तो तीव्र मिथ्यात्वभाव है। परन्तु विकार का, विकारी का अस्तित्व जीव में एक समयमात्र विकृतभाव है, उतना भी जीवद्रव्य में-स्वभाव में मानना, वह भी मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

भगवान तो ज्ञानमूर्ति आत्मा चैतन्यप्रभु है। उसके अस्तित्व में पर का अभाव है। ऐसे विकार के भाव का अस्तित्व का अभाव है। यहाँ पर का अस्तित्व जो सिद्ध करते हैं, वह मात्र सम्यग्दर्शन का विषय है, वह ऐसा है, ऐसा उसका मानना-जानना चाहिए। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन के विषय में तो अकेला अखण्ड ज्ञायकमात्र आत्मा ही उसका विषय और कारण है। उसके अस्तित्व में विकार भी नहीं और पर भी नहीं। अथवा विकार का वह कर्ता नहीं और पर का वह कर्ता नहीं। अब उस आत्मा के अभेद स्वभाव की दृष्टि होने पर भी जब तक पूर्ण वीतराग नहीं, इसलिए उसे व्यवहार

राग की श्रद्धा कि यह छह द्रव्य हैं, उनके गुण हैं, प्रदेश हैं, वे जैसे हैं, वैसे व्यवहार से श्रद्धा करना, जानना उसे व्यवहार समकित का भाव शुभराग, शुभउपयोग कहते हैं। समझ में आया? यह उसकी बात है, देखो!

भावार्थः—जगत में धर्मद्रव्य तो एक ही है,... धर्मास्तिकाय, उसे व्यवहार समकित का विषय है, उसे मानना चाहिए। **वह असंख्यातप्रदेशी है, अधर्मद्रव्य भी एक है, असंख्यातप्रदेशी है,...** अधर्मास्ति। है न? भाई! २४वीं गाथा, २४ का भावार्थ। २४ का भावार्थ समझ में आया? **जीव अनन्त हैं, सो एक-एक जीव असंख्यात प्रदेशी हैं,...** वह भी इसे व्यवहार समकित के ज्ञान में अथवा शुभ उपयोग में मानना चाहिए। समझ में आया? **आकाशद्रव्य एक ही है, वह अनन्त प्रदेशी है,...** आकाश एक तत्त्व है, उसके प्रदेश अनन्त हैं। **ऐसा जानो।** देखो! जानो कहा है न? छह द्रव्य, वह व्यवहार समकित का विषय है, उसे बराबर जानना चाहिए। व्यवहार समकित के छह द्रव्य का निषेध करे तो उसका अभेद एक द्रव्य का निश्चय भी सच्चा नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

पुद्गल एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक है। एक परमाणु तो एक प्रदेशी है, और जैसे-जैसे परमाणु मिलते जाते हैं, वैसे-वैसे प्रदेश भी बढ़ते जाते हैं,... यह उसके कारण से (होता है), ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। एक रजकण से लेकर **वे संख्यात-असंख्यात अनन्त प्रदेश तक जानने,...** यह सब उसके कारण से इकट्ठे होते हैं, उसके कारण से पृथक् पड़ते हैं, ऐसा व्यवहार समकित की श्रद्धा में इसे जानना चाहिए। समझ में आया? **अनन्त परमाणु इकट्ठे होवें,...** देखा? **तब अनन्त प्रदेश कहे जाते हैं। अन्य द्रव्यों के तो विस्ताररूप प्रदेश हैं,...** एक बात। अब आत्मा, आकाश आदि के प्रदेश ऐसे विस्तार है। **और पुद्गल के स्कन्धरूप प्रदेश हैं।** उसे पुद्गल अर्थात् स्कन्धरूप प्रदेश है, ऐसे पिण्डरूप प्रदेश है। ऐसा इसे व्यवहार समकित में स्कन्ध के अनन्त प्रदेश ऐसे पिण्डरूप होते हैं, ऐसा इसे मानना, जानना चाहिए। आत्मा से होते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया? वे अनन्त रजकण इकट्ठे हों, पृथक् पड़े, ऐसा है। ऐसा इसे व्यवहार ज्ञान में, श्रद्धा में, श्रद्धा करनी चाहिए। आत्मा से वे होते हैं, यह बात तो व्यवहार समकित में भी नहीं आती। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार से होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से होता है अर्थात् उससे होता है, इससे कब होता है? व्यवहार समकित अर्थात् ऐसा पर सम्बन्धी के ज्ञान में इस प्रकार स्वतन्त्र रजकण उसके कारण से इकट्ठे होते हैं, पृथक् पड़ते हैं, ऐसा इसे मानना चाहिए। मुझसे इकट्ठे होते हैं, ऐसा तो व्यवहार समकित में भी मानने का नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

पुद्‌गल के कथन में प्रदेश शब्द से परमाणु लेना,... पुद्‌गल में एक प्रदेश कहा न? एक रजकण, उसे यहाँ प्रदेश कहा। वह क्षेत्र नहीं लेना, रजकण लेना एक द्रव्य, ऐसा। **पुद्‌गल का प्रचार लोक में ही है,...** पुद्‌गल के रजकण लोक में, **अलोकाकाश में नहीं है, इसलिए अनन्त क्षेत्र प्रदेश के अभाव होने से...** अनन्त परमाणु के अनन्त प्रदेश कहे न? वे प्रदेश क्षेत्र के नहीं लेना, परन्तु परमाणु के लेना, ऐसा कहते हैं। क्षेत्र तो आकाश के प्रदेश अनन्त बाहर हैं, यहाँ कहीं अनन्त नहीं हैं। वह तो लोक में अनन्त प्रदेश है, इसलिए परमाणु प्रदेश लेना। समझ में आया?

क्षेत्र-प्रदेश न जानने। जैसे-जैसे परमाणु मिल जाते हैं,... देखो! रजकण जैसे-जैसे दो, पाँच, पच्चीस, पचास, सौ, असंख्य, अनन्त। **वैसे-वैसे प्रदेशों की बढ़वारी जाननी।** ऐसे बढ़ते हैं, वे उसके कारण से, ऐसा जानना, आत्मा के कारण से नहीं। दूसरे **'पुग्गलु तिविहु पएसु'** कहा है। **पुद्‌गल के संख्यात, असंख्यात, अनन्त प्रदेश परमाणुओं के मेल से जानना चाहिए...** देखो! रजकण के मिलाप से होता है। **अर्थात् एक परमाणु एक प्रदेश, बहुत परमाणु बहु प्रदेश, यह जानना।** अब इसका सिद्धान्त। ऐसी श्रद्धा करना, जानना कि ऐसे अनन्त रजकण, अनन्त आत्मायें आदि अपने आप वहाँ हैं। परन्तु अब आदरणीय क्या है उसमें? यह तो व्यवहार जाननेयोग्य कहा।

सूत्र में शुद्धनिश्चयकर द्रव्यकर्म के अभाव से... शुद्ध वस्तु से देखें तो उस कर्म का भी भगवान आत्मा में अभाव है। क्योंकि कर्म पुद्‌गल है। उस पुद्‌गल का कहीं आत्मद्रव्य में भाव नहीं। यह अस्तित्व की बात चलती है न? अस्तित्व। तो अस्तित्व की बात की है कि, यह पुद्‌गल है, यह है, कर्म है, इकट्ठे हों, कर्म के रजकण इकट्ठे हों, धर्मास्ति आदि। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी वस्तु है, वह शुद्ध निश्चय से द्रव्यकर्म अर्थात् जड़कर्म के अस्तित्व के अभावरूप है। आत्मा में—वस्तु में जड़कर्म का अभाव है। जड़कर्म का अस्तित्व तो पुद्‌गल में अस्तित्व है। समझ में आया? भगवान आत्मा

उस पुद्गल के अस्तित्व का तो आत्मा में अभाव है। वहाँ है, वह तो जाननेयोग्य कहा। समझ में आया? एक बात। इस कारण से भगवान आत्मा अमूर्तिक अभी है। अभी है, हों!

दूसरी बात। **और मिथ्यात्व रागादिरूप भावकर्म संकल्प-विकल्प के अभाव से शुद्ध है,...** उसके अस्तित्व में वास्तव में तो भ्रमणा और पुण्य-पाप के राग भी आत्मा के स्वभाव के अस्तित्व में नहीं है। समझ में आया? यह तो अज्ञानरूप से खड़े किये हुए पुण्य और पाप और राग-द्वेष इसकी एक समय की पर्याय में दिखते हैं। वस्तु के स्वभाव में देखो तो वह पुण्य-पाप और मिथ्यात्व का भाव इसकी अस्ति में—विद्यमानता में अभाव है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे आत्मा की अन्दर में श्रद्धा करना और देखना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। भगवान आत्मा... दूसरे पुद्गल की बात नहीं की, परन्तु कर्म के पुद्गल जो इकट्ठे हुए, उनका भी आत्मा में अभाव है। ऐसा यह आत्मा अमूर्तिक वस्तु है। और मिथ्याभ्रान्ति पुण्य-पाप मेरे हैं, शरीर मेरा है, पर में सुख है—ऐसी भ्रान्ति और राग-द्वेष के परिणाम भावकर्म, ऐसे संकल्प-विकल्प का वस्तु में अभाव है। वस्तु के अस्तित्व में—ज्ञानानन्द भगवान आत्मा में एक समय की विकृत ऊपर से जो अवस्था उत्पन्न होती है, वह वस्तु में नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

अर्थात् कि परद्रव्य का काम आत्मा नहीं करता क्योंकि उसमें आत्मा का अस्तित्व नहीं और पुण्य-पाप के भाव भी वास्तव में आत्मा का कार्य नहीं, क्योंकि बहिरबुद्धि से वहाँ लक्ष्य है, वहाँ उसका कर्ता होता है। अन्तरबुद्धि, ज्ञायकबुद्धि हुई तो उसके आत्मा में विकार के व्यवहार परिणाम जो हैं, वे भी हैं नहीं। तो वे आत्मा को काम नहीं आते, आत्मा का वह कार्य नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई! कहो, जुगराजजी! यह तो आत्मा के बहुत काम आता है। आहाहा! आत्मा को बहुत काम आता है भोगने में। अरे! भगवान! यह तो स्थूल बात की भी खबर नहीं होती। लेख ऐसे हैं बेचारे, हों! क्या करे? शास्त्र के ऐसे लेख हैं। कर्म के आधार से जीव और उसे इस आधार से यह और उसके आधार से यह, शास्त्र में ऐसे लेख बहुत होते हैं न! श्वेताम्बर शास्त्रों में ऐसा बहुत भरा है। कहीं आत्मा का पता नहीं लगता।

यहाँ तो कहते हैं, अस्ति बताते हैं, हों! यहाँ। तथापि वह पुद्गल का अस्तित्व इकट्ठा होना, पृथक् पड़ना, उसके कारण से और उस कर्म का इकट्ठा होना या पृथक् पड़ना भी उसके कारण से है। कर्म बँधना, कर्म छूटना, संक्रमण होना इत्यादि है न? वह रजकण में उसके कारण से है। आहाहा! वह इसमें आ जाये या नहीं इसमें? ऐई! कर्म का उदय आना, सत्ता में से पाक होना, उसका फेरफार होना, उन सबका आत्मा के स्वभाव में अस्तित्व का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए उसे अमूर्तिक कहा। मूर्तपने का वस्तु में अभाव है, इसलिए अमूर्तिक कहा और पुण्य-पाप के मिथ्याभ्रान्ति के अशुद्ध परिणाम का अस्तित्व वस्तु में नहीं, इसलिए उसे शुद्ध कहा। अमूर्त और शुद्ध को सिद्ध करने की दो पद्धतियाँ कही है। समझ में आया?

शुद्धनिश्चयकर, मिथ्यात्व रागादिरूप भावकर्म संकल्प विकल्प के अभाव से शुद्ध है,... भगवान अन्तर्मुख स्वभाव, उसका तो शुद्ध ज्ञान, चैतन्य, आनन्द (स्वभाव) है। वह वस्तु स्वयं अन्तर्मुख दृष्टि का तत्त्व वह वस्तु अन्तर्मुख दृष्टि हुई, वह फिर पर के कार्य का अस्तित्व अपने में तो नहीं, परन्तु विकार का अस्तित्व और कार्य भी उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा!

सवेरे से उठा... यह तुम्हारा याद आया। सवेरे से उठा, तब से दन्तमंजन, पश्चात् पानी, पश्चात् चाय, पश्चात् दूध, पश्चात् यह, पश्चात् यह, पूरे दिन मानो कि, यह सब काम ही मैं करता हूँ। देरी लगती है न? तुम अन्त में आये न। सब काम हो न थोड़े-बहुत अकेले को भी। कहो, समझ में आया इसमें? सवेरे से उठे वहाँ दन्तमंजन करना, मुख साफ करना... एक-एक क्रिया हराम कर सकता हो तो। यहाँ क्या कहा जाता है?

इसके अस्तिव में, इसके होनेपने में हो, उसका करे। इसके अस्तित्व में न हो, उसका यह क्या करे? एक बात। समझ में आया? इसके अस्तित्व में यह दन्तमंजन, यह लकड़ी इसके—आत्मा के अस्तित्व में है? इसके अस्तित्व में यह मुख दाल, भात और ढीकला, दूध और चाय... वह तो इसके अस्तित्व में है नहीं। है नहीं उसे स्पर्शे कैसे? और है नहीं, उसे करे कैसे?

अब इसमें है विकार। पुण्य, पाप और भ्रान्ति पर्याय विकार की। वह जब तक इसके अस्तित्व में ऐसी दृष्टि पड़ी है, पर्याय में दृष्टि पड़ी है, वहाँ तक उस विकार का

कर्ता (होता है)। (अपने) अस्तित्व में मानता है, इसलिए कर्ता होता है। समझ में आया? इसलिए उसमें ऊपरी तौर से जो विकल्प बहिरबुद्धि से होता था, वह वस्तु के स्वभाव में नहीं है। समझ में आया? बहिरबुद्धि से जो विकार का अस्तित्व क्षणिक जो अन्तर में भासित होता था, वह वस्तु की दृष्टि (हुई कि) यह तो ज्ञायक शुद्ध चैतन्य है। इसके अस्तित्व में विकल्प का अस्तित्व भी उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसमें नहीं, उसका यह करे क्या? अब ऐसा कहना है यहाँ तो। समझ में आया? क्या होगा इसमें? मशीन हिलाते थे अब बन्द हो गये? हिला करती है। वह तो हिला ही करती थी पहले भी। तुम्हारे से कहाँ हिलती थी? वह यह कहते हैं, भाई! तेरे अस्तित्व में हो, उसमें तेरा अस्तित्व और फेरफार करने का रहे। तेरे अस्तित्व में शरीर, कर्म, पुद्गल, पैसा, स्त्री, पुत्र, कर्म हराम तीन काल में तुझमें हो तो। कभी नहीं तुझमें। आहा! नहीं तुझमें उसे तू क्यों मेरा करके मानता है? और मेरा करके करे, वह कैसे बने? मेरे रूप से मान सकता है, परन्तु मेरे रूप से वह अन्दर में आ नहीं सकते। समझ में आया? तुझमें नहीं, उन्हें मेरे रूप से मान सकता है, उल्टी दृष्टि से। परन्तु वे नहीं, वे तेरे हो सके, माने तो भी हो सके, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

दूसरी बात। तेरे अस्तित्व में तेरे प्रदेश में एक समय की दशा में पुण्य-पाप के विकार का अस्तित्व एक समय की अवस्था में प्रदेशों के ऊपर के भाग में उसके समय में है, वह अस्तित्व है, उसके अस्तिपने में इतने में जब तक दृष्टि है, तब तक उसका कर्ता और वहाँ तक मुझमें है, ऐसा यह मानता है। तथापि त्रिकाल में तो वे हो नहीं जाते। समझ में आया?

जैसे दूसरे को अपना माने, तथापि अपने में होते नहीं। इसी प्रकार एक समय का पुण्य-पाप, काम-क्रोध के विकारों की कृत्रिमता को अपने में माने, उस अंश लक्ष्य में इसकी बुद्धि वहाँ पड़ी है, इसलिए माने और उसका कर्ता हो। तथापि, ऐसा होने पर भी वस्तु के त्रिकाल में उसका अस्तित्व प्रविष्ट नहीं हो जाता। समझ में आया? भगवान आत्मा, वह तो सकल्प-विकल्प की एक समय की विकृतदशा, उतना अस्तित्व मानता था, तब उसे मुझमें है और कर्ता मानता था।

यहाँ तो कहा, शुद्ध द्रव्य वस्तु... वस्तु... वस्तु... चाहिए, निश्चय से वस्तु तो

अकेली शुद्ध ज्ञायकमूर्ति अखण्डानन्द प्रभु है। ऐसी दृष्टि से देखने से विकार अस्ति में नहीं, इसलिए विकाररहित आत्मा शुद्ध है। समझ में आया? कहो, वजुभाई! समझ में आया इसमें? भारी सूक्ष्म, भाई! इसमें मशीन, बशीन और बँगला और मकान कहाँ आ गये? आहाहा! वे तो पुद्गल इकट्ठे हों, पृथक् हों। उनका अस्तित्व है, ऐसा एक विकल्प द्वारा, शुभभाव द्वारा मानना। बस, इतना। फिर विकल्प भी आदरणीय नहीं। क्योंकि वह विकल्प भी स्वरूप के शुद्ध स्वभाव में अस्तिपने नहीं। उसके विकल्प में अस्तिपने की बुद्धि रखे, तब तक वे मेरे हैं, ऐसा पर्यायबुद्धि से माने। समझ में आया? वस्तुबुद्धि से तो वह भी अपने में नहीं। दूसरे नहीं, वैसे विकार भी नहीं। वह वस्तु में नहीं। वस्तु में नहीं, इसलिए उसका वह कर्ता नहीं होता और उसके कार्य कर नहीं सकता। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान **लोकाकाशप्रमाण असंख्यात प्रदेशवाला है,...** दो बातें लीं। एक तो पर के अभावरूपी अमूर्त; विकार के अभावरूपी शुद्ध और लोकाकाश में असंख्य प्रदेश। **ऐसा जो निज शुद्धात्मा वही वीतरागनिर्विकल्पसमाधिदशा में साक्षात् उपादेय है,...** वह अन्तर्मुख दृष्टि के काल में... यहाँ स्थिर हो, ऐसा लेना है न! स्थिरता भी साथ में (लेनी है)। अन्तर वस्तु स्वभाव पूर्ण शुद्ध है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि से, बहिर्मुख की दृष्टि-विकल्प का अस्तित्व, अशुद्ध का और यह, यह दृष्टि गई और अन्तर्मुख की दृष्टि हुई, उस काल में यह शुद्धात्मा उपादेय है। समझ में आया? गजब बात, भाई! ओहोहो!

यह जानना। लो! साक्षात् उपादेय इति भावार्थ। वीतरागनिर्विकल्प समाधि परिणति काल में। समझ में आया? यही वीतराग निर्विकल्प समाधि दशा में। इस काल में कहा। विकल्प पुण्य-पाप के भाव और पर का अस्तित्व, उसके अस्तित्व की-अस्तित्व की दृष्टि छूटी और अपना एकरूप अस्तित्व शुद्ध स्वरूप है, ऐसी दृष्टि के काल में, एकाग्रता के काल में यह आत्मा शुद्ध है, वह अंगीकार करनेयोग्य हुआ, उपादेय हुआ। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! आहाहा! स्पष्ट बात तो ऐसी है, परन्तु इसने कभी दरकार नहीं की। कभी निवृत्ति से, शान्ति से यह क्या है? यह क्या वस्तु है? यह क्या है? यह क्या है? (इसका विचार नहीं किया)। समझ में आया? व्यवहार श्रद्धा में कहा, विकार है, पर है, ऐसा विषय, उसे व्यवहार समकित में माने, जाने। निश्चय में द्रव्यस्वभाव में वह है नहीं। आहाहा! २४ (गाथा) हुई। २५ (गाथा)।

गाथा - २५

अथ लोके यद्यपि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेन तिष्ठन्ति द्रव्याणि तथापि निश्चयेन संकरव्यतिकरपरिहारेण कृत्वा स्वकीयस्वकीयस्वरूपं न त्यजन्तीति दर्शयति -

१४८) लोयागासु धरेवि जिय कहियइँ दव्वइँ जाइँ।
एक्कहिं मिलियइँ इत्थु जगि सगुणहिं णिवसहिं ताइँ।।२५।।

लोकाकाशं धृत्वा जीव कथितानि द्रव्याणि यानि।
एकत्वे मिलितानि अत्र जगति स्वगुणेषु निवसन्ति तानि।।२५।।

लोयागासु इत्यादि। लोयागासु लोकाकाशं कर्मतापन्नं धरेवि धृत्वा मर्यादीकृत्य[१] जिय हे जीव अथवा लोकाकाशमाधारीकृत्वा ठियाइं आधेयरूपेण स्थितानि। कानि स्थितानि। कहियइं दव्वइं जाइं कथितानि जीवादिद्रव्याणि यानि। पुनः कथंभूतानि। एक्कहिं मिलियइं एकत्वे मिलितानि। इत्थु जगि अत्र जगति सगुणहिं णिवसहिं निश्चयनयेन स्वकीयगुणेषु निवसन्ति 'सगुणहिं' तृतीयान्तं करणपदं स्वगुणेष्वधिकरणं कथं जातमिति। ननु कथितं पूर्व प्राकृते कारकव्यभिचारो लिङ्गव्यभिचारश्च क्वचिद्भवतीति। कानि निवसन्ति ताइं पूर्वोक्तानि जीवादि-षड्द्रव्याणीति। तद्यथा। यद्यप्युपचरितासद्भूतव्यवहारेणाधाराधेयभावेनैकक्षेत्रावगाहेन तिष्ठन्ति तथापि शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन संकरव्यतिकरपरिहारेण स्वकीय-स्वकीयसामान्यविशेषशुद्धगुणान्न त्यजन्तीति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। हे भगवन् लोकस्तावद-संख्यातप्रदेशः परमागमे भणितः तिष्ठति तत्रासंख्यातप्रदेशलोके प्रत्येकं प्रत्येकमसंख्येयप्रदेशान्य-नन्तजीवद्रव्याणि, तत्र चैकैके जीवद्रव्ये कर्मनोकर्मरूपेणानन्तानि पुद्गलपरमाणुद्रव्याणि च तिष्ठन्ति तेभ्योऽप्यनन्तगुणानि शेषपुद्गलद्रव्याणि तिष्ठन्ति तानि सर्वाण्यसंख्येयप्रदेशलोके कथमवकाशं लभन्ते इति पूर्वपक्षः। भगवान् परिहारमाह। अवगाहनशक्तियोगादिति। तथाहि। यथैकस्मिन् गूढनागरसगद्याणके शतसहस्रलक्षसुवर्ण-संख्याप्रमितान्यवकाशं लभन्ते, अथवा यथैकस्मिन् प्रदीपप्रकाशे बहवोऽपि प्रदीपप्रकाशा अवकाशं लभन्ते, अथवा यथैकस्मिन् भस्मघटे जलघटः सम्यगवकाशं लभन्ते, अथवा यथैकस्मिन् उष्ट्रीक्षीरघटे मधुघटः सम्यगवकाशं लभते। अथवा यथैकस्मिन् भूमिगृहे बहवोऽपि पटहजयघण्टादिशब्दाः सम्यगवकाशं लभन्ते, तथैकस्मिन् लोके विशिष्टावगाहनशक्ति योगात् पूर्वोक्तानन्तसंख्या जीवपुद्गला अवकाशं लभन्ते नास्ति विरोधः इति। तथा चोक्तं जीवानामवगाहनशक्तिस्वरूपं परमागमे - 'एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा। सिद्धे हिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण।।'

---

१. पाठान्तर :- कृत्य = कृत्वा

पुनस्तथोक्तं पुद्गलानामवगाहनशक्तिस्वरूपम् – 'ओगाढगाढणिचिदो पुग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो। सुहुमेहिं बादरेहिं य णंताणं तेहिं विविहेहिं।।'। अयमत्र भावार्थः। यद्यप्येकावगाहेन तिष्ठन्ति तथापि शुद्धनिश्चयेन जीवाः केवलज्ञानाद्यनन्त-गुणस्वरूपं न त्यजन्ति पुद्गलाश्च वर्णादिस्वरूपं न त्यजन्ति शेषद्रव्याणि च स्वकीयस्वकीय-स्वरूपं न त्यजन्ति।।२५।।

आगे लोक में यद्यपि व्यवहारनयकर ये सब द्रव्य एक क्षेत्रावगाह से तिष्ठ रहे हैं, तो भी निश्चयनयकर कोई द्रव्य किसी से नहीं मिलता, और कोई भी अपने अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता है, ऐसा दिखलाते हैं –

जीवादिक सब द्रव्य एक संग लोकाकाश निवास करें।
किन्तु रहें अपने ही गुण में पर से भिन्न रहें जग में।।२५।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, [अत्र जगति] इस संसार में [यानि द्रव्याणि कथितानि] जो द्रव्य कहे गये हैं, [तानि] वे सब [लोकाकाशं धृत्वा] लोकाकाश में स्थित हैं, लोकाकाश तो आधार है, और ये सब आधेय हैं, [एकत्वे मिलितानि] ये द्रव्य एक क्षेत्रमें मिले हुए रहते हैं, एक क्षेत्रावगाही हैं, तो भी [स्वगुणेषु] निश्चयनयकर अपने अपने गुणों में ही [निवसंति] निवास करते हैं, परद्रव्य से मिलते नहीं हैं।

भावार्थ :– यद्यपि उपचरितअसद्भूतव्यवहारनयकर आधाराधेयभाव से एक क्षेत्रावगाहकर तिष्ठ रहे हैं, तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से परद्रव्यसे मिलनेरूप संकर-दोषसे रहित हैं, और अपने अपने सामान्य गुण तथा विशेष गुणोंको नहीं छोड़ते हैं। यह कथन सुनकर प्रभाकरभट्टने प्रश्न किया है कि हे भगवन्, परमागममें लोकाकाश तो असंख्यातप्रदेशी कहा है, उस असंख्यात प्रदेशी लोकमें अनंत जीव किस तरह समा सकते हैं ? क्योंकि एक एक जीवके असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं, और एक एक जीवमें अनंतानंत पुद्गलपरमाणु कर्म नोकर्मरूपसे लग रही है, और उसके सिवाय अनन्तगुणे अन्य पुद्गल रहते हैं, सो ये द्रव्य असंख्यातप्रदेशी लोकमें कैसे समा गये? इसका समाधान श्री गुरु करते हैं। आकाशमें अवकाशदान (जगह देनेकी) शक्ति है, उसके सम्बन्धसे समा जाते हैं। जैसे एक गूढ़ नागरस गुटिकामें शत, सहस्त्र, लक्ष, सुवर्ण संख्या आ जाती है, अथवा एक दीपकके प्रकाशमें बहुत दीपकोंका प्रकाश जगह पाता है, अथवा जैसे एक राखके घड़ेमें जलका घड़ा अच्छी तरह अवकाश पाता है, भस्ममें जल शोषित हो जाता है, अथवा जैसे एक ऊँटनीके

दूधके घड़ेमें शहदका घड़ा समा जाता है, अथवा एक भूमिघरमें ढोल, घण्टा आदि बहुत बाजोंका शब्द अच्छी तरह समा जाता है, उसी तरह एक लोकाकाशमें विशिष्ट अवगाहनशक्तिके योगसे अनंत जीव और अनन्तानन्त पुद्‌गल अवकाश पाते हैं, इसमें विरोध नहीं है, और जीवोंमें परस्पर अवगाहनशक्ति है। ऐसा ही कथन परमागममें कहा है – 'एगणिगोद' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है कि एक निगोदिया जीवके शरीरमें जीवद्रव्यके प्रमाणसे दिखलाये गये जितने सिद्ध हैं, उन सिद्धोंसे अनंत गुणे जीव एक निगोदियाके शरीरमें हैं, और निगोदियाका शरीर अंगुलके असंख्यातवें भाग है, सो ऐसे सूक्ष्म शरीरमें अनंत जीव समा जाते हैं, तो लोकाकाशमें समा जानेमें क्या अचंभा है? अनंतानंत पुद्‌गल लोकाकाशमें समा रहे हैं, उसकी 'ओगाढ' इत्यादि गाथा है। उसका अर्थ यह है कि सब प्रकार सब जगह यह लोक पुद्‌गल कायोंकर अवगाढ़गाढ़ भरा है, ये पुद्‌गल काय अनंत हैं; अनेक प्रकारके भेदको धरते हैं, कोई सूक्ष्म हैं कोई बादर हैं। तात्पर्य यह है कि यद्यपि सब द्रव्य एक क्षेत्रावगाहकर रहते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर जीव केवल ज्ञानादि अनंतगुणरूप अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते हैं, पुद्‌गलद्रव्य अपने वर्णादि स्वरूपको नहीं छोड़ता, और धर्मादि अन्य द्रव्य भी अपने अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते हैं।।२५।।

गाथा-२५ पर प्रवचन

आगे लोक में यद्यपि व्यवहारनयकर ये सब द्रव्य एक क्षेत्रावगाह से तिष्ठ रहे हैं,... यह आत्मा, कर्म साथ में है न इकट्ठे। **तो भी निश्चयनयकर कोई द्रव्य किसी से नहीं मिलता,...** कोई द्रव्य किसी से मिलता नहीं। **और कोई भी अपने अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता है,...** किसी से मिलता नहीं और अपना छोड़ता नहीं, दो बातें कही। किसी के साथ इकट्ठा होता नहीं और अपना स्वरूप छोड़ता नहीं, अस्ति-नास्ति की। कहेंगे।

१४८) लोयागासु धरेवि जिय कहियइँ दव्वइँ जाइँ।
एक्कहिँ मिलियइँ इत्थु जगि सगुणहिँ णिवसहिँ ताइँ॥२५॥

अन्वयार्थः— हे जीव! (हे भगवान आत्मा) इस संसार में जो द्रव्य कहे गये हैं,... भगवान ने जो छह द्रव्य कहे, **वे सब...** लोक के क्षेत्र में एक जगह भले हो। उसे

आगे नय कहेंगे, हों! **लोकाकाश तो आधार है, और ये सब आधेय हैं,...** आधार-आधेय। समझ में आया? ऐसे रहते हैं आधार... यह नया कुछ नहीं कि था पहले और बाद में आया, ऐसा नहीं। यह तो एक ऐसे अनादि का आधार है। उसमें धर्मास्ति, अधर्मास्ति आदि रहे हुए हैं। इससे आधार-आधेय उपचरित झूठे नय से कहने में आते हैं। समझ में आया? यह आत्मा आकाश में रहा, वह भी उपचार से असद्भूतनय से कहने में आता है। वास्तव में तो स्वयं अपने में है। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में है, स्वयं अपने में है। आकाश में कहना, यह कहेंगे, वह उपचरित नय से है। समझ में आया?

ये द्रव्य एकक्षेत्र में मिले हुए रहते हैं, तो भी निश्चयनयकर अपने-अपने गुणों में ही निवास करते हैं, परद्रव्य से मिलते नहीं हैं। यद्यपि उपचरितअसद्भूतव्यवहारनयकर आधाराधेयभाव से एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठ रहे हैं, तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से परद्रव्य से मिलनेरूप संकर-दोष से रहित हैं,... देखो! परन्तु अपना परमपारिणामिकस्वभाव, वस्तु स्वतः स्वभाव, उससे देखो तो किसी के साथ कोई द्रव्य मिलता नहीं। एक रजकण दूसरे रजकण के साथ मेल नहीं खाता और एक रजकण, उसने अपने स्वरूप को छोड़ा नहीं। समझ में आया? कोई परपदार्थ के गुण-पर्याय है, उसने छोड़ा नहीं और स्वयं अपने को छोड़कर पर में मिल गया नहीं। तीन काल-तीन लोक में कोई... इस शरीर में से कुछ आत्मा निकाल ले, माल ले लेवे या उसे कुछ दे, ऐसा होगा? उपयोग, किसका उपयोग करे? धूल का? धूल का उपयोग होता होगा? शरीर का उपयोग आत्मा कर सकता है? कहेंगे, व्यवहार से उपकार कहेंगे। वास्तव में है नहीं। उपकार तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताकर उपकार कहा। बाद में गाथा में कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! है न?

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से परद्रव्य से मिलनेरूप संकर-दोष से रहित हैं,... संकर अर्थात् कोई एक-दूसरे में मिल नहीं जाते। आत्मा रजकण में मिल नहीं गया। आत्मा अभी, कब क्या? तीनों काल। ऐई! इस शरीर के रोग के रजकण में आत्मा मिल नहीं गया, ऐसा कहते हैं। यह मोहनभाई को क्या हुआ? फँसे हैं। कितने महीने से परन्तु। ठीक होवे तब भटका करे और ऐसा हो तब पड़े रहे। अपने को राग के साथ विवाहा। कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं कि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से संकरदोष से रहित है। अर्थात्? वस्तु, वस्तु देखो तो एक जगह भले उपचार, आरोपित, असद्‌भूत, झूठे व्यवहारनय से कहने में आवे। परन्तु वस्तु तो वस्तु स्वयं अपने में रही है। कोई वस्तु पर में मिलती नहीं और कोई वस्तु अपने स्वरूप को छोड़ती नहीं। तो कितना देता होगा आत्मा अपने में से निकालकर स्त्री, पुत्र को? हें! चन्दुभाई का पूछना है? चन्दुभाई को पूछो। अर्धांगिनी। हराम है। यह कहाँ से माना तूने? उसके परमाणु के रजकण या उसका आत्मा उसके स्वरूप को छोड़कर दूसरे द्रव्य में आ जाता है? और तेरे द्रव्य के गुण पर्यायें छोड़कर तू वहाँ चला जाता है? तीन काल में बनता है? किसे दिया और किससे लिया तूने? मिथ्या भ्रमणा की। भ्रमणा खड़ी करके मिठास मानता है। समझ में आया? नीम कड़वा होता है न? सर्प काटा हो तो मीठा लगता है। परन्तु यह तो सर्प काटा हो, उसे मीठा लगे, जहर चढ़ा हो, उसे मीठा लगे। ऐसा। समझ में आया? वरना कड़वा है। नीम उसको कड़वा तो लगे, परन्तु कड़वा उसे अच्छा लगे। इसे कड़वा न लगे। सर्प काटा हो उसे कड़वा लगता ही नहीं, मीठा लगता है। इसी प्रकार जिसे मिथ्यात्व का जहर चढ़ा है, उसे बड़ा सर्प काटा है। और परचीज़ मेरी अच्छी, मैं दूसरे को अच्छा, ऐसा मीठा का जहर चढ़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : डरता है, यह डरने की कहाँ बात है? यहाँ इस दृष्टान्त का कहाँ काम है? यहाँ तो कहते हैं कि जिसे जहर चढ़ा है, उसे नीम कड़वे की अस्ति होने पर भी मीठा लगता है। मीठा अर्थात् ऐसे मीठा है, ऐसा उसके ज्ञान में आता है। कड़वा है ऐसा ख्याल में नहीं आता। उसे वह रस ज्ञान में नहीं आता, रस का स्वरूप है कड़वा, उसके बदले मीठा ज्ञान में, ख्याल में आता है, ऐसा मेरा कहना है। उसके ज्ञान में कहीं नीम घुस नहीं जाता। परन्तु नीम का जो कड़वा स्वभाव है, उस जहर के कारण उसे यह मीठा है, ऐसा उसके ज्ञान में आता है। मीठा है, ऐसा।

इसी प्रकार मिथ्यात्व के जहर के कारण शरीर, वाणी, पैसा, इज्जत, कीर्ति, पुण्य, पाप, मैल और दुःखरूप है और दुःख का कारण है। आगे अभी कहेंगे, वे सब दुःख के कारण हैं। तथापि उन्हें सुख का कारण जहर के कारण भासित होते हैं, ऐसा कहेंगे।

समझ में आया? आहाहा! यह आता है, श्लोक आता है, हों! .... ऐसा आता है, सब श्लोक ही आते हैं। उसे कड़वा है, वह मीठा लगता है। ... उसी प्रकार अज्ञानी को मिथ्यात्व श्रद्धा में कुछ पर का पर्यायरस तुझमें आता है? और तू अपनी पर्याय, गुण-पर्याय छोड़कर वहाँ जाता है? तुझे किसका रस आया? समझ में आया? दाल, भात, रोटी, मोसम्बी, हड्डी, चमड़ी और माँस उसे स्पर्शन से तुझे क्या आया उसमें? उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता। स्पर्शता है, ऐसा मानता है। अर्थात् अस्तित्व उसमें नहीं है, तो भी स्पर्शता हूँ, ऐसा मानता है। इसके अस्तित्व में उनका अस्तित्व नहीं आता। यह यहाँ आया, इसलिए मैं स्पर्शता हूँ—ऐसा मानता है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई!

कहते हैं, वह सब कोई किसी को छोड़कर किसी में मिलते अर्थात् स्पर्शते नहीं। **और अपने-अपने सामान्य गुण तथा विशेष गुणों को नहीं छोड़ते हैं।** देखो! परमाणु में सामान्य अस्तित्वगुण आदि है, वह छोड़े नहीं। परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श विशेषगुण है, उसे छोड़े नहीं। *आत्मा में सामान्य गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द है। आत्मा में सामान्य गुण अस्तित्व, वस्तुत्व आदि है, उसे छोड़े नहीं। विशेष गुण आनन्द और ज्ञान आदि छोड़ता नहीं। अपना विशेष आनन्द, ज्ञान गुण है, उसे छोड़ता नहीं, सामान्य गुण अस्तित्व, वस्तुत्व को आत्मा छोड़ता नहीं। रजकण में सामान्य गुण अस्तित्व आदि छोड़ता नहीं। विशेष वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, वहाँ से छोड़कर बाहर में जाते नहीं। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा और पुद्गल... चार अरूपी एक ओर रखो। परन्तु कर्म के जो परमाणु हैं, उनके सामान्य विशेष गुण जो कर्म के हैं, वे उसे छोड़ते नहीं। और आत्मा में सामान्य अस्तित्व—होनापना आदि और विशेष आनन्द, ज्ञानादि (गुण हैं), उसे छोड़ता नहीं। छोड़ता नहीं तो यहाँ किसे स्पर्श करे? किसमें मिले? वह छोड़ता नहीं (तो) यहाँ कैसे मिले? परन्तु दृष्टान्त दिखता है, मिलान उसमें आता है या नहीं? ऐई! आहाहा!

मिथ्याश्रद्धा में मूर्छित, नहीं आता उसमें कुछ पर का और स्वयं नहीं कुछ जरा

* सभी आत्माओं की अपेक्षा ज्ञान, दर्शनादि सामान्य है।

भी उसमें से छोड़कर वहाँ जाता। परन्तु मानता है कि मुझे उसकी मिठास आती है। धनी को दिखाई ढांकणी में, नहीं कहते? एकदम काली हो ढांकणी उसमें क्या मुख दिखे? वह कहे, मुझे दिखता है। ठीक, भाई! दिखता हो तो। वह पानी हो तो दिखता नहीं व्यवस्थित। वह भी देखा है। ऐसे साधारण साधारण लगे। वहाँ तो जरा सा हो, वहाँ तो सुखाने लगे यहाँ। जरा-जरा सुखाने लगे तो दिखे नहीं व्यवस्थित। वह कहे कि, मुख काँच में देख न। मुझे ढांकणी में दिखता है। ठीक, भाई! समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा में आनन्द और ज्ञान गुण स्वयं छोड़कर कहीं गया नहीं। तथापि अज्ञानी मानता है कि, मुझे पर में आनन्द है और पर में से मुझे ज्ञान आता है। आहाहा! मुझे पर के कारण मजा आता है। अरे! भगवान! मजा पर में? तेरा मजा पर में कहाँ से आया? और पर के जो रंग, रस, गन्ध, स्पर्श या दूसरे आत्माओं के आनन्द, ज्ञानगुण वे तुझमें कहाँ से आ गये? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त हो, ऐसे पागल। मूर्ख न हों बहुत?

देखो! यहाँ कहते हैं, **यह कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया है...** अब एक लम्बी बात है। **कि हे भगवन! परमागम में लोकाकाश तो असंख्यातप्रदेशी कहा है,...** प्रभु! तुम यह सब कहते हो लोक में इतने-इतने पदार्थ, परन्तु लोक तो असंख्य प्रदेशी है। उसमें अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु रहे किस प्रकार? एक प्रश्न उठा। समझ में आया? **क्योंकि एक-एक जीव के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं, और एक-एक जीव में अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु कर्म नोकर्मरूप से लग रही है, और उसके सिवाय अनन्तगुणे अन्य पुद्गल रहते हैं, सो ये द्रव्य असंख्यातप्रदेशी लोक में कैसे समा गये?** यह असंख्य प्रदेश में इतना सब अनन्त समा कैसे गये? आप कहते हो एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते। ठीक, एक-दूसरे गुण छोड़ते नहीं। ठीक चलो। परन्तु वे रहे किस प्रकार इतने सब? इतना माल अनन्त रहे, क्षेत्र इतना और रहे अनन्त। समझ में आया?

जैसे एक, उत्तर देते हैं। **जैसे एक गूढ नागरस गुटिका में शत,...** सात धातु होती है न इतनी गोली प्रमाण? नहीं? ... गोली बनावे। फिर नींबू डालकर एकरस करे। फिर

इतनी बनावे तो उसमें लाख भाग आते हैं न? एक दृष्टान्त देते हैं। समझ में आया? **अथवा एक दीपक के प्रकाश में बहुत दीपकों का प्रकाश जगह पाता है,...** एक दीपक हो, वहाँ बहुत दीपक होते हैं न? और अभी तो तुम्हारे यह क्या कहे? बैट्री,... बैट्री? क्या कहलाती है? एक मकान में लाखों डाली हो तो आती है। अन्दर प्रकाश समा जाता है। **अथवा जैसे एक राख के घड़े में जल का घड़ा...** जो राख का घड़ा हो और उसमें पानी डालो तो एक घड़ा समा जाये। **अच्छी तरह अवकाश पाता है, भस्म में जल शोषित हो जाता है,...** वह राख है न? पानी शोषित हो जाता है। **अथवा जैसे एक ऊँटनी के दूध के घड़े में शहद का घड़ा समा जाता है,...** शहद अर्थात् मधु, वह मधु का घड़ा समा जाये, ऐसा उसका स्वभाव है। ऊँट का दूध घड़ा भरा हो, उतना ही घड़ा मधु का उसमें डाल दे तो समा जाये। ऐसा इसके दूध का स्वभाव है। ऊँट के दूध का ऐसा पोला-पोचा होता है। देखो न! ऊँट का ऐसा दूध होता है। वह दूध का घड़ा भरा हो, एक घड़ा मधु का डालो दूसरा तो समा जाये पूरा। ऐसा उसमें अवकाश देने का गुण है। ओहोहो! समझ में आया? **अथवा एक भूमिघर में झोल, घण्टा आदि बहुत बाजों का शब्द अच्छी तरह समा जाता है,...** बहुत आवाजें नहीं आतीं? पच्चीस-पचास एक साथ बाजिंत्र बजे। सब आवाज इकट्ठी होती है न? **ऐसा ही कथन परमागम में कहा है....** समझ में आया?

उसी तरह एक लोकाकाश में विशिष्ट अवगाहनशक्ति के योग से अनन्त जीव और अनन्तानन्त पुद्गल अवकाश पाते हैं, इसमें विरोध नहीं है,... देखो! यह व्यवहार समकित का यह विषय, परन्तु इसकी श्रद्धा कर, कहते हैं। आहाहा! इतने क्षेत्र में अनन्त कैसे रहे? अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु। खबर नहीं पड़ती? एक राख के घड़े में एक पूरा घड़ा पानी डालो तो समा जाता है। ऊँटनी का दूध हो, उसमें एक घड़ा मधु (शहद) का डालो तो चूस ले। इसी प्रकार इस लोक में असंख्य प्रदेश में अनन्त परमाणु, आत्मा पड़े हैं, ऐसी श्रद्धा कर। व्यवहार समकित का विषय। इतना भी जिसे श्रद्धा में ठिकाना नहीं, उसे निश्चय समकित नहीं हो सकता।

इसका अर्थ ऐसा है कि एक निगोदिया जीव के शरीर में जीवद्रव्य के प्रमाण से दिखलाये गये जितने सिद्ध हैं, उन सिद्धों से अनन्त गुणे जीव एक निगोदिया के

शरीर में हैं,... एक निगोद, कल कहा था न? काई का एक राई जितना टुकड़ा लो। (उसमें) असंख्य तो औदारिकशरीर हैं। एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए उससे अनन्त गुणे जीव हैं। इतना अवगाह पा जाते हैं। अज्ञानी को अल्प क्षेत्र में समाये, वह बैठता नहीं और एक आत्मा में अनन्त गुण कितने, वह भी बैठता नहीं। और एक-दूसरे इकट्ठे रहे होने पर भी स्पर्श नहीं करते, यह भी बैठता नहीं। आहाहा! इतने सब इकट्ठे रहे एक क्षेत्र में, एक प्रदेश, असंख्य प्रदेश में अनन्त निगोद के रहे इकट्ठे, तथापि एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते। किसी ने अपने गुण को छोड़ा नहीं और कोई किसी में मिला नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और निगोदिया का शरीर अंगुल के असंख्यातवें भाग है, सो ऐसे सूक्ष्म शरीर में अनन्त जीव समा जाते हैं,... लो! ऐसे शरीर में अनन्त जीव समा जाते हैं। **तो लोकाकाश में समा जाने में क्या अचम्भा है? अनन्तानन्त पुद्गल लोकाकाश में समा रहे हैं, उसकी इत्यादि गाथा है। उसका अर्थ यह है कि सब प्रकार सब जगह यह लोक पुद्गल कायोंकर अवगाढगाढ भरा है, ये पुद्गल काय अनन्त हैं; अनेक प्रकार के भेद को धरते हैं,...** अनन्त प्रकार के भेद को धरते हैं, वे पुद्गल उसके भेद को धरते हैं। दो, चार, पाँच, पच्चीस, पचास, संख्यात, अनन्त आदि उसके कारण से होते हैं। तेरे कारण से है नहीं। **कोई सूक्ष्म हैं, कोई बादर हैं।** है जगत में।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि सब द्रव्य एकक्षेत्रावगाहकर रहते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर जीव केवल ज्ञानादि अनन्तगुणरूप अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते हैं,... तथापि यह भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसे अनन्त गुण को अपने स्वरूप से छोड़ता नहीं। समझ में आया? **पुद्गलद्रव्य अपने वर्णादि स्वरूप को नहीं छोड़ता,...** देखो! परमाणु, परमाणु स्वयं उसके गुण को, पर्याय को कभी छोड़ता नहीं। **और धर्मादि अन्य द्रव्य भी अपने-अपने स्वरूप को नहीं छोड़ते हैं।** छहों आ गये। एक-एक शरीर के अनन्त जीव, एक-एक जीव अपने ज्ञानादि अनन्त गुणों को कभी छोड़ते नहीं। एक शरीर में अनन्त जीव इकट्ठे, उनका श्वास, आयुष्य, आहार इकट्ठा, तथापि इकट्ठे का अर्थ एक का निमित्तरूप से साथ में, तथापि एक आत्मा अपने अनन्त ज्ञानादि गुण को छोड़ता नहीं। दूसरा आत्मा अपने गुण को छोड़ता नहीं। वहाँ एक-एक रजकण अपने वर्ण, गन्ध, रस को छोड़ता नहीं। समझ में आया?

इतने अँगुल के असंख्यवें भाग में अनन्त आत्मायें। उससे अनन्तगुणे परमाणु पुद्गल के—कर्म के। इसके अतिरिक्त दूसरे पुद्गल बहुत। वह प्रत्येक-प्रत्येक आत्मा अपने अनन्त, ज्ञान, दर्शन का सत्त्व, बेहद जानना, देखना, आनन्द का तत्त्व उसने छोड़ा नहीं। और एक-एक रजकण में अनन्त सामान्य-विशेष गुण; वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एक साथ एक अँगुल के असंख्य भाग में अनन्त इकट्ठे (रहें)। एक-एक परमाणु ने अपने वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श छोड़े नहीं। छोड़े तो पृथक् कैसे रहे? पृथक् न रहे तो अनन्त कैसे रहे? अनन्त रहे हैं, इसका अर्थ ही (यह) कि अनन्त अपने रूप से रहे हैं। समझ में आया?

केवलज्ञान है आत्मा। केवलज्ञानस्वरूप कहा न? यहाँ क्या कहा? निश्चय केवलज्ञान आदि अनन्त गुणरूप। एक ज्ञान, एक दर्शन, एकरूप आनन्द आदि अनन्त गुणरूप प्रत्येक द्रव्य आत्मा भगवान विराजता है। एक आत्मा कोई दूसरे आत्मा को काम नहीं आता। काम क्या आवे? अपना आत्मा छोड़कर कहीं जाता है तो काम आवे? दूसरे का आत्मा यहाँ काम (नहीं) आता। क्योंकि उसके गुण-पर्याय छोड़कर कहीं जाता नहीं। क्या काम आवे? कहो, भीखाभाई! लड़के-बड़के तो काम आवे या नहीं सेवा, चाकरी करने में? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में किसे संग्रहे? लोग ऐसा कहते हैं कि भाई! मरा हुआ सर्प भी काम (आवे), संग्रह किया हुआ काम आवे, ऐसा कहते हैं न? वह दृष्टान्त आता है न? .... उसमें एक चील निकली। एक रानी नहाती थी और उसका हार था सवा लाख का। ऐसे रखा था। नहाती थी। उसमें चील ने उठाया वहाँ से। उठाकर जहाँ उसरूप से वहाँ जाती है, वहाँ वह सर्प दिखा। किसी ने मरा हुआ डाला था। वहाँ हार डालकर सर्प ... उठाकर ऐसे देखे वहाँ सर्प के बदले हार। संग्रहित सर्प भी काम आवे, ऐसा लोग कहे। ऐसे के ऐसे दृष्टान्त। छोटी उम्र में सुनते थे। हैरान.. हैरान... संग्रहित सर्प भी काम आवे। क्यों? कि ... बात है। एक रानी नहाती थी, सवा लाख का हार था। पत्थर के ऊपर रखा हुआ नहाने के समय और उसमें एक चील निकली और एक व्यक्ति ने मरा हुआ सर्प था अपने घर में... उसमें वह चील हार लेकर निकली। ऐसे

देखा सर्प, सर्प को पकड़ा, हार छोड़ दिया। समझ में आया? ऐसी बात सुनते थे। छोटी उम्र में ऐसी सब सुनी हुई बहुत, हों! बहुत। गप्प-गप्प मारे। लोभी। वह मानो कि इसकी जगह हार मिल जायेगा। क्या मिला? परन्तु हार मिला उसमें तुझे क्या मिला? ऐसा कहते हैं। वे हार के रजकण तुझे क्या दिया? और उसके रजकण ने क्या वहाँ से छोड़ा? समझ में आया? आहाहा! ऐसा सुने तो कोई किसी के रहेंगे नहीं। परन्तु कोई किसी के नहीं, यह तो बात चलती है यहाँ।

मुमुक्षु : .... व्यवहार समकित भी नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रद्धा नहीं करे तो व्यवहार समकित का विषय, तूने सच्चा माना नहीं। समझ में आया? यह तो व्यवहार समकित का विषय चलता है।

प्रत्येक द्रव्य अपने क्षेत्र में रहे हुए अपने गुणों को छोड़कर किसी के क्षेत्र में किसी को काम नहीं आते। ऐसे वस्तु के अनन्त द्रव्य स्वतन्त्र एक क्षेत्र में रहे हुए हैं। तत्प्रमाण मानना, उसे तो अभी व्यवहार समकित का विषय कहते हैं। समझ में आया?

निश्चय में तो भगवान आत्मा, जिसकी एक समय की पर्याय में इतना सब जानने की सामर्थ्य! विकल्पसहित एक समय की पर्याय में इतना सब है, ऐसा जानने की सामर्थ्य। इसके अतिरिक्त का पूरा भगवान पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड आनन्द का कन्द एकरूप गुण का पिण्ड है, उसकी अनुभव की प्रतीति करना, इसका नाम निश्चय सम्यक्त्व है। आहाहा! समझ में आया? छहों द्रव्य अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं।

अब आया, देखो! उपकार करे वे। छोड़ते नहीं, मिलते नहीं परन्तु उपकार अर्थात् निमित्तरूप होते हैं। उसे निमित्तरूप होते हैं। इसमें भी विशिष्टता लेंगे, हों! दुःख में उपकार करते हैं, यह लेंगे। सुख, वह भी कल्पना का दुःख है। आत्मा के आनन्द में नहीं।

गाथा - २६

अथ जीवस्य व्यवहारेण शेषपञ्चद्रव्यकृतमुपकारं कथयति, तस्यैव जीवस्य निश्चयेन तान्येव दुःखकारणानि च कथयति -

१४९) एयइँ दव्वइँ देहियहँ णिय-णिय-कज्जु जणंति।
चउ-गइ-दुक्ख सहंत जिय तेँ संसारु भमंति।।२६।।

एतानि द्रव्याणि देहिनां निजनिजकार्यं जनयन्ति।
चतुर्गतिदुःखं सहमानाः जीवाः तेन संसारं भ्रमन्ति।।२६।।

एयइं इत्यादि। एयइं एतानि दव्वइं जीवादन्यद्रव्याणि देहियहं देहिनां संसारिजीवानाम्। किं कुर्वन्ति। णियणियकज्जु जणंति निजनिजकार्यं जनयन्ति येन कारणेन निजनिजकार्यं जनयन्ति। चउगइदुक्ख सहंत जिय चतुर्गतिदुःखं सहमानाः सन्तोजीवाः तें संसारु भमंति तेन कारणेन संसारं भ्रमन्तीति। तथा च। पुद्गलस्तावज्जीवस्य स्वसंवित्तिलक्षणविभावपरिणामरतस्य व्यवहारेण शरीरवाङ्मनःप्राणापाननिष्पत्तिं करोति, धर्मद्रव्यं चोपचरितासद्भूतव्यवहारेण गतिसहकारित्वं करोति, तथैवाधर्मद्रव्यं स्थितिसहकारित्वं करोति, तेनैव व्यवहारनयेन आकाशद्रव्यमवकाशदानं ददाति, तथैव कालद्रव्यं च शुभाशुभपरिणामसहकारित्वं करोति। एवं पञ्चद्रव्याणामुपकारं लब्ध्वा जीवो निश्चयव्यवहाररत्नत्रयभावनाच्युतः सन् चतुर्गतिदुःखं सहत इति भावार्थः।।२६।।

आगे जीव का व्यवहारनयकर अन्य पाँचों द्रव्य उपकार करते हैं, ऐसा कहते हैं, तथा उसी जीव के निश्चयसे वे ही दुःख के कारण हैं, ऐसा कहते हैं -

देही जीवों के प्रति अपना अपना कार्य करें सब द्रव्य।
अतः चार गति के दुख सहते हुए भ्रमण करता चेतन।।२६।।

अन्वयार्थ :- [एतानि] ये [द्रव्याणि] द्रव्य [देहिनां] जीवों के [निजनिजकार्यं] अपने अपने कार्य को [जनयंति] उपजाते हैं, [तेन] इस कारण [चतुर्गतिदुःखं सहमानाः जीवाः] नरकादि चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए जीव [संसारं] संसार में [भ्रमंति] भटकते हैं।

भावार्थ :- ये द्रव्य जो जीव का उपकार करते हैं, उसको दिखलाते हैं। पुद्गल तो आत्मज्ञान से विपरीत विभाव परिणामों में लीन हुए अज्ञानी जीवों के व्यवहारनयकर शरीर, वचन, मन, श्वासोश्वास, इन चारों को उत्पत्ति करता है, अर्थात् मिथ्यात्व, अव्रत,

कषाय, रागद्वेषादि विभावपरिणाम हैं, इन विभाव परिणामों के योग से जीव के पुद्गल का सम्बन्ध हैं, और पुद्गल के संबन्ध से ये हैं, धर्मद्रव्य उपचरितासद्भूत व्यवहारनयकर गतिसहायी है। अधर्मद्रव्य स्थितिसहकारी है, व्यवहारनयकर आकाशद्रव्य अवकाश (जगह) देता है, और कालद्रव्य शुभ-अशुभ परिणामों का सहायी है। इस तरह ये पाँच द्रव्य सहकारी हैं। इनकी सहाय पाकर ये जीव निश्चय व्यवहाररत्नत्रय की भावना से रहित भ्रष्ट होते हुए चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए संसार में भटकते हैं, यह तात्पर्य हुआ।।२६।।

गाथा-२६ पर प्रवचन

आगे जीव का व्यवहारनयकर अन्य पाँचों द्रव्य उपकार करते हैं, ऐसा कहते हैं, तथा उसी जीव के निश्चय से वे ही दुःख के कारण हैं, ऐसा कहते हैं—देखा? उपकार करते हैं, वह दुःख के कारण हैं, दुःख के निमित्त हैं। अरे! गजब, भाई!

१४९) एयइँ दव्वइँ देहियहँ णिय-णिय-कज्जु जणंति।
चउ-गइ-दुक्ख सहंत जिय तैं संसारु भमंति॥२६॥

आहाहा!

एतानि द्रव्याणि देहिनां निजनिजकार्यं जनयन्ति।
चतुर्गतिदुःखं सहमानाः जीवाः तेन संसारं भ्रमन्ति॥२६॥

अन्वयार्थ :— ये द्रव्य जीवों के अपने-अपने कार्य को उपजाते हैं, इस कारण नरकादि चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए जीव संसार में भटकते हैं। वे बेचारे धर्मास्ति सहाय करे, शरीर आदि पुद्गल बनावे, उसके निमित्त से दुःखी होकर भटक रहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थः—ये द्रव्य जो जीव का उपकार करते हैं, उसको दिखलाते हैं। पुद्गल तो आत्मज्ञान से विपरीत विभाव परिणामों में लीन हुए अज्ञानी जीवों के... भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान में अपना स्वयं को दान दे। वस्तु भगवान ज्ञानानन्द प्रभु, अनन्त गुण का धाम भगवान, उसमें अन्तर्दृष्टि और स्थिरता करने

से भगवान आत्मा स्वयं अपने ज्ञान और आनन्द का दान दे और स्वयं ले। वह तो सम्यग्ज्ञान में होता है। उससे यह उल्टा। है न? आत्मज्ञान से उल्टा अज्ञान में अज्ञानी को क्या होता है? **विभाव परिणामों में लीन हुए...** देखा? जो स्वभाव ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध है, उसमें लीन होकर तो आत्मा में से आनन्द और ज्ञान का दान मिलता है। वह आत्मा दाता है, दान का आनन्द का दाता है। ऐसे भगवान आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने से आत्मा आनन्द का दाता, वह पर्याय को आनन्द देता है। आहाहा! समझ में आया?

अर्थात् क्या कहा? कि पर का अस्तित्व और पर के कार्य मुझमें नहीं, राग का अस्तित्व और राग का कार्य मुझमें नहीं है। ऐसा आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव, उसकी दृष्टि और आश्रय करने से उसमें से ज्ञान के कार्य हो। वे राग के और पर के नहीं, पर के तो यों भी नहीं थे। परन्तु यह राग के कार्य होते थे, उसके बदले ज्ञानानन्द के कार्य (हो)। ज्ञान का जानना, आनन्द का होना, वे सब कार्य आत्मदान कहने में आते हैं। समझ में आया? ऐसे आत्मदान से विपरीत,... भाषा देखो! ओहोहो! समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने अस्तित्व में रहे हुए गुण की दृष्टि करने से, मेरे अस्तित्व में तो विकार और परपने का अभाव है, ऐसा जो आत्मा, ऐसे आत्मा की दृष्टि और ज्ञान करने से वह आत्मा तो ज्ञान का—जानने का काम करे। वह राग का कार्य और पर का कार्य छोड़ दिया। जानने का काम करे, वहाँ आनन्द का काम साथ में होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग का काम करता था, वहाँ आकुलता का काम साथ में था। पर के काम मानता था, तब मान्यता की मिथ्याधारी दु:ख का काम वेदन साथ में था। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा, जिसे ऊपर वर्णन किया है न? अमूर्त और शुद्ध। उसे आत्मा कहा न? उस आत्मा की जहाँ दृष्टि का अस्तित्व ऐसा है, ऐसा जहाँ हुआ, तब तो उसे आत्मदान हुआ। उसका—ज्ञान का जानना, आनन्द का होना, शान्ति का होना, अस्तित्व, वीर्य का स्वरूप की रचनारूप होना, ऐसा जो दान, स्वरूप की पर्याय में दान हुआ अपना। वह तो स्वभाव वस्तु हुई। क्योंकि उसमें विकार का, पर का अस्तित्व नहीं, ऐसे आत्मा ने आत्मा को इस प्रकार से दान स्वयं को किया। समझ में आया? उससे विपरीत, **विभाव परिणामों में लीन हुए...** देखो! विकारी परिणाम में लीन हुआ, वह

उसने दु:ख का दान दिया। ऐसे अज्ञानी जीवों को व्यवहार से यह उपकारी है, ऐसा कहा, देखो! भाषा क्या कही? विभाव में लीन है, उसे उस दु:ख में निमित्त होता है। निमित्त दु:ख में उपकार करता है। समझ में आया?

जिसने भगवान आत्मा का अनन्त ज्ञानानन्दस्वभाव अस्तिरूप वस्तु है, ऐसी दृष्टि की नहीं और पुण्य-पाप के विकार की वृत्तियाँ, उतना मैं—ऐसा माना है, ऐसे विभाव में लीन हो गया। ऐसे को, **अज्ञानी जीवों के व्यवहारनयकर शरीर, वचन, मन, श्वासोश्वास, इन चारों को उत्पत्ति करता है,...** देखो! क्योंकि विभाव में लीन है, उसे यह पुद्गल निमित्तरूप से यह शरीर और वाणी उत्पन्न होते हैं, ज्ञानी को उत्पन्न नहीं होते। आहाहा! ज्ञानी को स्वभाव में लीनता से शान्ति और आनन्द की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

धर्मी को अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द-ज्ञान, ऐसे द्रव्य की दृष्टि का भान होने से उसे तो आनन्द का दान है। समझ में आया? इससे उसे उसमें दूसरे निमित्तों का अभाव है। जिसे विभाव का दान है, उसे इन सब निमित्तों का सद्भाव है, ऐसा कहते हैं। वाह! समझ में आया? अज्ञानी विभाव परिणाम में लीन हो गये हैं। स्वभाव में लीन हुए, उन्हें तो वे उत्पन्न होते नहीं, इसलिए दु:ख में निमित्त नहीं। और सुख में निमित्त तो वे हैं नहीं। सुख में कारण तो आत्मा है। स्वयं ही है। आहाहा! परन्तु विभाव में लीन हुए तो दु:ख में लीन हुए, ऐसा कहते हैं। उसे **व्यवहारनयकर शरीर, वचन, मन, श्वासोश्वास, इन चारों को उत्पत्ति करता है,...** उसे जड़ की उत्पत्ति होती है। आहाहा!

अर्थात् मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, राग-द्वेषादि विभावपरिणाम हैं, इन विभाव परिणामों के योग से जीव के पुद्गल का सम्बन्ध हैं,... लो! इस विभाव के कारण से वह सम्बन्ध होता है। शरीर, वाणी उसे उत्पन्न होते हैं, निमित्तरूप से, हों! उपजना तो उसके कारण से है। **और पुद्गल के सम्बन्ध से ये हैं,...** पुद्गल के सम्बन्ध से शरीर, वाणी और श्वास है। वह दु:खी अज्ञानी प्राणी को निमित्त है। धर्मी को वे निमित्त नहीं, धर्मी को तो आनन्द में आत्मा निमित्त अर्थात् कारण है। समझ में आया? **धर्मद्रव्य उपचरितअसद्भूत व्यवहारनयकर गतिसहायी है।** लो! ऐसे दु:ख में (निमित्त) के

लिये बात करते हो, हों! यहाँ। एक गति में से दूसरी गति में जाता है न? ऐसा कहते हैं। गतिसहायी है।

अधर्मद्रव्य स्थितिसहकारी है,... गति में, दुःख में वहाँ स्थिर होता है न। उसमें निमित्त है। **व्यवहारनयकर आकाशद्रव्य अवकाश (जगह) देता है, और कालद्रव्य शुभ-अशुभ परिणामों का सहायी है।** देखो! विभाव में लीन, उसे कालद्रव्य शुभाशुभ परिणाम में निमित्त है। **इस तरह ये पाँच द्रव्य सहकारी हैं। इनकी सहाय पाकर ये जीव निश्चय व्यवहाररत्नत्रय की भावना से रहित भ्रष्ट होते हुए चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए संसार में भटकते हैं,...** किस शैली से बात की है, देखो न! आहाहा! विभाव में लीन हुआ, उसे शरीर, वाणी, मन उत्पत्ति हो, उसे दुःख में काल के परिणाम निमित्त हैं। उसे गति में धर्मास्ति निमित्त है, गति में दुःख के टिके रहे, वहाँ उसे अधर्मास्ति निमित्त है। इस प्रकार दुःख में निमित्त है। उसे इस प्रकार उपकार किया कहा जाता है। वस्तु की दृष्टि होने पर एक भी निमित्त-बिमित्त उसमें है नहीं। अर्थात् वह ज्ञान में ज्ञेय है, ऐसा हो गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २४९२, पौष शुक्ल ७, गुरुवार
दिनांक-३०-१२-१९६५, गाथा-२६ से २८, प्रवचन-९०

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की २६वीं गाथा का अन्तिम भाग है, देखो! यह आत्मा अपना आत्मज्ञान, शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा का अन्तर्मुख ज्ञान किये बिना... समझ में आया? आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप, उसका अन्तर्मुख स्वभाव का ज्ञान किये बिना अनादि काल से विभाव में लीन जो अज्ञानी जीव है, उसे पुद्गल का सम्बन्ध स्वयं वर्तमान करता है, इसलिए उसे नये पुद्गलों का सम्बन्ध होता है। क्या कहा? कि जो जीव आत्मज्ञानरहित, ऐसा पाठ में है। यह आत्मा स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अन्तर्मुख होकर आत्मा का ज्ञान करे, उसे वर्तमान पुद्गल का निमित्त का सम्बन्ध भी नहीं कि जिससे वापस नये कर्म का, पुद्गल का सम्बन्ध हो, ऐसा भी नहीं। परन्तु जो कोई आत्मज्ञानरहित विभाव में लीन है—पुण्य और पाप के विकल्प के विभाव में लीन है, (उसे पुद्गल कर्म का सम्बन्ध होता है)। स्वभाव की दृष्टि में लीन है, उसे सम्बन्ध नहीं है।

जो भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु में जो लीन नहीं और जो पुण्य और पाप के विकल्प-विकार में लीन है, उसे अज्ञानी को व्यवहार से शरीर, वचन, मन और श्वास चारों की उत्पत्ति होती है। समझ में आया? और उस उत्पत्ति में पुद्गल का निमित्त—उपकार कहने में आता है। दु:ख में उत्पत्ति का निमित्त है वह, दु:ख में कारण है। समझ में आया? और उसी दु:ख में जिसने पुद्गल का सम्बन्ध किया, उसे ही उस प्रकार के शरीर, वाणी, मन और श्वास का सम्बन्ध हुआ। उसे धर्मद्रव्य उपचार से व्यवहारनय से गतिसहाय है। यह शैली यहाँ ली है। अधर्मद्रव्य स्थितिसहाय है। चार गति में पुद्गल के सम्बन्ध के विभाव में लीन हुआ, उसे पुद्गल का सम्बन्ध, उसे दु:ख के कारण में पुद्गल हुआ और धर्मास्ति भी गति में दु:ख का कारण हुआ और अधर्मास्ति दु:ख के कारण में स्थिति हुई।

व्यवहारनयकर आकाशद्रव्य अवकाश (जगह) देता है,... उस दु:ख में, जिसे पर का सम्बन्ध उसे आकाश दु:ख में अवगाह देता है। नरक में रहना आदि आकाश

अवगाह देता है। चार गति के दुःख में रहना, उसे आकाश अवगाह देता है। आहाहा! समझ में आया? **और कालद्रव्य शुभ-अशुभ परिणामों का सहायी है।** पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव होते हैं, उसमें कालद्रव्य निमित्त है। विभाव में लीन जीव को यह दुःख के निमित्त कारण कहने में आये हैं। ज्ञानी को वह दुःख नहीं। ज्ञानी, आत्मस्वरूप की दृष्टि में आत्मज्ञान है, इसलिए उसे पुद्गल का वर्तमान सम्बन्ध नहीं, स्वभाव सम्बन्ध है, इसलिए उसे शरीर, वाणी, मन, श्वास की उत्पत्ति नहीं। उसे शान्ति की अन्तर उत्पत्ति है। इसलिए उसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, उसे दुःख में जो निमित्त थे, वे इसे है नहीं। वाह! गजब शैली की यह। अन्तिम काल आया था, अन्तिम। काल बात अब, कहा। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश की टीका ही ऐसी है, देखो न! और पाठ ही ऐसा है। **'एयइँ दव्वइँ देहियहँ णिय-णिय-कज्जु जणंति। चउ-गइ-दुक्ख सहंत'** देखा न? उसे कहा। **'जिय तैं संसारु भमंति'** समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वरूप-सन्मुख की दृष्टि की और आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त किया, उसे तो वर्तमान स्वभाव का सम्बन्ध है, उसे पुद्गल का सम्बन्ध नहीं। इसलिए दुःख नहीं, जिससे दुःख में निमित्तकारण ज्ञानी को नहीं। उसे अपना ज्ञान होने से उस ज्ञान में निमित्तकारण हुआ कि वह चीज़ है, ऐसा ज्ञान में ज्ञात हुआ। समझ में आया? वाह! दूसरे ढंग से बात की है। कल जरा ख्याल में आया था परन्तु कहा, कल बात। समय हो गया था न! समझ में आया?

प्रभु आत्मा सच्चिदानन्द मूर्ति आत्मा है। सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का स्वरूप उसका—आत्मा का है। उसमें जिसकी दृष्टि की, ज्ञान की लीनता है, उसे तो कहीं शरीर आदि की उत्पत्ति है ही नहीं। उसे तो शान्ति की ही उत्पत्ति है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सा जरा दुःख रहा, वह भी ज्ञान के ज्ञेय में जाता है। और उसके कारण शरीर की कोई उत्पत्ति हो, वह भी ज्ञान में ज्ञेय में जाता है और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल का निमित्त है, वह ज्ञान में ज्ञेय में जाता है। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें प्रेम क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ उसे खबर कहाँ है कि, यह मैं कौन हूँ? जिसके एक

समय में अभी रागसहित ज्ञान हो, तो भी जिसे अनन्त-अनन्त क्षेत्र की हद नहीं, उसका ज्ञान अभी होता है। होता है या नहीं? एक समय का ज्ञान, भले उपयोग असंख्य समय का है रागवाला, परन्तु उसमें असंख्य में अनन्त आकाश अमाप है, उसकी अवस्था का ज्ञान यहाँ ज्ञान में होता है। अनादि हूँ और जैसा अनादि है, अनादि हूँ, अनन्त है, ऐसा भी ज्ञान की पर्याय में होता है, यह तीन काल ज्ञान में समाहित हो जाते हैं। आहाहा!

ज्ञान का वर्तमान... ध्यान रखकर सुनने जैसी बात है। ज्ञान का जो उपयोग है, रागवाला, तथापि असंख्य समय का भले हो, परन्तु उसका भाग करने पर एक समय में अनन्त ही आ जाता है। उस राग के ज्ञान में भी आकाश की अनन्तता, काल की आदि रहितता, अन्त रहितता, अनन्त द्रव्य वस्तु है, उसके अनन्त-अनन्त गुण हैं, उसकी अनन्त पर्यायें हैं, ऐसा असंख्य समय के उपयोग के ज्ञान के व्यापार में भी इतना ख्याल में ज्ञान ले सकता है। समझ में आया इसमें? इसके एक समय के ज्ञान में इतना सब आ गया है। उसका राग निकाल डालो और जब आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप में परिणमकर पूर्ण दशा को प्राप्त करे, उसके ज्ञान में अनन्त तीन काल-तीन लोक एक समय में ज्ञात हो, उसमें कुछ विशेषता नहीं। आहाहा! क्या कहा? यह माहात्म्य नहीं आता, उसकी यह बात चलती है।

अरे! ऐसा पदार्थ, आहाहा! जिसका वर्तमान ज्ञान रागवाला होने पर भी, अटका हुआ ज्ञान, अटका हुआ, तथापि इतना एक क्षण में जिसके ख्याल में निःसन्देह ख्याल में ऐसा ज्ञान आता है। समझ में आया? ऐसा जिसे राग बिना की अकेली ज्ञान की दशा होती है, उसमें तो तीन काल-तीन लोक है, उससे अनन्तगुणा हो तो जान सके, ऐसी सामर्थ्य है, ऐसे-ऐसे अनन्त पर्यायरूप परमात्मदशा के एक ज्ञानगुण में रही हुई है। आहाहा! समझ में आया इसमें? इस ज्ञानगुण में ऐसी अनन्त परमात्मपर्याय, सर्वज्ञपर्याय इस गुण में, ज्ञान में रही हुई है। ऐसा ज्ञान का धारक आत्मा, उसकी महिमा न आवे, तब तक उसे पुण्य-पाप और पर की महिमा नहीं छूटती। समझ में आया? ऐसे-ऐसे तो अनन्त गुण का धारक भगवान है। भाई! आत्मा अर्थात् क्या? महापदार्थ महाप्रभु। ऐसे एक गुण की बात की, ऐसे तो अनन्त गुणों में अनन्त सामर्थ्यवाला (तत्त्व है)। ऐसा जहाँ अन्तर माहात्म्य आया, कहते हैं कि, आत्मज्ञान हुआ, विकल्प की, राग की एकता

टूट गयी। उसे पुद्गल का सम्बन्ध नहीं, उसे विभाव में लीनता नहीं, उसे चार द्रव्य दुःख में निमित्त थे, वे इसे ज्ञान में, ज्ञान में निमित्त रहे अब। आहाहा! समझ में आया? पुद्गल भी ज्ञान में ज्ञेय हो गये। भाई! ऐई! आहाहा! गजब शैली!

सम्यक् आत्मज्ञान जहाँ शुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसा आत्मा मैं निर्विकल्प पूर्णानन्द प्रभु हूँ, ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, उसे अब अनन्त पुद्गल ज्ञान में स्वयं को जानते हुए ज्ञात हों, उसमें निमित्तरूप से रहे हैं। अब कर्म थोड़ा बाकी (रहा है), परन्तु वह ज्ञान में ज्ञेयरूप से निमित्तरूप से रहा है। और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल भी ज्ञान में ज्ञेयरूप से निमित्त रहे। आहाहा! बलिहारी रे प्रभु! तेरे ज्ञान की, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और जो आत्मा के ज्ञान बिना जिसकी पुण्य-पाप के विकल्प के राग में एकता और लीनता है, ऐसे अज्ञानी को पुद्गल का सम्बन्ध लक्ष्य है, इसलिए उसे शरीर, वाणी, मन, श्वास के पुद्गल उपकार करते हैं। उसे दुःख के निमित्त चाहिए है न, दुःख, दुःख है। आत्मा के लक्ष्य से दुःख नहीं हो सकता। पर के लक्ष्य से दुःख करता है स्वयं के कारण से। इसलिए उसे शरीर, वचन, मन और श्वास की उत्पत्ति होती है। आहाहा! समझ में आया?

उसका सम्बन्ध **विभाव परिणाम योग से जीव के पुद्गल का सम्बन्ध हैं,...** देखो! उसे पुद्गल का सम्बन्ध है। **और पुद्गल के सम्बन्ध से ये हैं,...** शरीर आदि। भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके सम्बन्ध से ज्ञान, दर्शन और शान्ति की उत्पत्ति होती है। उसमें शरीर, वाणी, श्वास और मन की उत्पत्ति नहीं होती। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, **इनकी सहाय पाकर ये जीव निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय की भावना से रहित भ्रष्ट होते हुए...** अहो! इस ओर के सम्बन्ध में अपने सम्बन्ध से भ्रष्ट हुआ, ऐसा कहते हैं। पुद्गल और बाहर के सम्बन्ध में दुःखी हुआ, स्वभाव के सम्बन्धी से रहित हुआ, वह अपने स्वभाव से भ्रष्ट हुआ, निश्चय और व्यवहार सम्यक्त्व से। **चारों गतियों के दुःखों को सहते हुए...** चार गति के दुःख सहते हुए, **संसार में भटकते हैं,...** संसार में भटकते हैं। समझ में आया इसमें? ओहोहो!

यह तो तत्त्वार्थसूत्र का उपकार का स्पष्टीकरण कर दिया। पुद्गल उपकार करते हैं, आता है न? आहाहा! भगवान ने उपकार किया आत्मा का स्वयं अपने को। शुद्ध

पूर्णानन्द प्रभु जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान में लक्ष्य में लिया और आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि हुए, कहते हैं कि उसे सम्बन्ध तो रहा भगवान आत्मा के साथ। उसे पुद्गल के साथ दुःख का सम्बन्ध रहा नहीं। इसलिए धर्मास्ति आदि भी जो दुःख के निमित्त, वह पर के सम्बन्ध से, वह पर सम्बन्ध था, उस सम्बन्ध में वह सम्बन्ध रहा नहीं, इसके साथ। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सब मिट गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मिट गया और सब हुआ। यह भगवान आत्मा ज्ञानानन्द-स्वरूप अनन्त गुण का एकरूप है, ऐसी अन्तर्दृष्टि होने से, अन्तर ज्ञान होने पर कहते हैं कि (जो) कुछ है, वह सब ज्ञान में ज्ञेयरूप से रह गया। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यह आत्मा के ज्ञान और भान बिना जिसकी लीनता विकृतभाव क्षणिक कृत्रिम उपाधि दुःखरूप भाव में लीनता है, उसे चार गति के कारण में शरीर, श्वास, गति आदि पुद्गल उत्पन्न करते हैं। वे दुःख के निमित्तरूप से हैं। आहाहा! समझ में आया? दुःख का उपादान तो राग में और विभाव में लीनता, वह उसका कारण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द में लीन नहीं (होकर), वह विकार में लीन हुआ, पुण्य-पाप के विभाव में एकाकार हुआ, उसे पुद्गल निमित्तरूप से दुःख में कारण हुए। शरीर, वाणी और श्वास उत्पन्न हुए। उससे कहीं आत्मा की शान्ति उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! कथन की पद्धति परमात्मप्रकाश... समझ में आया? अर्थात् कि जहाँ भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप का प्रकाश जहाँ दृष्टि में नहीं, उसे पुण्य-पाप के भाव में जिसकी लीनता है, उसे यह पुद्गल आदि पाँच द्रव्य दुःख में निमित्त होते हैं। समझ में आया? जिसे भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान में परमात्मप्रकाश प्रतीति का भान हुआ, उसे पाँचों द्रव्यों का ज्ञान वर्तता है, ज्ञान में ज्ञानरूप से ज्ञेय हैं। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी उसकी सहायता पाकर वह जीव चार गतियों के दुःखों को सहन करता है। पर के सम्बन्ध से; स्वभाव के सम्बन्ध से भ्रष्ट हुआ। ऐसा। समझ में आया? चार गति के दुःख को सहता और भटकता है। यह तात्पर्य है। लो! २६ का तात्पर्य। समझ में आया?

गाथा - २७

अथैवं पञ्चद्रव्याणां स्वरूपं निश्चयेन दुःखकारणं ज्ञात्वा हे जीव निजशुद्धात्मोप-लम्भलक्षणे मोक्षमार्गे स्थीयत इति निरूपयति –

१५०) दुक्खहँ कारणु मुणिवि जिय दव्वहँ एहु सहाउ।
होयवि मोक्खहँ मग्गि लहु गम्मिज्जइ पर-लोउ।।२७।।

दुःखस्य कारणं मत्वा जीव द्रव्याणां एतत्स्वभावम्।
भूत्वा मोक्षस्य मार्गे लघु गम्यते परलोकः।।२७।।

दुक्खहं कारणु दुःखस्य कारणं मुणिवि मत्वा ज्ञात्वा जिय हे जीव। किं दुःखस्य कारणं ज्ञात्वा दव्वहं एहु सहाउ द्रव्याणामिमं शरीरवाङ्मनःप्राणापाननिष्पत्यादिलक्षणं पूर्वोक्त-स्वभावम्। एवं पुद्गलादिपञ्चद्रव्यस्वभावं दुःखस्य कारणं ज्ञात्वा। किं क्रियते। होयवि भूत्वा। क्व। मोक्खहं मग्गि मोक्षस्य मार्गे लहु लघु शीघ्रं पश्चात् गम्मिज्जइ गम्यते। कः कर्मतापन्नः। पर-लोउ परलोको मोक्ष। इति तथाहि। वीतरागसदानन्दैकस्वाभाविकसुखविपरीतस्याकुलत्वो-त्पादकस्य दुःखस्य कारणानि पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि ज्ञात्वा हे जीव भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणे [1]मोक्षस्य मार्गे स्थित्वा परः परमात्मा तस्यावलोकनमनुभवनं परमसमरसीभावेन परिणमनं परलोको मोक्षस्तत्र गम्यत इति भावार्थः।।२७।।

आगे परद्रव्यों का संबंध निश्चयनय से दुःख का कारण है, ऐसा जानकर हे जीव! शुद्धात्मा को प्राप्तिरूप मोक्ष-मार्ग में स्थित हो, ऐसा कहते हैं –

पर-द्रव्यों के इस स्वभाव को दुख कारण मानो हे जीव!
मुक्तिमार्ग में गमन करो अरु शीघ्र निवास करो शिव लोक।।२७।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [द्रव्याणां इमं स्वभावम्] परद्रव्यों के ये स्वभाव [दुःखस्य] दुःख के [कारणं मत्वा] कारण जानकर [मोक्षस्य मार्गे] मोक्ष के मार्ग में [भूत्वा] लगकर [लघु] शीघ्र ही [परलोकः गम्यते] उत्कृष्ट लोकरूप मोक्ष में जाना चाहिये।

भावार्थ :- पहले कहे गये पुद्गलादि द्रव्यों के सहाय शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छवास आदिक ये सब दुःख के कारण हैं, क्योंकि वीतराग सदा आनंदरूप

---

१. पाठान्तर :- मोक्षस्य मार्गे = मोक्षमार्गे

स्वभावकर उत्पन्न जो अतीन्द्रिय सुख उससे विपरीत आकुलता के उपजानेवाले हैं, ऐसा जानकर हे जीव, तू भेदाभेद रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष के मार्ग में लगकर परमात्मा का अनुभव परमसमरसीभाव से परिणमनरूप मोक्ष उसमें गमन कर।।२७।।

गाथा-२७ पर प्रवचन

आगे परद्रव्यों का सम्बन्ध निश्चयनय से दुःख का कारण है, ऐसा जानकर हे जीव! शुद्धात्मा को प्राप्तिरूप मोक्ष-मार्ग में स्थित हो, ऐसा कहते हैं:—

१५०) दुक्खहँ कारणु मुणिवि जिय दव्वहँ एहु सहाउ।
होयवि मोक्खहँ मग्गि लहु गम्मिज्जइ पर-लोउ॥२७॥

अन्वयार्थः—हे जीव! 'द्रव्याणां' परद्रव्यों के ये स्वभाव... देखो! **'द्रव्याणां इमं स्वभावम्'** समझ में आया? परद्रव्य का जो स्वभाव। है न? **'दव्वहँ एहु सहाउ' परद्रव्यों के ये स्वभाव दुःख के कारण जानकर...** सम्बन्ध दुःख का कारण, इसलिए उसका स्वभाव दुःख का कारण जान। पर का सम्बन्ध करना, वह दुःखरूप है। इसलिए पर के निमित्त को पर का स्वभाव दुःख कारण जान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा का सम्बन्ध, वह आनन्द का कारण है। समझ में आया? शुद्ध परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा का सम्बन्ध आनन्द का कारण है। वह परद्रव्य के स्वभाव दुःख में निमित्तकारण हैं। दुःख के कारण अर्थात् निमित्त, हों! जान।

मोक्ष के मार्ग में लगकर... भगवान कहते हैं कि पर का सम्बन्ध छोड़ और भगवान आत्मा चिदानन्द का सम्बन्ध कर। इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? **मोक्ष के मार्ग में लगकर...** विभाव में लीन हुए को चार गति के दुःख के कारण मिलते हैं तो अब सम्बन्ध कर भगवान आत्मा का। शुद्ध ज्ञानमूर्ति, जिसके प्रकाश आनन्द आदि का पार नहीं होता, ऐसा स्वभाव, उसका सम्बन्ध करके। सम्बन्ध करना ही मोक्ष का मार्ग हुआ। आहाहा! यहाँ (पर का) सम्बन्ध करना वही बन्ध का मार्ग हुआ। समझ में आया?

मोक्ष के मार्ग में लगकर शीघ्र ही उत्कृष्ट लोकरूप मोक्ष में जाना चाहिए। दो

बातें। भगवान आत्मा, वह विकार में लीन हुआ, पर के सम्बन्ध को पाकर दुःख होकर चार गति में रुलता है। उसे अब (कहते हैं), भगवान आत्मा के स्वभाव का तू सम्बन्ध कर। वह सम्बन्ध पर का भी तूने किया है। समझ में आया? ऐसी बात—शैली यहाँ ली है। कर्म ने सम्बन्ध कराया है, ऐसा नहीं। तूने ऐसा सम्बन्ध किया है, इसलिए दुःख की दशा में तू लीन हुआ है। इसलिए सब पाँच द्रव्य तुझे दुःख में निमित्त कारण हैं। तू स्वयं अपने स्वभाव शुद्ध चैतन्य का सम्बन्ध कर। उस स्वभाव का सम्बन्ध, वह श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता से सम्बन्ध होता है। वह स्वभाव शुद्ध चैतन्य का सम्बन्ध, वही दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। पर का सम्बन्ध, वही मिथ्यादर्शन, अज्ञान और राग-द्वेष है। समझ में आया?

पहले कहे गये पुद्गलादि द्रव्यों के सहाय शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास आदिक ये सब दुःख के कारण हैं,... देखो! इस बात को अधिक स्पष्ट किया। पहले जो पुद्गल (सम्बन्ध में आये) उसका शरीर, वचन, श्वास आदि अर्थात् धर्मास्ति की गति, अधर्मास्ति का स्थिरता में, काल का शुभाशुभपरिणाम में निमित्त, आकाश में रहना, वह दुःख के कारण हैं। आहाहा! समझ में आया? क्या करना उसमें, इसे हाथ नहीं आता। परन्तु क्या करता है, उसकी इसे खबर नहीं। क्या कहा? क्या करता है, उसकी खबर नहीं। करता है वह विकार की उत्पत्ति करके उसमें लीनता। पूरा भगवान चिदानन्दस्वभाव का अनादर करके, विकल्प की उत्पत्ति में लाभ मानकर अर्थात् मिथ्यात्व करके और उसमें लीन होता है। यह वह करता है। समझ में आया?

यह करता है, इसलिए उसे पुद्गल शरीर, श्वास, वाणी आदि का निमित्तरूप से उपकार करके दुःख में निमित्त होते हैं। कठिन बात, भाई! समझ में आया? परन्तु उल्टा रास्ता यह कैसा इसे ख्याल में लेना चाहिए न! उल्टे का अर्थ इतना कि जो पर को अपना मानना और स्व को भूल जाना। विकल्प आदि विकार है, वह विभाव है और पर है, वे पृथक् हैं, उन्हें अपने मानकर विभाव में लीन हूँ, यह इसकी भूल। आहाहा!

उस भूल को टालने के लिये कहते हैं, भगवान चिदानन्दस्वरूप तेरा है न! पूर्णानन्द से भरपूर। उसका सम्बन्ध कर। वह सम्बन्ध कैसे हो? कि पर के सम्बन्ध को छोड़कर ज्ञायक चैतन्यमूर्ति भगवान के ओर की नजर डालने से सम्यग्दर्शन से उसका—

आत्मा का सम्बन्ध होता है। उसकी ओर के सम्यग्ज्ञान से सम्बन्ध होता है और उसमें स्थिरता के चारित्र से उसका सम्बन्ध होता है। इसलिए सम्बन्ध हुआ, वही मोक्षमार्ग है।

ऐसे मोक्षमार्ग में लग। क्यों? **क्योंकि वीतराग सदा आनन्दरूप स्वभावकर उत्पन्न जो अतीन्द्रिय सुख...** आत्मा वीतराग—रागरहित सदा आनन्दरूप स्वभाव, उससे उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख, यह पर्याय की बात लेते हैं, हों! अतीन्द्रिय वीतराग आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। विकल्प अर्थात् पुण्य-पाप के रागरहित आत्मा का आनन्दस्वरूप त्रिकाल है, ऐसे स्वभाव से उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय सुख। वर्तमान। **उससे विपरीत (वर्तमान) आकुलता के उपजानेवाले हैं,...** समझ में आया? कौन? यह सब दुःख के कारण।

पहले कहे गये पुद्गलादि द्रव्यों के सहाय शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास आदिक ये सब दुःख के कारण हैं, क्योंकि वीतराग सदा आनन्दरूप स्वभावकर उत्पन्न जो अतीन्द्रिय सुख उससे विपरीत आकुलता के उपजानेवाले हैं,... समझ में आया? वाह! भगवान आत्मा वीतरागी परमानन्द की मूर्ति आत्मा है। वस्तु... वस्तु... वस्तु, हों! आत्मा वस्तु सर्वज्ञ वीतराग, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग फरमाते हैं कि हे आत्मा! आत्मा अर्थात् क्या? तू अर्थात् कौन? कि वीतरागी परमानन्द की मूर्ति अर्थात् आत्मा। गजब बात, भाई! यहाँ तो कोड़ी-कोड़ी का भिखारी होकर घूमता है न! रंक होकर रुलता है। कहते हैं, भगवान! परन्तु तू स्वयं वीतराग सदा आनन्द (स्वरूप है)। देखा? चारित्र—रागरहित तो स्थिर परन्तु सदा आनन्दरूप तू है। आहाहा! ऐसा स्वभाव, वह तेरा स्वरूप है, ऐसा तू है ऐसा अनादि। कैसे बैठे? इसके सम्बन्ध से तो उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय सुख है। उसके सम्बन्ध में तो अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है। मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है अर्थात् अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है। समझ में आया? उससे उल्टे आकुलता के उपजानेवाले विभाव हैं। आहाहा! समझ में आया? वे आकुलता के उपजानेवाले विभाव और उसमें कारण पुद्गल आदि आकुलता के उपजानेवाले हैं। उसके सम्बन्ध में तो आकुलता उत्पन्न होती है। भगवान आनन्द के सम्बन्ध में तो अतीन्द्रिय आनन्द उपजता है। समझ में आया? ओहोहो!

ऐसा जानकर... ये पाँच पदार्थ दुःख के निमित्त कारण हैं। तू दुःख उत्पन्न करता

है, उसमें वे निमित्त कारण हैं, ऐसा जानकर, **हे जीव! तू भेदाभेद रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष के मार्ग में लगकर...** तू अब, आत्मा स्वरूप अखण्ड अभेद है, वीतराग स्थिर और आनन्द स्वरूप त्रिकाल शाश्वत् है, उसके अन्दर सम्बन्ध कर उसका। उसमें दृष्टि लगा, उसका कर ज्ञान, उसमें स्थिर हो। यह अभेद रत्नत्रय निश्चयमोक्षमार्ग कहलाता है। समझ में आया? बात बहुत बड़ी लगती है। जमुभाई!

कहते हैं कि भाई! तेरा डुगडुगी ऐसी बजे तो दुःख में निमित्त हो, तेरी दशा स्वभाव को सम्बन्ध करे तो वह सब ज्ञान में निमित्त कारण कहलाये, यह बात है अनादि की, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मा का अनुभव... मोक्ष (कहते) हैं। मार्ग और फल दोनों इकट्ठे। तेरा सम्बन्ध जो भगवान आत्मा तू है न, पूर्णानन्द से भरपूर, उसका सम्बन्ध (कर तो सुख होगा)। (पुद्गल का सम्बन्ध करने से) तो तुझे दुःख होगा, दुःख में वह निमित्त कारण कहलाते हैं। उन्हें छोड़कर भगवान पूर्णानन्द प्रभु का सम्बन्ध कर तो उससे अनाकुल आनन्द की उत्पत्ति होगी। उसे अभेद रत्नत्रयमार्ग कहने में आता है। आहाहा! उस शुद्ध स्वभाव की प्रतीति में आनन्द का आना, शुद्ध सम्यग्दर्शन, आत्मा के ज्ञान में आनन्द का आना, उसमें स्थिरता में आनन्द का आना, ऐसा स्वभाव सम्बन्ध करके अभेद मोक्ष के मार्ग में लीन हो। भेद रत्नत्रय की बात की है कि साथ में ऐसा विकल्प व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र ऐसे सच्चे होते हैं और छह द्रव्य होते हैं, उनकी व्यवहाररूप श्रद्धा का विकल्प होता है। यह साथ में प्रमाणज्ञान कराया है। ऐसा यदि कर तो तुझे परमात्मा का अनुभव, पूर्ण स्वरूप का अवलोकन तुझे होगा। भगवान परमात्मा स्वयं होगा। ज्ञान की पर्याय में केवलज्ञान में स्वयं अपने को अवलोकेगा। समझ में आया?

परमात्मा का अनुभव परमसमरसीभाव से परिणमनरूप... कैसा है परमात्मा का अनुभव? परमसमरसी, परम वीतरागभाव ऐसा जो परिणमन, उसरूपी मोक्ष। समझ में आया? वीतरागस्वभाव, सदा आनन्दरूप प्रभु आत्मा के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अनाकुल आनन्द की पर्याय, उससे पूर्ण प्रगट हुआ समरसी, समभावरूपी वीतरागी भाव। समझ में आया? उसे मोक्ष कहा जाता है। **परमसमरसीभाव से परिणमनरूप मोक्ष...** देखो! वाह! क्या कहा, समझ में आया? परमसमरसीभाव,

ऐसा वीतराग आत्मा, उसे अन्तर में एकाग्र होकर जो वीतरागी परिणति उत्पन्न करना, वह अल्प समरसी परिणति है—मोक्षमार्ग, पूर्ण मोक्षस्वरूप वह परमसमरसीभाव की परिणति, वह मोक्ष है। समझ में आया?

परमात्मा का अनुभव... अर्थात्? **परमसमरसीभाव से परिणमनरूप मोक्ष...** ऐसा। यह परमात्मा का अनुभव। बहुत ही संक्षिप्त भाषा में, बहुत ही वस्तु का स्वरूप (वर्णन किया है)। समझ में आया? ऐसे पर के सम्बन्ध से दुःखी होकर चार गति में रहा। पुद्गल ने, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल ने उपकार किया दुःख में। आहाहा! तू ही अपने परमानन्द स्वभाव की अन्तर में दृष्टि से सम्बन्ध कर, ज्ञान से सम्बन्ध कर, तो जैसा परमसमरसी सदा आनन्दमय मूर्ति प्रभु आत्मा है तो उसके सम्बन्ध से शान्त रसरूपी परिणमनरूपी मोक्ष के मार्ग की पर्याय प्रगट होगी। उससे परमसमरसी भावरूपी परिणमनरूप मोक्ष, तुझे प्रगट होगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उकलाहट क्यों है?

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही कहाँ उकलाहट? उकलाहट तो तूने सम्बन्ध किया, इसलिए उकलाहट खड़ी की है। ऐसा कहते हैं। वस्तु में नहीं, वस्तु में नहीं, उकलाहट और दुःख वस्तु का कोई गुण नहीं आत्मा में। आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान इस आत्मा में कोई दुःख होने का गुण नहीं। उसकी वर्तमान दशा में पर के सम्बन्ध से अज्ञान और दुःख की उत्पत्ति पर्याय में करता है। जुगराजजी! आहाहा! देखो! यह कहते हैं।

परमानन्द से भरपूर प्रभु का तू आदर न करे और पुद्गल के सम्बन्ध के संग में तुझे प्रेम हो तो मिथ्यात्वभाव और आकुलता ही उत्पन्न होगी। उसके दुःख में फिर यह सब शरीर, वाणी, श्वास की उत्पत्ति (होती है)। पुद्गल ने उपकार किया तुझे, ले। यह एक गति में से दूसरी गति में जाना, उसमें निमित्तरूप से धर्मास्ति ने तुझे दुःख में उपकार किया। स्थिर हुआ जहाँ दुःख में, कोई गति में अमुक काल, वहाँ इसे अधर्मास्ति ने तुझे दुःख में मदद की। आकाश ने तुझे रहने में, दुःखी होकर रहने में मदद की है। उस काल में शुभाशुभपरिणाम होने में, दुःख में परिणमने में इसने निमित्त (किया)। वाह! समझ में आया?

मुमुक्षु : पहले नहीं था वाँचन ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले नहीं था वाँचन। बात सच्ची। कहो, समझ में आया?

भगवान! तेरे पूर्ण परिणमन में जा न! पूर्ण स्वभाव के सम्बन्ध में आ जा तो पूर्ण परिणमन में जायेगा, जायेगा और जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ पुद्गल के सम्बन्ध में लीन होकर रहा तो उत्कृष्ट स्थान निगोद है, वहाँ जायेगा। जहाँ दशा बहुत हीन और दु:ख अपार है। नारकी का दु:ख तो संयोग से मापा जाये, कहने की बात है। उसे तो जहाँ अन्तर पर्याय जहाँ हीन... हीन... हीन... हीन हो गई, उसके तो नरक से भी उसका दु:ख तो अनन्त है निगोद में। पुद्गल के सम्बन्ध में बहुत लीन हुए का परिणाम अन्तिम निगोद की दशा के दु:ख का स्थान है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द की दृष्टि में लीन हुए का परिणाम उत्कृष्ट परमसमरसी आनन्द के परिणमनरूप मोक्ष दशा है। समझ में आया? लो! २७ कही।

गाथा - २८

अथेदं व्यवहारेण मया भणितं जीवद्रव्यादिश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनमिदानीं सम्यग्ज्ञानं चारित्रं च हे प्रभाकरभट्ट शृणु त्वमिति मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति -

१५१) णियमें कहियउ एहु मइँ ववहारेण वि दिट्ठि।
एवहिँ णाणु चरित्तु सुणि जें पावहि परमेट्ठि।।२८।।

नियमेन कथिता एषा मया व्यवहारेणापि दृष्टिः।
इदानीं ज्ञानं चारित्रं शृणु येन प्राप्नोषि परमेष्ठिनम्।।२८।।

णियमें नियमेन निश्चयेन कहियउ कथिता एहु मइं एषा कर्मतापन्ना मया। केनैव। ववहारेण वि व्यवहारनयेनैव। एषा का[1]। दिट्ठि दृष्टिः। दृष्टिः कोऽर्थः, सम्यक्त्वम्। एवहिं इदानीं णाणु चरित्तु सुणि हे प्रभाकरभट्ट क्रमेण ज्ञानचारित्रद्वयं शृणु। येन श्रुतेन किं भवति। जें पावहि येन सम्यग्ज्ञानचारित्रद्वयेन प्राप्नोषि। किं प्राप्नोषि। परमेट्ठि परमेष्ठिपदं मुक्तिपदमिति। अतो व्यवहारसम्यक्त्वविषयभूतानां द्रव्याणां चूलिकारूपेण व्याक्यानं क्रियते। तद्यथा। 'परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एय खित्त किरिया य। णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदं इदरम्हि य पवेसो।' परिणाम इत्यादि। 'परिणाम' परिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां शेषचत्वारि द्रव्याणि जीवपुद्गलवद्विभावव्यञ्जनपर्यायाभावात् मुख्यवृत्त्या पुनरपरिणामीनि इति। 'जीव' शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचैतन्यं प्राणशब्देनोच्यते तेन जीवतीति जीवः, व्यवहारनयेन पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि। 'मुत्तं' अमूर्तशुद्धात्मनो विलक्षणा स्पर्शरसगन्ध-वर्णवती मूर्तिरुच्यते तद्भावान्मूर्तः पुद्गलः। जीवद्रव्यं पुनरनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण मूर्तमपि शुद्धनिश्चयनयेनामूर्तम्। धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्तानि। 'सपदेसं' लोकमात्रप्रमिता-संख्येयप्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादि कृत्वा पञ्चद्रव्याणि पञ्चास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि कालद्रव्यं पुनर्बहुप्रदेशलक्षणकायत्वाभावादप्रदेशम्। 'एव' द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि भवन्ति। 'खेत्त' सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात् क्षेत्रमाकाशमेकं शेषपञ्चद्रव्याण्यक्षेत्राणि। 'किरिया य' क्षेत्रात्क्षेत्रान्तरगमनरूपा परिस्पन्दवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावन्तौ जीवपुद्गलौ धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि। 'णिच्चं' धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि तथापि

१. पाठान्तर :- का = का कथिताः

मुख्यवृत्त्या विभावव्यञ्जनपर्यायाभावात् नित्यानि द्रव्यार्थिकनयेन च, जीवपुद्गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणति [1]रूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जन-पर्यायापेक्षया चानित्ये। 'कारण' पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्य शरीरवाङ्मनःप्राणा-पानादिगतिस्थित्यवगाहवर्तनाकार्याणि कुर्वन्ति इति कारणानि भवन्ति, जीवद्रव्यं पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोग्रहं करोति तथापि पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणां किमपि न करोतीत्यकारणम्। 'कत्ता' शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बन्धन्मोक्षद्रव्यभावरूप पुण्यपापघटपटादीनामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबन्धयोः कर्ता तत्फलभोक्ता च भवति विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिज-शुद्धात्मद्रव्यसम्यक्नश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोपयोगेन [2]तत्परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्ता तत्फलभोक्ता च। शुभाशुभशुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वम् सर्वत्र ज्ञातव्यमिति। पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वम्। वस्तुवृत्त्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव। 'सव्वगदं' लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते धर्माधर्मौ च लोकव्याप्त्यपेक्षया जीवद्रव्यं तु पुनरेकैकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगतंनानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवतीति। पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोकरूपमहास्कन्धापेक्षया सर्वगतं शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवतीति। कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया सर्वगतं न भवति लोकप्रदेशप्रमाणनानाकालाणुविवक्षया लोके सर्वगतं भवति। 'इदरम्हि यपवेसो' यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेनान्यो-न्यानुप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चयनयेन चेतनादिस्वकीयस्वकीयस्वरूपं न त्यजन्तीति। तथा चोक्तम् - 'अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स। मेलंता वि य णिच्चं सगसब्भावं ण विजहंति।।'। इदमत्र तात्पर्यम्। व्यवहारसम्यक्त्वविषयभूतेषु षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानन्दैकादिगुणस्वभावं शुभाशुभमनो-वचनकायव्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्य-मेवोपादेयम्।।२८।। एवमेकोनविंशतिसूत्रप्रमितस्थले निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गप्रतिपादकत्वेन पूर्वसूत्रत्रयं गतम्। इदं [3]पुनरन्तरं स्थलं चतुर्दशसूत्रप्रमितं षड्द्रव्यध्येयभूतव्यवहारसम्यक्त्व-व्याख्यानमुख्यत्वेन समाप्तमिति।

आगे व्यवहारनय से मैंने ये जीवादि द्रव्यों के श्रद्धानरूप को सम्यग्दर्शन कहा है, अब सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को हे प्रभाकरभट्ट; तू सुन, ऐसा मन में रखकर यह दोहासूत्र कहते हैं -

---

१. पाठान्तर :- रूप = स्वरूप २. पाठान्तर :- तत्परिणतः = तु परिणतः

३. पाठान्तर :- पुनरन्तरं स्थलं = पुनरन्तरस्थलं

सम्यग्दर्शन का स्वरूप व्यवहार अपेक्षा कहा गया।
ज्ञान और चारित्र सुनो अब जिससे परमेष्ठी पद हो।।२८।।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकरभट्ट, [मया] मैंने [व्यवहारेणैव] व्यवहारनय से तुझको [एषा दृष्टिः] ये सम्यग्दर्शन का स्वरूप [नियमेन कथिता] अच्छी तरह कहा, [इदानीं] अब तू [ज्ञानं चारित्रं] ज्ञान और चारित्र को [शृणु] सुन, [येन] जिसके धारण करने से [परमेष्ठिनम् प्राप्नोषि] सिद्धपरमेष्ठि के पद को पावेगा।

भावार्थ :- व्यवहारसम्यक्त्व के कारणभूत छह द्रव्यों का सांगोपांग व्याख्यान करते हैं 'परिणाम' इत्यादि गाथा से। इसका अर्थ यह है, कि इन छह द्रव्यों में विभावपरिणाम के परिणमनेवाले जीव और पुद्गल दो ही हैं, अन्य चार द्रव्य अपने स्वभावरूप तो परिणमते हैं, लेकिन जीव पुद्गल की तरह विभावव्यंजनपर्याय के अभाव से विभावपरिणमन नहीं है, इसलिये मुख्यता से परिणामी दो द्रव्य ही कहे हैं, शुद्धनिश्चयनयकर शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो शुद्ध चैतन्यप्राण उनसे जीता है, जीवेगा, पहले जी आया, और व्यवहारनयकर इंद्री, बल, आयु, श्वासोश्वासरूप द्रव्यप्राणोंकर जीता है, जीवेगा, पहले जी चुका, इसलिये जीव को ही जीव कहा गया है, अन्य पुद्गलादि पाँच द्रव्य अजीव हैं, स्पर्श, रस, गंध, वर्णवाली मूर्ति सहित मूर्तिक एक पुद्गलद्रव्य ही है, अन्य पाँच अमूर्तिक हैं। उनमें से धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चारों तो अमूर्तिक हैं, तथा जीवद्रव्य अनुपचरित-असद्भूतव्यवहारनयकर मूर्तिक भी कहा जाता है, क्योंकि शरीर को धारण कर रहा है, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर अमूर्तिक ही है, लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी जीवद्रव्य को आदि लेकर पाँच द्रव्य पंचास्तिकाय हैं, वे सप्रदेशी हैं, और कालद्रव्य बहुप्रदेश स्वभावकायपना न होने से अप्रदेशी है, धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक एक हैं, और जीव, पुद्गल, काल ये तीनों अनेक हैं। जीव तो अनंत हैं, पुद्गल अनंतानंत हैं, काल असंख्यात हैं, सब द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ एक आकाश ही है, इसलिये आकाश क्षेत्र कहा गया है, बाकी पाँच द्रव्य अक्षेत्री हैं, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में गमन करना, वह चलन हलनवती क्रिया कही गई है, यह क्रिया जीव पुद्गल दोनों के ही है, और धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं, जीवों में भी संसारी जीव हलन-चलनवाले हैं, इसलिये क्रियावंत हैं, और सिद्धपरमेष्ठी निःक्रिय हैं, उनके हलन-चलन क्रिया नहीं है, द्रव्यार्थिकनय से

विचारा जावे तो सभी द्रव्य नित्य हैं, अर्थपर्याय जो षट्गुणी हानिवृद्धिरूप स्वभावपर्याय है, उसकी अपेक्षा सब ही अनित्य हैं, तो भी विभावव्यंजनपर्याय जीव और पुद्गल इन दोनों की है, इसलिये इन दोनों को ही अनित्य कहा है, अन्य चार द्रव्य विभाव के अभाव से नित्य ही हैं, इस कारण यह निश्चय से जानना कि चार नित्य हैं, दो अनित्य हैं, तथा द्रव्यकर सब ही नित्य हैं, कोई भी द्रव्य विनश्वर नहीं है, जीव को पाँचों ही द्रव्य कारणरूप हैं, पुद्गल तो शरीरादिक का कारण है, धर्म-अधर्मद्रव्य गति स्थिति के कारण हैं, आकशद्रव्य अवकाश देने का कारण है, और काल वर्तना का सहायी है। ये पाँचों द्रव्य जीव को कारण हैं, और जीव उनको कारण नहीं है। यद्यपि जीवद्रव्य अन्य जीवों को गुरु शिष्यादिरूप परस्पर उपकार करता है, तो भी पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अकारण है, और ये पाँचों कारण हैं, शुद्ध पारिणामिक परमभावग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर यह जीव यद्यपि बंध, मोक्ष, पुण्य, पाप का कर्ता नहीं है, तो भी अशुद्धनिश्चयनयकर शुभ-अशुभ उपयोग से परिणत हुआ पुण्य-पाप के बंध का कर्ता होता है, और उनके फल का भोक्ता होता है, तथा विशुद्ध ज्ञान दर्शनरूप निज शुद्धात्मद्रव्य का श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप शुद्धोपयोगकर परिणत हुआ मोक्ष का भी कर्ता होता है, और अनंत सुख का भोक्ता होता है। इसलिये जीव को कर्ता भी कहा जाता है, और भोक्ता भी कहा जाता है। शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणमन ही सब जगह कर्तापना है, और पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अपने अपने परिणामरूप जो परिणमन वही कर्तापना है, पुण्य पापादि का कर्तापना नहीं है, सर्वगतपना लोकालोक व्यापकता की अपेक्षा आकाश ही में है, धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य ये दोनों लोकाकाशव्यापी हैं, अलोक में नहीं है, और जीवद्रव्य में एक जीव की अपेक्षा केवलसमुद्घात में लोकपूरण अवस्था में लोक में सर्वगतपना है, तथा नाना जीव की अपेक्षा सर्वगतपना नहीं है, पुद्गलद्रव्य लोकप्रमाण महास्कंध की अपेक्षा सर्वगत है, अन्य पुद्गल की अपेक्षा सर्वगत नहीं है, कालद्रव्य एक कालाणु की अपेक्षा तो एकप्रदेशगत है, सर्वगत नहीं है, और नाना कालाणु की अपेक्षा लोकाकाश के सब प्रदेशों में कालाणु है, इसलिये सब कालाणुओं की अपेक्षा सर्वगत कह सकते हैं। इस नयविवक्षा से सर्वगतपने का व्याख्यान किया। और मुख्यवृत्ति से विचारा जावे, तो सर्वगतपना आकाश में ही है, अथवा ज्ञान की अपेक्षा जीव में भी है, जीव का केवलज्ञान लोकालोक व्यापक है, इसलिये सर्वगत कहा। ये सब द्रव्य यद्यपि व्यवहायनयकर एक क्षेत्रावगाही रहते हैं, तो भी निश्चयनयकर अपने अपने स्वभाव को

नहीं छोड़ते, दूसरे द्रव्य में जिनका प्रवेश नहीं है, सभी द्रव्य निज निज स्वरूप में हैं, पररूप नहीं हैं–कोई किसी का स्वभाव नहीं लेता। ऐसा ही कथन श्रीपंचास्तिकाय में है। 'अण्णोण्णं' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है, कि यद्यपि ये छहों द्रव्य परस्पर में प्रवेश करते हुए देखे जाते हैं, तो भी कोई किसी में प्रवेश नहीं करता, यद्यपि अन्य को अन्य अवकाश देता है, तो भी अपना अपना अवकाश आप में ही है, पर में नहीं है, यद्यपि ये द्रव्य हमेशा से मिल रहे हैं, तो भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। यहाँ तात्पर्य यह है, कि व्यवहारसम्यक्त्व के कारण छह द्रव्यों में वीतराग चिदानंद अनंत गुणरूप जो शुद्धात्मा है, वह शुभ, अशुभ, मन, वचन, काय के व्यापार से रहित हुआ ध्यावने योग्य है।।२८।।

गाथा-२८ पर प्रवचन

आगे व्यवहारनय से मैंने ये जीवादि द्रव्यों के श्रद्धानरूप को सम्यग्दर्शन कहा है,... यह सब भेद की बातें की न? छह द्रव्य की और यह सब। अभी उसका विस्तार करना चाहते हैं। **अब सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र को हे प्रभाकर भट्ट! तू सुन,...** आचार्य को यह कहना है कि अब मैं ज्ञान और चारित्र की बात करूँगा। **ऐसा मन में रखकर यह दोहासूत्र कहते हैं:—** फिर टीका में दो श्लोक दूसरे रखते हैं।

१५१) णियमँ कहियउ एहु मइँ ववहारेण वि दिट्ठि।
एवहिँ णाणु चरित्तु सुणि जेँ पावहि परमेट्ठि।।२८।।

सुन, तू प्राप्त करेगा परमेष्ठी। सुन, कहते हैं, हों! ऐसा।

अन्वयार्थः—हे प्रभाकर भट्ट! मैंने व्यवहारनय से तुझको ये सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा,... सम्यग्दर्शन में छह द्रव्य का, उसके गुण, उसकी पर्याय और असंख्य प्रदेश... भेद। **अच्छी तरह कहा, अब तू ज्ञान और चारित्र को सुन, जिसके धारण करने से सिद्धपरमेष्ठी के पद को पावेगा।**

भावार्थः—व्यवहारसम्यक्त्व के कारणभूत छह द्रव्यों का सांगोपांग व्याख्यान करते हैं... अब टीकाकार इसका विस्तार करते हैं। अन्यत्र से श्लोक रखकर, श्लोक है अन्दर वह। यह है और वह सब श्वेताम्बर में आता है। अभी बहुत वर्षों से देखा है।

पहले से भंगभेद में आता है, पहले से। **छह द्रव्यों में विभावपरिणाम के परिणमनेवाले जीव और पुद्गल दो ही हैं,...** विस्तार से समझाते हैं। यह छह द्रव्य है न, जगत में? अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, आकाश। भगवान केवलज्ञानी ने छह द्रव्य देखे हैं। परमात्मा परमेश्वर ने केवली ने छह द्रव्य देखे हैं। उन छह द्रव्यों में, छह द्रव्य संख्या से नहीं, जाति से, संख्या (अपेक्षा) से अनन्त। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश, ऐसे अनन्त देखे। जातिरूप से छह। ऐसे छह द्रव्यों में विभाव परिणाम में परिणमन में जीव और पुद्गल दो (द्रव्य हैं)। विकाररूप से परिणमनेवाले हों तो जीव और परमाणु दो। वे चार विकाररूप नहीं परिणमते। यह अधिक ज्ञान कराते हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल को विकार का परिणमन, विभावव्यंजन-पर्याय नहीं। समझ में आया इसमें? अभी ज्ञान, चारित्र शुरु नहीं हुआ। बाद में कहेंगे। यह तो अभी पहले कहा, उसका विस्तार कहते हैं। यह तो कहा ऊपर, फिर लेंगे। समझ में आया?

लेकिन जीव पुद्गल की तरह विभावव्यंजनपर्याय के अभाव से विभावपरिणमन नहीं है,... किसमें? चार में। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। उसमें विभाव-व्यंजनपर्याय का अभाव है, उन्हें आकृति विकार नहीं। **विभावपरिणमन नहीं है, इसलिए मुख्यता से परिणामी दो द्रव्य ही कहे हैं,...** परिणामी तो छहों हैं, परन्तु विभाव परिणमन चार में नहीं, इसलिए परिणामी नहीं, ऐसा चार में कहा जाता है। तथा जीव और पुद्गल विकाररूप परिणमते हैं; इसलिए उन्हें परिणामी कहा है। परिणामी तो सभी हैं, परिणामी बिना कोई द्रव्य होता नहीं परन्तु विकार के परिणाम की मुख्यता से वर्णन करते हुए जीव और पुद्गल ही दो विभावरूप परिणमते हैं, इसलिए परिणामी कहे हैं। चार द्रव्यों को अपरिणामी कहा है, वह विकार के परिणमन की अपेक्षा से। समझ में आया? यह तो थोकड़ा में आता है, श्वेताम्बर के थोकड़ा में श्लोक आता है।

मुमुक्षु : थोकड़ा कौन पढ़ा था?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई पढ़ा नहीं था?

शुद्धनिश्चयनयकर शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो शुद्ध चैतन्यप्राण उनसे जीता

है,... कहते हैं... वास्तव में... जीव की व्याख्या करते हैं। वास्तव में तो भगवान आत्मा शुद्ध निश्चय से, शुद्ध ज्ञान—दर्शनस्वभाव ऐसा चैतन्यप्राण। चैतन्य के प्राण से स्वयं त्रिकाल जीना, वह तो उसका वास्तविक जीवन है। समझ में आया? शुद्ध चैतन्य दर्शन, ज्ञानस्वभाव प्राण, भावप्राण—वीतरागी भावप्राण, उससे जीना, वह तो उसका चैतन्य शुद्ध चैतन्यप्राण है। समझ में आया? वह तो ऐसे **प्राण उनसे जीता है, जीवेगा, पहले जी चुका,...** ऐसे ही प्राण। चैतन्य शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्द के प्राण से अनन्त काल का है, अभी है और भविष्य में भी रहेगा। अन्तर वस्तु तो ऐसी ही है अन्दर। और व्यवहारनयकर इन्द्रिय पाँच। अर्थात् समुच्चय लिया। चार लेना है न। बल, मन, वचन और काया के बल, आयुष्य और श्वास, इन द्रव्यप्राण से जीता है। चार द्रव्यप्राण जो शरीर आदि। उनसे **जीता है, जीवेगा, पहले जी चुका, इसलिए जीव को ही जीव कहा गया है,...** व्यवहार से उसे जीव कहा जाता है, निश्चय से अपने चैतन्य भावप्राण से जीवे, उसे वास्तविक जीव कहा जाता है।

अन्य पुद्गलादि पाँच द्रव्य अजीव हैं,... आत्मा के अतिरिक्त निश्चय और व्यवहार जीव यह है, दूसरे सब अजीव हैं। परमाणु, वह अजीव। काल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, वह अजीव है। समझ में आया? **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्ति सहित मूर्तिक एक पुद्गलद्रव्य ही है,...** यह पुद्गल शरीर, कर्म, वाणी, दाल, भात, सब्जी वह सब जड़। यह रंग, रस, गन्धवाली मूर्ति सहित पुद्गलद्रव्य है। इस शरीर में, वाणी में यह दिखता है, उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श सहित भरे पड़े मूर्त हैं। वह एक ही पुद्गल जगत में मूर्तिक है। **अन्य पाँच अमूर्तिक हैं।** धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल वह अजीव अमूर्तिक। जीव, जीव अमूर्तिक। समझ में आया? कहाँ परन्तु इसमें दरकार ही नहीं होती इसे, फिर याद कैसे रहे? कान्तिभाई! मशीन के एक-एक सलिया की इसे खबर हो।

इस दुनिया में क्या है, वह कहीं तेरे सम्यग्दर्शन का विषय। समझ में आया? छह द्रव्य कैसे? किस प्रकार से है? निश्चय तो आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द, वह सम्यग्दर्शन का कारण और विषय है। समझ में आया? आया न यह तो? सम्यक्त्व का कारण छह द्रव्य का सांगोपांग व्याख्यान करेंगे, कहा न! यह सब इसे जानकर मानना

चाहिए। अन्यमति सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त जो कहते हों, उनका मार्ग सच्चा नहीं। व्यवहार का भी मार्ग उसका सच्चा नहीं। एक सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव, जिन्हें तीन काल तीन लोक का ज्ञान (हुआ है), उन्होंने निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय क्या, व्यवहार का विषय जो यथार्थ देखा है, उन भगवान ने कहा है। समझ में आया?

उनमें से धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चारों तो अमूर्तिक हैं,... और पुद्गल मूर्तिक है। **तथा जीवद्रव्य अनुपचरित-असद्भूतव्यवहारनयकर मूर्तिक भी कहा जाता है,...** अपेक्षा से। शरीर का सम्बन्ध है न, इस अपेक्षा से कर्म के सम्बन्ध से (कहा जाता है)। सम्बन्ध नजदीक है, इसलिए अनुपचरित। झूठे व्यवहारनय से मूर्ति कहा जाता है। **क्योंकि शरीर को धारण कर रहा है,...** शरीर को धारण किया है न! रखा है ऐसे। धारण अर्थात् निमित्तरूप से है, ऐसा। शरीर को निमित्तरूप से है न यह। भगवान अलग और यह निमित्तरूप से यह लोचा साथ में है। इसलिए उसे सम्बन्धवाले नय से झूठे नय से कहा जाता है।

तो भी शुद्धनिश्चयनयकर अमूर्तिक ही है,... शुद्ध निश्चय से तो भगवान रंग, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की चीज़ है। यह पहले आ गया था। कर्मरहित अमूर्तिक है और विकाररहित शुद्ध है। आया था या नहीं? कर्म और पुद्गल रहित भगवान आत्मा अमूर्त ही है और पुण्य-पाप के संकल्प, विकल्प के मैलरहित है, इसलिए शुद्ध है। उसे आत्मा कहते हैं और उस आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र करना, इसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। बहुत बात परन्तु...

लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी जीवद्रव्य का आदि लेकर पाँच द्रव्य पंचास्तिकाय हैं,... एक काल के अतिरिक्त... छह द्रव्य है न, उन सबके प्रदेश हैं। **और कालद्रव्य बहुप्रदेश स्वभावकायपना न होने से अप्रदेशी है, धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक-एक हैं,...** धर्म, अधर्म के प्रदेश असंख्य हैं और आकाश के अनन्त हैं। **और जीव, पुद्गल, काल ये तीनों अनेक हैं।** जीव भी अनन्त हैं, पुद्गल भी अनन्त और काल असंख्य हैं, वे अनेक में समाहित हो जाते हैं। **जीव तो अनन्त हैं, पुद्गल अनन्तानन्त हैं, काल असंख्यात हैं, सब द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ एक आकाश ही है, इसलिए आकाश क्षेत्र कहा गया है, बाकी पाँच द्रव्य अक्षेत्री हैं,...** आकाश वह ऐसा क्षेत्र है

और उसमें रहनेवाले पाँच अक्षेत्र हैं। **एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में गमन करना, वह चलन हलनवती क्रिया कही गई है,...** एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ऐसे चले न यह जीव और पुद्‌गल ऐसे, क्रिया (होती है)। **यह क्रिया जीव पुद्‌गल दोनों के ही हैं,...** चार में नहीं।

और धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं,... जहाँ हैं, वहाँ पड़े हैं ऐसे के ऐसे। अनादि... अनादि... अनादि... **जीवों में भी संसारी जीव हलन-चलनवाले हैं,...** जीव में सब कहीं सक्रिय नहीं, ऐसा कहते हैं। जीव में भी संसारी जीव गति करते हैं, वह हलन-चलन है। **इसलिए क्रियावन्त हैं, और सिद्धपरमेष्ठी निःक्रिय हैं,...** अनन्त सिद्ध विराजते हैं, वे निष्क्रिय ऐसे के ऐसे वहाँ स्थिर हैं। लोकाग्र में परमानन्द में (स्थिर हैं)। ऐसा उनका स्वरूप है। व्यवहार समकित में उसे श्रद्धा करना चाहिए, मानना चाहिए, जानना चाहिए।

द्रव्यार्थिकनय से विचारा जावे तो सभी द्रव्य नित्य हैं,... वस्तु से देखें तो छहों द्रव्य कायम रहनेवाले नित्य... नित्य... नित्य है। **अर्थपर्याय जो षट्‌गुणी हानि-वृद्धिरूप स्वभावपर्याय है, उसकी अपेक्षा सब ही अनित्य हैं,...** छहों द्रव्यों में समय-समय में षट्‌गुणी हानि-वृद्धि होती है, इस अपेक्षा से प्रत्येक द्रव्य अनित्य कहा जाता है। **तो भी विभावव्यंजनपर्याय जीव और पुद्‌गल इन दोनों की है, इसलिए इन दोनों को ही अनित्य कहा है,...** इस अपेक्षा से अनित्य कहा। उस अपेक्षा से तो सब अनित्य है परन्तु जीव और पुद्‌गल में विकारी व्यंजनपर्याय होती है, इसलिए दोनों को विकारी पर्याय की अपेक्षा से अनित्य कहा। विकारी पर्याय की अपेक्षा से इनको परिणामी कहा था। उनको अपरिणामी कहा था। यहाँ विकारी पर्याय की अपेक्षा से उन्हें अनित्य कहा जाता है। दूसरे विकारी पर्याय की अपेक्षा से अनित्य नहीं, षट्‌गुण हानि-वृद्धि की अपेक्षा से अनित्य है, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। यह तो थोकड़ा में लड़कों को पढ़ाने की बात आयी है। समझ में आया? सीखे थे या नहीं पहले कुछ? यह थोकड़ा जैनशाला में आता था।

अन्य चार द्रव्य विभाव के अभाव से नित्य ही हैं,... जीव और पुद्‌गल के अतिरिक्त धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल उनमें विकार नहीं, इस अपेक्षा से उन्हें नित्य कहा जाता है। वरना पर्याय की अपेक्षा से तो अनित्य है, परन्तु विभाव नहीं,

इसलिए नित्य कहा जाता है। कितना याद रखना इसमें? घर में माल कितना हो, वह सब इसे ख्याल में होता है। किस भाव आया, अभी कितना भाव दुनिया में चलता है और नया कितने भाव में नया माल आया, वह सब इसे खबर होती है, त्रिपट्टी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खबर होती है। यह ग्राहक यह ले गया और यह ग्राहक यह ले गया। इतना लेना और इतना देना है। ऐसा है न? यह वस्तु है...

भाई! आत्मा के निश्चय सम्यग्दर्शन के विषय काल में ऐसा व्यवहार विकल्प होता है, उसमें ऐसा उसे छह द्रव्य का ज्ञान और श्रद्धा होती है। वीतराग मार्ग में ऐसा स्वरूप है, ऐसे इसे श्रद्धा, ज्ञान होते हैं। समझ में आया? दूसरे प्रकार से नहीं तो आड़ा-टेढ़ा चढ़ जायेगा। एक ही आत्मा माननेवाला... तो उसे निश्चय हाथ नहीं आयेगा और व्यवहार तो है ही नहीं। समझ में आया?

चार (द्रव्य) नित्य हैं, दो अनित्य हैं, तथा द्रव्यकर सब ही नित्य हैं,... वस्तु (दृष्टि से) देखें तो सब नित्य ही है। **कोई भी द्रव्य विनश्वर नहीं है,...** कोई भी द्रव्य कुछ नाशवान नहीं है।

जीव को पाँचों ही द्रव्य कारणरूप हैं,... अब आया यह दुःख का। इसे लेना है वहाँ से वापस। जीव को पाँचों पदार्थ कारणरूप है। **पुद्गल तो शरीरादिक का कारण है, धर्म-अधर्मद्रव्य गति-स्थिति के कारण हैं, आकाशद्रव्य अवकाश देने का कारण है, और काल वर्तना का सहायी है। ये पाँचों द्रव्य जीव को कारण हैं, और जीव उनको कारण नहीं है।** जीव उसे कारण नहीं, जीव तो उसे जाननेवाला है। समझ में आया? **यद्यपि जीवद्रव्य अन्य जीवों को गुरु-शिष्यादिरूप परस्पर उपकार करता है,...** निमित्त। जीव गुरु-शिष्य में परस्पर निमित्तरूप कहलाता है, उपकाररूप से। **तो भी पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अकारण है,...** परन्तु आत्मा दूसरे पुद्गल आदि पाँच द्रव्यों के लिए कारण नहीं है। गुरु शिष्य में निमित्त-निमित्त से उपकार कहलाता है। पाँच द्रव्यों में तो वह नहीं। **और ये पाँचों कारण हैं,...** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जानने की प्रसिद्धि करते हैं, जानने की प्रसिद्धि करते हैं। परन्तु वस्तु? उसे स्वयं को जीव के कारण होता है, जीव उसे कारण नहीं होता। देखो न! पहली बात की न? दु:ख में निमित्तरूप होता है अथवा ज्ञान में निमित्तरूप होता है। समझ में आया?

शुद्ध पारिणामिक... परमस्वरूप भगवान आत्मा, शुद्ध पारिणामिक अर्थात् स्वत: स्वभाव, परमभाव त्रिकाली को ग्रहण करनेवाला जो **शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर यह जीव यद्यपि बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप का कर्ता नहीं है,...** क्या कहा? भगवान आत्मा एकरूप परम स्वभावरूप त्रिकाल परमपारिणामिकभावस्वभावरूप, एकरूप परम स्वभावभावरूप। ऐसी दृष्टि से देखें तो भगवान आत्मा बन्ध का भी कर्ता नहीं, मोक्ष का भी कर्ता नहीं। क्योंकि, सब पर्याय है। एकरूप त्रिकाली भाव... भाव... भाव... भाव... पारिणामिकभाव। द्रव्यरूप कूटस्थ नित्यभाव, ध्रुवभाव। भगवान आत्मा का पारिणामिक परमस्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, अनादि-अनन्त भाव है। इस दृष्टि से देखें तो विकार और बन्ध का भी कर्ता नहीं, मोक्ष का भी कर्ता नहीं। क्योंकि मोक्ष तो पर्याय है। त्रिकाल भाव कर्ता नहीं। पुण्य-पाप का भी कर्ता नहीं। पुण्य-पाप और विकल्प की पर्याय का कर्ता नहीं।

तो भी अशुद्धनिश्चयनयकर शुभ-अशुभ उपयोग से परिणत हुआ... परन्तु अशुद्ध निश्चय से शुभ और अशुभ पुण्य-पाप के (भाव से) परिणमित जीव। **पुण्य-पाप के बन्ध का कर्ता होता है,...** यह शुभाशुभभाव का कर्ता और यह अटका विकार (में), उतना बन्ध का कर्ता है। भावबन्ध की बात है न? अशुद्धनिश्चय। बहुत आया परन्तु इसमें तो। अशुद्ध निश्चयनयकर शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं, उनका कर्ता अज्ञानी है। पुण्य-पाप का बन्ध का कर्ता है। **और उनके फल का भोक्ता होता है,...** लो! अशुद्ध निश्चय से। अपने विकारी भाव का स्वयं भोक्ता है। स्वयं भोक्ता है। पर को भोगता नहीं। अपने विकारी परिणाम को करे और विकारी परिणाम को भोगे। ऐसी पर्याय अशुद्ध निश्चय से (भोगता है)। अशुद्ध क्यों कहा? कि इसकी पर्याय है इसलिए। पर के कारण नहीं। अपने ही अशुद्ध भाव करता है और अशुद्ध भाव को अपनी पर्याय में भोगता है। त्रिकाल भाव की अपेक्षा से तो उस पर्याय में उसमें होना है नहीं।

तथा विशुद्ध ज्ञान दर्शनरूप निज शुद्धात्मद्रव्य का श्रद्धान... देखो! आत्मा कैसा है? विशुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप निज शुद्धात्मद्रव्य त्रिकाल। उसका सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और **आचरणरूप शुद्धोपयोगकर परिणत हुआ...** ये तीन होकर शुद्ध उपयोग। **शुद्धोपयोगकर परिणत हुआ मोक्ष का भी कर्ता होता है, और अनन्त सुख का भोक्ता (भी) होता है।** लो! भगवान आत्मा अपने शुद्ध उपयोग का स्वभाव की दृष्टि की, स्वभाव शुद्ध की दृष्टि, ज्ञान और आचरण उसरूप शुद्ध उपयोग, पूर्णता—मोक्ष का भी कर्ता है और अनन्त सुख का भोक्ता है। **इसलिए जीव को कर्ता भी कहा जाता है, और भोक्ता भी कहा जाता है। शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणमन ही सब जगह कर्तापना है,...** लो! यह शुभ और अशुभ परिणमना, यही कर्ता, ऐसा कहते हैं। अब दूसरी बात करेंगे। यह हुआ वह अशुद्धनिश्चय है वास्तव में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २४९२, पौष शुक्ल ९, शनिवार
दिनांक-०१-०१-१९६६, गाथा-२८ से २९, प्रवचन-९१

२८वीं गाथा। सर्वज्ञ भगवान तीर्थंकर परमात्मा ने केवलज्ञान में इस जगत में छह द्रव्य देखे हैं। भगवान तीर्थंकर परमेश्वर को जब केवलज्ञान हुआ, वह अनन्त काल से होता आया है। अनन्त तीर्थंकर हो गये। अभी भी विराजमान हैं, महाविदेहक्षेत्र में हैं। भविष्य में अनन्त होंगे। उन सब भगवान ने केवलज्ञान में इस जगत में छह द्रव्य—वस्तु देखे हैं। उन छह द्रव्यों का स्वरूप कैसा है, उसका इसमें वर्णन है। यहाँ तक आया है, देखो!

यहाँ से लेना है अब। **शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणमन ही सब जगह कर्तापना है,...** क्या कहते हैं? यह जीव है न, जीव? वह अपने दया, दान के पुण्य के भाव करे, या हिंसा, झूठ के भाव करे और या आत्मा के शुद्ध परिणाम, धर्म के शुद्ध परिणाम करे। समझ में आया? देखो! शुभ, दया, दान आदि राग की मन्दता, कषाय की मन्दता के भाव जीव करता है, उसे कोई कर्म कराता नहीं। और अशुभ हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, यह कमाना-कमाने के भाव, वे सब पाप हैं। वह पापभाव जीव करता है। उसे कोई कर्म कराता नहीं। इस शुभ-अशुभभाव का कर्ता जीव है। और शुद्धभाव—आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है, उसके अन्तर में पुण्य-पाप के राग रहित श्रद्धा, आत्मा का ज्ञान और आत्मा में शुद्ध उपयोग की अवस्था, उसे शुद्ध परिणाम कहते हैं। वह धर्म है। पुण्य और पाप, वह धर्म नहीं परन्तु है आत्मा उनका कर्ता। उसके दो प्रकार हैं। अज्ञानरूप से यह पुण्य-पाप मेरा कर्तव्य है, ऐसा मानकर करता है और ज्ञान भान में स्वरूप का भान होने पर, ज्ञान-धर्म होने पर वह शुभाशुभ परिणाम होते हैं, इस अपेक्षा से परिणमन की अपेक्षा से उसे कर्ता कहा जाता है। समझ में आया? मुख्य बात है न इसमें तो सब।

शुभ और अशुभभाव,... आत्मा यह शरीर, वाणी, मन, परपदार्थ का कभी कुछ कर नहीं सकता, क्योंकि परपदार्थ स्वतन्त्र वस्तु है। ऐसा भगवान ने देखा और भगवान ने कहा है। यह शरीर, वाणी, यह मिट्टी, यह पैसा, मकान, धूल का कोई आत्मा करे,

यह तीन काल में कर नहीं सकता। बराबर होगा? शोभालालजी! यह मशीन-बशीन कौन करता होगा? मानते हैं न लोग? माने। माने वह मिथ्यात्वभाव को करता है, परन्तु पर के काम कर (नहीं) सकता, इस प्रकार भगवान सर्वज्ञदेव ने छह द्रव्य की भिन्नता देखी है, भिन्न हैं। वह भिन्नवाला भिन्न का करे, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञान का उसे बड़ा पाप है। भान बिना वह अज्ञानपने के परिणाम को करे, परन्तु पर के परिणाम तो करता नहीं और शुभ-अशुभभाव के परिणाम दया, दान, व्रत के शुभभाव, हिंसा, झूठ, चोरी के (अशुभ परिणाम) अज्ञानी कर्तृत्वबुद्धि से करता है। ज्ञानी को परिणमनरूप से है, इस अपेक्षा से उसे कर्ता ज्ञाता में कहा जाता है। समझ में आया? और शुद्ध परिणाम का कर्ता तो आत्मा स्वयं है। शुद्ध आत्मा शरीर, वाणी की क्रिया किये बिना का, पुण्य-पाप के भाव के कर्तृत्वबुद्धि बिना का ज्ञानस्वरूप चिदानन्द आत्मा हूँ, ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता का कर्ता (होता है)। धर्म की दशा—शुद्धभाव की दशा, शुद्धभाव को धर्म कहते हैं। उसका कर्ता आत्मा है, उसका कर्ता कोई कर्म-बर्म नहीं है। कर्म हटे तो आत्मा को धर्म हो, ऐसा वह कर्ता कर्म और आत्मा का धर्म, वह काम (-कार्य), ऐसा नहीं है।

सब जगह कर्तापना है, परिणमन ही सब जगह कर्तापना है,... ऐसा लेना है। क्या कहना है, समझ में आया? आत्मा में शुभभाव, अशुभभाव या आत्मा का धर्म का आत्मभान, उसका वह परिणमन है, वह उसका कर्तापना है। समझ में आया इसमें? **और पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणामरूप जो परिणमन, वही कर्तापना है,...** यह शरीर है न? यह शरीर, वाणी, यह जड़, उसकी पर्याय का कर्ता वह पुद्‌गल है, आत्मा नहीं। समझ में आया? वह पुद्‌गल जो यह शरीर है, वाणी है, कर्म है, यह पर के शरीर हैं, उनकी पर्याय पलटे, उसके कर्ता वे पुद्‌गल हैं, आत्मा कर्ता नहीं। देखो! यह शरीर हिले, उसका आत्मा कर्ता नहीं, वह पुद्‌गल उसका कर्ता है।

मुमुक्षु : शरीर कौन चलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हिलाता है? वह पुद्‌गल। क्या कहा?

यह पुद्‌गलादि पाँच अब यहाँ तो मूल पुद्‌गल है, वे चार तो अरूपी हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। उसकी लप तो बड़ी है। परन्तु यहाँ तो पुद्‌गलादि पाँच

द्रव्य जो भगवान ने जीव के अतिरिक्त पाँच देखे, उन पाँच का परिणमन-पर्याय बदलती है, उसके वे कर्ता हैं। यह वाणी होती है, उसका कर्ता वे वाणी के पुद्गल हैं, आत्मा नहीं। यह शरीर हिलता है, यह बोले, ऐसे-ऐसे हो, उसके उस परिणाम के पर्याय का कर्ता पुद्गल जड़ है, आत्मा नहीं। आत्मा अज्ञान करे और राग-द्वेष करे। कहा न! पहले कहा न? शुद्ध, शुभ और अशुभ। अब यह कंटाला आता है, वह अशुभ पाप के भाव जीव करता है।

मुमुक्षु : शरीर कराता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बिलकुल नहीं, झूठी बात है। बिल्कुल स्वयं करता है, करावे स्वयं। करे कौन दूसरा? धूल करे। समझ में आया? यह क्या है अन्दर? है? पुस्तक रखी है या नहीं? यह रहा, परन्तु सामने तो देखो। आज इसे कंटाला आ गया है, सवेरे कंटाला आ गया है। सवेरे बोले थे, अब मर जायेंगे। परन्तु इतना इतना सुने तो भी कहाँ जाना है?

यहाँ क्या कहा, सुना? देखो! **शुभ, अशुभ, शुद्ध परिणमन ही सब जगह कर्तापना है,...** है चौथी लाईन? यह क्या (कहा)? कि इस शरीर को रोग है, इसलिए जीव को उकताहट के परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वे क्यों होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे उकताहट के परिणाम स्वयं करे तो होते हैं, ऐसा भगवान कहते हैं।

मुमुक्षु : बीमार हो वहाँ कोई करता नहीं, उसका क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ कौन नहीं करता? बीमार की पर्याय बीमार में रही। उसमें आत्मा में कहाँ आयी? यह निरोगता के समय भी जीव को शुभभाव हो या अशुभ हो, वह निरोगता उसे कराती नहीं। वह शुभ और अशुभ परिणाम जीव करे तो होते हैं। पर कराता नहीं और पर का वह कर्ता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! कौन कर दे? कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के ज्ञान में छह द्रव्य आये। यह

तो अभी व्यवहार समकित के विषय की यह बात चलती है। आहाहा! अभी व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं होता। निश्चय सम्यग्दर्शन तो आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति अखण्ड की प्रतीति और अनुभव इसका नाम सम्यग्दर्शन है। उस समय व्यवहार समकित में ऐसा उसका परद्रव्य का विषय जिस प्रकार से है, वैसी उसकी श्रद्धा में वर्तना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह पुद्गलादि पाँच द्रव्य। यह शरीर, यह पुस्तक आदि यह सब, कर्म, वाणी, ये सब। तैजसशरीर, यह औदारिक, वैक्रियक, आहारक ये पुद्गल। यह पैसा, दाल, भात, सब्जी, यह मकान। ये सब जड़ अपनी वर्तमान अवस्था के बदलनेरूप कार्य को करते हैं। यह आत्मा के परिणाम को नहीं करते और इनके परिणाम को आत्मा नहीं करता। समझ में आया? है पुस्तक इनके पास? कान्तिभाई के पास पुस्तक कहाँ से आयी? किसने दी? ठीक। परन्तु यह देखो तो सही, कहते हैं, अन्दर क्या लिखा है यह? कहो, समझ में आया इसमें?

पुद्गल अर्थात् रजकण, एक रजकण से लेकर, यह दाल, भात, लड्डू, आटा, यह पैसा, मकान, वस्त्र-कपड़े, मशीन, यह सब पुद्गल, इनकी वर्तमान दशा का पलटना, इनके परिणाम को यह पुद्गल करते हैं। आत्मा इनका कर्ता तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकता। क्योंकि वे भिन्न हैं, उनका भिन्न, उनका कर्ता नहीं हो सकता। ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! कहो, सौभागमलजी! समझ में आया?

पुण्य-पापादि का कर्तापना नहीं है,... क्या कहते हैं? **पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणामरूप जो परिणमन वही कर्तापना है,...** परन्तु आत्मा जो शुभ और अशुभभाव (होते हैं), उनका कर्तापना यह शरीर नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? है? शब्द है अन्दर? देखो! वाँचो-देखो। **पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणामरूप जो परिणमन वही कर्तापना है, पुण्य-पापादि का कर्तापना नहीं है,...** आत्मा में (परिणाम हो उनका) कर्म कर्ता नहीं, शरीर कर्ता नहीं, वाणी कर्ता नहीं, रोग कर्ता नहीं, निरोग कर्ता नहीं। और पाप के परिणाम जीव में होते हैं, उसमें शरीर कर्ता नहीं, यह स्त्री-पुत्र कर्ता नहीं, उसका कर्म कर्ता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : घरवाले शरीर को निरोगी कर दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं कि मूढ़ जीव व्यर्थ में मानता है, कहते हैं। शरीर में यह हुआ, इसलिए मुझे ऐसे परिणाम होते हैं। मूढ़ है, महा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? है ? पुस्तक है या नहीं ? सामने रखी है या नहीं ? बनिये दशहरे में नामा मिलाते हैं या नहीं ? दीपावली में नामा मिलाते हैं या नहीं दशहरे में ? यह भगवान का नामा है, देखो तो सही जरा। आहाहा !

पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यों को अपने-अपने परिणमन कर्ता... यह पुण्य-पाप आदि का कर्ता नहीं, उसका अर्थ है। क्या कहते हैं ? आत्मा में होते दया, दान, शुभ मन्द कषाय, उसका कर्ता पुद्‌गल नहीं अर्थात् कर्म नहीं। भाई ! ऐसा आया न ? उस शुभभाव का कर्ता कर्म नहीं, शरीर नहीं। पाप का कर्ता कर्म नहीं, शरीर नहीं। यह प्रतिकूलता की निमित्तता उस पाप के भाव का कर्ता नहीं। अनुकूलता के निमित्त, वे पाप के (परिणाम का) कर्ता नहीं। भाई ! यह अनुकूलता बहुत है, इसलिए हमको यह पाप के भाव ऐसे आते हैं। बिल्कुल झूठ है।

मुमुक्षु : आनन्द कैसे आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द कहाँ आता है ? दुःख होता है। दुःख में आनन्द कहाँ आया ? अज्ञानी दुःख का कर्ता होता है। पाप के परिणामरूपी दुःख का कर्ता होता है। अनुकूल चीज़ उसके दुःख के परिणाम की कर्ता नहीं। लड्डू जो है, वह आत्मा के 'यह ठीक है'—ऐसे परिणाम का लड्डू कर्ता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह मुझे ठीक है, ऐसे पाप के परिणाम हुए, उसका कर्ता जीव है। लड्डू-पुद्‌गल नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : मिठास ठीक है....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिठास ठीक है, यह पाप के भाव हैं। तब क्या पुण्य के हैं ? हमारे अभी व्यवस्थित है। ऐसी जो चीज़ें, वे तेरे बराबरी के पाप के परिणाम का कर्ता नहीं। वह पाप के परिणाम तूने किये हैं। वह व्यवस्थितता पुद्‌गल की बाहर की तू मानता है, उस परिणाम का कर्ता नहीं। यह तो समझ में आये ऐसी बात है। आहाहा !

अभी थोड़ा विशेष डालना है। पापादि शब्द पड़ा है न ? अर्थात् क्या कहना है ?

देखो! आत्मा में संवर, निर्जरा और मोक्ष के परिणाम जो होते हैं, उसका कर्म कर्ता नहीं है। क्या कहा? समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर पुण्य-पाप के परिणाम करे तो वह स्वयं कर्ता है। उसका कर्म या पुद्‌गल या दूसरी चीज़ करनेवाले नहीं हैं। अब जीव स्वयं भूले बिना भी पुण्य-पाप को भान सहित परिणमे तो भी कर्तृत्व परिणमन जीव का है, वह कहीं कर्म के कारण से नहीं है। ऐसा कि ज्ञानी हुआ, इसलिए अब राग-द्वेष का कर्ता का भाव नहीं, इसलिए राग-द्वेष के परिणाम वे कर्म के कारण हुए है, ऐसा शास्त्र में आता है। समझ में आया? नहीं, वह तो निमित्त का कथन था। धर्मी को भी अपने शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान के परिणाम काल में भी जितने परिणाम शुभ, अशुभ होते हैं, उनका परिणमन उसका है। उसका (परिणमन है), इसलिए इस अपेक्षा से कर्ता कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! शैली, वह शैली... समझ में आया?

आत्मा में संवर, निर्जरा के, मोक्ष के परिणाम (हों), उनका कर्ता जीव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धर्म के परिणाम का कर्ता जीव है। उन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम का कर्ता कर्म नहीं। इन केवलज्ञान के परिणाम का कर्ता जीव है। इन केवलज्ञान के परिणाम का कर्ता केवलज्ञानावरणी पुद्‌गल नहीं। आहाहा! यह तो वे डालते हैं, केवलज्ञानावरणी के क्षय से, मोह क्षय से... अब सुन न, सुन! समझ में आया?

देखो! यह पापादि है न शब्द में? '**पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव**' कौन? यह पुद्‌गलादि पाँच द्रव्य, उनका कर्ता (स्वयं) अपने परिणाम का, परन्तु दूसरे के परिणाम का कर्ता नहीं। समझ में आया? '**पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव**' पुण्य-पापादि स्वभाव में वे पुद्‌गल कर्ता नहीं। ऐसे संवर, निर्जरा मोक्ष के आत्मा के परिणाम करे, उनका कर्ता कर्म (नहीं है)। अकर्तृत्व है। अकर्तृत्व है न भाई! उसमें? '**रूपेणाकर्तृत्वमेव**' आहाहा! संक्षिप्त में तो बहुत डाला है। भगवान आत्मा स्वयं शुभ-अशुभ परिणाम को करे तो पुद्‌गल उसका अकर्ता है। आत्मा अपने स्वभाव के आश्रय से श्रद्धा—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र या क्षायिक समकित करे, या क्षयोपशम, उपशम करे, या क्षयोपशम चारित्र करे या क्षयोपशम ज्ञान या क्षायिक ज्ञान करे, उसके परिणाम का कर्ता जीव है। उस

परिणाम का कर्ता कर्म नहीं। ज्ञानावरणीय क्षय हुआ तो यहाँ केवलज्ञान के परिणाम हुए, तो केवलज्ञानावरणी क्षय, वह कर्ता और केवलज्ञान, वह कार्य—ऐसा है नहीं। आहाहा!

ऐसी तो व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में श्रद्धा इसे होनी चाहिए। उसका ठिकाना न हो, उसे तो निश्चय सम्यग्दर्शन होता नहीं। और निश्चय हो, वहाँ व्यवहार ऐसा उसे श्रद्धा में होता है। वस्तु ऐसी है, ऐसी है, यह भेदवाली श्रद्धा में होना चाहिए। भेद है न? अनन्त है। समझ में आया? वस्तु ही ऐसी है। इस प्रकार जैसी है, वैसी उसे व्यवहार सम्यक्त्व श्रद्धा में, व्यवहार ज्ञान में इसे श्रद्धा करना चाहिए। आहाहा! यहाँ तो अभी ऐसा विवाद उठाते हैं। नहीं, परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं। अररर! गजब किया! यहाँ तो कहते हैं कि परद्रव्य तेरे परिणाम को करे, (ऐसा मानना), वह मिथ्यात्व है और तू परद्रव्य के परिणाम करे, वह मिथ्यादृष्टि मानता है और यह मानता है, वह मिथ्यात्व स्वयं के कारण से परिणमा है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कोई कहे कि भाई! क्या करें? ऐसी भीड़ में आये हैं अभी कि ऐसे परिणाम किये बिना चलता नहीं। ऐसी संयोग दशा ही है। यह काला बाजार के परिणाम किये बिना चलता नहीं, अभी ऐसे संयोग हैं। ऐसा होगा? कालीदासभाई! तुम्हारे क्या है? तुमने तो सब सरकार को दे दिया। परन्तु यह ऐसे के ऐसे पैसे रखे घर में, उसे क्या? किस प्रकार? ऐसा प्रतिकूल संयोग आया तो इसे करना पड़ता है न ऐसा? नहीं? ऐई! ऐसा संयोग प्रतिकूल आवे तो उसके कारण यहाँ परिणाम होते हैं। इनकार करते हैं भगवान कि ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

ऐसे शरीर में दबाव पड़ा। यह परिणाम बिगाड़े। बिल्कुल नहीं, बिल्कुल किंचित् नहीं। आहाहा! ... निमित्त कहलाये। कर्ता हो, तब तो यहाँ घुस गया। समझ में आया? शरीर में रोग, प्रतिकूलता, पैसे का निर्धनपना, स्त्री का मरना, पुत्र का जाना, पुत्री का विधवा होना एक साथ ऐसे संयोग (खड़े हों) तो पाप के परिणाम होते हैं। नहीं, वे पाप के परिणाम तूने किये तो हुए हैं, संयोग से नहीं हुए। आहाहा! क्यों फूलचन्दभाई! फँस जाते हैं या नहीं परन्तु बाहर के कारण से? बाहर के कारण से न? नहीं? यह

गुणवन्तभाई था, इतनी निवृत्ति मिले। वहाँ गये तो फँसना पड़ा। ऐसा होगा? नहीं। आहाहा! अरे! कौन जाये? कहाँ आवे? भगवान!

मुमुक्षु : उसका हक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका हक है वहाँ। वे भाई कहे, यहाँ रहो, भाई! जमुभाई यहाँ रहो, यह माँ भी कहे और वे सब भाई भी कहें। अभी हमारे ठीक है। बापू को मार डाला है। रस है वहाँ यह। उसके कारण नहीं रहे थे वहाँ। यह तो दृष्टान्त। यह पूछे तो उसका दृष्टान्त कहा जाये न! एक मलूकचन्दभाई! अब इनके सब लड़के-बड़के करनेवाले हैं, तो भी वहाँ फँसते हैं। अभी वहाँ मुम्बई जाना है। संयोग कराते होगें न भाव को? नहीं?

मुमुक्षु : .... निमित्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निमित्त की व्याख्या क्या? तो ही निमित्त कहलाया। उससे हुए नहीं, इसने किये, तब वह निमित्त कहलाया। यह उससे हुए तो निमित्त कहाँ रहा? वह तो उसने कराया, उसमें घुस गया यह तो। समझ में आया? आहाहा! यह तत्त्वों का ऐसा स्वभाव है। ऐसा स्वभाव अभी व्यवहार श्रद्धा में भी न ले, उसे अकेला ज्ञायकस्वभाव भगवान चिदानन्दस्वरूप अभेद हूँ, वह रुचि कैस करे? इतनी व्यवहार की जहाँ स्वतन्त्रता है, उसकी रुचि न बैठे, उसे अकेला भगवान अव्यक्त, जिसकी पर्याय में अल्पज्ञता और वस्तु की सर्वज्ञता (किस प्रकार बैठे?) समझ में आया?

पुण्य-पापादि का कर्तापना नहीं है,... कौन? पुद्‌गल। समझ में आया? धर्मास्ति, अधर्मास्ति कुछ (कर्ता नहीं)। पाँचों द्रव्य, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल। कालद्रव्य, वह आत्मा के पुण्य-पाप और धर्म परिणाम का कर्ता नहीं। काल के कारण से पुद्‌गल, आता है न? पंचास्तिकाय में नहीं आता? पुद्‌गलकरणे। पुद्‌गल को काल करणे। यहाँ तो कहते हैं, वह तो निमित्त से बात थी। कर्ता-फर्ता कोई नहीं है। आता है न? भाई! पंचास्तिकाय में। पुद्‌गल कर्ता, पुद्‌गल करण जीव को। यह आया। और पुद्‌गल को काल करण। यह तो निमित्त की व्याख्या है। कोई पुद्‌गल आत्मा के परिणाम का कर्ता-फर्ता नहीं है। और पुद्‌गल के परिणाम का काल भी कर्ता नहीं है। भगवान के कहे हुए

तत्त्व स्पष्ट हैं, उन्हें भी जिसे अभी मानने की दरकार न हो, उसे आत्मा क्या चीज़ है, यह चलेगा। देखो!

सर्वगतपना लोकालोक व्यापकता की अपेक्षा आकाश ही में है,... क्या कहते हैं अब? पूरे लोक और अलोक में आकाश व्यापक है। सर्वगतपना उसे लागू पड़ता है, पूरे पूर्ण की अपेक्षा से। सर्वगत। ध्यान रखना! उसमें भी जरा न्याय आयेगा। लोकालोक व्यापक की अपेक्षा आकाश सर्वगत है। आकाश है न? भगवान ने देखा। **धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य ये दोनों लोकाकाशव्यापी हैं,...** धर्मास्ति, अधर्मास्ति दो हैं, वे लोक में रहे हुए हैं। दो पदार्थ भगवान ने देखे हुए। **अलोक में नहीं है, और जीवद्रव्य में एक जीव की अपेक्षा केवलसमुद्घात में लोकपूरण अवस्था में लोक में सर्वगतपना है,...** क्षेत्र की अपेक्षा से अभी बात चलती है। जीवद्रव्य में एक जीवद्रव्य की अपेक्षा से जब भगवान केवली समुद्घात करे तब पूरे लोक प्रमाण व्याप जाते हैं। क्षेत्र या असंख्य प्रदेश। सर्वगत, इस अपेक्षा से क्षेत्र से सर्वगत कहा जाता है। भाव से सर्वगत बाद में कहेंगे।

तथा नाना जीव की अपेक्षा सर्वगतपना नहीं है,... क्योंकि अनेक जीव तो एक एक जीव तो थोड़े में रहता है। इतना इतने में। **पुद्गलद्रव्य लोकप्रमाण महास्कन्ध की अपेक्षा सर्वगत है,...** पूरे पुद्गल, पूरा एक महास्कन्ध है। पूरे लोकप्रमाण एक स्कन्ध। दूसरे पुद्गल पृथक्। वह तो महास्कन्ध। वह पूरे लोकप्रमाण है। **अन्य पुद्गल की अपेक्षा सर्वगत नहीं है,...** यह दूसरे इतने ऐसे-ऐसे शरीर की अपेक्षा से इतने-इतने में हैं, वह पूरे में है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कायम रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कायम रहे। हाँ, ऐसा एक स्वभाव है।

कालद्रव्य एक कालाणु की अपेक्षा तो एकप्रदेशगत है,... कालद्रव्य एक अरूपी है। आकाश के एक प्रदेश में रहा हुआ है। सर्वगत नहीं। एक, हों! एक। **नाना कालाणु की अपेक्षा लोकाकाश के सब प्रदेशों में कालाणु है,...** पूरे लोक में सब कालाणु हैं। यह बाद में सर्वगत कहा जाता है। **इसलिए सब कालाणुओं की अपेक्षा सर्वगत कह सकते हैं। इस नयविवक्षा से सर्वगतपने का व्याख्यान किया।** क्षेत्र की अपेक्षा से।

और मुख्यवृत्ति से विचारा जावे, तो सर्वगतपना आकाश में ही है,... क्योंकि अकेला आकाश सर्वव्यापक है न! **अथवा ज्ञान की अपेक्षा जीव में भी है,...** देखो! अब यह भाव से लिया। क्या कहा? आत्मा में केवलज्ञान हो... समझ में आया? तब जीव में सर्वगतपना **ज्ञान की अपेक्षा जीव में भी है,...** जीव सबको जानता है, लोकालोक को जानता है। यहाँ रहा होने पर भी केवलज्ञान यहाँ आत्मा में होता है। सर्वज्ञपद, परमेश्वरपद, अरिहन्तपद तो आत्मा में यहाँ होता है, परन्तु उस ज्ञान में लोकालोक ज्ञात होता है, इस अपेक्षा से उसे सर्वव्यापक भाव से कहा जाता है। क्षेत्र में भाव अपना इतना लम्बा हुआ। ऐसा (कहना है)। समझ में आया? **जीव का केवलज्ञान लोकालोक व्यापक है, इसलिए सर्वगत कहा।** लो! समझ में आया?

यहाँ तो दूसरा एक बोल रात्रि में विचार में मस्तिष्क में आया है। सर्वगतनय है न? ४७ नय। सर्वगत नय। और ज्ञेय-ज्ञायक अद्वैतनय। ज्ञेय-ज्ञायक द्वैतनय है और असर्वगतनय। ज्ञेय-ज्ञायक अद्वैतनय और सर्वगतनय। साधक जीव को, हों! साधक की बात है वहाँ। यहाँ तो केवलज्ञान की अपेक्षा ली है। परन्तु उस सर्वगत में आत्मा ज्ञानस्वरूप को प्राप्त हुआ, जाना ज्ञानस्वरूप शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, ऐसा भान हुआ तो उस भान में, आत्मा की पर्याय में सर्वगतपना अभी (प्रगट हुआ है)। लोकालोक की जो पर्याय है द्रव्य, गुण आदि, वह उसकी पर्याय में जानने में आ जाते हैं।

ध्यान रखना। यह तो विचार क्या आया? वह केवलज्ञानी और श्रुतज्ञान में अन्तर करते हैं न? यहाँ तो श्रुतज्ञान में यह आत्मा ज्ञायकस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ—ऐसा भान (हुआ), उस भान की दशा में मानो लोकालोक वर्तता हो, उसमें, ऐसा यहाँ साधक जीव को (वर्तता है।) साधक जीव की बात में (ऐसा है), यह तो साध्य की बात में। समझ में आया? उसे भी जो क्रमसर लोकालोक में जो हो रहा है, वह जैसे केवलज्ञान सर्वगतरूप से जानता है, वैसे श्रुतज्ञान भी ऐसा सब जैसे हो रहा है, वैसे सर्वगतरूप से ज्ञान की श्रुतज्ञान पर्याय जानती है। साधक, सम्यग्दर्शन ऐसे अपनी पर्याय को सर्वगतरूप से पर्याय को जानता है। आहाहा! समझ में आया? बस, इतना अन्तर है। प्रत्यक्ष और परोक्ष।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेवाला, जाननेवाला। जाननेवाला सबको जाने। परन्तु यहाँ

तो जरा दूसरी सूक्ष्म बात दिमाग में आयी। समझ में आया? यह सर्वगतपना... ... सर्वगत और ज्ञेय-ज्ञायक अद्वैतनय, दो का विस्तार कल अन्दर चलता था। यह जो ज्ञान है—केवलज्ञान जो है, उस केवलज्ञान में तो ऐसे लोकालोक सर्वगत कहा। वह तो पहले प्रवचनसार में पाठ में आ गया है न? यह ४७ नय में उतारा है। यह सर्वज्ञ को उतारा है, यहाँ ४७ में साधक को उतारा है। श्रुत में उतारा। यह आत्मा... ध्यान रखो, यह आत्मा सम्यग्ज्ञानरूप से परिणमित हुआ। उस ज्ञान में सर्वगतपना एक नय का विषय है। एक नय कि जो ज्ञान सब लोकालोक है, उसे जानता है। ज्ञान मानो उसमें व्याप्त हो गया हो। आड़ा-टेढ़ा कुछ नहीं। जिस प्रमाण लोकालोक वर्तता है, तत्प्रमाण यह सर्वगत पर्याय श्रुतज्ञान उसे जानती है। यहाँ साधकपने की पर्याय में इस प्रकार से जानते हैं। केवलज्ञानी तो एक समय में ऐसे प्रत्यक्ष जानते हैं। साधकपने में, यहाँ तो साधक जीव की बात है, वह भी अपने श्रुतज्ञान की पर्याय में सब लोकालोक जितना द्रव्य, गुण सब है, उसका ज्ञान उसमें व्याप्य है। उस पर्याय की इतनी सामर्थ्य है, उसमें व्यापी है। इस अपेक्षा से आत्मा को सर्वगतनय से सर्वगत है, ऐसा जानना चाहिए। आहाहा!

ऐसा कहा कि जैसे केवलज्ञानी भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं, वैसे उसे कोई आगे-पीछे बाद में कुछ नहीं। जैसे जो पर्याय, जिस द्रव्य को जिस स्थान में जहाँ जैसे होती है, वह निमित्त वहाँ उस क्षेत्र में, सब जानते हैं। उसी प्रकार श्रुतज्ञान में वर्तमान श्रुतज्ञान की दशा में स्व के ज्ञान के भानसहित में पर के जितने पदार्थ जहाँ जितने जिस प्रकार से जहाँ जैसे परिणमते हैं, उस समय में वैसे तीन काल-तीन लोक उस प्रकार से पर्याय में, उस प्रकार से व्यापना है। पर्याय का ऐसा धर्म है। ऐसा सर्वगतनय है, उसे श्रुतज्ञानी उस प्रकार से जानता है अर्थात् उसे भी कहीं फेरफार है, ऐसा वह नहीं जानता। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि यह पूरा लोक, अलोक, छह द्रव्य भगवान ने ऐसे देखे, ऐसे पड़े बिछे हुए। ऐसी की ऐसी पर्याय तीन काल की पर्याय जिस समय में जहाँ, जिस समय में जहाँ, जिस समय में, वह निमित्त, जिस क्षेत्र में (होनेवाली है), ऐसा का ऐसा भगवान ने देखा। उसमें आगे-पीछे कुछ नहीं। जुगराजजी! आहाहा! ऐसे श्रुतज्ञान में भी सर्वगतनय

भगवान को छोड़कर, अमृतचन्द्राचार्य ने निकाला है, वह भी पाठ में है इसलिए निकालकर रखा है। आहाहा! अपने आत्मा को ज्ञान और आनन्दस्वरूप अन्तर में जाना और वह ज्ञान सम्यक्रूप से परिणमा। वह सम्यक्रूप से परिणमा, उसमें स्वद्रव्य का ज्ञान तो है, परन्तु लोकालोक जितने हैं, उसके द्रव्य, गुण और पर्याय उसकी पर्याय में सर्वगत मानो व्याप गया हो, मानो उसमें सब प्रविष्ट हो गया हो, उस श्रुतज्ञान की पर्याय को इस प्रकार श्रुतज्ञानी भी जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं? ४७ में।

अलौकिक बात, अलौकिक बात, गजब बात। सर्वज्ञ की किसी भी शैली से देखो। देखो! (२०वाँ नय) **आत्मद्रव्य सर्वगतनय से, खुल्ली रखी हुई आँख की भाँति सर्ववर्ती (सब में व्यापनेवाला) है।** सर्ववर्ती, भाई! ऐसा है, आहाहा! यह तो श्रुतज्ञान का नय है। श्रुतज्ञान का प्रमाण। उसमें श्रुतप्रमाण, उसका एक-एक नय है। श्रुतज्ञान प्रमाण आत्मा का ज्ञान हुआ, वहाँ एक-एक नय का एक-एक धर्म है, वह नय उसे देखता है। श्रुतज्ञान एक साथ सबको जानता है। उसमें एक नय से ऐसे देखता है कि भगवान आत्मा सर्वगतनय से खुल्ली रखी हुई आँख की भाँति। इस प्रकार जैसे आँख मानो सबमें व्याप्त हो गयी हो, वैसे ज्ञान की पर्याय सबको जानती है। सर्ववर्ती है—सर्व में रहनेवाली है, वह श्रुतज्ञान की पर्याय सर्व में रहनेवाली है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्व में रहनेवाली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी चीज़ ही ऐसी है। उसका स्वरूप ही ऐसा है। अद्भुत चैतन्य चमत्कार! आहाहा!

ज्ञानज्ञेय-अद्वैतनय से (ज्ञान और ज्ञेय के अद्वैतरूपनय से),... ज्ञान की पर्याय है, उसमें जितने ज्ञेय हैं, वे मानो यहाँ आ गये हों। ऐसे ज्ञानज्ञेय-अद्वैतनय से। समझ में आया? **विशाल ईंधनसमूहरूप परिणत अग्नि की भाँति।** अग्नि बड़ी लकड़ियों अग्निरूप परिणमी। एकरूप अग्नि हो गयी है न! वैसे ज्ञान की पर्याय पूरे लोकालोक के जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जाननेरूप परिणम गयी है, ज्ञान यहाँ परिणम गया है। वैसे श्रुतज्ञान का नय उसे जानता है। ओहोहो! कथन पद्धति है न! दिगम्बर सन्तों की कहने की पद्धति अलौकिक बात! आत्मा हथेली में आत्मा चारित्रसहित किया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कौन से गुणस्थान से.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छठे गुणस्थान की बात है। यह चौथे गुणस्थानवाला ऐसा होता है, ऐसा कहना है यहाँ तो। चौथे से शुरु होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में आत्मा श्रद्धा, ज्ञान में आया परन्तु उसके ज्ञान की एक समय की पर्याय सर्ववर्ती और ज्ञेय और ज्ञान मानो यहाँ एक हो गये, यहाँ एक हो गये यहाँ। वह सर्ववर्ती कहा और यहाँ ज्ञान और ज्ञेय यहाँ एक हो गये हों। एकसाथ, हों! एक। आहाहा! एक समय में श्रुतज्ञान की पर्याय और ज्ञेय यहाँ अद्वैत—एक हो गये हों, ऐसा एक नय जानता है। यहाँ कहा न? कहा न, अग्नि कहा न? लकड़ियाँ सुलगीं। अग्नि लकड़ियों को सुलगाकर अकेली अग्नि ही... हो जाये। ज्ञान ही पूरे लोकालोक का जैसा स्वरूप है, वैसा परिणमकर ज्ञान की पर्याय ही ऐसी हो गयी। ज्ञेयज्ञान अद्वैत। आहाहा! उन सब ज्ञेयों का ज्ञाता रह गया। राग से लेकर सब क्रिया का जो जहाँ हो, उसका ज्ञाता—दृष्टा रह गया। समझ में आया? ओहोहो! समझ में आया इसमें? कहा न?

ज्ञान की अपेक्षा जीव में भी है, जीव का केवलज्ञान लोकालोक व्यापक है, इसलिए सर्वगत कहा। ऐसा यहाँ साधक में तो उतारा है। यहाँ तो पूरी बात की है। परन्तु पूरी में यह साधक है, वहाँ ज्ञान की पर्याय स्व को जानती है, वह तो अभेद, परन्तु ऐसे भेदवाले अनन्त द्रव्यों की पर्याय और वस्तु, वह मानो एक समय का ज्ञान उसमें व्याप गया हो, वर्त गया हो। वह सब क्रमबद्ध पर्यायें जो है, उसमें वर्त गया हो। समझ में आया? और वह क्रमबद्ध पर्यायें जो हैं, वे मानो ज्ञान में ज्ञेयरूप आ गयी हों। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : लोकालोक ऐसे ज्ञान की पर्याय में प्रविष्ट हो गया हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकालोक यहाँ प्रविष्ट हो गया। उसका—ज्ञान की पर्याय का धर्म ऐसा है। ऐसी ज्ञान की पर्याय सबको वर्ती और सब यहाँ वर्त गया है। ऐसा। आहाहा! इतना आत्मा इसे बैठता नहीं। चिल्लाहट मचाता है। ऐ... ऐसा हो, ऐ... ऐसा हो। अरे! भगवान ने तो नियत, अनियत देखा है और तुम उसे नियत ही कहो तो अन्यथावादी, झूठाबोला, सर्वज्ञ झूठाबोला। अरे! भगवान! ऐसा नहीं, भाई! आहाहा! भाई! सर्वज्ञ ने तो सब जैसे क्रमसर जो हो, उस प्रकार से देखा है। ऐसा उनका ज्ञान मानो उसरूप परिणम गया है। समझ में आया? उसमें सब विपरीतता प्रविष्ट हो गयी।

लोकालोक की पर्याय मानो ज्ञान में प्रविष्ट हो गयी हो, ऐसा कहा वहाँ। यहाँ ऐसा कहा। यहाँ तो आपने साधक में उतारना है। समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसे चैतन्यमूर्ति वस्तु, ऐसे पूर्ण ऐसा एक समय में, श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय में लोकालोक मानो ज्ञेयरूप से वर्त गया। मानो ऐसा आत्मा तो ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड पूरा। क्या कहा? यह तो एक पर्याय भेदरूप हुई। यह तो श्रुत का एक भेद और केवलज्ञान का भी एक भेद हुआ द्रव्य में से। लोकालोक को व्यापे। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड जो ज्ञानगुण। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया? श्रुतज्ञान की पर्याय में भी सर्वगतपना व्याप्त हुआ। ज्ञेय-ज्ञान अद्वैत हुआ, और केवलज्ञान में पूर्ण प्रत्यक्ष हो गया। ऐसी एक समय की पर्याय यह तो, भाई! यह एक समय की पर्याय की बात है। यह श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय वर्तमान पर्याय की बात है। ऐसी-ऐसी साधक की असंख्य काल रहे, तब तक असंख्य पर्याय श्रुतज्ञान की और केवलज्ञान की अनन्त काल रहे, वह अनन्त पर्यायें। क्या कहा?

भगवान आत्मा के ज्ञानगुण की पर्याय का स्वभाव, एक समय की पर्याय, श्रुतज्ञान की या केवल की, जो लोकालोक को भी जाने और अपने को भी जाने। ओहोहो! ऐसी एक समय की पर्याय श्रुतज्ञान में सर्वगतनय से जानने पर उसे असंख्य समय तक साधकपना रहे। पश्चात् तो केवलज्ञान हो ही जाये। वह असंख्य समय श्रुतज्ञान की पर्याय रहे। वह सब पर्यायें और केवलज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष सर्वगतपना, वह सब अनन्त पर्यायों, उनका तो एक समय का गुण, उसका पिण्ड सब एक गुण पूरा। ऐसा गुण। उससे भी अनन्त गुणा जिसके गुण में सामर्थ्य है। ऐसे अनन्त गुणसहित का द्रव्य श्रद्धा-ज्ञान में लिया है। उसकी ज्ञान की पर्याय में भी इतना द्रव्य है, ऐसा श्रद्धा, ज्ञान में आ गया है। आहाहा! स्व की अपेक्षा से ऐसा द्रव्य अखण्ड परिपूर्ण है, ऐसी सब पर्याय का पिण्ड एक गुण और अनन्त गुण का पिण्ड (द्रव्य), ऐसे सम्यग्ज्ञान की पर्याय में स्व आया है। और पर सर्वगतपना सब है, वह भी उसमें आ गया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा जैसे कहो, वैसे कहो इसे। आहाहा! अभी वह

श्रुतकेवली का नहीं। यहाँ तो आत्मा... अभी यह बात है। आहाहा! क्या परन्तु उसका स्वभाव! और क्या ज्ञेय की रीत को पकड़ने की ज्ञान की योग्यता! क्या उसकी रूथास्थितता यथार्थवादिता! आहाहा! सन्तों के एक-एक कोई कथन भी यथार्थवादरूप से सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

भाई! तू प्रभु है। तुझमें तो ऐसे-ऐसे लोकालोक एक समय में ज्ञात हो, ऐसी-ऐसी तो अनन्त पर्यायों की खान तू है। समझ में आया? यह तो क्रमसर लोकालोक में पर्याय होती है। गुण और द्रव्य जिसका एक समय में ज्ञात हो, ऐसे-ऐसे अनन्त पर्यायों की खान तो गुण है। तू किसे आगे-पीछे करना चाहता है और किसे करेगा? एक पर्याय भी इस प्रकार ऐसा जानती है। पर्याय आगे-पीछे होती है, ऐसा नहीं और ऐसी पर्याय का पिण्ड गुण जो है, उसमें तो ऐसा हो गया अकेला है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान के कहे हुए द्रव्य, गुण और पर्याय। समझ में आया? यह द्रव्य, गुण, पर्याय की महत्ता है। ऐसे बातें नहीं। एक समय की पर्याय सर्वगत जाने। पूरा हो गया। जाननेवाला, देखनेवाला। जैसे सर्वज्ञ जाननेवाले, देखनेवाले हैं, कुछ बदलना नहीं और बदलता भी नहीं। उसी प्रकार यह जाननेवाला, देखनेवाला उसे भी इस प्रकार से जाने। समाप्त। आहाहा! दूसरे समय की श्रुतज्ञान की पर्याय भी सर्वगत को उस प्रकार से जानती है। जानते, जानते स्थिर होने पर जहाँ केवलज्ञान हुआ, वह पूर्ण रीति से जानता है, प्रत्यक्ष रीति से जानता है। ओहोहो! समझ में आया? एक समय की ज्ञान की पर्याय ऐसा जाने उसमें... ऐसा करने से प्रत्यक्ष हो गया तो ऐसे का ऐसे जाने। आहाहा! ऐसा एक जीव में ही ऐसा है। पाँच द्रव्य में कहीं ऐसा व्यापकपना ज्ञान का नहीं। उसमें आ अवश्य जाते हैं, यह उन्हें जाने। कहो, समझ में आया इसमें?

ये सब द्रव्य यद्यपि व्यवहारनयकर एकक्षेत्रावगाही रहते हैं,... एक क्षेत्र में सब द्रव्य रहते हैं। **तो भी निश्चयनयकर अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते,...** कोई अपने-अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं। भले एक जगह में अनन्त रजकण, अनन्त आत्मायें, कालाणु (रहे तो भी) अपने-अपने स्वरूप को कहीं एक समयमात्र पर्याय को छोड़ते नहीं। स्वरूप अर्थात् द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप, उसे छोड़ते नहीं। ओहोहो! समझ में आया? **दूसरे द्रव्य में जिनका प्रवेश नहीं है,...** एक रजकण का दूसरे रजकण

में प्रवेश नहीं, एक आत्मा एक रजकण में प्रवेश नहीं करता, रजकण आत्मा में नहीं आता। समझ में आया इसमें? **सभी द्रव्य निज निज स्वरूप में हैं, पररूप नहीं हैं...** अस्ति-नास्ति की है। सब अनन्त द्रव्य जितने हैं, वे अपने-अपने द्रव्य, गुण, पर्याय में हैं; पररूप नहीं। आहाहा! **कोई किसी का स्वभाव नहीं लेता।** कोई द्रव्य किसी का स्वभाव (लेता नहीं)। पुद्गल का स्वभाव जीव नहीं लेता और जीव का स्वभाव पुद्गल नहीं लेता। आहाहा! **ऐसा ही कथन श्रीपंचास्तिकाय में है।** (गाथा ७ में)।

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सब्भावं ण विजहंति॥

यह शब्दार्थ ही इसका है। **इसका अर्थ ऐसा है कि यद्यपि ये छहों द्रव्य परस्पर में प्रवेश करते हुए देखे जाते हैं, तो भी कोई किसी में प्रवेश नहीं करता,...** समझ में आया? मानो लोकालोक ज्ञान में आ गये, तथापि वे द्रव्य यहाँ आते नहीं, तथा ज्ञान वहाँ चला नहीं जाता। आहाहा! **यद्यपि अन्य को अन्य अवकाश देता है,...** जहाँ है, वहाँ दूसरे आते हैं न? अवकाश है तो परमाणु... सबमें अवकाश है, हों! सबमें अवकाश देगा।

तो भी अपना-अपना अवकाश आप में ही है, पर में नहीं है,... एक परमाणु हो, वहाँ दूसरे परमाणु आते हैं, एक आत्मा, वहाँ दूसरे आते हैं। अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में अवकाश गुण है। साधारण अवकाश गुण है आकाश में। वह अलग। वह महा, वह महा असाधारण। और यह एक प्रत्येक में अवकाश देने पर भी, **आप में ही है, पर में नहीं है, यद्यपि ये द्रव्य हमेशा से मिल रहे हैं, तो भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते।** अपने स्वभाव को कोई छोड़ता नहीं। कर्म का एक-एक रजकण उसके स्वभाव को छोड़ता नहीं। आत्मा की एक-एक पर्याय अपने धर्म को छोड़ती नहीं। आहाहा! अब यहाँ से कर्म से यहाँ है और यहाँ से वहाँ हो और कितनी गड़बड़ करे परन्तु। समझ में आया?

यहाँ तात्पर्य यह है कि व्यवहारसम्यक्त्व के कारण.... देखो! यह व्यवहार समकित का कारण छह द्रव्य में, यह छह द्रव्य व्यवहार समकित में निमित्त। **छह द्रव्यों में वीतराग चिदानन्द अनन्त गुणरूप जो शुद्धात्मा है,...** वह अन्तर में ध्यानेयोग्य है। छह द्रव्य का इस प्रकार से स्वरूप जानकर, पश्चात् भगवान आत्मा वीतराग चिदानन्द रागरहित ज्ञानानन्दस्वरूप, रागरहित ज्ञानानन्दस्वरूप, अनन्त गुणरूप वापस। चिदानन्द

और अनन्त गुणरूप जो शुद्धात्मा, अपना शुद्ध आत्मा। वह पुण्य-पाप, कर्म, शरीररहित। भले कहा था पुण्य-पाप के परिणमन का कर्ता आदि। परन्तु उनसे रहित। वह इसके अनन्त गुणसहित, ऐसा शुद्धात्मा है। **वह शुभ, अशुभ, मन, वचन, काय के व्यापार से रहित हुआ ध्यावनेयोग्य है।** लो! इसका सार कहा। यह सब व्यवहार समकित के विषय का जानना भले हो परन्तु उपादेयरूप से यह एक आत्मा वीतराग ज्ञान के आनन्द का कन्द प्रभु है। यह दुनिया का आनन्द जो रागवाला है, वह तो दुःखरूप आनन्द है। यह भगवान आनन्द, वीतराग आनन्द, वीतरागी चिदानन्द आनन्द आत्मा में है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या पाना? यह क्या आया? यह सब जानने का। जानकर आदरने का यह। यह जानकर जानने का यह वापस। यह निकाला। इसके बिना यह व्यवहार समकित का भी कारण नहीं हो सकता। उसे किस प्रकार व्यवहार कहना? यह निश्चय करे तो व्यवहार समकित के यह कारण हैं और व्यवहार समकित कहलाता है। समझ में आया? यह तो भाषा बराबर ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसी है, हों! इसमें कहीं बहुत ऐसी नहीं। गुजराती कुछ ऐसी (कठिन भाषा) नहीं।

छह द्रव्यों में भगवान आत्मा वीतराग चिदानन्द अनन्त गुणरूप शुद्धात्मा पर दृष्टि देकर, उसका ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया? **वह शुभ, अशुभ, मन, वचन, काय के व्यापार से रहित हुआ...** कहते हैं कि पर के लक्ष्य का जो शुभराग है न उस ज्ञान का? वह शुभ समकित का विषय कहा, वह शुभराग विकल्प है वहाँ। उसे भी छोड़कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह भगवान अन्तर आनन्द का कन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द जिसमें भरपूर अनन्त आनन्द का भूप पड़ा है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके उसका ध्यान करनेयोग्य है। वह आत्मा का मोक्षमार्ग है, बाकी सब जाननेयोग्य है। आहाहा! कहते हैं कि दूसरे जानने के भाव कहे और उसके विकल्प से भी निवृत्त हो। ऐसा कहते हैं। लो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है वह। परसन्मुख का लक्ष्य है न? वह विकल्पवाला

ज्ञान है। व्यवहार समकित अर्थात् राग। राग शुभ उपयोग का ज्ञान। उसे भी छोड़कर, यह निश्चय आत्मा वीतरागीस्वरूप (उसका ग्रहण करना)। अब यह वस्तु भी अभी जाने नहीं, माने नहीं ठीक से। अब उसकी ओर से लक्ष्य छोड़ना। ऐसा माने ठीक से तो उससे लक्ष्य छोड़ना, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। यहाँ तो अभी ठीक से मानता नहीं, उसकी तो बात क्या करना? आहाहा!

मुमुक्षु : कितने काल में ज्ञात होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक सेकेण्डमात्र में। कहो, समझ में आया? एक समयमात्र में। सेकेण्ड तो उसके उपयोग के काल से कहा। समझ में आया? उपयोग काल अधिक है न जरा। असंख्य समय का उपयोग काल। आहाहा!

कहते हैं, भाई! तू एक आत्मा है। तेरे एक समय के शुभउपयोग के विकल्पवाले ज्ञान में भी ऐसी बात छह द्रव्य, गुण, पर्याय की, जहाँ ज्ञात हो जाये, समा जाये, एक समय का परलक्षी क्षयोपशम ज्ञान के विकल्पवाला ज्ञान, उसमें भी इतना जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उसे जानता है। उसका भी लक्ष्य छोड़कर त्रिकाल ज्ञायकमात्र भगवान आत्मा, उसे ध्यानेयोग्य और ध्यान में ध्येय करनेयोग्य वह है। अर्थात् कि उसका विषय करनेयोग्य है, दूसरे प्रकार से कहें तो। यह व्यवहार का जो विषय कहा था, सम्यग्दर्शन का विषय इतने सब प्रकार कहे, उन्हें जानकर भी स्वविषय करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो! यह २८ गाथा हुई। समझ में आया?

इस प्रकार उन्नीस दोहों के स्थल में निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग के कथन की मुख्यता से तीन दोहा कहे। ऐसे चौदह दोहों तक व्यवहारसम्यक्त्व का व्याख्यान किया, जिसमें छह द्रव्यों का श्रद्धान मुख्य है। मुख्य समझे न? वह मूल आ गया। अब ज्ञान की व्याख्या। एक ज्ञान की व्यवहार की और एक चारित्र निश्चय की। ऐसा कहेंगे। व्यवहार में निश्चय डालेंगे।

गाथा - २९

अथ संशयविपर्ययानध्यवसायरहितं सम्यग्ज्ञानं प्रकटयति -

१५२) जं जह थक्कउ दव्वु जिय तं तह जाणइ जो जि।
अप्पहं केरउ भावडउ णाणु मुणिज्जहि सो जि।।२९।।

यद् यथा स्थितं द्रव्यं जीव तत् तथा जानाति य एव।
आत्मनः संबन्धी भावः ज्ञानं मन्यस्व स एव।।२९।।

जं इत्यादि। जं यत् जह यथा थक्कउ स्थितं दव्वु द्रव्यं जिय हे जीव तं तत् तह तथा जाणइ जानाति जो जि य एव। य एव कः। अप्पहं केरउ भावडउ आत्मनः संबन्धी भावः परिणामः णाणु मुणिज्जहि ज्ञानं मन्यस्व जानीहि सो जि स एव पूर्वोक्त आत्मपरिणाम इति। तथा च यद् द्रव्यं यथा स्थितं सत्तालक्षणं उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं वा गुणपर्यायलक्षणं वा सप्तभङ्ग्यात्मकं वा तत् तथा जानाति य आत्मसंबन्धी स्वपरिच्छेदको भावः परिणामस्तत् सम्यग्ज्ञानं भवति। अयमत्र भावार्थः। व्यवहारेण सविकल्पावस्थायां तत्त्वविचारकाले स्वपरपरिच्छेदकं ज्ञानं भण्यते। निश्चयनयेन पुनर्वीतरागनिर्विकल्पसमाधिकाले बहिरुपयोगो यद्यप्यनीहितवृत्त्या निरस्तस्तथापीहा-पूर्वकविकल्पाभावाद्गौणत्वमितिकृत्वा स्वसंवेदनज्ञानमेव ज्ञानमुच्यते।।२९।।

आगे संशय विमोह विभ्रम रहित जो सम्यग्ज्ञान है, उसका स्वरूप प्रगट करते हैं–

जिस स्वरूप में सभी द्रव्य हैं उनको उसीरूप जानो।
ऐसा है जो ज्ञान आत्मा का उसको सम्यक् मानो।।२९।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव; [यत्] ये सब द्रव्य [यथा स्थितं] जिस तरह अनादिकाल के तिष्ठे हुए हैं, जैसा इनका स्वरूप है, [तत् तथा] उनको वैसा ही संशयादि रहित [य एव जानाति] जो जानता है, [स एव] वही [आत्मनः संबंधी भावः] आत्मा का निजस्वरूप [ज्ञानं] सम्यग्ज्ञान है, ऐसा [मन्यस्व] तू मान।

भावार्थ :– जो द्रव्य है, वह सत्ता लक्षण है, उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है, और सभी द्रव्य गुण पर्याय को धारण करते हैं, गुण पर्याय के बिना कोई नहीं हैं। अथवा सब ही द्रव्य सप्तभंगीस्वरूप हैं, ऐसा द्रव्यों का स्वरूप जो निःसंदेह जाने, आप और पर को पहचाने, ऐसा जो आत्मा का भाव (परिणाम) वह सम्यग्ज्ञान है। सारांश यह है, कि

व्यवहारनयकर विकल्प सहित अवस्था में तत्त्व के विचार के समय आप और पर का जानपना ज्ञान कहा है, और निश्चयनयकर वीतराग निर्विकल्प समाधिसमय पदार्थों का जानपना मुख्य नहीं लिया, केवल स्वसंवेदनज्ञान ही निश्चयसम्यग्ज्ञान है। व्यवहारसम्यग्ज्ञान तो परम्पराय मोक्ष का कारण है, और निश्चयसम्यग्ज्ञान साक्षात् मोक्ष का कारण है।।२९।।

गाथा-२९ पर प्रवचन

आगे संशय विमोह विभ्रम रहित जो सम्यग्ज्ञान है, उसका स्वरूप प्रगट करते हैं। स्व-पर का जानपना ऐसे दो इकट्ठे करना, वह भी अभी व्यवहार ज्ञान कहलाता है, ऐसा कहेंगे। स्व-पर का दो ज्ञान, स्व का और पर का इकट्ठा (ज्ञान), उसका नाम ही व्यवहार ज्ञान। अकेला स्व का अन्तर में ज्ञान, वह निश्चयज्ञान। समझ में आया?

१५२) जं जह थक्कउ दव्वु जिय तं तह जाणइ जो जि।
अप्पहं केरउ भावडउ णाणु मुणिज्जहि सो जि॥२९॥

यह शब्द आया था १५में, १५वीं गाथा में आया था। '**अप्पहं केरउ भावडउ**' यह श्रद्धा का वहाँ शब्द था, यहाँ ज्ञान का शब्द है। समझ में आया? वाह! परमात्मप्रकाश भी... गजब बात की! परमात्मप्रकाश। योगीन्द्रदेव ने भी... परमात्मप्रकाश। समयसार में भी... यह भी एक अलौकिक शास्त्र है। बहुत जगह अध्यात्म ग्रन्थों में नाम आता है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, परमात्मप्रकाश, समाधिशतक अध्यात्म के ग्रन्थ हैं। कहते हैं, सम्यग्ज्ञान स्व-पर का कहना। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २४९२, पौष शुक्ल १०, रविवार
दिनांक-०२-०१-१९६६, गाथा-२९, प्रवचन-९२

यह परमात्मप्रकाश है। इसकी २९वीं गाथा। देखो! क्या कहते हैं? कि, **आगे संशय विमोह विभ्रम रहित जो सम्यग्ज्ञान है, उसका स्वरूप प्रगट करते हैं:—**

१५२) जं जह थक्कउ दव्वु जिय तं तह जाणइ जो जि।
अप्पहं केरउ भावडउ णाणु मुणिज्जहि सो जि॥२९॥

अन्वयार्थ:—हे जीव! इस जगत के अन्दर सब पदार्थ हैं। जिस प्रकार से वस्तु का स्वरूप पदार्थ—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु यह मिट्टी, रजकण आदि छह द्रव्य हैं। जैसे तिष्ठ हैं—स्थित है। जैसे (स्वरूप से) वस्तु जगत में (स्थित है)। **जैसा इनका स्वरूप है, उनको वैसा ही संशयादि रहित...** संशयरहित, भ्रमणारहित, मूढ़तारहित उसे जान। जिससे तेरा स्व और पर की भिन्नता का सच्चा ज्ञान व्यवहार से हो। अभी तो यह व्यवहार ज्ञान। समझ में आया? जो आत्मा है, यह शरीर है, दूसरे आत्मायें हैं, दूसरों के शरीर, रजकण सत् है—वस्तु है, उसका जिस प्रकार से स्वरूप है, उस प्रकार से ज्ञान में जान तो तुझे स्व और पर दोनों भिन्न क्या है, ऐसा तेरा रागवाला ज्ञान व्यवहार से सच्चा ज्ञान होगा। समझ में आया? व्यवहार अर्थात् यह तुम्हारे लोक के व्यवहार की बात नहीं है। अन्दर पुण्यबन्ध का शुभभाव।

यह आत्मा क्या वस्तु है? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा कैसा देखा, अनन्त आत्मा कैसे हैं, रजकण रजकण का स्वरूप क्या है, जैसा उसका स्वरूप है, वैसा स्वयं अपने से पर की पृथक्ता का ज्ञान करे, तब उसे व्यवहार ज्ञान पुण्य के भाव का ज्ञान—व्यवहार ज्ञान सच्चा कहा जाता है। उसमें आत्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप है। यह आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। आत्मा सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द (स्वरूप है), उसका अन्तर में सम्यग्ज्ञान होना, उसका नाम आत्मा की शान्ति और इसका नाम धर्म कहा जाता है। समझ में आया?

यह आत्मा ही निर्विकल्प वीतराग—रागरहित चीज़ है। वीतराग आनन्दमय है। इसमें—आत्मा में आनन्द पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है। ऐसे आनन्दमय ज्ञान

स्वरूप को राग बिना की वीतरागी दृष्टि द्वारा स्वरूप का अनुभव करे, दृष्टि करे, तब उसे आत्मज्ञान कहा जाता है। तब उसने आत्मा की कीमत की, ऐसा कहा जाता है। तब उसे दूसरे सब पदार्थ की कीमत आत्मा के समक्ष उड़ गयी। समझ में आया? यह आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति है। ऐसा जो ज्ञान करे, उसे अन्दर आत्मा की कीमत हुई। उसे सम्यग्ज्ञान अर्थात् कि वास्तविक कीमत की, उस ज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान। समझ में आया? शान्तिभाई! यह कैसा होगा?

यह आत्मा वस्तु सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् सत् शाश्वत् आत्मा है, त्रिकाल ऐसा का ऐसा नित्य रहनेवाला है और उसमें—आत्मा में ज्ञान और आनन्द पड़ा है। उसके ज्ञान का ज्ञान और आनन्द का ज्ञान अन्दर करे, उसका नाम सच्चा ज्ञान, सच्ची धर्म की कीमत, सच्चे आत्मा को उसने पहिचाना कहलाता है। तब वह ज्ञानी हुआ और आत्मा के भाव की उसने पहिचान की। तब उसे शान्ति और सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। उस समय अथवा पहले विचार के काल में स्व क्या, पर क्या—ऐसी चीज़ों का विचार भूमिका में चले, उसे व्यवहार ज्ञान पुण्यबन्धन का कारण, व्यवहार, व्यवहार से सच्चा ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? निश्चय सच्चा तो आत्मा का ज्ञान करे, वह है। कठिन बातें, भाई! शान्तिभाई! कभी खबर नहीं होती यह। ऐ... कान्तिभाई! कहाँ गये?

यह आत्मा अपना स्वभाव अन्दर वस्तु आनन्दमूर्ति है वह। वीतराग अर्थात् अविकारी उसका स्वभाव है। उसकी दशा में विकार और भ्रमणा भले हो, वस्तुस्वरूप में वह नहीं है। ऐसे वस्तु के स्वरूप का अन्तर में वीतराग परमानन्दमूर्ति ही मैं हूँ—ऐसा अन्तर में निश्चय का, स्व का ज्ञान होना, उसका नाम वास्तविक धर्म है। उसने आत्मा की कीमत की और उसे पुण्य-पाप के भाव और उसके फल की कीमत अन्तर में से उड़ गयी। समझ में आया? उसे पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उनकी कीमत नहीं रही और उसके भाव के बन्धनरूप से पुण्य-पाप बँधे और उसके फल बाहर यह अनुकूल-प्रतिकूल मिले, उसकी कीमत धर्मी को अन्तर दृष्टि में नहीं रहती। कहो, समझ में आया इसमें? परन्तु यह पहले जरा विकल्प अवस्था में सच्चा तत्त्व का क्या है ज्ञान, इसे होना चाहिए। यह बात करते हैं, देखो!

भावार्थः—जो द्रव्य है,... तीन लक्षण वर्णन किये। भाई! यह पंचास्तिकाय में है न '**थक्कउ**' है न? रहे हैं। वे रहे हैं, उसमें से तीन बोल निकाले। सत्ता, उत्पाद-व्यय-ध्रुव और गुण पर्याय, ऐसे तीन निकाले। स्थित में से निकाले। समझ में आया? क्या कहते हैं? यह आत्मा, यह रजकण वे जैसे हैं, उनकी सत्ता अर्थात् अस्तित्व उनका स्वरूप है। है, है। पदार्थ है न? यह रजकण, शरीर, कर्म, वाणी, यह बाह्य पदार्थ हैं, आत्मा है, वह है अर्थात् सत्तावाला पदार्थ है, उसका इसे ज्ञान पहले (होना चाहिए)।

वह सत्ता लक्षण है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है,... प्रत्येक वस्तु, उसकी वर्तमान अवस्था से नयी उपजती है, पुरानी अवस्था से व्यय होता है, बदलती है और अपने ध्रुवपने, सत्पने कायम रहती है। ऐसा ही उसका स्वभाव है। किसी के कारण नहीं। समझ में आया? इस शरीर का एक-एक रजकण, यह बहुत रजकण का दल है, यह कहीं एक वस्तु नहीं। बहुत पॉईन्ट एकत्रित होकर यह दिखता है। इसका एक अन्तिम पॉईन्ट जो टुकड़ा करते हुए रहे, उस एक-एक रजकण में और इस एक-एक आत्मा में एक समय में तीन अंश हैं। सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन अंश हैं। नयी अवस्था का होना। पर्याय—अवस्था नयी होना। देखो! यह अवस्था है न? पहले थी दाल, भात की। अभी यह परमाणु की रक्त की अवस्था है। उस अवस्था का होना, हुआ। नजदीक में आना सब जरा... समझ में आया? आज तो रविवार है न, पीछे लड़के आये हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो आये हैं, परन्तु यह लड़के आज आये हैं, इसलिए खचाखच हो गया है। बोर्डिंग के लड़के आये हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : बड़ों को रविवार नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ों को रविवार नहीं आता। आया है न। अभी तो आये हैं।

यहाँ कहते हैं, इस जगत में अनन्त आत्मायें हैं। अनन्त परमाणु, अनन्तगुणे रजकण हैं। दूसरे चार द्रव्य हैं, यह जरा सूक्ष्म पड़ता है। उनमें प्रत्येक में उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है, ऐसा कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ समय-समय में छोटे काल में नयी अवस्था उपजती है, पुरानी अवस्था बदलती है और स्वयं ध्रुवरूप से कायम रहता है। उसके

उपजने में दूसरा पदार्थ उपजावे, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। इस शरीर को टिकाना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है, ऐसा कहते हैं। रोटी के अधिकार की बात नहीं है। रोटी के रजकण स्वतन्त्र अपनी पर्याय से उपजते हैं। इस शरीर के रजकण अपनी अवस्था से स्वतन्त्र उपजते हैं। रोटियों के कारण यह उपजते हैं, ऐसा नहीं है। क्योंकि वे अनन्त पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं। शान्तिभाई! आहाहा! यह कहते हैं, वह प्रत्येक वस्तु वर्तमान अपने कारण से नयी अवस्था के कार्यरूप परिणमे, वह स्वयं से है, पर के कारण नहीं। बड़ा विवाद पूरा कारण-कार्य का, वे विवाद उठाते हैं। उसका ठिकाना नहीं होता। समझ में आया?

इस शरीर की अवस्था को ऐसे हिलाऊँ, यह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। क्योंकि, उसका उत्पाद हिलने की उस उत्पाद की पर्याय का कर्ता वे रजकण हैं, आत्मा नहीं। और आत्मा की जानने, देखने की पर्याय हो, वह अवस्था शब्दों और पर से नहीं होती। समझ में आया? नहीं समझ में आया? ऐई! भीखाभाई! आत्मा है न! उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण हैं, वे ध्रुव हैं और उनकी वर्तमान अवस्था उपजती है जानने की, देखने की, मानने की, वह अवस्था आत्मा से उपजती है। शरीर से नहीं, कान से नहीं, सुनने से नहीं।

मुमुक्षु : दोनों दिखाई दे ऐसा है या एक दिखाई देता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दो दिखाई दे ऐसा है। एक दिखाई दे, कहाँ है? कौन कहता है? दोनों दिखाई देते हैं यहाँ तो। आत्मा और (शरीर) दो। समझ में आया? नहीं दिखता यह? यह शरीर और आत्मा जाननेवाला अलग और यह अलग। जाननेवाला भिन्न और यह शरीर (भिन्न)। आत्मा ऐसा कहता है कि मैं शरीर हूँ? मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। यह शरीर है, मैं उसका जाननेवाला चैतन्य हूँ। दोनों अलग चीज़ है। और लोग भी नहीं कहते कि, भाई! यह चैतन्य गया अब। मरे तब ऐसा कहते हैं कि यह चैतन्य और शरीर दोनों चले गये यहाँ से?

मुमुक्षु : शरीर तो सौंपकर जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सौंपे कहाँ? पड़ा रहे वहाँ। वहाँ कहाँ इसके बाप का था, वह साथ रहे। बाप का हो तो भी बाप भी कहाँ इसका है! जरा भी नहीं?

यहाँ तो भगवान ऐसा कहना चाहते हैं कि पहली बात तो यह है कि जितने तत्त्व हैं, उन तत्त्वों का अस्तित्व इसे स्वीकार करना—निश्चित करना चाहिए। और उस अस्तित्व में उसकी नयी-नयी अवस्था जिस क्षण में होती है, वह उसके तत्त्व से होती है, दूसरे तत्त्व से नहीं। ऐसा इसे निश्चित करना चाहिए। तब इसे व्यवहार से सच्चा ज्ञान हुआ कहलायेगा। व्यवहार से सच्चा ज्ञान, हों! निश्चय तो आत्मा का ज्ञान कर, वह है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें ही भूल।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें ही भूल पूरी। समझ में आया? कहो, कान्तिभाई! क्या इस लकड़ी के कितने करे यह? देखो! है?

प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय ध्रुवरूप है। जब वस्तु ही स्वयं नयी अवस्थारूप होती है, ऐसा है; पुरानी अवस्थारूप से जाती है, ऐसा है; टिकनेरूप से रहती है, ऐसा है। क्या कहा? प्रत्येक वस्तु। अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु। एक रूपया, वह भी अनन्त रजकण का बना हुआ है। प्रत्येक वस्तु वर्तमान अवस्था से हो, ऐसी है। दूसरे की अवस्था हो, ऐसा नहीं। भाई! यह और बाद में, यह तो अभी (यह बात चलती है)। है, यह है। इससे यह, इससे यह, इससे यह—ऐसा नहीं। इस शरीर की यह अवस्था, वह इससे है, यह अवस्था इससे है। इसका अर्थ कि आत्मा की अवस्था से वह नहीं। आत्मा को इच्छा हुई, इसलिए यह अवस्था है, ऐसा नहीं। इच्छा के कारण इच्छा है। इसकी अवस्था के कारण इसकी अवस्था है। शान्तिभाई! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! ऐसा ही है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने ऐसे (पदार्थ) देखे और ऐसा है—ऐसा कहते हैं, ऐसा तू जान। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

प्रत्येक वस्तु... देखो! कर्म के रजकण भी कर्म जो अन्दर है, वह भी अपनी अवस्था से कर्मरूप उपजते हैं। पूर्व की वर्गणा की अवस्था से व्यय होते हैं और रजकणरूप से वे उपजते हैं। इस प्रकार वह है। आत्मा के कारण वे हैं, आत्मा के कारण कर्म हैं, ऐसा नहीं और कर्म के कारण आत्मा है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उत्पाद-व्यय-ध्रुव। महा सिद्धान्त डालते हैं। एक-एक रजकण का और एक-

एक आत्मा का एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय सूक्ष्म काल में प्रत्येक पदार्थ स्वयं से कार्यरूप से, अवस्थारूप से होता है, पुरानी अवस्था के कार्य की दशारूप से अभाव होता है, अपना ध्रुवपना टिकाये (रखता है)। ऐसा वह है, वह ऐसा है, दूसरा ऐसा है, तीसरा ऐसा है। ऐसे अनन्त पदार्थ स्वयं से ऐसे हैं। उसे वैसा है, वैसा इसे जानना चाहिए, तब इसका व्यवहार ज्ञान सच्चा हुआ कहलाये। समझ में आया? इतना करे वहाँ यह तो अभी पुण्य बन्ध का कारण, धर्म नहीं। सविकल्पात्मक व्यवहार ज्ञान की यह बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

और सभी द्रव्य-गुण-पर्याय को धारण करते हैं,... प्रत्येक वस्तु, द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् अवस्था। उत्पाद-व्यय पर्याय में जाते हैं, ध्रुव गुण में जाता है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय को धारण करती है। स्वयं के कारण से द्रव्य-गुण पर्याय को धारण करती है। परमाणु परमाणु के द्रव्य के कारण, उसके गुण के कारण और उसकी पर्याय के कारण से रहे हैं। आत्मा अपना द्रव्य, अपने अनन्त ज्ञानादि गुण, उसकी अवस्था के कारण आत्मा रहा हुआ है। किसी के कारण यह नहीं और इसके कारण वह नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि यह पैसा साथ में आवे, वह आत्मा की पर्याय के कारण नहीं आता। ऐसा कहते हैं। क्या होगा यह? क्योंकि पैसा, वह रजकण है, रजकणों का अवस्था का उपजना ऐसा होना, वह उसके कारनामे उसमें हैं। वह आत्मा की इच्छा के कारण ऐसे आते हैं या ऐसे जाते हैं, ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! क्या जमुभाई! गजब यह तो अभी व्यवहार ज्ञान! इसमें से छाँटकर भगवान आत्मा शुद्ध अखण्ड ज्ञान का पिण्ड है, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का होना, उसका नाम निश्चयदर्शन और निश्चयज्ञान है। उसका नाम सच्चा सत्य और सच्चा ज्ञान है। वह तो व्यवहार सत्य कहने में आता है। आहाहा! अभी तो व्यवहार सत्य ज्ञान का ठिकाना नहीं होता, उसे निश्चय सत्य ज्ञान कैसे प्रगट हो? समझ में आया?

कहते हैं, प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु, उस प्रत्येक द्रव्य की शक्तियाँ जो गुण त्रिकाल और उसकी वर्तमान अवस्था को, वह वस्तु धारण करती है। आत्मा शरीर को धारण नहीं करता, शरीर आत्मा को नहीं रखता, ऐसा

कहते हैं। आत्मा शरीर को धारण नहीं करता, आत्मा ने कर्म को धारण नहीं किया, शरीर ने आत्मा को धारण नहीं किया, कर्म ने आत्मा को यहाँ नहीं रखा। आहाहा! कहो, वल्लभदासभाई! यह दिखता है न आँखों से, परन्तु तू उसे खबर नहीं होती, ऐसा मानता नहीं।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था। वे भगवान परमेश्वर इन्द्रों के समक्ष फरमाते हैं। इन्द्र बड़े अर्द्धलोक के स्वामी। तुमने शरीर धारण नहीं किया, तुम्हारे कारण यह विमान के देव और विमान के शरीर नहीं। प्रत्येक के रजकण स्वयं अपने से—गुण-पर्याय से धरे हुए, टिके हुए हैं। तुम तुम्हारे गुण और पर्याय से टिके हुए हो। तुम नहीं टिकाते पर को और पर नहीं टिकाता तुमको। स्त्री, पुत्र को तो निभाता होगा या नहीं? अच्छे नौकरों-बोकरों को निभाता होगा या नहीं?

मुमुक्षु : सच्चा है, झूठा कैसे कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बोला जाता है? आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? परन्तु यह क्या कहा जाता है?

प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुव और प्रत्येक वस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय को धारण करनेवाली है। **गुण-पर्याय के बिना कोई नहीं है।** कोई भी वस्तु अपनी शाश्वत् शक्ति और उसकी वर्तमान कार्य की दशारहित कोई पदार्थ होता नहीं। अब कौन सा पदार्थ उसके कार्य की दशारहित है कि दूसरा पदार्थ उसका कार्य करने जाये? कान्तिभाई! यह घड़ी-बड़ी के काम, कहते हैं कि वह परमाणु की पर्याय, परमाणु की पर्याय बिना का वह परमाणु नहीं होता। उसके गुण और पर्याय बिना का वह द्रव्य नहीं होता। पश्चात् वह वहाँ क्या गुण—उसने पर्याय डाली वहाँ? पर्याय अर्थात् अवस्था, अवस्था अर्थात् कार्य। समझ में आया? आहाहा!

देखो! यह भाषा के रजकण उठते हैं न भाषा? आवाज आती है न कान में? वह रजकण है, उन रजकणों ने अपने गुण-पर्याय को धारा है। वह भाषा की अवस्था और उसकी शक्ति, उन रजकणों ने धारी है; आत्मा ने नहीं, इस होंठ ने नहीं। भारी कठिन

बातें! समझ में आया? हाथ में ऐसे छुरी होती है न छुरी? कहते हैं कि उस छुरी ने अपने गुण-पर्याय को उसने धारा है। हाथ ने उसे पकड़ा—धारा नहीं है।

मुमुक्षु : .... मदद तो करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कोई मदद नहीं करता। व्यर्थ का शोर मचाता है वहाँ। पड़ोसी तो उसमें रहा है। वह वस्तु है या नहीं? वह वस्तु है या नहीं? तो वस्तु में उसकी शक्ति और गुण होते हैं या नहीं? तथा शक्ति और गुण हो, उनकी कोई वर्तमान दशा—कार्य—पर्याय होती है या नहीं? तो पर्याय बिना का (होता नहीं)। उसने तो उसके गुण-पर्याय को धारा है। तुम्हारे गुण, पर्याय को कहाँ धारण करने आता था निवृत्त। समझ में आया? तुमने तुम्हारे गुण-पर्याय को धारा है। तुम आत्मा हो। वह आत्मा अन्दर है, उसने अपने गुण अनन्त गुण हैं ज्ञान, दर्शन, उनको धारा है और उनकी अवस्था को धारा है, बस इतना। नहीं धारा उसने शरीर, नहीं धारी उसने वाणी, नहीं रखे उसने कर्म, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कैसे होगा यह? यह बात बैठती होगी? कान्तिभाई! परन्तु पूरे दिन लकड़ी वह करता हो और कुर्सियाँ करता हो और अमुक करता हो न, क्या कहलाता है? फर्नीचर न, फर्नीचर। समझे? यह इनकार करते हैं यहाँ। फोटो देखने को दिया, कहते हैं। शान्तिभाई कहते हैं, लो!

लकड़ी भी रजकण है या नहीं? रजकण का अस्तित्व है या नहीं? अस्तित्व है, उसमें उसकी अवस्था है या नहीं? तो उसकी अवस्था के अस्तित्व को द्रव्य ने किया है। अस्तित्व से अवस्था उसके कारण टिकी है, दूसरे हथियार के कारण भी वह अवस्था हुई नहीं। गजब बात! वीतराग का मार्ग जगत को समझना (कठिन)। समझ में आया?

मुमुक्षु : किसी दिन आवे, उसे समझ में आये ऐसी बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझ में आये ऐसी बात है, किसी दिन आवे उसे।

दो चीज़ें भिन्न हैं। देखो! आत्मा जाननेवाला है। आत्मा वस्तु है। उसमें जानने के ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण हैं और उसकी वर्तमान अवस्था—हालत होती है। वह उसने धारी है, उसमें वह है, उसके अस्तित्व में वह है। वह कर्म के शरीर के रजकण और भाषा के अस्तित्व में वह आत्मा नहीं। और यह भाषा और शरीर और कर्म के

अस्तित्व में आत्मा नहीं। उसके अस्तिरूप वह है और इसके अस्तिरूप ऐसे त्रिकाल ऐसा का ऐसा टिक रहा है। समझ में आया? वह उसके कारण टिके, मैं मेरे कारण टिका, ऐसा जो भेद करना, ऐसा पहले विकल्पात्मक ज्ञान (करना), उसे व्यवहारिक सच्चा ज्ञान कहने में आता है। समझ में आया? पश्चात् अन्दर निर्विकल्प भगवान अकेला चिदानन्दस्वरूप, (उसकी) अन्तर्मुख दृष्टि करके राग के अवलम्बन बिना का... वह राग की पर्याय उसने धारी है। उसकी भी धारणा—लक्ष्य छोड़कर अकेला ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप की अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। यह आत्मा की शान्ति का उपाय है। समझ में आया?

पर में मैं नहीं, इसलिए पहले प्रेम छोड़ना पर का। पश्चात् राग में इतना मैं नहीं, ऐसा राग का प्रेम छोड़ना। पर में मैं नहीं, मैं मुझमें हूँ; इसलिए पर का प्रेम इसे कुछ काम का नहीं है। इसलिए पर का प्रेम छोड़ना। अब मुझमें रागादि हैं। अब मुझमें राग है तो राग में मैं पूरा नहीं। एक समय में पुण्य-पाप और विकार है, उसमें पूरा तत्त्व नहीं। पूरे तत्त्व पर जाने से राग-द्वेष में मैं नहीं और राग-द्वेष मुझमें नहीं। ऐसे ज्ञायक चैतन्य की प्रतीति और भान होने पर उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली दशा होती है। समझ में आया? कहो, हिम्मतभाई! गजब बात।

जितने द्रव्य हैं, वे सब सत्ता—अस्तिवाले हैं, ऐसा कहा। अस्तिवाले हैं, इसलिए उसमें तीन लक्षण हैं। नयी अवस्था का होना, (यह उत्पाद)। ओहोहो! इतनी बातें अभी विवाद उठते हैं। सामने के द्रव्य की पर्याय मैं करूँ। वह पर्याय उसने धारी है या तूने धारी है? आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभाव ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! प्रभाव की व्याख्या क्या? प्रभाव की व्याख्या कोई भाव मस्तिष्क में आना चाहिए न!

यह वस्तु रजकण रजकण, आत्मा आत्मा ने अपनी ध्रुवता को टिकाकर वर्तमान अवस्थारूप से स्वयं टिक रहा है। उसकी अवस्था में दूसरे का आना, प्रवेश होना नहीं है। जगत के दूसरे पदार्थ जो आत्मायें, जड़ हैं, उनकी अवस्था में इस आत्मा का जाना

नहीं होता। और इस आत्मा के कारण वे टिके, रहे, टूटे-फूटे, ऐसा है नहीं। समझ में आया? इतना करे तो उसे व्यवहारिक ज्ञान का शुभराग पुण्य का सच्चा होता है, कहते हैं। ऐसा न माने तो उसे पाप का राग और पाप ज्ञान होता है। समझ में आया? एक-दूसरे की पर्याय को करे और करूँ, ऐसा जाने तो उसका नाम पापज्ञान, उसे भाव में पाप हुआ। यह ऐसे टिके। मेरे कारण मैं टिका, उसके कारण, ऐसी मान्यता का भाव, वह पापभाव है। इस जगत के प्रत्येक पदार्थ अपने कारण से टिक रहे हैं, बदल रहे हैं, उपज रहे हैं। ऐसा न माने और मुझसे उसमें उपजे और उससे (मुझमें उपजे), यह तो असत्य बात हुई, असत्य ज्ञान हुआ। असत्य ज्ञान अर्थात् पाप हुआ, पाप अर्थात् बन्धन हुआ, दुःखरूप दशा हुई उसे। परन्तु प्रत्येक पदार्थ उसके कारण से उपजता है, टिकता है। मैं मेरे कारण से उपजकर टिकता हूँ, ऐसा ज्ञान, उसे पुण्य हुआ, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : भगवान की मर्जी प्रमाण होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान कौन सा था? भगवान दूसरा कोई है नहीं। प्रवीणभाई! प्रत्येक वस्तु स्वयं ही अपनी कर्ता-हर्ता है। समझ में आया?

यहाँ तो जरा तीसरा न्याय रखा, भाई! कि जगत में अनन्त आत्मायें और अनन्त रजकण यह पॉईन्ट है। वह है, उसे भगवान कहते हैं, जो सब सबसे है, उसमें ऐसा न मानकर, मुझसे शरीर है और शरीर से मैं हूँ और पैसे से मैं हूँ और मुझसे पैसे हैं—ऐसा माननेवाले के परिणाम में असत्यपना है अर्थात् पाप है।

(अस्तिपने) जो वस्तु है, प्रत्येक आत्मायें... भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी परमेश्वर ने अनन्त पदार्थ आत्मा, अनन्त रजकण, ऐसे स्वतन्त्र देखे हैं और वे कहते हैं। वे टिके हैं, वे अपने ध्रुवरूप से और बदलते हैं, वह अपनी पर्यायरूप से। वह अपनी पर्याय से बदलते हैं और ध्रुवपने टिकते हैं, वह अपनी पर्याय से। इस प्रकार न मानकर दूसरे से उसमें टिकना होता है, बदलना होता है, इससे उसमें बदलना, टिकना होता है, ऐसा उसका ज्ञान, पापज्ञान है। उसे पापरूपी परिणाम होते हैं। असत्य का भाव करता है, इसलिए पाप होता है। आहाहा!

दूसरी बात, प्रत्येक पदार्थ स्वयं से टिके हैं और उनसे अवस्था उनके कारण हुई है। किसी के कारण कुछ (नहीं होता)। ऐसा जो ज्ञान, उसका नाम पुण्यरूपी परिणाम

भाव है। अभी यह धर्म भाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह विकल्प द्वारा ज्ञान में जैसी चीज़ें अनन्त छह द्रव्य है, उस प्रकार से इसने निर्णय किया, तब इसके ज्ञान में शुभभाव-पुण्यभाव हुआ। सच्चा यह। व्यवहारिक ज्ञान सच्चा हुआ। उसमें अभी स्व का ज्ञान आया नहीं। भेदवाला, स्व-पर के भेदवाला, विकल्पवाला ज्ञान सच्चा हुआ। वह पुण्य के परिणाम हुए। सूक्ष्म बात है, भाई! और वह आत्मा स्वयं पर से तो भिन्न है, पर का करता नहीं परन्तु आत्मा में जितने पुण्य-पाप के विकल्प और विकार उठते हैं, वे मेरे त्रिकाल स्वभाव में नहीं। क्योंकि, उस पूर्ण सत् में यह नहीं। जैसे उसके सत् में यह नहीं, इस सत् में वह नहीं। ऐसा जो निर्णय हुआ, वह पुण्य परिणामरूपी ज्ञान है। पश्चात् आत्मा में विकार के परिणाम जितने पुण्य-पाप के हैं, वह कृत्रिम अस्तित्वरूप से है। मेरे त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वरूप में नहीं। ऐसे परमानन्द महा सत् की दृष्टि होने से विकल्पों के परिणाम मेरे नहीं, निर्विकल्प स्वभाव वह मेरा है, ऐसी दृष्टि होना, उसे धर्मदशा, धर्मदृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया या नहीं? पुण्य, पाप और धर्म तीन इस प्रकार से है।

मुमुक्षु : तत्त्व की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है? आहाहा! ऐ... भीखाभाई! कहाँ गये? जमुभाई! आहाहा! अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर समवसरण में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में ऐसा फरमाते थे। वह बात यहाँ आचार्य कहते हैं। अनन्त तीर्थंकर हो गये, वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर परमेश्वर साक्षात् विराजमान हैं। सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ। उन सब परमेश्वरों का कथन ऐसा आया है और ऐसा है कि इस जगत के जितने पृथक्-पृथक् पदार्थ हैं, आत्मा अनन्त, रजकण भी अनन्त, और दूसरे चार—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, (उन) प्रत्येक की सत्ता का अस्तित्व स्वयं के कारण से है, उसका दूसरा कोई कर्ता नहीं। उसकी सत्ता के वर्तमान के अंश पलटते हैं, वह भी उसकी सत्ता के कारण से है। उसकी सत्ता के कारण से है, दूसरे की सत्ता के कारण से नहीं। ऐसी प्रत्येक वस्तु की सत्ता स्वतन्त्र स्वीकार कर, उसकी वर्तमान दशा उससे होती हुई स्वीकार करे, तब उसका नाम पुण्य के परिणामवाला ज्ञान हुआ कहलाता है। ऐसा न

माने और एक-दूसरे से एक-दूसरे में होता है। उससे उसमें होता है, इसका टिकना दूसरे के कारण से, दूसरे का टिकना (इसके कारण से), इसका नाम पाप परिणामवाला ज्ञान कहा जाता है। असत्य है, इसलिए पाप; वह सत्य है, परन्तु अभी रागमिश्रित है; इसलिए पुण्य। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु है, आत्मा-वस्तु है। जैसे शीतल पाट बर्फ की हे, उसी प्रकार आत्मा आनन्द की एक पाट है अन्दर। किसे खबर? भान कब? देखा है कब इसने? यह देह प्रमाण एक अतीन्द्रिय आनन्द की पाट आत्मा है। समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय आत्मा के अन्तर में स्वभाव की दृष्टि करना, इसका नाम धर्म। पर और स्व को भिन्न-भिन्न जैसा है, वैसा बराबर जानना, इसका नाम पुण्य और पर और स्व जैसे भिन्न है, ऐसा न मानना, मिलावट मानना, इसका नाम पाप। लो! और इसमें उतर गया। समझ में आया? वल्लभदासभाई! आहाहा! क्या करे परन्तु? उसे जगत की उधेड़बुन के कारण व्यवहार क्या है, जगत के तत्त्व भिन्न-भिन्न (कैसे हैं), उसकी इसे खबर नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी क्रिया? पहले प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न है, ऐसा ज्ञान करके ऐसे विकल्प की ओर का लक्ष्य छोड़कर निर्विकल्प आत्मा की ओर दृष्टि करना, यह उसका कार्य है। पश्चात् बारम्बार स्वरूप में स्थिर होना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! यह क्रिया दर्शन और चारित्र की। परन्तु क्या हो? ऐसा अनादि काल का अशरण... अशरणरूप से मरकर भटका अनन्त काल से। कोई इसके सामने देखनेवाला नहीं। कुटुम्ब कबीला सब इकट्ठे हुए और उसको मरना। यह बीस वर्ष का लड़का, अभी तो छह महीने विवाह किये हुए। तब क्या करे, बापू!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है? कहते हैं। आत्मा में है या बाहर? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। दो का-पर का विकल्प वह पुण्यभाव है। कहो, समझ में आया? आहाहा! वह पुण्यभाव वास्तविक शरण नहीं।

अन्तर आत्मा ज्ञानस्वरूप (में) नजर डालने पर जहाँ निधान चिदानन्दस्वरूप है, ऐसी अन्तर प्रतीति और भान हुआ, उसमें शरण है। बाकी सब कुत्ते और कौवे की भाँति मरते हैं, ऐसे राजा और रंक सब मर जाये, चले जाये चार गति में। एक के बाद एक धारा चलती जाये, चार गति में भटकने। आहाहा! समझ में आया?

आचार्य की वीतराग के कथन की कोई भी शैली... अलौकिक बात! है अनन्त द्रव्य। आहाहा! ऐसा भगवान की वाणी में आया। है अनन्त पदार्थ। वहाँ ही ऐसा हो गया कि अनन्त अपने-अपने कारण से है। प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रुव युक्तं है। प्रत्येक वस्तु नयी अवस्था से उपजनेवाली, पुरानी अवस्था से बदलनेवाली और अपनी ध्रुव जाति से टिकनेवाली। ऐसी वह है, ऐसा है। प्रत्येक वस्तु, गुण-पर्यायवाली है। प्रत्येक परमाणु और आत्मा में प्रत्येक को गुण होते हैं। जड़ को जड़ के गुण, आत्मा को आत्मा के गुण। और उसकी अवस्था से धरा हुआ वह पदार्थ है। वह द्रव्य अपने गुण-पर्याय को धारता है। गुण अर्थात् शाश्वत् शक्ति, पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा, उसे प्रत्येक पदार्थ धारता है। किसी के गुण-पर्याय को किसी का द्रव्य धारे, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

यह तो वीतरागी विज्ञान है। वीतरागी विज्ञान—पाठ। यह लड़के पढ़ते हैं न, कमाने के लिये, मरने के लिये। कमाने के लिये। यह एम.ए. और एल.एल.बी. के पूंछड़े लगाना। उसमें भी वापस पुण्य हो तो पैसा मिले। पढ़े तो भी मिलता नहीं। है या नहीं?

मुमुक्षु : पढ़कर जीना चाहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका जीना? किसका जीना? आत्मा का या शरीर का? शरीर शरीर के कारण से जीता है, आत्मा आत्मा के कारण से जीता है। किसे जिलाना है? शान्तिभाई! भाई! यह तो पाठशाला दूसरे प्रकार की है। आहाहा! यह रजकण-रजकण ऐसे उसके कारण से टिके हैं। चलने लगेंगे तब लाख बड़े इन्द्र ऊपर से आयेंगे तो नहीं रहेंगे। इन्द्र चले जाते हैं न! ऐसे इन्द्र। चौरासी हजार देव चारों ओर खड़े हों, शरीर के रक्षक। जहाँ स्थिति पूरी हुई, कपूर की गोली की तरह रजकण समाप्त... समाप्त हो जाये। चौरासी हजार देव का झुण्ड (देखे) कि यह कहाँ गये स्वामी? समाप्त।

अपनी तरह शरीर—मुर्दा नहीं पड़ा रहता। यहाँ जीव जाये तब मुर्दा पड़ा रहता है। उसे वह जहाँ जीव जाये तो कपूर की गोली की भाँति रजकण बिखर जाते हैं। जीव परगति में चला जाता है। कौन रखे किसे? आहाहा! जिसकी स्थिति वहाँ रही, वे भी स्वयं आयुष्य से रहे नहीं थे। उनकी अपनी पर्याय की योग्यता से वहाँ टिककर रहे थे। आहाहा! गजब बात, भाई! आयुष्य प्रमाण शरीर में इतने में रहना, वह बात भी खोटी सिद्ध होती है। यहाँ तो आत्मा प्रत्येक समय में अपनी पर्याय और ध्रुव से टिककर रहा है, पर के कारण रहा नहीं है। आहाहा! नेमिदासभाई! क्या होगा? तुम सब बहुत बड़े काका कहलाते हो। यह गौशाला और... फिर दूसरे को रखे, बहुतों को हाथ रखे, बहुतों को पैसा-बैसा दे और ऐसा करे। हाय.. हाय..! गजब, भाई!

मुमुक्षु : पैसे का सहारा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का सहारा नहीं किसी को। व्यर्थ का (मानता है)। आशावन्त व्यर्थ होता है। किसी की अवस्था किसी से तीन काल में नहीं होती। उसके लिये तो यह बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह शरीर की अवस्था ऐसी है, इसलिए जीव को ठीक रहे, कहते हैं कि ऐसा है नहीं। वह स्वयं माने अपनी मान्यता से, उसके कारण वह स्वयं है, इसके कारण नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया? शक्कर और गुड़ स्वयं है। वह चीज़ स्वयं से है। यहाँ होता है मीठे का ज्ञान। तो कहते हैं कि वह ज्ञान की पर्याय इससे है और मीठे की पर्याय उससे है। दोनों अपने-अपने कारण से है। आहाहा! अभी तो मीठा मीठे की अवस्था के उत्पाद को धारता है, यहाँ ज्ञान की पर्याय जाने कि ज्ञान उसे धारता है। उसके कारण नहीं और उसके कारण वहाँ नहीं। ऐसा तो अभी स्व-पर का भेद होना, वह तो विकल्पात्मक ज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... बात बहुत बड़ी हो, कोई छोटी बात नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहुत छोटी है अभी। बापू! चारित्र की बातें, वे तो... आहाहा! ऐसे चक्रवर्ती के राजकुंवर, जिन्हें एक-एक... आता है चक्रवर्ती, भरत चक्रवर्ती का पुत्र अर्ककीर्ति। भरत चक्रवर्ती का एक अर्ककीर्ति राजकुमार है। भरत चक्रवर्ती कहते हैं कि यह राजकुमार यदि दो घड़ी कोर्ट में आयेगा तो इसे एक करोड़

स्वर्ण मोहर दूँगा। एक दो घड़ी कोर्ट में बैठेगा, बस। कोर्ट समझे न? यह राजसभा-दरबार। वे तो बड़े चक्रवर्ती हैं न! राजकुमार उस भव में मोक्ष जानेवाला है। अन्तिम शरीर अर्ककीर्ति राजकुमार है भरत का।

यह हमारी राजसभा में सिंहासन में आकर दो घड़ी बैठेगा तो सभा की शोभा है। तो उसे इस राजकुमार को एक करोड़ स्वर्ण मोहर दूँगा। ऐसी-ऐसी इक्कीस करोड़ स्वर्ण मोहर इकट्ठी हुई। अन्त में जब वैराग्य हुआ, तब छोड़कर चल निकले। हम इसमें नहीं, हम हैं, वहाँ यह नहीं। शान्तिभाई! हम जहाँ हैं, वहाँ यह नहीं और यह है, वहाँ हम नहीं। पिताजी ने यह पैसे क्यों दिये थे? किसलिए? हम सुन्दर और रूपवान और राजकुमार जरा बैठें तो शोभे। किसकी सभा? किसकी शोभा? हम तो हमारे में हैं। वह उसमें है। उस चीज़ में हमारी अस्ति नहीं। हमारी अस्ति विकार के परिणाम में नहीं। जो उसकी अस्ति में हो, उसमें नहीं तो इसमें हम कहाँ हैं? निकल गये। समझ में आया? निकले हुए तो थे। ऐसे संयोग में से पृथक् पड़े, ऐसा दुनिया को दिखाई दिया। राग में से पृथक् पड़े, ऐसा उसे दिखाई दिया। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, कल नहीं कहा था? राजकुमार का। रामचन्द्रजी के लव और कुश ऐसे एकदम जवान जैसे चरमशरीरी। अन्तिम शरीर। पावागढ़ से मोक्ष गये हैं, पावागढ़ है न? आज्ञा माँगते हैं, पिताजी! हम मुनि होंगे। अरे! इन काका की यह दशा! लक्ष्मण, वासुदेव जिनके एक बाण से, एक चक्र से रावण मरा, वे स्वयं मर गये। अरर! यह दशा! और हमारे पिताजी छह-छह महीने कन्धे पर लेकर चलते हैं। अरे! यह दशा! हम हमारा आत्मा सम्हालने जाते हैं, हों! उस अन्तर के स्वभाव में अपनी अस्ति पहले मानी थी। पर की अस्ति, वह मैं नहीं और राग भी मेरी अस्ति, वह मेरे कारण से थी, उसे अब छोड़ दिया। प्रभु! मेरी अस्ति में वह राग हो? मैं तो अस्तिवाला चैतन्य आनन्दकन्द का तत्त्व मेरा स्वभाव है। उसमें तो यह नहीं, परन्तु राग भी नहीं। अन्तर में प्रविष्ट हुए, दृष्टि करके स्थिर हुए, इसका नाम संयम कहलाता है। समझ में आया? राजकुमार ऐसे देखो तो मणिरत्न के पुतले हों! अरे! यह तो देह है और मिट्टी है और उस मिट्टी में हम कहाँ हैं और हम हैं, वहाँ मिट्टी हमको स्पर्शती नहीं। शान्तिभाई! आत्मा को यह मिट्टी स्पर्शती है? यह तो भिन्न चीज़ है। अन्दर का अस्तित्व आत्मा का

आत्मा में है, उसका अस्तित्व जड़ का जड़ में है। दोनों के अस्तित्व को कोई गाँव-सीमा में कोई तुलना नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न कि माना है, वह तेरी भ्रमणा है। इसलिए तो बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? लो! आज और इसमें यही बोल आया मौके से, हों!

गुण-पर्याय के बिना कोई नहीं हैं। उसमें भाई मुश्किल से पहले-पहले आये। आज और सूक्ष्म बात आयी। भाई पूनमचन्दभाई के भागीदार। भाई आये हैं, दमण से आये हैं। वहाँ गये थे न। पूनमचन्दभाई के भागीदार थे। वहाँ लोग कहते थे, पूनमचन्द के पास तो दो, तीन करोड़ हुए परन्तु इनके भागीदार भी इतने लाख हो गये। ऐसा लोग बातें दुनिया धूल की करे और मनुष्य। ... बाहर उतरे थे न? भाई! क्या कहलाता है वह मकान? डाक बंगला। वहाँ भाई आये थे न, सामने आये थे। लोग बातें करते कि यह पूनमचन्द कैसा? दुनिया में यह एक महिमा चलती है। इसके पास तो दो-ढाई करोड़ हो गये परन्तु इनके भागीदार के पास पन्द्रह-पन्द्रह लाख रुपये। वापी में। ऐसी यहाँ बातें करते। दुनिया के लोग। अरे! आत्मा के लक्ष्य बिना कोई लाखपति नहीं होता। समझ में आया? वह लक्ष्मी अपनी अपने में पड़ी है, उसका लक्ष्य करे तो लक्ष्यपति होता है, बाकी दुर्लक्ष्यपति है। वास्तविक बात है? कहो, समझ में आया इसमें?

अथवा सब ही द्रव्य सप्तभंगीस्वरूप हैं,... अब अस्ति-नास्ति की। क्या कहा? प्रत्येक वस्तु है, ऐसा सिद्ध किया। है। है, उसकी बात होती है न? अनन्त है। उस है तीन अंश होते हैं समय-समय में। नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था बदले और (टिकी रहे)। एक समय में, हों! सेकेण्ड का असंख्य भाग। तीसरी बात, इसने गुण-पर्याय को धारा है। इस प्रत्येक वस्तु ने इसकी शक्ति और अवस्था को धारा है। अब कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु स्वयं से है और पर से नहीं। यह सप्तभंगी है। उसमें आ गयी थी। अस्तिपने आया था। अब उसमें एक में अस्तिपने में दूसरा नहीं, ऐसा यहाँ आया है। समझ में आया? उसमें अस्तिपना सिद्ध किया था। द्रव्य, गुण, पर्यायपने है, अस्तिपने है, उत्पाद-व्यय-ध्रुवपने है इतना। अब सप्तभंगी। अर्थात् प्रत्येक आत्मा अपने

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है और पर रजकण के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। अर्थात् क्या और? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अर्थात् क्या, यह सुना न हो। समझ में आया?

देखो! यह, यह लकड़ी है न? देखो! लकड़ी। सह सूखड़ की लकड़ी है। यह वस्तु कहलाती है, वस्तु। उसका क्षेत्र यह चौड़ा कहलाता है इतना। इसकी शक्तियाँ हैं सुगन्ध आदि, वह इसका भाव कहलाता है और इसकी मुलायम अवस्था है, ऐसे भारवाली अवस्था, वह अवस्था कहलाती है, वह काल कहलाता है। प्रत्येक वस्तु के चार भाग होते हैं। वस्तु, उसका क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई, उसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण, उसकी वर्तमान हालत, उसे काल कहते हैं। तो प्रत्येक वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स्वयं से है और इस अँगुली से यह नहीं। अँगुली का द्रव्य अर्थात् यह, क्षेत्र चौड़ाई, अवस्था यह दिखती है वह और गुण इसके रंग, गन्ध। यह लकड़ी, उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। और इसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से वह स्वयं से है।

इसी प्रकार आत्मा अपना द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् शरीर प्रमाण की चौड़ाई; भाव अर्थात् उसकी त्रिकाली शक्तियाँ; काल अर्थात् उसकी वर्तमान दशा। वह स्वयं आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। यह रजकण और शरीर अर्थात् कर्म के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से वह नहीं। कहो, खोडीदासभाई! उसमें एक अस्ति सिद्ध की और अब उसमें यह नहीं, इसमें वह नहीं, ऐसा (सिद्ध करते हैं)। आहाहा! '**थक्कउ**'। यही है न, इसमें से निकाला। आहाहा! गजब बात!

यह होशियारी के कारण पैसा और पैसे के कारण होशियारी, ऐसा होगा या नहीं? मानते थे? यहाँ प्रत्येक वस्तु उसके कारण से है, किसी के कारण से नहीं। यह आवाज उठती है न? वह आवाज रजकणों की अवस्था है, इसलिए उतरती है न? यह उतरती है न रिकॉर्डिंग में? यह कहीं आत्मा उतरे? रिकॉर्डिंग में उतरता है यह। यह रजकणों की ध्वनि है। वे रजकण, द्रव्य है। उनमें रंग, गन्ध गुण है और यह अवस्था उसकी भाषारूप होती है, वह अवस्था है। उनकी—रजकणों की जो चौड़ाई है, जितने में रहते हैं, वह उनका क्षेत्र है। इन भाषा के रजकणों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भाषा में है, आत्मा के कारण नहीं। आत्मा के कारण भाषा नहीं होती। अरे! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : दुनिया से तो अलग चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया तो पागल हो तो उससे अलग ही होगा न! समझ में आया? एक आत्मा स्वयं है, वह दूसरे आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। कहो, पिता का आत्मा और पुत्र का आत्मा, दो आत्मा भिन्न। भिन्न होंगे?

मुमुक्षु : अत्यन्त भिन्न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे आनेवाले हैं। एक-दो दिन में आनेवाले हैं। आनेवाले हैं? भाई, प्रवीणभाई! सेठ आनेवाले हैं। भाई कहते थे।

पिता का आत्मा शरीर से भिन्न। वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और दूसरे का आत्मा उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। द्रव्य अर्थात् वस्तु; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; भाव अर्थात् गुण और काल अर्थात् उसकी अवस्था। उसमें वह और इसमें यह। उसमें यह नहीं और इसमें वह नहीं। बराबर होगा?

एक आत्मा में दूसरे आत्मा का भाव, क्षेत्र, काल, और द्रव्य नहीं है। दूसरे आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में यह आत्मा नहीं है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं। अब एक रजकण। एक रजकण है न? अन्तिम पॉईन्ट। इस टुकड़े के टुकड़े-टुकड़े करो तो इसके टुकड़े होते हैं, इतने टुकड़े हो कि अन्तिम एक सूक्ष्म रजकण रहे, उसमें चार बोल हैं। यह रजकण स्वयं द्रव्य है, द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसकी चौड़ाई उसका क्षेत्र। उसे रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, वे गुण। उसकी अवस्था रूपान्तर होना, उसकी पर्याय। वह रजकण अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। दूसरे रजकण के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के कारण वह रजकण नहीं। समझ में आया?

यह ऐसा सत् है, उसे समझने की दरकार नहीं होती, सुनने को नहीं मिलता। यह करो और यह करो, दया पालो और भक्ति करो, यह पैसा दो और दान करो। कहते हैं कि वह चीज़ तेरी नहीं और उसमें तुझे कर... कर... करना है, इसका नाम भ्रमणा है। जिसमें तू नहीं, उसका तू करे, इसका कर, इसकी दया पाल, इसका ऐसा कर, इसका ऐसा कर, वह तो तुझमें नहीं, उसका कर, यह तो असत्य दृष्टि हुई। क्या हो?

मुमुक्षु : परोपकारी तो कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन परोपकार करनेवाला है? किसने किया है परोपकार?

मुमुक्षु : सेठिया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी करता नहीं सेठिया। और सेठिया किसे कहना? उसका आत्मा उसमें रहा हुआ, सेठिया का आत्मा शरीर में रहा है, शरीर के रजकणों के कारण? उसमें रहा हो तो आत्मा जाये तो साथ में शरीर भी जाना चाहिए। शरीर शरीर में, आत्मा आत्मा में है। दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ें हैं। अभी भिन्न, त्रिकाल भिन्न है। बराबर है? शान्तिभाई! आहाहा!

मरते समय होता है... हाय... हाय...! इंजेक्शन-विंजेक्शन लगावे सब करके फिर उसमें निश्चित हो कि अब नहीं रहेगा। क्योंकि अब घड़ी, दो घड़ी है। ऐसा बोले नहीं। परन्तु (ऐसा कहे), अब रहने दो, अब देखो। अर्थात् क्या? कि अब मरने दो, ऐसा। अब देह छूट जाने की तैयारी है। बापू! छूटी ही पड़ी है। ऐसे भिन्न पड़े, तब इसे लगा कि, यह छूटा। बाकी भिन्न-भिन्न है, कब इकट्ठे हुए तीन काल में। आहाहा! भ्रमणा।

यहाँ तो आचार्य इतना कहना चाहते हैं कि प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण स्वयं से है और पर से नहीं, इतना अभी ज्ञान अनन्त का करे तो वह व्यवहारिक ज्ञान कहलाता है। ओहोहो! अभी व्यवहारिक सम्यक्, व्यवहार सम्यक् कहलाता है, निश्चय सम्यक् नहीं। आहाहा! अन्तःतत्त्व और बहिरतत्त्व सब, इन दो का ज्ञान भिन्न करे तो भी वह व्यवहार समकित है। मेरा अन्तःतत्त्व परमात्मा भिन्न और यह बहिरतत्त्व सब भिन्न। इनका भेदज्ञान करे तो भी वह व्यवहार विकल्प व्यवहारिक ज्ञान, व्यवहारिक श्रद्धा है।

अकेला भगवान अखण्ड आनन्द का कन्द सत्, महासत्, ध्रुव सत्, उसकी अन्तर्दृष्टि करे, तब उस अन्तर्दृष्टि को सम्यग्दर्शन और निश्चय दर्शन कहा जाता है। कहो, इसके अतिरिक्त का यह सब ज्ञान, वह व्यवहारिक ज्ञान है। जिसके व्यवहार ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे विपरीत... विपरीत... विपरीत... अरे! गजब करते हैं न अभी तो। इसका कोई एक बोल लो। सत् है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव से हुए। पूरी हो गयी बात। किसी के कारण कोई है, समय-समय में किसी के कारण कोई है, ऐसा नहीं रहता। अकेला पर से अनन्त-अनन्त ऐसा का ऐसा भिन्न काम कर रहे हैं, ऐसा अभी ज्ञान करे, तब उसे

व्यवहारिक सच्चा ज्ञान हुआ कहलाये। परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है। इसलिए दो के दो यह और यह, यह और यह ऐसा व्यवहारिक ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

सब ही द्रव्य सप्तभंगीस्वरूप हैं, ऐसा द्रव्यों का स्वरूप... देखो! सभी द्रव्य, हों! रजकण-रजकण। ऐसे सात बोल हैं। स्व से है और पर से नहीं। अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, इसमें सात बोल हैं। सूक्ष्म बात है। परन्तु यह इतने में समाहित किया। है। **जो निःसन्देह जाने, आप और पर को पहचाने, ऐसा जो आत्मा का भाव (परिणाम) वह सम्यग्ज्ञान है।** व्यवहार है। समझ में आया? अभी व्यवहार सच्चा कहलाये, शान्तिभाई! तुम्हारे व्यवहार की बात नहीं, हों! यह। आहाहा! इसमें से आत्मा को छाँट लेना। शुद्ध चिदानन्दस्वरूप वह ज्ञेय और ज्ञान दो, ऐसा भी लक्ष्य छोड़कर अकेले आत्मा को ज्ञेय बनाकर दृष्टि का अनुभव करना, इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय ज्ञान है। यह आत्मा के हित का कारण और मोक्ष का कारण है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २४९२, पौष कृष्ण ११, सोमवार
दिनांक-०३-०१-१९६६, गाथा-२९ से ३१, प्रवचन-९३

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की २९वीं गाथा है। यहाँ तक आया, देखो! जगत के जो छह द्रव्य हैं, उनके स्वरूप को निःसन्देह जाने। जैसा छह द्रव्य का उत्पाद-व्यय-ध्रुव, गुण-पर्यायरूप या सत्तारूप या सप्तभंगीरूप... कल आया था न? **ऐसा द्रव्यों का स्वरूप जो निःसन्देह जाने,...** व्यवहार से अभी, हों! यह व्यवहार की बात है। प्रत्येक द्रव्य अपनी अवस्था से उपजे, दूसरे की अवस्था से न उपजे, ऐसा हुआ न सप्तभंगी में? प्रत्येक द्रव्य अपनी वर्तमान पर्याय जो थी, उसका नाश करके नयी पर्यायरूप उत्पन्न हो और ध्रुवरूप से कायम रहे। ऐसे छह द्रव्य का भगवान केवली ने स्वरूप देखा है। ऐसे वे हैं। ऐसा उन्हें बराबर जाने।

आप और पर को पहचाने,... फिर स्वयं आत्मा और परवस्तुएँ, उनका ज्ञान बराबर करे, वह भी व्यवहार ज्ञान है। दो हुए न? आत्मा वह है ज्ञानानन्द शुद्ध, रागादि पर और शरीरादि परद्रव्य, उनका ज्ञान दोनों का विकल्पवाला ज्ञान, उसे यहाँ व्यवहार ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? **ऐसा जो आत्मा का भाव (परिणाम)...** यह व्यवहार परिणाम। निश्चय परिणाम तो साथ में है। ऐसे व्यवहार परिणाम का सम्यग्ज्ञान व्यवहार। निश्चय के अन्तर वेदन का ज्ञान, वह निश्चय परिणाम। यह मुख्यरूप से अभी व्यवहार की बात है।

सारांश यह है कि व्यवहारनयकर विकल्पसहित अवस्था में तत्त्व के विचार के समय आप और पर का जानपना ज्ञान कहा है,... पहला विकल्प—राग की अवस्था के विचार के काल में यह आत्मा है, यह कर्म, शरीर आदि पर है, ऐसा जो रागवाला ज्ञान, उसकी पहले विचारश्रेणी में व्यवहार का ज्ञान पहला कहा। पहला कहा अर्थात् यहाँ कहा, ऐसा। होते तो साथ में हैं। इसमें ज्ञान की बात है। आत्मा अखण्ड ज्ञान चैतन्यमूर्ति है और शरीर, कर्म आदि पर है। दो का बराबर ज्ञान, उसे व्यवहार ज्ञान, रागमिश्रित ज्ञान, पुण्यबन्ध के कारणरूप ज्ञान, उसे व्यवहार ज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

और निश्चयनयकर वीतराग निर्विकल्प समाधिसमय... आत्मा अपने शुद्ध

चैतन्यस्वरूप की दृष्टि करके अन्तर ज्ञान में रमे, उस काल में, **पदार्थों का जानपना मुख्य नहीं लिया,...** यह छह द्रव्य का अथवा स्व-पर के भेद का ज्ञान वहाँ मुख्य नहीं है। वहाँ गौण हो गया। क्या और ? है न ? अन्दर गौण शब्द आगे है। गौणत्व है न ? इसलिए यहाँ मुख्य कहा। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप की रागरहित, ऐसा अन्तर का स्वसंवेदनज्ञान, शान्ति का अन्तर ज्ञान, वह निश्चयज्ञान, सच्चा ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग। उसके अन्दर में छह द्रव्य का ज्ञान या स्व-पर का ज्ञान इसमें मुख्य नहीं है। उसमें मुख्य तो अपना निर्विकल्प ज्ञानवेदन, वह मुख्य है। समझ में आया ?

मुख्य नहीं लिया,... उसमें मुख्य इसे नहीं लिया। व्यवहार के विचार काल में उसकी मुख्यता। आत्मा ज्ञानसूर्य चिदानन्दस्वरूप की अन्तर एकाग्रता के काल में छह द्रव्य और स्व-पर के ज्ञान की मुख्यता नहीं होती, परन्तु विकल्प अवस्था में, विचार की अवस्था हो, तब उन छह द्रव्य का ज्ञान और स्व-पर का ज्ञान उसे मुख्य है। निर्विकल्प ज्ञान वहाँ गौण हो गया है। और अन्तर के निर्विकल्प ज्ञान में आत्मा का ज्ञान मुख्य ज्ञान हुआ है, वह ज्ञान गौण हो गया है, मुख्य नहीं। समझ में आया ? अरे ! ऐसी बात है। ऐसा धर्म समझना और यह करना और... क्या बाधा है ? ऐई ! जमुभाई कहते हैं। बाधा कुछ नहीं परन्तु इसे कठिन लगता है।

केवल स्वसंवेदनज्ञान ही निश्चयसम्यग्ज्ञान है। देखो ! सच्चा ज्ञान तो आत्मा ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्य है, उसका अन्तर में ज्ञान, उसे सच्चा ज्ञान कहा जाता है। स्व-पर का और छह द्रव्य का ज्ञान, वह उपचारिक व्यवहारिक ज्ञान कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? यहाँ तो अभी छह द्रव्य क्या, उसके ज्ञान का ठिकाना नहीं होता और हम धर्म करते हैं। धर्म क्या करते हैं ? भान नहीं अभी धर्म और धर्म कहाँ से किया ? क्यों, जुगराजजी !

मुमुक्षु : हमारे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हम गृहस्थ, हमारे तो जो हो वह सच्चा पकड़ लेना, खोटा छोड़ देना। उसको कठिन पड़े।

कहते हैं कि भाई ! एक बार समझ तो सही कि यह आत्मा अपने स्वरूप में शुद्ध

चिदानन्द है, ऐसा अन्तर का ज्ञान हुआ, उसे सच्चा ज्ञान कहते हैं। वही वास्तविक मोक्ष का मार्ग। मोक्ष और मार्ग का ज्ञान। और उस काल में जब अन्तर होता है, तब मुख्य छह द्रव्य का ज्ञान या स्व-पर का ज्ञान वहाँ मुख्य नहीं होता, वहाँ गौण हो गया है। और जब विचारकाल में वर्तता हो, तब अन्तर का ज्ञान हो, परन्तु वह गौण होता है, वह स्व-पर और छह द्रव्य का ज्ञान उसे मुख्य होता है, ऐसी बात की है यहाँ। समझ में आया?

व्यवहारसम्यग्ज्ञान तो परम्पराय मोक्ष का कारण है,... लो। यह व्यवहार छह द्रव्य का बराबर वास्तविक जैसा है, वैसा ज्ञान और स्व-पर का भेदवाला, विकल्पवाला ज्ञान, वह परम्परा मोक्ष का कारण है। अर्थात् कि उसे छोड़कर (आत्मस्वरूप में) स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी। समझ में आया? यह छह द्रव्य का ज्ञान और स्व-पर का ज्ञान, ऐसा व्यवहार ज्ञान, उसे यहाँ निश्चय ज्ञान में निमित्तरूप से कहा गया है। व्यवहाररूप से कहो, निमित्तरूप से कहो, उपचाररूप से कहो या गौणरूप से कहो। समझ में आया? और आत्मा का ज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, चैतन्य का ज्ञान अनुभव, वह ज्ञान, मोक्ष के मार्ग के लिये मुख्य है। मुख्य है, यथार्थ है, निश्चय है, साक्षात् निर्जरा का और मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

और निश्चयसम्यग्ज्ञान साक्षात् मोक्ष का कारण है। देखो! दोनों आये। व्यवहार सम्यग्ज्ञान परम्परा (कारण है)। क्योंकि वह राग है न, वह विकल्पात्मक ज्ञान है। इसलिए वह छूटकर फिर स्थिर होगा, इस अपेक्षा से उसे व्यवहार से, व्यवहारनय से परम्परा कारण कहा है। वह व्यवहारनय से व्यवहार ज्ञान को परम्परा कारण (कहा है)। वापस दो, ऐसा। निश्चयनय से ऐसा नहीं। व्यवहारनय से, व्यवहारज्ञान परम्परा कारण कहा है। समझ में आया? निश्चय-सत्य नय से साक्षात् आत्मा का ज्ञान, साक्षात् मोक्ष का कारण है। यह २९ गाथा हुई। ३०वीं।

गाथा - ३०

अथ स्वपरद्रव्यं ज्ञात्वा रागादिरूपपरद्रव्यविषयसंकल्पविकल्पत्यागेन स्वस्वरूपे अवस्थानं ज्ञानिनां चारित्रमिति प्रतिपादयति –

१५३) जाणवि मण्णवि अप्पु परु जो पर-भाउ चएइ।
सो णिउ सुद्धउ भावडउ णाणिहिं चरणु हवेइ।।३०।।

ज्ञात्वा मत्वा आत्मानं परं यः परभावं त्यजति।
स निजः शुद्धः भावः ज्ञानिनां चरणं भवति।।३०।।

जाणवि इत्यादि। जाणवि सम्यग्ज्ञानेन ज्ञात्वा न केवलं ज्ञात्वा मण्णवि तत्त्वार्थश्रद्धान-लक्षणपरिणामेन मत्वा श्रद्धाय। कम्। अप्पु परु आत्मानं च परं च जो यः कर्ता परभाउ परभावं चएइ त्यजति सो स पूर्वोक्तः णिउ निजः सुद्धउ भावडउ शुद्धो भावो णाणिहिं चरणु हवेइ ज्ञानिनां पुरुषाणां चरणं भवतीति। तद्यथा। वीतरागसहजानन्दैकस्वभावं स्वद्रव्यं तद्विपरीतं परद्रव्यं च संशयविपर्ययानध्यवसायरहितेन ज्ञानेन पूर्वं ज्ञात्वा शङ्कादिदोषरहितेन सम्यक्त्व-परिणामेन श्रद्धाय च यः कर्ता मायामिथ्यानिदानशल्यप्रभृतिसमस्तचिन्ताजालत्यागेन निजशुद्धात्मस्वरूपे परमानन्दसुखरसास्वादतृप्तो भूत्वा तिष्ठति स पुरुष एवाभेदेन निश्चयचारित्रं भवतीति भावार्थः।।३०।। एवं मोक्षमोक्षफलमोक्षमार्गादिप्रतिपादक द्वितीयमहाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं षड्द्रव्यश्रद्धानलक्षणव्यवहारसम्यक्त्वव्याख्यान-मुख्यत्वेन सूत्राणि चतुर्दश, सम्यग्ज्ञानचारित्रमुख्यत्वेन सूत्रद्वयमिति समुदायेनैकोनविंशतिसूत्रस्थलं समाप्तम्।

आगे निज और परद्रव्य को जानकर रागादिरूप जो परद्रव्य में संकल्प-विकल्प हैं, उनके त्याग से जो निजस्वरूप में निश्चलता होती है, वह ज्ञानी जीवों के सम्यक्चारित्र है, ऐसा कहते हैं –

जो निज पर को जाने माने पर-भावों का त्याग करे।
शुद्धभावमय चरण ज्ञानि का यह सम्यक् चारित्र कहें।।३०।।

अन्वयार्थ :- सम्यग्ज्ञान से [आत्मानं च परं] आपको और पर को [ज्ञात्वा] जानकर और सम्यग्दर्शन से [मत्वा] आप और पर की प्रतीति करके [यः] जो [परभावं] परभाव को [त्यजति] छोड़ता है [सः] वह [निजः शुद्धः भावः] आत्मा का निज शुद्ध

भाव [ज्ञानिनां] ज्ञानी पुरुषों के [चरणं] चारित्र [भवति] होता है।

भावार्थ :- वीतराग सहजानंद अद्वितीय स्वभाव जो आत्मद्रव्य उससे विपरीत पुद्गलादि परद्रव्यों को सम्यग्ज्ञान से पहले तो जानें, वह सम्यग्ज्ञान संशय, विमोह और विभ्रम इन तीनों से रहित है। तथा शंकादि दोषों से रहित जो सम्यग्दर्शन है, उससे आप और पर की श्रद्धा करे, अच्छी तरह जानके प्रतीति करे, और माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्यों को आदि लेकर समस्त चिंता-समूह के त्याग से निज शुद्धात्मस्वरूप में तिष्ठे है, वह परम आनंद अतीन्द्रिय सुखरस के आस्वाद से तृप्त हुआ पुरुष ही अभेदनय से निश्चयचारित्र है।।३०।।

इस प्रकार मोक्ष, मोक्ष का फल, मोक्ष का मार्ग इनको कहनेवाले दूसरे महाधिकार में निश्चय व्यवहाररुप निर्वाण के पंथ की मुख्यता से तीन दोहों में व्याख्यान किया, चौदह दोहों में छह द्रव्य की श्रद्धारूप व्यवहारसम्यक्त्व का व्याख्यान किया, तथा दो दोहों में सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र का मुख्यता से वर्णन किया। इस प्रकार उन्नीस दोहों का स्थल पूरा हुआ।

गाथा-३० पर प्रवचन

आगे निज और परद्रव्य को जानकर रागादिरूप जो परद्रव्य में संकल्प-विकल्प हैं, उनके त्याग से जो निजस्वरूप में निश्चलता है, वह ज्ञानी जीवों के सम्यक्चारित्र है, ऐसा कहते हैं:—अब चारित्र की व्याख्या करते हैं।

१५३) जाणवि मण्णवि अप्पु परु जो पर-भाउ चएइ।
सो णिउ सुद्धउ भावडउ णाणिहिं चरणु हवेइ ।।३० ।।

अन्वयार्थः—सम्यग्ज्ञान से आपको और पर को जानकर... यह भी व्यवहारज्ञान। **और सम्यग्दर्शन से आप और पर की प्रतीति करके...** स्वयं आत्मा और पर की, यह भी व्यवहारसम्यग्दर्शन द्वारा पहले प्रतीति करके, पश्चात् **जो परभाव को छोड़ता है...** पश्चात् सब विकल्पों को छोड़कर, **वह आत्मा का निज शुद्धभाव ज्ञानी पुरुषों के चारित्र होता है।** स्वरूप में आत्मा के आनन्द में स्थिर होता है, तब उसे चारित्र कहा जाता है। सच्चा चारित्र वह है। समझ में आया?

वीतराग सहजानन्द अद्वितीय स्वभाव जो आत्मद्रव्य... आत्मा की व्याख्या की। कैसा है आत्मा? रागरहित सहज आनन्द अजोड़ स्वभाव ऐसा जो आत्मपदार्थ, **उससे विपरीत पुद्गलादि परद्रव्यों को सम्यग्ज्ञान से पहले तो जानें,...** ऐसा। पूर्व में शब्द पड़ा है न! समझ में आया? '**पूर्वं ज्ञात्वा**' है न? अन्दर है। संस्कृत की छठवीं लाईन है। क्या कहते हैं? यह आत्मा परम आनन्दस्वभाव वीतरागस्वरूप आत्मा अभी है। उससे छह द्रव्य का ज्ञान परपदार्थ विपरीत ज्ञान है। उससे विपरीत सब पाँच द्रव्य हैं। छह यह। आत्मा से सब छहों विपरीत हैं। दूसरे भिन्न हैं या नहीं? दूसरे आत्मायें, पुद्गल सब भिन्न हैं। **विपरीत पुद्गलादि परद्रव्यों के...** भगवान भी आत्मा से विपरीत है। इस आत्मा से भगवान सिद्ध भी विपरीत—दूसरी जाति के हैं, इस जाति के कहाँ हैं वे? समझ में आया?

वीतराग सहजानन्द अजोड़ स्वभाव एक आत्मा, उससे **विपरीत पुद्गलादि परद्रव्यों को सम्यग्ज्ञान से पहले तो जानें,...** छह द्रव्य को अपने अतिरिक्त के सभी। अनन्त निगोद, अनन्त सिद्ध, केवली, तीर्थंकर, पुद्गलादि परमाणु, स्कन्ध सबको। **वह सम्यग्ज्ञान संशय, विमोह और विभ्रम इन तीनों से रहित है।** यह अभी व्यवहारज्ञान, हों! व्यवहार सम्यग्ज्ञान भी संशयरहित, विमोहरहित, विभ्रमरहित है, भ्रमणारहित है। समझ में आया? **तथा शंकादि दोषों से रहित जो सम्यग्दर्शन है,...** वह व्यवहार है। **उससे आप और पर की श्रद्धा करे,...** उससे व्यवहार सम्यग्दर्शन द्वारा भी यह आत्मा है और यह पर है, ऐसी श्रद्धा करता है, वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन शुभराग है, शुभ विकल्प है। समझ में आया? आहाहा! **अच्छी तरह जान के प्रतीति करे,...** स्व और पर को बराबर जानकर श्रद्धा करे। वह भी अभी शुभ विकल्परूप व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

और माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्यों को आदि लेकर... अब निश्चयचारित्र कहते हैं। कपट, मिथ्या और निदान तीन शल्यों को छोड़कर। **समस्त चिन्ता-समूह के त्याग से...** सब विकल्पों का त्याग। **निज शुद्धात्मस्वरूप में तिष्ठे है,...** अपना आनन्द स्वभाव, जो पहले कहा वीतराग सहजानन्दस्वभाव, उसमें जो स्थिर होता है, **वह परम आनन्द अतीन्द्रिय सुखरस के आस्वाद से तृप्त हुआ...** इसका नाम चारित्र है। यह आत्मा

के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में तृप्त हो जाता है। भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द है आत्मा में, अतीन्द्रिय आनन्द जैसा सिद्ध को—परमात्मा को प्रगट आनन्द है, ऐसा ही यह आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की पहले श्रद्धा, ज्ञान किया है, पश्चात् स्वरूप में स्थिर होता है, लीन होता है। किस प्रकार लीन होता है?

परम आनन्द अतीन्द्रिय सुखरस के आस्वाद से तृप्त... आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव से ऐसे तृप्त-तृप्त हुआ है। उसे चारित्र कहते हैं। भगवान उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? यह चारित्र मुक्ति का कारण है। कपट, कपट। यह कपट करते हैं न? यह जगत में नहीं करते? यह झूठ बोलना, वह करना, कुछ हो और कुछ बताना। माया में नहीं करते? यह समुच्चय बात है। समुच्चय बात। व्रत है सही न? निशल्यो व्रती है न, इसलिए बताया। शल्य, फिर माया का शल्य नहीं होता, मिथ्यात्व का शल्य नहीं होता और निदान का नहीं होता। सूक्ष्म अन्दर हो, वह न हो फिर। स्वरूप में स्थिर हो। चारित्र उसे कहते हैं कि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन से तृप्त, तृप्त होता है। ऐसी दशा को चारित्र कहते हैं। कहो, यह चारित्र की व्याख्या! समझ में आया?

पुरुष ही अभेदनय से निश्चयचारित्र है। ऐसा कहते हैं। यह आत्मा ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा तो है। आत्मा अर्थात् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति। शरीर, वाणी, मन, कर्म तो पर। अन्दर दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव हों, वह तो विकार। विकाररहित वह चीज़ निर्विकारी आनन्द की पुतली आत्मा है। अरेरे! आत्मा कौन, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? ऐसे आत्मा का पहले सम्यग्दर्शन हुआ है, सम्यग्ज्ञान अन्तर का हुआ है। अब यह व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि के या व्यवहार ज्ञान के या विकल्प आदि छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है। अतीन्द्रिय आनन्द की लहजत में मौज मनाता है, तृप्त होता है। ऐसे पुरुष को निश्चय चारित्र (होता है)। वह पुरुष ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। वह आत्मा ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। अभेद है न! समझ में आया? यह आत्मा का चारित्र, ऐसा नहीं परन्तु यह आत्मा ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन मार्ग!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ, जिन्होंने इस जगत में केवलज्ञान

से छह द्रव्य देखे। उन छह द्रव्यों में छहों द्रव्य का स्वरूप पहले बराबर जैसा है, वैसा होता जाने और उसका ज्ञान करे, उसकी श्रद्धा करे। समझ में आया? यह सब द्रव्य, भगवान आत्मा—यह आत्मा वीतरागस्वभाव से अभेद स्वरूप प्रभु आत्मा का, उससे सब द्रव्य भिन्न। सिद्ध भगवान हो या अरिहन्त हो या तीर्थंकर (हो), वे भी इस द्रव्य से भिन्न। उनका सबका सच्चा ज्ञान, सच्ची श्रद्धा और आत्मा भी उनसे भिन्न है, ऐसा उसका ज्ञान और सच्ची श्रद्धा है। ऐसे विकल्पवाली श्रद्धा को, ज्ञान को, व्यवहार ज्ञान को, व्यवहार श्रद्धा कहते हैं। (वह) पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? उससे निकलकर विकल्प से, राग से, शुभउपयोग से छूटकर अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, उसका ज्ञान स्वसंवेदन, उसकी प्रतीति निर्विकल्प, उसकी रमणता आनन्द में तृप्त-तृप्त होना, इसका नाम चारित्र है। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता हुई, वह पुरुष ही चारित्र है, ऐसा कहते हैं। कठिन बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तृप्ति। छठवें गुणस्थान की तृप्ति, वह उसकी उस प्रकार की तृप्ति। चौथे में थोड़ी तृप्ति होती है, पाँचवें में उससे अधिक, छठवें में उससे ऊँची। सिद्ध को अनन्त गुणी तृप्ति पूर्ण। समझ में आया? यहाँ चारित्र जितनी तृप्ति लेनी है न। सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली दशा होने पर, धर्म की पहली दशा होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद थोड़ा होता है। श्रद्धा, ज्ञान में उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद थोड़ा होता है। पाँचवें गुणस्थान में जब श्रावक होता है, सच्चा श्रावक, हों! यह वाड़ा की बात नहीं। तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का अंश विशेष बढ़ता है, शान्ति बढ़ती है। विकल्प भाव आदि है। और छठवें में जाते हैं, तब चारित्र और सातवें में जाये तब चारित्र विशेष तृप्त-तृप्त हो जाता है। बहुत शान्ति और बहुत आनन्द होता है। उसकी यह बात अभी चलती है। समझ में आया?

एक ओर जब बात चले, तब ऐसा लिया जाता है कि सम्यग्दृष्टि नरक में पड़ा है, तथापि बाह्य नारककृत दुःख भोगत, अन्तर सुख में गटागटी। वह सम्यग्दृष्टि नरक में हो, नारकी में अभी श्रेणिकराजा नरक में है। पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में है। तो भी उन्हें आनन्द की मुख्यता लेकर कहते हैं कि आनन्द

में गटागटी है, आंशिक। एक ओर मुनि हैं, वे आत्मा का ध्यान और ऐसा चारित्र करते हैं, उन्हें जरा राग रह जाता है और मरकर स्वर्ग में जाते हैं, तब वहाँ क्लेश भोगते हैं। यह राग की प्रधानता के कथन की बात है। आहाहा! किस अपेक्षा से बात है, यह समझना चाहिए न! समझ में आया? समझ में आया इसमें?

यह रास्ते में कहा था आज कि देखो! भाई! शास्त्र की शैली, कथनी देखो। एक तो सम्यग्दृष्टि बाह्यकृत भोगत दुःख अन्दर सुख में गटागटी। एक ओर छठवें गुणस्थान में ऐसा चारित्र, हों! भानवाले चारित्र से वह अन्दर में तृप्त। उसे जरा अभी राग रह गया है, पुण्य का बन्ध हो गया है, स्वर्ग में जाता है। वहाँ वह स्वर्ग में उस राग में इन्द्राणी के दुःख में वह सिंकता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छठेवाले नहीं, चौथेवाले हैं। मुझे तो यहाँ उस नरक के साथ मिलान करना था। नरकवाले को सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से सुख कहा और वह का वह सम्यग्दृष्टि भले यहाँ छठवें से चौथे में गया, वहाँ देवलोक में, परन्तु उसे जितना राग भाग इन्द्राणियाँ और अनुकूल सामग्री बहुत है, यहाँ तो धूल भी नहीं, वह अभी तो सब भिखारी हैं।

मुमुक्षु : करोड़पति....

पूज्य गुरुदेवश्री : करोड़पति भिखारी। अब करोड़पति की अभी कहाँ गिनती थी! सब राजा भिखारी है न! यह तो देव, जिसकी सामग्री का पार नहीं, वह भी अन्दर में परलक्ष्य से राग में सिंकता है, जलता है, दुःखी है। शशीभाई! क्या अपेक्षा लेनी (है यह) समझना चाहिए न! सम्यग्दर्शन में आत्मा का जितना भान होकर जितनी शान्ति प्रगटी है, उतनी शान्ति और वेदन आनन्द तो नरक में भी नारकी को है। समझ में आया? अज्ञानी जो है मिथ्यादृष्टि, जिसे पुण्य में मिठास है, पाप में मिठास है, पर सामग्री मेरी है, ऐसी मिथ्यादृष्टि है, वे तो अकेले कषाय से जलकर सुलग रहे हैं। समझ में आया?

तीन भाग करना है। लो। एक, जो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसकी मिठास और दृष्टि की खबर नहीं, उसे पुण्य-पाप के विकल्प वर्तें, उसमें मिठास

वर्तती है और यह सब मेरा और मैं उसका, ऐसा मिथ्यात्व भाव वर्तता है। वह मिथ्यादृष्टि भले राजा हो या बड़ा देव हो, मात्र कषाय की अग्नि से सिंककर जलता है। बाहर से भले ऐसा मानता हो कि हम सुखी हैं, मूढ़रूप से अन्दर दुःखी है।

धर्म का सम्यग्दर्शन आत्मभान हुआ, आत्मभान हुआ कि मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। दया, दान के विकल्प उठें, वह भी मेरी चीज़ नहीं, मुझे लाभदायक नहीं, मेरा भाव नहीं। शरीर, वाणी, मन तो कहीं रह गये धूल में, पर में। ऐसा जहाँ अन्तर में सम्यक् भान हुआ, उसे प्रतिकूल सामग्री का पार नहीं होता नरक में, नरक में पड़े हैं उन्हें, तथापि उसे स्वरूप के आनन्द के अंश का स्वाद है, उसकी मुख्यता से उसे ऐसा कहा गया है कि सुख को वेदता है। बाकी तीन कषाय जितने पड़े हैं, उतना उसे दुःख तो है। तब सम्यग्दृष्टि या मुनि होकर आत्मा के आनन्द के वेदन में अन्दर रहा, उसे भी जरा एक राग का कण बाकी रह गया और परमात्मदशा प्राप्त नहीं की, ऐसे दया, दान, व्रत के परिणाम के पुण्य से बन्धन हो गया। स्वरूप के आनन्द का भान है, रमणता थी परन्तु इतना विकल्प रह गया। उसका पुण्य बँधा, वह गया स्वर्ग में, वह स्वर्ग में राग के फलरूप से पुण्य की सामग्री में वह कषाय से सिंकता है, जलता है, वह अंगारों से जलता है। आहाहा! अन्तर आनन्द है, हों! सम्यग्दर्शन जितना। समझ में आया?

यह तो वीतराग के, ज्ञान के गज हैं। दुनिया के माप से यह आप आवे, ऐसा नहीं है। सच्ची बात है? रात्रि में कहाँ वापस खोटी हो जाती है? कहो, समझ में आया इसमें? यह आज फरियाद लेकर आये थे। परन्तु क्या है? घड़ीक में बदल जाते हैं। अन्दर खलबलाहट शुभाशुभ विकल्प और राग की वृत्ति। यह तो बहुत अशुभ की वृत्ति, इसलिए महा दुःख। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम, वह भी राग का मन्द भाव, वह भी कषाय है। आहाहा! बापू! भगवान आत्मा तो अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु स्वयं है। उसके विरुद्ध के जितने विकल्प पुण्य-पाप के उठें, वे सब दुःखरूप और आकुलता है। इसे कहाँ खबर है? क्या है और क्या होता है। बेखबर है न अनादि का। दुनिया में भले दुनिया चतुर कहे, शास्त्र कहते हैं कि उन्माद है, उन्माद।

रात्रि में कहा नहीं था कल? पागल। समाधिशतक में तो (ऐसा कहा), मुनि को

भी जितना राग का उदय उपदेश देने का विकल्प आवे, कहते हैं कि उतना वह उन्माद है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आनन्दस्वरूप में वेदते हैं, हों! महा गणधर जैसे, परन्तु वह विकल्प उठता है न! शास्त्र रचना करूँ। आहाहा! कहते हैं कि यह विकल्प है, उतना राग है, उतना चारित्रमोह का उन्माद है। ऐई!

उसमें जिसे यह शरीर, वाणी, मन और पैसा मुझे ठीक है और प्रतिकूल, वह मुझे ठीक नहीं और पुण्य-पाप के भाव, वे मेरे—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसके उन्माद का क्या कहना? उसके पागलपन का क्या कहना? वह तो पागल, गहल उन्माद में मच पड़े हैं, कहते हैं। जुगराजजी! यह सब पैसेवाले तुम दुःखी? ऐसा यहाँ कहते हैं। पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख, बीस-बीस लाख, पचास लाख सब दुःखी होंगे? मणिभाई! आहाहा! धूल में अब लाख तो धूल है, वह तो पर है। उसमें तुझे क्या आया? मेरा, मुझे मिले—ऐसा भाव, वह विकारी दुःखदायक आकुलता और अग्नि है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रश्न कहाँ किया? वस्तु से कहाँ मैंने कहा। वस्तु न हो, तब मुझे नहीं, ऐसे विकार के भाव, वह इसे आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? यह चीज़ तो आकुलता का निमित्त है। आकुलता तो स्वयं उत्पन्न करता है। थोड़ी लक्ष्मी हो, उसे आकुलता बहुत होती है, बहुत लक्ष्मी हो और आकुलता अल्प हो या थोड़ी हो। वह कहीं लक्ष्मी की संख्या पर आकुलता का माप नहीं है। आहाहा! कैसे होगा? कामदार! आहाहा!

यहाँ तो भगवान कहते हैं, परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव, भाई! कहते हैं कि यह आत्मा जितना सम्यक् स्व का ज्ञान और स्व का सम्यग्दर्शन करे, उतना उसे सत्य और मोक्ष का मार्ग। उसमें जितना व्यवहार ज्ञान स्व-पर का और छह द्रव्य का रहे और व्यवहार श्रद्धा रहे, उतना शुभभाव। वह परम्परा अर्थात् कि उसे छोड़कर मोक्ष होगा। वह स्वयं मोक्ष का वास्तविक कारण नहीं है। पश्चात् स्वरूप में रमता है चारित्र में, वह अन्तर में आनन्द में रमे, उसका नाम चारित्र, वह खास मोक्ष का कारण। बीच में यह पंच महाव्रत के परिणाम आदि रहे, वह भी राग भाग है, वह पुण्यबन्धन है। उससे स्वर्ग मिलेगा, उस स्वर्ग में वह पुण्य के फल में राग के भाग से देवलोक में क्लेश पाकर उसे

अनुभव करेगा। आहाहा! समझ में आया? सौभागमलजी! समझ में आया इसमें?

अभेद निज शुद्धात्मस्वरूप में तिष्ठे है, वह परम आनन्द अतीन्द्रिय सुखरस के आस्वाद से... देखो! समझ में आया? ३०, ३० है न? '**निजशुद्धात्मस्वरूपे परमानन्द-सुखरसास्वादतृप्तो भूत्वा**' ओहो! सन्त की दशा उसे कहते हैं कि जिसे बाह्य में तो नग्न दशा वर्तती है। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की तृप्ति के उछाला मारता हो। मात्र अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र भगवान आत्मा भरा है, उसकी रमणता में, उसके आनन्द में तृप्त... तृप्त... तृप्त... तृप्त... अतीन्द्रिय आनन्द में है। उसे चारित्रवन्त अथवा वह चारित्र पुरुष ही अभेदनय से चारित्र है। समझ में आया?

यह चारित्र निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्ज्ञान बिना नहीं होता और निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान अकेला हो, वहाँ भी ऐसा चारित्र नहीं होता। निश्चय आत्मभान सहित, दर्शन सहित की स्थिरता की आनन्द की रमणता, उसे त्रिलोकनाथ परमेश्वर चारित्र कहते हैं। यह चारित्रवन्त मुक्ति के मार्ग में आरूढ़ है। आहाहा! इस प्रकार उस मुक्ति के मार्ग में दुःख नहीं, ऐसा कहते हैं। चारित्रवन्त, अरे! दुःख कितने सहन करना पड़े और कितना यह और राजा के कुँवर मुनि तो आत्मा के आनन्द में मुनिपने को इतने, नहीं... नहीं कहते हैं। तू चारित्र को समझता ही नहीं। चारित्र दुःखदायक नहीं है, दुःख का दाता नहीं है। दुःख हो, उसे चारित्र नहीं कहते। वह तो आर्तध्यान है। आहाहा!

भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की लहर उठे अन्दर से। ऐसा होकर निर्विकल्प आनन्द में, क्रीड़ा में, मौज में स्थित होता है, उसे आनन्द है, उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? अभी तो चारित्र की खबर नहीं, किसे कहना। सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और हम धर्म करते हैं। कौन इनकार करता है? पागल कहे कि हम हमेशा पाँच-पाँच लाख कमाते हैं। निंबोली इकट्ठी की हो न! समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य कहते हैं, अभेदनय से निश्चयचारित्र भवति। वह स्वयं चारित्र है, आत्मा चारित्र है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अपने स्वरूप के अतीन्द्रिय निराकुल आनन्द में परिणम गया है, उसमें स्थित है, वह पुरुष ही स्वयं चारित्र है। समझ में आया? यह ३० गाथा हुई। इस प्रकार सब व्याख्या हो गयी, लो न सब। **इस प्रकार उन्नीस दोहों का स्थूल पूरा हुआ।** उन्नीस दोहे कहे इसमें पहले।

गाथा - ३१

अथानन्तरमभेदरत्नत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्राष्टकं कथ्यते, तत्रादौ तावत् रत्नत्रयभक्त-भव्यजीवस्य लक्षणं प्रतिपादयति -

१५४) जो भत्तउ रयण-त्तयहँ तसु मुणि लक्खणु एउ।
अप्पा मिल्लिवि गुण-णिलउ तासु वि अण्णु ण झेउ।।३१।।

यः भक्तः रत्नत्रयस्य तस्य मन्यस्व लक्षणं एतत्।
आत्मानं मुक्त्वा गुणनिलयं तस्यापि अन्यत् न ध्येयम्।।३१।।

जो इत्यादि। जो यः भत्तउ भक्तः। कस्य। रणयत्तयहँ रत्नत्रयसंयुक्तस्य तसु तस्य जीवस्य मुणि मन्यस्व जानीहि हे प्रभाकरभट्ट। किं जानीहि। लक्खणु लक्षणं एउ इदमग्रे वक्ष्यमाणम्। इदं किम्। अप्पा मिल्लिवि आत्मानं मुक्त्वा। किं विशिष्टम्। गुणणिलउ गुणनिलयं गुणगृहं तासु वि तस्यैव जीवस्य अण्णु ण झेउ निश्चयेनान्यद्बहिर्द्रव्यं ध्येयं न भवतीति। तथाहि। व्यवहारेण वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धात्मतत्त्वप्रभृतिषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वपदार्थविषये सम्यक्श्रद्धानज्ञानाहिंसादिव्रतशीलपरिपालनरूपस्य भेदरत्नत्रयस्य निश्चयेन वीतरागसदानन्दैकरूपसुखसुधारसास्वादपरिणतनिजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपस्याभेदरत्नत्रयस्य च योऽसौ भक्तस्तस्येदं लक्षणं जानीहि। इदं किम्। यद्यपि व्यवहारेण सविकल्पावस्थायां चित्तस्थितिकरणार्थं देवेन्द्रचक्रवर्त्यादि विभूतिविशेषकारणं परंपरया शुद्धात्माप्राप्तिहेतुभूतं पञ्चपरमेष्ठिरूपस्तववस्तुस्तवगुणस्तवादिकं वचनेन स्तुत्यं भवति मनसा च तदक्षररूपादिकं प्राथमिकानां ध्येयं भवति, तथापि पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रयपरिणतिकाले केवलज्ञानाद्यनन्त-गुणपरिणतः स्वशुद्धात्मैव ध्येय इति। अत्रेदं तात्पर्यम्। योऽसावन्तज्ञानादिगुणः शुद्धात्मा ध्येयो भणितः स एव निश्चयेनोपादेय इति।।३१।।

आगे अभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा-सूत्र कहते हैं, उनमें से पहले रत्नत्रय के भक्त भव्यजीव के लक्षण कहते हैं -

रत्नत्रय के भक्त जीव का एक यही लक्षण जानो-
गुण अनन्त के निलय आत्मा सिवा न कोई ध्येय रहो।।३१।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो जीव [रत्नत्रयस्य भक्तः] रत्नत्रय का भक्त है [तस्य] उसका [इदं लक्षणं] यह लक्षण [मन्यस्व] जानना, हे प्रभाकरभट्ट; रत्नत्रय धारक के ये

लक्षण हैं। [गुणनिलयं] गुणों के समूह [आत्मानं मुक्त्वा] आत्मा को छोड़कर [तस्यापि अन्यत्] आत्मा से अन्य बाह्य द्रव्य को [न ध्येयम्] न ध्यावे, निश्चयनय से एक आत्मा ही ध्यावने योग्य है, अन्य नहीं।

भावार्थ :- व्यवहारनयकर वीतराग सर्वज्ञ के कहे हुए शुद्धात्मतत्त्व आदि छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंच अस्तिकाय का श्रद्धान जानने योग्य है, और हिंसादि, पाप, त्याग करने योग्य हैं, व्रत, शीलादि पालने योग्य हैं, ये लक्षण व्यवहाररत्नत्रय के हैं, सो व्यवहार का नाम भेद हैं, वह भेदरत्नत्रय आराधने योग्य है, उसके प्रभाव से निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति है। वीतराग सदा आनंदरूप जो निज शुद्धात्मा आत्मीक सुखरूप सुधारस के आस्वाद कर परिणत हुआ उसका सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप अभेदरत्नत्रय है, उसका जो भक्त (आराधक) उसके ये लक्षण हैं, यह जानो। वे कौन से लक्षण हैं - यद्यपि व्यवहारनयकर सविकल्प अवस्था में चित्त के स्थिर करने के लिये पंचपरमेष्ठी का स्तवन करता है, जो पंचपरमेष्ठी का स्तवन देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि विभूति का कारण है, और परम्पराय शुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति का कारण है, सो प्रथम अवस्था में भव्यजीवों को पंचपरमेष्ठी ध्यावने योग्य हैं, उनके आत्मा का स्तवन, गुणों की स्तुति, वचन से उनकी अनेक तरह की स्तुति करनी, और मन से उनके नाम के अक्षर तथा उनका रूपादिक ध्यावने योग्य हैं, तो भी पूर्वोक्त निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति के समय केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप परिणत जो निज शुद्धात्मा वही आराधने योग्य है, अन्य नहीं। तात्पर्य यह है कि ध्यान करने योग्य या तो निज आत्मा है, या पंचपरमेष्ठी हैं, अन्य नहीं, प्रथम अवस्था में तो पंचपरमेष्ठी का ध्यान करना योग्य है, और निर्विकल्पदशा में निजस्वरूप ही ध्यावने योग्य है, निजरूप ही उपादेय हैं।।३१।।

गाथा-३१ पर प्रवचन

आगे अभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा-सूत्र कहते हैं, उनमें से पहले रत्नत्रय के भक्त भव्यजीव के लक्षण करते हैं—

१५४) जो भत्तउ रयण-त्तयहँ तसु मुणि लक्खणु एउ।
अप्पा मिल्लिवि गुण-णिलउ तासु वि अण्णु ण झेउ॥३१॥

अन्वयार्थः—जो जीव... अब उत्कृष्ट ऊँची बात है। मुनि की बात है। भावलिंगी सन्त मुनि कैसे होते हैं? वे रत्नत्रय के भगत हैं। भगवान के भगत नहीं, भगवान के भगत तो अभी विकल्प कहलाता है। उसका स्वरूप जानना तो चाहिए न! कि रत्नत्रयरूप चारित्र और उसके भक्त कैसे होते हैं? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **जो जीव रत्नत्रय का भक्त है...** उस जीव का लक्षण कहते हैं। **उसका यह लक्षण जानना, हे प्रभाकर भट्ट! रत्नत्रय धारक के ये लक्षण हैं। गुणों के समूह आत्मा को छोड़कर...** लो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त शान्ति आदि ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है, उसे छोड़कर **आत्मा को छोड़कर आत्मा से अन्य बाह्य द्रव्य को न ध्यावे,...** उसके अन्तर के आत्मा के ध्यान-आनन्द के समक्ष दूसरा देव-गुरु-शास्त्र का भी ध्यान उसे होता नहीं। समझ में आया?

भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द की शीतल पाट आत्मा है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द और शीतल अकषायस्वभाव से भरपूर आत्मा अभी है, उसमें अन्तर की दृष्टि, ज्ञान करके उसमें स्थिर होता है, कहते हैं कि ऐसा आत्मा अपने गुण का भान और श्रद्धा और रमणता छोड़कर। **आत्मा से अन्य बाह्य द्रव्य को...** यहाँ क्या कहना है कि स्वद्रव्य के गुणों के आश्रय में पड़ा हुआ है, उसे रत्नत्रय का भगत कहते हैं। परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र आदि का विकल्प है, वह राग है, उसमें उसका ध्येय नहीं होता।

परमात्मप्रकाश है न! परमात्मा तुरन्त किसे प्राप्त हो? जिसे अन्तर में अभेद रत्नत्रय की प्राप्ति है, उसे परमात्मा तुरन्त प्राप्त होता है। भगवान आत्मा, अकेला ज्ञान का जिसका (तेज), प्रकाश की मूर्ति, आनन्द का कन्द, शान्तरस की पुतली, ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का रूप भगवान आत्मा का है। ऐसे गुणों के ध्यान के समक्ष दूसरे द्रव्यों का ध्यान उसे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य, देव-गुरु-शास्त्र, प्रतिमा या देवालय या सम्मेदशिखर आदि का ध्यान, वह शुभविकल्प है। परद्रव्य की ओर का लक्ष्य जाता है, वह सब शुभराग है, पुण्य है। समझ में आया? रत्नत्रय का भगत, वह भगत लिया यहाँ। आहाहा! 'जननी जण तो भक्त जण' आता है न? 'कां दाता कां सूर, नहितर रहेजे

वांझणी, पण मत गुमावीश नूर' तेरे जवानी के नूर को नहीं गँवाना। भक्त-रत्नत्रय का भक्त हो, उसे जन्म देना। ऐसा हो वह। यह लोग लौकिक भी बात करते हैं या नहीं? वह भी कौन भगत? भगवान... भगवान भजे, ऐसा नहीं, भगवान... भगवान भजे, वह तो शुभराग विकल्प पुण्य को भजता है। ओहोहो!

इसलिए आचार्य कहते हैं, वह आत्मा के गुण का निलय देखो! गुण का निलय है न? अकेला भण्डार—निलय, अकेली खान। आत्मा तो अनन्त गुण की खान है। जिसमें से अतीन्द्रिय आनन्द झरे, अतीन्द्रिय केवलज्ञान प्रगट हो, अतीन्द्रिय दर्शन प्रगट हो, अनन्त बल—वीर्य जो है, वह अन्दर में से प्रगट हो। ऐसे अनन्त गुण की खान आत्मा भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? 'पाँच कोडी ने कुलडे...' ऐसा आता है? 'कुमारपाल पूरी करी... परन्तु क्या हुआ उसमें? लोगों को ऐसे रास्ते चढ़ा दिया बेचारों को। पाँच कोड़ी के कुलडे चढ़ाया तो यह देव हुए। धूल हुआ, उसमें क्या हुआ परन्तु अब? उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण का घर है। निलय अर्थात् क्या? ऐई! स्थान। निलय—स्थान। आनन्द का स्थान, वह तू है, ज्ञान का स्थान तू है, शान्ति का स्थान अन्दर में तू है। जितने अनन्त आनन्द आदि गुण कहलाते हैं, उनका स्थान वह आत्मा है अन्दर में। वह अन्यत्र कहीं से मिले, ऐसे नहीं। दूसरे आत्मा में से मिले, ऐसे नहीं हैं। तुझमें सब भरे हुए हैं। आहाहा!

शिष्य को गुरु कहते हैं, हे प्रभाकरभट्ट! है न? रत्नत्रय को छोड़कर, यह रत्नत्रय के लक्षण, यह कि आत्मा को छोड़कर जो स्वद्रव्य भगवान आत्मा, उसका अन्दर निर्विकल्प दर्शन, ज्ञान और रमणता। स्वद्रव्य **आत्मा से अन्य बाह्य द्रव्य को न ध्यावे...** दूसरे द्रव्य को लक्ष्य में न ले। स्वद्रव्य को लक्ष्य—दृष्टि करके स्थिर हो, वह रत्नत्रय का भगत, वह आत्मा का भगत है। ओहोहो! समझ में आया? कब परन्तु सुना कब है? माना कब है? बाहर और बाहर में यह धूल ढ़ेर और पुण्य-पाप के परिणाम। उसमें पचा है पूरे दिन अनन्त काल से। मोहनभाई! आहाहा! अनादि काल से त्यागी अनन्त बार हुआ, परन्तु यह पुण्य और पाप के विकल्प, पुण्य के विकल्प में पचा रहा। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के शुभराग, वह भी राग-विकल्प-कषाय है, उसमें पचा

है। परन्तु उसके बिना की चीज़ कौन है, यह श्रद्धा में ली नहीं। आहाहा! अनन्त बार साधु हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।' अनन्त बार मुँडाया इसने, हजार बार रानियाँ छोड़कर बाबा साधु जैन का हुआ, परन्तु क्या हुआ उसमें? वापस भटकने का रास्ता बढ़ाया। वस्तु की खबर नहीं होती। अखण्डानन्द प्रभु चिदानन्द की मूर्ति मैं हूँ। उसकी दृष्टि नहीं होती और दूसरे में प्रेम छूटा नहीं, पुण्य के, पाप के परिणाम का प्रेम छूटा नहीं। समझ में आया? जो छोड़ना (चाहिए), वह छोड़ा नहीं। बाहर के स्त्री, पुत्र तो छूटे ही पड़े हैं, कब घुस गये थे आत्मा में? समझ में आया? बापू! मार्ग तो वीतराग का दूसरे प्रकार का है।

मुमुक्षु : प्रयत्न तो बहुत किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयत्न उल्टा किया। बहुत किया कहाँ कहा? समझ में आया? बाह्य त्याग किये और उसका यह किया और मैंने यह ग्रहण किया और, वह तो बाह्य ग्रहण-त्याग का विकल्प राग है। राग है, उसमें यह प्रयत्न क्या किया इसने? भगवान आत्मा विकल्परहित चीज़ अन्दर अखण्डानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका तो अनुभव दृष्टि में लिया नहीं। कुछ किया नहीं। उल्टा पुरुषार्थ किया था, हेतु उल्टा था। भान नहीं होता। अपना हेतु—लक्ष्य क्या है, उसकी तो खबर नहीं होती। अब हेतु किसे कहना? भले माने कि हम मोक्ष के लिये करते (हैं), परन्तु हेतु तो राग का है मात्र। समझ में आया? यह तो अजर प्याला की बातें हैं, भाई!

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं, वे मुनि कहते हैं। हे आत्मा! रत्नत्रय के भगत के लक्षण ऐसे हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक के लक्षण ऐसे हैं कि जिसमें स्वद्रव्य के गुण को छोड़कर परगुण को ध्याता नहीं। आहाहा! जिसके स्वद्रव्य में अनन्त गुणों के लक्ष्य को छोड़कर दूसरे अनन्त द्रव्य चाहे वे सिद्ध अनन्त या परमेश्वर हों, उन परद्रव्यों को लक्ष्य में, ध्यान में नहीं लेता। आहाहा! यह आ जाये ऐसे, परन्तु उसे विकल्प कहा जाता है, शुभराग है। अरे! भगवान! यह बात करेंगे। जब तक स्थिर नहीं तो राग आवे, विकल्प आवे, परन्तु वह कहीं निश्चयरत्नत्रय का स्वरूप नहीं है। वह मोक्ष के वास्तविक मार्ग का स्वरूप नहीं है। जितना परद्रव्य के आश्रय से विकल्प उठता है, उतना सब पुण्यबन्धन का कारण है। यह मार्ग! मार्ग की

खबर नहीं होती। जाये दौड़कर मुठ्ठियाँ बाँधकर पश्चिम को, और जाना हो पूर्व में। यह पुरुषार्थ कहलाये? उल्टा कहलाये। अरे! इसे उल्टे-सुलटे की भी खबर नहीं होती। ऐसा का ऐसा अंधी दौड़ से मूढ़रूप से अनन्त काल व्यतीत किया। समझ में आया?

निश्चयनय से एक आत्मा ही ध्यावनेयोग्य है, अन्य नहीं। निश्चयरत्नत्रय का धारक तो भगवान आत्मा के ही ध्यान के कारण स्थिर होता है। अब जरा व्यवहार स्थापित करते हैं। **व्यवहारनयकर वीतराग सर्वज्ञ के कहे हुए...** परमात्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी परमात्मा ने, **कहे हुए शुद्धात्मतत्त्व आदि छह द्रव्य,...** देखो! शुद्धात्मा आदि छह द्रव्य। उसका सबका साथ में ज्ञान, वह व्यवहार, ऐसा कहना है। समझ में आया? **छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंच अस्तिकाय का श्रद्धान जानने योग्य है,...** श्रद्धान और ज्ञान करनेयोग्य है। व्यवहार से करनेयोग्य है। भगवान परमेश्वर ने देखे हुए छह द्रव्य। उनके भाग करें तो सात पदार्थ, तत्त्व, उनके भाग करें तो पुण्य-पाप आदि मिलकर नौ पदार्थ और पाँच अस्तिकाय। काल है, वह अस्ति है, काय नहीं। पाँच द्रव्य अस्तिकाय है। उनका **श्रद्धान जानने योग्य है,...**

और हिंसादि, पाप, त्याग करने योग्य हैं, व्रत, शीलादि पालने योग्य हैं,... शुभ राग। व्यवहार, व्यवहार। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय चारित्र के अन्दर ऐसे परिणाम उसे विकल्परूप से होते हैं। **ये लक्षण व्यवहाररत्नत्रय के हैं,...** आत्मा शुद्ध है, उसके सहित छह द्रव्य का विकल्पवाला ज्ञान, सात तत्त्व की श्रद्धा का ज्ञान और श्रद्धा, नौ पदार्थ का ज्ञान और श्रद्धा, पंचास्तिकाय की श्रद्धा और ज्ञान तथा हिंसा, झूठ का त्याग, व्रत, शीलादि का पालना शुभभाव, वह सब लक्षण व्यवहाररत्नत्रय का है। वह व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् शुभभाव का वह लक्षण है। वह परमार्थ से धर्म का लक्षण नहीं। क्या कहते हो? क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, बाद में, सुनो तो सही अभी आये बिना। सामने कहाँ चले गये। प्रभाव, प्रभाव नहीं। भेद रत्नत्रय से अज्ञात है, इतना ही पाठ है। भेद रत्नत्रय... इसका अर्थ प्रभाव किसका तुम लेकर रखो अन्दर से। यह शब्द भी नहीं टीका में। यहाँ तो '**भेदरत्नत्रयस्य निश्चयेन वीतरागसदानन्दैकरूप**' है न? भाई!

यहाँ तो ऐसा बतलाना है, भाई! धीर हो। तेरी ... करने में कठिन पड़े। उसे किसी प्रकार से उस व्यवहार से निश्चय होता है, (ऐसा सिद्ध करना है)। व्यवहार तो शुभराग है। राग का अभाव करके स्थिर हो, तब निश्चय होता है। आहाहा! परद्रव्य आश्रय से जितना विकल्प (उठे), वह निर्विकल्प स्वद्रव्य के आश्रय में जाने से उसके विकल्प का अभाव होता है। उसे ऐसा कहा जाता है कि यह व्यवहार था तो यह निश्चय हुआ, ऐसा कहने में आता है। निमित्तरूप से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह कहाँ इसे है? यह तो **उसके प्रभाव से... भेदरत्नत्रय आराधने योग्य है, उसके प्रभाव से...** कहा है। भेदरत्नत्रय सब तीनों का इकट्ठा डाला है। छह द्रव्य का ज्ञान, छह द्रव्य की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम आदि शुभभाव। उन तीन को रत्नत्रय, व्यवहाररत्नत्रय कहा अर्थात् कि जो शुभ विकल्प और पुण्यभाव है।

मुमुक्षु : यहाँ तो सीधा गुरु के प्रभाव से निश्चयरत्नत्रय हो। हिन्दी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है हिन्दी? कहाँ है परन्तु इसमें? अभी तो आया नहीं वहाँ? आवे तब तो (स्पष्टीकरण) होने दो उसका। इसका अर्थ करना नहीं आता उसे। यहाँ तो अभी एक बात चलती है (कि) व्यवहार किसे कहना।

सो व्यवहार का नाम भेद हैं, वह भेदरत्नत्रय आराधने योग्य (व्यवहार से) है,... विकल्प आवे, उतना अशुभ टालने के लिये, ऐसी भूमिका होती है, ऐसा कहते हैं। उसका प्रभाव शब्द नहीं शास्त्र में। वह है और निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति है, ऐसा। ऐसा एक विकल्पात्मक भाव है शुभ रागमय, उसे व्यवहार कहते हैं। भगवान स्वद्रव्य के आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान और लीनता हो, उसे निश्चय कहते हैं। बस, यह दो बातें एक साथ है। समझ में आया? यह एकसाथ भी है। ऐसे निश्चय वर्तता है, यहाँ विकल्प है। स्थिर हो, तब विकल्प छोड़कर अन्दर स्थिर होता है। बापू! मार्ग तो कैसा है? अलौकिक मार्ग है। इसने मार्ग सुना नहीं, सुना नहीं और सुना हो तो इसने विचार में लिया नहीं। तब सुना कहलाये न! ऐसे का ऐसा अनन्त बार शास्त्र सुने, रट डाले और पढ़ा, गुना उसमें थोथा हुआ। उसमें कुछ हुआ नहीं। समझ में आया?

अहो! यहाँ तो स्वद्रव्य और परद्रव्य आश्रय की दो बात है, बस। इतनी बात है।

'अप्पा मिल्लिवि गुण-णिलउ तासु वि अण्णु ण झेउ' दूसरा ध्यान में होता नहीं। तथापि व्यवहार समझाया। समझ में आया? आहाहा! अभी तो सच्चे शुद्धात्मसहित छह द्रव्य की सच्ची श्रद्धा, ज्ञान, सात तत्त्व और नौ पदार्थ का ज्ञान, पाँच अस्तिकाय का ज्ञान और हिंसा आदि के परिणाम का त्याग, व्रतादि के शुभपरिणाम शील आदि का भाव, वह लक्षण व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् शुभ पुण्य के भाव हैं। उसका नाम भेदरत्नत्रय। भेद कहो, व्यवहार कहो, उपचार कहो, गौण कहो, इस निश्चय की अपेक्षा से। समझ में आया? उसे (निश्चय को) मुख्य कहो तो इसे (व्यवहार को) गौण कहो, इसे मुख्य कहो तो उसे गौण कहो। ओहोहो!

निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति है। यह व्यवहार है, उसे छोड़कर अन्दर में निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति करता है। निर्विकल्प करता है न! पहला सम्यग्दर्शन निश्चय का है, सम्यग्ज्ञान है, चारित्र स्थिरता भी है और इस प्रकार के छठवें गुणस्थान में तीनों रत्नत्रय विकल्प वर्तते हैं, उसे छोड़कर सातवें में स्थिर होता है, तब वे पूर्व में थे, ऐसा कहा जाता है। प्रभाव शब्द शास्त्र में कहीं नहीं है। यह भी कहे, उसके प्रभाव से और तुम्हारे कारण से। पाँच आचार। हे आचार! तेरे कारण से मैं... यह सब व्यवहार, सब भाषा ऐसी आवे।

मुमुक्षु : दो लक्षण है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो लक्षण है। उनका लक्षण अलग, इसका लक्षण अलग। उसका फल अलग, इसका फल अलग, तथापि उसका फल उसे बतलाना, वह व्यवहार है।

वीतराग सदा आनन्दरूप जो निज शुद्धात्मा आत्मिक सुखरूप सुधारस के आस्वाद कर परिणत हुआ... यह निश्चय। भगवान आत्मा वीतराग आत्मा रागरहित अभी है, हों! अन्दर में। सदा आनन्दरूप जो निज शुद्धात्मद्रव्य कहा। उससे आत्मिक सुखरूप सुधारस, वह पर्याय। आत्मिक सुख। सुधारस का आस्वाद कर परिणत हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द से परिणमन हो गया। **उसका सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय है,...** उसे निश्चयरत्नत्रय सच्चा रत्न कहा जाता है। लो! **उसका जो भक्त (आराधक) उसके ये लक्षण हैं,...** लो! यह जानना। समझ में आया? उसके लक्षण हैं, वह जानो, इसका यह लक्षण है। अब उस व्यवहार की जरा थोड़ी बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३२

अथ ये ज्ञानिनो निर्मलरत्नत्रयमेवात्मानं मन्यते शिवशब्दवाच्यं ते मोक्षपदाराधकाः सन्तो निजात्मानं ध्यायन्तीति निरूपयति -

१५५) जे रयण-त्तउ णिम्मलउ णाणिय अप्पु भणंति।
ते आराहय सिव-पयहँ णिय-अप्पा झायंति।।३२।।

यं रत्नत्रयं निर्मलं ज्ञानिनः आत्मानं भणन्ति।
ते आराधकाः शिवपदस्य निजात्मानं ध्यायन्ति।।३२।।

जे इत्यादि। ये केचन रयणतउ रत्नत्रयम्। कथंभूतम्। णिम्मलउ निर्मलं रागादिदोषरहतिम्। कथंभूता ये। णाणिय ज्ञानिनः। किं कुर्वन्ति। अप्पु भणंति पूर्वोक्तरत्नत्रयस्वरूपमेवात्मानं, आत्मस्वरूपं कर्मतापन्नं भणंति मन्यते ते आराहय ते पूर्वोक्ताः पुरुषाः आराधका भवन्ति। कस्य। सिवपयहं शिवपदस्य शिवशब्दवाच्यमोक्षपदस्य। मोक्षपदाराधकाः सन्तः किं कुर्वन्ति। णियअप्पा झायंति निजात्मानं कर्मतापन्नं ध्यायन्ति इति। तथा च ये केचन वीतरागस्वसंवेदन-ज्ञानिनः परमात्मानं सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानलक्षणं निश्चयरत्नत्रयमेवाभेदनयेन निजशुद्धात्मानं मन्यन्ते ते शिवशब्दवाच्यमोक्षपदाराधका भवन्ति। आराधकाः सन्तः किं ध्यायन्ति। विशुद्धज्ञान-दर्शनं स्वशुद्धात्मस्वरूपं निश्चयनयेन ध्यायन्ति भावयन्तीत्यभिप्रायः।।३२।।

आगे जो ज्ञानी निर्मल रत्नत्रय को ही आत्मस्वरूप मानते हैं, और अपने को ही शिव जानते हैं, वे ही मोक्षपद के धारक हुए निज आत्मा को ध्यावते हैं, ऐसा निरूपण करते हैं -

निर्मल रत्नत्रय को ही निज आत्मा जो ज्ञानी कहते।
वे हैं शिवपद के आराधक निज आत्मा को नित ध्याते।।३२।।

अन्वयार्थ :-[ये ज्ञानिनः] जो ज्ञानी [निर्मलं रत्नत्रयं] निर्मल रागादि दोष रहित रत्नत्रय को [आत्मानं] आत्मा भणंति कहते हैं [ते] वे [शिवपदस्य आराधकाः] शिवपद के आराधक हैं, और वे ही [निजात्मानं] मोक्षपद के आराधक हुए अपने आत्मा को [ध्यायंति] ध्यावते हैं।

भावार्थ :- जो कोई वीतराग, स्वसंवेदनज्ञानी, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

सम्यक्चारित्ररूप आत्मा को मानते हैं, वे ही मोक्षपद के आराधक हुए निश्चयनयकर केवल निजरूप को ही ध्यावते हैं।।३२।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल ३, सोमवार
दिनांक-२५-१०-१९७६, गाथा-३२-३३, प्रवचन-११४

परमात्मप्रकाश, ३२ गाथा। बीच में व्यवहार का अधिकार है न, वह बतलाने के लिये है। ३२। **आगे जो ज्ञानी निर्मल रत्नत्रय को ही आत्मस्वरूप मानते हैं,...** धर्मी जीव तो भगवान आत्मा के स्वरूप को ही मानता है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प अन्दर आवे। यहाँ मुख्यरूप से छठवें गुणस्थानवाले को व्यवहार कहा है और फिर विकल्प तोड़कर निर्विकल्प सातवें में हो, उसे यहाँ निश्चय कहा है। तथापि वह विकल्प है, उससे सातवाँ होता है, ऐसा कहा है, वह तो व्यवहार का कथन है। क्योंकि विकल्प है, वह आत्मस्वरूप नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। सम्यग्दृष्टि को या मुनि को, सच्चे सन्त को व्यवहार षट्द्रव्य की श्रद्धा, देव-गुरु की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान, ऐसा व्यवहार होता है। परन्तु वह व्यवहार निश्चय का कारण है, ऐसा भी कहा है। वह व्यवहार से। वास्तव में तो उसका अभाव करके निश्चय होता है।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि धर्मीजीव जो आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप आत्मा, उसे जिसने अन्तर्मुख होकर जाना और देखा है, उसे यहाँ ज्ञानी कहते हैं। ज्ञानी अलग और धर्मी अलग, ऐसा यहाँ नहीं है। हम तो धर्म करते हैं, परन्तु हम ज्ञानी नहीं, ऐसा नहीं है। यह धर्मी कहो या ज्ञानी कहो। कहे भाई! ज्ञानी तो ऐसा कि बहुत ज्ञान हो तो ज्ञानी और हम तो धर्मी हैं। हमारे ज्ञान इतना नहीं है। ऐसा नहीं है। ज्ञानी और धर्मी एक ही चीज़ है। वस्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्यघन का जिसने वर्तमान पर्याय में स्वीकार किया है, उसका द्रव्य का जो स्वरूप है, वह जिसकी प्रतीति में पूरा आया है। विषय बनाकर, द्रव्य को सम्यग्दर्शन की पर्याय में विषय बनाकर, जिसने अन्तर में उस वस्तु के स्वरूप की श्रद्धा की है, वह ज्ञानी कहलाता है, उसे धर्मी कहते हैं। समझ में आया?

वह **ज्ञानी निर्मल रत्नत्रय को ही...** अर्थात् कि क्या कहते हैं? व्यवहाररत्नत्रय

आवे सही, होता है, परन्तु वह आत्मस्वरूप नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत आदि जो मुनिधर्म, जो व्रत, वह हो, परन्तु वह आत्मा नहीं, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम आवे। समकिती को देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग भी हो, परन्तु वह आत्मस्वरूप नहीं। आहाहा! क्योंकि राग है, वह अनात्मा है। आहाहा! इससे यहाँ वजन दिया है। व्यवहार का वर्णन किया है परन्तु यहाँ धर्मीजीव **निर्मल रत्नत्रय को ही...** आहाहा! चैतन्यघन भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की सन्मुख की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह रत्नत्रय **ही आत्मस्वरूप मानते हैं,...** आहाहा! उसे आत्मा का स्वरूप और... यह पर्याय की बात है। त्रिकाली तो वस्तु है। परन्तु त्रिकाली वस्तु की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्वसन्मुख की परिणति, उसे आत्मस्वरूप कहा है। समझ में आया? उस व्यवहार के विकल्प को आत्मस्वरूप नहीं कहना, इस अपेक्षा से इसे आत्मस्वरूप (कहा है)। त्रिकाली स्वरूप अलग। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली तो सच्चिदानन्द प्रभु, सत्-चिद्-ज्ञानानन्द आदि गुण का समुद्र है।

सवेरे एक प्रश्न हुआ था अभी, कि इस द्रव्यत्वगुण के कारण द्रवते हैं न सभी गुण? कि द्रव्यत्वगुण तो दूसरे गुणों में निमित्त है। ज्ञान में भी द्रव्यत्वगुण का स्वरूप है। चिमनभाई! यह वस्तु ऐसी है। एक-एक गुण में अनन्त गुण का स्वरूप—रूप है। आहाहा! सिखलाने में ऐसा आवे। इतनी भाषा कि द्रव्यत्वगुण के कारण आत्मा द्रवता है, परिणमता है। भाषा आती है न उसमें? सिखलाने में ऐसा आवे। सीखे सब। कैलाशचन्दजी सिखलाते हैं न उसमें? षट्कारक को सीखे उसमें। द्रव्यत्वगुण के कारण द्रवता है। वह तो द्रव्यत्वगुण की अस्तिता सामान्यगुणरूप से दूसरे गुणों से भिन्न है, ऐसा बताने की बात है। बाकी ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि जो है, वे परिणमते हैं, वे अपने स्वरूप से परिणमते हैं, द्रव्यत्वगुण के कारण नहीं। सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : .... खूँटे से बँधा दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह सामान्य छह गुण सीखते हैं न? उसमें यह आता है। सीखनेवाले सीखे सबको कि द्रव्यत्वगुण के कारण प्रत्येक आत्मा द्रवता है। यह बात द्रव्यत्वगुण की सिद्धि करने की बात है। परन्तु उस द्रव्यत्वगुण के कारण ज्ञान

परिणमता है, आनन्द परिणमता है, ऐसा नहीं है। द्रव्यत्वगुण का रूप—स्वरूप ज्ञान में भी है। द्रव्यत्वगुण नहीं। समझ में आया? ऐसा आत्मा... आहाहा!

यहाँ तो स्वरूप की बात चलती है न! ऐसा जो त्रिकाली स्वरूप, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह आत्मस्वरूप है, ऐसा कहना है। आहाहा! वह भाई गये होंगे। नहीं? राजकोट गये? लालभाई? भावनगर गये। शशीभाई आये थे। समझ में आया? रत्नत्रयस्वरूप वह परिणमन है, इससे यहाँ कहना पड़ा। जो त्रिकाली वस्तु है, शुद्ध चैतन्यघन द्रव्य, उसका यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, हों! वह उसका परिणमन है। वह पर्याय है।

ज्ञानी निर्मल रत्नत्रय को ही... यहाँ वजन है। आहाहा! है? '**निर्मलरत्नत्रयमेव**' '**एव**' है न अन्दर? '**आत्मानं**' आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय होता है। छठवें गुणस्थान में भी पंच महाव्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान, वह सब व्यवहार है। होता है और उससे प्राप्त होता है, ऐसा भी कहा जाता है। वह तो व्यवहार से है। वास्तव में तो शुद्ध निर्मल जो दशा छठवें (गुणस्थान में) है, उसके कारण से सातवाँ (गुणस्थान) प्राप्त होता है। यह भी व्यवहार है। छठवें गुणस्थान में जो द्रव्य का आश्रय था, उससे सातवें में विशेष आश्रय हुआ, इससे सातवें गुणस्थान की परिणति हुई है। समझ में आया? आश्रय बढ़ा इसलिए। उसे यहाँ कहा, व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : विशेष की मात्रा बढ़ी?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मलता की बढ़ी। निर्मलता है, वह बढ़ी। उसके कारण से हुई, उसके बदले विकल्प से हुई—ऐसा व्यवहार कथन किया गया है। अभी उसमें भी अन्तर है। छठवें की निर्मलता के कारण सातवें की हुई, यह भी अभी व्यवहार है। द्रव्य का आश्रय बढ़ा इसलिए हुई, यह निश्चय है। उसमें भी अभी दूसरी बात है। आश्रय हुआ, ऐसा जो कहना, वह लक्ष्य किया इसलिए। वरना सातवें गुणस्थान की अप्रमत्तदशा वह स्वयं से स्वतन्त्र हुई है। आहाहा! ऐसे भेद परमात्मा के मार्ग में... समझ में आया?

क्योंकि यह तो कल कहा गया है कि प्रत्येक जीव को विकारी परिणाम जो होते हैं, वह भी उस काल के विकार की पर्याय षट्कारक से परिणमन होकर होती है। ऐसे

विकारी परिणाम के षट्कारक के परिणमन को भी द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। क्योंकि द्रव्य-गुण तो शुद्ध है। विकारी परिणाम होने में द्रव्य-गुण का आश्रय कैसे हो? वह तो शुद्ध है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! विकारी व्यवहाररत्नत्रय के जो विकल्प कहे, वे भी स्वतन्त्र विकार का परिणमन उस समय षट्कारक से होता है। उसे द्रव्य-गुण तो शुद्ध है। उसकी अपेक्षा तो कहाँ होगी? परन्तु उसे कर्म के उदय के कारक की भी अपेक्षा नहीं। समझ में आया? कर्म का उदय आया इसलिए यहाँ विकार हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! उस विकार का परिणमन—उस समय की पर्याय स्वयं से षट्कारक कर्ता, कर्म से परिणम रही है। आहाहा! तो फिर निर्मल परिणति के लिये क्या कहना? कहते हैं।

निर्मल परिणति जो वीतरागी होती है, उसे व्यवहारकारण कहना, यह तो व्यवहार का वचन, निमित्त का ज्ञान कराते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिसे निर्मल परिणति हुई, जिस-जिस गुणस्थान के योग्य, वह-वह वर्तमान परिणमन उस निर्मल के षट्कारक से स्वयं परिणमता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जहाँ रत्नत्रय कहे, वह परिणति अपने से षट्कारक से परिणमती है। जिसे द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। आश्रय कहा जाता है, वह तो लक्ष्य वहाँ है इसलिए। समझ में आया? वीतरागमार्ग अर्थात् कि यह दिगम्बर मार्ग, अर्थात् कि जैनमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : आधार, ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई किसी का आधार नहीं। निर्मल पर्याय को निर्मल पर्याय का आधार। निर्मल पर्याय को शुद्ध द्रव्य-गुण का भी आधार नहीं है। आहाहा! उसे ऐसा कहना कि व्यवहार के विकल्प से निश्चय होता है, यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। व्यवहारनय से निमित्त और भेद था कौन, उसका ज्ञान कराया है। कठिन करना बहुत। शास्त्र के लिखे हुए भाव में से वापस भाव किस अपेक्षा से है, यह निकालना बहुत कठिन है।

यहाँ कहना है कि **ज्ञानी निर्मल रत्नत्रय को ही...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी पर्याय, वह निर्मल। रागादि व्यवहाररत्नत्रय वह मलिन। आहाहा! समझ में आया? धर्मी जीव **निर्मल रत्नत्रय को ही आत्मस्वरूप मानते हैं,...** ऐसा क्यों कहा? कि

निर्मल परिणति है न, और द्रव्य-गुण निर्मल है, इससे उसे आत्मस्वरूप कहा गया है। समझ में आया? रागादि आत्मस्वरूप नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग आवे, हो। छठवें, चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा हो, पंच महाव्रतादि, बारह व्रत के विकल्प हो, शास्त्र का परलक्ष्यी ज्ञान हो। वह सब व्यवहार है, वह आत्मस्वरूप नहीं, ऐसा सिद्ध करने को... समझ में आया? व्यवहार आवे सही, होवे सही। आहाहा! परन्तु वह आत्मस्वरूप नहीं। व्यवहार का सब वर्णन पहले आ गया है। समझ में आया?

धर्मी जीव को **निर्मल रत्नत्रय को ही...** निश्चय कहा है। कथंचित् निर्मल और कथंचित् व्यवहार, वह निर्मल—ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? है न? संस्कृत ही है। **'ज्ञानिनो निर्मलरत्नत्रयमेवात्मानं मन्यते'** **'एव'** शब्द पड़ा है। **'एव'** अर्थात् 'ही'। 'ही'। टीका बहुत गम्भीर... गम्भीर। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवत्स्वरूप है। द्रव्यस्वभाव। वह भगवत्स्वरूप परमात्मा आठ वर्ष की बालिका समकित पावे तो भी वह समकित निश्चय निर्मल परिणति है। क्योंकि त्रिकाली निर्मल भगवान द्रव्य-गुण शुद्ध है, उसके आश्रय से—लक्ष्य से हुआ है, वह आत्मस्वरूप है। और परलक्ष्य से जो व्यवहार होता है, वह हो, परन्तु वह आत्मस्वरूप नहीं। आहाहा! कहो, यह सब देरासर और मन्दिर और उनकी पूजा, भक्ति होती है, परन्तु वह भाव मलिन है। आत्मस्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आत्मस्वरूप मानते हैं,... ज्ञानी-धर्मी शुद्ध निर्मल रत्नत्रय को ही आत्मस्वरूप मानते हैं। आहाहा! कितना कहा इसमें! **और अपने को ही शिव जानते (मानते) हैं,...** उस आत्मस्वरूप का भान होकर स्थिर हुए, उसके फल में उसे मोक्ष होता है, वह शिवस्वरूप है। शिव अर्थात् निरुपद्रव कल्याणस्वरूप। उसे भी आत्मा मानते हैं, ऐसा कहते हैं। **शिव जानते (मानते) हैं,...** देखा! जैसे यह मोक्ष का मार्ग निश्चय है, वह आत्मस्वरूप है, उसी प्रकार मोक्ष भी आत्मस्वरूप है। वह शिव है। दूसरा कोई शिव है, (ऐसा है नहीं)। समझ में आया? स्वयं भगवान आत्मा अपने निश्चयरत्नत्रय स्वरूप को परिणमता-परिणमता उसके फल में मोक्ष हो, वह मोक्ष, वह शिव कहलाता है। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप। जिसमें रागादि का उपद्रव है नहीं। ऐसा जो शिवस्वरूप, वह भी आत्मा को मानता है। **अपने को ही शिव जानते (मानते) हैं,...** दूसरा कोई शिव

है, ऐसा नहीं। समझ में आया? है न? '**मन्यते शिवशब्दवाच्यं ते मोक्षपदाराधकाः**' देखा! '**सन्तो निजात्मानं ध्यायन्तीति**' और **वे ही मोक्षपद के धारक हुए...** जो मोक्ष के पद के धारक हुए, वे **निज आत्मा को ध्यावते हैं,...** वे अपने स्वरूप का ध्यान करते थे। आहाहा! शिवपद को प्राप्त हुए, मोक्षपद को प्राप्त हुए, वे निजपद के ध्यान से प्राप्त हुए हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पहला रत्नत्रय...

मुमुक्षु : यह शिव और यह शिव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शिव सब कल्पना के।

अपने को ही शिव जानते (मानते) हैं,... ऐसा कहा। आहाहा! णमोत्थुणं में आता है न? 'शिवमलयम...' णमोत्थुणं। सामायिक के पाठ में आता है। 'शिवमलयम...' शिवमलयम है। शिवमलयम अर्थात् मन अनुसार। शिवम। शिवपद है परमात्म मोक्ष। वह पूर्णानन्द की प्राप्ति, पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति, वह शिवपद है। ज्ञानी **अपने को ही शिव जानते (मानते) हैं,...** मानते हैं, ऐसा कहा है। परन्तु वह शिव कोई दूसरा शंकर है, (ऐसा नहीं)। समझ में आया? **अपने को ही...** ऐसा यहाँ शब्द है। है न? आहाहा! '**मोक्षपदाराधकाः सन्तो निजात्मानं ध्यायन्तीति निरूपयति**'। गाथा।

१५५) जे रयण-त्तउ णिम्मलउ णाणिय अप्पु भणंति।
ते आराहय सिव-पयहँ णिय-अप्पा झायंति॥३२॥

अन्वयार्थः—जो ज्ञानी निर्मल—रागादि दोषरहित... देखो! निर्मल की व्याख्या की है। जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह राग है। उससे रहित। ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! मार्ग ऐसा है न! सूक्ष्म-सूक्ष्म। निर्मल रत्नत्रय। **रागादि दोषरहित रत्नत्रय को...** अर्थात् कि व्यवहाररत्नत्रय के राग से रहित निर्मल रत्नत्रय। ऐसा। आहाहा! **को ही आत्मा कहते हैं।** लो! **निर्मल रागादि दोषरहित रत्नत्रय को ही आत्मा कहते हैं...** आहाहा! एक ओर नियमसार की ३८ गाथा में ऐसा कहा कि मोक्ष का मार्ग, वह आत्मा नहीं, नाशवान है। आत्मा तो त्रिकाली, उसे आत्मा कहते हैं। (नियमसार) ३८ गाथा। आहाहा! वास्तव में आत्मा उसे कहते हैं। वहाँ ऐसा शब्द है। त्रिकाली वस्तु जो भगवान चैतन्यसूर्य, जिनचन्द्र, वीतरागी शीतल मूर्ति प्रभु है। अनादि-अनन्त ऐसा वीतरागी शीतल स्वरूप प्रभु है। उसे ही वास्तव में निश्चय से आत्मा मानना।

यहाँ दूसरी अपेक्षा है। है तो वही निश्चय आत्मा, परन्तु उस आत्मा के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह राग से रहित है; इसलिए अरत्मस्वरूप कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा स्वरूप अब साधारण व्यक्ति बेचारे को समय मिले नहीं। एक घण्टे मुश्किल से निवृत्त हो। पूरी दुनिया के धन्धे के कारण पूरे दिन पाप। सवेरे उठे, दातुन-पानी करे, फिर चाय पीवे, फिर और कुछ खाखरा-बाखरा, भुजिया खाये साथ में। फिर दुकान में जाये। दुकान में होली सुलगे। यह और... यह और... यह और... आहाहा! उसमें खाने आवे तब फिर कैसा किया और क्या किया, वह खाये। फिर स्त्री, पुत्र के साथ थोड़ी देर खेले, दाँत निकले (हँसे) और प्रसन्न हो। आहाहा!

मुमुक्षु : कुटुम्ब की सेवा तो करनी पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सेवा करता था? यह तो कहा था, आत्मा की सेवा। यह कहा था न कल। आत्मा आनन्द का नाथ, उसकी सेवा करना, वह सेवा है। पर की, भगवान की सेवा करना, वह भी एक शुभभाव है। आहाहा! वह आत्मा की असेवा है। होता है, गुणस्थान में पूर्ण वीतराग न हो तब होता तो है। अशुभ से बचने के लिये। आहाहा! अशुभ स्थान से वंचनार्थम् शुभभाव आवे। मुनि को आवे, समकिती को आवे। पूजा, भक्ति आदि दया, दान भाव होते हैं। परन्तु उसकी मर्यादा राग की है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आत्मा कहते हैं, वे शिवपद के आराधक हैं,... आहाहा! वे व्यवहार में शिवपद का आराधक नहीं कहना था, इसलिए इसमें डाला। व्यवहार है सही। और उसे मोक्षमार्ग भी निरूपण की अपेक्षा से, कथन की अपेक्षा से कहा जाता है, बाकी वह कहीं शिवपद का कारण नहीं है। आहाहा! भाषा तो यह आवे। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में ऐसा है। दो मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है। ऐसा पाठ आता है, लो। तो निश्चयमोक्षमार्ग से निश्चय मोक्ष होता है और व्यवहारमार्ग से व्यवहार मोक्ष, ऐसे दो मोक्ष होंगे? यह तो निमित्त का साथ में ज्ञान कराने के लिये (बात है)। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में गाथा है। दो मार्ग से मोक्ष होता है। कथन की शैली न समझे तो शास्त्र के उल्टे अर्थ करे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **शिवपद के आराधक हैं,...** आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ मोक्ष में प्रगट होता है। भगवान का जो रूप है आनन्द अथवा अनन्त चतुष्टय जो अन्दर त्रिकाल शक्तिरूप से है। आत्मा में सामर्थ्यरूप से, सामर्थ्यरूप से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। वह शक्तिरूप से, सामर्थ्यरूप से था, वह पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हो जाते हैं। आहाहा! उस रत्नत्रय के सेवन से। निश्चयरत्नत्रय के सेवन से इस शिवपद की प्राप्ति उसे होती है। समझ में आया? यह लोग तो ऐसा ही कहे कि निश्चय-निश्चय। व्यवहार होता है, बापू! परन्तु व्यवहार से होता नहीं। व्यवहार आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतराग न हो, तब तक सच्चे सन्त को भी पंच महाव्रत आदि विकल्प आते हैं। परन्तु है वह सब विकल्प जगपंथ। जगपंथ है। आहाहा! वह आस्रव है, वह भावबन्ध है। भगवान अबन्ध स्वरूप में वह राग भावबन्ध है। तो भावबन्ध से अबन्ध परिणाम प्रगट हों? भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप है। उसके आश्रय से अबन्ध परिणाम होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है, यह कहा न! जानने में है। है अवश्य। व्यवहार आये बिना रहता नहीं। बीच में राग जब तक हो, वहाँ आता है। होता है। परन्तु इससे उसका अर्थ ऐसा ले लेवे कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। और व्यवहार में भी कुछ निश्चय का अंश है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

शिवपद के आराधक हैं, और वे ही मोक्षपद के आराधक हुए अपने आत्मा को ध्यावते हैं। आहाहा! शिवपना, वह आत्मा का स्वरूप है। इसलिए धर्मात्मा अपने स्वरूप का ध्यान करते हैं। शिवपद की प्राप्ति के लिये भगवान आनन्द का नाथ प्रभु... आहाहा! उसकी सन्मुखता से उसकी सेवा करते हैं। उसके सन्मुख होना। सत् त्रिकाली के सन्मुख होना, वही उसका स्वीकार है और वह उसका आश्रय है। समझ में आया? आहाहा! मूल बात निश्चय सत्य की है, वह बात पड़ी रही। और व्यवहार का अकेला विस्तार हो गया। अब उसे इतना खोटा लगे कि व्यवहार से नहीं होगा? शास्त्र में लिखा है। व्यवहार से होता है। देखो! इसमें भी आया है। ऐसा पहले आया है। ३१ गाथा में यह आया था।

व्यवहार का नाम भेद हैं, वह भेदरत्नत्रय आराधने योग्य है, उसके प्रभाव से निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति है। इस ओर के पृष्ठ पर है। ३१ गाथा में है। इस ओर के पृष्ठ पर। १६६ पृष्ठ है इसमें। यह भाषा व्यवहार की आवे। समझ में आया? यह डाले जरा। टीकाकार थोड़ा ऐसा। यह व्यवहार कौन सा? छठवें गुणस्थान का जो विकल्प उठे वह। यह बात पहले हो गयी है। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। छठवें गुणस्थान के योग्य, उसे निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसे जो विकल्प उठता है, इससे उसे व्यवहार कहा। और उसका अभाव करके सातवें गुणस्थान में जाये, उसे निश्चय कहा। आहाहा!

पहला जो व्यवहार है सम्यग्दर्शन बिना का, उसे तो व्यवहार भी नहीं कहते। समझ में आया? व्यवहार तो सम्यक् निश्चय आत्मा की दृष्टि, अनुभव हो, पश्चात् जो राग आवे, उसे व्यवहार कहा जाता है। तो इस छठवें गुणस्थान में जो व्यवहार कहा, वह निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसे यहाँ व्यवहार कहकर उस व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा कहा है। वास्तव में तो निर्विकल्प परिणति है, वह आगे बढ़कर शुद्ध बढ़ती है। उसे यह विकिल्प से हो, ऐसा व्यवहार से कथन किया है। आहाहा! बहुत मार्ग ऐसा। और वह भी छठवें गुणस्थान की निर्मलता, उसे सातवें का कारण कहना, वह भी एक न्याय से व्यवहार है। क्योंकि छठवें गुणस्थान की निर्मलता का तो अभाव होकर सातवें की पर्याय प्रगट होती है। छठवें की निर्मलता की पर्याय का व्यय होकर सातवें का उत्पाद निर्विकल्प पर्याय होती है। आहाहा! ऐसा सम्प्रदाय के लोग सुनें तो ऐसा लगे कि यह तो... चिमनभाई! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! अनन्त काल से भटक मरा, भाई! तुझे आत्मा की श्रद्धा करना है, इसकी खबर नहीं है। प्रथम में प्रथम भगवान आत्मा की श्रद्धा (करना)। तो श्रद्धा कब होगी? कि आत्मा है, वह ज्ञान में ज्ञात हो तब उसकी प्रतीति होगी। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा **शिवपद के आराधक हैं, और वे ही मोक्षपद के आराधक हुए अपने आत्मा को ध्यावते हैं।** आहाहा! पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु, शिवस्वरूप ही भगवान आत्मा है। पर्याय में शिव हो, वह मोक्ष। आहाहा! त्रिकाली आनन्द शिवस्वरूप ही कल्याण की मूर्ति है वह आत्मा। आहाहा! ऐसा सुनने का न मिला हो, दरबार! उसी और उसी में...

में जाये और अमुक जाये। आहाहा! अपूर्व बात है न, बापू! पूर्व में अनन्त काल में कभी की नहीं। वास्तव में तो इसने सुनी नहीं। सुनी तो कब कहलाये? रुचि हुई हो तो सुनी कहलाये। आहाहा!

भावार्थः—जो कोई वीतराग, स्वसंवेदनज्ञानी, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्-चारित्ररूप आत्मा को मानते हैं,... देखो! तीनों इकट्ठे लिये हैं। तीन को यहाँ इकट्ठे लिये हैं। उसे व्यवहार होता है, ऐसा कहा है। **जो कोई वीतराग, स्वसंवेदनज्ञानी, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप आत्मा को मानते हैं,...** आहाहा! रागरहित, व्यवहाररहित वीतराग अपना स्वसंवेदनज्ञान। स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन। ज्ञानस्वभाव, वह ज्ञान का वेदन, ज्ञान की एकाग्रता; राग की नहीं। अपनी जो निर्मल स्वसंवेदन परिणति... आहाहा! ऐसा **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप...** सम्यक्चारित्ररूप। है न?

'**पूर्वोक्तरत्नत्रयस्वरूपमेवात्मानं**' यह तो वह रूप कहा न, रूप? लक्षण। लक्षण को रूप कहा। आहाहा! '**रत्नत्रयस्वरूपमेवात्मानं**' लक्षण है। '**वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनः परमात्मानं सम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठानलक्षणं**' टीका में लक्षण है। '**वीतरागस्वसंवेदन-ज्ञानिनः परमात्मानं**' आहाहा! '**वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनः परमात्मानं सम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठानलक्षणं**' अर्थात् रूप। टीका में है। बीच में। पूरा होने की नीचे से तीसरी लाईन। टीका पूर्ण होने की नीचे से ऊपर तीसरी लाईन। यह ३२ गाथा, हों! सम्यक्चारित्र लक्षण, ऐसा। सम्यग्दर्शन सत्य, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसा लक्षण। अर्थात् यहाँ उसे रूप कहा। आहाहा! ३२ गाथा की टीका है न? टीका की नीचे से तीसरी लाईन। ३२ की संस्कृत टीका पूरी होती है, उसके ऊपर से तीसरी लाईन। है? पण्डितजी! देखो! लक्षण। '**वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनः परमात्मानं सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानलक्षणं**' आहाहा!

यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप **आत्मा को मानते हैं,...** ऐसे आत्मा को जो मानता है। आहाहा! बहुत ही गम्भीर भाषा। आत्मा क्या, उसका तो पता नहीं और ऊपर से सब बातें। दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो। वर रहित बारात। समझ में आया? **वे ही मोक्षपद के आराधक हुए...** आहाहा! थोड़े में बहुत डाला है। **वे ही मोक्षपद के आराधक...** आहाहा! **हुए निश्चयनयकर केवल निजस्वरूप को ही ध्यावते हैं।** लो!

व्यवहार की बातें सब बहुत कीं। लेंगे वापस फिर से। यह तो अधिक लोग हैं न! **मोक्षपद के आराधक हुए...** सेवन। मोक्ष का पूर्ण सेवन। **निश्चयनयकर केवल निजस्वरूप को ही ध्यावते हैं।** आहाहा! निश्चय से तो केवल अकेला भगवान आनन्द, ज्ञानस्वरूपी प्रवाह, ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... ऐसी जो ध्रुवता, ऐसा निजरूप, उसे ध्याता है। समझ में आया?

'निश्चयरत्नत्रयमेवाभेदनयेन निजशुद्धात्मानं मन्यन्ते' 'शिवशब्दवाच्यमोक्ष-पदाराधका भवन्ति। आराधकाः सन्तः किं ध्यायन्ति। विशुद्धज्ञानदर्शनं स्वशुद्धात्मस्वरूपं निश्चयनयेन ध्यायन्ति भावयन्तीत्यभिप्रायः॥' आहाहा! योगफल तो भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसे अवलोकना, उसे मानना, उसमें स्थिर होना यह वस्तु है। आहाहा! बाहर का अवलोकना छोड़कर अन्तर भगवान को अवलोकना। बाहर की व्यवहार आदि की श्रद्धा को छोड़कर भगवान की श्रद्धा करना। व्यवहार आचरण के विकल्प को छोड़कर स्वरूप का आराधन करना, स्थिरता करना। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार को छोड़कर आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर आता है। छोड़कर ही आया है न यह। राग-द्वेष रहित कहा न इसका अर्थ? निर्मल का अर्थ ही किया न राग-द्वेषरहित अर्थात् कि व्यवहार से रहित।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन आवे। व्यवहार के कथन।

बहुत जगह तो छठवें गुणस्थानवाले को व्यवहार कहा है। निश्चय समकित तो है, परन्तु चारित्र पूर्ण नहीं और विकल्प की बात है, उसे व्यवहार कहा है। और वह व्यवहार, निश्चय का कारण कहा है। पंचास्तिकाय में भाई ने बहुत लिखा है। समझ में आया? यह कहा है, वह तो वास्तव में तो छठवें गुणस्थान की निर्मल दशा, उसे सातवें का कारण कहा है। परन्तु ऐसा नहीं कहकर, साथ में विकल्प की जाति को कहा, वह व्यवहार का—असद्भूत व्यवहार का कथन है। आहाहा! वास्तव में छठवें गुणस्थान में निर्मल, वह सातवें का कारण, यह सद्भूतव्यवहार है। विकल्प से कहना, वह

असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! और निश्चय से तो स्व का आराधन करना, वही वस्तु है। आहाहा!

त्रिकाली ज्ञायकभाव। इसने सुना न हो, विचार न किया हो, बैठा न हो अब इसे। आहाहा! त्रिकाली भगवान विराजता है भगवत्स्वरूप। परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश स्वरूप ही है। उसका आराधन। समझ में आया? योगफल यह लिया, देखा! **निश्चयनयकर केवल निजरूप को ही ध्यावते हैं।** दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन हैं, वह तो पर्यायनय से भेद पड़ा। है आत्मस्वरूप। उस राग के अभावरूप है इसलिए। तथापि निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे तीन भेद पर्यायनय से कहने में आये हैं। इसलिए उन्हें भी ध्याना नहीं। आहाहा! इसे तो भगवान आत्मा पूर्ण है, उसका ध्यान करना। उसे ध्येय बनाकर ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग! सम्प्रदाय के पोषित जीव हों, वे यह सुने तो (ऐसा लगे), क्या कहते हैं यह? धर्म और मोक्ष का मार्ग यह है।

निश्चयनयकर केवल निजरूप को ही... देखो! परस्वरूप वीतरागादि नहीं, व्यवहार भी नहीं, आहाहा! और तीन प्रकार की पर्याय भी नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? '**विशुद्धज्ञानदर्शनं स्वशुद्धात्मस्वरूपं निश्चयनयेन ध्यायन्ति**' संस्कृत टीका है यह। कैसा है भगवान? कि '**विशुद्धज्ञानदर्शनं स्वशुद्धात्मस्वरूपं**' त्रिकाल '**निश्चयनयेन ध्यायन्ति भावयन्तीत्यभिप्रायः॥**' यह इसका अभिप्राय है, तात्पर्य है। आहाहा!

गाथा - ३३

अथात्मानं गुणस्वरूपं रागादिदोषरहितं ये ध्यायन्ति ते शीघ्रं नियमेन मोक्षं लभन्ते इति प्रकटयति –

१५६) अप्पा गुणमउ णिम्मलउ अणुदिणु जे झायंति।
ते पर णियमें परम–मुणि लहु णिव्वाणु लहंति।।३३।।

आत्मानं गुणमय निर्मले अनुदिनं ये ध्यायन्ति।
ते परं नियमेन परममुनयः लघु निर्वाण लभन्ते।।३३।।

अप्पा इत्यादि। अप्पा आत्मानं कर्मतापन्नम् कथंभूतम्। गुणमउ गुणमयं केवलज्ञानाद्यनन्तगुणनिर्वृत्तम्। पुनरपि कथंभूतम्। णिम्मलउ निर्मलं भावकर्मद्रव्यकर्म–नोकर्ममलरहितं अणुदिणु दिनं दिनं प्रति अनुदिनमनवरतमित्यर्थः। इत्थंभूतमात्मानं जे झायंति ये केचन ध्यायन्ति ते पर ते एव नान्ये णियमें निश्चयेन। किंविशिष्टास्ते। परम–मुणि परममुनयः लहु लघु शीघ्रं लहंति लभन्ते। किं लभन्ते। णिव्वाणु निर्वाणमिति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। अत्रोक्तं भवद्भिर्य एव शुद्धात्मध्यानं कुर्वन्ति त एव मोक्षं लभन्ते न चान्ये। चारित्रसारादौ पुनर्भणितं द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वा ध्यात्वा केवलज्ञानमुत्पादयन्तीत्यत्र विषये अस्माकं संदेहोऽस्ति। अत्र श्रीयोगीन्द्रदेवाः परिहारमाहः। तत्र द्रव्यपरमाणुशब्देन द्रव्यसूक्ष्मत्वं भावपरमाणुशब्देन भावसूक्ष्मत्वं ग्राह्यं न च पुद्गलद्रव्यपरमाणुः। तथा चोक्तं सर्वार्थसिद्धिटिप्पणिके। द्रव्यपरमाणुशब्देन द्रव्यसूक्ष्मत्वं भावपरमाणुशब्देन भावसूक्ष्मत्वमिति। तद्यथा। द्रव्यमात्मद्रव्यं तस्य परमाणुशब्देन सूक्ष्मावस्था ग्राह्या। सा च रागादिविकल्पोपाधिरहिता तस्य सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत्, निर्विकल्पसमाधिविषयत्वेनेन्द्रियमनोविकल्पातीतत्वात्। भावशब्देन स्वसंवेदनपरिणामः तस्य भावस्य परमाणुशब्देन सूक्ष्मावस्था ग्राह्या। सूक्ष्मा कथमिति चेत्। वीतरागनिर्विकल्पसमरसीभावविषयत्वेन पञ्चेन्द्रियमनोविषयातीतत्वादिति। पुनरप्याह। इदं परद्रव्यालम्बनं ध्यानं निषिद्धं किल भवद्भिः निजशुद्धात्मध्यानेनैव मोक्षः [१]कुत्रापि भणितमास्ते। परिहारमाह – 'अप्पा झायहि णिम्मलउ' इत्यत्रैव ग्रन्थे निरन्तरं भणितमास्ते, ग्रन्थान्तरे च समाधिशतकादौ पुनश्चोक्तं तैरेव पूज्यपादस्वामिभि :– 'आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन स स्वयंभूः प्रवृत्तः' अस्यार्थः। आत्मानं कर्मतापन्नं आत्मा कर्ता आत्मन्येवाधिकरणभूते असौ पूर्वोक्तात्मा आत्मना करणभूतेन क्षणमन्तर्मुहूर्तमात्रं उपजनयन् निर्विकल्पसमाधिनाराधयन् स स्वयंभूः प्रवृत्तः

---

१. पाठान्तर :– कुत्रापि = कुत्र

सर्वज्ञो जात इत्यर्थः। ये च तत्र द्रव्यभावपरमाणुध्येयलक्षणे शुक्लध्याने द्व्याधिकचत्वारिंश-द्विकल्पा भणितास्तिष्ठन्ति ते पुनरनीहितवृत्त्या ग्राह्याः। केन दृष्टान्तेनेति चेत्। यथा प्रथमौप-शमिकसम्यक्त्वग्रहणकाले परमागमप्रसिद्धाधःप्रवृत्तिकरणादिविकल्पान् जीवः करोति न चात्रेहादिपूर्वकत्वेन स्मरणभस्ति तथात्र शुकलध्याने वेति। इदमत्र तात्पर्यम्। प्राथमिकानां चित्तस्थितिकरणार्थं। विषय-कषायदुर्ध्यानवञ्चनार्थं च परंपरया मुक्तिकारणमर्हदादिपरद्रव्यं ध्येयम्, पश्चात् चित्ते स्थिरीभूते साक्षान्मुक्तिकारणं स्वशुद्धात्मतत्त्वमेव ध्येयं नास्त्येकान्तः, एवं साध्यसाधकभावं ज्ञात्वा ध्येयविषये विवादो न कर्तव्यः इति।।३३।।

आगे यह व्याख्यान करते हैं – जो अनंत गुणरूप रागादि दोष रहित निज आत्मा को ध्यावते हैं, वे निश्चय से शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं –

जो गुणमय निर्मल आत्मा का ध्यान निरन्तर करते हैं।
परम तपोधन मुनिवर वे ही शीघ्र मोक्ष को पाते हैं।।३३।।

अन्वयार्थ :– [ये] जो पुरुष [गुणमय] केवलज्ञानादि अनंत गुणरूप [निर्मले] भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म मल रहित निर्मल [आत्मानं] आत्मा को [अनुदिनं] निरंतर [ध्यायंति] ध्यावते हैं, [ते परं] वे ही [परममुनयः] परममुनि [नियमेन] निश्चयकर [निर्वाण] निर्वाण को [लघु] शीघ्र [लभंते] पाते हैं।

भावार्थ :– यह कथन श्रीगुरु ने कहा, तब प्रभाकर भट्ट ने पूछा कि हे प्रभो; तुमने कहा कि जो शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं, वे ही मोक्ष को पाते हैं, दूसरा नहीं। तथा चारित्रसारादिक ग्रंथों में ऐसा कहा है, जो द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान करें वे केवलज्ञान को पाते हैं। इस विषय में मुझको संदेह है। तब श्रीयोगीन्द्रदेव समाधान करते हैं – द्रव्यपरमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता और भावपरमाणु से भाव की सूक्ष्मता कही गई है। उसमें पुद्गल परमाणु का कथन नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में भी ऐसा ही कथन है, द्रव्यपरमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता और भावपरमाणु से भाव की सूक्ष्मता समझना, अन्य द्रव्य का कथन न लेना। यहाँ निज द्रव्य तथा निज गुण पर्याय का ही कथन है, अन्य द्रव्य का प्रयोजन नहीं है। द्रव्य अर्थात् आत्मद्रव्य उसकी सूक्ष्मता वह द्रव्यपरमाणु कहा जाता है। वह रागादि विकल्प की उपाधि से रहित है, उसको सूक्ष्मपना कैसे हो सकता है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया। उसका समाधान इस तरह है – कि मन इन्द्रियों के अगोचर होने से सूक्ष्म कहा जाता है, तथा भाव (स्वसंवेदनपरिणाम)

भी परमसूक्ष्म हैं, वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं, वहाँ मन और इन्द्रियों को गम्य नहीं हैं, इसलिये सूक्ष्म है। ऐसा कथन सुनकर फिर शिष्य ने पूछा, कि तुमने परद्रव्य के आलम्बनरूप ध्यान का निषेध किया, और निज शुद्धात्मा के ध्यान से ही मोक्ष कहा। ऐसा कथन किस जगह कहा है? इसका समाधान यह है – 'अप्पा झायहि णिम्मलउ' निर्मल आत्मा को ध्यावो, ऐसा कथन इस ही ग्रंथ में पहले कहा है, और समाधिशतक में भी श्रीपूज्यपादस्वामी ने कहा है 'आत्मानम्' इत्यादि। अर्थात् जीवपदार्थ अपने स्वरूप को अपने में ही अपने करके एक क्षणमात्र भी निर्विकल्प समाधिकर आराधता हुआ वह सर्वज्ञ वीतराग हो जाता है। जिस शुक्लध्यान में द्रव्यपरमाणु की सूक्ष्मता और भावपरमाणु की सूक्ष्मता ध्यान करने योग्य है, ऐसे शुक्लध्यान में निजवस्तु और निजभाव का ही सहारा है, परवस्तु का नहीं। सिद्धान्त में शुक्लध्यान के ब्यालीस भेद कहे हैं, वे अवाँछीक वृत्ति से गौणरूप जानना, मुख्य वृत्ति से न जानना। उसका दृष्टांत – जैसे उपशमसम्यक्त्व के ग्रहण के समय परमागम में प्रसिद्ध जो अधःकरणादि भेद हैं, उनको जीव करता है, वे वाँछापूर्वक नहीं होते, सहज ही होते हैं, वैसे ही शुक्लध्यान में भी ऐसे ही जानना। तात्पर्य यह है कि प्रथम अवस्था में चित्त के थिर करने के लिए और विषयकषायरूप खोटे ध्यान के रोकने के लिये परम्पराय मुक्ति के कारणरूप अरहंत आदि पंचपरमेष्ठी ध्यान करने योग्य है, बाद में चित्त के स्थिर होने पर साक्षात् मुक्ति का कारण जो निज शुद्धात्मतत्त्व है, वही ध्यावने योग्य है। इस प्रकार साध्य-साधकभाव को जानकर ध्यावने योग्य वस्तु में विवाद नहीं करना, पंचपरमेष्ठी का ध्यान साधक है, और आत्मध्यान साध्य है, यह निःसंदेह जानना।।३३।।

गाथा-३३ पर प्रवचन

आगे यह व्याख्यान करते हैंः—इसी व्याख्यान को विशेष करते हैं। ३३।

१५६) अप्पा गुणमउ णिम्मलउ अणुदिणु जे झायंति।
ते पर णियमँ परम-मुणि लहु णिव्वाणु लहंति।।३३।।

जो अनन्त गुणरूप, रागादि दोष रहित... भगवान आत्मा अन्दर कैसा है? अनन्त गुणरूप। आहाहा! आत्मगुणस्वरूप है न? गुणस्वरूप। **रागादि दोष रहित...**

ऊपर यह है। **अनन्त गुणरूप...** अनन्त गुणस्वरूप कहा है। टीका। अनन्त गुणस्वरूप अर्थात् अनन्त गुणरूप। आहाहा! महाज्योति चैतन्यधाम पूर्णानन्दस्वरूप ऐसा जो **अनन्त गुणरूप, रागादि दोष रहित...** व्यवहार के विकल्प के दोष से भी रहित। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग भी दोषस्वरूप है। अरे! कठिन लगे। भगवान की भक्ति, वह रागरूप है, दोषस्वरूप है। लोगों को लगे, हों! भक्ति करनेवाले को भक्ति से लाभ होता है, ऐसा माननेवाले को यह भारी कठिन लगे। भक्ति आदि होते हैं। जब तक वीतरागता न हो, वहाँ तक ऐसा भाव आता है। परन्तु वह भाव सदोष है।

मुमुक्षु : निश्चयभक्ति तो सम्यग्दर्शन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भक्ति तो अन्तर की है। यह भक्ति व्यवहार। आहाहा! निश्चयभक्ति ही आत्मा की है। आया है न? नियमसार में आया है। समयसार की जयसेनाचार्य की टीका में आया है। नियमसार में तो पूरा भक्ति का अधिकार है। वहाँ तो श्रावक और मुनि दोनों निश्चयभक्ति करते हैं, ऐसा लिया है। श्रावक और मुनि दोनों। आहाहा! निश्चयभक्ति का वर्णन है, नियमसार में। अपना भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता की भक्ति। देखो! उन्होंने तीनों ली है। श्रावक को तीनों ली है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन निर्मल, हों! निश्चय। आहाहा! वहाँ दो नहीं लिये। वे कहे न, श्रावक को शुद्ध उपयोग नहीं होता। वह तो श्रावक को शुद्धोपयोग मुनि के योग्य है, वह नहीं होता। आहाहा! मुनि को जो है, वह कहाँ है उसे। उसके योग्य शुद्धउपयोग बराबर है। आहाहा! शुद्धउपयोग नहीं तो धर्म ही नहीं। आहाहा!

जो अनन्त गुणरूप रागादि दोष रहित निज आत्मा को ध्यावते हैं, वे निश्चय से शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं—लो! '**शीघ्रं**' शब्द पड़ा है। इसमें क्रम कहाँ रहा? क्रमबद्ध। यह क्रमबद्ध में ही शीघ्र आया है। जो कोई रत्नत्रय का आराधन करे और अल्प काल में ही मोक्ष हो, ऐसा क्रमबद्ध ही वह है। शीघ्र होता है अर्थात् वहाँ क्रम टूट गया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शब्द-शब्द में विवाद उठावे और उठे। शब्द-शब्द में सत्यार्थ हो, वह प्रगट हो, ऐसा है। आहाहा! वह शीघ्र ही, वापस ऐसा है न? है न? '**शीघ्रं नियमेन मोक्षं लभन्ते**' लो! '**शीघ्रं नियमेन मोक्षं लभन्ते**' अर्थात्? जिसने भगवान आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान का ध्यान किया आत्मा का, उसे तो अल्प काल में ही, शीघ्र अर्थात्

अल्प काल में ही मोक्ष की पर्याय आयेगी। उसके क्रम में वही आयेगी। उसे अधिक काल लगेगा नहीं, ऐसा कहना है। शीघ्र का अर्थ उसके क्रम के अतिरिक्त पहले मोक्ष होगा, ऐसा अर्थ नहीं है। परन्तु ऐसे जीव को मोक्ष होने में अल्प काल ही होता है। इसका नाम शीघ्र। इसमें भी तोड़ डाली है। देखो! शीघ्र होता है। उसमें क्रम कहाँ रहा? वह क्रम में ही अल्प काल में होगा, ऐसा शीघ्र होता है।

जिसने भगवान आत्मा का सेवन किया... आहाहा! दर्शन-ज्ञान-चारित्र से जिसने आत्मा का सेवन किया, उसे तो अल्प काल में ही केवल (ज्ञान) होगा। दूज उगी है, वह क्रम में पूर्णिमा होनेवाली ही है। वह उसका क्रम है। तीज, चौथ होकर तेरहवें दिन वहाँ पूनम ही होनेवाली है। इसी प्रकार जिसने आत्मा के शुद्धस्वरूप का आराधन किया, उसे अब मोक्ष का काल ही अल्प है। इसका नाम शीघ्र है। समझ में आया? आहाहा! विवाद निकालना हो, उसे वाक्य-वाक्य में विवाद है। चन्दुभाई! आहाहा! इसकी खबर है सब विवादवालों की। ३३। लो! ३३वाँ वर्ष यह ३३ आयी। तीज और ३३। तीज है न आज।

१५६) अप्पा गुणमउ णिम्मलउ अणुदिणु जे झायंति।
ते पर णियमें परम-मुणि लहु णिव्वाणु लहंति॥३३॥

अन्वयार्थः—जो पुरुष... अर्थात् आत्मा। **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप...** आहाहा! ऐसा जो आत्मा। केवल ज्ञान। केवलज्ञान पर्याय की बात नहीं, हों! केवल ज्ञान—अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ आत्मा, जहाँ-जहाँ आत्मा, वहाँ-वहाँ ज्ञान। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... यह अनुभवप्रकाश में लिया है। जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ आत्मा। रागादि आत्मा नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी रागादि आत्मा नहीं। जहाँ-जहाँ ज्ञान। ज्ञान अर्थात् शास्त्र का (ज्ञान), वह नहीं। अन्दर ज्ञानगुण। जानने का गुण। जहाँ-जहाँ गुण, वहाँ-वहाँ आत्मा और जहाँ-जहाँ आत्मा, वहाँ ज्ञानगुण। ऐसा जो **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म मल रहित...** लो! निर्मल की व्याख्या की। **निर्मल आत्मा को...** आहाहा! ऐसास जो भगवान पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, ऐसे निर्मल आत्मा को **'अनुदिनं' 'अनुदिनं'** अर्थात् दिन-दिन प्रति अर्थात् निरन्तर। आहाहा!

निरन्तर ध्यावते हैं,... आहाहा! देखो! यहाँ भावकर्म निकाल दिया, देखा! व्यवहाररत्नत्रय का राग वह भावकर्म है। निर्मल में निकाल दिया न? निर्मल की व्याख्या में निकाल दिया। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह भावकर्म है। आहाहा! ऐसे **भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म मल रहित निर्मल आत्मा को निरन्तर ध्यावते हैं,... 'अनुदिनं'** की व्याख्या की है। **'अनुदिनं'** कहीं आता है ऐसा। **वे ही परममुनि...** मुनि की प्रधानता से कथन है न! **'परममुनयः' निश्चयकर निर्वाण को...** मोक्ष को। लघु आया, देखा? शीघ्र। ऊपर शीघ्र कहा था न? लघु अर्थात् शीघ्र काल में मोक्ष होगा। आहाहा! जो निरन्तर **भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म मल रहित निर्मल आत्मा को निरन्तर ध्यावते हैं,...** आहाहा! **वे ही परममुनि निश्चयकर निर्वाण को शीघ्र पाते हैं।** पाठ में ही है **'लघु'।** उसे अल्पकाल में मोक्ष होगा। उसे लम्बा काल रहेगा नहीं। आहाहा!

भावार्थः—यह कथन श्रीगुरु ने कहा, तब प्रभाकर भट्ट ने पूछा कि हे प्रभो! तुमने कहा कि जो शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं, वे ही मोक्ष को पाते हैं, दूसरा नहीं। तो शास्त्र में तो दूसरा कहा है न, ऐसा कहेंगे। द्रव्यपरमाणु का और भावपरमाणु का ध्यान करने का कहा। तुम कहते हो कि आत्मा का ध्यान करना। तो द्रव्यसार में वह है। द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु। उसकी क्या व्याख्या है, वह करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल ४, मंगलवार
दिनांक-२६-१०-१९७६, गाथा-३३, प्रवचन-११५

परमात्मप्रकाश, ३३ गाथा। आचार्य ने ऐसा कहा, निरन्तर भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसका ध्यान करना, वह मोक्ष का कारण है। गाथा। समझ में आया? है न? **जो पुरुष केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म मल रहित निर्मल आत्मा को निरन्तर ध्यावते हैं,...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य, उसे पुण्य-पाप के विकल्प से रहित उसका जो ध्यान करता है अथवा ध्यान के विषय में उसे दृष्टि में लेता है। पर्याय में, पूर्ण ज्ञान है, उसे विषय करके—ध्येय बनाकर ध्यान करता है, उसे मुक्ति होती है। वहाँ शिष्य ने प्रश्न किया।

भावार्थः—यह कथन श्रीगुरु ने कहा, तब प्रभाकर भट्ट ने पूछा कि हे प्रभो! तुमने कहा कि जो शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं, वे ही मोक्ष को पाते हैं,... शुद्ध आत्मा परमपवित्र का ध्यान करने से (मोक्ष प्राप्त होता है)। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आत्मा का ध्यान है। समझ में आया? तो आपने तो शुद्धात्मा के ध्यान से मोक्ष कहा। दूसरा नहीं, दूसरा उपाय नहीं—ऐसा आपने कहा। **तथा चारित्रसारादिक ग्रन्थों में...** दूसरे ग्रन्थों में तो दूसरा कहा है। चारित्र (सार) आदि ग्रन्थों में। **जो द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान करें...** दूसरे ग्रन्थों में ऐसा कहा है कि द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान करे तो मोक्ष होता है। दोनों में अन्तर क्यों पड़ा? समझ में आया? **द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु का ध्यान करें वे केवलज्ञान को पाते हैं। इस विषय में मुझको सन्देह है।** इस विषय में प्रभाकर भट्ट शिष्य कहता है कि मुझे सन्देह है। इन दो में क्यों अन्तर पड़ा?

योगीन्द्रदेव समाधान करते हैं—द्रव्यपरमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता... लेना। वहाँ परमाणु नहीं लेना, ऐसा कहते हैं। द्रव्यपरमाणु अर्थात् रजकण जो रूपी परमाणु है, वह नहीं लेना। द्रव्यपरमाणु की व्याख्या **द्रव्य की सूक्ष्मता...** द्रव्यपरमाणु, द्रव्य—परम-अणु। सूक्ष्मता। द्रव्य की सूक्ष्मता। भावपरमाणु भाव की सूक्ष्मता। दो अर्थ किये। द्रव्यपरमाणु अर्थात् रजकण नहीं। इन्द्रिय ग्राह्य नहीं, ऐसा अतीन्द्रिय स्वभाव भगवान,

उसे द्रव्य सूक्ष्म अथवा द्रव्यपरमाणु कहा जाता है। आहाहा! और भावपरमाणु—स्वसंवेदन पर्याय को भावपरमाणु कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा जो अखण्ड शुद्ध चैतन्यघन, वह सूक्ष्म है। इसलिए उसे द्रव्यपरमाणु कहा जाता है। परमाणु वह जड़ का रजकण नहीं लेना। और भावसूक्ष्मता अर्थात् राग और विकल्प नहीं लेना वहाँ। आत्मा के सन्मुख की स्वसंवेदन—स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन, ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की स्वसंवेदन परिणति को यहाँ भावसूक्ष्म कहते हैं। समझ में आया? भावसूक्ष्मता अर्थात् उस परमाणु का भावसूक्ष्म, वह यहाँ नहीं लेना है।

उसमें पुद्गल परमाणु का कथन नहीं है। उसमें पुद्गल जो परमाणु है, उसके ध्यान की बात वहाँ है ही नहीं। जड़ की कहाँ बात करनी? आहाहा! **तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में भी...** तत्त्वार्थसूत्र है जो उमास्वामी का। दशलक्षण पर्व में जो वाँचन किया जाता है। उस सूत्र में उसकी टीका सर्वार्थसिद्धि नाम की टीका है। उसमें **ऐसा ही कथन है,...** आहाहा! **द्रव्यपरमाणु से द्रव्य की सूक्ष्मता और भावपरमाणु से भाव की सूक्ष्मता कही गयी है।** तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में भी यह कहा है। भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण वस्तु, उसका ध्यान कर। आहाहा! और या उसकी स्वसंवेदन निर्मल परिणति में स्थिर हो। यह मार्ग है। व्यवहार के विकल्प से और उससे होगा, यह बात तो यहाँ ली नहीं। शुभराग, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह अबन्धस्वभाव के परिणाम का कारण नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है।

अभी लोग थोड़ा ऐसा कहते हैं, समन्वय करो। थोड़ा तुम ढीला करो, हम थोड़ा ढीला करें। दोनों का मेल करो—समन्वय करो, ऐसा कहते हैं। इसमें ढीला क्या हो? वस्तु जो है अखण्ड परमात्मस्वरूप परमात्मा—आत्मा है। यह परमात्मप्रकाश है न? पर्याय का लक्ष्य छोड़ दो तो यह वस्तु परमात्मा ही है। आहाहा! भगवन्त परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' जिनप्रवचन—वीतराग त्रिलोकनाथ के वचन का मर्म यह आत्मा जिनस्वरूप है, उसे जान। आहाहा! वीतरागस्वरूप है, जिनस्वरूप है, परमेश्वरस्वरूप है, परमात्मस्वरूप है, भगवन्तस्वरूप है, ईश्वरस्वरूप है, ब्रह्मास्वरूप है, विष्णुस्वरूप

है, शंकरस्वरूप है। वे दूसरे ब्रह्मा कहते हैं, वह नहीं, हों! ब्रह्मानन्दस्वरूप भगवान, इसलिए ब्रह्मस्वरूप है। विष्णु—ज्ञान सर्व को जानता है, इस अपेक्षा से ज्ञान आत्मा स्वयं सर्वव्यापक विष्णु है। शंकर—सुख का कारण है। सुखस्वरूप ही है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसे यहाँ शंकर कहते हैं। वे दूसरे शंकर कहते हैं, वह नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा ही...

यहाँ जिन द्रव्य तथा निज गुण पर्याय का ही कथन है,... देखो! द्रव्यपरमाणु में निज आत्मा का कथन है और भावपरमाणु में भाव की सूक्ष्मता (लेना)। उसमें द्रव्य की सूक्ष्मता, सूक्ष्म द्रव्य; और भावपरमाणु में भाव की सूक्ष्मता। निर्मल पर्याय वीतरागी पर्याय को यहाँ सूक्ष्म कहा है। समझ में आया? **अन्य द्रव्य का प्रयोजन नहीं है।** जिसे—आत्मा को मुक्ति करनी है, उसमें उसके ध्यान में परमाणु द्रव्य अथवा स्वयं उसकी पर्याय वही उसका विषय है। अन्य द्रव्य का यहाँ काम नहीं। आहाहा! अब जिसे निज द्रव्य क्या है? कितना है? कहाँ है? कैसे है, इसकी खबर नहीं। वह उसका ध्यान कैसे करे? जो कुछ वस्तु ख्याल में आयी हो, ज्ञान की पर्याय में यह ज्ञेय है, ऐसा भास हुआ हो तो उसमें स्थिर होने की चारित्रदशा होती है। परन्तु वस्तु की जहाँ खबर नहीं कि वस्तु कितनी और कहाँ है? समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें (सूक्ष्म) इसलिए लोगों को अभी व्यवहार करते हैं, वह करो। व्यवहार से धीरे-धीरे (होगा)। निश्चय का लक्ष्य रखकर व्यवहार करो, ऐसा कहते हैं। अर्थात् क्या होगा? व्यवहार करूँ, ऐसी जो कर्तृत्वबुद्धि है, वहाँ निश्चय का लक्ष्य हो ही नहीं सकता। आहाहा! 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन... (करना सोई)' यह कल आया है नरेन्द्र का। ऐसा कि व्यवहार निश्चय का लक्ष्य रखकर करो। उससे धीरे-धीरे हो जायेगा। अरे! भगवान!

वस्तु है, वह अत्यन्त चैतन्यज्योति है, उसका और लक्ष्य अर्थात् क्या? उसकी अन्तर्दृष्टि करना, निर्विकल्प दृष्टि से वह ध्येय में आ जाती है। आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरी कोई पद्धति नहीं है। लोगों को सूक्ष्म बात पड़े, इसलिए यह (कठिन लगती है)। पूरे दिन व्यवहार-व्यवहार हो, भक्ति, पूजा, वाँचन, श्रवण, यात्रा, चर्चा, इन सबमें तो विकल्प होते हैं। आहाहा! इसलिए विकल्प से हो, ऐसी बात उसे बैठ जाती है। परन्तु

यह तो चिन्तवन के विकल्प से भी पार वह चीज़ है। उसका चिन्तवन करना कि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... वह भी विकल्प-राग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है वस्तु। यह सत्य का आग्रह है। आहाहा!

ज्ञायकस्वरूप, जिसे छठवीं गाथा में कहा न? जो ज्ञायकस्वभाव, वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। पहले से छठवाँ (गुणस्थान) प्रमत्त और सातवें से चौदह (अप्रमत्त), वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! क्योंकि ज्ञायकभाव है, वह व्यवहार का जो शुभभाव उसरूप ज्ञायकभाव हुआ नहीं। समझ में आया? यदि हो तो शुभभाव है, वह अचेतन है। शुभभाव में चेतन का अभाव है। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का स्मरण, भगवान का स्मरण, वह सब भाव अचेतन है। आहाहा! उस शुभभाव में चेतन का अंश नहीं है। चैतन्यस्वरूप ज्ञान का पिण्ड प्रभु, सूर्य की किरणें तो सफेद होती हैं। उसी प्रकार आत्मा की किरण तो निर्मल होती है। वह राग उसकी किरण नहीं है। सूक्ष्म बातें ऐसी, इसलिए लोगों को (कठिन पड़ता है)... आहाहा!

कहते हैं कि यह शुभराग ध्यान करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव, वह ध्यान करनेयोग्य है। उसे द्रव्यपरमाणु कहते हैं। द्रव्यसूक्ष्म। अथवा स्वसंवेदन। आहाहा! स्व अर्थात् द्रव्य, उसका वेदन, उसे यहाँ पर्याय लिया है। रखा तो सही उसमें वापस। समझ में आया? त्रिकाल भगवान आत्मा, वह द्रव्य सूक्ष्म परमाणु। उसका ध्यान वह पर्याय है। परन्तु उस पर्याय का विषय है, वह द्रव्य है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़े। और भावसूक्ष्म अर्थात्, भावपरमाणु अर्थात् वह भगवान शुद्ध चैतन्य के सन्मुख, उसके सन्मुख का स्वसंवेदन, अपना वेदन और प्रत्यक्ष ज्ञान का अनुभव करना, उसे भावपरमाणु, भावसूक्ष्म कहा जाता है। आहाहा! सब भाषा नयी लगे। यह तो कहते हैं, द्रव्यपरमाणु, भावपरमाणु, वह व्यवहार के चारित्र (सार) ग्रन्थ हैं, उसमें भी ऐसा कहा है। जो व्यवहार के शास्त्र हैं, चारित्रसार आदि। कहा न? अथवा तत्त्वार्थसूत्र लिया। जो पर्यायप्रधान कथन है उसमें। उसमें वह द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणु को आत्मा और आत्मा का वेदन लिया है। आहाहा! समझ में आया? पूरा

भगवान पूर्णानन्द एक समय की विकृत अवस्था के पीछे जागती ज्योति चैतन्यबिम्ब प्रभु है। आहाहा! उसकी दृष्टि करना, वह उसका ध्यान है। वह मोक्ष का उपाय है। व्यवहार-व्यवहार बीच में आवे, वह मोक्ष का उपाय नहीं। ऐसा हुआ न साथ ही? विवाद सब पण्डितों को अभी यह है। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार...। व्यवहार कहाँ से आया? निश्चय बिना व्यवहार नहीं हो सकता।

जिसे आत्मा चैतन्यस्वरूप भगवान का अनुभव होकर सम्यग्दर्शन नहीं, उसे व्यवहार कहाँ से आया? सम्यग्दर्शन शुद्ध द्रव्यस्वभाव का अनुभव (होता है), उसे फिर जो राग आवे, उसे व्यवहार कहा जाता है। तथापि वह व्यवहार बन्ध का कारण है। आहाहा! ज्ञानी का राग भी बन्ध का कारण है। क्योंकि राग, वह कर्मधारा है और आत्मा की ओर के श्रद्धा-ज्ञान आदि, वह ज्ञानधारा है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। सूक्ष्म कहेंगे।

वह रागादि विकल्प की उपाधि से रहित है, उसको सूक्ष्मपना कैसे हो सकता है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया। उसका समाधान... अर्थात् क्या कहा? कि जिस आत्मा को तुमने द्रव्यपरमाणु कहकर सूक्ष्म कहा, वह विकल्परहित है, उसे तुम सूक्ष्म कैसे कहते हो? विकल्प उपाधि से रहित है। ऐसे को सूक्ष्म कैसे कहते हो? प्रश्न समझ में आता है? प्रश्नकार ने ऐसा कहा कि जिसमें विकल्प की आदि तो है नहीं। ऐसी चीज़ को तुम सूक्ष्म कैसे कहते हो? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? विकल्प है दया, दान का गुण-गुणी भेद विकल्प है, वह तो अन्दर सूक्ष्म है। दूसरे की अपेक्षा से। परन्तु यह तो विकल्परहित है, उसे तुम सूक्ष्म कैसे कहते हो? विकल्प को तो स्थूल, स्थूल परिणाम (कहा है)। उसे सूक्ष्म कहा ही नहीं। पुण्य-पाप के अधिकार में स्थूल संक्लेश परिणाम से, स्थूल संक्लेश अशुभ परिणाम से निवृत्त हुआ, परन्तु स्थूल शुभ परिणाम से निवृत्त नहीं हुआ, ऐसा है। इसलिए उसे सामायिक और सम्यग्दर्शन नहीं है, ऐसा कहते हैं। कहो, जादवजीभाई! सामायिक की न सब सामायिक?

अन्दर में शुभभाव (हो), उसे स्थूल कहा है। (समयसार) पुण्य-पाप अधिकार में। सामायिक की प्रतिज्ञा लेकर भी अशुभ संकल्प स्थूल को छोड़ता है परन्तु स्थूल शुभविकल्प को छोड़ता नहीं, इसलिए उसे सामायिक नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो सामायिक करके बैठे। भान कुछ नहीं होता। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... करे

(तो) हो गयी सामायिक। उसमें और कोई ध्यान दे दे। बापू! चाबी कहाँ रखी है? वह और बीच में कह दे। मेरे पास है चाबी यहाँ? यह खबर नहीं तुझे? अपने गोखला में रखते हैं हर समय, खबर नहीं? आहाहा! अभी तो उसके शुभपरिणाम का ठिकाना नहीं। और होवे तो भी वह धर्म सामायिक नहीं। आहाहा! सामायिक और प्रोषध और प्रतिक्रमण करते हैं न? उसके शुभभाव का ठिकाना नहीं अभी। उसे सामायिक, प्रतिक्रमण कहाँ से लाना? शुभभाव स्थूल है, स्थूल है। उससे रहित भगवान आत्मा और उसकी परिणति, वह सूक्ष्म है। आहाहा! ऐसी बातें सुनने को मिलती नहीं। किसी दिन मिले उसमें कहाँ इसमें... मुसाफिर आया है। भटकता-भटकता चौरासी के अवतार में। और ५-५०, ६०, ७०, ८० (वर्ष) अवधि शरीर की हो। कितनी हो अधिक? आहाहा! उसमें इस शुभभाव की क्रिया में धर्म मानकर स्वरूप को पहिचानता नहीं, उसका जन्म अफल जाता है। आहाहा!

जो अनन्त भव को एक भव में अभावरूप करने का यह अवसर है। श्रीमद् कहते हैं, श्रीमद्। श्रीमद् राजचन्द्र में आता है। अनन्त भव को इस एक भव में टालना, ऐसा यह भव है। आहाहा! चौरासी लाख के अवतार, भाई! भूल गया है। यहाँ जरा मनुष्य हुआ, शरीर कुछ ठीक मिला, कुछ स्त्री, पुत्र, व्यापार और धन्धा व्यवस्थित चला तो अपने मानो फले और बढ़ गये। शान्तिभाई! चिमनभाई के पास कहाँ इतने अधिक पैसे थे। तुम पुत्र हुए। पैसे बढ़ाये या नहीं? तो बढ़े कहना या नहीं? नहीं? आहाहा! यह तो कहा नहीं श्रीमद् ने?

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये,
परिवार और कुटुम्ब है क्या, वृद्धिनय पर तौलिये।
संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है॥

आहाहा! अधिक लड़के, अधिक पैसा, अधिक मकान हो गया, उसमें फँस गया। नरदेह को हार गया। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार प्रमाणे....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई! मनसुख! व्यवहार करने में मजा आता है, ऐसा कहते हैं। इसे रुकना पड़ा, उस लड़के को अलग करना था तो। यह निवृत्त होता था। वहाँ तीनों

अलग हुए। यह फिर जुड़ना पड़ा वहाँ। अरे! अरे! यह तो अपना छोड़कर पर में यह थकानेवाली मजदूरी है सब। भव की वृद्धि का कारण है। आहाहा! बुद्धि बिना के व्यक्ति भी पाँच-पाँच लाख पैदा करते हैं। नहीं देखा? और बुद्धि के खां (विशेष बुद्धिमान) हों, वे महीने में पाँच हजार पैदा करे तो पसीना उतरता है उसमें तो। बाहर की चीज के साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! नहीं कहा वह? पेट्रोल के कुँए निकले हैं। एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी। अनार्य देश। मरकर नरक में जानेवाले हैं। कौन सा देश कहा?

मुमुक्षु : ईरान।

पूज्य गुरुदेवश्री : ईरान। देश छोटा, परन्तु ऐसा पेट्रोल निकला कुँए में, तो एक घण्टे में डेढ़ लाख की आमदनी। चौबीस घण्टे में छत्तीस लाख की आमदनी।

मुमुक्षु : उसका नाम काला सोना कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहलाये काला सोना। आहाहा! उसके कुटुम्ब ने मार डाला। ऐसा सब वैभव भोगने के लिये। अब दूसरा गद्दी पर बैठा। वह सब मरकर नरक जानेवाले हैं। अर र र! आहाहा! जिसे दिन की ३६ लाख की आमदनी, वह नरक में चिल्लाहट मचानेवाले हैं, बापू! भूल गया, भूल गया। कहाँ जाऊँगा? कहाँ रहूँगा? किस प्रकार रहूँगा? भविष्य में रहनेवाला तो है। आत्मा तो है, वह तो रहनेवाला तो है न भविष्य में? परन्तु किस प्रकार रहूँगा, उसकी इसे खबर नहीं होती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिसकी दृष्टि राग और प्रेम की रुचि में पड़ी है, वह भविष्य में दु:ख में रहेगा। आहाहा! रहनेवाला तो है। वह कहीं नाश हो ऐसा है? अनादि-अनन्त है। वस्तु तो है। भले शरीर चला जाये। वह तो स्वयं जाता है अन्यत्र। अब कहाँ रहना है उसे? किस प्रकार रहना है?

मुमुक्षु : परन्तु ऐसा विचार करने की फुरसत कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनसुख! कहते हैं, ऐसा विचार करने की फुरसत कहाँ है? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा है, वह तो नित्य ही है और अविनाशी है। अब उस अविनाशी

को किस प्रकार रखना और रहना? जिसकी बुद्धि राग और विकार के प्रेम में पड़ी है, वह वर्तमान दु:ख में है और भविष्य में उस दु:ख की दशा से नित्यपना व्यतीत करेगा। आहाहा! समझ में आया? उस दु:ख की दशा में नित्यपना तो अविनाशी है, वह कहाँ चले जानेवाला है? आहाहा! दु:ख की दशा में अविनाशी नित्य चीज़ रहेगी। आहाहा! यह वापस कौवे और कुत्ते के अवतार हो तो मनुष्यपना मुश्किल है। आहाहा! और जिसकी दृष्टि... यहाँ यह कहते हैं न ध्यान में? जिसने भगवान को—प्रभु को ध्यान में लिया। आहाहा! पहले ध्यान में तो ले। नहीं कहते? यह बात करे तो सुन न! ध्यान में—लक्ष्य में तो ले। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि ध्यान में तो प्रभु को ले। आहाहा!

मुमुक्षु : यह दिन में तो ऐसा कहते थे कि ध्यान समझे बिना किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले समझने के लिये तो यहाँ बात करते हैं। यह सम्यग्दर्शन, वह ध्यान है। यह मोक्षपाहुड़ में आता है। समकित का ध्यान करना। अष्टपाहुड़ में श्लोक आता है। आता है न! अर्थात् कि अन्दर यह आत्मा त्रिकाली है, उस पर दृष्टि करना। बारम्बार उस ओर का झुकाव रखना। आहाहा! जहाँ प्रभु पूर्ण पदार्थ स्थित है, जहाँ आनन्दकन्द आनन्दधाम है, वहाँ आगे दृष्टि को, ज्ञान को झुकाकर ऐसा अभ्यास इसे करना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? तो इस ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञायक आया होगा तो वह ज्ञायक अविनाशी पर्याय निर्मल में रहेगा। भविष्य में रहेगा तो सही। समझ में आया? आहाहा! दीर्घ विचार कहाँ किया है? अब बाद का अनन्त काल कहाँ व्यतीत करना है? अनन्त काल तो रहनेवाला है। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि यदि द्रव्य का ध्यान किया होगा और स्वसंवेदन प्रगट किया होगा तो उस स्वसंवेदन में भविष्य का काल अनन्त रहेगा। आहाहा! वरना तो राग के प्रेम की रुचि में चौबीस घण्टे में पूरा दिन यह... यह... यह... यह... यह... तुझे कहाँ जाना है, बापू? क्या है यह? अभी पुण्य का भी ठिकाना नहीं जिसे। धर्म तो एक ओर रहा परन्तु पुण्य अर्थात् सत्समागम, श्रवण, मनन, वाँचन ऐसा जो भाव है, वह पुण्य है, वह भी अभी जिसे नहीं। दो-चार घण्टे वाँचन चाहिए, श्रवण चाहिए, उसका चिन्तवन करना, शास्त्र स्वाध्याय करना, शास्त्र का स्वाध्याय करे तो इसे पता लगे कि यह सत्य

क्या है। स्वाध्याय नहीं होती। बहियाँ फिराने में पूरा दिन व्यतीत करता है और धूल में दो-पाँच करोड़ रुपये मिले वहाँ हो जाता है कि हम ओहोहो! धूल में भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, इस पुण्य परिणाम में भी जिसका ठिकाना नहीं, उसे धर्म तो कहाँ है? धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य का भी ठिकाना वाँचन, श्रवण, मनन, सत्समागम दो-चार घण्टे व्यतीत करना चाहिए चौबीस घण्टों में से, वह भी नहीं होता, उसे तो अकेला पाप है। आहाहा! अरे! इसलिए कहा था न कि बहुत पैसेवाले जो हैं, उन्हें धर्म तो नहीं, पुण्य नहीं, और सत्समागम करना, वाँचन करना, श्रवण करना, मनन करना, देवदर्शन, पूजा, भक्ति इत्यादि (नहीं) और वह भी एक घण्टे जाये शोर मचाकर चला जाये उसमें। पूरा करते हैं। यह देवदर्शन गये और हमेशा जाना है। आहाहा! भगवान! तेरे पुण्य का भी ठिकाना नहीं, प्रभु! तो फिर उसे कहाँ जाना? इसलिए आचार्य ने कहा है कि पुण्य से वैभव मिलता है, वैभव से मद मिलता है—मद होता है और मद से मति भ्रष्ट होती है और मति भ्रष्ट से पशु में जाता है। तिर्यंच में जाता है। क्योंकि माँस, मदिरा आर्य मनुष्य को तो होते नहीं। मदिरा और माँस, वह आर्य मनुष्य को नहीं होते इसलिए (नरक में तो नहीं जाता)।

मुमुक्षु : पैसे के ऊपर इतनी अधिक.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मारा डाला पैसे के ऊपर लक्ष्य कर-करके। इस ओर लक्ष्य करना, इसके ऊपर से यह बात चलती है। यहाँ ऐसा लक्ष्य करना, उसे छोड़कर वहाँ लक्ष्य में पूरा काल व्यतीत करता है। आहाहा!

यहाँ यह कहा न कि आत्मध्यान करना। वह भी '**अनुदिनं**' ऐसा शब्द है। प्रतिदिन और निरन्तर। अब उसमें निरन्तर में वाँचन, श्रवण और समागम और शास्त्र-स्वाध्याय करना, ऐसे पुण्यभाव का ठिकाना न हो। चन्दुभाई! श्मशान की हड्डियाँ और फासफूस (चमक) यह सब दिखाई दे न बाहर का, वहाँ रुक गया है। यहाँ कहते हैं कि यहाँ जा। बापू! बारम्बार तुझे प्रेम के फासला में फँस गया है ऐसे। उस भगवान के प्रति प्रेम कर न, आत्मा के प्रति। वह आत्मा भगवान, हों! भगवान के प्रति प्रेम करे तो वह शुभभाव है। वह एक आधे घण्टे या पौन घण्टे पूजा करे, उसमें क्या भला हो? २३ घण्टे

पाप में बड़ा जोरावर २३ घण्टे और एक घण्टे में पतला जरा, पुण्य का जरा पूजा आदि (करे)। यह झेल नहीं सके वह। आहाहा!

कल एक लेख आया है स्वाध्याय का। किसी ने लिखा है। स्वाध्याय करना चाहिए। भगवान के शास्त्रों का, हों! दूसरी इस फिल्म की, ढीकणा की, फिकणा की, विकथाओं की (नहीं)। भगवान परमेश्वर ने कहे हुए, दिगम्बर सन्तों ने कहे हुए शास्त्र, वे शास्त्र कहलाते हैं। उसमें हमेशा दो-चार घण्टे तो व्यतीत करना चाहिए, भाई! जैसे दो बार खाना और दो बार चाय, शाम और दोपहर को (पीवे), चार बार होवे न चार बार? आहाहा! इसी प्रकार इसे चार बार—चार घण्टे स्वाध्याय में व्यतीत करना चाहिए। बापू! उसमें तेरे हित की बात है। तो तुझे सत्य क्या है, वह हाथ आवे। यह तो अभी यह निश्चय है, यह एकान्त है। अरे! परन्तु इसे शास्त्र की खबर नहीं होती, तुम एकान्त कहाँ से कहते हो? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **इन्द्रियों के अगोचर होने से सूक्ष्म कहा जाता है,...** देखा! भगवान आत्मा को सूक्ष्म क्यों कहा? कि इन्द्रिय से अगम्य है, इसलिए सूक्ष्म कहा है। आहाहा! **तथा भाव (स्वसंवेदनपरिणाम) भी परम सूक्ष्म हैं,...** क्यों?—कि **वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं,...** आहाहा! अन्तर का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो ध्यान, उसकी जो धर्म की पर्याय, वह सूक्ष्म है। कैसी? **वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभाव...** आहाहा! वीतरागी परिणति समरसीभाव को यहाँ सूक्ष्म भाव कहा है। समझ में आया? यह ३३वीं गाथा है और ३३वाँ वर्ष चलता है यह। दो तिगड़े हैं। तीन तिया नौ। वीतरागभाव बताते हैं। आहाहा! समरसी कहा न? **वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं,...** कौन? वह स्वसंवेदन परिणाम। अर्थात्? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह परिणाम। वह स्वसंवेदन परिणाम। वह **वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं,...** आहाहा! अर्थात् कि मोक्ष का मार्ग, वह वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभाव है। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ मन और इन्द्रियों को गम्य नहीं है,... अब इसे सूक्ष्म क्यों कहा, यह स्पष्टीकरण करते हैं। द्रव्य को सूक्ष्म क्यों कहा कि इन्द्रिय के अगोचर है, इसलिए (कहा)। अब भाव को सूक्ष्म क्यों कहा? आत्मा वस्तु है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और

चारित्र अर्थात् स्वआत्मा के वेदन के परिणाम, उसे सूक्ष्म क्यों कहा? द्रव्य को सूक्ष्म क्यों कहा? कि इन्द्रिय से अगम्य है इसलिए। भाव को सूक्ष्म क्यों कहा? वह कहते हैं, देखो! **मन और इन्द्रियों को गम्य नहीं है,...** आहाहा! इसका अर्थ यह कहा कि भगवान आत्मा की जो श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की रमणता, वह भावसूक्ष्म है, यह मन और इन्द्रियगम्य नहीं। आहाहा! देखो न यह मार्ग! देखो! यह मोक्षमार्ग की व्याख्या इस प्रकार से करते हैं। दूसरे ढंग से। आहाहा!

जो वस्तु है भगवान आत्मा, उसकी सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और उसमें रमणता, वह स्वआत्मा का वेदन है। वहाँ राग का वेदन नहीं उसमें। आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु की श्रद्धा समकित स्वसन्मुख की प्रतीति, स्वसन्मुख का ज्ञान और रमणता, ऐसा जो स्वसंवेदन परिणाम, वह इन्द्रिय और मन को गम्य नहीं। अर्थात् कि इन्द्रिय और मन से वह होता नहीं। आहाहा! इसका नाम धर्म। इसका नाम वीतरागी धर्म। आहाहा!

वस्तु जो भगवान आत्मा जिनेश्वरदेव ने कहा वह, हों! दूसरे आत्मा... आत्मा सब बहुत करते हैं, परन्तु जिनेश्वरदेव, उसमें भी दिगम्बर धर्म जो परमात्मा का जैनधर्म, उसमें कहा हुआ आत्मा, वह आत्मा। अज्ञानी आत्मा की बातें करे, परन्तु आत्मा जाना नहीं तो सब बातें कल्पित। समझ में आया? आहाहा! यह शरीर मुर्दा, इसे शृंगारना। आत्मा का शृंगार नहीं। यह स्वसंवेदन परिणाम आत्मा का शृंगार है। क्या कहा यह? कपड़ा, बपड़ा, टोपी ऐसे सब व्यवस्थित (पहने)। गहने और कपड़ों से मुर्दे को शोभित करना। मर गये को। जीवती ज्योति ऐसा द्रव्यपरमाणु आत्मा से सूक्ष्म है, उसकी शोभा स्वसंवेदन परिणाम से है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह उसका शृंगार है।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द और पूर्ण समाधि वीतरागस्वरूप, उसके सन्मुख की स्वसंवेदन दशा अर्थात् कि मोक्ष का मार्ग अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... आहाहा! यह मन और इन्द्रिय को गम्य नहीं है। वह इसका शृंगार है। गजब बातें भाई यह!

गाथा में नहीं कहा? ९६वीं गाथा में। यह शरीर मुर्दा है, मुर्दा। मृतक कलेवर में अमृतसागर मूर्छित हो गया है। आहाहा! ९६ गाथा में है। समयसार की ९६वीं (गाथा)। मृतक कलेवर है यह। अभी, हों! और देह छूटने के बाद, आत्मा छूटने के बाद, ऐसा

नहीं। यह तो मुर्दा है। मृतक कलेवर में (मूर्छित हो गया है)। (यह) अमृतचन्द्राचार्य मुनि हैं। (परमागममन्दिर में) यह बीच में कुन्दकुन्दाचार्य गाथा के कर्ता और अमृतचन्द्राचार्य टीका के कर्ता, उस ओर यह है नियमसार की टीका के कर्ता पद्मप्रभ(मल)धारिदेव। दिगम्बर सन्त महामुनि। आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी अल्प काल में मोक्ष लेनेवाले। अल्प काल में केवलज्ञान की प्राप्ति करनेवाले हैं। आहाहा! उसमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, अरे! प्रभु! तू कौन है? अमृत का सागर है न, नाथ! अनन्त आनन्द के अमृत से भरपूर, सुखामृत के स्वाद से भरपूर प्रभु, वह इस मृतक कलेवर में मूर्छित हो गया। आहाहा! सब म-मा लिये। मृतक कलेवर में अमृत सागर मूर्छित हो गया। आहाहा! समझ में आया? यह (शरीर) यह तो मुर्दा है। अभी? यह तो जड़ अजीव है। आहाहा!

कल कहा नहीं था? कि यह प्रकाश है चन्द्र-सूर्य का, वह भी अज्ञान है। क्योंकि जड़ है, उसमें ज्ञान नहीं। यह चन्द्र-सूर्य का प्रकाश जो यह सब दिखता है, वह अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्य के प्रकाश में ज्ञान है। परन्तु कौन है? किसे दरकार पड़ी है अन्दर? आहाहा! चैतन्य का प्रकाश, वह प्रकाश जो अज्ञान, उसे प्रकाशित करनेवाला, जाननेवाला। उस प्रकाश को अज्ञान है, उसे अपनी खबर नहीं कि मैं कौन हूँ। आहाहा! यह सब उजाला, वे सब अन्धकार हैं, अज्ञान हैं। वह ज्ञान कहाँ है? वह तो जड़ है। उसका जाननेवाला भगवान आत्मा चैतन्य के नूर के पूर से भरपूर है। चैतन्य का पूर बहता है अन्दर। अरेरे! इसे कहाँ बैठे? आहाहा!

यह जिसे अन्तर में स्वसंवेदन परिणाम हुए, वह मन और इन्द्रिय को गम्य नहीं। भाषा तो देखो! दूसरे प्रकार से कहें तो धर्मी ऐसा जो प्रभु आत्मा, उसके आश्रय से जो धर्म प्रगट होता है, वह मन और इन्द्रिय के गम्य नहीं। आहाहा! ऐसा नहीं समझना कि हम स्त्री हैं, पुत्र हैं, हमारी बुद्धि थोड़ी है। ऐसा नहीं, प्रभु! तू पूर्ण केवलज्ञान से भरपूर भगवान है। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन। केवल अर्थात् अकेला। अकेला दर्शन, अकेला ज्ञान, अकेला सुख, अकेला वीर्य, अकेली ईश्वरता की प्रभुता से भरपूर भगवान है। अरे! यह बात सुनने को नहीं मिलती। वह कब विचारे और कब अन्दर में तह में बैठावे? आहाहा!

यह कपड़ा नहीं होता, कपड़ा? साटम का। वह तह उखाड़नेवाले को तह बैठाना आता है। साधारण को नहीं आता। कपड़ा नहीं समझते साटम? पाटला जैसा होता है। साटम कहते हैं। हिन्दी में क्या कहते हैं? अटलस-अटलस। अटलस, यह ठीक है। अटलस होता है न? ऐसा मुड़ा हुआ सब उखाड़-उखाड़कर (खोलकर) सब... वापस उसे व्यवस्थित करना, वह तो आवे वह तह करे। यह तह बैठाना आवे, वह घड बैठा सके। यह कपड़े में अटलस होता है न? (अब) नहीं आती होगी। यह साटम। बहुत... बहुत...

इसी प्रकार इस आत्मा में घड बैठानी चाहिए। उखाड़कर बैठा है ऐसे राग और पुण्य और पाप में सबमें फैलकर। ऐई! आहाहा! वह जिसे आवे, वह घड बैठा सके। इसी प्रकार आत्मा कैसा है, ऐसा जिसने जाना हो, वह अन्दर एकाग्र हो सकता है। यह तो ध्यान का प्रश्न किया न इसलिए। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू!

वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव का पन्थ जगत से निराला है। आहाहा! ऐसा जो स्वरूप है। आहाहा! वह स्वसंवेदन परिणाम अर्थात् धर्म परिणाम। आहाहा! धर्मी ऐसा जो द्रव्य सूक्ष्म, वह तो इन्द्रिय के अगम्य है, इसलिए सूक्ष्म कहा। आहाहा! और यहाँ तो उसे तो और मन तथा इन्द्रिय से गम्य नहीं, ऐसा कहा। समझ में आया? परिणाम है न? वह पूरा द्रव्य लिया था—वस्तु। आहाहा! **मन इन्द्रियों के अगोचर होने से सूक्ष्म कहा जाता है, तथा भाव...** वहाँ दोनों को लिया था। मात्र मन और इन्द्रियों के अगोचर इतना कहा था। यहाँ दूसरी भाषा प्रयोग की है। **मन और इन्द्रियों को गम्य नहीं है,...** समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ। आहाहा!

वस्तु मौजूद है, परमात्मस्वरूप से विराजमान है। सब देह-देवल में भगवान आत्मा विराजता है, भाई! पूर्णानन्द का नाथ है, वह सहजात्मस्वरूप है। सहजात्मस्वरूप, सहजस्वरूप। परिणमन की अपेक्षा छोड़कर सहजस्वरूप। त्रिकाल ऐसा सहजस्वरूप, सहजस्वरूप, सहजस्वरूप। आहाहा! वह इन्द्रिय और मन के गम्य नहीं। आहाहा! वह तो अतीन्द्रिय निर्मल से गम्य है। समझ में आया? आहाहा! इस प्रकार से अन्दर में जाना, वह भारी कठिन। बाहर की प्रवृत्ति में रुक गया, उसी और उसी में। विशाल रथयात्रा, गज, क्या कहलाता है? गजरथ। हाथी का विशाल रथ निकाले। मानो,

ओहोहो! ... यह तो क्रिया पर की है। उसमें तेरा भाव हो कदाचित्। शुभ हो पुण्य। उसमें धर्म-बर्म कहीं नहीं वहाँ। वह गजरथ चलावे और दस लाख, करोड़ खर्च करे। समझ में आया? वहाँ धर्म की गन्ध नहीं।

यहाँ तो धर्म तो स्वसंवेदन आत्मा के परिणाम... आहाहा! वह मन और इन्द्रिय के अगोचर कहा था द्रव्य को। यहाँ कहा मन और इन्द्रिय के गम्य नहीं। आहाहा! अब ऐसी बात सुननेवाले भी (कम होते हैं)। वह बात (करते हों कि) शुभ से ऐसा होता है, शुभ से ऐसा होता है। लाखों लोग इकट्ठे हों, लो! लोगों को सुहावे ऐसी बात रखे। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु! एक बार सुन न! आहाहा! वस्तु जो भगवान त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु, एक पर्याय के अतिरिक्त यह बात पहले कही। एक समय की पर्याय के अतिरिक्त की वस्तु, उसे द्रव्यपरमाणु अर्थात् सूक्ष्म आत्मा कहा। वह मन और इन्द्रिय से अगम्य है। अब उस द्रव्य की जो वीतरागी पर्याय है, वह द्रव्य कहा पर्याय बिना का। चन्दुभाई! आहाहा! यह भगवान आत्मा वस्तु है, उसकी सन्मुखता की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की स्वसंवेदन के परिणाम अर्थात् कि समरसी वीतरागी भाव, वह इन्द्रिय को, मन को गम्य नहीं। आहाहा! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान का अनुभव अतीन्द्रिय ज्ञान से गम्य है। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान का अनुभव धर्म, अतीन्द्रिय ज्ञानगम्य है। समझ में आया? ऐसी बातें। बापू! मार्ग प्रभु! तेरा अलग है, भाई! आहाहा!

वैसे तो अनन्त बार मुनि हुआ, दिगम्बर मुनि अनन्त बार हुआ है। अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, पंच महाव्रत पालन किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण भी दुःखरूप है, आस्रव है; धर्म नहीं, वह चारित्र नहीं। आहाहा! ऐसी बात। वहाँ ऐसा कहा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,' और उसमें आया था आगे, मुनिधर्म, वह आत्मा में नहीं। मुनिधर्म अर्थात् यह व्यवहार। पंच महाव्रतादि वह आत्मा में नहीं। वह तो विकार है। आहाहा! उसमें आ गया है। बात-बात में बहुत अन्तर। 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे-माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे अने एक त्रांबाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि मुझे और तेरे बात-बात में अन्तर है, बापू!

आहाहा! तू कुछ मान बैठा और मार्ग कुछ है। समझ में आया? कहाँ है? देवीलालजी कहाँ गये? गये? देवीलालजी नहीं लगते। गये होंगे। समझ में आया? आहाहा!

परमसूक्ष्म है,... आहाहा! **वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं,...** भाषा क्या है? आहाहा! भगवान आत्मा का जो मोक्षमार्ग है—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह **वीतराग निर्विकल्प परमसमरसीभावरूप हैं,...** आहाहा! स्वसंवेदन परिणाम की व्याख्या दूसरे प्रकार से की है भाई ने। दूसरे प्रकार से की है। आहाहा! **वहाँ मन और इन्द्रियों को गम्य नहीं है, इसलिए सूक्ष्म है।**

ऐसा कथन सुनकर फिर शिष्य ने पूछा कि तुमने परद्रव्य के आलम्बनरूप ध्यान का निषेध किया,... परद्रव्य के आलम्बन का ध्यान तो निषेध किया। **निज शुद्धात्मा के ध्यान से ही मोक्ष कहा।** आत्मा वस्तु भगवान का ध्यान। ध्यान के विषय को ध्येय बनाकर। विषय कुरु, ऐसा पाठ है। परम अध्यात्म तरंगिणी (में ऐसा पाठ है)। भगवान को ध्यान का विषय बना। आहाहा! पर्याय में जो पर विषय है, वह बन्ध का कारण अज्ञान है। उसे पर्याय में स्वविषय बना। परम अध्यात्म तरंगिणी में यह शब्द बहुत है। ध्यान विषय कुरु। ऐसा संस्कृत शब्द है। ध्यान का विषय बना उस आत्मा को। आहाहा! **ऐसा कथन किस जगह कहा है?** ऐसी बात कहाँ कही है? किसमें कही है? तुम इस शास्त्र में ऐसी बात करते हो। दूसरे शास्त्र में है कहीं? या तुम ही यहाँ कहते हो यह? ऐसा कहता है। समझ में आया?

इसका समाधान यह है—'अप्पा झायहि णिम्मलउ' इसमें आ गया है पहले। **'अप्पा झायहि णिम्मलउ'** पहले गाथा आ गयी है, हों!

मुमुक्षु : ९७।

पूज्य गुरुदेवश्री : ९७। मैं देखता था इसमें। इसमें लिखा है। अध्याय पहला, गाथा-९७, पृष्ठ १०१। लिखा है इसमें। ९७ है? **'अप्पा झायहि णिम्मलउ कि बहुएँ अण्णेण।'** ९७ गाथा। ९ और ७। **'अप्पा झायहि णिम्मलउ कि बहुएँ अण्णेण।'** देखा! दूसरे अन्य से क्या काम है तुझे? **'जो झायंतहँ परम-पउ लब्भइ एक्क-खणेण॥'** आत्मा का ध्यान करने से एक क्षण में निर्वाण पाता है। इसी का और इसी का दृष्टान्त दिया। पहले अधिकार का। है यहाँ। अध्याय पहला, गाथा-९७। आहाहा!

और समाधिशतक में भी पूज्यपादस्वामी ने कहा है... यह सिद्धभक्ति का नाम है। पूज्यपादस्वामी। **जीवपदार्थ अपने स्वरूप को अपने में ही अपने...** आहाहा! रात्रि में कहा था न कि आत्मा, आत्मा को, आत्मा द्वारा। इसका अर्थ कि उसकी शुद्ध परिणति द्वारा जान, ऐसा। आहाहा! राग-बाग व्यवहार है नहीं। यह कहा, देखो! **जीवपदार्थ अपने स्वरूप को अपने में ही...** अपने स्वरूप में अपने को ही **अपने करके...** निर्मल परिणति करके **एक क्षणमात्र भी निर्विकल्प समाधिकर आराधता हुआ...** आहाहा! जघन्य ध्यान करे तो समकित होता है, विशेष ध्यान करे तो चारित्र होता है। विशेष ध्यान करे तो केवल (ज्ञान) होता है। विषय तो ध्यान का ही है। यह एक ही है। आहाहा! समझ में आया? यह क्रियाकाण्ड कोई काम नहीं करते। आहाहा! **अपने करके एक क्षणमात्र भी निर्विकल्प समाधिकर आराधक हुआ वह सर्वज्ञ वीतराग हो जाता है।** आहाहा! यह विशेष बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३४

अथ सामान्यग्राहकं निर्विकल्पं सत्तावलोकदर्शनं कथयति -

१५७) सयल-पयत्थहँ जं गहणु जीवहँ अग्गिमु होइ।
वत्थु-विसेस-विवज्जयउ तं णिय-दंसणु जोइ।।३४।।

सकलपदार्थानां यद् ग्रहणं जीवानां अग्रिमं भवति।
वस्तुविशेषविवर्जितं तत् निजदर्शन पश्य।।३४।।

सयल इत्यादि। सयल-पयत्थहं सकलपदार्थानां जं गहणु यद् ग्रहणमवलोकनम्। कस्य। जीवहं जीवस्य अथवा बहुवचनपक्षे 'जीवहं' जीवानाम्। कथंभूतमवलोकनम्। अग्गिमु अग्रिमं सविकल्पज्ञानात्पूर्वं होइ भवति। पुनरपि कथंभूतम्। वत्थु-विसेस-विवज्जियउ वस्तुविशेषविवर्जितं शुक्लमिदमित्यादिविकल्परहितं तं तत्पूर्वोक्तलक्षणं णिय-दंसणु निज आत्मा तस्य दर्शनमवलोकनं जोइ पश्य जानीहीति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। निजात्मा तस्य दर्शनमवलोकनं दर्शनमिति व्याख्यातं भवद्भिरिहं तु सत्तावलोकदर्शनं मिथ्यादृष्टिनामप्यस्ति तेषामपि मोक्षो भवतु। परिहारमाह। चक्षुरचक्षुरवधिकेवलभेदेन चतुर्धा दर्शनम्। अत्र चतुष्टयमध्ये मानसमचक्षुर्दर्शनमात्मग्राहकं भवति, तच्च मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशम-क्षयोपशम क्षयजनिततत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यक्त्वाभावात् शुद्धात्मतत्त्वमेवोपादेयमिति श्रद्धानाभावे सति तेषां मिथ्यादृष्टिनां न भवत्येवेति भावार्थः।।३४।।

आगे सामान्य ग्राहक निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप दर्शन को कहते हैं -

ज्ञानोत्पत्ति के पहले जो भेद रहित सामान्य ग्रहण।
सकल पदार्थों का होता है, वही जीव का निज दर्शन।।३४।।

अन्वयार्थ :- [यत्] जो [जीवानां] जीवों के [अग्रिमं] ज्ञान के पहले [सकलपदार्थानां] सब पदार्थों का [वस्तुविवर्जित] यह सफेद है, इत्यादि भेद रहित [ग्रहणं] सामान्यरूप देखना, [तत्] वह [निजदर्शनं] दर्शन है, [पश्य] उसको तू जान।

भावार्थ :- यहाँ प्रभाकरभट्ट पूछता है, कि आपने जो कहा कि निजात्मा का देखना वह दर्शन है, ऐसा बहुत बार तुमने कहा है, अब सामान्य अवलोकनरूप दर्शन कहते हैं। ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टियों के भी होता है, उनको भी मोक्ष कहनी चाहिये?

इसका समाधान – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ये दर्शन के चार भेद हैं। इन चारों में मनकर जो देखना वह अचक्षुदर्शन है, जो आँखों से देखना वह चक्षुदर्शन है। इन चारों में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है और वह आत्म-दर्शन मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है। सो सम्यग्दृष्टि के तो यह दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है, जिसमें शुद्ध आत्म-तत्त्व ही उपादेय है, और मिथ्यादृष्टियों के तत्त्वश्रद्धान नहीं होने से आत्मा का दर्शन नहीं होता। मिथ्यादृष्टियों के स्थूलरूप परद्रव्य का देखना-जानना मन और इन्द्रियों के द्वारा होता है, वह सम्यग्दर्शन नहीं है, इसलिए मोक्ष का कारण भी नहीं है। सारांश यह है – कि तत्त्वार्थश्रद्धान के अभाव से सम्यक्त्व का अभाव है, और सम्यक्त्व के अभाव से मोक्ष का अभाव है।।३४।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल ६, गुरुवार
दिनांक-२८-१०-१९७६, गाथा-३४, प्रवचन-११७

एक दर्शन है कि जो दर्शन सबको सामान्यरूप से भेद किये बिना देखे, उसे दर्शन कहते हैं। उसमें से फिर सम्यग्दर्शन निकालेंगे। समझ में आया?

भावार्थ:—यहाँ प्रभाकर भट्ट पूछता है, कि आपने जो कहा कि निजात्मा का देखना वह दर्शन है,... आपने कहा कि निजात्मा—शुद्ध द्रव्यस्वभाव परमानन्द मूर्ति प्रभु को देखे, उसे दर्शन कहना। **ऐसा बहुत बार तुमने कहा है,...** निजात्मा भगवान पूर्णानन्द स्वरूप, शुद्ध चैतन्य आत्मा, उसे देखना, उसे सम्यग्दर्शन आप तो कहते आये हो। **अब सामान्य अवलोकनरूप दर्शन कहते हैं।** अब यह तो सामान्य अवलोकन अर्थात् भेद किये बिना देखना, उसे आप दर्शन कहते हो। उसे दर्शन कहते हो। गुजराती का प्रवचन था। हम समझते नहीं। हिन्दी तो सादा था। हिन्दी कोई ऐसा नहीं था। जवान व्यक्ति कहते थे कि हमको समझ में नहीं आता। हिन्दी तो साधारण भाषा है, प्रचलित भाषा है।

प्रभाकर भट्ट कहता है कि **सामान्य अवलोकनरूप दर्शन कहते हैं। ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टियों के भी होता है,...** आप कहते हो कि सामान्य अवलोकन। क्या कहा? आत्मा का अवलोकन, ऐसा नहीं। सामान्य अवलोकन अर्थात्? किसी भी चीज़ को भेद

से जानने से पहले सामान्य अर्थात् अस्ति सत्ता है, ऐसा अन्दर में देखना, उसे सामान्य अवलोकन—दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन नहीं। ऐसा सूक्ष्म! ऐसा दर्शन, सामान्य अवलोकनरूप दर्शन, वह तो **मिथ्यादृष्टियों के भी होता है,...** यह प्रश्न है। अज्ञानी को सामान्य अवलोकन, सत्ता अवलोकन है। चक्षु, अचक्षुदर्शन है। मिथ्यादृष्टि को भी सामान्य अवलोकन तो है। आहाहा! **उनको भी मोक्ष कहनी चाहिए?** सामान्य अवलोकन-देखना, वह यदि दर्शन हो तो मिथ्यादृष्टि को भी सामान्य अवलोकन, सामान्य देखना है, तो उसके भी मोक्ष कहना चाहिए। उसे भी मोक्ष कहना चाहिए। समझ में आया?

इसका समाधान—प्रश्न को समझे? आचार्य ने ऐसा कहा कि सामान्य अवलोकन-देखना। भेद किये बिना सामान्यरूप से देखना, इसका नाम दर्शन कहते हैं। तो शिष्य को प्रश्न हुआ कि सामान्यरूप से देखना, वह यदि दर्शन हो तो अभव्य और मिथ्यादृष्टि को भी... अभव्य का पहला आ गया है, १३वीं गाथा में। इसी अधिकार में १३वीं आ गया है। १४० पृष्ठ पर। सामान्य अवलोकन अर्थात् देखना, वह यदि देखना, वह बराबर हो तो अभव्य और मिथ्यादृष्टि को भी सामान्य अवलोकन तो है। तो उसे भी मोक्ष होना चाहिए। समझ में आया?

इसका समाधान—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन,... दर्शन के चार भेद। सामान्य अवलोकन के चार भेद हैं। **चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ये दर्शन के चार भेद हैं। इन चारों में मनकर जो देखना, वह अचक्षुदर्शन है,...** मन से जो देखना, वह अचक्षुदर्शन। है? **जो आँखों से देखना, वह चक्षुदर्शन है।** आँख से यह दिखता है, वह चक्षुदर्शन। आँख से दिखता है का अर्थ? यह मनुष्य है और यह मूर्ति है, ऐसा नहीं। आँख से दिखता है अर्थात् कि भेद बिना दिखता है। आँख से दिखने में फिर यह भगवान की मूर्ति है, यह मनुष्य है, ऐसा जो ज्ञात होता है, वह तो ज्ञान है। परन्तु वह ज्ञान होने से पहले सामान्य चक्षु से देखना, उसे यहाँ चक्षुदर्शन कहते हैं। आहाहा!

आँखों से देखना वह चक्षुदर्शन है। इन चारों में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है,... दर्शन कहना है और उसमें सम्यग्दर्शन डाला वापस। दर्शन और ज्ञान, वह केवलज्ञान और केवलदर्शन जो है, इस अपेक्षा से दर्शन-ज्ञान। अब उस दर्शन में अन्तर का अचक्षुदर्शन मन द्वारा (होता है)। है? **मनकर जो**

देखना वह अचक्षुदर्शन है,... इन चारों में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है,... आहाहा! क्या कहते हैं? छद्मस्थ अवस्था में आत्मा को देखना मन से होता है। उसे यहाँ सम्यग्दर्शन का अवलोकन कहा जाता है। मन से दिखे अचक्षु से, आत्मअवलोकन, वह सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी व्याख्या। है?

चारों में से आत्मा का अवलोकन... आत्मा का दर्शन, **छद्मस्थ अवस्था में...** अल्पज्ञ दशा में। केवल दशा की बात नहीं। **मन से होता है और वह आत्म-दर्शन मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है।** देखो! भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु, राग से रहित, शरीर से रहित—ऐसा जो आत्मा, उसे मन से अन्दर अवलोकन करना, वह मिथ्यात्व प्रकृति के नाश से होता है, उसे यहाँ मन से अवलोकन कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मन से....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन से अचक्षुदर्शन लेना है। मन से अचक्षुदर्शन से आत्मा अवलोकन करे, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : .... आत्मा....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मन से छूटा। परन्तु मन द्वारा हुआ न? अर्थात् अचक्षुदर्शन द्वारा आत्म अवलोकन, वह सात प्रकृति के क्षय, क्षयोपशम, उपशमवाले को होता है। सूक्ष्म बात है जरा।

वह आत्म-दर्शन... चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। चार में से आत्मा का अवलोकन... सामान्य की बात लेनी है, हों! अभी। उसमें **छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है...** वह भी अचक्षुदर्शन मन से जो आत्मा दिखता है, वह **मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के...** मिथ्यात्व, मिश्रमोहनीय, समकितमोहनीय, अनन्तानुबन्धी की चार, इन सात प्रकृतियों का उपशम होता है, क्षयोपशम होता है या क्षय (होता है)। उससे मन से आत्मा का अवलोकन सम्यग्दृष्टि को सात प्रकृति के उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक से होता है। अचक्षुदर्शन लिया, अवलोकन। सूक्ष्म बात है। भाई! यह तो थोड़ा अभ्यास चाहिए। यह तो तत्त्व की बात वह कहीं ऊपर-ऊपर से समझ में आ जाये, ऐसी नहीं है। आहाहा!

जब ऐसा प्रश्न हुआ कि आत्मा सामान्य का अवलोकन करे। सामान्य अर्थात्? किसी भी चीज़ को यह जीव और अजीव है, ऐसा भेद पाड़े बिना सामान्य से अवलोकन करे, उसे दर्शन कहते हैं। और उस दर्शन के चार प्रकार—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि (दर्शन), केवल (दर्शन)। तब शिष्य का प्रश्न हुआ कि जब तुम ऐसा कहते हो कि सामान्य का अवलोकन, वह दर्शन तो मन से अवलोकन समकिती करता है, वह दर्शन है या नहीं? कहते हैं, है। समझ में आया? चार दर्शन—चक्षु, अचक्षु, अवधि में से अचक्षुदर्शन जो मन से देखे, चक्षु से देखे वह तो बाह्य में गया। अब यहाँ जो मन जो है, वह अचक्षुदर्शन में जाता है और अचक्षुदर्शन से आत्मा का जो अवलोकन हो सामान्य, वह अवलोकन सम्यग्दृष्टि को होता है। प्रवीणभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आता? बात सूक्ष्म है।

शिष्य का जब प्रश्न ऐसा हुआ कि विशेष जाने उसे ज्ञान कहते हैं और भेद पाड़े बिना देखे, उसे दर्शन कहते हैं। कहो, अब यह तो बराबर है? किसी भी चीज़ को देखने पर भेद पाड़कर देखना कि यह मनुष्य है, यह भगवान की मूर्ति है, यह सफेद है, यह काला है—ऐसे भेद से देखे, उसे तो ज्ञान कहा गया है। और जो वस्तु है, उसे भेद पाड़े बिना सामान्यरूप से देखे, उसे दर्शन कहा जाता है। अब उस दर्शन में भी शिष्य का प्रश्न हुआ कि ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टि को (भी) होता है। सामान्य अवलोकन यदि तुम कहो तो ऐसा दर्शन तो अभव्य को मिथ्यादृष्टि को (भी) होता है। तो तुम क्या कहना चाहते हो इसमें?

तो कहते हैं कि मन द्वारा, जो अचक्षुदर्शन है, उस अचक्षुदर्शन द्वारा आत्मा अवलोकित—दिखता है, प्रतीति में आता है, ऐसे जीव को सात प्रकृति का क्षयोपशम, क्षय और उपशम हुआ है, इसलिए उसे अचक्षुदर्शन द्वारा आत्मा का अवलोकन होता है। उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

मुमुक्षु : आपने तो अवलोकन में प्रतीति डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह डाली।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डाला, देखो न! अचक्षुदर्शन द्वारा सामान्य अवलोकन है, उसके सात प्रकृति के क्षयोपशम से वह हुआ है; इसलिए उसे यथार्थ अवलोकन सम्यग्दृष्टि को होता है। आहाहा! समझ में आया ?

सामान्य अवलोकन अचक्षु द्वारा, समकिती को मन द्वारा यह आत्मा ज्ञात होता है, दिखता है। उसमें भेद नहीं। तथापि उसे सात प्रकृति के क्षयोपशम से हुआ, वह सम्यग्दर्शन है। उसे यहाँ अचक्षुदर्शन से देखता है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के साथ अवलोकन लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अचक्षुदर्शन से अवलोकन है। इतना गहन विषय कहीं है ?

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण की पर्याय एक समय की....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय में सम्यग्दर्शन की प्रतीति भी मन में अचक्षुदर्शन द्वारा अवलोकन में सम्यग्दर्शन की प्रतीति है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से, अपने कहाँ वहाँ....

पहली बात यह कि सामान्यग्राहक निर्विकल्प सत्ता को दर्शन कहते हैं। पहला शब्द यह आया था। किसी भी चीज़ को विशेष जानने से पहले भेदरहित सत्ता -अवलोकन, 'है', उसका देखना हो, उसे दर्शन कहा जाता है।

मुमुक्षु : शास्त्र की भाषा भी कैसी....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें वस्तु....

जैसे यह पुस्तक है, देखो! अब यह पुस्तक है, उसका जो यहाँ ज्ञान हुआ, उसे तो ज्ञान कहा जाता है। परन्तु यह पुस्तक है या यह अक्षर है, ऐसे भेद पाड़े बिना चक्षुदर्शन द्वारा देखना, वह चक्षु है और अचक्षुदर्शन द्वारा देखना, जिसमें भेद नहीं, उसे मन से देखना कहने में आता है। और उस मन से अवलोकन करने में अचक्षुदर्शन अर्थात् मन से देखने में सम्यग्दृष्टि को सात प्रकृति का क्षयोपशम, क्षय, उपशम है,

इसलिए अचक्षुदर्शन देखने में वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! देवीलालजी! फिर से, यहाँ अपने कहाँ... यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! अभी लोगों को खबर कहाँ है? बाहर की प्रवृत्ति और क्रियाकाण्ड करके धर्म हो गया। अनन्त काल बिताया।

भगवान आत्मा अन्दर में शुद्धात्म वस्तु जो पदार्थ, उसे अवलोकन में सम्यग्दर्शन डाल दिया। वरना अवलोकना अर्थात् सामान्य दर्शन और ज्ञान के भेद में जाता है। परन्तु यहाँ जब शिष्य ने पूछा कि जब तुम सामान्य अवलोकन को दर्शन कहते हो तो वह सामान्य अवलोकन तो मिथ्यादृष्टि अभव्य को भी होता है, तो उसे भी समकित ज्ञानी कहना चाहिए। यह उसका सामान्य अवलोकन अलग है। उसे मन द्वारा पर का सामान्य अवलोकन है और समकिती को मन द्वारा अचक्षुदर्शन द्वारा सात प्रकृति के क्षयोशम से वहाँ सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से ही अचक्षुदर्शन द्वारा अवलोकन को उसे देखता है।

मुमुक्षु : यह आत्मा-अवलोकन।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्म-अवलोकन। आहाहा! बहुत सूक्ष्म।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी यहाँ बात नहीं। मिथ्यादृष्टि को तो मन से परद्रव्य का अचक्षुदर्शन देखना है। ज्ञानी को सम्यग्दृष्टि को मन से अचक्षुदर्शन द्वारा आत्मअवलोकन है, उसमें सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : ....एक पर्याय में दूसरी पर्याय कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। उस समय अचक्षुदर्शन देखता है, उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय... इकट्ठा आया। है तो दो पर्यायें भिन्न। यहाँ तो आचार्य ने यह सिद्ध किया है कि सामान्य देखना, वह दर्शन यदि हो... मीठालालभाई!

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि अभव्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि अभव्य को भी होता है। अभव्य को चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अरे! विभंग है। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त.... साथ में...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे निमित्त? किसका चलता है यह?

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि हो उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सम्यग्दृष्टि है, उसे अवलोकन में सम्यग्दर्शन है, यह बात सिद्ध करनी है। यह बात तो अलौकिक है। यह तो वीतराग परमेश्वर... योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर सन्त हैं। जंगलवासी। मुनि तो जंगल में ही रहते हैं। श्वेताम्बर होने के बाद गाँव में आये। अब तो दिगम्बर साधु गाँव में (आते हैं)। सन्त तो जंगल में दिगम्बर अनादि सनातन। जिसे आत्मा के अनुभव की, आनन्द की लहर उठती हो। अतीन्द्रिय प्रचुर आनन्द होता है।

अब यहाँ वे मुनि स्वयं ऐसा कहते हैं कि दर्शन और ज्ञान। दो बोल है न पहले? सम्यग्दर्शन के बाद। दर्शन और ज्ञान। उसमें छद्मस्थ को पहले दर्शन होता है, फिर ज्ञान होता है। यह दर्शन क्या? कि सामान्यरूप से सत्ता को देखना, वह दर्शन। समकित दर्शन नहीं वहाँ। और प्रत्येक चीज़ को भिन्न करके जानना, उसका नाम ज्ञान। छद्मस्थ जीव को दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, वह इस प्रकार से। अब उसके सत्तावलोकन में सम्यग्दर्शन डालना है यहाँ तो। यह पहले आ गया है। १४० पृष्ठ पर। १३वीं गाथा में। समझ में आया?

यह आत्मा अन्दर है, उसे मन द्वारा। मन द्वारा... अचक्षुदर्शन लेना है न? इसलिए उसके द्वारा आत्मा को सामान्य है, उसे अवलोकता है। परन्तु अवलोकने में मन द्वारा अन्तर का अवलोकन है न, इसलिए उसके दर्शन में सम्यग्दर्शन है, कहते हैं। जिससे उसे कर्म की जो सात प्रकृतियाँ हैं, उनका उपशम, क्षय और क्षयोपशम हुआ होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अभी अधिक छनावट की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक कहते हैं। यहाँ अपने कहाँ...

मुमुक्षु : घड बैठनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : घड बैठनी चाहिए। कपड़े की होती है न घड? साटम, साटम न? अटलस।

मुमुक्षु : अहमदाबाद में...

पूज्य गुरुदेवश्री : है और हमने देखी हुई है न ऐसे पाट। ... वापस वह घड करनेवाले को करना आवे। नहीं तो ऐसे का ऐसा रह जाये।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में दर्शन की घड किस प्रकार बैठती है ? ऐसा कहते हैं, प्रभु ! एकबार सुन तो सही। आहाहा ! सामान्य अवलोकन को हमने दर्शन कहा। वह तो सामान्य बात हुई। और उसके बाद विशेष भेद पाड़कर जाने, वह ज्ञान कहा। अब शिष्य का प्रश्न ऐसा है कि जब सामान्य अवलोकन दर्शन कहो तो सामान्य अवलोकन तो अभव्य को और सबको है। तो उन सबको सम्यग्दर्शन हो जायेगा। यदि तुम सामान्य अवलोकन को दर्शन कहो तो वहाँ सम्यग्दर्शन हो जायेगा। ऐसा नहीं है। सुन ! मिथ्यादृष्टि और अभव्य आदि अज्ञानी अचक्षुदर्शन अर्थात् मन द्वारा, मन द्वारा पर को अवलोकते हैं। इसलिए उन्हें मिथ्यादृष्टि है और सम्यग्दृष्टि अचक्षु द्वारा, मन द्वारा स्व को अवलोकता है।

मुमुक्षु : अवलोकन में भेद ही नहीं पड़ते।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद नहीं, कहा न ! आत्मा सामान्य है, उसे देखता है। देखता है अर्थात् श्रद्धा करता है। देखने के काल में उसे श्रद्धा करता है।

मुमुक्षु : देखने के काल में वह तो दूसरा गुण हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले, समुच्चय होता है न। एक समय में अनन्त गुण की पर्याय होती है न।

मुमुक्षु : ....श्रद्धा करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उसके साथ श्रद्धा (होती है)। देखना अचक्षुदर्शन आत्मा है, वह अवलोकता है, उसमें श्रद्धा इकट्ठी आ गयी। क्योंकि उसे प्रकृति का क्षयोपशम, क्षय, उपशम हो गया है। इसलिए उसे उसका देखना, वह सम्यग्दर्शनसहित अचक्षुदर्शन द्वारा आत्मा को अवलोकता है। प्राणभाई !

मुमुक्षु : अवलोकन करे, तब तो भेद पड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ पड़ा भेद ? सम्यग्दर्शन में भी कहाँ भेद है ? वह तो श्रद्धा और प्रतीति ही आयी। उसमें भी यह आत्मा है और यह श्रद्धा है, ऐसा भेद उसमें नहीं है। समझ में आया ? ...भाई ! यह सब सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा !

देखो ! तीन गुण-तीन गुण। एक दर्शनगुण—सामान्य को देखना वह। एक ज्ञानगुण —भेद पाड़कर जानना वह। एक सम्यग्दर्शन—स्वरूप को जानकर प्रतीति करना, वह। कहो, तीन हुए ? अब तीन में दो। जो सामान्य अवलोकन है कि जो आत्मा दूसरे को और स्व को देखते हुए भेद न पाड़े, भेद न पाड़े। यह सामान्य अवलोकन। सामान्य अवलोकन में मन द्वारा अवलोकन हुआ अचक्षुदर्शन द्वारा, परन्तु उसके साथ यह आत्मा शुद्ध उपादेय है, ऐसी प्रतीति भी साथ में है। आहाहा !

मुमुक्षु : यह तो दूसरे गुण की बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले दूसरा गुण परन्तु अनन्त गुण साथ में है।

मन द्वारा अचक्षुदर्शन द्वारा देखने पर वह अवलोकन सम्यग्दृष्टि को मन द्वारा अन्तर में गया है। अज्ञानी को मन द्वारा बाहर गया है। इतना अन्तर है। समझ में आया ? कहो, कान्तिभाई ! आहाहा !

मुमुक्षु : .... जो समझ में आये, ऐसी घड नहीं बैठी।

पूज्य गुरुदेवश्री : घड़ तो इसे बैठानी है न ! भाई ! आहाहा ! वे ऐसा नहीं कहते कि ब्राह्मण विवाह करा दे परन्तु घर चला दे ? घर तो इसे चलाना है। शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु दिशा तो दिखावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखाते हैं न !

भगवान आत्मा पूर्ण द्रव्य शुद्धात्मा, उसे अचक्षु द्वारा अर्थात् मन द्वारा देखना, वह होता है। तदुपरान्त मन द्वारा यह जाना, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन की प्रतीति भी सच्ची है। मन द्वारा अचक्षदुर्शन, मन द्वारा अचक्षुदर्शन द्वारा अज्ञानी पर को अवलोकता है। समझ में आया ? पर को देखता है। मन द्वारा ज्ञानी स्व को देखता है। इतना अन्तर किया। और स्व के अवलोकन के काल में उसे प्रतीति होती है। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें अपने उसी और उसी में विस्तार हो तो बाधा नहीं। आहाहा ! बापू ! वस्तु ही ऐसी है। आहाहा !

यहाँ क्या कहना है ? कि तीन गुण की तीन पर्यायें हैं। एक दर्शन देखनी की

पर्याय, एक ज्ञान की पर्याय और एक श्रद्धा की पर्याय—सम्यग्दर्शन की पर्याय। अब तीन पर्याय में शिष्य का प्रश्न हुआ कि यदि देखना जो सम्यग्दर्शन हो, तब तो अभव्य और मिथ्यादृष्टि देखते हैं। (तो कहा कि) नहीं। तुझे खबर नहीं, बापू! वह मन द्वारा, अचक्षुदर्शन द्वारा पर को देखता है। और ज्ञानी मन द्वारा अचक्षुदर्शन द्वारा स्व को देखता है, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन है। आहाहा! कहो, ...भाई! ... अभ्यास करे ... आहाहा!

यह परमात्मा कहते हैं, बापू! यह परमात्मप्रकाश है। अर्थात् परमात्मस्वरूप है इसका। परमात्मस्वरूप ही आत्मा का है। परमात्मस्वरूपी भगवान परमात्म वीतरागस्वरूप ही है। अब कहते हैं कि देखे, वह अवलोकन करे, वह दर्शन। तो उस दर्शन में सम्यग्दर्शन किस प्रकार आता है ? और उसी दर्शन में मिथ्यादर्शन कैसे होता है ?

अवलोकन में अज्ञानी मन द्वारा दूसरे को—महासत्ता को देखता है। इसलिए उसे... कहा। आहाहा! ज्ञानी वह मन द्वारा अचक्षुदर्शन... उसकी दिशा बदल गयी है। वह अचक्षुदर्शन द्वारा पर को देखता था। यह अचक्षुदर्शन द्वारा स्व को देखता है। तो भेद से उसमें सात प्रकृति का क्षय होकर उसे समकित है। चन्दुभाई! कहो, ... आहाहा! यहाँ मात्र देखने में अन्तर है। अज्ञानी मन द्वारा बाह्य देखता है। महासत्ता है, इतना। भेद नहीं भले। और ज्ञानी मन द्वारा अचक्षुदर्शन द्वारा अन्तर में देखता है। इसलिए उसमें सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! प्रवीणभाई! समझ में आया ? यह कितने समय से चलता है। आधा घण्टा तो हुआ। एक लाईन में आधा घण्टा। उसमें से तो यह....

पहले लक्ष्य में यह बात ले कि आत्मा में तीन गुण हैं। एक दर्शनगुण है, एक ज्ञानगुण है, एक श्रद्धागुण है। शक्ति तीन। अब दर्शन-गुण जो पहला कहा, उसकी पर्याय में सामान्य अर्थात् भेद पाड़े बिना देखना, उसका नाम सामान्य अवलोकन—दर्शन कहा जाता है। और पश्चात् भेद पाड़कर यह जीव है, यह जड़ है, यह ज्ञान है, यह आनन्द है—ऐसा भेद पाड़कर जानना, उसे ज्ञान कहते हैं। अब यह दो बातें इतनी हुई। अब सामान्य अवलोकन में सम्यग्दर्शन डालना है और सामान्य अवलोकन में मिथ्यादर्शन डालना है। समझ में आया ? तो सामान्य अवलोकन में अज्ञानी मन द्वारा अचक्षुदर्शन द्वारा; चक्षु नहीं, अवधि नहीं, केवल नहीं; मन के अचक्षुदर्शन द्वारा पर को देखता है, इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? उसकी दृष्टि मिथ्यात्व है और

पर को देखता है। ऐसी दो बात। अब आत्मा जब अवलोकन में सम्यग्दृष्टि को आता है, तब वह मन के अचक्षुदर्शन द्वारा आया। सत्ता में सामान्य सत्ता की अपेक्षा से अचक्षुदर्शन द्वारा आया। परन्तु वह अन्दर आत्मा को अवलोकता है, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : दर्शन में अवलोकन होता ही नहीं। दर्शन में एक प्रकार से अलग दिखता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग दिखता है, यह प्रश्न कहाँ है? सम्यग्दर्शन में उसकी प्रतीति होती है, ऐसा कहना है। भिन्न की बात नहीं। शुद्ध आत्मा उपादेय है, वह तो कथन की शैली है। बाकी जहाँ पर्याय द्रव्य की ओर ढली, तब सामान्य में लक्ष्य जाता है, ऐसा भी वहाँ नहीं है। सुनो! क्या कहा?

पर्याय, जो सम्यग्दर्शन की पर्याय सामान्य का आश्रय लेती है, ऐसा कहा कि सामान्य का लक्ष्य करे। अर्थात् कि उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का उस समय का ज्ञान, वह सामान्य है, इसलिए वहाँ लक्ष्य करता हूँ, ऐसा भेद नहीं। परन्तु पर्याय परसन्मुख से मुड़कर अन्तर में जाती है, इसलिए उस सामान्य में जाती है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! सामान्य यह है, ऐसा भेद भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग। यह तो सम्यग्दर्शन की सिद्धि करने के लिये सामान्य अवलोकन में दर्शन डाला। आहाहा! लो!

इन चारों में मनकर जो देखना, वह अचक्षुदर्शन है,... चक्षु, अवधि और केवल, वह तीन छोड़ दिये। इन चार में से अचक्षुदर्शन को लिया। **चारों में मनकर जो देखना वह अचक्षुदर्शन, जो आँखों से देखना, वह चक्षुदर्शन है। इन चारों में से आत्मा का अवलोकन...** अब डाला। **चारों में से...** अचक्षुदर्शन का अवलोकन **छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है...** मन से अर्थात् मन उसकी ओर झुकता है। वह मन द्वारा कहा जाता है। समझ में आया? चन्दुभाई! वास्तव में तो अचक्षु मन द्वारा 'यह आत्मा है' ऐसा भी नहीं वहाँ। मात्र यह पर्याय सामान्य में ढल गयी, इतना उसे सामान्य अवलोकन कहने में आता है। परन्तु यह सामान्य है, ऐसा भेद भी अचक्षुदर्शन के विषय में है नहीं। अब यहाँ कहते हैं कि जब आत्मा अन्तर के अचक्षुदर्शन द्वारा अवलोकन में गया। स्व में गया न? वह अचक्षुदर्शन द्वारा पर में गया था। आहाहा! अज्ञानी अचक्षुदर्शन द्वारा मन द्वारा पर

को देखता है, यहाँ मन द्वारा अचक्षुदर्शन यहाँ (स्व को) देखता है। यहाँ (स्व को) देखता है, वहाँ समकित है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों साथ-साथ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में ही है। वह तो अनन्त गुण की पर्याय (साथ में) है।

अचक्षुदर्शन द्वारा वस्तु है, उसे देखे कि यह आत्मा है, ऐसा भी उसमें नहीं है। यह तो पर्याय उस ओर ढली है, इसलिए सामान्य में ढली, ऐसा कहने में आता है। अब सामान्य को अचक्षुदर्शन को जब देखे, ऐसा कहा, तब स्व का अवलोकन हुआ, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन है। पर का अवलोकन है, वहाँ मिथ्यादर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा अन्दर, यह आत्मा सामान्य वस्तु, बस। उस पर जहाँ अवलोकन हुआ, तब तो उसे अनन्त गुण की पर्याय की व्यक्तता प्रगट हुई। सम्यग्दर्शन की बात ली। परन्तु सम्यग्दर्शन होने पर वह पूरा आत्मा प्रतीति में आने से अचक्षुदर्शन द्वारा अवलोकन के काल में पूरे पूर्ण आत्मा की प्रतीति होने से जितने गुण हैं, उनका एक अंश प्रगट सब गुण हुए। अर्थात् सत्ता अवलोकन में और सम्यग्दर्शन में एक ही पर्याय प्रगटी दर्शन की और अचक्षुदर्शन की, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह सूक्ष्म बात है, बापू! वीतराग के अतिरिक्त कहीं यह (बात नहीं)। सर्वज्ञ परमेश्वर सम्यग्दर्शन को किस प्रकार से कहते हैं? यह बात करते हैं। समझ में आया?

देखने के दो प्रकार। एक अचक्षुदर्शन द्वारा आत्मा को देखना, वह और उस काल में... क्योंकि आत्मा को देखा। उसी काल में उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय है। और उस सम्यग्दर्शन की पर्याय द्वारा आत्मा की प्रतीति की, वह भी एक साथ हुआ है। आहाहा! समझ में आया? अरे! अनन्त गुण की पर्यायें प्रगट हुईं। अनन्त गुण की पर्यायों ने सामान्य को देखा है। नवरंगभाई! ऐसा है। पानी-बानी तो कहीं रह गया। आहाहा! अभी तो प्रथम सम्यग्दर्शन। पश्चात् चारित्र तो सम्यग्दर्शन हो, उसे चारित्र वस्तु में स्थिरता आवे। सम्यग्दर्शन बिना के व्रत और तप, वे सब एकड़ा बिना के शून्य हैं। बालतप और बालव्रत है, ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य समयसार में कहते हैं। जिसे

सम्यग्दर्शन नहीं, आत्मा का अवलोकन हुआ नहीं श्रद्धा, उसे अन्तर स्वभाव की प्रतीति अन्तर्मुख होकर हुई नहीं, ऐसे जीव को जितने व्रत और तप होते हैं, वे सब अज्ञान और मूर्खता से भरपूर व्रत और तप है। ऐसा पाठ पुण्य-पाप अधिकार में समयसार में है। समझ में आया?

चारों में से.... चार कौन? चक्षुदर्शन—चक्षु से देखना। अचक्षुदर्शन—मन से देखना। अवधिदर्शन—रूपी पदार्थ को आंशिक प्रत्यक्ष देखना। केवलदर्शन—सम्पूर्ण देखना। इन चार दर्शन में से मन से जो देखना, वह अचक्षुदर्शन। अब चार में से कौन सा दर्शन, ऐसा कहते हैं। **जो आँखों से देखना, वह चक्षुदर्शन है।** यह तो आँख से यह देखे। आँख से देखे उसमें ऐसा नहीं है। आँख से देखे कि यह भगवान है, वह ज्ञान हो गया। परन्तु आँख से सामान्य सत्ता दिखाई दे, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। चक्षुदर्शन में ज्ञात होता है कि यह भगवान है, यह प्रतिमा है, यह मन्दिर है। वह तो ज्ञान हो गया। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **चारों में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में...** केवलज्ञानी की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो छद्मस्थ अभी आवरण में रहा हुआ है, भावघाति आवरण में। जड़ घाति का आवरण (पृथक् है)। समझ में आया? उसमें—अवस्था में **मन से होता है...** उसे मन से दिखता है। **और वह आत्मदर्शन...** है? मन से ... अचक्षु से कहा वह **आत्मदर्शन मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है।** आहाहा! समझ में आया? उसे जो मिथ्यात्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, समकितमोहनीय प्रकृति, वह तीन और चार अनन्तानुबन्धी, इन सात का स्व अचक्षुदर्शन द्वारा, मन द्वारा आत्मा को अवलोकता है, उसे सात का क्षयोपशम, क्षय और उपशम होता ही है। समझ में आया? मीठाभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग उसे... बहुत विचार अपेक्षित है ऐसा है। अनन्त काल में नौवें ग्रैवेयक (गया)। जैन दिगम्बर साधु (हुआ), हजारों रानियाँ छोड़ी, पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये और चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, इतनी क्षमा भी की, परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़ा, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान हुआ। उसमें आत्मा कहाँ आया? वह तो कहा न परलक्ष्यी। आहाहा! नौ पूर्व की लब्धि भी प्रगट हुई हो। वह तो परलक्ष्यी है। मिथ्यादर्शन में होता है।

मुमुक्षु : आत्मा को .... रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा नहीं। ध्यान वह करता नहीं। उसे खबर नहीं आत्मा क्या चीज़ है? विकल्प से विचार करे कि उसका आया है। परन्तु अन्दर उसे आत्मदर्शन नहीं होते। विकल्प के विचार में ले कि भगवान इसे ऐसा कहते हैं। सुना है न! परन्तु वह विकल्प तोड़कर अन्दर में दृष्टि करना, उस आत्मा को देखता नहीं। बाकी सब जानपना बहुत किया उसने। आहाहा! समुद्र डोला परन्तु भगवान का—आत्मा का पता नहीं लिया। आहाहा! बापू! सूक्ष्म बात है।

सो सम्यग्दृष्टि के तो यह दर्शन... देखा! अचक्षुदर्शन अर्थात् मन द्वारा आत्म अवलोकन, वह **सम्यग्दृष्टि के तो यह दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से...** उसे तो तत्त्वार्थश्रद्धान यथार्थ हो गया है। आहाहा! अचक्षुदर्शन मन द्वारा अज्ञानी अवलोकता तो है, परन्तु वह पर को अवलोकता है, स्व को नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहेंगे अभी। उसे **तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है,...** क्यों? कि **जिसमें शुद्ध आत्मतत्त्व ही उपादेय है,...** अचक्षु अर्थात् मन द्वारा आत्मा के अवलोकन में ढला है, इस ओर न? इसलिए उस सम्यग्दृष्टि को अचक्षुदर्शन द्वारा तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ, उसमें शुद्धात्मा उपादेय है, वह दृष्टि में आया है। आहाहा! समझ में आया? देखो! तत्त्वार्थश्रद्धान में...

यह दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है, जिसमें... तत्त्वार्थ श्रद्धान को भी **शुद्ध आत्मतत्त्व ही उपादेय है,...** आहाहा! मार्ग बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती। और कैसे प्राप्त हो, उसकी विधि की खबर नहीं होती और यह बाहर के व्रत और तप लेकर बैठ गये। धूल-धाणी और वार्ता में कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है। '**तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण-सम्यक्त्वाभावात्**'। देखा? अज्ञानी को सम्यग्दर्शन का अभाव है। '**शुद्धात्मतत्त्वमेवोपा-देयमिति श्रद्धानाभावे**' अभाव से लिया। यहाँ भाव से लिया। क्या कहा, समझ में

आया ? कि मन द्वारा अज्ञानी पर को अवलोकता है, उसमें स्वअवलोकन नहीं आया। इसलिए उसे...

मुमुक्षु : अवलोकन में स्व और पर, ऐसा भेद कहाँ होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भले अवलोकन में स्व-पर का (भेद नहीं), परन्तु इस ओर ढला है और इस ओर ढला, इतनी बात है या नहीं ? भेद नहीं। परन्तु इस ओर ढला है या इस ओर ढला है, इतनी तो सत्ता में है न ? आहाहा ! पर्याय का झुकाव स्वसन्मुख है या परसन्मुख ? यह सामान्य। पश्चात् यह स्व है और पर है, ऐसा भी नहीं। परन्तु झुका है पर्याय से...

मुमुक्षु : भेदज्ञान है ही नहीं, फिर स्वसन्मुख हो ही कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न ? इसलिए उसका ज्ञान, अज्ञान है। तत्त्वार्थ श्रद्धान का अभाव है और शुद्धात्मा उपादेय का अभाव है। पाठ में ऐसा है। पण्डितजी ! पाठ में उस अभाव की बात ली है। अर्थ किया है, देखो !

मानस-अचक्षुदर्शन (मनसम्बन्धी अचक्षुदर्शन) आत्मग्राहक होता है और वह, मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षयजनित तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व का अभाव होने से.... यह अज्ञानी को सम्यग्दर्शन का अभाव है। **शुद्धात्मतत्त्व ही उपादेय है, ऐसी श्रद्धा का अभाव होने से,...** ज्ञानी के लिये निकाला कि स्व अवलोकन के काल में आत्मा भगवान पूर्णानन्द का अवलोकन है, वह है दर्शन सत्ता। सत्ता का। परन्तु उस समय स्व का अवलोकन हुआ, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन है। और इसलिए उसे तत्त्वार्थश्रद्धान है। और तत्त्वार्थश्रद्धान होने से शुद्धात्मा उपादेय है, यह दृष्टि उसमें गयी है। आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठ में टीका में इतना है। मिथ्यादृष्टि को स्वअवलोकन नहीं है, इसलिए तत्त्वार्थश्रद्धान का अभाव है, इसलिए शुद्ध आत्मा उपादेय है, उसका भी अभाव है। अब गुलाँट खाकर बात निकाली कि आत्मा जब अचक्षुदर्शन द्वारा मन द्वारा पर को जो देखता, वह स्व को अवलोकता है अन्दर। भले सामान्य हो। अचक्षुदर्शन

सामान्य है न! अचक्षुदर्शन सामान्य। परन्तु वह अवलोकन में ऐसे गया अन्दर... आहाहा! तब उसे आत्मदर्शन हुआ, वह देखने के काल में उसे सम्यग्दर्शन हुआ। तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ, तत्त्वार्थ सम्यग्दर्शन हुआ और शुद्ध आत्मा उपादेय है, ऐसी दृष्टि हुई। आहाहा! अकेला भगवान शुद्ध परमानन्द प्रभु, वही ग्रहण करनेयोग्य उपादेय है, यह दृष्टि हुई। तब उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? गाथा जरा सूक्ष्म आ गयी है। आहाहा!

और ऐसा कहा कि भाई! सामान्य अवलोकनवाला हो, वह स्व और पर दो कैसे? यह यहाँ प्रश्न नहीं। पर्याय ऐसे झुकी है इतना, बस। सामान्य में जाता हूँ तो वह भी वहाँ कहाँ है? यह सामान्य है, ऐसा भेद पड़े तो ज्ञान हो गया। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : .... देखने में और जानने में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा-श्रद्धा में प्रतीति आयी। प्रतीति आयी। ज्ञान भी उसके साथ हुआ न? सम्यक्ज्ञान भी साथ में हुआ है।... आनन्द का अंश भी प्रगट हुआ है। ... यहाँ तो स्व अवलोकनवाले को सम्यग्दर्शन कैसे है, यह बात चलती है। और पर अवलोकनवाले को मिथ्यादृष्टि कैसे है, यह चलती है। समझ में आया? बात तो दर्शन सामान्य सत्ता अवलोकन। बस है इतना। यह है, वह भी नहीं। यह है, यह भेद पड़ गया। दर्शन का विषय इतना है। कुछ भेद नहीं, बस, है। है अर्थात् यह है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! यह है, यह नहीं—ऐसे वहाँ दो हो जाते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

परन्तु वह जब पर्याय अचक्षुदर्शन की... अचक्षुदर्शन तो है या नहीं? उसकी पर्याय मन द्वारा अर्थात् अचक्षुदर्शन द्वारा ऐसे गयी तो उसे सामान्य द्रव्य का—आत्मा का अवलोकन हुआ। अज्ञानी को मन द्वारा पर का अवलोकन था, इसलिए वह मिथ्यादृष्टि तत्त्वार्थश्रद्धान शुद्धात्मतत्त्व उपादेय है, उसका अभाव है। और यह पर्याय जब अन्दर में गयी, झुकी, तब अचक्षुदर्शन द्वारा अवलोकन होने से उसमें स्वअवलोकन हुआ, इसलिए वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... अन्दर अचक्षुदर्शन के साथ स्व अवलोकन हुआ, इसलिए प्रतीति सम्यग्दर्शन की है। आहाहा! अब इसमें कितना समय गया? पौन घण्टे से ऊपर हो गया। आहाहा! लिखा जाता है या नहीं? यह वापस डालेंगे उसमें— आत्मधर्म में।

सामान्य अर्थात् भेद पाड़े बिना अभेद हुआ, उसे सत्ता अवलोकन दर्शन कहते हैं। है इतना। उसे अवलोके-देखे, उसे दर्शन कहते हैं। इस दर्शन में से प्रश्न उठा है। ऐसा सामान्य दर्शन तो अभव्य को भी है। मिथ्यादृष्टि को सामान्य दर्शनउपयोग नहीं? दर्शनउपयोग, ज्ञानोपयोग उसे भी है। तब तुम यदि ऐसा कहो कि सामान्य देखना, वह दर्शन, तो मिथ्यादृष्टि को भी समकित हो गया। क्योंकि देखना, वह भी सामान्य को देखता है।

तब प्रश्न ऐसा उठा, भाई! ऐसा नहीं। मिथ्यादृष्टि सामान्य को अवलोकता है, वह मन द्वारा पर को अवलोकता है। इतना अन्तर किया। आहाहा! और सम्यग्दृष्टि अचक्षु द्वारा अवलोकता है, वह स्व को अवलोकता है। यह ऐसा अन्तर किया पूरा। स्व का अवलोकन अचक्षुदर्शन से है, इसलिए वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उसे प्रकृति का क्षय, क्षयोपशम, उपशम हो गया ही है। और उसे तत्त्वार्थश्रद्धान है और इससे शुद्धात्मा उपादेय है, यह दृष्टि सच्ची है। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! आज सब सूक्ष्म आया है। ...गुजराती ... डाला था। आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३५वीं गाथा पर प्रवचन उपलब्ध नहीं होने से
सन् १९६५-६६ के वर्ष में से लिया गया है।

वीर संवत् २४९२, पौष शुक्ल १३, बुधवार
दिनांक-०५-०१-१९६६, गाथा-३४-३५, प्रवचन-९५

(३४वीं गाथा)। दूसरे भाग की, **आगे सामान्य ग्राहक निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप दर्शन को कहते हैं।** विषय जरा दूसरा थोड़ा सा अन्दर बदलते हैं। बात तो सम्यग्दर्शन की है, परन्तु उसमें सामान्य ग्राहक सत्तावलोकन की व्याख्या साथ में थोड़ी डालते हैं।

१५७) सयल-पयत्थहँ जं गहणु जीवहँ अग्गिमु होइ।
वत्थु-विसेस-विवज्जयउ तं णिय-दंसणु जोइ॥३४॥

अन्वयार्थ:—जो जीवों के ज्ञान के पहले... 'अग्निमं' अर्थात् पहले, ज्ञान होने से पहले। ३४ का शब्दार्थ। **सब पदार्थों का यह सफेद है, इत्यादि भेद रहित...** दर्शन कहना है न? वस्तु का दर्शन होने पर उसमें यह सफेद है, यह जीव है और यह जड़ है, ऐसा भेद किये बिना। **सामान्यरूप देखना, वह दर्शन है, उसको तू जान।** ऐसा योगीन्द्रदेव आचार्य ने कहा।

यहाँ प्रभाकरभट्ट पूछता है, कि आपने जो कहा कि निजात्मा का देखना, वह दर्शन है,... अभी तक तो आपने ऐसा कहा, दूसरा भाग, दूसरे भाग की ३४ गाथा। दूसरा भाग, पहला भाग नहीं। समझ में आया? गाथा तो यह आयी। तुम चलते हो तो निजात्मा का दर्शन, उसे सम्यग्दर्शन कहते हो। उसमें और यह विषय कहाँ तुमने डाला? समझ में आया? शिष्य का प्रश्न है कि **आपने जो कहा कि निजात्मा का देखना, वह दर्शन है,...** आत्मा का स्वरूप शुद्ध, उसे अन्तर में देखना, उसे दर्शन कहा जाता है। **ऐसा बहुत बार तुमने कहा है, अब सामान्य अवलोकनरूप दर्शन कहते हैं।** और कहते हो कि सामान्य अवलोकन वह दर्शन। समझ में आया? सामान्य अवलोकन अर्थात् क्या? और आत्मा का दर्शन अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! ठीक। कहो, समझ में आया?

निजात्मा का देखना, वह दर्शन। आप तो अभी तक कहते आये हो कि यह

आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञायकस्वरूप है, उसे देखना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है, वह धर्म है। तो यह और सामान्य अवलोकन कहाँ डाला बीच में? क्योंकि **ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टियों के भी होता है,...** यह जो सामान्य अवलोकन, ज्ञान से पूर्व पहले दर्शन होता है, ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टि अभव्य को सबको होता है। समझ में आया?

उनको भी मोक्ष कहनी चाहिए? तो मिथ्यादृष्टि को भी मोक्ष होगा। क्योंकि आपने तो निजात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति का दर्शन करना, उसे सम्यग्दर्शन कहा है। और आप कहते हो कि सामान्य अवलोकन करना, भेद किये बिना। यह सफेद, काला, लाल, जीव, जड़ (ऐसा) भेद पाड़े बिना देखना, वह दर्शन है। ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टि को होता है, तो मिथ्यादृष्टि को भी मोक्ष होना चाहिए। प्रश्न समझ में आया कुछ?

इसका समाधान—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, ये दर्शन के चार भेद हैं। इन चारों में मनकर जो देखना वह अचक्षुदर्शन है,... मन से देखना, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। **जो आँखों से देखना, वह चक्षुदर्शन है। इन चारों में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है...** देखो! उसके साथ मिलाते हैं, सम्यग्दर्शन के साथ। चार में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ दशा में केवलज्ञान से पहले **मन से होता है और वह आत्म-दर्शन मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है।** क्या कहा? समझ में आया? आत्मा का सम्यग्दर्शन, निजात्मा का दर्शन हो, उसके साथ अचक्षुदर्शन से भी अवलोकन होता है। अचक्षुदर्शन से उसके साथ अवलोकन होता है। वह अचक्षुदर्शन अवलोकन सम्यग्दर्शन के साथ होता है और इसलिए वह अचक्षुदर्शन, दर्शनमोह का मिथ्यात्व **सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है। सो सम्यग्दृष्टि के तो यह दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है,...** सम्यग्दृष्टि को तो वह अवलोकन अचक्षुदर्शन होने से अन्दर तत्त्वार्थ श्रद्धा का भान हुआ है। समझ में आया? उसके साथ अचक्षुदर्शन का अवलोकन है। उसके साथ का। उसके साथ जो अचक्षुदर्शन अवलोकन है। आत्मा की तत्त्वार्थश्रद्धान दृष्टि प्रगटते सात प्रकृति का उपशम, क्षयोपशम, क्षय होने से शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हो, वहाँ जो अचक्षुदर्शन से अवलोकन कहने में आया, उसे सम्यग्दर्शन के साथ का गिनकर उसे मोक्ष का कारण कहा गया है। समझ में आया? **यह दर्शन**

तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है,... वह अचक्षु से देखने से, उस काल में तत्त्वार्थश्रद्धान साथ में होता है। समझ में आया या नहीं इसमें? मन है अचक्षु है, उससे देखता है, वह तत्त्वार्थ श्रद्धान के काल में उसके साथ देखता है, ऐसा। सम्यग्दृष्टि को ही यह होता है। समझ में आया? अकेला सम्यग्दर्शन बिना का अज्ञानी का जो अवलोकन है, उसे यहाँ गिनना नहीं।

और मिथ्यादृष्टियों के तत्त्वश्रद्धान नहीं होने से... देखा? उसमें तो तत्त्वार्थश्रद्धान होने से मोक्ष का कारण है और **जिसमें शुद्ध आत्म-तत्त्व ही उपादेय है,...** शुद्ध आत्मा आदरणीय है, ऐसा सम्यग्दर्शन में, अचक्षुदर्शन के काल में वह आत्मा उपादेय है, ऐसा भान है। सूक्ष्म बात आयी। कहो, कान्तिभाई! अचक्षुदर्शन वह अन्दर उस समय का लिया। सम्यग्दर्शन, तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शन है, उस समय अचक्षु अर्थात् मन से आत्मा का जो अवलोकन होता है, सम्यग्दर्शन के काल में, ऐसे अचक्षुदर्शन को सम्यक् तत्त्वार्थश्रद्धा के साथ गिनकर उसे मोक्ष का कारण कहा है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को तत्त्वार्थश्रद्धान नहीं है। ज्ञायक चैतन्यस्वरूप शुद्ध है, उसका उसे भान नहीं। **आत्मा का दर्शन नहीं होता।** उसे आत्मा का दर्शन ही नहीं। इसलिए अचक्षु से आत्मा का दर्शन उसे है नहीं। समझ में आया इसमें?

मिथ्यादृष्टियों के स्थूलरूप परद्रव्य का देखना-जानना... देखो! मिथ्यादृष्टि को स्थूलरूप से मन से इन्द्रियों द्वारा पर का जानना है, स्वद्रव्य का ज्ञान उसे नहीं होता। स्वद्रव्य की श्रद्धा होती है, उसका ही ज्ञान होता है, उसके साथ अचक्षुदर्शन देखे, उसे यहाँ अचक्षुदर्शन कहा जाता है। उसे—सामान्य अवलोकन को दर्शन यहाँ कहा गया है। तत्त्वार्थश्रद्धान साथ हो उसे। समझ में आया? विषय बदला, इसलिए उसे वापस मिलाना चाहिए न। यह पहले आ गया है अपने, १४० पृष्ठ पर। समझ में आया? वहाँ भी पूछा है, यह और कहाँ डाला? १४० पृष्ठ पर यह आ गया था। कहो, समझ में आया इसमें?

आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पुण्य-पाप के विकल्परहित, शरीर-कर्मरहित एक स्वरूप अखण्ड ज्ञायक है, ऐसी अन्तर में श्रद्धा होना, ज्ञान होना, उसे तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहते हैं। तब यहाँ कहा कि अचक्षुदर्शन के अवलोकन को तुमने मोक्षमार्ग में कहाँ डाला? ऐसा अवलोकन तो अज्ञानी को अनादि का है। भाई! हमने डाला वह

तत्त्वार्थश्रद्धान के साथ जो मन के अवलोकन को आत्मा का करते हैं, इसकी अपेक्षा से हम बात करते हैं। समझ में आया? चिमनभाई! और सूक्ष्म आया, तुम आये न। सत्तावलोकन और यह और यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह अवलोकन तत्त्वार्थश्रद्धान के साथ जो मन से अवलोकन (होता है), उसे यहाँ गिना है। ऐसा। उसका अवलोकन मन से, उसका आत्मा को लागू पड़ गया है। सम्यक् तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ है, उसे जो मन का अवलोकन आत्मा का हुआ है, उसे यहाँ गिना है। इसके अतिरिक्त के मन और इन्द्रिय से परद्रव्य को अवलोके, यहाँ स्वद्रव्य के अवलोकन की बात है न? मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य पाँच इन्द्रिय और मन से अवलोकन ज्ञान होने से पूर्व होता है, वह अवलोकन तो अभव्य को सबको होता है। उसमें आत्मदर्शन नहीं होता। समझ में आया? यहाँ तो आत्मदर्शन और मन के चक्षु, अचक्षुदर्शन का उघाड़, वह आत्मा को अन्दर देखता है, देखता है, उसे यहाँ गिनने में आया है। कहो, फूलचन्दभाई! समझ में आया इसमें? सूक्ष्म पड़ता है, सूक्ष्म पड़ता है। परिचय नहीं और अभ्यास नहीं होता। वह कमाने का अभ्यास बहुत होता है, इसे एकदम।

कहते हैं कि दर्शन के दो प्रकार। एक तो आत्म तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन। अब उसके साथ तुमने सामान्य अवलोकन दर्शन और विशेष अवलोकन ज्ञान, उसमें सामान्य अवलोकन दर्शन में चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शन, (ऐसे) चार भेद आते हैं। उसमें तुमने यहाँ सामान्य अवलोकन दर्शन को सम्यग्दर्शन के प्रसंग में क्यों डाला तुमने? क्योंकि ऐसा सामान्य अवलोकन दर्शन तो मिथ्यादृष्टि को होता है, परद्रव्य का। तब शिष्य ने प्रश्न किया। उन्होंने कहा, भाई! यह तो अन्तर आत्मदर्शन की बात है। मिथ्यादृष्टि को दूसरे द्रव्यों को जानने से पहले सामान्य अवलोकन भेद किये बिना होता है, वह तो अभव्य, भव्य सबको होता है। उसकी यहाँ बात परद्रव्य सम्बन्धी के सामान्य अवलोकन की बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो आत्मा का सामान्य अवलोकन, वह तत्त्वार्थश्रद्धान के साथ पहले अवलोकन करता है, उसे यहाँ गिनने में आया है। समझ में आया?

मिथ्यादृष्टियों को स्थूलरूप परद्रव्य वापस, स्थूलरूप परद्रव्य का देखना-जानना

होता है। **मन और इन्द्रियों के द्वारा होता है, वह सम्यग्दर्शन नहीं है,...** मिथ्यादृष्टि को अन्तर आत्मा की श्रद्धा नहीं। आत्मा ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द है, निर्मलानन्द है—ऐसी दृष्टि का ज्ञान सम्यग्दृष्टि को ही होता है, मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। **इसलिए मोक्ष का कारण भी नहीं है।** मिथ्यादृष्टि को आत्मा का दर्शन नहीं, इसलिए उसे अचक्षुदर्शन जो सम्यग्दर्शन के साथ स्वद्रव्य को देखना चाहिए, ऐसा उसे होता नहीं। इसलिए उसे परद्रव्य का देखना मन, इन्द्रिय से होता है, वह मोक्ष का कारण नहीं कहा गया है। समझ में आया? जरा अटपटी बात आवे, वहाँ उलझे। कहो, समझ में आया या नहीं? सेठ!

सारांश यह है कि तत्त्वार्थश्रद्धान के अभाव से सम्यक्त्व का अभाव है,... भले कहते हैं कि चक्षु, अचक्षुदर्शन से मिथ्यादृष्टि परद्रव्य को जानने से पहले सामान्य देखे। वह यहाँ मोक्ष के कारण में नहीं होता। समझ में आया? आत्मदर्शन तत्त्वार्थश्रद्धान हुआ, उसके साथ मन का अवलोकन (अर्थात्) मन से आत्मा को देखे, ऐसे अवलोकन को यहाँ गिनने में आया है। स्वद्रव्य, यहाँ स्वद्रव्य को लेना है न! उस मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य का अवलोकन है। समझ में आया इसमें?

और सम्यक्त्व के अभाव से मोक्ष का अभाव है। अज्ञानी को तत्त्वार्थश्रद्धान का अभाव है। अर्थात् कि उसे मन से आत्मदर्शन, तत्त्वार्थश्रद्धान के साथ आत्मदर्शन चाहिए सामान्य अवलोकन, वह सम्यग्दर्शन बिना मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य का अवलोकन है, भले उसका अचक्षुदर्शन है। समझ में आया? उसे अचक्षुदर्शन है परन्तु उस अचक्षुदर्शन द्वारा परद्रव्य को जानने से पहले चक्षुदर्शन का, परद्रव्य का दर्शन करता है, स्वद्रव्य नहीं। समझ में आया इसमें? शान्तिभाई! यहाँ चलता है तो तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन का विषय, परन्तु आचार्य ने जब यह सामान्य अवलोकन डाला....

१५७) **सयल-पयत्थहँ जं गहणु जीवहँ अग्गिमु होइ।**
वत्थु-विसेस-विवज्जयउ तं णिय-दंसणु जोइ॥३४॥

पाठ तो इतना रखा कि आत्मा में सकल पदार्थ का सामान्यरूप से देखना पहला-वहला हो, फिर वस्तु को विशेष '**वल्धिने**' अर्थात् विशेष पदार्थ का ज्ञान छोड़कर सामान्यरूप से देखना हो उसे '**णिय-दंसणु जोइ तं णिय-दंसण**' उसे निज दर्शन देख।

निज दर्शन देख, ऐसा कहा है। क्या कहा? समझ में आया? पाठ क्या लिया है? इस चौथे पद में अन्तर है। सभी पदार्थ हैं, उन्हें सामान्यरूप से पहले देखे और यह विशेष बिना देखे, उसे '**णिय-दंसण**' देख, उसे निज दर्शन देख, ऐसा कहा। उस निज दर्शन देख, इसलिए उसमें सम्यग्दर्शन इकट्ठा डाल दिया, आत्मा का दर्शन डाला। समझ में आया? यह आचार्य ने स्वयं डाला है। समझ में आया? यह निजदर्शन कहा।

कहते हैं कि दर्शन के दो प्रकार हैं। एक तत्त्वार्थश्रद्धान दर्शन, वह आत्मदर्शन—आत्मा की प्रतीति, भान। और दर्शन सामान्य उपयोग, ज्ञान विशेष उपयोग। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी के उघाड़ से (हो वह)। वह दर्शनोपयोग जो है, वह पर को जानने में मिथ्यादृष्टि को जानने से पहले सामान्य अवलोकन होता है, ऐसा दर्शन तो अज्ञानी को भी होता है। यह बात यहाँ लेनी नहीं है। यहाँ सामान्य अवलोकन उसे निज दर्शन कहा है, वह तत्त्वार्थश्रद्धानवाले जीव को निज दर्शन अर्थात् अचक्षुदर्शन से देखना होता है, उसे यहाँ दर्शन कहा जाता है। कठिन बात, भाई! यह पाठ में डाला है न, इसलिए टीकाकार ने कहा है, कहीं मुफ्त नहीं कहा है। '**तं णिय-दंसणु जोइ**' उसे निज दर्शन देख, ऐसा कहा है न स्पष्ट? समझ में आया? आत्मा को ज्ञान होने से पहले दर्शन का भाव होता है, उसे तू निज दर्शन देख, ऐसा आचार्यों ने कहा है। छोटाभाई! तब टीका में विस्तार किया कि, भाई! निज दर्शन जो कहा है, वह तत्त्वार्थश्रद्धान आत्मा शुद्ध चैतन्य की प्रतीति होने से होता है, उस काल में जो ज्ञानी को अचक्षुदर्शन द्वारा मन से निज दर्शन—देखना होता है, उसे गिनने में आया है। मिथ्यादृष्टि को ज्ञान होने से पहले दूसरे पदार्थों को सामान्यरूप से देखने के उपयोग को यहाँ निज दर्शन नहीं कहा। वह तो परदर्शन है, उसमें आत्मा आया नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आया? भाई! जुगराजजी! आता है। आहाहा! यह ३४ कहीं। क्या कहते हैं यह? यह कहते हैं कि कितने ही बिना भान के हाँ करते हैं, ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो विस्तार तो किया कि, आचार्यदेव योगीन्द्रदेव, तत्त्वार्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अभेद रत्नत्रय मोक्षमार्ग की व्याख्या चलती है। इस गाथा में अभेद रत्नत्रय की व्याख्या चलती है। यह पहले से कहा था। देखो! उस ओर से। है न? ३१ गाथा। **अभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा-सूत्र कहते हैं,...** अभी तो आठवें

दोहे में चलता है। ३१ से। यह तो अभी तो ३४ है। समझ में आया? कहते हैं कि प्रभु! आपने तो अभेद रत्नत्रय की व्याख्या शुरु की है। अभेद रतनत्रय अर्थात् कि यह आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव आनन्दस्वरूप की अन्तर्दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी लीनता, ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग की शुरुआत की है। अभेद रत्नत्रय कहो, या निश्चयमोक्षमार्ग कहो।

भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप के दर्शन, ज्ञान और चारित्र। ऐसे अभेद रत्नत्रय में तो आत्मा का दर्शन आता है, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का चारित्र आता है। उसमें और यह गाथा सामान्य अवलोकनवाली (आयी) कि जिसमें दूसरे पदार्थ को जानने से पहले विशेष भेद किये बिना पहले देखना होता है, उसे सामान्य अवलोकन कहते हैं। वह तो दर्शनोपयोग में जाता है, दर्शनोपयोग में जाता है। इस आत्मश्रद्धा में उसे (क्यों डाला)? और पाठ में वापस लिया कि उसे निज दर्शन देख। पाठ लिया कि, ऐसे अवलोकन को निज दर्शन देख, ऐसा कहा। समझ में आया?

तब गुरु ने कहा, भाई! यहाँ जो सामान्य अवलोकन लिया है, वह मिथ्यादृष्टि जो परद्रव्य को देखता है, जानने से पहले का भाव, वह भाव यहाँ नहीं लिया। क्योंकि वह मोक्ष का कारण नहीं है। यहाँ तो आत्मा तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक् श्रद्धा के काल में निज दर्शन-मन द्वारा अवलोकन करे, ऐसे निज दर्शन को यहाँ कहा गया है कि जो मोक्ष का कारण है। कहो, हिम्मतभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? भाई! हमारे यह सेठ वापस ऐसे हैं थोड़े-थोड़े सब हाँ तो करते हैं। मीठा कहना बहुत अच्छा है, ऐसा कहे। थोड़ा साधारण मीठा हो तो ... पकवान पकवान, घर में पकवान हुआ हो न? (तो पूछे) कैसे है? कि बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। थोड़ा साधारण हो तो बहुत अच्छा कहे। ऐसे हमारे पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है।

यह बात तो कितनी स्पष्ट तो बात चलती है। अधिकार है मोक्ष के मार्ग का— अभेदरत्नत्रय अर्थात् कि आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य (है, उसके दर्शन, ज्ञान और चारित्र)। उसकी बात चलती है, उसमें तुमने यह सामान्य अवलोकन की बात कहाँ डाली? वहाँ दर्शनोपयोग ऐसा सामान्य उपयोग ज्ञान से पहले होता है, उसकी व्याख्या कहाँ डाली? समझ में आया?

तब कहते हैं कि भाई! उसमें आचार्य महाराज ने डाली है, वह निज दर्शनवाला दर्शन डाला है। सामान्य अवलोकन कहा, वह निज दर्शनवाला अवलोकन कहा है। जो मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य का अवलोकन होता है, पश्चात् ज्ञान होता है, उस अवलोकन की बात यहाँ नहीं ली है। आहाहा! समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं?

यहाँ तो '**तं णिय-दंसणु जोइ**' बस। इसकी बात है मूल तो उसे तू दर्शन, निज दर्शन कहे, देख। ऐसा पाठ लिया न कि, सामान्य अवलोकन, ज्ञान होने से पहले होता है, उसे तू आत्मा का दर्शन देख। ऐसा जब कहा गया, तब शिष्य का प्रश्न हुआ कि सामान्य अवलोकन में यदि मोक्ष का कारण हो तो ऐसा सामान्य अवलोकन तो अभव्य मिथ्यादृष्टि को भी होता है। अनादि का सामान्य अवलोकन है, कभी सामान्य अवलोकनरहित जीव होता नहीं। ज्ञान से पहले सामान्य अवलोकन होता है, भेद पाड़े बिना, पश्चात् यह (विशेष ज्ञान होता है)। समझ में आया या नहीं? जैसे यह भगवान है, देखो! सीमन्धर भगवान हैं, यह जाना, वह ज्ञान है। इससे पहले यह भगवान है, ऐसा नहीं, आत्मा में उपयोग होता है। सामान्यरूप से भेद पाड़े बिना एक शक्ति का उपयोग (होता है), उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। पश्चात् यह भगवान है, वह ज्ञानोपयोग हो गया। समझ में आया? तो इस बात में तो भगवान ने मोक्षमार्ग गिना नहीं, ऐसे सामान्य-विशेष में और तुमने तो यहाँ सामान्य उपयोग को मोक्षमार्ग में डाल दिया।

यह सामान्य को डाला, वह निज आत्मा की अपेक्षा की यहाँ बात ली है। समझ में आया? आत्मा अपनी श्रद्धा, ज्ञान शुद्ध करने के काल में जो मन से अचक्षुदर्शन का उघाड़ है, उसका सहकारी साथ में कारण गिनकर उसे हमने मोक्ष का कारण कहा है। वह जो बाह्य पदार्थ को सामान्य जानकर, फिर विशेष जाने, ऐसा अवलोकन मोक्ष का कारण नहीं है। वह तो अभव्य मिथ्यादृष्टि को होता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो भाई! ज्ञान की कला है, इसे समझना चाहिए। ज्ञान से ज्ञान करना चाहिए। यह बात है। ३४ हुई। ३५।

गाथा - ३५

अथ छद्मस्थानां सत्तावलोकदर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवतीति प्रतिपादयति -

१५८) दंसणपुव्वु हवेइ फुडु जं जीवहँ विण्णाणु।
वत्थु-विसेसु मुणंतु जिय तं मुणि अविचलु णाणु।।३५।।

दर्शनपूर्वं भवति स्फुटं यत् जीवानां विज्ञानम्।
वस्तुविशेषं जानन् जीव तत् मन्यस्व अविचलं ज्ञानम्।।३५।।

दंसणपुव्वु इत्यादि। दंसणपुव्वु सामान्यग्राहकनिर्विकल्पसत्तावलोकनदर्शनपूर्वकं हवेइ भवति फुडु स्फुटं जं यत् जीवहं जीवानाम्। किं भवति। विण्णाणु विज्ञानम्। किं कुर्वन् सन्। वत्थु-विसेसु मुणंतु वस्तुविशेषं वर्णसंस्थानादिविकल्पपूर्वकं जानन्। जिय हे जीव। तं तत् मुणि मन्यस्व जानीहि। किं जानीहि अविचलु णाणु अविचलं संशयविपर्ययानध्यवसायरहितं ज्ञानमिति। तत्रेदं दर्शनपूर्वकं ज्ञानं व्याख्यातम्। यद्यपि शुद्धात्मभावनाव्याख्यानकाले प्रस्तुतं न भवति तथापि भणितं भगवता। कस्मादिति चेत्। चक्षुरचक्षुरवधिकेवलभेदेन दर्शनोपयोगश्चतुर्विधो भवति। तत्र चतुष्टयमध्ये द्वितीयं यदचक्षुर्दर्शनं मानसरूपं निर्विकल्पं यथा भव्यजीवस्य दर्शनमोहचारित्रमोहोपशमक्षयोपशमक्षयलाभे सति शुद्धात्मानुभूतिरुचिरूपं वीतरागसम्यक्त्वं भवति तथैव च शुद्धात्मानुभूतिस्थिरतालक्षणं वीतरागचारित्रं भवति तदा काले तत्पूर्वोक्तं सत्तावलोकलक्षणं मानसं निर्विकल्पदर्शनं कर्तृ पूर्वोक्तनिश्चयसम्यक्त्व-चारित्रबलेन निर्विकल्पनिजशुद्धात्मानुभूतिध्यानेन सहकारिकारणं भवति। कस्य भवति। पूर्वोक्तभव्यजीवस्य न चाभव्यस्य। कस्मात्। निश्चयसम्यक्त्वचारित्राभावादिति भावार्थः ।।३५।।

आगे केवलज्ञान के पहले छद्मस्थों के पहले दर्शन होता है, उसके बाद ज्ञान होता है, और केवली भगवान् के दर्शन और ज्ञान एक साथ ही होते हैं - आगे-पीछे नहीं होते, यह कहते हैं-

छद्मस्थों को ज्ञानोत्पत्ति के पहले होता दर्शन।
वस्तु विशेषों को जाने-इतना मानो वह अविचल ज्ञान।।३५।।

अन्वयार्थ :- [यत्] जो [जीवानां] जीवों के [विज्ञानम्] ज्ञान है, वह [स्फुटं] निश्चय करके [दर्शनपूर्वं] दर्शन के बाद में [भवति] होता है, [तत् ज्ञानम्] वह ज्ञान [वस्तुविशेषं जानन्] वस्तु की विस्तीर्णता को जाननेवाला है, उस ज्ञान को [जीव] हे

जीव [अविचलं] संशय विमोह विभ्रम से रहित [मन्यस्व] तू जान।

भावार्थ :- जो सामान्य को ग्रहण करे, विशेष न जाने, वह दर्शन है, तथा जो वस्तु का विशेष वर्णन आकार जाने वह ज्ञान है। यह दर्शन ज्ञान का व्याख्यान किया। यद्यपि वह व्यवहारसम्यग्ज्ञान शुद्धात्मा की भावना के व्याख्यान के समय प्रशंसा योग्य नहीं है, तो भी प्रथम अवस्था में प्रशंसा योग्य है, ऐसा भगवान ने कहा है। क्योंकि चक्षु-अचक्षु अवधि केवल के भेद से दर्शनोपयोग चार तरह का होता है। उन चार भेदों में दूसरा भेद अचक्षुदर्शन मनसंबंधी निर्विकल्प भव्यजीवों के दर्शनमोह, चारित्रमोह के उपशम तथा क्षय के होने पर शुद्धात्मानुभूति रुचिरूप वीतराग सम्यक्त्व होता है, और शुद्धात्मानुभूति में स्थिरतारूप वीतरागचारित्र होता है, उस समय पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप मनसंबंधी निर्विकल्पदर्शन निश्चयचारित्र के बल से विकल्प रहित निज शुद्धात्मानुभूति के ध्यानकर सहकारी कारण होता है। इसलिये व्यवहारसम्यग्दर्शन और व्यवहारसम्यग्ज्ञान भव्यजीव के ही होता है, अभव्य के सर्वथा नहीं, क्योंकि अभव्यजीव मुक्ति का पात्र नहीं है। जो मुक्ति का पात्र होता है, उसी के व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति होती है। व्यवहाररत्नत्रय परम्पराय मोक्ष का कारण है, और निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मुक्ति का कारण है, ऐसा तात्पर्य हुआ।।३५।।

गाथा-३५ पर प्रवचन

---

१५८) दंसणपुव्वु हवेइ फुडु जं जीवहँ विण्णाणु।
वत्थु-विसेसु मुणंतु जिय तं मुणि अविचलु णाणु।।३५।।

आगे केवलज्ञान के पहले छद्मस्थों के पहले दर्शन होता है, उसके बाद ज्ञान होता है, और केवली भगवान के दर्शन और ज्ञान एक साथ ही होते हैं—आगे-पीछे नहीं होते, यह कहते हैं—

अन्वयार्थः—जो जीवों के ज्ञान हैं, वह निश्चय करके दर्शन के बाद में होता है,... छद्मस्थ को। परचीज़ का ज्ञान हो, उससे पहले एक दर्शनोपयोग होता है, देखने का। **जो जीवों के ज्ञान हैं, वह निश्चय करके दर्शन के बाद में होता है, वह ज्ञान वस्तु की विस्तीर्णता को जाननेवाला है,...** अब लिया। उसमें कहा था कि '**वत्थु-विसेस-**

विवज्जयउ' यहाँ कहा कि वस्तु का विशेष ज्ञानसहित विशेष जानपना। किसी भी चीज़ को जानने से पहले, भेद पाड़कर जानने से पहले कि यह भगवान है, यह मन्दिर है, यह समवसरण है, यह तीर्थंकर है। ऐसा ज्ञान होने से पहले ऐसे विशेष के भेदरहित, एक सामान्य उपयोग होता है, वह छद्मस्थ को दर्शनोपयोग कहने में आता है। और पश्चात् **वस्तु की विस्तीर्णता को जाननेवाला है,...** विशेष प्रत्येक पदार्थ का विशेष भाग कि यह भगवान है, यह चैतन्य है, यह केवली है, यह तीर्थंकर है। समझ में आया? ऐसा विशेष जानने का भाग **उस ज्ञान को हे जीव! संशय विमोह विभ्रम से रहित तू जान।** उसे तू सम्यग्ज्ञान जान। संशय बिना, विमोह बिना और भ्रमणा बिना।

जो सामान्य को ग्रहण करे, विशेष न जाने, वह दर्शन है,... सामान्य का अर्थ समझ में आया? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में यह बात तो बहुत आती है। परन्तु अभ्यास नहीं होता न? महासत्ता का सामान्य अवलोकन, उसे दर्शन कहते हैं। यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका लड़कों को पढ़ाने में आती है। तो यह लड़कों का ही है न, तो क्या है वहाँ? फूलचन्दभाई! यह आता है। यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। किसी भी पदार्थ के विशेष पहलू को जानने से पहले एक दर्शनोपयोग महासत्ता अर्थात् कुछ है, सब है। वह यह है, ऐसा भी नहीं, परन्तु है, ऐसा एक उपयोग हो जाये, उसे दर्शन कहते हैं। पश्चात् यह है, ऐसा हो गया, यह है वह विशेष हो गया। यह ज्ञान हो गया। यह जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। ऐसे सामान्य को ग्रहण करे अर्थात्? यह पुस्तक है या अक्षर है, ऐसा नहीं। परन्तु पहले एक दर्शनोपयोग अन्दर होता है ऐसा कि जो परवस्तु और स्व दो के भी भेद पाड़े बिना जो उपयोग हो, उसे सामान्य उपयोग कहते हैं। वह दर्शन है।

तथा जो वस्तु का विशेष वर्णन आकार जाने, वह ज्ञान है। प्रत्येक चीज़ के भेदों को रंग को, गन्ध को, गुण को, पर्याय के भेद जानकर जाने, उसका नाम ज्ञान। **यह दर्शन ज्ञान का व्याख्यान किया। यद्यपि वह व्यवहारसम्यग्ज्ञान शुद्धात्मा की भावना के व्याख्यान के समय प्रशंसा योग्य नहीं है,...** अब आया। आचार्य ने यह डाला सही न, इसलिए टीकाकार को स्पष्टीकरण करना पड़ा। यद्यपि यह व्यवहारज्ञान। कौन सा व्यवहारज्ञान? कि परपदार्थ आदि को सामान्यरूप से देखना। पहले देखे और फिर

जाने, ऐसा यहाँ व्यवहार सम्यग्ज्ञान (शुद्धात्मा की) भावना के व्याख्यान के समय प्रशंसायोग्य नहीं। ऐसी व्याख्या अभी प्रशंसायोग्य नहीं। क्योंकि अभी तो आत्मा के भावना की सम्यग्दर्शन-ज्ञान की बात चलती है। समझ में आया? **तो भी प्रथम अवस्था में प्रशंसा योग्य है, ऐसा भगवान ने कहा है।** तथापि वह दर्शन सामान्य और विशेष ज्ञान, उसे जानना, यह पहली श्रेणी में ठीक कहा है। जानने के लिये ठीक है। क्या कहा?

इस गाथा में तो दर्शन उपयोग और ज्ञानोपयोग की ही व्याख्या है। इस गाथा में। इसमें आत्मा की व्याख्या नहीं। दर्शन उपयोग अर्थात् किसी भी चीज़ को, सभी चीज़ों को सामान्यरूप से उपयोग में आवे, वह दर्शन और भेद पाड़कर जाने, वह ज्ञान। यह तो व्यवहारिक ज्ञान कहलाता है, ऐसा कहते हैं। सामान्य और विशेष पदार्थ का जानना, वह तो व्यवहारिक ज्ञान है। ऐसे शुद्धात्मा की एकाग्रता के व्याख्यान के समय प्रशंसायोग्य नहीं। **तो भी प्रथम अवस्था में प्रशंसा योग्य है,...** तथापि वह सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान, उसे पहले जानना चाहिए। दर्शन को ज्ञान के लक्षण, उनका उपयोग क्या है, कार्य क्या है, वह जानना चाहिए। बस, इतनी बात। **ऐसा भगवान ने कहा है।** अन्दर ऐसा कहा है, हों! समझ में आया? '**तथापि भणितं भगवता।**' भगवान ने कहा है। भगवान अर्थात् यहाँ आचार्य महाराज ने जानने के लिये कहा है। जानो। यह श्रद्धा-दर्शन आत्मा की बात है परन्तु यह भी एक दर्शन, ज्ञान को जानना चाहिए कि, जिससे उसका घोटाला हो नहीं। ऐसा।

क्योंकि चक्षु-अचक्षु अवधि केवल के भेद से दर्शनोपयोग चार तरह का होता है। इन चार भेदों में दूसरा भेद अचक्षुदर्शन मनसम्बन्धी निर्विकल्प भव्यजीवों के... वह कैसे जानना चाहिए? कि उसके अन्दर का एक अचक्षुदर्शन जो भाग है, चार में का वह, **दूसरा भेद अचक्षुदर्शन मनसम्बन्धी निर्विकल्प भव्यजीवों के दर्शनमोह, चारित्रमोह के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय के होने पर शुद्धात्मानुभूति रुचिरूप वीतराग सम्यक्त्व होता है,...** उसके साथ वह सहकारी कहना चाहते हैं। ऐसा उपयोग दर्शन (होता है)। क्या कहा? कि मन से अचक्षुदर्शन में निर्विकल्प भव्य जीवों को दर्शनमोह और चारित्रमोह का उपशम, क्षयोपशम और क्षय में शुद्धात्मानुभूति रुचिरूप वीतराग सम्यक्त्व। शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा निर्मल है, ऐसी श्रद्धा शुद्ध की प्रतीति का अनुभव, ऐसा जो

वीतराग समकित। **और शुद्धात्मानुभूति में स्थिरतारूप वीतरागचारित्र होता है,...** उस समय रागरहित स्वरूप में स्थिरता।

उस समय पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप मनसम्बन्धी निर्विकल्पदर्शन निश्चयचारित्र के बल से विकल्परहित निज शुद्धात्मानुभूति के ध्यानकर सहकारी कारण होता है। क्या कहते हैं? यह अवलोकन डाला, उसका जरा सार्थकपना बताते हैं। आत्मा रागरहित, पुण्य-पापरहित की आत्मदर्शन की दृष्टि निश्चय वीतराग रुचि और रागरहित स्वरूप की चारित्रदशा के काल में मन से अवलोकन, ऐसा जो अचक्षुदर्शन, उसे सहकारी कारणरूप से गिनकर यहाँ सामान्य अवलोकन कहा गया है।

फिर से। कहते हैं, यहाँ आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव, दर्शनपूर्वक ज्ञान। कोई भी वस्तु को विशेषरूप से जानने से पहले एक दर्शनोपयोग होता है और फिर विशेष जानना, उसे ज्ञान कहते हैं। कहते हैं कि यहाँ तो मोक्ष के मार्ग का अधिकार है, तथापि यह बात प्रशंसा के योग्य अभी नहीं है। तो भी कहते हैं कि भगवान ने यह दर्शन और ज्ञान के उपयोग का ज्ञान पहले करना चाहिए, उसे उचित गिना है। और उसमें से तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन होता है और उसके साथ रागरहित चारित्रदशा होती है, उस काल में उस दर्शन में का जो अचक्षुदर्शन का एक भाग है, वह अचक्षुदर्शन का उपयोग ऐसे वीतराग दृष्टि और वीतराग चारित्र के समय सहकारी कारण—साथ में उपयोग गिनने में आया है। समझ में आया? वह अचक्षुदर्शन अन्दर का लिया था, भाई! यहाँ तो सहकारी निमित्त कारणरूप से गिना है। बदलकर बात की है।

श्रद्धा, ज्ञान अन्तर का हुआ और अन्तर की रमणता हुई। तब उसमें ऐसा कहा था, अचक्षुदर्शन अवलोकन निज दर्शन को लिया था न? इसलिए इकट्ठा गिना। यहाँ तो आत्मा की श्रद्धा और चारित्र के काल में यह चार उपयोग में से एक अचक्षुदर्शन का उपयोग साथ में—सहकारी—साथ में होता है, इसलिए उसे कहा गया है। समझ में आया? उसमें निज दर्शन सिद्ध किया। यहाँ सहकारी कारण है, ऐसा सिद्ध किया। क्योंकि इसमें पाठ में निज दर्शन शब्द नहीं है। पाठ में तो...

दंसणपुव्वु हवेइ फुडु जं जीवहँ विण्णाणु।
वत्थु-विसेसु मुणंतु जिय तं मुणि अविचलु णाणु॥३५॥

ऐसा है। समझ में आया?

पहली गाथा में तो ऐसा कहा था कि दर्शन, वह निज दर्शन। भाग किये थे सामान्य और विशेष अवलोकन के। सामान्यरूप से दूसरे पदार्थों को भेद किये बिना देखना, वह सामान्य उपयोग है और भेद करके देखना, वह विशेष (उपयोग) है। उस काल में आचार्य ने निज दर्शन डाला था, इसलिए टीकाकार ने उस दर्शन-श्रद्धा काल में अचक्षुदर्शन का उपयोग अवलोकन भी साथ में होता है, ऐसा कहकर निज दर्शन को अचक्षुदर्शन अवलोकता है, ऐसा कहकर मोक्ष के कारण में इकट्ठा डाला था।

इस गाथा में तो आचार्य ने निज दर्शन नहीं लिया। मात्र पदार्थ को सामान्यरूप से भेद पाड़े बिना उपयोग होना, उसे सामान्य कहते हैं। (यह) छद्मस्थ को (होता है)। केवली को एकसाथ होता है, उसकी बात नहीं है। और सामान्यरूप से उपयोग हो और विशेष जानने का (भेद करे कि) यह जड़ है, यह चेतन है, यह सफेद है, ऐसा विशेष उपयोग, उसे ज्ञान उपयोग कहते हैं। तब कहते हैं, यहाँ तो मोक्षमार्ग की बात इसमें तो आयी नहीं। आत्मदर्शन की बात तो इसमें आयी नहीं और यह कैसे डाला? समझ में आया?

एक तो यह कि मोक्ष के मार्ग के काल में ऐसा ज्ञान अभी व्यवहार से तो प्रशंसा योग्य नहीं। परन्तु पहले जानना चाहिए, इस अपेक्षा से प्रशंसायोग्य कहा। दूसरी बात कि आत्मा के अन्तर दर्शन के और चारित्र के रमणता में यह अचक्षु, चार में से एक भाग अचक्षुदर्शन उपयोग सहकारी—साथ में काम करता है, उतना लेकर यहाँ कहने में आया है। शान्तिभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु इसमें कितना याद रखना? कहते हैं। याद तो सब कितना रखते होंगे? वहाँ घर में नहीं? मशीन-बशीन में कितना रखते होंगे? आहाहा! क्यों, हरकिशनदास! व्यापार-धन्ध में कितना (याद) रखते होंगे? आहाहा! कहो, यह तो स्पष्ट बात तो बहुत कही गयी है।

उस समय पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप मनसम्बन्धी निर्विकल्पदर्शन... पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप, हों! वहाँ यह बात है। भाई! पहला तो निज दर्शन के लिये वह डाला था उसमें। यह तो **पूर्वोक्त सत्ता के अवलोकनरूप मनसम्बन्धी निर्विकल्पदर्शन निश्चयचारित्र के बल से विकल्प रहित निज शुद्धात्मानुभूति के ध्यानकर सहकारी**

कारण होता है। यह उपयोग सहकारी कारण साथ में है। वह तो निज दर्शन कहा था। निज दर्शन डाला था। यहाँ तो निज दर्शन में श्रद्धा और चारित्र के साथ सहकारी कारण है। समझ में आया?

दर्शनउपयोग है या नहीं कुछ? कहते हैं। क्या कहना है? कि यह सम्यग्दर्शन और सम्यक्‌चारित्र है, तब दो में से उपयोग में कोई उपयोग है या नहीं? या उपयोग एक भी नहीं? इसलिए उन्होंने इस दर्शन में सामान्य अवलोकन को सहकारी गिनकर साथ में डाला है। क्या कहा? कि, उस समय ज्ञान नहीं, भाई! ऐसा कहना है। उस समय ज्ञान यह जो सामान्य उपयोग के साथ का विशेष है, ऐसा यह और यह, ऐसा नहीं। यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान और चारित्र में जहाँ स्थित है, उसके साथ ऐसा एक सामान्य अवलोकन (होता है)। विशेष भेद का ज्ञान ऐसा नहीं, यह है न, यह है न, यह है परपदार्थ का, परन्तु उसके साथ ऐसा सामान्य अवलोकन का सहकारी कारण गिनकर यह बात इकट्ठी कही गयी है।

स्व का ज्ञान है, स्व की श्रद्धा है, स्व की स्थिरता है। उस समय कहते हैं कि ऐसा एक अचक्षुदर्शन अवलोकन सहकारी कारण गिनकर कहने में आया है। समझ में आया या नहीं? उस परपदार्थ के विशेष प्रकार और वह यहाँ काम नहीं अभी। समझ में आया? इसलिए आचार्य ने इस श्लोक में निज दर्शन नहीं डाला, तथापि चार दर्शन की सामान्य की व्याख्या डाली और विशेष ज्ञान का डाला, उसका जरा सा सफलपना बतलाते हैं।

आत्मा, अपना भले ज्ञान है, अपनी श्रद्धा है और अपना चारित्र है। वह तो अभेद रत्नत्रय की तो व्याख्या चलती ही है। समझ में आया? तब कहते हैं, वह सामान्य और विशेष जो उपयोग है न, वह में का एक अचक्षुदर्शन का उपयोग साथ में सहकारी कारण है। वहाँ उस समय वह ज्ञान दूसरे पदार्थ का ऐसा और वैसा—ऐसा कुछ है नहीं। इसलिए उसे अचक्षुदर्शन को सहकारी गिनकर उसमें उपयोग को लिया है। छद्मस्थ के लिये। केवल की यह बात नहीं है। समझ में आया इसमें? बात कठिन, भाई! बहुत सूक्ष्म। यह तो ज्ञान की लीला है। बहुत प्रकार से जो-जो विधि है न, उसे जो मिलती हो, उसके प्रकार समझाते हैं। इसे अभ्यास नहीं होता और कठिन लगे, इससे कहीं बात छोड़ दे?

इसलिए व्यवहार सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्ज्ञान भव्य जीव के ही होता है,... देखो! क्या कहते हैं? सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान, सच्चा निश्चय सम्यग्दर्शन, वह भव्य को ही होता है। और अभव्य को भी निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं। अभव्य को और मिथ्यादृष्टि को व्यवहार सम्यग्दर्शन का ज्ञान भव्य जीव को ही होता है। यह क्या कहा? कि जब दर्शनोपयोग सहकारी कहा, जिसे आत्मदर्शन और आत्मज्ञान वर्तता है, उसे ऐसा सहकारी कारण है। भव्य को ऐसे व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि हों, उसे ऐसा उपयोग होता है। अभव्य को तो व्यवहार सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता नहीं। समझ में आया?

अभव्य के सर्वथा नहीं,... व्यवहार सम्यग्दर्शन और व्यवहारज्ञान भी नहीं। **क्योंकि अभव्य जीव मुक्ति का पात्र नहीं है।** समझ में आया? अभव्य जीव तो मुक्ति के योग्य ही नहीं। **जो मुक्ति का पात्र होता है, उसी के व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति होती है।** समझ में आया? जिसे निश्चयरत्नत्रय हो, उसे व्यवहाररत्नत्रय होता है। जिसे आत्मदर्शन, ज्ञान, चारित्र, उसे व्यवहार दर्शन आदि होते हैं। जिसे निश्चय न हो, उसे नहीं होते। अर्थात् व्यवहार दर्शन और ज्ञान अभव्य को गिनने में नहीं आया।

व्यवहाररत्नत्रय परम्पराय मोक्ष का कारण है,... व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान तो जिसे निमित्तरूप से होता है, उसे निश्चय उपादानरूप से शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र होते हैं। इसलिए व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी जिसे निश्चयरत्नत्रय हो, उसे व्यवहार गिनने में आया है। अभव्य को तो निश्चय नहीं, इसलिए व्यवहार भी उसे है नहीं। समझ में आया? अचक्षुदर्शन का उपयोग अभव्य को है, परन्तु उसे तो तत्त्वश्रद्धान आदि जो है, निश्चय और व्यवहार एक भी नहीं। इसलिए अचक्षुदर्शन का उपयोग उसे (सहकारी कारण नहीं है)। सहकारी किसे कहा? कि जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उसे ऐसे अचक्षुदर्शन को सहकारी कहा है। इसे तो यह एक भी नहीं, इसलिए इसे सहकारी कारण भी है नहीं। अर्थात्? सहकारी अर्थात्? निश्चयमोक्षमार्ग नहीं तो व्यवहारी सहकारी मोक्षमार्ग भी नहीं। भाई! क्या कहा? उस अचक्षुदर्शन को सहकारी कारण कहा न? साथ में यह व्यवहाररत्नत्रय सहकारी कारण, उसे नहीं है। समझ में आया?

जिसे आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वर्तता है, उसे अचक्षुदर्शन

का उपयोग सहकारी कहा जाता है। परन्तु जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन आदि नहीं, उसे अचक्षुदर्शन सहकारी नहीं अर्थात् कि उसे व्यवहाररत्नत्रय भी साथ में नहीं। समझ में आया? तो उसे व्यवहाररत्नत्रय भी कहने में (नहीं आता)। यह तो अचक्षुदर्शन सहकारी भी उसे है नहीं।

कहते हैं कि भाई! देखो! सत्ता अवलोकन की व्याख्या तो की यहाँ। उसमें एक अचक्षुदर्शन को भी लिया, सहकारीरूप से। परन्तु सहकारीरूप से किसे? कि जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे। इसी तरह व्यवहाररत्नत्रय सहकारी भी किसे? समझ में आया? आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मचारित्र हो, उसे व्यवहाररत्नत्रय सहकारी होता है। जिसे वह नहीं, उसे व्यवहाररत्नत्रय सहकारी नहीं। वह है नहीं; इसलिए अभव्य को, मिथ्यादृष्टि को अचक्षुदर्शन अवलोकन, वह तो परपदार्थ सम्बन्धी है। इसलिए उसे निश्चय और व्यवहार दोनों रत्नत्रय नहीं है। इसलिए उसे अचक्षुदर्शन जो वह सहकारी जो निश्चय दर्शन-चारित्र में कहने में आया था, वह इसे नहीं। गजब भाई! टीकाकार की रचना भी पाठ को मिलान कर करनी है न सब।

जो पर की श्रद्धा करे व्यवहार, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान... समझ में आया? या पंच महाव्रत के परिणाम सहकारी हैं। वह व्यवहार किसे होता है? कि, जिसे निश्चय हो उसे व्यवहार होता है। समझ में आया? जिसे निश्चय श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र है, उसे उसके साथ ध्यान में, अवलोकन में उस अचक्षुदर्शन को सहकारी कहा गया है। ऐसा जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे व्यवहारिक सहकारी कहा जाता है। तो उसे वह अचक्षुदर्शन सहकारी कहा जाता है। इसे तो अचक्षु सहकारी नहीं, निश्चय नहीं; इसलिए व्यवहार भी नहीं। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। मिथ्यादृष्टि है। परद्रव्य का है अवलोकन। व्यवहार समकित भी नहीं। यहाँ तो ऐसा डाला लगे, वह सहकारी अचक्षुदर्शन को कहा न, वह अचक्षुदर्शन सहकारी किसे लागू पड़ता है? जिसे निश्चय सम्यक्चारित्र हो, उसे। इसी प्रकार सहकारी व्यवहार किसे लागू पड़ता है? जिसे निश्चय हो उसे। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी को बाह्य वेश है, नग्न मुनि है। व्यवहाराभास है। व्यवहार कहलाता है सही, परन्तु वह व्यवहाराभास है। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। यह शास्त्र में है, अभव्य व्यवहार दर्शन, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार क्रियाकाण्ड, शास्त्र का ज्ञान आदि है, निश्चय सम्यग्ज्ञान नहीं, इसलिए वह व्यवहार तो अभव्य भी ऐसा करता है परन्तु उस व्यवहार को व्यवहाराभास कहा जाता है। समझ में आया? कमाने में ऐसा अटपटा आता होगा? कमाने का अर्थात् क्या? वह तो पुण्य हो तो कमाता है, उसमें धूल में कुछ नहीं है। उसमें हर्ष हो तो अटपटा लगे नहीं। आहाहा!

देखो! यहाँ परम्परा कारण जो व्यवहार है, वह अभव्य को नहीं है। निश्चय बिना कैसा (व्यवहार)? वे कहते हैं कि पहले व्यवहार हो, फिर निश्चय (होता है)। यह तो साथ-साथ में कहना चाहते हैं। समझ में आया? मुक्ति के पात्र साथ-साथ कहना चाहते हैं। जैसे वह सहकारी कारण साथ में कहना चाहते हैं न? भाई! उस अचक्षुदर्शन को साथ में कहना चाहते हैं, यह हो तो उसको ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? साथ में कहना चाहते हैं, हों! ऐसा नहीं कि, व्यवहार पहले और निश्चय बाद में। ऐसा नहीं। निश्चयचारित्र के बल से, ऐसा लिया है न उसमें? बलेन। उपयोग वहाँ लागू पड़ गया है न! बल है स्थिरता का, ऐसा। उसमें अचक्षुदर्शन का उपयोग सहकारी कहने में आया है। स्थिर हो गया है न अन्दर, दर्शनसहित। तब अचक्षुदर्शन का उपयोग कहने में आया यहाँ।

फिर ऐसा कहा कि **व्यवहार सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्ज्ञान भव्य जीव के ही होता है,...** सहकारी कारण निश्चय बिना होता नहीं। **अभव्य के सर्वथा नहीं,...** क्योंकि अभव्य जीव मुक्ति का पात्र ही नहीं है। **जो मुक्ति के पात्र होता है, उसी के व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति होती है।** यहाँ तो कहना है कि सहकारी रत्नत्रय भी निश्चय हो, उसे होता है। जिसे निश्चय नहीं, उसे सहकारी कहना किसके साथ? साथ में सहकारी कहना किसे? कोई अन्दर हो, उसे कहना या न हो उसे? **व्यवहाररत्नत्रय परम्पराय मोक्ष का कारण है,...** अर्थात् वह साधकपना विकल्प से निमित्त से कहा है,

उसे छोड़कर स्थिर होगा। **और निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मुक्ति का कारण है, ऐसा तात्पर्य हुआ।** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु उसमें अन्दर ऐसा क्यों डाला, उसे जरा मिलाया। ३४ में निज दर्शन शब्द पड़ा था, इसलिए अवलोकन, ऐसा डाला। उसमें सामान्य बात थी, इसलिए सहकारी कारणरूप से डाला। वह अपने में डाला था। भाई! सहकारी कारण डाला, उसमें अपने में इकट्ठा डाला था। समझ में आया? आहाहा!

इसकी क्रीड़ा, इसे क्रीड़ा कैसे हो, इसकी खबर नहीं होती। उसका दर्शनोपयोग, उसका ज्ञानोपयोग, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। समझ में आया? उसकी सम्पदा, उसका कार्य क्या है, उसका कारण क्या है, स्थिति क्या है, उसे बराबर जानना चाहिए। भाई! जानना चाहिए। ऐसा कहीं ऊपर-ऊपर से पूरा माल मिल जाये, ऐसा नहीं है। पूरा तत्त्व ही अन्दर चिदानन्द पड़ा है। ओहोहो! उसकी शक्तियों के उपयोग के कार्यों का अनेक प्रकार का वर्णन है। श्रद्धा का कार्य, ज्ञान का कार्य, उस दर्शनोपयोग का कार्य। सब कार्यों का वर्णन है न! निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है, ऐसा तात्पर्य हुआ, लो!

मुमुक्षु : संशय, विमोह, अनध्यवसान रहित वह तो मूल ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान। दूसरा किसे ज्ञान कहा जाये?

आगे परमध्यान में आरूढ ज्ञानी जीव समभाव से दुःख-सुख को सहता हुआ... आत्मा के दर्शन, ज्ञान में, चारित्र में लीन हुआ वह जीव सम सुख-दुःख को सहता है। संयोग अनुकूल-प्रतिकूलता में धर्मी समतारूप से परिणमता है। अभेद रत्नत्रय की व्याख्या है न? आत्मा का दर्शन, श्रद्धा और ज्ञान के साथ धर्मी जीव अनुकूल-प्रतिकूलि संयोग में वीतराग समभाव से परिणमता है। जिससे उसे चारित्र की दशा निर्मल होती है। **अभेदनय से निर्जरा का कारण होता है,...** उसका यह आत्मा निर्जरा का कारण है। शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान और साथ में समता परिणाम, वह आत्मा ही निर्जरा का कारण है। पूर्व के बँधे हुए कर्म उसे खिर जाते हैं, यह बात विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ३६

अथ परमध्यानारूढो ज्ञानी समभावेन दुःखं सुखं सहमानः स एवाभेदेन निर्जराहेतुर्भण्यते इति दर्शयति -

१५९) दुक्खु वि सुक्खु सहंतु जिय णाणिउ झाण-णिलीणु।
कम्महँ णिज्जर-हेउ तउ वुच्चइ संग-विहीणु।।३६।।

दुःखमपि सुखं सहमानः जीव ज्ञानी ध्याननिलीनः।
कर्मणः निर्जराहेतुः तपः उच्यते संगविहीनः।।३६।।

दुक्खु वि इत्यादि। दुक्खु वि सुक्खु सहंतु दुःखमति सुखमपि समभावेन सहमानः सन् जिय हे जीव। कोऽसौ कर्ता। णाणिउ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी। किंविशिष्टः। झाण-णिलीणु वीतरागचिदानन्दैकाग्र्यध्याननिलीनो रतः स एवाभेदेन कम्माहं णिज्जर-हेउ शुभाशुभकर्मणो निर्जराहेतुरुच्यते न केवलं ध्यानपरिणतपुरुषो निर्जराहेतुरुच्यते तउ परद्रव्येच्छानिरोधरूपं बाह्याभ्यंतरलक्षणं द्वादशविधं तपश्च। किंविशिष्टः स तपोधनस्थंत्तपश्च। संगविहिनो संग-विहुणु बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहित इति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। ध्यानेन निर्जरा भणिता भवद्भिः उत्तमसंहननस्यैकाग्रचित्तनिरोधो ध्यानमिति ध्यानलक्षणं, उत्तमसंहननाभावे कथं ध्यानमिति। भगवानाह। उत्तमसंहननेन यद्ध्यानं भणितं तदपूर्वगुणस्थानादिषूपशमक्षपकश्रेण्योर्यत् शुक्लध्यानं तदपेक्षया भणितम्। अपूर्वगुणस्थानादधस्तनगुणस्थानेषु धर्मध्यानस्य निषेधकं न भवति। तथाचोक्तं तत्त्वानुशासने ध्यानग्रन्थे - 'यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः। श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्तान्निषेधकम्।।'। किं च। रागद्वेषाभावलक्षणं परमं यदाख्यातरूपं स्वरूपे चरणं निश्चयचारित्रं भणन्ति इदानीं तद्भावेऽन्यच्चारित्रमाचरन्तु तपोधनाः। तथा चोक्तं तत्रेदम् - 'चरितारो न सन्त्यद्य यथाख्यातस्य संप्रति। तत्किमन्ये यथाशक्तिमाचरन्तु तपस्विनः।।' पुनश्चोक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः मोक्षप्राभृते - 'अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाऊण लहहिं इंदत्तं। लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति।।'। अयमत्र भावार्थः। यथादित्रिकसंहननलक्षण-वीतरागयथाख्यातचारित्राभावेऽपीदानीं शेषसंहननेनापि शेषचारित्रमाचरन्ति तपस्विनः तथादिकत्रिकसंहननलक्षणशुक्लध्यानाभावेऽपि शेषसंहनेनापि शेषचारित्रमाचरन्ति तपस्विनः तथा त्रिकसंहननलक्षणशुक्लध्यानाभावेऽपि शेषसंहनेनापि संसारस्थितिच्छेदकारणं परंपरया मुक्तिकारणं च धर्मध्यानमाचरन्तीति।।३६।।

आगे परमध्यान में आरूढ़ ज्ञानी जीव समभाव से दुःख-सुख को सहता हुआ अभेदनय से निर्जरा का कारण होता है, ऐसा दिखाते हैं -

आत्मध्यान में लीन साधु जन सुख दुख में रहते समभाव।
तप-असंग कहलाते ज्ञानी कर्म निर्जरा के कारण।।३६।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [ज्ञानी] वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी [ध्याननिलीनः] आत्मध्यान में लीन [दुःखम् अपि सुखं] दुःख और सुख को [सहमानः] समभावों से सहता हुआ अभेदनय से [कर्मणः निर्जराहेतुः] शुभ अशुभ कर्मों की निर्जरा का कारण है, ऐसा भगवान् ने [उच्यते] कहा है, और [संगविहीनः तपः] बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित परद्रव्य की इच्छा के निरोधरूप बाह्य अभ्यंतर अनशनादि बारह प्रकार के तपरूप भी वह ज्ञानी है।

भावार्थ :- यहाँ प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया, कि हे प्रभो; आपने ध्यान से निर्जरा कही, वह ध्यान एकाग्र चित्त का निरोधरूप उत्तम संहननवाले मुनि के होता है, जहाँ उत्तमसंहनन ही नहीं है, वहाँ ध्यान किस तरह से हो सकता है? उसका समाधान श्रीगुरु कहते हैं - उत्तम संहननवाले मुनि के जो ध्यान कहा है, वह आठवें गुणस्थान से लेकर उपशम क्षपकश्रेणीवालों के जो शुक्लध्यान होता है, उसकी अपेक्षा कहा गया है। उपशमश्रेणी वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच इन तीन संहननवालों के होती है, उनके शुक्लध्यान का पहला पाया है, वे ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे आते हैं, और क्षपकश्रेणी एक वज्रवृषभनाराच संहननवाले के ही होती है, वे आठवें गुणस्थान में क्षपकश्रेणी माँड़ते (प्रारंभ करते) हैं, उनके आठवें गुणस्थान में शुक्लध्यान का पहला पाया (भेद) होता है, वह आठवें, नववें, दशवें तथा दशवें से बारहवें गुणस्थान में स्पर्श करते हैं, ग्यारहवें में नहीं, तथा बारहवे में शुक्लध्यान का दूसरा पाया होता है, उसके प्रसाद से केवलज्ञान पाता है, और उसी भव में मोक्ष को जाता है। इसलिये उत्तम संहनन का कथन शुक्लध्यान की अपेक्षा से है। आठवें गुणस्थान से नीचे के चौथे से लेकर सातवें तक शुक्लध्यान नहीं होता, धर्मध्यान छहों संहननवालों के है, श्रेणी के नीचे धर्मध्यान ही है, उसका निषेध किसी संहनन में नहीं है। ऐसा ही कथन तत्त्वानुशासन नामक ग्रंथ में कहा है 'यत्पुनः' इत्यादि। उसका अर्थ ऐसा है, कि जो वज्रकाय के ही ध्यान होता है, ऐसा आगम का वचन है, वह दोनों श्रेणियों में शुक्लध्यान होने की अपेक्षा है, और

श्रेणी के नीचे जो धर्मध्यान है, उसका निषेध (न होना) किसी संहनन में नहीं कहा है, यह निश्चय से जानना। राग-द्वेष के अभावरूप उत्कृष्ट यथाख्यातस्वरूप स्वरूपाचरण ही निश्चयचारित्र है, वह इस समय पंचम काल में भरतक्षेत्र में नहीं है, इसलिये साधुजन अन्य चारित्र का आचरण करो। चारित्र के पाँच भेद हैं, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात। उनमें इस समय इस क्षेत्र में सामायिक छेदोपस्थापना ये दो ही चारित्र होते हैं, अन्य नहीं, इसलिये इनको ही आचरो। तत्त्वानुशासन में भी कहा है 'चरितारो' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है, कि इस समय यथाख्यातचारित्र के आचरण करनेवाले मौजूद नहीं हैं, तो क्या हुआ अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वीजन सामायिक छेदोपस्थापना का आचरण करो। फिर श्रीकुंदकुंदाचार्य ने भी मोक्षपाहुड़ में ऐसा ही कहा है 'अज्ज वि' उसका तात्पर्य यह है, कि अब भी इस पंचम काल में मन, वचन, काय की शुद्धता से आत्मा का ध्यान करके यह जीव इन्द्र पद को पाता है, अथवा लौकांतिकदेव होता है, और वहाँ से च्युत होकर मनुष्यभव धारण करके मोक्ष को पाता है। अर्थात् जो इस समय पहले के तीन संहनन तो नहीं हैं, परंतु अर्धनाराच, कीलक, सूपाटिका, ये आगे के तीन हैं, इन तीनों से सामायिक छेदोपस्थापना का आचरण करो, तथा धर्मध्यान को आचरो। धर्मध्यान का अभाव छहों संहननों में नहीं है, शुक्लध्यान पहले के तीन संहननों में ही होता है, उनमें भी पहला पाया (भेद) उपशमश्रेणी-संबंधी तीनों संहननों में है, और दूसरा, तीसरा, चौथा पाया प्रथम संहननवाले ही के होता है, ऐसा नियम है। इसलिये अब शुक्लध्यान के अभाव में भी हीन संहननवाले इस धर्मध्यान को आचरो। यह धर्मध्यान परम्पराय मुक्ति का मार्ग है, संसार की स्थिति का छेदनेवाला है। जो कोई नास्तिक इस समय धर्मध्यान का अभाव मानते हैं, वे झूठ बोलनेवाले हैं, इस समय धर्मध्यान है, शुक्लध्यान नहीं है।।३६।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल ८, शनिवार
दिनांक-३०-१०-१९७६, गाथा-३६, प्रवचन-११९

परमात्मप्रकाश, ३६ गाथा। **आगे परमध्यान में आरूढ़ ज्ञानी जीव...** धर्मात्मा ज्ञानी जब आत्मा के स्वरूप में लीन है, ध्यानारूढ़ है, वह **जीव समभाव से दुःख-सुख को सहता हुआ...** शुभाशुभभावरहित शुद्धभावरूप समभाव से **सहता हुआ अभेदनय से**

निर्जरा का कारण होता है,... निर्जरा का कारण तो वास्तव में शुद्धभाव, समभाव है। परन्तु जीव को भी अभेदनय से निर्जरा का कारण कहा। समझ में आया? संवर और निर्जरा का कारण आत्मा में वीतरागी भाव—समभाव है, जिसमें पुण्य-पाप के भाव का अभाव, ऐसा समभाव, वह निर्जरा का कारण है। अशुद्धता का नाश और कर्म का नाश, दोनों। परन्तु यहाँ कहते हैं कि उस जीव को ही हम अभेदनय से निर्जरा का कारण कहते हैं। जीव तो (त्रिकाल है), परन्तु उसका जो समभाव है, ज्ञाता-दृष्टापने का भाव जो है (वह निर्जरा का कारण है)। सहन (करना), वह कहीं हठ से सहन करना, ऐसा नहीं। परन्तु अनुकूल-प्रतिकूलता के काल में वीतरागता से समभाव सम्यग्दर्शनसहित समभाव रखना, वह निर्जरा का कारण है। परन्तु यहाँ समभाव का करनेवाला जीव, उसे निर्जरा का कारण अभेदनय से कहा गया है।

मुमुक्षु : आत्मा के सन्मुख हो, तब कोई मारता है या नहीं मारता, इसकी खबर ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे खबर कहाँ? परन्तु यहाँ सहन करता है, इतनी बात है न? सहन करता है अर्थात् इतना समभाव। यहाँ तो अनुकूल-प्रतिकूल का तो उसे लक्ष्य भी नहीं। परन्तु अनुकूल में राग और प्रतिकूल में द्वेष जो था, वह ज्ञानी अपने स्वरूप में आरूढ़ होता है, तब वह भाव नहीं होता, तब समभाव होता है—ऐसा कहते हैं। वह समभाव है, वह वास्तव में निर्जरा का कारण है। परन्तु उस समभाव का धारक जीव निर्जरा का कारण है, ऐसा अभेदनय से कहा गया है। समझ में आया इसमें?

शुभ और अशुभभाव, यह पुण्य और पाप के बन्ध के कारण हैं। तब पुण्य-पाप के भावरहित चैतन्य का स्वभाव शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान और उसमें लीनता, ऐसा जो समभाव, वह अशुद्धता के नाश का कारण है। निमित्तरूप से कर्म के नाश का कारण है। और वास्तव में तो शुद्ध उपयोग है, वही निर्जरा है। निर्जरा के तीन प्रकार हैं—एक, कर्म का टलना; अशुद्धता का गलना; और शुद्धता का होना। तीनों को निर्जरा कहा है। लालचन्दभाई! क्या कहा, समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप शुद्ध चैतन्य की जहाँ अन्तर्दृष्टि हुई है कि मैं तो चिदानन्द भगवन्त परमेश्वरस्वरूप हूँ, ऐसी अन्तर में प्रतीति और ज्ञान-स्वसंवेदन हुआ

है, तदुपरान्त उसमें लीनता विशेष हुई, यह बात यहाँ लेनी है। ध्यान लेना है न ? समझ में आया ? वस्तुस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान है और उस वस्तु के स्वरूप में लीन—स्थिर होता है। ध्यान में द्रव्य को ध्येय बनाकर स्थिर होता है, वह समभाव है, वह सहनशील कहने में आता है। सहनशील—सहन करना, ऐसा कुछ नहीं। उस 'सहता हुआ' का अर्थ यह। समभाव से जानता हुआ, इसका अर्थ है। आहाहा!

यहाँ तो दूसरी बात है। उस **समभाव से दुःख-सुख को सहता हुआ...** और वह जीव **अभेदनय से निर्जरा का कारण होता है,...** ऐसा कहना है। निर्जरा का कारण तो समभाव है। जैसे शुभाशुभभाव बन्ध का कारण है, तो उस जीव को कहना है कि वह बन्ध का कारण है, यह अभेद उपचार से कथन है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर वस्तु परमेश्वरपद है। चिदानन्द भगवत्स्वरूप आत्मा का है। उसकी जिसे अनुभव होकर दृष्टि हुई, प्रतीति हुई, तदुपरान्त ध्यानारूढ़ की यहाँ व्याख्या है। वह जब स्व को ध्येय बनाकर... ध्येय समझ में आता है ? लक्ष्य करके उसमें लीन होता है, तब उस लीनता को यहाँ समभाव कहा जाता है। और वह समभाव, उस अशुद्धता के नाश का कारण है। कर्म के नाश का कारण है और वह शुद्धभाव स्वयं निर्जरा है। शुद्धभाव स्वयं समभाव, वह निर्जरा है। अरे! समझ में आया ? वह शुद्ध उपयोग हुआ, वह निर्जरा है। अशुद्धता टली, वह निर्जरा है। कर्म टले, वह निर्जरा है। इस प्रकार निर्जरा के तीन प्रकार हैं।

परन्तु यहाँ ऐसा कहना है कि आत्मा का ध्यान जिसने किया, दृष्टि और ज्ञान तो है, तदुपरान्त की बात है। ध्यान में अन्दर ध्येय में अन्तर निर्विकल्प स्थिरता हुई है। जिसमें समभाव है। विषमभाव की कोई गन्ध जहाँ नहीं। आहाहा! अकेला अमृतरस समभाव में घुलता है। समझ में आया ? उस जीव को निर्जरा का कारण कहा। वह तो समभाव और आत्मा अभेद गिनकर आत्मा को निर्जरा का कारण कहा है। समझ में आया इसमें ? ऐसा है। यह अपवास-बपवास निर्जरा का कारण नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : तब किसका कारण है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बन्ध का कारण था। वहाँ तो विकल्प-राग था। परसन्मुख का राग था, यह छोड़ा और रखा। क्यों बलुभाई! वह तो मिथ्यात्व साथ में

था। क्योंकि राग था और मानता था कि यह तप है, वह निर्जरा करते हैं।

मुमुक्षु : सम्यक्‌रहित, त्यागरहित या दोनों?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों इकट्ठे ही है न! अब तो बलुभाई को ख्याल होगा। मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा!

भगवान आत्मा समस्वभावी वस्तु है। यहाँ समभाव लेना है, वह पर्याय का है। परन्तु स्वयं ही वीतरागस्वरूप ही भगवान है। अन्तर परमात्मस्वरूप, वीतरागस्वरूप है। उसके आश्रय से जो ज्ञान, दर्शन और लीनता हुई, वह समभाव आया, वह वीतराग स्वभाव है, उसमें से आया है। आहाहा! समझ में आया? वह वीतराग अर्थात् समभाव है। यहाँ मुनि की प्रधानता से कथन है न! अन्दर ध्यान में, आनन्द में लीन है। उस आनन्द में लीनता, वह निर्जरा का कारण है अथवा वह स्वयं निर्जरा है, परन्तु उस निर्जरा का कारण कहीं अशुद्धता का नाश और कर्म का नाश करके वह शुद्ध उपयोग है, वह स्वयं निर्जरा है। अब वह शुद्ध उपयोग निर्जरा है, ऐसा न कहकर, उस शुद्ध उपयोग का करनेवाला जीव है, वह निर्जरा का कारण है (ऐसा कहा है)। समझ में आया? चन्दुभाई! परन्तु वहाँ तो सब समयसार रखते थे। वहाँ कहाँ परमात्मप्रकाश था? इतने दिन की खबर नहीं कि परमात्मप्रकाश कहाँ है? पण्डितजी! यह खोजते थे उसमें। ऐसे खोजे और बीच में खोजे। समयसार निकले वहाँ से। उस ओर रहते हैं, वे समाप्त हो गये होंगे। सब ले गये होंगे।

यहाँ कहते हैं कि परमात्मप्रकाश... यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है न? यह परमात्मप्रकाश ही इसका स्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह परमात्मप्रकाश कहीं खोजने जाना पड़े, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं खोजना नहीं है। यहाँ स्वयं भगवान है न! आहाहा! स्वयं है, नजदीक में है, ऐसा कहना वह भी अभी (भेद पड़ता है)। तेरे पास है न। परन्तु पास है अर्थात् क्या? अर्थात् तू दूसरा और पास है दूसरा, ऐसा हो गया। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान!

यहाँ अभेदनय से कथन किया है न, देखो न कैसी शैली की है! आहाहा!

भगवान! तू परमात्मस्वरूप ही त्रिकाली है। वीतरागमूर्ति प्रभु तेरा स्वरूप है। तू स्वयं परमेश्वर है। आहाहा! परमेश्वरपना तेरे पास है, ऐसा भी नहीं। तू परमेश्वर है, प्रभु! इतनी वीतरागता तुझमें पड़ी है कि जिस समय में वीतरागता प्रगटे, ऐसी तो अनन्त वीतरागता तेरी शक्ति में पड़ी है। आहाहा! पर्याय में वीतरागभाव जो प्रगटे पूर्ण वीतराग, ऐसे-ऐसे अनन्त वीतरागभाव तो तेरे स्वभाव में पड़े हैं। समझ में आया?

यहाँ तो निर्जरा का कारण कौन है, यह सिद्ध करना है। यह अपवास किये हैं, और यह किया है, इसलिए निर्जरा का कारण है, यह नहीं। अन्दर में जिसे सम्यग्दर्शनसहित आत्मा परमात्मस्वरूप है, ऐसा भान होने के उपरान्त उसमें लीनता-ध्यानारूढ़ है, ऐसा कहा है न? फिर अभी शिष्य प्रश्न करेगा कि ऐसा ध्यान तो संहननवालों को होता है और तुम कहते हो कि ध्यान पाँचवें काल के जीव को यह कहते हो, क्या कहते हो तुम? यह बाद में कहेंगे। परन्तु पहला यह सवाल है।

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमात्मस्वरूप ही है। अर्थात् कि वीतरागमूर्ति है। अर्थात् कि परमेश्वरस्वरूप ही है। परमईश्वर। परम उत्कृष्टता ईश्वर, वह अपना स्वरूप है। उसकी अन्तर में जिसे स्वसन्मुख होकर दृष्टि हुई, उसका जिसे स्वसंवेदन ज्ञान हुआ है, वह जीव जब ध्यान में—आरूढ़ में जाता है, तब उसे समभाव प्रगट होता है। आहाहा! यहाँ समभाव निर्जरा का कारण कहकर (ऐसा कहना है कि) दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे निर्जरा का कारण नहीं है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? यह परम शब्द प्रयोग किया है न?

परमध्यान में आरूढ़ ज्ञानी... ऐसा। अर्थात् साधारण धर्मध्यान (नहीं)। यह तो उत्कृष्ट बात ली है पहली। **परमध्यान में आरूढ़ ज्ञानी...** आहाहा! जैसा स्वरूप भगवान मूर्ति प्रभु का है, ऐसे स्वरूप का भान हुआ। अब कहते हैं कि उसमें आरूढ़ हुआ है। आहाहा! ध्यानारूढ़, ऐसा कहा है न? **परमध्यान में आरूढ़...** ऐसा जो धर्मीजीव **समभाव से दुःख-सुख को सहता हुआ...** अर्थात् ज्ञाता-दृष्टारूप से रहता हुआ समभाव में रहा है, ऐसा कहने में आता है। वह समभाव से सहन करता है, ऐसा कहने में आता है। सहन करना कुछ नहीं। सहन करना कहे, वह तो ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा, वह सहन किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसी वस्तु है।

यहाँ तो विशिष्टता तो यह कही है कि निर्जरा का कारण कौन? और हम किसे निर्जरा का कारण कहते हैं? कि निर्जरा का कारण तो समभाव है। सम्यग्दर्शनसहित आत्मा में लीनता (होना), ऐसा समभाव, वह निर्जरा का कारण है। यह तेरे अपवास-बपवास करे, अमुक करे, विनय करे, वैयावृत्य करे, बारह प्रकार के तप करे और उसे निर्जरा (कहे), वह नहीं। वे बारह प्रकार के तप तो विकल्प-राग है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : वीतराग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागभाव, समभाव।

जैसा उसका वीतरागस्वरूप है प्रभु का—आत्मा का, वैसा ही भाव जिसने दर्शन-ज्ञानसहित स्थिरता का प्रगट किया है, वह परम ध्यान में आरूढ़ है, ऐसा कहते हैं। ऐसा जो ज्ञानी जीव, ऐसा जो ज्ञानी जीव, यहाँ वजन है। समझ में आया? ऐसा जो धर्मी जीव... आहाहा! **समभाव से दुःख-सुख को सहता हुआ...** समभाव से सुख-दुःख को जानता और देखता है। जानने-देखने के भाव में रमता है। आहाहा! उसे **अभेदनय से...** अर्थात्? उस ज्ञानी जीव को निर्जरा का कारण कहते हैं, वह अभेदनय से कहा। अभेदनय अर्थात्? कि समभाव से निर्जरा हुई है। परन्तु समभाव का धारक वह है, इसलिए जीव को निर्जरा का कारण कहा। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन सहजात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप, सहज आत्मा अनादि सहज वस्तु है। अकृत्रिम, नाश बिना की और स्वभाव से परिपूर्ण वस्तु है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका दर्शन और ज्ञान तो है, परन्तु यहाँ तो निर्जरा का कारण समभाव लेना है अधिक। लोग ऐसा कहते हैं कि यह अपवास किया, इसलिए निर्जरा। विनय करे, वह तप कहलाता है और तप, वह निर्जरा। ऐसा आता है या नहीं बारह प्रकार में? प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य।

मुमुक्षु : ध्यान भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान भी आता है, वह विकल्पवाला, व्यवहारिक। सच्चा ध्यान तो यह राग बिना की...

मुमुक्षु : आत्मा एक और तप बारह प्रकार के....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहने की बात कही है न! सम्यग्ज्ञान दीपिका में। वहाँ श्लोक में। आत्मा एक और बाईस परीषह! आत्मा एक और बारह प्रकारे तप! आत्मा एक (और) बारह प्रकार की भावना? यह क्या बात! आत्मा एक ही है। उसके बारह प्रकार से भेद से समझाया। आहाहा!

यहाँ यह कहा न, देखो न! कि निर्जरा है, वह समभाव से होती है। परन्तु जीव को निर्जरा का कारण कहा। वह अभेदनय से ऐसा कहा है। पाठ में इतना है '**अभेदेन**' पश्चात् नय तो डाला। पाठ में '**अभेदेन**' संस्कृत में भी '**एवाभेदेन**' इतना शब्द है। उपोद्घात में भी है और अर्थ में भी है। आहाहा!

निर्जरा का कारण होता है, ऐसा दिखाते हैं:—३६।

१५९) दुक्खु वि सुक्खु सहंतु जिय णाणिउ झाण-णिलीणु।
कम्महँ णिज्जर-हेउ तउ वुच्चइ संग-विहीणु॥३६॥

है न '**सहंतु**' शब्द?

अन्वयार्थः—हे जीव! वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी... यहाँ परमध्यान में आरूढ़ है न ध्यान में, इसलिए यह लिया। **वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी...** भगवान आत्मा को स्व को-अपने को प्रत्यक्ष जानता-वेदता हुआ और उसमें स्थिर होता हुआ। आहाहा! ऐसा **वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी आत्मध्यान में लीन...** आत्मध्यान में लीन है। जिसे विकल्प भी छूट गया है। अन्तर आत्मा के आनन्द की मस्ती, आनन्द के अनुभव में मस्त है। आहाहा! **दुःख और सुख को समभावों से सहता हुआ...** अर्थात् कि समभाव रखता है, अर्थात् समभाव, वह सहन किया। वह राग-द्वेष से सहन करे, उसकी अपेक्षा समभाव से सहन किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! प्रतिकूलता को द्वेषभाव से सहन करे, अनुकूलता को रागभाव से वेदे, उसकी अपेक्षा यहाँ राग-द्वेष बिना समभाव से सहन करे, समभाव में रहता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म मार्ग, बापू! आहाहा! लो, यह चिमनभाई! होंकार देते। तुम नहीं थे तब। यहाँ बैठते थे। यहाँ बैठते और होंकारा देते थे। सब नौ बजे तक तो यहाँ थे। आहाहा! ऐसा क्षणभंगुर

नाशवान (देह है)। भगवान अविनाशी है। आहाहा! देह का कब नाश होगा, इसकी कुछ खबर है। नाशवान है संयोग से। संयोग से है, वह यहाँ नजदीक है, वह दूर होगा, इसका नाम मरण। बाकी (मरण कोई चीज़ नहीं)। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्विकल्प आत्मध्यान में लीन हो तो उसमें किस प्रकार जाने....

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की कहाँ बात है? समभाव है, वही वस्तु, उसे जाने। समभाव है, उसका नाम जानना कहलाता है, उसका नाम सहन किया कहलाता है। सुख-दुःख के ऊपर लक्ष्य कहाँ है? आहाहा! लक्ष्य तो आत्मा के ऊपर चला गया है, वहाँ स्थिर हुआ है। उसे यहाँ सहन करता है, ऐसा कहा जाता है। और वह भी उसकी निर्जरा करता है, वह जीव निर्जरा करता है, ऐसा अभेद से कहा जाता है। समभाव और भगवान आत्मा एक है, इस अपेक्षा से समभाव से निर्जरा होती है। परन्तु आत्मा से निर्जरा है, ऐसा अभेदनय से कहा है। आहाहा! मूल तो पुण्य-पाप के भाव बन्ध के कारण हैं, उसके सामने समभाव निर्जरा का कारण है, यह सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

क्षण में देह नाश हो जाये। एक समय। आहाहा! भव पलटकर कहाँ भव? आहाहा! भव दूसरा, भाव दूसरा, क्षेत्र दूसरा। आहाहा! ऐसा अविनाशी स्वरूप और ऐसे संयोगों में वियोग हो, वह कहते हैं कि छोड़ अब तू। आहाहा! यहाँ तो वीतरागभाव से खड़ा रहता है, स्थिर होता है। यह केवली की बात नहीं है। छद्मस्थ जीव की बात है।

मुमुक्षु : केवली को भी परीषह तो होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परीषह-वरीषह कुछ नहीं। वह तो निमित्त के कथन हैं। उन्हें परीषह कैसा? वह निमित्त का ज्ञान कराया। वह तो पूर्ण वीतराग केवलज्ञान आनन्द... आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता, अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता का जहाँ वेदन (प्रगट हुआ है)... आहाहा! उसे परीषह क्या? उसे क्षुधा क्या? उसे तृषा क्या? ग्यारह कहे हैं, वह तो उदय का निमित्त है, इतना भाव है, उतना बतलाने को (कहा है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **आत्मध्यान में लीन दुःख और सुख को समभावों से सहता हुआ**

अभेदनय से शुभ-अशुभ कर्मों की निर्जरा का कारण है,... देखो! शुभ और अशुभ जो कर्म है अथवा अशुद्धता का शुभ-अशुभभाव है... आहाहा! क्या कहा? शुभ-अशुभ अशुद्धता का भाव है या शुभ-अशुभ जो कर्म है, इस समभाव से दोनों की निर्जरा कर डालता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! वीतराग का एक भी वाक्य पूरा समझना। एक भाव बराबर समझे तो दूसरे सब भाव समझे, ऐसा है। जयसेनाचार्य की टीका में है। आहाहा! एक भाव भी बराबर जैसा है, वैसा समझे तो उसे दूसरे सब भाव जानने में बराबर आ जायें।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **शुभ-अशुभ कर्मों की निर्जरा का कारण है, ऐसा भगवान ने कहा है...** देखो! '**उच्यते**' है न? अर्थात् भगवान ने कहा। त्रिलोक के नाथ ने ऐसा कहा है। सर्वज्ञदेव परमेश्वर जिनराज वीतराग ने कहा कि जिसे समभाव, समभावी भगवान आत्मा में जिसने समभाव स्थापित किया, वह निर्जरा का कारण उस जीव को कहकर भगवान ने उसे निर्जरा का कारण कहा है। आहाहा! अब विशेष लेते हैं। मुनिपने की प्रधानता का कथन है न!

'**संगविहीनः**' कैसा है वह आत्मा? ध्यान में आरूढ़ है, ऐसी दशावाला जीव कैसा है? कि **बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह रहित...** है। मुनि लेना है न! आहाहा! बाह्य में भी एक वस्त्र का धागा नहीं, अन्तर में भी राग का कण जिसका अपना नहीं। **बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह रहित परद्रव्य की इच्छा के निरोधरूप...** तप कहना है न? परद्रव्य की इच्छा का निरोध। आहाहा! ऐसा **बाह्य अभ्यन्तर अनशनादि बारह प्रकार के तपरूप भी वह ज्ञानी है।** उसे निमित्त भी ऐसा होता है। अन्दर में ध्यान में लीनता, वह वास्तविक तप है। परन्तु यह बारह प्रकार के तप का निमित्तपना होता है।

भावार्थः—यहाँ प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया,... शिष्य ने प्रश्न किया। **कि हे भगवान! प्रभो! आपने ध्यान से निर्जरा कही, वह ध्यान एकाग्र चित्त का निरोधरूप उत्तम संहननवाले मुनि के होता है,...** ध्यान में निर्जरा कही, वह तो उत्तम-उत्तम संहनन जिसे हो संहनन, प्रथम हड्डियों का संहनन (उसे होता है)। **उत्तम संहननवाले मुनि के होता है, जहाँ उत्तमसंहनन ही नहीं है, वहाँ ध्यान किस तरह से हो सकता है?** यहाँ तो ऐसे उत्तम संहनन है नहीं और आप ध्यान कैसे कहते हो? वर्तमान जीव को आप

ध्यानारूढवाला जीव कहना चाहते हो। और संहननवाला जो ध्यान है, वह तो अभी है नहीं। तो वह ध्यान में कैसे लीन है ?

उसका समाधान श्रीगुरु कहते हैं—उत्तम संहननवाले मुनि के जो ध्यान कहा है, वह आठवें गुणस्थान से लेकर... वह तो आठवें गुणस्थान के बाद की बात है। **उपशम-क्षपकश्रेणीवालों के जो शुक्लध्यान होता है,...** उपशमश्रेणी माँडता है, उसकी कषाय उपशान्त होती है और एक कषाय का नाश करता जाता है, ऐसी दो धारा। अन्दर शुद्धता की धारा। **उपशम क्षपकश्रेणीवालों के जो शुक्लध्यान होता है, उसकी अपेक्षा कहा गया है।** गुरु उत्तर देते हैं। इस अपेक्षा से कहा है। और **उपशमश्रेणी वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच इन तीन संहननवालों के होता है,...** क्या कहा ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित चारित्रस्वरूप के सहित उपशम धारा बहे। उपशान्त, कषाय को उपशान्त करता जाता है, उस उपशमश्रेणीवाले को, **तीन संहननवालों के होता है,...** उपशमश्रेणी छह संहनन में तीन संहननवाले को होती है। छह संहनन में से तीन पहले जो हैं, उसे उपशमश्रेणी होती है। यह सब जानने का बहुत है।

जो आत्मध्यान सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित आठवें से जो उपशमश्रेणी चढ़े, वह बाद में गिरता है, इसलिए उपशम कहा है। परन्तु वह उपशमश्रेणीवाला हड्डियों के छह प्रकार की मजबूताई कही है, उस में की ऐसी तीन प्रकार की मजबूताईवाले को उपशमश्रेणी होती है। भाई! यह तो वीतरागमार्ग इसे जानना चाहिए।

मुमुक्षु : ज्ञान को हड्डियों के साथ सम्बन्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा निमित्त होता है, वहाँ उपादान की योग्यता वहाँ उसके अपने कारण से होती है। संहनन के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। इसका अर्थ यह कहा कि संहनन निमित्त कहो, निमित्त वहाँ पर में कार्य नहीं करता। वह ध्यान में स्वयं अपने पुरुषार्थ से हुआ है। आहाहा! भले तीन संहनन हो, परन्तु जो ध्यान है वहाँ वह तो स्वयं के कारण से संहनन की अपेक्षा ही जिसे नहीं। आहाहा! ऐसी बात! होवे तीन संहनन में, तथापि जिसे ध्यान की पर्याय में उसकी अपेक्षा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अपेक्षा हो तब तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक दूसरी चीज़ हो। आहाहा!

है ? **उनके शुक्लध्यान का पहला पाया है,...** पहला भेद होता है। उपशमश्रेणी का धारक अन्दर आत्मज्ञानी, दर्शन-ज्ञान सहित स्थिरता में (आया है), उसे शुक्लध्यान का पहला भाग होता है। पहला पाया कहो, पहला भाग कहो, पहला भेद कहो। **वे ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे आते हैं,...** वह उपशमश्रेणीवाला ग्यारहवें गुणस्थान तक जाता है। फिर नीचे गिर जाता है। उसकी धारा ऐसी है। समझ में आया ? आहाहा! रेल में नहीं आता ? रेल के डिब्बे में ऐसे जाता है न ? ऐसा होता है न ऊपर ? वहाँ तक डिब्बा जाये। वापस वहाँ से....

मुमुक्षु : .... होवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, आड़ा होता है न ? हमारे वहाँ पालेज में तो सब (देखा है)। लोहे का ऐसा आड़ा होता है। वहाँ तक पटरियाँ होती हैं। डिब्बा वहाँ तक ले जाते हैं। फिर डिब्बा वापस घूम जाता है। इसी प्रकार ग्यारहवाँ गुणस्थान वहाँ तक होता है, फिर वहाँ से डिब्बा वापस मुड़ जाता है। वहाँ तो हमारे दुकान के साथ ही स्टेशन है। वहाँ माल लेने (जाते थे)। हमारा माल तो बहुत बार आता हो न ? वह लेने जायें। डिब्बे में हो। मास्टर को कहे कि भाई! इस डिब्बे में मेरा माल है। कहे, जाओ.. जाओ.. देखो। उतारते हैं। बहुत सब देखा है। यह तो छोटी उम्र की बात है। १७ से २२ (वर्ष)। है ?

क्षपकश्रेणी एक वज्रवृषभनाराच संहननवाले के ही होती है,... आहाहा! क्या कहा ? जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित उपशम धारा-कषाय के शान्त होने की धारा बहे, वह तो तीन संहनन में होती है। क्योंकि उसे वापस गिरना है न ? और क्षपकश्रेणी जो है, वह तो एक ही संहनन में होती है। क्योंकि क्षपकश्रेणी चढ़े, वह तो केवलज्ञान में जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया ? क्षपकश्रेणी अर्थात् अन्दर आत्मा का ज्ञान-दर्शन सहित कषाय का नाश करता जाता है। ऐसी अन्दर की धारा जो आठवें (गुणस्थान) से होती है, उसे हड्डियों की मजबूताई में छह प्रकार में पहला प्रकार ही होता है, उसे

क्षपकश्रेणी होती है। तथापि वह उसके कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वहाँ निमित्त पहला संहनन होता है, तथापि क्षपकश्रेणी जो है, वह तो अपने पुरुषार्थ से प्रगट हुई है। वह कहीं संहनन है, इसलिए प्रगट हुई है—ऐसा नहीं है। बड़ा विवाद यह। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर निर्बल हो तो उपयोग बारम्बार जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर निर्बल हो, उसकी यहाँ बात नहीं है। शरीर निर्बल हो तो भी केवलज्ञान पा सकता है। अन्दर वज्रनाराचसंहनन है और अन्दर पुरुषार्थ उगा है। शरीर में हड्डियों के टुकड़े किये हुए हो शरीरादि के, परन्तु उस समय उपसर्ग बन्द हो जाता है, क्षपकश्रेणी जहाँ चढ़ता है। केवलज्ञान हो जाये फट् एकदम। शरीर के टुकड़े हों परन्तु एकदम फिर उस समय उपसर्ग नहीं होता ध्यान में। आहाहा! यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! सर्वज्ञ से सिद्ध हुई और सर्वज्ञपना कैसे प्रगट हो और सर्वज्ञस्वभावी ही आत्मा है। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ही आत्मा है। सभी आत्मायें। उन्हें सर्वज्ञ होने की धारा के समय क्षपकश्रेणी होती है, तब उसे पहला संहनन ही होता है, तथापि उसके कारण क्षपकश्रेणी नहीं। आहाहा!

कल नहीं कहा था? कि साधक—साध्य है, पूर्व की पर्याय साधक है और बाद की पर्याय साध्य है। वह भी वह पर्याय थी और दूसरी नहीं थी, इस अपेक्षा से साधक कहा है। बाकी बाद की पर्याय, पूर्व की पर्याय बलात्कार से (बलजोरी से) प्रगट कराती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव को साधक कहा है, वह यह। है वहाँ इतना। परन्तु उसके कारण यहाँ निश्चय का साधकपना प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो शुक्लध्यान की पर्याय जो प्रगट हुई है, उसके कारण केवलज्ञान होता है अथवा अन्त में मोक्ष होता है, यह कहना है, वह व्यवहार से है। पूर्व की पर्याय बाद की पर्याय को बलजोरी से लावे ही, ऐसा है ही नहीं। उस समय की निर्मल पर्याय स्वयं से स्वतन्त्र षट्कारक परिणमन होकर परिणम रही है। जिसे पूर्व की पर्याय की अपेक्षा नहीं, निमित्त की अपेक्षा नहीं, जिसे द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जो धारा क्षपक हो, कषाय का नाश करता जाये, ऐसी

धारावाले को पहला संहनन होता है। **वे आठवें गुणस्थान में क्षपकश्रेणी मांडते (प्रारम्भ करते) हैं,...** होता है। **उनके आठवें गुणस्थान में शुक्लध्यान का पहला पाया (भेद) होता है,...** वह उपशमश्रेणीवाले तीन संहननवाले को भी शुक्लध्यान का पहला भाग है और यह क्षपकश्रेणी माँडे, उसे भी शुक्लध्यान का पहला भाग है। भाग तो पहला ही भाग है उसे। समझ में आया? क्षपकश्रेणी में चढ़ा, इसलिए उसे शुक्लध्यान का दूसरा ऊँचा भाग है और उपशमश्रेणी में चढ़ा, उसे ध्यान का पहला भाग है, ऐसा नहीं है। अन्दर में उपशमश्रेणी से चढ़ता है, तब संहनन तीन होते हैं। शुक्लध्यान का भाग पहला होता है और क्षपकश्रेणी में चढ़े, तब संहनन एक हो तथापि शुक्लध्यान का पाया पहला ही होता है। यह तो सब जानने की बातें हैं। जाने तो अन्दर क्या सत्य है, (वह ख्याल में आवे)। आहाहा! आज तो बहुत बोल चले हैं।

मुमुक्षु : इतना अधिक जानना, इसकी अपेक्षा कुछ सरल रास्ता बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सरल में यह (रास्ता है)। इसे विपरीत शल्य बहुत घुस गये हैं, इसलिए इसे सुल्टा जानने की आवश्यकता है। जिसे विपरीत शल्य नहीं, वह तो एकदम आत्मा जाने, उसे कोई पर की अपेक्षा नहीं है। परन्तु यह तो विपरीत शल्य बहुत घुस गये हैं। निमित्त हो तो होता है, निमित्त कार्य करे वहाँ, शुभभाव से साधकपना—धर्म प्रगटे, ऐसे जो शल्यवाले हैं, उन्हें यह सब समझना पड़ेगा। शल्य निकालने के लिये (समझना पड़ेगा)। आहाहा!

मुमुक्षु : .... ऐसे शल्य न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो, वह तो सब समझनेवाले बहुत ऐसे होते हैं न! नये सुननेवाले हों, उन्हें तो बेचारों को खबर भी नहीं होती। और वह इतना सब स्पष्ट पहले न आया हो तो सुननेवाले को न हो कितना ही। क्यों लालचन्दभाई! बात तो यह है। पण्डितजी! यह सब स्पष्ट जो बहुत न आया हो तो सुननेवाले को भी यह नया लगे। क्योंकि उसकी स्पष्टता जिस काल में आवे, किस प्रकार आवे वह तो... आहाहा!

क्या कहा? आत्मा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र की धारा में सातवें (गुणस्थान) से आगे बढ़कर आठवें में जाये परन्तु उपशमधारा से। अर्थात् कषाय को

दबाता जाता है। कषाय को टालता नहीं जाता। समझ में आया? जैसे पानी में मैल हो, वह नीचे बैठ जाता है और ऊपर नितरा हुआ पानी होता है। और एक मैल निकल गया होता है और अकेला नितरा हुआ (स्वच्छ) पानी होता है। इसी प्रकार उपशम धारा में मैल नीचे बैठ जाता है, ऐसी धारा है। और क्षपक में मूल में से मैल नाश हो जाता है, ऐसी धारा है। समझ में आया? लोगों को... भाई! यह तो वीतरागमार्ग इसे जानना चाहिए। और अभी तो बहुत विरुद्ध हो गया है सम्प्रदाय में। इसलिए पूरी बात का फेरफार पड़ गया है। इसलिए इसे बराबर जानना चाहिए। समझ में आया? और ऐसे समय में नहीं जाने तो भाई! कब जानेगा? आहाहा!

वह आठवें, नववें, दसवें तथा दसवें से बारहवें... पहला भाग। शुक्लध्यान के चार भाग हैं। चार पाया कहो या चार भेद कहो या चार भाग कहो। उसमें वह क्षपकश्रेणी चढ़नेवाला, उसे पहला पाया होता है। फिर आठवें, नौवें, दशवें, बारहवें गुणस्थान को **स्पर्श करते हैं, ग्यारहवें में नहीं,...** क्षपकश्रेणीवाले को ग्यारहवाँ गुणस्थान नहीं आता। **तथा बारहवें में शुक्लध्यान का दूसरा पाया होता है,...** लो! उपशमधारावाला ग्यारहवें में आवे तो वह शुक्लध्यान का पहला पाया। और क्षपकवाला दसवें तक आवे तो वह शुक्लध्यान का पहला पाया। बारहवें में जाये, तब दूसरा भाव। समझ में आया? यह पाया क्या? खाट को चार पाया होते हैं न? इसी प्रकार इस ध्यान के चार प्रकार होते हैं। शुक्लध्यान के। उसमें पहला भाग ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है उपशमश्रेणीवाले को। और क्षपकवाले को पहला भाग दसवें तक होता है। बारहवाँ हो तो दूसरा भाग होता है। क्योंकि कषाय का अभाव हो जाता है न, वहाँ अकेली वीतरागता रहती है। समझ में आया? तथापि वह अभी अन्तर आत्मा है। भले कषाय का नाश हुआ परन्तु अभी ज्ञान पूरा हुआ नहीं न? अभी थोड़ा अज्ञान है। वह विपरीत ज्ञान, वह ज्ञान नहीं; अल्प ज्ञान, वह अज्ञान है, इसलिए उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। वह अभी परमात्मा नहीं है। आहाहा! शुक्लध्यान में दूसरा पाया आया, कषाय का नाश किया तो भी वह अभी अन्तरात्मा है। समझ में आया? वह परमात्मा नहीं। आहाहा!

और उसी भव में मोक्ष को जाता है। क्षपकश्रेणीवाला कषाय का नाश करनेवाला पहले पाये में चढ़कर दूसरे में जाता है और उस भव में वह मोक्ष प्राप्त करता है। **इसलिए**

उत्तम संहनन का कथन शुक्लध्यान की अपेक्षा से है। गुरु उसे जवाब देते हैं। **आठवें गुणस्थान से नीचे के चौथे से लेकर सातवें तक शुक्लध्यान नहीं होता,...** समकित से लेकर पाँच, छह और सात गुणस्थान तक। चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ, वहाँ शुक्लध्यान नहीं है। **धर्मध्यान छहों संहननवालों के है,...** लो! परन्तु आत्मा के आनन्द का अनुभव और दृष्टि और ज्ञान, वह तो छहों संहननवालों को होता है। अन्तिम संहनन हो तो भी आत्मा का ध्यान हो सकता है। ऐसा नहीं कि संहनन बहुत मजबूत हो, उसे ही धर्मध्यान (होता है)। आहाहा!

आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, शुद्ध चैतन्यघन के अनुभव का ध्यान, वह छहों संहनन में हो सकता है। निमित्तरूप से। निमित्त की बात है न! आहाहा! **श्रेणी के नीचे धर्मध्यान ही है,...** है न? धर्मध्यान छठवें गुणस्थानवाले को श्रेणी के नीचे धर्मध्यान। आठवें की धारा उपशम और क्षपक। उसके पहले सातवें तक तो धर्मध्यान होता है। अब उसमें भी गड़बड़ उठाते हैं। धर्मध्यान है, वह शुभउपयोग है, वहाँ तक यहाँ धर्मध्यान है। इसलिए शुद्ध उपयोग अभी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! **श्रेणी के नीचे धर्मध्यान ही है, उसका निषेध किसी संहनन में नहीं है।**

ऐसा ही कथन तत्त्वानुशासन नामक ग्रंथ में कहा है। उसका अर्थ ऐसा है कि जो वज्रकाय के ही ध्यान होता है, ऐसा आगम का वचन है, वह दोनों श्रेणियों में शुक्लध्यान होने की अपेक्षा है,... दूसरे शास्त्र का आधार दिया। **आगम का वचन है, वह दोनों श्रेणियों में शुक्लध्यान होने की अपेक्षा है, और श्रेणी के नीचे जो धर्मध्यान है, उसका निषेध (न होना) किसी संहनन में नहीं कहा है,...** उसका निषेध किसी भी संहनन में कहा नहीं है। आत्मा का सम्यग्दर्शन, आत्मा का शुद्ध ध्यान धर्मध्यान, पुण्य-पाप के विकल्परहित शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, ऐसा धर्मध्यान तो छहों संहनन में हो सकता है। अन्तिम संहनन हो तो भी वह हो सकता है। हो सकता है। समझ में आया इसमें? **यह निश्चय से जानना।** लो!

राग-द्वेष के अभावरूप उत्कृष्ट यथाख्यातचारित्ररूप स्वरूपाचरण ही निश्चयचारित्र है,... यह अभी नहीं है। राग-द्वेष के अभावरूप उत्कृष्ट यथाख्यातचारित्र। अब यथाख्यात जैसा आत्मा का स्वरूप है, वैसा प्रगट हो गया। आहाहा! ऐसा

यथाख्यातस्वरूप आचरण। स्वरूप—आचरण, देखा! निश्चयचारित्र। **वह इस समय पंचम काल में भरतक्षेत्र में नहीं है,...** इस पंचम काल में भरतक्षेत्र में वह नहीं है। **इसलिए साधुजन...** देखो अब। साधु उसे कहते हैं कि साधु आत्मा के ध्यान को करे तो कैसा? कि धर्मध्यान। **अन्य चारित्र का आचरण करो।** यथाख्यातचारित्र का अभाव है परन्तु सामायिक और छेदोपस्थापनचारित्र करो। आहाहा!

चारित्र के पाँच भेद हैं, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात। उनमें इस समय इस क्षेत्र में सामायिक छेदोपसथापना... दो ही चारित्र है। ध्यान की व्याख्या है न, इसलिए मुनिपने की बात मुख्य ली है। **ये दो ही चारित्र होते हैं, अन्य नहीं, इसलिए इनको ही आचरो। तत्वानुशासन में भी कहा है।** रामसेन का तत्त्वानुशासन है न? उसकी पहली गाथा कही, वह ८४ कही। और दूसरी गाथा है वह तत्त्वानुशासन की छठवीं गाथा है।

इस समय यथाख्यातचारित्र के आचरण करनेवाले मौजूद नहीं है, तो क्या हुआ, अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वीजन (मुनि) सामायिक छेदोपस्थापना का आचरण करो। सामायिक और छेदोपस्थानपना, वह वीतरागी परिणति है। ऐसे व्रत को लेकर बैठा और पाँच महाव्रत (पालन करे), इसलिए सामायिक चारित्र है, ऐसा नहीं। जिसे अभी सम्यग्दर्शन ही नहीं, उसे सामायिक और छेदोपस्थापनाचारित्र कहाँ से आया? अपना अनुभव जो चैतन्यमूर्ति, उसे ध्येय बनाकर अनुभव करना, उस अनुभव में जो आनन्द का स्वाद आवे, तब तो उसे समकित कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

तो क्या हुआ, अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वीजन (मुनि) सामायिक छेदोपस्थापना का आचरण करो। वह चारित्र वीतरागी पर्याय की बात है, हों! यह सामायिक, वह बाहर की सामायिक लेकर बैठे, वह नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप के अधिकार में है कि सामायिक की प्रतिज्ञा लेकर भी जो स्थूल ऐसे संक्लेश परिणाम को छोड़ता है, परन्तु स्थूल ऐसे विशुद्ध परिणाम को छोड़ता नहीं, उसे चारित्र नहीं होता। पुण्य-पाप के अधिकार में है। समझ में आया? फिर से। जिसने—मुनि ने सामायिक की प्रतिज्ञा ली, उसने संक्लेश अशुभभाव छोड़े परन्तु जो अभी अन्दर के दया, दान,

व्रत, भक्ति, पूजा आदि का शुभभाव है, वह स्थूलभाव है, वह जिसने छोड़ा नहीं, उसे सामायिक नहीं होती। कहो, शान्तिभाई! ऐसा है। गृहस्थाश्रम में भी यह सामायिक-सामायिक करे, वह सामायिक कहाँ है? ऐई! बलुभाई ने सामायिक तो की होगी, नहीं? उस वर्षीतप में की होगी न? वह सामायिक नहीं है।

सामायिक में तो आत्मा शुद्ध वीतरागमूर्ति की प्रतीति अनुभवसहित, भानसहित हो गयी और फिर उसमें—स्वरूप में स्थिरता विशेष हो। सामायिक—समता का आय / लाभ। वीतराग परिणति का लाभ हो, उसे सामायिक कहते हैं। समझ में आया? वह वीतराग परिणति क्या, उसकी खबर नहीं होती और सामायिक हो गयी। एक आसन में पाँच और एक आसन में आठ और... यह लड़के सब कर डालते हैं, फिर यह सेठिया दे। बलुभाई जैसे कहे, दो इनको आठ-आठ आना, रुपया-रुपया अमुक। आहाहा! भाई! सामायिक अलग चीज़ है, बापू! सामायिक तो सम्यग्दर्शन जिसे हो, जिसे आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप है, ऐसा जिसे अन्तर्मुख होकर ज्ञान हुआ है, अन्तर्मुख होकर ज्ञान में प्रतीति हुई है कि यह परमात्मा है, ऐसे जीव को सामायिक अर्थात् अन्तर में समता में जाता है, तब वीतरागता प्रगट होती है, तब उसे वीतरागपने का समता की आय अर्थात् लाभ होता है, तब उसे सामायिक कहा जाता है। आहाहा! यह तो सामायिक कर-करके थोथा समय कितना ही बिताया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठ पढ़े उसमें क्या? वह तो विकल्प है और भाषा, वह जड़ है। वहाँ सामायिक कहाँ आयी? आहाह!

मुमुक्षु : विकल्पात्मक सामायिक तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्पात्मक सामायिक को सामायिक कहा ही नहीं जाता। सामायिक भाव 'नाम अध्यात्म, स्थापना अध्यात्म, द्रव्य अध्यात्म छंडो।' ऐसा आनन्दघनजी में एक जगह आता है। अभी कुछ आया था भजन में अपने। स्तुति की थी न, उसमें आया था। तुम ही बोले थे न? नाम, स्थापना और द्रव्य, वह अध्यात्म सच्चा नहीं, उसे छोड़ो। भाव अध्यात्म। अन्तर के आनन्द के नाथ को जगाकर... आहाहा!

जिसने अन्तर के आनन्द में लीनता की है, उसे भाव अध्यात्म और उसे वास्तविक सामायिक कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यह अपने भक्ति में आया था कहीं। नहीं? नहीं तो आनन्दघनजी में आता है। आनन्दघनजी में भी आता है। 'नाम अध्यात्म, चरण अध्यात्म, द्रव्य अध्यात्म छंडो, भाव अध्यात्म रूढ मंडो' ऐसा कुछ है। वह निजगुण साधे। भाव आत्मा। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा, उसका अनुभव होना, उसमें प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और उस अनुभव और सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ बाहर के क्रियाकाण्ड सब अज्ञान है। आहाहा! वहाँ अनुभवप्रकाश में तो बहुत लिया है। उस आत्मा के अनुभव बिना यह तीर्थ, वह जाल है। यात्रा, वह जाल है। भक्ति, पूजा, वह जाल है। ऐसे बहुत बोल लिये हैं। आत्मा आनन्द का नाथ जब तक अनुभव में आया नहीं। सम्यग्दर्शन नहीं, तब तक सब क्रियायें व्यर्थ हैं। यह महीने-महीने के अपवास करे और संथारा करे, वह सब क्लेश की क्रिया है। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी कठिन पड़े।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिथ्यात्व को धो डालना और समकित करना, यह धोना है। आहाहा!

अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वीजन (मुनि) सामायिक छेदोपस्थापना का आचरण करो। यह व्यवहार विकल्प की बात नहीं, हों! निर्विकल्प सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्र अभी आचरण करो। यह अभी हो सकता है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्षपाहुड़ में कहा है, लो गाथा ७७। मोक्षपाहुड़ है न? उसकी गाथा ७७ है। **मोक्षपाहुड़ में ऐसा ही कथन है 'अच्च वि' उसका तात्पर्य यह है कि अब भी इस पंचम काल में मन, वचन, काय की शुद्धता से आत्मा का ध्यान करके...** देखो! मन, वचन और काया का लक्ष्य छोड़कर शुद्धता करना। मन, वचन, काया में जुड़ान, वह तो पुण्य-पाप के भाव हैं। आहाहा! **काय की शुद्धता से आत्मा का ध्यान करके...** पवित्र निर्विकारी आनन्द की दशा से ध्यान करता है, ऐसा कहते हैं। **यह जीव इन्द्र पद को पाता है,...** इस काल में भी इन्द्रपद प्राप्त कर सकता है, ऐसा कहते

हैं। ऐसे आत्मा के ध्यान से, हों! आहाहा! है? शुद्धता से। लो! '**अज्ज वि तिरणसुद्धा**' ऐसा है न? पाठ है यह। '**अप्पा झाऊण लहहिं इंदत्तं।**' यह शुद्धता। पुण्य-पाप के भाव विकल्प हैं, वह तो सब अशुद्धता है। उससे रहित आत्मा के स्वरूप की दृष्टिसहित की शुद्धता प्रगट करना, वह शुद्धतावाले जीव **इन्द्र पद को पाता है,...** भले मोक्ष न जाये, अभी पंचम काल है इसलिए। आहाहा!

अथवा लोकान्तिकदेव होता है,... लोकान्तिक देव होता है। एकावतारी लोकान्तिक है न? पाँचवें देवलोक में। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। **वहाँ से च्युत होकर मनुष्यभव धारण करके मोक्ष को पाता है।** आहाहा! धर्मध्यान आत्मा के आनन्द का ध्यान। आनन्द के वेदन का ध्यान, वह करके इस पंचम काल में भी इन्द्रपद और लोकान्तिकदेव होता है, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाता है। परन्तु ध्यान यह। यह बाहर के क्रियाकाण्ड है, वह कहीं ध्यान नहीं है और वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : आर्तध्यान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब ... है। आहाहा! अब विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल ९, रविवार
दिनांक-३०-१०-१९७६, गाथा-३६ से ३८, प्रवचन-१२०

परमात्मप्रकाश, ३६ गाथा का अन्तिम भाग है। यहाँ से लो। **इसलिए...** अन्तिम चार लाईनें है न? **अब शुक्लध्यान के अभाव में भी हीन संहननवाले इस धर्मध्यान को आचरो।** शुक्लध्यान का अभाव है, इसलिए धर्मध्यान का अभाव है—ऐसा नहीं है। आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञानस्वरूप में एकाग्रता। जो राग की एकाग्रता है, उसे छोड़कर शुद्ध चैतन्य आनन्दघन की एकाग्रता (होने पर) उसमें जो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन (होता है), उसे धर्मध्यान कहा जाता है। ऐसी बात है। शुक्लध्यान में उत्कृष्ट वेदन बहुत होता है। वह अभी नहीं है, ऐसा कहते हैं। वह नहीं तो धर्मध्यान नहीं, (ऐसा नहीं है)। धर्मध्यान अर्थात्? यह दया, दान, व्रत और भक्ति, वह कहीं धर्मध्यान नहीं है। वह तो आर्तध्यान है। राग है न, राग? धर्मध्यान तो एक जिसका स्वभाव धर्म, वस्तु है भगवान आत्मा, उसका स्वभाव ज्ञान और आनन्द है। वह स्वभाव जो उसका धर्म, उसमें एकाग्र होना। ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होना, जिससे सम्यग्दर्शन ज्ञान और आनन्द प्रगट हो, उसे धर्मध्यान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : धर्मध्यान करो, ऐसा तो कहा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बाहर की बातें हैं। उसे धर्मध्यान किसे कहना, इसकी खबर नहीं। कहा था, नहीं? (संवत्) १९९० के वर्ष में? लोग बहुत हुए थे। बोटाद में इकट्ठे हुए थे। एक व्यक्ति आया था। रोचकावाले का मामा, बरवाळा के पास है न क्या? भाणवी, नानचन्द-नानजी, उसे पूछा कि धर्मध्यान करते हो? कहे, हाँ। क्या? सामायिक करता हूँ, प्रतिक्रमण करता हूँ, वह धर्मध्यान। सब उसका विकल्प। फिर प्रश्न चला, चर्चा चलती थी कि यह सोने का टुकड़ा है, वह अनन्त रजकण का पिण्ड है। तब उसने प्रश्न किया। यह धर्मध्यान करते हैं, (ऐसा जिसने कहा, उसने पूछा) तब महाराज! आत्मा कितने रजकणों का बना होगा? १९९० की बात है। (संवत्) १९९० की के वर्ष। तब सम्प्रदाय में थे। बहुत वर्ष से इकट्ठे नहीं होते थे। मूलचन्दजी और हम बहुत वर्ष में इकट्ठे हुए तो चार सौ लोग बाहर से आये थे। यह पूछा कि धर्मध्यान करते हो? कहे हाँ, करते हैं। सामायिक, प्रतिक्रमण, रात्रिभोजनत्याग, यह सब धर्मध्यान। प्रश्न

पूछा तब यह वापस जवाब निकला। यह शरीर है या यह सोने का टुकड़ा है, वह तो अनन्त परमाणुओं का दल है। तब वह कहे, कितने परमाणुओं का आत्मा बना होगा? वस्तु की खबर नहीं। परमाणु का आत्मा बने? परमाणु है, वह तो जड़ है। अभी ऐसा कहे कि उसके कितने प्रदेश हैं? आहाहा! यह फिर प्रश्न हुआ था। वढवाण में। मोहनलालजी का शिष्य था एक वृद्ध (था)। विरमगाँव का। कहा, यह सामायिक, वह त्रस है या स्थावर? कहे, मुझे गुरु ने सिखाया नहीं, कहे। कहो, अब यह। आहाहा!

यहाँ तो धर्म वह आत्मा का आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसमें अन्दर की ज्ञान और ज्ञान की शक्ति की व्यक्तता प्रगट होना, उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द का अंश भी प्रगट होना, उसके साथ अनन्त गुण के सब एक अंश व्यक्त प्रगट होना और जिसमें शान्ति और आनन्द मिले, उस दशा को धर्मध्यान कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह सामायिक करे और प्रोषध, प्रतिक्रमण, वह धर्मध्यान नहीं। वह तो राग है।

मुमुक्षु : राग धर्म नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग धर्म है, विभावधर्म। अधर्मधर्म। आहाहा!

प्रभु! चैतन्यस्वरूप है न! जिसकी चेतना अनन्त है। शक्ति है, उसका स्वभाव है न? अनन्त चेतना जिसका स्वभाव, उसमें चेतना। ज्ञानचेतना। आहाहा! वह ज्ञानचेतना जो अनन्त चेतनस्वभाव, उसमें ज्ञानचेतना, उसमें चेतना अर्थात् एकाग्र होना। उसका नाम ज्ञानचेतना, उसका नाम धर्मध्यान। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : अनुभव किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आनन्द का अनुभव कहो या धर्मध्यान कहो। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु, उसके सन्मुख होकर संयोग, राग और पर्याय से विमुख होकर, उपेक्षा करके स्वभाव शुद्ध चैतन्य वस्तु का ध्यान (करना), जिसके ध्येय में भगवान आत्मा बसे, उस दशा को धर्मध्यान कहते हैं। समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। **शुक्लध्यान के अभाव में भी हीन संहननवाले इस धर्मध्यान को आचरो। यह धर्मध्यान परम्पराय मुक्ति का मार्ग है,...** लो! अर्थात् कि पहले इसकी शुरुआत है न? वहाँ एकाग्रता थोड़ी है। स्वभाव में—शुद्ध चैतन्य में एकाग्रता थोड़ी है,

इसलिए उसे धर्मध्यान कहा है। वह परम्परा आगे बढ़कर एकाग्रता बढ़ जायेगी, इसलिए उस धर्मध्यान को परम्परा मोक्ष का कारण कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आज्ञा....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आज्ञा परन्तु यह। विकल्प विचार करे, वह कहीं धर्म नहीं। आज्ञा, वह शुद्ध चैतन्यमूर्ति का जो ज्ञान और ध्यान (करना), वह आज्ञा है। आहाहा! धर्मध्यान के चार भेद हैं न? परन्तु उसमें यह है मूल तो। आहाहा! वस्तु है न पूरी? परमेश्वरपद है आत्मा। भगवत्स्वरूप है। भगवत्स्वरूप का ध्यान, वह धर्मध्यान। राग का ध्यान, वह आर्तध्यान, आर्त-रौद्रध्यान। ऐसी बात है। समझ में आया? अनन्त काल में इसने यह किया नहीं। आहाहा! अपना महाप्रभु स्वभाव, उसका इसने माहात्म्य कभी किया नहीं। कुछ शुभराग हुआ पुण्य का दया, दान, व्रत, तो मानो धर्म हो गया, धर्म। ऐसा अज्ञानी अनादि से मानकर चौरासी (लाख योनियों) में भटक रहा है। आहाहा!

संसार की स्थिति का छेदनेवाला है। देखा! ऐसा कि धर्मध्यान में संसार की स्थिति बहुत है, वह थोड़ी होती है और शुक्लध्यान में एकदम अभाव हो जाता है। परम्परा उस धर्मध्यान से। आहाहा! धर्मध्यान, वह वीतरागी आत्मा की शान्त और आनन्द की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? वह संसार की स्थिति अर्थात् लम्बी स्थिति होती है, उसे घटा देता है। **जो कोई नास्तिक इस समय धर्मध्यान का अभाव मानते हैं,...** अभी धर्मध्यान शुद्धउपयोग नहीं है। अभी बहुत से कहते हैं कि शुद्ध उपयोग नहीं है, अभी शुभ उपयोग ही है।

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग तो सातवें गुणस्थान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! शुद्ध उपयोग चौथे में होता है। सुन! चैतन्यस्वरूप का उपयोग होना अन्दर का, वह शुद्धोपयोग है और दया, दान, व्रतादि का उपयोग होना, वह अशुद्ध उपयोग है। आहाहा! वस्तु की खबर नहीं।

अरे! जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! जो स्थिति है, उसके सन्मुख होता है। मरण के सन्मुख है। आहाहा! उसमें यह यदि नहीं किया... आहाहा! 'बिजली की चमक में मोती पिरो लो।' बिजली की चमक हुई, उसमें मोती पिरो लो। नहीं तो हो गया। आहाहा! इसी प्रकार यह मनुष्यपना ऐसा मिला, जैन सम्प्रदाय मिला.. आहाहा!

वाडा। उसमें यह कहते हैं कि भगवान आत्मा... राग और पुण्य-पाप, वह आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। यह तो आ गया है, नहीं? अपने दोपहर में आ गया है। समयसार (में)। व्रत, तप, शील। वह तो शुभकर्म है, शुभ पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा!

कोई नास्तिक इस समय धर्मध्यान का अभाव मानते हैं, वे झूठ बोलनेवाले हैं,... देखा! आहाहा! वे कहते हैं कि क्या अभी धर्मध्यान को? यह व्रत और तप, वह धर्मध्यान। वह तो राग है, बापू! आहाहा! परसन्मुख के झुकाववाला विकार है। अन्तर के झुकाववाली दशा, वह धर्मध्यान है। लो! बलुभाई! यह तो सुना भी नहीं था। बात तो ऐसी है। अरेरे! अनन्त काल के जन्म-मरण के दु:ख, देखो न! कैसे होते हैं, वैराग्य... वैराग्य... चिमनभाई दो घड़ी में चले गये। आहाहा! हमारे नवीनभाई दामोदर का बेचारा कितना लड़का है। आहाहा! शरीर की स्थिति होना, वह तो होती है। उसमें आत्मा उसे रोक नहीं सकता। आहाहा! अरे! कहते हैं कि जन्म-मरण को टालने का उपाय यह जरा, रोग और इन्द्रियाँ हीन पड़ने से पहले कर ले, भाई! फिर नहीं होगा, भाई! पुरुषार्थ निर्बल होगा उसे। बाकी तो सातवें नरक में (भी) होता है। आहाहा!

ओहोहो! यह सातवें नरक की पीड़ा। उसके शीत की एक फूंक। हवा की फूंक जितनी सर्दी यहाँ आवे तो दस योजन के लोग सर्दी में मर जाये। वह यहाँ थोड़ा लावे तो दस योजन के लोग मर जाये। इतनी सर्दी है। उसमें भगवान आत्मा ३३-३३ सागर रहा है, बापू! आहाहा! इस बात का विचार भी इसने कहाँ किया है! क्या था? क्या हुआ यह? आहाहा! छोटालाल रायचन्द नहीं। उसे आँख में से रसी (पीप) निकलता है, कहते हैं। भावनगर बताने जानेवाले हैं। छोटाभाई नहीं आये। वैसे तो आँख से रसी निकलती है। वैसे तो उसे आँख से सूझता नहीं। आहाहा! ऐसा है। यह आँखों से देखना, वह भी अन्ध है, कहते हैं। आहाहा! भले अच्छी हो, कहते हैं। उससे क्या हुआ? अन्तर के नेत्र से भगवान को देखना, वह नेत्र कहलाता है। आहाहा!

ज्ञान की निर्मल व्यक्त जो पर्याय प्रगट है, उसे उसके धनी (स्वामी) उसका द्रव्यस्वभाव, उसकी ओर झुकाना... आहाहा! उसका नाम यहाँ धर्मध्यान है। वह धर्मध्यान अभी है, ऐसा कहते हैं। शुक्लध्यान नहीं, इसलिए ऐसा धर्मध्यान नहीं—ऐसा है नहीं। आहाहा! **इस समय धर्मध्यान है, शुक्लध्यान नहीं है।** यह ३६वीं (गाथा) कही।

गाथा - ३७

अथ सुखदुःखं सहमानः सन् येन कारणेन समभावं करोति मुनिस्तेन कारणेन पुण्यपापद्वयसंवरहेतुर्भवतीति दर्शयति -

१६०) बिण्णि वि जेण सहंतु मुणि मणि सम-भाउ करेइ।
पुण्णहँ पावहँ तेण जिय संवर-हेउ हवेइ।।३७।।

द्वे अपि येन सहमानः मुनिः मनसि समभावं करोति।
पुण्यस्य पापस्य तेन जीव संवरहेतुः भवति।।३७।।

बिण्णि वि इत्यादि। बिण्णि वि द्वे अपि सुखदुःखे जेण येन कारणेन सहंतु सहमानः सन्। कोऽसौ कर्ता। मुणि मुनिः स्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानी। मणि अविक्षिप्तमनसि। सम-भाउ समभावं सहजशुद्धज्ञानान्दैकरूपं रागद्वेषमोहरहितं परिणामं कर्मतापन्नं करेइ करोति परिणमति पुण्णहं पावहं पुण्यस्य पापस्य संबन्धी तेण तेन कारणेन जिय हे जीव संवर-हेउ संवरहेतुः कारणं हवेइ भवतीति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। कर्मोदयवशात् सुखदुःखे जातेऽपि योऽसौ रागादिरहितमनसि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मसंवित्तिं न त्यजति स पुरुष एवाभेदनयेन द्रव्यभावरूप-पुण्यपापसंवरस्य हेतुः कारणं भवतीति।।३७।।

आगे जो मुनिराज सुख-दुःख को सहते हुए समभाव रखते हैं, अर्थात् सुख में तो हर्ष नहीं करते, और दुःख में खेद नहीं करते, जिनके सुख-दुःख दोनों ही समान हैं, वे ही साधु पुण्यकर्म-पापकर्म के संवर (रोकने) के कारण हैं, आनेवाले कर्मों को रोकते हैं, ऐसा दिखलाते हैं -

सुख दुख दोनों सहन करें मुनि मन में समता भाव धरें।
इसीलिए वे पुण्य पाप के संवर के कारण होवे।।३७।।

अन्वयार्थ :- [येन] जिस कारण [द्वे अपि सहमानः] सुख दुःख दोनों को ही सहता हुआ [मुनिः] स्वसंवेदन प्रत्यक्षज्ञानी मनसि निश्चित मन में [समभावं] समभावों को [करोति] धारण करता है, अर्थात् राग, द्वेष, मोह रहित स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप परिणमन करता है, विभावरूप नहीं परिणमता, [तेन] इसी कारण [जीव] हे जीव, वह मुनि [पुण्यस्य पापस्य संवरहेतुः] सहज में ही पुण्य और पाप इन दोनों के संवर का कारण [भवति] होता है।

भावार्थ :- कर्म के उदय से सुख-दुःख उत्पन्न होने पर भी जो मुनीश्वर रागादि रहित मन में शुद्ध ज्ञानदर्शनस्वरूप अपने निज शुद्ध स्वरूप को नहीं छोड़ता है, वही पुरुष अभेदनयकर द्रव्य भावरूप पुण्य-पाप के संवर का कारण है।।३७।।

गाथा-३७ पर प्रवचन

३७। **आगे जो मुनिराज...** मुनिराज किसे कहना, यह अर्थ करेंगे। आहाहा! मुनिराज की प्रधानता से कथन है न? मुनि का अर्थ करेंगे। **स्वसंवेदन प्रत्यक्षज्ञानी...** अर्थ में है। आहाहा! मुनि उसे कहते हैं कि जो स्वसंवेदन। स्व अर्थात् भगवान आत्मा का सं-राग और मन की अपेक्षा बिना सीधा प्रत्यक्ष वेदना। आहाहा! मुनि। '**मुणि**' जानना। अपने आत्मा को स्वसंवेदन द्वारा वेदना। आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण पाले, उसे यहाँ मुनि की व्याख्या नहीं कही। अर्थ में है न? भाई! यह कहते हैं, देखो!

मुनिराज सुख-दुःख को सहते हुए... सहते हुए का अर्थ... आहाहा! यह सुख-दुःख के संयोग को ज्ञेयरूप से जानता है। अज्ञानी उसमें दो भाग करता है कि यह अनुकूलता, वह ठीक और प्रतिकूलता, वह अठीक। यह दो भाग करता है, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! क्योंकि वह सब चीज़ें ज्ञान की ज्ञेय है। उस ज्ञेय को जाननेवाला। जाननेवाला, वह ज्ञान है। वह आत्मा है। उसे जाननेवाला—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! उस सम्बन्धी का अपना जानने का ज्ञान जो अपने में है... आहाहा! उस ज्ञान में अन्दर स्थिर होना। कैसा? कि **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष....** भाषा इतनी है। यह तो सातवें में मुनि की बात है। अपने ध्यान में आत्मा को प्रत्यक्ष वेदन करना। आहाहा!

समयसार की पाँचवीं गाथा में कहा है न? प्रचुर स्वसंवेदन। समकिती में आत्मा का स्ववेदन अल्प होता है। आहाहा! आनन्द का और ज्ञान का वेदन अल्प होता है। श्रावक जो सच्चे होते हैं, पाँचवें गुणस्थान में, उनका स्वसंवेदन थोड़ा विशेष होता है। कहो, जयन्तीभाई! यह सब वाडा के श्रावक की यह बात नहीं। आहाहा! और मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन (होता है) और जिसे आनन्द की मोहरछाप है। आहाहा! अनुभव में आनन्द की मोहरछाप है। समझ में आया? आहाहा! यह मोहरछाप नहीं करते? पोस्ट

में। उसी प्रकार आत्मा के अनुभव में स्वसंवेदन में आनन्द की मोहरछाप है। आनन्द साथ में वेदते हैं। आहाहा!

ऐसे मुनिराज **सुख-दुःख को सहते हुए समभाव रखते हैं, अर्थात् सुख में तो हर्ष नहीं करते, और दुःख में खेद नहीं करते, जिनके सुख-दुःख दोनों ही समान हैं, वे ही साधु पुण्यकर्म-पापकर्म के संवर (रोकने) के कारण हैं,...** उन्हें संवर होता है। आहाहा! ३७।

१६०) बिण्णि वि जेण सहंतु मुणि मणि सम-भाउ करेइ।
पुण्णहँ पावहँ तेण जिय संवर-हेउ हवेइ॥३७॥

'**बिण्णि**' है न? '**द्वे अपि**' अर्थात् सुख और दुःख। मूल गाथा।

अन्वयार्थः—जिस कारण... 'द्वे अपि येन सहमानः' सुख-दुःख दोनों को ही सहता हुआ... जानता हुआ। आहाहा! '**मुनिः**' **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञानी...** आहाहा! व्याख्या देखो! यहाँ तो मुनि हो, नग्न हो और अट्ठाईस मूलगुण पालते हों, पंच महाव्रत पालते हों। वह कहाँ वस्तु है? उसमें और श्वेताम्बर में तो कुछ ठिकाना नहीं होता। यह तो सनातन मार्ग दिगम्बर में नग्नपना होता है, पंच महाव्रत, परन्तु वह कोई मुनिपना नहीं। आहाहा! वह तो राग है और जड़ की नग्न क्रिया तो अजीव की क्रिया है। आहाहा!

जिसे अन्दर भवभ्रमण की थकान लगी हो, उसे विश्राम का स्थान भगवान है। आहाहा! उसे यहाँ मुनिपना कहते हैं। उत्कृष्ट लेना है न? स्वसंवेदन। स्व-सं। स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष वेदन, उसे प्रत्यक्ष ज्ञानी कहा। आहाहा! समझ में आया? मुनि को प्रत्यक्ष ज्ञान और आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! ज्ञान प्रत्यक्ष है और आनन्द का वेदन होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा तो सुना भी नहीं होगा, बलुभाई! मुनि यह वस्त्र बदलकर बैठे, जय नारायण। बापू! मार्ग अलग, नाथ! तीन लोक का नाथ बादशाह प्रभु चैतन्य का अन्तर में उग्र पुरुषार्थ से स्वस्वरूप में प्रत्यक्ष ज्ञानरूप से आनन्द का वेदन... आहाहा! उसे मुनि कहा जाता है। उसमें पंच महाव्रत पालन करे और अट्ठाईस मूलगुण हो, यह तो बात ली नहीं। नग्न तो अभी विपर्याय है। पंच महाव्रत की पर्याय वह आस्रव की है। वह स्वसंवेदन कहाँ है? आहाहा! आत्मा

आनन्द का नाथ प्रभु आनन्द अतीन्द्रिय, उस अतीन्द्रिय आनन्द को प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा वेदे। आहाहा! उसे उस दशा को मुनिपना कहा है।

स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञानी... आहाहा! **निश्चित मन में समभावों को धारण करता है,...** पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर, वीतरागभाव (को धारण करता है)। समभाव अर्थात् वीतरागभाव। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह भी वीतराग पर्याय है। परन्तु यहाँ तो मुनिपना है, उन्हें तो वीतरागता बहुत हो गयी है। आहाहा! तीन कषाय का अभाव, ऐसी वीतरागदशा। आहाहा! **धारण करता है,...** है न? **समभावों को धारण करता है,...** अर्थात् वीतरागभाव धारण करता है। **राग-द्वेष मोह रहित...** इसका अर्थ किया। राग-द्वेष अर्थात् पुण्य-पाप के, व्रत-अव्रत के विकल्परहित **स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्द एकस्वरूप...** यहाँ 'एक' रह गया है। **स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्द...** ऐसा है। अन्दर है। **'सहजशुद्धज्ञानान्दैकरूपं'** वह शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप किया है इन्होंने अर्थ में। मूल **शुद्ध ज्ञानानन्द एकस्वरूप परिणमन करता है,...** यह 'एक' चाहिए वहाँ। वह यह चाहे जो हो, 'एक' भूल जाते हैं। बहुत जगह 'एक' नहीं है। 'एक' की महत्ता है। एकरूप स्वभाव है, ऐसा है। अनेकपना नहीं जिसमें। आहाहा! बहुत बात...

राग-द्वेष मोह रहित... यह तो नास्ति से बात की। परन्तु **स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्द एकस्वरूप परिणमन...** यह अस्ति से कही। आहाहा! ऐसा व्याख्यान अब लोगों को (कठिन लगता है)। आहाहा! यह तो परमात्मप्रकाश है। पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान का प्रकाश प्रभु आत्मा, वह परमात्मस्वरूप है। उस परमात्मस्वरूप में एकाग्रता स्वसंवेदन द्वारा करके वीतरागता में आना, वह परिणमन करना, एकरूप स्वभाव का परिणमन होना। आहाहा! **विभावरूप नहीं परिणमता,...** विभाव अर्थात् शुभ पुण्य-पाप के भावरूप नहीं होकर। **'तेन' इसी कारण हे जीव वह मुनि... 'पुण्यस्य पापस्य संवरहेतुः'** उसे पुण्य-पाप का संवर होता है, अटक जाता है। आहाहा! महाव्रत के भाव, वे पुण्य हैं। स्वरूप में एकाग्र होने पर वे भाव शान्त हो जाते हैं। वे भाव रहते नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़े। उसे समझना, पकड़ना कठिन पड़े। ऐसा मार्ग है, बापू! तेरे जन्म-मरण के दुःख टालने का उपाय तो यह है। आहाहा! बाकी तड़प-तड़पकर दुःख से जीवे और दुःख से मरे। आहाहा! दुःख से जीता है न,

आर्तध्यान-रौद्रध्यान में। राग का जीवन वह दुःख का जीवन है। आहाहा! और मरणरूप से भी तड़पकर राग में दबावपने (देह छोड़े)। आहाहा! वह सब दुःख के जीवन और दुःख के मरण। और फिर वापस जन्मना दुःख में वापस। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जो मुनि को अन्तर स्वभाव, वीतरागभाव प्रगट हुआ है, उसके द्वारा वे पुण्य-पाप को रोककर संवर होता है। देखो! यह संवर। जामनगर में आठम और पाखी का संवर और प्रौषध लोग बहुत करते हैं। जामनगर। यह बाहर के वाडा के। कितने तो देरी से आवे। सवेरे सब दुकान-बुकान का व्यवस्थित करके प्रोषध करने बैठ जाये। हमने प्रोषध किया। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो छह काय....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय में स्वयं नहीं? छह काय में काय। जीवकाय नहीं आनन्द का नाथ वह? उसका चूरा (चूर्ण) करता है न? राग की एकता मानकर चूरा करता है। उसे छह काय में से आत्मा में से बचाना। छह काय, वह जीव नहीं। पंचास्तिकाय में आता है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, वह कोई जीव नहीं, उसमें ज्ञानस्वरूप, वह जीव है। पंचास्तिकाय में आता है। पंचास्तिकाय में ऐसा आता है। समझ में आया? एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया, अभीहया वतीया वैयावच्च यह आता है न? बाबूभाई! किया था तुमने यह? इच्छामि पडिकमणु किया होगा तुमने? श्वेताम्बर होता है न। यह तो श्वेताम्बर है। तुम स्थानकवासी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया, अभिहया वतीया जो कहना है, वह कुछ जीव नहीं है। वह तो शरीर के संयोग से इसकी बात की है। जीव तो जो ज्ञानस्वरूप अन्दर है एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय रहित। आहाहा! वह ज्ञानपिण्ड प्रभु, ज्ञानसूर्य (वह जीव है)। इस सूर्य को तो हजार किरण है, उसे अनन्त किरण हैं। आहाहा! समझ में आया? वह चैतन्यसूर्य है। आहाहा! जगमगाता चैतन्य शीतल सूर्य, शीतल सूर्य। वह शीतल चन्द्र है। आहाहा! ऐसे आत्मा के ध्यान में वीतरागता प्रगट होने पर उसे पुण्य-पाप का संवर होता है। अर्थात् वहाँ पुण्य-पाप रुक जाते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? जामनगर में यह काठियावाड़ में ऐसी बात

है। आठम और पाखी हो और प्रोषध करे, कितने ही संवर करे। प्रोषध करे। बाहर की क्रिया। वस्तु की कुछ खबर नहीं होती।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा की जिसे वीतरागभाव से अन्दर रमणता हुई है, उसे पुण्य-पाप का संवर होता है—रुक जाते हैं। उसे पुण्य-पाप का संवर है अर्थात् पुण्य-पाप नहीं होते। समभाव होता है। आहाहा! **सहज में ही पुण्य और पाप इन दोनों के संवर का कारण होता है।** आहाहा! यह संवर उसे कहते हैं। कहो, जादवजीभाई! यह बाहर से कहे, संवर किया, बैठे हैं। आहाहा! सम्प्रदाय को यह कठिन लगता है। वस्तु ऐसी है, बापू! आहाहा! यह जन्म-मरण का फेरा करते-करते दुःखी... दुःखी... दुःखी है यह। सेठिया दुःखी, राजा दुःखी, देव दुःखी। सब दुःखी हैं। उसे खबर नहीं। आहाहा! शरीर ऐसे अच्छा लगे, बाहर के संयोग, वह तो यह धूल-धाणी है। आहाहा! राग है, वह भी अचेतन है, भले मिट्टी नहीं परन्तु अचेतन है। अन्दर दया, दान, व्रत का भाव (होता है) वह भी अचेतन है। चेतन वह है, वह तो दोनों से रहित अन्दर चैतन्यस्वरूप भगवान है। उसमें समभाव प्रगट करने से, समभाव स्वरूप तो है, वह वस्तु समभाव वीतरागस्वरूप है, उसे पर्याय में समभाव प्रगट करने से... आहाहा! ऐसे तो पाँच-पच्चीस सगे-सम्बन्धी, पुत्र और पुत्रियाँ इकट्ठे हुए हों और विवाह हो। ऐई... तब मजे करते हों। धूल में भी नहीं। वे सब दुःखी हैं, दुःखी प्राणी बेचारे। आहाहा! लड़कियाँ आयी हैं, दामाद आये हैं। विवाह में ऐसा है और ढींकणा ऐसा है। बातें करे। उसे और घर की महिला हो उसे तो गला बैठ जाये तो भी बोल... बोल करे। परन्तु अब थोड़ा बोलो न! कहे, परन्तु अब दो दिन है न। आहाहा! यह सब पागल हैं। पागल-पागलपना। आहाहा! घर की मुख्य हो वह बहुत (बोला करे), क्योंकि जलेबी और गांठिया ऐसे खाकर बोल-बोल करे तो आवाज बैठ जाये। कोई कहे, माँ! तुम थोड़ा बोलो न! परन्तु अब कब आवे? दो दिन है न। मर जाना है। मात्र आर्तध्यान और रौद्रध्यान में पड़ी है और मजा है, ऐसा मानती हो। आहाहा! मूर्खाई के वे गाँव अलग होते हैं? आहाहा!

प्रभु! तू आनन्द का नाथ है न! तुझे राग में प्रसन्नता कैसे होती है? समझ में आया? राग में प्रसन्नता (हो, उसमें), प्रभु! तेरा घात होता है। चैतन्यसत्ता का राग की

प्रसन्नता से पर्याय में घात होता है। वस्तु तो वस्तु है। वस्तु में तो कुछ (घात होना) है नहीं। वह तो तीनों काल अनादि-अनन्त चिदानन्द घन है। यह तो पर्याय की बात है। आहाहा!

भावार्थः—कर्म के उदय से सुख-दुःख उत्पन्न होने पर... सुख-दुःख अर्थात्? कल्पना नहीं, संयोग की बात है। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग। उसे यहाँ सुख-दुःख कहा। सुख-दुःख परिणाम हो और समभाव, वह तो हो सकता नहीं। समझ में आया? **कर्म के उदय से सुख-दुःख उत्पन्न होने पर भी जो मुनिश्वर रागादि रहित...** देखो! आहाहा! उत्कृष्ट मुनि की बात है न। **रागादि रहित मन में शुद्ध ज्ञानदर्शनस्वरूप...** आहाहा! जिसके मन में शुद्ध ज्ञानस्वरूप पधराया है, आहाहा! **अपने निज शुद्ध स्वरूप को नहीं छोड़ता है,...** आहाहा! अनुकूलता के ढ़ेर हों। चक्रवर्ती का छह खण्ड का राज (हो), लो! आहाहा! वह कहीं सुख नहीं। यह कहा था, नहीं? 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग, काग वीट सम मानत हैं।' कागवीट सम—कौवे की विष्टा जैसा (उसे) समकिती मानते हैं। यह छियानवें हजार स्त्रियाँ और... आहाहा! यह तो अभी भिखारीपना हो, वहाँ ऐसा माने कि हम कुछ सुखी हैं। यहाँ तो छह खण्ड का राज मिले चक्रवर्ती को या इन्द्रपद मिले, सम्यग्दृष्टि उसे काग की विष्टा समान जानता है। आहाहा! कहो, यह इसने कभी सुना नहीं हो, वाँचन नहीं किया हो और यहाँ की आलोचना करे कि ये लोग पुण्य को विष्टा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर सुनकर किसी के पास निर्णय करने जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई आते हैं बेचारे। कल बेचारे का पत्र है। एक विनोदभाई का। पद्मभाई नाम है उसका। पत्र पढ़ा है? नाम है। आहाहा! बहुत... बहुत... बहुत प्रसन्नता बतायी। यहाँ बीस दिन रह गया। अपने शिक्षण शिविर में। 'आभा' गाँव कहा? अभाना गाँव। बहुत प्रसन्न हुआ है। ओहोहो! जीवन का सफलपना करने का तो यह मार्ग वहाँ सुना। ऐसा बेचारे को... आत्मा है न, बापू! वह तो आत्मा है, उसमें क्या? कोई भी आत्मा। स्त्री, पुरुष, नारकी, वे तो देह के धर्म हैं। आत्मा उस स्वरूप है कहाँ? आहाहा! वह तो आनन्दस्वरूप से, ज्ञानस्वरूप से है। उसमें अन्तर में एकाग्र होने पर... आहाहा!

कर्म के उदय से सुख-दुःख... का अर्थ बाहर संयोग। सुख-दुःख के परिणाम नहीं। क्योंकि सुख-दुःख के परिणाम होने के पश्चात् समभाव कहाँ रहा? आहाहा! एक बात। दूसरी बात—कोई ऐसा कहे कि बाहर का संयोग कर्म के कारण नहीं मिलता। तो यहाँ यही कहते हैं कि कर्म के उदय के कारण सुख-दुःख के संयोग होते हैं। समझ में आया? है न यह मान्यता है? यह अनुकूल-प्रतिकूल संयोग, वह तो समाज को व्यवस्था नहीं आती, इसलिए ऐसा होता है। यहाँ तो कहते हैं, कर्म के उदय से वे संयोग मिलते हैं। यह लक्ष्मी और धूल और स्त्री-पुत्र अनुकूल और यह सब। तथा दुःख। रोग और घेरा हुआ क्षय रोग और वह क्या कहलाता है तुम्हारे? केन्सर, वह सब रोग उस दुःख का निमित्त है उसे। यह संयोग की व्याख्या है, हों! यह दुःख का निमित्त इसलिए उसे दुःख कहा। अनुकूल में सुख कहा।

कर्म के उदय से सुख-दुःख उत्पन्न होने पर भी जो मुनिश्वर रागादि रहित मन में... आहाहा! **मुनिश्वर रागादि रहित मन में शुद्ध ज्ञानदर्शनस्वरूप अपने निज शुद्ध स्वरूप को नहीं छोड़ता है,...** आहाहा! भाई ने तो लिखा नहीं? सोगानी ने। धर्मीजीव को शरीर में लाख धगधगती सुई घुसाये तो भी वह सहन करने को तैयार है। आता है न? स्वयं ज्ञाता-दृष्टा है, इसलिए वह... आहाहा! लाखों सुई धगधगती। परन्तु वह तो धगधगती हो या यों ही हो, वह सब चीज़ कहाँ? वह तो ज्ञेयरूप से है। आहाहा! है न? आहाहा! धर्मी को उसकी प्रतिकूलता के प्रति लक्ष्य नहीं होता। इसलिए उसका वेदन करना उसे नहीं होता। आहाहा! दुःख तो राग करे, द्वेष करे तो दुःख होता है। उस संयोग से दुःख नहीं होता। वह संयोग अकिंचित्कर है। राग-द्वेष उपजाने को वह संयोग अकिंचित्कर है। आहाहा! समझ में आया? यह प्रवचनसार में आया है। बाहर के विषय हैं अनुकूल-प्रतिकूल, वे राग-द्वेष उत्पन्न करने के लिये अकिंचित्कर है। देखो! निमित्त है, उसे अकिंचित्कर कहा। निमित्त है। आहाहा! परन्तु वह कहीं राग-द्वेष उत्पन्न नहीं कराते। आहाहा! समझ में आया?

मन में शुद्ध ज्ञानदर्शनस्वरूप अपने निज शुद्ध स्वरूप को... ऐसा। **अपने निज शुद्ध स्वरूप को नहीं छोड़ता है,...** आहाहा! वीतरागभाव से परिणमता निजस्वरूप को प्रतिकूलता में या अनुकूलता में छोड़ता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! रोगादि की

प्रतिकूलता का पार नहीं होता, अरे! दुश्मन आकर शरीर को छुरा मारता हो, वह प्रतिकूल संयोग कहलाता है। समझ में आया? वह कर्म के उदय का संयोग है। आहाहा! **अपने निज शुद्ध स्वरूप को नहीं छोड़ता है,...** स्वयं ज्ञाता-दृष्टा में रहनेवाला धर्मी उसे अनुकूल-प्रतिकूल, उसे राग-द्वेष उपजाते नहीं। इसलिए वह स्वरूप को छोड़ता नहीं। आहाहा! बात ऐसी है, बापू! दुनिया से अलग प्रकार है। आहाहा!

वही पुरुष अभेदनयकर... देखा! वह अभेद आया था न? **द्रव्य भावरूप पुण्य-पाप के संवर का कारण है।** संवर का कारण तो समभाव है। परन्तु इस पुरुष को अभेदनय से समभाव का करनेवाला है, उस पुरुष को संवर का करनेवाला कहा। है? **संवर का कारण है।** अभेदनय अर्थात् यह आत्मा। इस आत्मा ने समभाव किया, इसलिए पुण्य-पाप का रुकना हुआ, संवर हुआ। संवर हुआ है तो वह समभाव से। परन्तु उस पुरुष को संवर करनेवाला अभेदनय से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वरना समभाव तो पर्याय में हुआ है। परन्तु उस आत्मा को अभेद गिनकर, वह आत्मा ही संवर का करनेवाला है। पुण्य-पाप का रोकनेवाला और संवर का करनेवाला और समभाव का करनेवाला आत्मा ही है। वह पुरुष अर्थात् वह आत्मा है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! परमात्मप्रकाश।

मुमुक्षु : अभेद।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अभेद अर्थात् आत्मा, ऐसा। संवर हुआ है तो समभाव से। पुण्य-पाप का रुकना वीतरागभाव से हुआ है। पर्याय से। परन्तु उस आत्मा को संवर कहना, यह अभेदनय से (कहा है)। पर्याय का धारक वह है, इस अपेक्षा से अभेदनय से (कहा है)। वह आत्मा ही संवर का करनेवाला है। पुण्य-पाप का रोकनेवाला आत्मा ही है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! यह ३७ हुई। छोटी थी।

गाथा - ३८

अथ यावन्तं कालं रागादिरहितपरिणामेन स्वशुद्धात्मस्वरूपे तन्मयो भूत्वा तिष्ठति तावन्तं कालं संवरनिर्जरे करोतीति प्रतिपादयति –

१६१) अच्छइ जित्तिउ कालु मुणि अप्प-सरूवि णिलीणु।
संवर-णिज्जर जाणि तुहुं सयल-वियप्प-विहीणु।।३८।।

तिष्ठति यावन्तं कालं मुनिः आत्मस्वरूपे निलीनः।
संवरनिर्जरां जानीहि त्वं सकलविकल्पविहीनम्।।३८।।

अत्थ(च्छ)इ इत्यादि। अत्थ(च्छ)इ तिष्ठति। किं कृत्वा तिष्ठति। जित्तिउ कालु यावन्तं कालं प्राप्य। क्व तिष्ठति। अप्प-सरूवि निजशुद्धात्मस्वरूपे। कथंभूतः सन् णिलीणु निश्चयनयेन लीनो द्रवीभूतो वीतरागनित्यानन्दैकपरमसमरसीभावेन परिणतः हे प्रभाकरभट्ट इत्थंभूतपरिणामपरिणतं तपोधनमेवाभेदेन संवर-णिज्जर जाणि तुहुँ संवरनिर्जरास्वरूपं जानीहि त्वम्। पुनरपि कथंभूतम्।सयल-वियप्प-विहीणु सकलविकल्पहीनं ख्यातिपूजालाभप्रभृतिविकल्पजालावलीरहितमिति। अत्र विशेषव्याख्यानं यदेव पूर्वसूत्रद्वयभणितं तदेव ज्ञातव्यम्। कस्मात्। तस्यैव निर्जरासंवरव्याख्यानस्योपसंहारोऽयमित्यभिप्रायः।।३८।। एवं मोक्षमोक्षमार्गमोक्षफलादिप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारोक्तसूत्राष्टकेनाभेदरत्नत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन स्थलं समाप्तम्। अत ऊर्ध्वं चतुर्दशसूत्रपर्यन्तं परमोपशमभावमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति।

आगे जिस समय जितने काल तक रागादि रहित परिणामोंकर निज शुद्धात्मस्वरूप में तन्मय हुआ ठहरता है, तब तक संवर और निर्जरा को करता है, ऐसा कहते हैं –

जो संकल्प विकल्प रहित मुनि निज स्वरूप में रहते हैं।
तब तक उन मुनिवर को संवर और निर्जरा कहते हैं।।३८।।

अन्वयार्थ :– [मुनिः] मुनिराज [यावंतं कालं] जबतक [आत्मस्वरूपे निलीनः] आत्मस्वरूप में लीन हुआ [तिष्ठति] रहता है, अर्थात् वीतराग नित्यानंद परम समरसीभावकर परिणमता हुआ अपने स्वभाव में तल्लीन होता है, उस समय हे प्रभाकरभट्ट; [त्वं] तू [सकलविकल्पविहीनम्] समस्त विकल्प समूहों से रहित अर्थात् ख्याति (अपनी बड़ाई) पूजा (अपनी प्रतिष्ठा) लाभ को आदि देकर विकल्पों से रहित उस मुनि को [संवरनिर्जरा] संवर निर्जरा स्वरूप [जानीहि] जान। यहाँ पर भावार्थरूप विशेष व्याख्यान जो कि

पहले दो सूत्रों में कहा था, वही जानो। इसप्रकार संवर निर्जरा का व्याख्यान संक्षेपरूप से कहा गया है।।३८।।

इस तरह मोक्ष, मोक्ष-मार्ग और मोक्ष-फल का निरूपण करनेवाले दूसरे महाधिकार में आठ दोहा-सूत्रों से अभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से अंतरस्थल पूरा हुआ।

गाथा-३८ पर प्रवचन

आगे जिस समय जितने काल तक... आहाहा! **रागादि रहित परिणामोंकर निज शुद्धात्मस्वरूप में तन्मय हुआ ठहरता है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? कि जितना काल भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में तन्मय होकर स्थिर होता है। **रागादि रहित परिणामोंकर निज शुद्धात्मस्वरूप में तन्मय...** शुद्ध में तन्मय—उसमय, परिणति उसमय हो गयी। आहाहा! जितना काल वीतराग परिणति से तन्मय आत्मा होता है, **तब तक संवर और निर्जरा को करता है,...** तब उसे संवर और निर्जरा होती है। आहाहा! लो, यह संवर-निर्जरा। नौ तत्त्व में संवर-निर्जरा कैसे होती है? कि जितना काल यह रागरहित चैतन्यमूर्ति में स्थिर होता है, उतने काल में उसे संवर होता है। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश है। भाई! यह शैली इस प्रकार से ली है न कि भाई! वीतरागभाव से परिणमता है, तब उसे आत्मा दिखता है और ज्ञात होता है। १४४ कहा था न? समयसार की १४४ गाथा। जब वह रागरहित होकर सम्यग्दर्शन में आत्मा दिखता है, तब उसे श्रद्धा होती है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, उसे कब श्रद्धा होती है? कि सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट करके उस आत्मा को देखता है अर्थात् श्रद्धा करता है, तब श्रद्धा होती है। ऐसे श्रद्धा करता है... श्रद्धा करता है—ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन की प्रतीति के काल में वह विषय—स्वरूप जो है आत्मा, तब उसे श्रद्धा में आता है। तब उसे वह वस्तु देखने में आती है, ऐसी भाषा है वहाँ। १४४ में। फिर अर्थ किया है। देखने में आती है अर्थात् श्रद्धा में आती है और

जब वह ज्ञान की पर्याय में एकाग्र अन्दर में है और ज्ञान की पर्याय से उसे जाना है, तब उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ रास्ता दिखता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ दिखता नहीं। राग है। आहाहा!

इस १४४ में यह है। उस समय श्रद्धा की जाती है और उस समय ज्ञात होता है। उस समय ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसा जानपना किया है शास्त्र का, इसलिए ज्ञात होता है—आत्मा ज्ञात होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! आत्मा पूर्णानन्द ज्ञान का स्वरूप प्रभु है। उसके सन्मुख होकर जो ज्ञान का परिणमन करता है, उस समय वह ज्ञान में ज्ञात होता है। तब वह ज्ञान उसका हुआ। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, **जिस समय जितने काल तक रागादि रहित...** राग-द्वेषादि विकल्प से रहित **परिणामोंकर निज शुद्धात्मस्वरूप में तन्मय हुआ ठहरता है,...** तब उसे संवर-निर्जरा होती है। आहाहा! समझ में आया? लो! यह संवर-निर्जरा होने का कारण। आहाहा! जितना काल राग और द्वेषरहित होकर स्वरूप में—भगवान आत्मा में स्थिर होता है, उस काल में उसे संवर और निर्जरा होती है। आहाहा! यह लोग कहते हैं कि अपवास करे, उसे निर्जरा होती है। एक आर्जिका ऐसा कहती है। चर्चा चली थी। नहीं, भाई आये नहीं? वे वडोदरावाले। वेजलका। वह चर्चा थी दूसरे के साथ। तप अर्थात् निर्जरा। हम तो भाई तप हो, उसे निर्जरा मानते हैं। तुम कहो कि धर्म नहीं। वह आर्जिका कहे। वह लीलावती है न? 'दिवाळी' की चेली नहीं? लींबडी। वह थी न वहाँ? हमको खबर है। सुना था। भाई ने उसके साथ चर्चा की थी। तब वह कहे, हम तो तपस्या को निर्जरा कहते हैं। इसलिए हम तो अपवास को निर्जरा कहते हैं। तुम दूसरी बात चाहे जो करो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और दूसरे प्रकार से कहते हैं। हमारे शास्त्र में पंच महाव्रत को निर्जरा का कारण कहा है। ठाणांग में कहा है। तुम्हारे शास्त्र में चाहे जो कहा, वह हमारे कहाँ... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि अपवास किया, इसलिए उसे तप हुआ और निर्जरा हुई, ऐसा नहीं है। महीने के अपवास किये। अरे! महीने का संथारा किया, इसलिए उसे संवर-निर्जरा होती है, ऐसा नहीं है। उसमें अन्दर में वीतरागता की परिणति प्रगट करता है। ज्ञायकभाव को अवलम्ब कर जो समस्वभावी वस्तु है, उसमें से समस्वभावी वस्तु की परिणति प्रगट करता है, उस काल में उसे संवर-निर्जरा है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

जामनगर में तो आठम और चौदस का... क्या कहलाता है? चौदश न हो उन्हें। पूर्णिमा होती है। अष्टमी और पूर्णिमा तथा अष्टमी और अमावस्या। चार। हम रहे हैं न वहाँ। प्रोषध करे। पहले गये न (संवत्) १९८२ में? भाई वीरजीभाई के पिता। ताराचन्दभाई साधु को पढ़ानेवाले थे न वे तो? बत्तीससूत्र चलता था ... पढ़े हुए बहुत। उसमें १९८२ में वहाँ गये। वह लोकाशा का उपाश्रय है, वहाँ व्याख्यान चलता था। फिर वहाँ कहा, कि यह मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता, यह सब शुभभाव है। यह तुम वांचों, कहा तुम्हारा यह ज्ञान क्या कहलाता है यह? ज्ञानसागर। ज्ञानसागर न? जामनगर से प्रकाशित है न? पूनातर की ओर से? ज्ञानसागर में देखो। उसमें ऐसा लिखा है। परन्तु क्या कहा? और यह क्या लिखा है? काया की सरलता और मन की सरलता, उसे तुम धर्म मानते हो? यहाँ तो कहते हैं, सरलता में पुण्यबन्ध होता है, ऐसा कहते हैं। अकेले आये अकेले, हों! महाराज! यह सब लोगों को कठिन होगा। तो क्या है? कहा।

मन, वचन और काया का शुभभाव, सरलता, वह तो नामकर्म के बन्ध का कारण है। वह धर्म कहाँ है? देखो कहा, यह तुम्हारी ओर से प्रकाशित है। पूनातर का प्रकाशित किया हुआ है। है या नहीं कोई जामनगरवाले? यह तो केशुभाई है। इन्हें खबर नहीं होगी। बहुत वर्ष हो गये, इन्हें खबर नहीं होगी। (संवत्) १९८२ के वर्ष की बात है। ५० वर्ष हुए। यह ज्ञानसागर है, पूनातर की ओर से प्रकाशित। उसमें लिखा है, कहा। चार कारण से शुभ नामकर्म बँधता है—मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता, अविसंवाद... किसी के साथ विसंवाद नहीं। ऐसे चार प्रकार से तो नामकर्म बँधता है। उससे तुम धर्म मानो। यह जरा कठिन पड़ा। फिर अकेले आये शाम

को (और कहा) महाराज! मार्ग ऐसा है। दूसरा हो ऐसा नहीं कहा यहाँ कोई... आहाहा! लोग बाहर से अपवास करे, प्रतिक्रमण करे, सामायिक करे और हो गया धर्म। वहाँ तो शुभभाव का भी ठिकाना नहीं ठीक से। धर्म कहाँ से आया?

यहाँ तो यह कहते हैं, **जिस समय...** ऐसा है न? जिस समय है न? जिस समय जिस काल में **जितने काल तक रागादि परिणामोंकर...** आहाहा! **परिणामोंकर निज शुद्धात्मस्वरूप में... रागादि रहित परिणामोंकर...** आहाहा! **निज शुद्धात्मस्वरूप में तन्मय हुआ ठहरता है,...** भगवान आत्मा में एकमेक पर्याय में तन्मय होता है। आहाहा! तन्मय का अर्थ? द्रव्य के साथ पर्याय एकाग्र होती है। द्रव्यरूप हो जाती है, ऐसा कहीं नहीं। समझ में आया? जो पर्याय राग के साथ एकाग्र है, उस पर्याय को द्रव्य के साथ एकाग्र करना, उसका नाम तन्मय। समझ में आया? परन्तु यह शब्द भी सुने न हों। ऐई! शान्तिभाई! जहाँ हो, वहाँ दीये रखे बाहर का। इससे यह हुआ और इससे यह हुआ, यह वहाँ सामने पड़े हुए सब स्थानकवासी में। जैतपुर। शान्तिभाई। कहो, समझ में आया? आहाहा! **ऐसा कहते हैं:-** लो!

१६१) अच्छइ जित्तिउ कालु मुणि अप्प-सरूवि णिलीणु।
संवर-णिज्जर जाणि तुहुं सयल-वियप्प-विहीणु॥३८॥

अन्वयार्थः—मुनिराज जबतक आत्मस्वरूप में लीन हुआ... अभी आत्मा कौन है, इसकी खबर नहीं होती और लीनता कहाँ से आवे इसे? आहाहा! **आत्मस्वरूप में लीन हुआ रहता है,...** आहाहा! भगवान आत्मा में अनुभव में, वेदन में जितना काल रहता है। आहाहा! **वीतराग नित्यानन्द परम समरसीभावकर परिणमता हुआ...** भाषा देखो! अभी छठवें गुणस्थान में, हों! सातवें में है, उसकी बात है यह। **वीतराग नित्यानन्द परम समरसीभावकर...** भगवान आत्मा वीतराग नित्यानन्द परम समरसीभाव, इस प्रकार से **परिणमता हुआ...** आत्मा है तो वीतराग नित्यानन्द परमसमरसीभाव। परन्तु ऐसे भावरूप परिणमता हुआ पर्याय में। समझ में आया? अब ऐसा मार्ग। फिर लोगों को ऐसा लगे न कि यह नया निकाला है। यह तो कब का शास्त्र है?

मुमुक्षु : 'जब तक'?

पूज्य गुरुदेवश्री : जब तक... कहा न ? इतना काल वहाँ। आनन्द में लीन है, तब तक उसे संवर, निर्जरा है। फिर वापस विकल्प उठे और आस्रव है, यह बात लेनी है। पश्चात् भी जितनी वीतरागता है, उतनी संवर, निर्जरा सदा है। परन्तु यहाँ तो स्थिर होता है, यह बात ली है। उसे वह आस्रव रुक जाता है। फिर बाहर आवे तब उसे विकल्प आता है, वह तो आस्रव है। तब पुण्य रुका नहीं। और यहाँ तो पुण्य-पाप दोनों वहाँ रुके हैं और स्थिर हुआ है। आहाहा!

और स्वभाव में तल्लीन होता है, उस समय हे प्रभाकर भट्ट! तू समस्त विकल्प समूहों से... देखा! उस समय उसे ध्यान में संकल्प-विकल्प रहित होता है, तब संवर-निर्जरा होते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल १०, सोमवार
दिनांक-०१-११-१९७६, गाथा-३८, ३९, प्रवचन-१२१

परमात्मप्रकाश, ३८ गाथा है। यहाँ तक आया है। **वीतराग नित्यानन्द परम समरसीभावकर परिणमता हुआ...** यहाँ तो आत्मा जो समभावी वीतरागीस्वरूप है, उसके आश्रय से वीतराग परमानन्द समभाव से परिणमना, वह समभाव है, वह मोक्ष का मार्ग है। **वीतराग नित्यानन्द परम समरसीभावकर परिणमता हुआ...** आहाहा! वस्तु स्वभाव चैतन्यस्वभाव परमात्मा है। परमात्मा अर्थात् वीतरागस्वरूप ही है। ऐसे वीतरागस्वरूप का आश्रय लेकर ध्येय में बनाकर जिसने वीतराग नित्यानन्द परमसमरसीभाव परिणमा है। आहाहा! रागरहित नित्यानन्द ऐसे समरसीभावकर **परिणमता हुआ अपने स्वभाव में तल्लीन होता है,...** आहाहा!

उस समय हे प्रभाकर भट्ट! तू समस्त विकल्प समूहों से रहित... कोई भी विकल्प समूह वहाँ नहीं। अकेली ज्ञायकभाव में रमणता। जिसने ज्ञायकभाव को दृष्टि में लेकर अन्तर्मुख होकर स्वभावदृष्टि-सम्यग्दृष्टि प्रगट की है, वह विशेष स्वरूप में लीन होता है। ऐसी बात है। तब उस **मुनि को संवर-निर्जरा स्वरूप जान।** वह मुनि संवर-निर्जरा स्वरूप है। आहाहा! ऐसी बात है। आत्मा वीतराग अविकारी स्वभाव शुद्धात्मा त्रिकाल। उस शुद्धात्मा में दृष्टि देने से, उस ओर का ज्ञान होने से और उस ओर का परिणमन— चारित्र होने से, ऐसा जो समभाव (होता है), वह संवर-निर्जरा का कारण है। लो! यह संवर-निर्जरा का कारण। उत्कृष्ट की बात है। परन्तु जघन्य में भी यह है।

सम्यग्दर्शन, वह भी जघन्य समभाव है। चारित्र, वह विशेष समभाव है। आगे ३९ में कहेंगे। सब शास्त्र की टीका ग्रन्थ समभाव की की है, ऐसा कहते हैं। जितने शास्त्र रचे हैं, वह सभी समभाव की टीका है। अर्थात्? यह आत्मा जो चैतन्यस्वरूप भगवान, वह पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव से रहित है।

मुमुक्षु : उनसे रहित है तो सहित किससे?

पूज्य गुरुदेवश्री : सहित है, वीतरागस्वभाव से सहित है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

कल सामायिक नहीं आयी थी? सामायिक किसे कहना? जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी जिसे दृष्टि—सम्यग्दर्शन हुआ है, उसका जिसे ज्ञान है, उसकी जिसे स्थिरता आंशिक चारित्र है, ऐसा जो स्वभाववाला आत्मा का परिणमन... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वभाववाला ज्ञान का परिणमन। ज्ञान अर्थात् आत्मा का परिणमन, रागरहित, मन के सम्बन्ध रहित—ऐसी जो सामायिक, उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! और एकाग्रता लक्षण, ऐसा आया था न? तीन आये थे। वस्तु जो है परमात्मस्वरूप भगवान, उसमें एकाग्रता लक्षण, वह सामायिकस्वरूप है। समझ में आया? और उसे समयसारस्वरूप कहते हैं। उसका अनुभव करना। आहाहा! बात ऐसी है।

निमित्त और राग से उपेक्षा करके और स्वभाव की अपेक्षा में... बहुत सूक्ष्म बात, बापू! अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान जिनवरदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा, ऐसा जो यह आत्मा, उसमें जिसकी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता हुई है, उसे सामायिक कहते हैं—उसे धर्म कहते हैं—उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! सम्प्रदाय में तो नहीं दर्शन की खबर, नहीं आत्मा की खबर और सामायिक करके बैठे। किसकी सामायिक? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि है। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... गिने, वह तो राग है। पंच परमेष्ठी का स्मरण करे, वह राग है, वह तो विषमभाव है। सामायिक में तो समभाव है, ऐसा कहते हैं। सामायिक समभाव का भाव। समभाव कब होता है? यह पुण्य-पाप के जो विकल्प उठें, उनसे रहित होकर, स्वभाव आनन्द का सागर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, उसे ज्ञान द्वारा पकड़ना, ज्ञान की पर्याय द्वारा ज्ञानस्वरूप को पकड़ना और उसमें दृष्टि होकर निर्विकल्पता होना, उसमें विशेष समता प्रगट होना, उसे सामायिक कहते हैं। वीतराग परमात्मा उसे सामायिक कहते हैं। बाकी सबको विषमभाव कहते हैं। कहो, चन्दुभाई! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। अरे! वीतराग का मार्ग समभाव से प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। समभाव यह। कहेंगे अभी।

ऐसा जो **समस्त विकल्प समूहों से रहित अर्थात् ख्याति (अपनी बड़ाई)...** जिसे अपनी महत्ता का त्याग है। महत्ता-दुनियाँ में मैं बड़ा हूँ, मुझे अधिक आता है, मैं कुछ शास्त्र का जाननेवाला हूँ, ऐसी जो बढ़ाईरहित। आहाहा! यह तो विकल्प है, अशुभराग है। उससे रहित **पूजा (अपनी प्रतिष्ठा)...** दूसरे की अपेक्षा अधिकरूप से बाहर में गिना जाऊँ, यह जिसने छोड़ दिया है। आहाहा! पूजा, ख्याति और लाभ। किसी भी कीर्ति का लाभ हो, मान का लाभ हो—ऐसी जो भावना, वह सब विकारी भाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुझे मोक्ष हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष हो, वह भी इच्छा है, वह राग है। ऐसा मार्ग प्रभु का सूक्ष्म है, बापू! आहाहा!

उस मुनि को संवर-निर्जरा स्वरूप जान। देखा! गुरु शिष्य को कहते हैं। गुरु दिगम्बर मुनि, जंगलवासी योगीन्द्रदेव सन्त आनन्द के झूले में झूलते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में झूलते हैं, वे मुनि शिष्य को कहते हैं, हे शिष्य! अपनी बढ़ाई, दुनिया में प्रसिद्धि हो वह और लाभ। किसी भी वस्तु का, शिष्य का लाभ हो, कीर्ति का लाभ हो, सेठिया माने, अनुकूल हो—ऐसी जो लाभ की भावना, वह तो सब मिथ्याभावना है। आहाहा! उससे रहित **उस मुनि को संवर-निर्जरा स्वरूप जान।** देखो! उसे संवर-निर्जरा होती है। ऐसे सामायिक करके बैठे और सावद्ययोग के प्रत्याख्यान किये 'करेमि भंते', वह कहीं सामायिक नहीं है।

मुमुक्षु : सावद्ययोग का....

पूज्य गुरुदेवश्री : सावद्ययोग का त्याग, वह कहाँ सावद्य की खबर है? मिथ्यात्वभाव ही बड़ा सावद्य है। इस राग की क्रिया को धर्म मानना।

यह तो वीतरागभाव है। उसमें राग को धर्म मानना, उस राग को धर्म (मानना वह) मिथ्यात्व है। आहाहा! परसन्मुख की जितनी क्रिया, दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा सब शुभभाव राग है। आहाहा! यह राग है, वह विषमभाव है। इसलिए वह अधर्म है। आहाहा! ऐसा है। उससे रहित भगवान चिदानन्द के धाम में, वस्तु जो आनन्द का

नाथ प्रभु, उसके धाम में आरूढ़ होना, उस स्वभाव में आरूढ़ होना। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आरूढ़ हुआ जाता है। चारित्र अर्थात् यह पाँच महाव्रत और वस्त्र आदि छोड़ दिये, नग्न हो गया। वह वस्त्रवाला तो साधु ही नहीं, द्रव्यलिंग भी नहीं। परन्तु वस्त्ररहित हो जाये, नग्न (होकर) जंगल में बसे, परन्तु जिसे आत्मा चीज़ आनन्द का नाथ है, उस पर आरूढ़ नहीं, वे सब मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। आहाहा! ऐसा है मार्ग, बापू! वीतराग परमेश्वर जन्म-मरणरहित होने का मार्ग तो यह है।

यहाँ पर भावार्थरूप विशेष व्याख्यान जो कि पहले दो सूत्रों में कहा था, वही जानो। इस प्रकार संवर निर्जरा का व्याख्यान संक्षेपरूप से कहा है।

इस तरह मोक्ष, मोक्ष-मार्ग और मोक्ष-फल का निरूपण करनेवाले दूसरे महाधिकार में आठ दोहा-सूत्रों से अभेदरत्नत्रय के व्याख्यान की मुख्यता से अन्तरस्थल पूरा हुआ। यह बात हो गयी।

गाथा - ३९

तथाहि -

१६२) कम्मु पुरक्किउ सो खवइ अहिणव पेसु ण देइ।
संगु मुएविणु जो सयलु उवसम-भाउ करेइ।।३९।।

कर्म पुराकृतं स क्षपयति अभिनवं प्रवेशं न ददाति।
संगं मुक्त्वा यः सकलं उपशमभावं करोति।।३९।।

कम्मु इत्यादि। कम्मु पुरक्किउ कर्म पुराकृतं सो खवइ स एव वीतरागस्वसंवेदनतत्त्वज्ञानी क्षपयति। पुनरपि किं करोति। अहिणव पेसु ण देइ अभिनवं कर्म प्रवेशं न ददाति। स कः। संगु मुएविणु जो सयलु संगं बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहं मुक्त्वा यः कर्ता समस्तम्। पश्चात्किं करोति। उवसम भाउ करेइ जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखादिसमताभावलक्षणं समभावं करोति। तद्यथा। स एव पुराकृतं कर्म क्षपयति नवतरं संवृणोति य एव बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहं मुक्त्वा सर्वशास्त्रं पठित्वा च शास्त्रफलभूतं वीतरागपरमानन्दैकसुखरसास्वादरूपं समभावं करोतीति भावार्थः। तथा चोक्तम् - 'साम्यमेवादराद्भाव्यं किमन्यै ग्रैन्थविस्तरैः। प्रक्रियामात्रमेवेदं वाङ्मयं विश्वमस्य हि।।'।।३९।।

आगे चौदह दोहों में परम उपशमभाव की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं -

जो समस्त परिग्रह विमुक्त हो परिणमते उपशान्त स्वरूप।
पूर्व कर्म की करें निर्जरा नये कर्म हों संवररूप।।३९।।

अन्वयार्थ :- [सः] वही वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी [पुराकृतं कर्म] पूर्व उपार्जित कर्मों को [क्षपयति] क्षय करता है, और [अभिनवं] नये कर्मों को [प्रवेशं] प्रवेश [न ददाति] नहीं होने देता, [यः] जो कि [सकलं] सब [संगं] बाह्य अभ्यंतर परिग्रह को [मुक्त्वा] छोड़कर [उपशमभावं] परम शांतभाव को [करोति] करता है, अर्थात् जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, शत्रु, मित्र, तृण, कांचन इत्यादि वस्तुओं में एकसा परिणाम रखता है।

भावार्थ :- जो मुनिराज सकल परिग्रह को छोड़कर सब शास्त्रों का रहस्य जान के वीतराग परमानंद सुखरस का आस्वादी हुआ समभाव करता है, वही साधु पूर्व के

कर्मों का क्षय करता है, और नवीन कर्मों को रोकता है। ऐसा ही कथन पद्मनंदिपच्चीसी में भी है। 'साम्यमेव' इत्यादि। इसका तात्पर्य यह है, कि आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिये, अन्य ग्रंथ के विस्तारों से क्या, समस्त पंथ तथा सकल द्वादशांग इस समभावरूप सूत्र की ही टीका है।।३९।।

गाथा-३९ पर प्रवचन

आगे चौदह दोहों में परम उपशमभाव की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं— देखो! उपशमभाव अर्थात् समभाव। आहाहा! उसकी मुख्यता से कहते हैं। ३९।

१६२) कम्मु पुरक्किउ सो खवइ अहिणव पेसु ण देइ।
संगु मुएविणु जो सयलु उवसम-भाउ करेइ॥३९॥

अन्वयार्थः—पूर्व उपार्जित कर्मों को क्षय करता है,... आहाहा! कौन? **वही वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी...** आहाहा! ज्ञानी कैसा होता है? कि वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी। आहाहा! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, वह वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है। उसका वेदन करनेवाला वीतरागी स्वसंवेदन, वह वीतरागस्वरूप का वीतरागी स्वसंवेदन, स्वयं अपने से प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन करे। आहाहा! वह पूर्व के कर्म को खिपाता है। समझ में आया? यह अपवास करे, अठ्ठम करे, महीने के करे और... वह सब तो लंघन है, वह तप नहीं। आहाहा!

यहाँ तो **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी...** उत्कृष्ट मुनि की बात ली है न? सम्यग्दृष्टि को वह वीतरागी पर्याय है, स्वसंवेदन भी है, परन्तु प्रचुर नहीं है, इसलिए यह बहुत की व्याख्या करते हैं अभी। आहाहा! सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो तो उसे यथार्थ आत्मदृष्टि का वीतराग का स्वसंवेदन आंशिक होता है। नहीं तो वह श्रावक भी नहीं और समकिती भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी...** भाषा देखो न! **'सः पुराकृतं कर्म क्षपयति'** आहाहा! भगवान चिदानन्दस्वरूप, ज्ञानघन आनन्दकन्द के धाम में आरूढ़ होकर जो समताभाव से स्वसंवेदन करे... आहाहा! वह मुनि पूर्व के कर्म खिपाता है। समझ में आया? मुनिपना लिया, पंच महाव्रत लिये, इसलिए वह मुनि है, ऐसा नहीं। पंच महाव्रत तो राग है, विकल्प है। आहाहा!

यहाँ तो वीतरागी स्वसंवेदन धर्मी... चौथे गुणस्थान में भी वीतरागी पर्याय स्वसंवेदन है, परन्तु अल्प है। यहाँ मुनि की अपेक्षा लेनी है। **वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञानी पूर्व उपार्जित कर्मों को क्षय करता है,...** आहाहा! **'अभिनवं प्रवेशं न ददाति'** उसे नये कर्म आते नहीं। पुराने खिरते हैं, नये आते नहीं। किसे? जिसे भगवान आत्मा के सन्मुख होकर वीतरागी परमानन्द का वेदन वर्तता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। उस मुनि को पुराने कर्म खिरते हैं, नये कर्म आते नहीं।

जो कि सब बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर... मुनि की विशेष दशा ली है न! मुनि हैं, वे दिगम्बर होते हैं। वस्त्र और पात्र का धागा भी जिन्हें नहीं होता। समझ में आया? यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी निकले हैं, वे तो भगवान के दिगम्बर धर्म से भ्रष्ट होकर श्वेताम्बर निकले हैं। दो हजार वर्ष पहले। उसमें से यह स्थानकवासी श्वेताम्बर में से निकले हैं। मूर्ति को उत्थापित करके (निकले हैं)। वह जैनधर्म नहीं है। ऐसी बातें हैं, बापू! बहुत कठिन। आहाहा! जिसमें वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान (प्रगट हुआ हो)... आहाहा! है? उसे बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग होता है। अभ्यन्तर में राग की गाँठ का त्याग है और बाह्य में वस्त्र के धागे का भी त्याग है। आहाहा! अन्तर में आनन्द का नाथ प्रभु, जिसने राग की एकता तोड़ी है और स्वभाव की एकता खोली है। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! समझ में आया? पूनमचन्दभाई गये? गये लगते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यद्यपि सर्वसंग... आहाहा! अन्तर में दया, दान के विकल्प भक्ति और व्रत, नियम का भी राग, वह भी जिसने अन्दर छोड़ा है। आहाहा! और बाह्य में वस्त्र, पात्र का जिन्हें त्याग है, ऐसा जो बाह्य-अभ्यन्तर त्यागी, मुनि... आहाहा! **बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर परम शान्तभाव को करता है,...** आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायभावरूप से परिणमता है, अकषायभाव कहो या वीतरागभाव कहो। आहाहा! वीतरागभावरूप उपशमभावरूप परिणमता है। वह जीव **जीवन, मरण,...** जीवन हो या मरण हो। दोनों में समभाव है। आहाहा!

लाभ, अलाभ,... बड़े चक्रवर्ती राजा मान दे, तो भी जिन्हें समभाव है। आहाहा! और दुनिया धर्म की निन्दा करे (कि) लो, यह धर्म, ऐसा वीतरागमार्ग... आहाहा!

उसके ऊपर भी जिन्हें समभाव है। आहाहा! **सुख, दुःख,...** प्रतिकूल संयोग हो या अनुकूल संयोग हो, दोनों में समभाव है। आहाहा! वीतरागता है, जिन्हें समभाव है। विषमभाव का त्याग करता है। समभाव का अन्दर प्रगट भाव है। आहाहा! **शत्रु, मित्र...** दोनों के ऊपर जिसे समभाव है। सब ज्ञेय हैं। शत्रु नहीं और मित्र कोई नहीं। आहाहा! ऐसा जिन्हें समभावरूपी उपशमभाव, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला उपशमभाव। आहाहा! **तृण, कंचन...** तिनका हो या सोने का ढ़ेर हो, सबके प्रति समभाव है। **इत्यादि वस्तुओं में एक सा परिणाम रखता है।** आहाहा! मुनि जंगल में रहे और कुछ पानी-वर्षा गिरी और कलश दिखायी दिया। करोड़ों-करोड़ों हीरा के कलश, तो भी समभाव है। वह धूल है। मुझे क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : वह धूल है....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल है। पुद्गल है, ऐसा ज्ञान (करता) है। पुद्गल है, ऐसा ज्ञान करता है। समझ में आया? यह जीव है, उसका स्वभाव है या नहीं? ज्ञान का स्वपरप्रकाशक। पर को जानता है। समझ में आया?

भावार्थः—जो मुनिराज सकल परिग्रह को छोड़कर... आहाहा! उत्कृष्ट बात ली है न! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला मोक्षमार्ग, यह वर्णन है यहाँ। जिसे सम्यग्दर्शन (हुआ है, वह) **सकल परिग्रह को छोड़कर...** ओहोहो! अकेला वीतरागी आनन्द नाथ। निर्लेप परमात्मा अन्दर आत्मा स्वयं है। आहाहा! ऐसा जो वीतरागी समभाव, ऐसे स्वरूप को अनुभव करता हुआ **सकल परिग्रह को छोड़कर...** आहाहा! मुनिपना कैसा, बापू! यह तो लोगों ने सुना नहीं। आहाहा! मुनिपना...

सब शास्त्रों का रहस्य जानके... क्या कहना है? सभी शास्त्रों का रहस्य समभाव और वीतरागता है। चारों अनुयोग हो, तत्त्वज्ञान का विषय हो, चरणानुयोग, करणानुयोग, कथानुयोग हो। तो उसमें समभाव का वह सब कथन है। समभाव का, वीतरागभाव का वह सब कथन है। उस कथन में वीतरागभाव का तात्पर्य है। आहाहा! **सकल परिग्रह को छोड़कर सब शास्त्रों का रहस्य जानके...** रहस्य का अर्थ यह कि सब शास्त्रों में एक वीतरागता ही कहनी है। आहाहा! वह रागरहित आत्मा वीतरागस्वरूप में परिणमे, यह सब शास्त्रों का रहस्य है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग है, जिनवर का मार्ग है।

वीतरागमार्ग वीतरागभाव से प्रगट होता है। वह राग की क्रिया से प्रगट नहीं होता। आहाहा!

सकल परिग्रह को छोड़कर... इस ओर **सब शास्त्रों का रहस्य जानके...** इस ओर। सर्वपरिग्रह रागादि के विकल्प को छोड़कर, इस ओर सब शास्त्रों का रहस्य जानकर कि यह वीतरागता। आहाहा! आत्मा के सन्मुख होकर समभाव में रहना, वह सब शास्त्रों का सार है, रहस्य है। समझ में आया? लाख शास्त्र हो और करोड़ शास्त्र हो, उसका रहस्य तो प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा, उसमें वीतराग परिणमन में रहना, वह उसका तात्पर्य है। समझ में आया? ऐसा कठिन, इसलिए लोगों को... यह वापस कितने ही ऐसा कहते हैं, इन सोनगढ़वालों ने नया निकाला है। यह मार्ग कहाँ ऐसा? यह तो दो हजार वर्ष पहले की पुस्तक है—शास्त्र है और इसकी टीका। मार्ग की खबर नहीं, उन लोगों को बेचारों को। आहाहा!

वीतराग परमानन्द... एक। 'एक' शब्द पड़ा रहा है वहाँ। **वीतराग परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ...** एक (शब्द) चाहिए वहाँ। समझ में आया? एक सुख है न अन्दर? '**वीतरागपरमानन्दैकसुखरसास्वादरूप**' एक शब्द चाहिए अन्दर, पड़ा रहा है। यह 'एक' को छोड़ दिया है बहुत जगह, भूल गये लगते हैं। राग और बाह्य वस्तु छोड़कर अकेला भगवान आत्मा के स्वभाव में आरूढ़ होता हुआ वीतरागभावरूप परिणमता है। आहाहा! यह **वीतराग परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ...** आहाहा! जगत विषय के और पैसे के राग में सुख मानकर अज्ञानी राग को वेदता है। यह धर्मी वीतरागी रसास्वाद को वेदता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे रागरस छूट गया है। आहाहा! और **वीतराग परमानन्द एक सुखरस** आत्मा का परम आनन्द स्वभाव है, वीतरागी परमानन्द से भरपूर प्रभु आत्मा है। अरे! कहाँ सुना है इसने? ऐसे वीतरागी परमानन्द के एकरस का स्वादी। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया। आहाहा! **स्वादी हुआ समभाव करता है,...** देखो! आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! लोगों ने धर्म के नाम से कुछ का कुछ चलाया है। आहाहा! जिनवरमार्ग...

कहते हैं कि **वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी...** उसका अनुभवी। आहाहा! वह **समभाव करता है,...** उसे समभाव होता है। आहाहा! ऐसा समभाव,

समभाव (बोले)। यह देश के लिये मरते नहीं हैं? वह समभाव नहीं। वह तो बड़ा मिथ्यात्वभाव है वहाँ। आहाहा! यहाँ तो बाह्य परिग्रह और अभ्यन्तर राग को भी छोड़कर अन्तर का वीतरागी परमानन्द का एकरस का स्वादिया होता हुआ... आहाहा! वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता हुआ। आहाहा! गजब बात, भाई! **समभाव करता है,...** वह यह परमानन्द का स्वाद लेता हुआ समभाव होता है, उसे समभाव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, तप, अपवास आदि के भाव, वह सब राग है। वह विषमभाव है। कठिन बातें, प्रभु! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, वासना, भोग, काम, क्रोध, मान, वह पापभाव है। वह दया, दान, व्रत, तप का पुण्यभाव है। दोनों विषमभाव राग है। इससे अभ्यन्तर में इस राग को छोड़कर, बाह्य में वस्त्र, पात्र, स्त्री, कुटुम्ब को छोड़कर, अन्दर में अस्तिपना जो वीतराग प्रभु आत्मा है, उस पर आरूढ़ होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परमानन्द का स्वाद लेता हुआ समभाव से परिणमता है, उसे मुनि कहा जाता है। आहाहा! है?

वही साधु... देखो! आहाहा! यह तो परमात्मप्रकाश है। यह देहदेवल में भगवान अन्दर भिन्न विराजता है। यह देह तो मिट्टी, जड़, धूल है। अन्दर दया, दान, व्रत, तप के भाव हों, वह सब शुभराग है। उसे भी छोड़कर। अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागी परमानन्द का स्वाद लेता हुआ जो समभाव करता है। आहाहा! गजब बातें! शब्द भी कठोर पड़े अभी तो। आहाहा! कहते हैं, जिसे अन्तर का वीतरागी आनन्द का स्वाद आता है, उसे समताभाव होता है। क्योंकि उस स्वाद के समक्ष पूरी दुनिया को ज्ञेयरूप से जानता है। आहाहा! समझ में आया?

तीन बातें हुईं। **मुनिराज...** उत्कृष्ट बात है न? **सकल परिग्रह को छोड़कर...** एक। **सब शास्त्रों का रहस्य जानके...** अब शास्त्र का रहस्य क्या है? कि **वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ...** यह शास्त्र का सार है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता हुआ। जो यह राग के स्वाद में पड़ा है, पुण्य-पाप के (स्वाद में) वह तो मिथ्यात्व का स्वाद—जहर का स्वाद है। समझ में आया? आहाहा! **वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी...** जैसे यह दूधपाक होता है न? दूधपाक। वह खाता जाये, फिर कड़ाई में चिपका हो दूधपाक। दूधपाक कहते हैं न? तुम्हारे खीर

कहते हैं। यहाँ दूधपाक। दूधपाक अर्थात् एक सेर दूध में एक रुपयाभार चावल, उसका नाम दूधपाक। और एक सेर में नवटांक चावल (डाले) वह खीर। तुम्हारे खीर कहते हैं। हमारे यहाँ दो भाग पड़ते हैं। एक सेर दूध में नवटांक चावल, पाँच रुपयाभार, वह खीर होती है। और एक सेर दूध में रुपयाभार चावल, उसे ओटावे, उसका दूधपाक हो। दूध का पाक होता है। यहाँ तो दूसरा कहना है। उस कड़ाई में चिपटा हुआ जो खाये, वह बहुत मीठा लगे। उसी प्रकार आत्मा के साथ आनन्द चिपटा है अन्दर। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा... भाई! इसे खबर कहाँ है, आत्मा किसे कहना? क्या है? आहाहा! यह कड़ाई में चिपका हुआ है, यह तो दृष्टान्त दिया। वह शकरकन्द का दृष्टान्त दिया था न? शकरकन्द। शक्करिया। उसकी लाल छाल छोड़ दो तो पूरा शकरकन्द है वह। शक्कर अर्थात् शक्कर का पिण्ड है मिठास का। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, यह दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प, वह राग की छाल है। आहाहा! उसे छोड़कर अन्दर देखो तो वीतरागी आनन्द का कन्द है वह तो। आहाहा! वह शकरकन्द है, यह (आत्मा) अमृत का कन्द है। आहाहा! अरे! कैसे बैठे? सुनने को मिलता नहीं बेचारे को, क्या करे? ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी... आहाहा! जो आत्मा के साथ अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है... प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति ही आत्मा है। विषय आनन्द और यह भोग का आनन्द, वह तो सब जहर है। आहाहा! वह जहर का प्याला पीता है। ऐसे विकल्प को छोड़कर, बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से रहित होकर... आहाहा! **वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी...** होता हुआ। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द स्वाद में आया, उसे समभाव है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बात तो सुनने को भी किसी दिन मिले, ऐसी बात है। वह करो, यह करो और यह करो, अपवास करो, तप करो, सामायिक करो, प्रोषध करो, प्रतिक्रमण करो, यह स्थानकवासी में। मन्दिरमार्गी में यह यात्रा करो, भक्ति करो, पूजा करो, सिद्धचक्र यन्त्र और ढींकणा... वह सब क्रियायें राग की हैं। आहाहा! उसे तो यहाँ विषमभाव कहा है। कठिन पड़े, बापू! क्या हो? उस

विषमभाव को छोड़कर... आहाहा! वाडीभाई! ऐसा मार्ग है। बापू! तेरे सुख का पंथ है न, भाई! आहाहा!

आत्मा में वीतरागी परम आनन्द पड़ा है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है। अर्थात् कि जिसका आनन्दस्वभाव सुखस्वरूप, उसे हद क्या? जिसका स्वभाव, उसे परिमितता—मर्यादा क्या? ऐसा जो भगवान आत्मा में वीतरागी परम आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, उसका स्वादिया हुआ है। पर्याय में उसका रस लेता है। आहाहा! वस्तु में, द्रव्य में है, वह गुण में है। उस पर्याय में परमानन्द का वीतरागी रस का स्वादी (हुआ), उसे समभाव है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। यह कहाँ की बातें होंगी? यह वीतराग की होंगी यह? जैनधर्म ऐसा होगा? खबर नहीं बेचारे को। क्या करे? शान्तिभाई! ऐसी बात तो वहाँ है नहीं। सामने जाकर घर में भाग लेते हो तुम। कितनी बार। अब छोड़ा है। आहाहा!

उसका ज्ञान तो करे पहले, सच्ची समझ तो करे कि मार्ग यह है। अभी इसके ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे अनुभव कहाँ से होगा? आहाहा! यह तो परमात्मप्रकाश है। स्वयं परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश नाम है न उसका? नहीं? हुकमचन्दजी का—हुकमचन्दजी का बड़ा पुत्र, उसका नाम परमात्मप्रकाश है। वह जयपुर। बहुत क्षयोपशम। क्षयोपशम बहुत। उम्र छोटी, ३९ वर्ष। क्षयोपशम बहुत। उनके बड़े पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है। छोटे पुत्र का नाम अध्यात्मप्रकाश है। दो पुत्र हैं। हुकमचन्दजी को पहिचानते हो न? शान्तिभाई! जयपुरवाले। उनके दो पुत्र हैं। बड़े का नाम परमात्मप्रकाश, छोटे का नाम अध्यात्मप्रकाश। लड़की का नाम भी ऐसा कुछ हैं।

मुमुक्षु : शुद्धात्मप्रभा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मप्रभा?

मुमुक्षु : शुद्धात्मप्रभा।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धात्मप्रभा लड़की का नाम। लड़के-बड़के को रस है, हों! लड़के सब होशियार हैं। परमात्मप्रकाश को बहुत है। आहाहा! नाटक में पार्ट करता है, नहीं? नाटक में गुरु होकर बैठता है। फिर सबको पढ़ाता है नाटक में।

यहाँ कहते हैं कि परमात्म भगवान आत्मा, भाई! तुझे खबर नहीं। अरिहन्तपद जो प्रगट होता है—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, प्रभु! वह कहाँ से आता है? कहीं बाहर से आता है? वह अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का कन्द प्रभु है। उसमें से आनन्द की पर्याय आती है। आहाहा!

मुमुक्षु : शत्रु का नाश करनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शत्रु कैसा? अशुद्धभाव, वह शत्रु है। दूसरा शत्रु कौन सा था? आहाहा! यह उसके ऊपर लक्ष्य कहाँ करना? इसे तो यहाँ (लक्ष्य करने से) अशुद्धभाव उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! अशुद्धभाव हेय करना, इसका अर्थ क्या? कि त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु दृष्टि में लेने से, स्थिरता होने से अशुद्धता उत्पन्न नहीं होती, उसने अशुद्धता को हेय किया, ऐसा कहने आता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, बापू! भगवान! तेरा स्वरूप ही ऐसा है, भाई! आहाहा! कैसी बात ली है! आहाहा!

सब शास्त्रों का रहस्य... यह वीतरागता है। आता है न पंचास्तिकाय में? सर्व शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है। वहाँ यह रहस्य निकाला। आहाहा! पूर्ण आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, यह पुण्य-पाप के विकल्प उठें, यह छिलका-छाल है। उसे छोड़कर माल पर जहाँ जाता है अन्दर... आहाहा! अन्तर के माल पर जाता है, तब उसे वीतरागी परमानन्द का स्वाद आता है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा लोगों ने सुना भी न हो। ऐसा धर्म होगा जिनवर का? जिनवर का (धर्म) तो दया पालना, रात्रि में आहार न करना, कन्दमूल न खाना, प्रत्येक वनस्पति को छोड़ना, छहपरबी दया (पालना), ऐसी बातें हमने तो भाई सुनी है। ऐसा जैनधर्म कहाँ से निकाला? भगवान! तुझे खबर नहीं, बापू! वह तो सब राग की बातें हैं। यह तो वीतरागमार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ समभाव का वर्णन करना है। समभाव अर्थात् पुण्य-पाप के विषमभाव से रहित और आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसका आश्रय लेकर जो वीतरागता प्रगटी, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रवाली, उसे समभाव कहते हैं। सम्यग्दर्शन वह समभाव; सम्यग्ज्ञान, वह समभाव और सम्यक्चारित्र की रमणता, वह भी समभाव। आनन्द में रमणता, वह समभाव। आहाहा! वह चारित्र। चारित्र (अर्थात्) वस्त्र बदले, महाव्रत के परिणाम

(हुए), वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अभी जिसे वस्तु की खबर ही नहीं। आहाहा!

ओहोहो! सर्व विकल्प आदि को छोड़कर। **सब शास्त्रों का रहस्य जानके...** समझ में आया? स्थिरता का करना है न, इसलिए (कहा), रहस्य जानकर। विकल्प आदि को छोड़कर, शास्त्र का रहस्य जानकर—ज्ञान में लेकर फिर **वीतराग परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ...** आहाहा! यह सब शास्त्र की बातें बारह अंग में हो, चौदह पूर्व में हो, सबका सार समभाव है। अन्तर भगवान सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्र (प्रगट करना), वह समभाव है। यह सब व्याख्या बारह अंग में है। अभी कहेंगे। आहाहा! **समभाव करता है,...** देखो!

वही साधु... उसे मुनि कहते हैं। **पूर्व के कर्मों का क्षय करता है,...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के रस का रसिक आत्मा... आहाहा! उसे विषमभाव छूट गया है। इसलिए वह पूर्व के कर्म का क्षय करता है। है? **और नवीन कर्मों को रोकता है।** उसे नवीन कर्म नहीं आते। उसे नहीं आते। यह बैठकर बैठे हैं, संवर करके बैठे हैं, वह संवर कहाँ है? सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं और संवर कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का दल ऐसा प्रभु आत्मा, उसकी तो अभी दृष्टि–रुचि हुई नहीं। अब उसे कहाँ से अभी संवर और निर्जरा होती होगी? आहाहा! समझ में आया?

ऐसा ही कथन पद्मनन्दिपच्चीसी में भी है। इसका तात्पर्य यह है कि आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए,... है? पद्मनन्दि। '**साम्यमेवादराद्भाव्यं**' है न? '**साम्यमेवादराद्भाव्यं किमन्यैर्ग्रन्थविस्तरैः।**' आहाहा! '**प्रक्रियामात्रमेवेदं वाङ्मयं विश्वमस्य हि।**' आहाहा! पद्मनन्दि पंचविंशति। **आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए...** आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागी मूर्ति प्रभु है। उसका आदर करके समभाव प्रगट करना चाहिए। आहाहा! वस्तु का आदर करके। विकल्प का आदर करके पड़ा है अनादि से, वह मिथ्यात्वभाव है। पुण्य के भाव में पड़ा है और मुझे धर्म होता है, (ऐसा मानता है), वह मिथ्यात्वभाव है। दया, दान, व्रत, तप के परिणाम जो होते हैं, वह अज्ञानी का राग है। उसमें धर्म मानता है, वह तो मिथ्यात्वभाव को पोसता है। अनन्त

संसार को बढ़ाता है। आहाहा! इसलिए **आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए...** है न? '**साम्यमेवादराद्भाव्यं**' पाठ है अन्दर। गाथा नहीं रखी? आहाहा!

जो अनादि से वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है, उसका तूने अनादर किया है। और रागभाव पुण्य, पाप, दया, दान का विकल्प, राग, उसका तूने आदर किया है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! तो एक बार इसका आदर करके उसका आदर छोड़। आहाहा! मीठालालभाई! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! 'विरले को सुनने को मिले, विरला सुने कोई, विरला धारे कोई और विरला श्रद्धा जोई।' यह वस्तु ऐसी है। आहाहा! बहुत कहते हैं, देखो! **आदर से समभाव को ही धारण करना चाहिए...** अर्थात्? ऐसे राग की मन्दता करके ऐसे समभाव करे, ऐसा नहीं। अन्दर में त्रिकाली भगवान का आदर करके समभाव प्रगट करना चाहिए। आहाहा!

अन्य ग्रन्थ के विस्तारों से क्या,... आहाहा! अन्य हजारों शास्त्रों के विस्तारों से क्या? क्योंकि समभाव करना, वही वस्तु है। फिर चाहे जितने शास्त्र पढ़े। आहाहा! **अन्य ग्रन्थ के विस्तारों से क्या, समस्त पंथ...** है? **समस्त पंथ तथा सकल द्वादशांग...** आहाहा! '**प्रक्रियामात्रमेवेदं**' वीतराग का पूरा मार्ग। सकल द्वादशांग और बारह अंग भगवान ने कहे, चौदह पूर्व तो बारह अंग का एक भाग है। इसलिए बारह अंग पूरा। आहाहा! **इस समभावरूप सूत्र की ही टीका है।** आहाहा! यह बारह अंग में सब चाहे जितना कहा हो, एक आचारांगसूत्र में अठारह हजार पद और एक पद के इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक, ऐसा एक आचारांग। अभी तो कहाँ है वह। समझ में आया? ऐसा ठाणांग। ग्यारह अंग और बारह अंग तो पढ़ा होगा। परन्तु यह सब कहते हैं, समभावरूप सूत्र की टीका है। आहाहा! उन सबमें आत्मा आनन्द का नाथ, उस पर दृष्टि करके समभाव रखना, करना, वह उसमें सबमें कहना है। सार यह है। आहाहा! पुण्य हेय है। परन्तु हेय कहकर कहना है क्या? स्वभाव का आश्रय ले और आदर कर। यह सब समभाव की टीका बारह अंग की है। दूसरे प्रकार से कहें तो वीतरागता बारह अंग में बतायी है। आहाहा! वह वीतरागता कैसे प्रगटे? कि संयोगी चीज़ निमित्त, राग-विकार और पर्याय, इन तीनों की उपेक्षा करके, त्रिकाली का आदर करे तो सम्यग्दर्शन समभाव होता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पंथ की जगह तब ऐसा कहे कि

यह पंथ है या ग्रन्थ है? **समस्त ग्रन्थ...** है ऐसा। **समस्त ग्रन्थ तथा सकल द्वादशांग इस समभाव...** यह टीका में चिह्न किया है कि यह पंथ शब्द है या ग्रन्थ है? ग्रन्थ लगता है।

सब ग्रन्थ और सब शास्त्र द्वादशांग। भगवान के कहे हुए, हों! वीतराग के। वह समभाव की सूत्र की यह टीका है। आहाहा! सबमें भगवान के सन्मुख हो और राग से विमुख हो, यह सब टिकायें इसकी है। आहाहा! अधिकार बहुत सरस है। बारह अंग में कितने शास्त्र हैं! परन्तु कहते हैं कि वह सब वीतरागपने की टीका है, उसका विस्तार है। वह जहाँ-तहाँ वीतरागता बतायी है। जिनवरमार्ग वीतरागमार्ग है तो वीतरागता बतायी है। वह वीतरागता कैसे प्रगट हो? कि स्व का आश्रय लेकर पर का आश्रय छोड़े, उसे वीतरागता प्रगट हो। आहाहा!

पर से खस, आत्मा में बस, यह टूंका (संक्षिप्त) टच, इतना बस। आहाहा! दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह पुण्यबन्ध का कारण; वह धर्म नहीं। आहाहा! वहाँ से हट, भगवान में बस। आनन्द की मूर्ति प्रभु है, वहाँ बस, स्थिर हो। यह टूकूं टच, इतना बस। सब बारह अंग में यह कहना है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कथा कैसी होगी? एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, अभीहया, वतीया, लेशीया जीविया वहरोविया... उसमें तो कुछ समझ में भी आये। क्या समझना उसमें? आहाहा!

वीतरागी समभावी स्वरूप प्रभु हैं न! आहाहा! आत्मा, वह वीतरागमूर्ति ही है। वीतरागमूर्ति अर्थात् स्वरूप। प्रत्येक का आत्मा, हों! उसमें पर्याय में जो राग होता है, वह तो विषमभाव विकार है, वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! बारह अंग और सब ग्रन्थ का सार अथवा सब ग्रन्थ और बारह अंग समभाव की टीका है। वीतरागता का ही वर्णन सर्वत्र है। भले व्यवहार का वर्णन किया हो परन्तु उसे छोड़कर अन्तर में जाने के लिये वर्णन किया है। आहाहा! बहुत सरस आया है यह।

मुमुक्षु : टूकूं और टच।

पूज्य गुरुदेवश्री : टूकूं और टच। आहाहा!

अन्दर आत्मा आनन्द ज्ञानस्वरूपी, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य,

अनन्त दर्शन से भरपूर चीज़ है, वह स्वयं। आहाहा! जैसे शक्कर में मिठास भरी है, अफीम में कड़वाहट भरी है, खड़ी में सफेदी भरी है; उसी प्रकार भगवान में आनन्द और ज्ञान भरा है। कभी सुना न हो और क्या करना? आहाहा! समझ में आया? यह भगवान आत्मा... यह ज्ञात होता है न? जानता है कौन? यह आत्मा। पर को जानने के काल में जानता है किसमें? पर में जानता है या स्व में जानता है? पर को—यह शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब सबको ऐसे जानता, वह जाननेवाला है, वह पर को जानता है, वह पर में है या वह जाननेवाले में है यह? आहाहा! यह जाननेवाला जाननेवाले में है, ऐसा इसने कभी माना नहीं। जाननेवाला ऐसा ज्ञात होता है, वहाँ वह जानता है, उसमें परज्ञेय में व्याप्त हुआ हो (ऐसा इसे लगता है)। समझ में आया? परन्तु परज्ञेय के काल में जो ज्ञान व्याप्त है, वह ज्ञान में रहकर पर को जानने में व्याप्त है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

इस गाथा में पूरा उठाया है। आहाहा! यह कर्म खपावे, उसे नये न आवे। किसे? वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी को। उसका यह सब विस्तार किया फिर। आहाहा! 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम' स्वयं आत्मा वह है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।' यह बात है। अन्दर में जा और देख और स्थिर हो तो प्राप्त हो। यह श्रीमद् का वाक्य है, आत्मसिद्धि का है। शुद्ध है वह तो, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड है, चैतन्यघन है। असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है, जिसमें अनन्त गुण का धाम है। जिसमें अनन्त गुण के अंकुर फूटते हैं, ऐसा वह क्षेत्र है। आहाहा! स्वयं ज्योति। आप स्वयं ज्योति चैतन्य हैं। यह तो सब प्रकाश कहा था न? नहीं? यह चन्द्र, सूर्य का यह सब प्रकाश तो अज्ञान है। उस प्रकाश को प्रकाश की खबर है उसे? वह प्रकाश सब, वह तो अन्ध है, अज्ञान है। उस प्रकाश का जाननेवाला वह स्वयं ज्ञानप्रकाश है। आहाहा! समझ में आया? जिसके प्रकाश में दूसरा अज्ञानप्रकाश ज्ञात हो, उस प्रकाश की मूर्ति वह प्रभु आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? उसमें एकाग्र होना, वह समभाव है। उस समभाव की सब बारह अंग की टीका है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बहुत सरस है। विशेष कहेंगे, लो! टाईम हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४०

अथ यः समभावं करोति तस्यैव निश्चयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि नान्यस्येति दर्शयति–

१६३) दंसणु णाणु चरित्तु तसु जो सम–भाउ करेइ।
इयरहँ एक्कु वि अत्थि णवि जिणवरु एउ भणेइ।।४०।।

दर्शनं ज्ञानं चारित्रं तस्य यः समभावं करोति।
इतरस्य एकमपि अस्ति नैव जिनवरः एवं भणति।।४०।।

दंसणु इत्यादि। दंसणु णाणु चरित्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं तसु निश्चयनयेन तस्यैव भवति। कस्य। जो सम–भाउ करेइ यः कर्ता समभावं करोति इयरहं इतरस्य समभावरहितसस्य एक्कु वि अत्थि णवि रत्नत्रयमध्ये नास्तेकमपि जिणवरु एउ भणेइ जिनवरो वीतरागः सर्वज्ञ एवं भणतीति। तथाहि। निश्चयनयेन निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं सम्यग्दर्शनं तस्यैव निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नवीतरागपरमानन्दमधुररसास्वादोऽयमात्मा निरन्तराकुलत्वोत्पादकत्वात् कटुकरसास्वादाः कामक्रोधादय इति भेदज्ञानं तस्यैव भवति स्वरूपे चरणं चारित्रमिति वीतरागचारित्रं तस्यैव भवति। तस्य कस्य। वीतरागनिर्विकल्पपरमसामायिक–भावनानुकूलं निर्दोषिपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपं यः समभावं करोतीति भावार्थः।।४०।।

आगे जो जीव समभाव को करता है, उसी के निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र होता है, अन्य के नहीं, ऐसा दिखलाते हैं –

जिसको है समभाव उसी को दर्शन ज्ञान चरित होते।
यदि समभाव नहीं तो नहीं एक भी – यह जिनवर कहते।।४०।।

अन्वयार्थ :– [दर्शनं ज्ञानं चारित्रं] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र [तस्य] उसी के निश्चय से होते हैं, [यः] जो यति [समभावं] समभाव [करोति] करता है, [इतरस्य] दूसरे समभाव रहित जीव के [एकं अपि] तीन रत्नों में से एक भी [नैव अस्ति] नहीं है, [एवं] इस प्रकार [जिनवरः] जिनेन्द्रदेव [भणति] कहते हैं।

भावार्थ :– निश्चयनय से निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन उस समभाव के धारक के होता है, और निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वीतराग परमानंद मधुर रस का आस्वाद उस स्वरूप आत्मा है, तथा हमेशा आकुलता

के उपजानेवाले काम क्रोधादिक हैं, वे महा कटुक रसरूप अत्यंत विरस हैं, ऐसा जानना, वह सम्यग्ज्ञान और स्वरूप के आचरणरूप वीतरागचारित्र भी उसी समभाव के धारण करनेवाले के ही होता है, जो मुनीश्वर वीतराग निर्विकल्प परम सामायिकभाव की भावना के अनुकूल (सन्मुख) निर्दोष परमात्मा के यथार्थ श्रद्धान, यथार्थ ज्ञान और स्वरूप का यथार्थ आचरणरूप अखंडभाव धारण करता है, उसी के परमसमाधि की सिद्धि होती है।।४०।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल ११, मंगलवार
दिनांक-०२-११-१९७६, गाथा-४०, प्रवचन-१२२

परमात्मप्रकाश, ४१ गाथा। ४० तो हो गयी न? ३९ हो गयी। ४०-४०।

आगे जो जीव समभाव को करता है, उसी के... यह है न? ४०। **जीव समभाव को करता है, उसी के निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र होता है, अन्य के नहीं, ऐसा दिखलाते हैं—**

१६३) दंसणु णाणु चरित्तु तसु जो सम-भाउ करेइ।
इयरहँ एक्कु वि अत्थि णवि जिणवरु एउ भणेइ ।।४० ।।

अन्वयार्थः—आहाहा! **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसी के निश्चय से होते हैं, जो यति समभाव करता है,...** मुनि की मुख्यरूप से बात है। समभाव की व्याख्या यह की, वहाँ ३९ में। **वीतराग परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ समभाव करता है,...** आहाहा! क्या कहा? समभाव कब होता है? और समभाव किसे कहना? इस समभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आते हैं। और यह समभाव वीतराग परमानन्द, ऐसा आत्मा का वीतराग परमानन्द एकरस सुखस्वभाव है, उसका वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी। आहाहा! वीतरागी परमानन्द के एक सुखरूप का स्वाद आवे। आस्वादी होता हुआ समभाव करे, उसे समभाव कहा जाता है। आहाहा!

फिर से। समभाव अर्थात् वीतरागता। यह समभाव किसे होता है? कि जिसे वीतरागी परमानन्दस्वरूप एकरस सुखस्वाद जिसे आता है... आहाहा! पर्याय में वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का स्वाद आवे, उसे समभाव होता है। आहाहा! मूलचन्दभाई!

सम्यग्दर्शन, वह समभाव है; सम्यग्ज्ञान, वह समभाव है; सम्यक्चारित्र समभाव की व्याख्या यह। आहाहा!

मुमुक्षु : कब आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? करे, तब आवे। वीतरागी परमानन्द का स्वाद ले, तब आवे। आहाहा! अनादि से राग और द्वेष का स्वाद है, वह तो मिथ्यादृष्टिपना है। उसके स्वाद को आत्मा का मानना (वह मिथ्यादृष्टिपना है)। आहाहा! वीतरागी परमानन्द एक सुखरस स्वभाव आत्मा का है। उसे पर्याय में वीतरागी परमानन्द एक सुखरस का स्वाद आवे। आहाहा! भाषा देखो न! उसे यहाँ समभाव कहते हैं। ऐसे समभाव की साधारण व्याख्या दूसरा करे कि क्रोध न करे, फलाना न करे, ऐसा नहीं है। वह समभाव ही नहीं है। आहाहा!

समभाव तो उसे कहते हैं और उस समभाव की बारह अंग के सबमें यह टीका समभाव की ही टीका है। समभाव का ही वर्णन और विवेचन है। समझ में आया? यह समभाव उसे कहते हैं कि जिसमें राग-द्वेष का स्वाद छूट जाये और वीतरागी परमानन्द का एक सुखरस का स्वाद आवे, तब उसे समभाव कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा का वीतरागी परमानन्द एक सुखरस स्वरूप है वह भगवान आत्मा का। वीतरागी परमानन्द एक सुखरस स्वभाव है उसका। उसकी जिसने दृष्टि, ज्ञान और रमणता की, उसकी पर्याय में वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में वीतरागी परमानन्द एकरस का सुख का स्वाद आता है। आकुलता टली तो यह आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! कहो, ऐसी बात है। यह बात तो आयी है।

भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति है। परमानन्दस्वभाव से भरपूर प्रभु है। उसकी जिसे सन्मुखता हुई है, उस सन्मुखता में जिसे वीतरागी परमानन्द का एक सुखरस का स्वाद आया, वहाँ उसे समभाव है। आहाहा! समझ में आया? साधारण लोग माने कि यह क्रोध करता नहीं, क्षमा रखता है; इसलिए समभावी है। ऐसा नहीं है। वह तो बाहर का दिखाव खोटा है। समभावी आत्मा उसे कहते हैं कि जो समभावस्वरूप ही भगवान आत्मा है। वीतरागस्वरूप ही प्रभु है। उस वस्तु का वस्तुत्व तो परमानन्द और वीतरागस्वरूप है। रागादि कोई उसका स्वरूप नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग-विकल्प हो, वह कोई

वस्तु का वस्तुपना नहीं है। वह जो वस्तु है राग से रहित और वीतराग के परम आनन्दसहित, ऐसी वस्तु के सन्मुख होने से, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में उसके सन्मुख होने से वीतरागी परमानन्द का एक सुखरस का स्वाद आवे। आहाहा! गजब बात की है न! कोई कहीं का कहीं मान ले। मूलचन्दभाई! ऐसा तो सुना नहीं होगा जिन्दगी में कहीं। आहाहा!

जैनशासन उसे कहते हैं कि जिसे परमानन्द वीतरागी सुख का स्वाद आवे। इतनी वीतरागता हुई, वह जैनशाासन है। आहाहा! प्राणभाई! ऐसी बात है, भगवान! बहुत कठिन। लोगों को... वस्तुस्थिति ऐसी है। इसलिए आचार्य कह गये है न कि भाई! यह बारह अंग और सर्व शास्त्र का रहस्य, इस समभाव की टीका और समभाव का रहस्य है। आहाहा! लाख शास्त्र, करोड़ शास्त्र, बारह अंग पूर्व हो, उसमें ऐसा समभाव, उसका ही विवेचन और टीका है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा समभावस्वरूप अर्थात् वीतरागी परमानन्द एक सुखरस के स्वाद स्वरूप है वह तो उसका। आहाहा! उसके सन्मुख जिसने देखा, उसके सन्मुख जो हुआ, वह राग और द्वेष से विमुख हुआ और वीतराग परमानन्द के स्वभाव-सन्मुख हुआ। उसे पर्याय में वीतराग परमानन्द एक सुखरस स्वाद आता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं, उसे समभाव कहते हैं। शान्तिभाई! ऐसा कभी वहाँ सुना नहीं था दिल्ली-बिल्ली में कहीं। तब आये हैं न। आहाहा! प्रभु! तेरा मार्ग तो देख, भाई! आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर उसे समभाव कहते हैं... आहाहा! कि जिसे समभाव का स्वरूप जो वीतरागी परमानन्द एकरस का स्वाद (आवे)... आहाहा! यह समभाव का स्वरूप है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है। ऐसी बात कहाँ है ? बापू! आहाहा! यह वस्तु की स्थिति यह है। समझ में आया ? ऐसा का ऐसा बाहर से होंकारा करे, यह किया और यह किया और फलाना किया, पूजा की, भक्ति की, व्रत पालन किये, अपवास किये। यह तो सब राग का स्वाद है, प्रभु! यह राग है, वह आत्मा का स्वाद नहीं। वह जैनशासन नहीं। आहाहा! वह जैनमार्ग नहीं। जैनमार्ग अर्थात् जो कोई '**जो पस्सदि अप्पाणं**' आत्मा को इस प्रकार से देखता है। अबद्धस्पृष्ट है, राग रहित है, विशेष रहित सामान्य है, आहाहा! ऐसा जो सामान्य भगवान मुक्तस्वरूप है। अबद्ध है, वह बद्ध से

रहित, ऐसा कहा। मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप की दृष्टि सन्मुख होकर अनुभव करना, उसमें वीतरागी परमानन्द का स्वाद आना... आहाहा! उसे यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं, उसे यहाँ समभाव कहते हैं, उसे यहाँ वीतरागभाव कहते हैं, उसे यहाँ वीतरागभावरूपी धर्म कहते हैं। शान्तिभाई! सरल करना एकदम। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी व्याख्या कोई कभी सुनी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनी नहीं। बात सच्ची है। बात तो यह है। आहाहा!

और इस समभाव की इस बारह अंग में टीका कहते हैं। पूरा विवेचन इस समभाव का है। अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति का है। अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में वीतरागी परमानन्द का स्वाद आवे, उसका सब विवेचन है। आहाहा! कहो, ताराचन्दजी! ऐसा मार्ग है, इसलिए लोग एकान्त है... एकान्त है.. ऐसा करे। बापू! प्रभु! तेरी महिमा की खबर नहीं, नाथ! तू कौन है? ओहो! तू भगवत्स्वरूप है, प्रभु! तू ऐसा भूल जा। शरीर और राग वह तेरा स्वरूप नहीं। इतना तो नहीं परन्तु अल्पज्ञपना, वह तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! भगवान! तू परमानन्द (स्वरूप), देहदेवल में परमानन्द वीतरागी स्वभाव के सुधारस के स्वाद से भरपूर प्रभु है। आहाहा! उसे चाटना अर्थात् उसका वीतरागी परमानन्द का वेदन करना... आहाहा! यह स्वभाव भगवान आत्मा है, उसके सन्मुख, उसके सन्मुख होने से जो वीतरागी परमानन्द का— सुख का एकरस स्वाद आवे... आहाहा! उसे अकषायभाव, उसे वीतरागभाव, उसे समभाव, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है। उसमें आया है। आहाहा! उस ओर आया है, नहीं? ३९वीं गाथा में आ गया अपने। ३९। **वीतराग परमानन्द एक सुखरस का आस्वादी हुआ समभाव करता है,...** उस ओर ३९ में। ३९ गाथा कल गयी न? उसमें आया है।

मुमुक्षु : 'एक' शब्द उभारा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक उभारा। '**वीतरागपरमानन्दैकसुखरसास्वादरूपं समभावं**' समभाव की व्याख्या की। आहाहा! समभाव अर्थात् वीतरागभाव। वीतरागभाव की व्याख्या क्या? कि जिसमें वीतरागी परमानन्द का एकरूप स्वभाव का स्वाद आवे। आहाहा! मीठालालभाई! गजब बात है, बापू! यह तो वीतराग शासन है। आहाहा! और

व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह तो विषमभाव है। यह कहेंगे, अभी ४० में कहेंगे। आहाहा! यह तो धीर का काम है।

जो जीव समभाव को करता है,... ४०। **उसी के निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र होता है,...** इसका अर्थ क्या हुआ? जो जीव वीतरागी परमानन्द के एकरस के सुख का स्वाद अनुभव करता है, उसे समभाव है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! उसे सच्चा साधुपना है। आहाहा! कठिन लगे। लोगों को बेचारों को दु:ख हो। हम इतना करते हैं। इसके लिये महाव्रत पालते हैं, नंगे पैर चलते हैं, परीषह सहन करते हैं। बापू! वह तो राग की क्रिया क्लेश की है वह तो। वह दु:ख की है। वह तो क्लेश की दु:ख की क्रिया है। आहाहा! कषायभाव की क्रिया कहो या दु:ख की क्रिया है, आकुलता की है। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर भरपूर, अनन्त वीतरागी आनन्द से छलाछल भरपूर भगवान आत्मा... आहाहा! बालगोपाल को... आहाहा! सदा सबको ज्ञान की पर्याय में वह आनन्द का नाथ ही ज्ञान में आता है। आहाहा! परन्तु उसकी ओर का समभाव नहीं—उसकी ओर की सन्मुखता नहीं, इसलिए राग की सन्मुखता और पर्याय की सन्मुखता में आकुलता को वेदता है। समझ में आया? आहाहा! वापस कहा क्या? कि यह समभाव की ही टीका बारह अंग में है। आहाहा! क्योंकि शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। आहाहा! गजब बात है! चारों ओर से देखो तो... आहाहा! पूर्वापर विरोधरहित जैनशासन कैसा है, देखो तो! आहाहा! जैनशासन का अर्थ तू है। तू जैसा है, वैसा प्रगट हो, वह जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह समभाव की व्याख्या की। पश्चात् कहते हैं कि **जो यति समभाव करता है,... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसी के निश्चय से होते हैं।** दूसरे को नहीं। आहाहा! जिसे वीतरागी परमानन्द के स्वभाव के स्वादरूपी समभाव नहीं, उसे यह सम्यग्दर्शन आदि मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! समझ में आया? बराबर सुनायी देता है? थोड़ा ऊँचा पड़ता हे न? भाई को, भानेज को। नहीं? ऊँचा पड़ता है। यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा! नशा चढ़ जायें ऐसी बातें हैं यह तो। प्रभु! आहाहा! आहाहा! यह तो आया है न इस परमात्मप्रकाश में। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञदेव, जिनवरदेव अनन्त तीर्थंकरों ने समभाव प्रगट किया था। उन्हें पूर्ण समभाव था। पूर्ण वीतरागी परमानन्द के स्वाद में पूरे स्थित थे वे। आहाहा! उनकी वाणी में यह आया। आहाहा! आत्मावलोकन में यह कहा है। मुनि तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणमन वीतरागदशा की ही बात करे। आहाहा! मुहु... मुहु। समझ में आया? **जीव का निजस्वरूप जो है, वह वीतराग है, ऐसा जो बारम्बार कहते हैं, वे ही गुरुपदवी से सदा शोभते हैं,...** राग की, भक्ति की, पूजा की, व्रत की व्याख्या करे, बतलावे। जानने के लिये बतलावे। परन्तु उसका सार वीतरागता है, वह उसमें से निकालकर बतावे। आहाहा! समझ में आया? देखो!

अट्ठाईस मूलगुण, बाईस परीषह, पंचाचार आदि से लेकर विराजमान हैं, जिन्हें परमाणुमात्र बाह्य परिग्रह नहीं और अन्तरंग में भी परमाणुमात्र परिग्रह की इच्छा नहीं,... आहाहा! **अनेक उदासीन भावसहित विराजमान है और जो निजजातिरूप का साधन करते हैं...** निजजातिरूप का साधन करे। यह समभाव। आहाहा! **निजजातिरूप का साधन करते हैं...** वीतरागी परमानन्दस्वरूप निज जाति है। आहाहा! उसका साधन करते हैं। पंच महाव्रत और विकल्प का साधन आवे बीच में, उसे जानते हैं। साधन यह करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त यह बात है कहाँ? आहाहा! वस्तु की स्थिति देखो न! चारों ओर से देखो तो एक ही प्रकार खड़ा होता है। कोई शास्त्र लो। समयसार लो, ग्रन्थ लो, मोक्षमार्गप्रकाशक लो, समाधितन्त्र लो, इष्टोपदेश लो। ओहोहो! इष्ट उपदेश उसे ही कहते हैं कि जिसमें वीतरागता बतावे। निमित्त से लाभ होता है और राग से लाभ होता है, यह बतावे नहीं। आहाहा! निमित्त है सही, परन्तु सब उदासीन धर्मास्तिकायवत् है। आहाहा! और उस निमित्त का आश्रय लेने योग्य नहीं है। आश्रय तो शुद्ध चिदानन्द भगवान आत्मा, अन्तर्मुख होकर उसका आश्रय लेकर... आहाहा! जो कुछ वीतरागी परम आनन्द (प्रगट हो, उसे भोगे)। विषय-विषय भोग का आनन्द तो जहर का सुख है। विषय, भोग, आनन्द यह पैसे का, यह पाँच-पचास लाख कमाये और प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, वह सब जहर का प्याला पीते हैं। आहाहा! वह जहर का स्वाद है।

मुमुक्षु : जहर के प्याले को अमृत जानकर पीते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है वह। इन बलुभाई ने वह निकाल दिया न फिर सब। उपाधि थी, वह सब छोड़ दी। आहाहा!

भगवान आत्मा अस्ति—उसकी मौजूदगी, उसकी अस्ति, वह तो वीतराग परमानन्द सुख का स्वादिया अकेला स्वभाव है, उसका। आहाहा! अरे! ऐसा आत्मा कैसे बैठे? यह आत्मा अर्थात् पर की दया पाले और हिले-चले, वह आत्मा, त्रस है वह हिलता-चलता है। स्थिर, वह स्थावर।

मुमुक्षु : पुद्गल भी चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल परमाणु चलता है। गति चौदह राजूलोक जाता है। एक रजकण चौदह राजूलोक नीचे से ऊपर चला जाता है, एक समय में। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा!

यहाँ तो राग भी आत्मा नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह राग, वह आत्मा नहीं, वह आत्मा का स्वभाव नहीं, वह धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! देखो न! इन्होंने यह कहा है, हों! वहाँ। आहाहा!

निजजातिरूप का साधन करते हैं, सावधान होकर समाधि में व्याप्त होते हैं (लीन होते हैं), जिसने संसार से उपरांवटा (उदासीन, परांमुख) परिणाम किये हैं... आहाहा! उदयभाव का राग, उस संसार से उदासीन परिणाम किये हैं। आहाहा! इस ओर के वीतराग (परिणाम किये हैं)। **ऐसे वे जैन के साधु हैं, वे मन को स्थिर करके अपने को तो वीतरागरूप अनुभव करते हैं....** आहाहा! देखा! वहाँ यह लिया है। आत्मावलोकन में यह लिया है।

समभाव को करता है,... अभी एक आज आया न? कि **जो जीव समभाव को करता है,...** आहाहा! वह **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसी के निश्चय से होता है,...** आहाहा! जो वीतरागी परमानन्द का स्वाद लेता है, उसे समभाव है और उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! 'होंशिडा मत होंश न कीजै।' यह परसन्मुख का साथ छोड़, प्रभु! एक बार। वह उस जहर के प्याले में कहीं सुख नहीं है। आहाहा! सुख का सागर डोलता है भगवान अन्दर। आहाहा!

समुद्र में जैसे पानी उछले... आहाहा! वह तो कुछ कहते हैं न? ... ऊँचा। नहीं? लवण समुद्र की... नाम भी भूल जाते हैं। ऊँचा चले। पानी ऊँचा चलता है। वह नाम भूल गये।

मुमुक्षु : उन्मग्न नदी और निमग्न नदी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नदी नहीं। वह तो समुद्र में लवण समुद्र के मध्य में से पानी ऊँचा है ऐसा।

मुमुक्षु : डगमाळ।

पूज्य गुरुदेवश्री : डगमाळ। डगमाळ कहते हैं न? यह नाम भूल गये। यह आता है शास्त्र में। दोनों में आता है। श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनों में। लवण समुद्र है न, लवण समुद्र? उसका पानी ९६ योजन ऐसा कुछ ऊँचा चलता है। ज्वार चढ़ता है। ऐसा उसका स्वभाव है। अनादि का, हों! आहाहा! उसे डगमाळ कहा जाता है। समुद्र का पानी ऐसे सीधा हो, उसमें से अमुक योजन कितना ही ऊँचा होता है, ऐसा। आहाहा!

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा... वह लवणसमुद्र है खारा। यह आनन्द का सागर भगवान है। इसके समभाव में आने पर उसे वीतरागभाव का ज्वार चढ़ता है, कहते हैं। आहाहा! मूल वीतराग धर्म क्या है, इस बात को लोग पूरा भूल गये हैं। अजैन को जैनपना मानकर बैठे हैं। आहाहा! यह जहाँ बहुत स्पष्ट करने जाये तो कहे... ऐई! तुम्हारा एकान्त है। बापू! वस्तु तो यह है न, भाई! तेरे हित की बात भी यह है। तू भगवान है, प्रभु! तू चाहे जो भूल कर, परन्तु वह भूल पर्याय में है। वस्तु में कुछ है नहीं। वस्तु तो परमानन्द का नाथ सागर डोलता है अन्दर। आहाहा! उसकी ओर का वीतराग परमानन्द के सुख का स्वाद लेना... आहाहा! उसे समभाव कहते हैं और उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहते हैं। आहाहा!

निश्चयमोक्षमार्ग, वह समभाव है, वह वीतराग परमानन्द का स्वाद है और उसका कथन ही शास्त्र में कहा है, ऐसा कहा। व्यवहार-फ्यवहार की बात छोड़ दी। निश्चय का यह समभाव का ही कथन है, ऐसा कहा न? इसका अर्थ यह वीतरागी परमानन्द स्वभाव का स्वाद ऐसा जो निश्चयमोक्षमार्ग, उसका कथन शास्त्र में विशेष आया है।

आहाहा! उसकी प्रधानता वीतरागता बतलाने की यह बात है, कहते हैं। भले चरणानुयोग की अन्दर की व्याख्या व्रत की आवे, व्रत के विकल्प की आवे, अतिचार टालने की आवे। परन्तु उसका हेतु / तात्पर्य तो वीतरागता आनन्द है, वह बतलाना है। वह हेय है और यह उपादेय है। आहाहा! ऐसी व्याख्या। वह ऐकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया ऐसा सीधा था। बलुभाई! तस्स मिच्छामि दुक्कडम। किया था या नहीं? प्रवीणभाई! इरीया-विरीया किया था या नहीं? इच्छामि पडिक्कमा और तत्सूत्री तावकाये ठाणेण माणेणं आहाहा! प्रभु! तू तुझमें प्रवीण नहीं हुआ, दूसरे में प्रवीण हुआ। आहाहा! भगवान परमानन्द...

यह व्याख्या की है, वह गजब की है न! और पद्मनन्दिपंचविंशति का आधार दिया है। '**साम्यमेवादराद्भाव्यं**' इस वीतरागभाव को आदर से सेवन कर। आहाहा! '**किमन्यै ग्रंन्थविस्तरैः।**' दूसरे ग्रन्थ के विस्तार से तुझे क्या काम है? आहाहा! '**प्रक्रियामात्रमेवेदं वाङ्मयं विश्वमस्य हि।**' आहाहा! पूरे विश्व का सार तो अन्दर यह वीतरागभाव करना, वह है। आहाहा! अरे! इसकी खबर भी नहीं होती। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' नहीं आता? छहढाला में (आता है)। 'तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता' आहाहा! देखो! वहाँ यह आया।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में वीतराग विज्ञान डाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसका डाला है, उसका डाला है। छहढाला का। वीतराग विज्ञान, वीतरागी विज्ञान। आहाहा! अर्थात् परमानन्द के स्वभाव के साथ का जो ज्ञान, वह वीतरागी ज्ञान और वीतरागी विज्ञान। आहाहा! समझ में आया? अरे! आहाहा!

ऐसा दिखलाते हैं—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसी के निश्चय से होते हैं, जो यति समभाव करता है,... यह भाषा। जो कोई साधु वीतरागी परमानन्द को अनुभव करता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं। आहाहा! यहाँ तो पाँच महाव्रत पाले और अट्ठाईस मूलगुण (पाले)। स्थानकवासी में फिर सत्ताईस (मूल) गुण, यह अन्तर है। यह दूसरा अन्तर है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि हे यति! हे जति! जत्न करनेवाला। आहाहा! भगवान परमानन्द स्वरूप का जत्न, जति-जत्न करनेवाला। आहाहा! जयणा की। इस जीवन की ज्योति को इसने दृष्टि में लेकर, इसने वीतरागी आनन्द के

स्वाद में इसे लिया। आहाहा! समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी वीतरागी परमानन्द के सुख का एक अंश है। मुनि को विशेष है। आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या वीतरागमार्ग की कहते हैं! मार्ग तो यह है, बापू! यहाँ नहीं कहा? ऐसे समभाव की टीका है बारह अंग में। पूरा विवेचन इसके लिये है। वीतरागी परमानन्द का स्वाद लेने की ही व्याख्या पूरे बारह अंग में है। आहाहा! समझ में आया?

समभाव करता है, दूसरे समभाव रहित जीव के... देखा! **'इतरस्य'**। जिसने ऐसा वीतरागी परमानन्द के रस का स्वाद, ऐसा समभाव नहीं... आहाहा! देखो! यह अनेकान्त किया। **जीव के तीन रत्नों में से एक भी नहीं है,...** आहाहा! वाह! जिसे वीतरागी परमानन्द का स्वाद नहीं, ऐसा समभाव प्रगटा नहीं, उसे तीन रत्न में से एक भी रत्न नहीं है। सम्यग्दर्शन भी नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं और सम्यक्चारित्र भी नहीं। आहाहा! मार्ग तो तीन लोक के नाथ का गणधरों ने गूँथा हुआ, भगवान ने कहा, इन्द्रों और सन्तों ने स्वीकार किया। आहाहा! यह मार्ग है, बापू! लोगों को कठिन लगे कि व्यवहार साधन है... व्यवहार साधन है। बापू! व्यवहार कहेंगे अभी, देखो! **तीन रत्नों में से एक भी नहीं है, इस प्रकार जिनेन्द्रदेव कहते हैं।** देखा! जिनवर ऐसा कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र के पूजनीय, गणधरों के नाथ, वे जिनवर ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थः—निश्चयनय से निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,... सत्य के पंथ में तो यह भगवान आत्मा ही उपादेय है। वीतराग परमानन्दरस से भरपूर प्रभु! आहाहा! अरे! तेरे विषय और इन्द्र के विषयों के भोग तो जहर के, राग के, आकुलता के अनुभव हैं। आहाहा! भाई! तू दुःखी है। आहाहा! उसके विषय के (भोग), इन्द्र इन्द्राणी के साथ भोग लेता है, तब वह दुःखी है। यह मैसुख और पतरवेलिया उड़ाता हो (खाता हो)। मैसुख-मैसुख समझते हो न? मैसुख नहीं समझते? मैसूर? मैसूरपाक। एक सेर चने का आटा, चने का आटा, उसमें चार सेर घी (डाले)। उसे मैसूर कहते हैं। पण्डितजी! समझे या नहीं? गेहूँ का एक सेर आटा और चार सेर घी पिलाये, उसे शक्करपारा कहते हैं। और एक सेर चने का आटा और उसे चार सेर घी पिलाये, उसे मैसूर कहते हैं। वह मैसूर खाता हो और शक्करपारा खाता हो और उसमें पतरवेलिया हो। वह अरबी के

पत्ते। अरबी के पत्ते नहीं होते? फिर चने का आटा डालकर टुकड़े करके तेल में और घी में तले और उस मैसूर को खाये। दुःखी है बेचारा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह सब पैसेवाले सुखी मानते हैं, हम सुखी हैं।

मुमुक्षु : पैसेवाले को ऐसा भाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आया था (संवत्) १९८० में। नहीं? वह चुनीलाल भाईचन्द नहीं था? मुम्बई में। बड़ा चुनीलाल भाईचन्द, वह हमारे पास आया था, (संवत्) १९८० के वर्ष में। बोटाद। लोग ऐसा कहे कि इसके पास तो कितने पैसे हैं! करोड़पति है और ढींकणा है न... ढींकणा है। कहा, क्या खाते हो? कि दो पूड़ी और सब्जी। रोटी पचती नहीं। चुनीलाल भाईचन्द करोड़पति भावनगर का। भावनगर का वहाँ बड़ा सेठ था। यहाँ तो मेरे पास १९८० के वर्ष में आया था। कितने वर्ष हुए? ५२ हुए। लोग सुखी कहे परन्तु था पतला शरीर और दो पूड़ी मुश्किल से पचे। आहाहा! जठर ऐसा नहीं हो और पैसा इतना ढेर। क्या उसमें सुख कहीं था? कहा। धूल भी नहीं। आहाहा!

उस समय एक लड़का साथ में था कोई। सेठिया कोई लाये थे। छोटी उम्र का आठ वर्ष का लड़का था। वह कुछ पाटण से था लड़का। परन्तु देखो तो लड़का तो, आठ वर्ष का परन्तु अस्सी वर्ष का वृद्ध हो, इतनी स्थिरता। भाई! चपलता जरा भी नहीं। बराबर मेरे सामने बैठता। १९८० की बात है। वह चुनीलाल आये न, तब वह लड़का वहाँ था। उसका पिता लेकर आया था। भूल गये। बहुत वर्ष हो गये न! कहीं का था लड़का, था आठ-दस वर्ष का। परन्तु बैठा हो तो मानो अस्सी वर्ष का स्थिर, कुछ चपल या कुछ (नहीं)... शान्त... शान्त... शान्त। ऐसी उसकी प्रकृति ही थी। और वापस होशियार, हों! ऐसा नहीं कि भोला और भठ। होशियार। सामायिक करे, यह करे, जप-तप। स्थिर ऐसा मानो। कोई चपलताई (नहीं)। आँख में, चलने में, मुख में, बैठने में कुछ नहीं। एकदम स्थिर हो गया वृद्ध। ऐसा लगे। तब देखा था एक बार।

यहाँ तो भगवान स्थिर हो गये की बात चलती है। कल कहा नहीं था? यह आत्मावलोकन का। वीतराग को ऐसा देखता है। न उसका सिर हिले, न हाथ हिले, न होंठ हिले, न जीभ हिले, न कंपित हो। स्थिर बिम्ब... स्थिर बिम्ब... स्थिर बिम्ब।

साक्षात् भगवान भी स्थिर बिम्ब, प्रतिमा भी स्थिर बिम्ब। आहाहा! वह वीतराग हो गये, वीतराग हो गये। अर्थात् कि उसे वीत अर्थात् राग था, परन्तु राग वस्तु का स्वरूप नहीं था, इसलिए निकल गया। अकेली वस्तु रह गयी। आहाहा! वीतराग परमानन्द की मूर्ति, वह वस्तु रह गयी। ऐसा देखकर जो धर्मी अपने आत्मा में यह घटित करे कि यह राग निकल गया, तब वह वस्तु नहीं थी तो निकल गया। उसका स्वरूप नहीं था। वह निकल गया तब अकेली वस्तु रह गयी। परमानन्द मूर्ति है। ऐसा ही यह भगवान आत्मा यहाँ अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

राग नहीं, वर्तमान विकार होने पर भी विकार के सामने-पास में ज्ञान पड़ा है। उस ज्ञान को पकड़कर अन्दर में जा। राग को छोड़, लक्ष्य में से छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? उस ज्ञान की पर्याय को पकड़कर अन्दर में जाये। वह तो परमानन्द की मूर्ति है। आहाहा! वह भगवान जैसे हैं, वैसा ही यह आत्मा है। बलुभाई!

मुमुक्षु : अभी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। आहाहा!

द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव तो बिम्ब, वीतरागमूर्ति का बिम्ब है। यह क्या कहते हैं? समभाव प्रगट कर का अर्थ (यह कि) वह स्वयं समभाव स्वरूप है। आहाहा! वह ववीतरागस्वरूप ही है। वीतरागी परमानन्द एकरस सुखस्वरूप ही वह है। आहाहा! पर्याय का और राग का लक्ष्य छोड़ दे तो प्रभु तो ऐसा का ऐसा विराजता है अन्दर। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, वे तो पर्याय हैं। वस्तु तो जो अन्दर विराजता है, वह पूर्णानन्द का नाथ है। आहाहा! उसका अन्दर स्वाद आना। ऐसी यहाँ शुरुआत कहते हैं। उसे समभाव कहते हैं। वीतरागी आनन्द का पर्याय में स्वाद आना, आनन्द का वेदन आना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आना, उसे समभाव कहते हैं। दूसरे समभाव साधारण रीति से यह क्रोध न करे और यह शान्त हो। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की शैली, गजब शैली! गजब शैली!! ओहोहो! गहरा उतर जा प्रभु! वहाँ जा। भगवान विराजते हैं न वहाँ। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

निश्चयनय से निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन... देखो!

यह समभावी को होता है, ऐसा कहते हैं। वहाँ वीतरागभाव होता है। रुचि का सम्यग्दर्शन, वह वीतरागभाव है। आहाहा! और वीतराग के आनन्द के स्वादवाली वह समकित दशा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें सुनने को भी न मिली हो। कितने ही तो नये होते हैं, उन्हें बेचारों को कान में पड़ी न हो। यह क्या कहते हैं? वीतरागमार्ग जैन का होगा यह? आहाहा! वह कहे, भाई! अपने को सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, कन्दमूल नहीं खाना, प्रत्येक वनस्पति में भी जरा मर्यादा करना, दो ही चले, दूसरी अधिक नहीं, तिथि, उसमें दूज, पंचम और अष्टमी को तो नहीं ही। इत्यादि... इत्यादि... वह तो अशुभ परिणाम न हो तब शुभ ऐसे हों, उसकी बात है। वह धर्म नहीं है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बात आयी है यह। आहाहा! यह तो कभी सुनने को मिले ऐसा है। मनहर! तू और भाग्यशाली। मौके से आया है यहाँ। ऐसी बात मिलना ही मुश्किल है। आहाहा!

वह **रुचिरूप सम्यग्दर्शन उस समभाव के धारक के होता है,...** देखो! भाषा। क्या है यह? समयसार है? शान्तिभाई! समयसार है न? है न? अर्थ समझो। भावार्थ **निश्चयनय से...** अर्थात् सत्यदृष्टि से देखे तो **निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** निज शुद्ध (आत्मा)। भगवान नहीं। भगवान, भगवान के पास रह गये। यह निज शुद्धात्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति त्रिकाल। आहाहा! **ऐसी रुचिरूप...** उसकी रुचि, उसरूप **सम्यग्दर्शन उस समभाव के धारक के होता है,...** आहाहा! **उस समभाव के धारक के होता है,...** जिसे वीतरागी परमानन्द का स्वाद होता है, उसे सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब निकाल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाल दिया? आहाहा! ऐसी बात भी भाग्यशाली को मिलती है, बापू! यह तो वीतराग के घर की बातें हैं, बापू! क्या कहें? आहाहा!

कहते हैं, **ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन उस समभाव के... उस समभाव...** कौनसा? कि जो वीतरागी परमानन्द के एकरस सुख का स्वाद, उसे समभाव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **और निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ...** निज आत्मा जो शुद्ध ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ। भावना शब्द से एकाग्रता है। विकल्प और चिन्ता, ऐसा नहीं। **जो वीतराग परमानन्द मधुर रस का आस्वाद...** आहाहा! वीतरागी परमानन्द का मीठे रस का आस्वाद **उस स्वरूप आत्मा है,...** उस स्वरूप आत्मा

है। यहाँ तो अभी ज्ञान की बात करते हैं। ज्ञान किसे कहना? सम्यग्दर्शन किसे कहना, यह बात हो गयी। अब सम्यग्ज्ञान किसे कहना?

निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वीतराग परमानन्द मधुर रस का आस्वाद उस स्वरूप आत्मा है,... अब आया, देखो! **तथा हमेशा आकुलता के उपजानेवाला काम क्रोधादिक है, वे महा कटुक रसरूप अत्यन्त विरस है,...** आहाहा! **ऐसा जानना,...** इसका नाम सम्यग्ज्ञान और उसमें वीतरागी परमानन्दरस का स्वाद (आता है)। आहाहा! ज्ञान में दो बातें लीं। दर्शन में एक ली थी। निज शुद्धात्मा की रुचिरूप परमानन्द के रस स्वादवाला सम्यग्दर्शन। ज्ञान में स्वपरप्रकाशक है न ज्ञान? इसलिए दो बातें लीं। अपना जो आत्मा... आहाहा! उसकी भावना से उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द मधुर रस का आस्वाद, उसका नाम आत्मा।

उस स्वरूप आत्मा है, तथा हमेशा आकुलता के उपजानेवाला काम क्रोधादिक है, वे महा कटुक रसरूप अत्यन्त विरस है,... आहाहा! वह व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह भी आकुलता का कारण है। आहाहा! अरे! यह कैसे बैठे? कठिन पड़े। वे कहे कि परम्परा कारण कहो, परम्परा कारण कहो। अरे! प्रभु! भाई! तुझे खबर नहीं। जहाँ अभी दृष्टि तेरी मिथ्यात्व है, वहाँ परम्परा कारण उसे लागू नहीं पड़ता। आहाहा! अभी श्रद्धा में ही उल्टी बात है। पुण्य से धर्म होगा और उससे यह होगा, करते-करते होगा। वह श्रद्धा तो अत्यन्त मिथ्यात्व है।

जिसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र समभावी परमानन्द के स्वादवाला प्रगट हुआ है। उसे जो पंच महाव्रत आदि के विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र का राग (आवे वह) परम्परा कारण है। अर्थात् कि अभी साक्षात् राग है। फिर राग को टालकर वीतराग होगा। इसलिए उसे परम्परा कारण कहा है। अभी पण्डितों के साथ बड़ा विवाद यह है। अरे! भगवान! बापू! इसमें पण्डिताई का क्या काम है? आहाहा!

हमेशा आकुलता के उपजानेवाला... भाषा देखो! राग-राग। चाहे तो शुभराग हो। वह **हमेशा आकुलता के उपजानेवाला काम क्रोधादिक...** काम अर्थात् इच्छा और क्रोध अर्थात् द्वेष आदि। क्रोध, मान, वह द्वेष है तथा माया और लोभ, वह राग है। अर्थात् काम और क्रोध, राग और द्वेषादि दोनों आ गये। **काम क्रोधादिक है, वे महा**

कटुक रसरूप अत्यन्त विरस है,... आहाहा! भगवान का स्वाद परमानन्द मधुर रस का स्वाद था। वह आत्मा। आहाहा! और यह अत्यन्त विरस। महा कटुक-कड़वा। कड़वा रसरूप। वह मधुर रस था। यह कड़वा रसरूप अत्यन्त विरस है। वह मधुर रस का आस्वाद। आहाहा! ऐसा जो ज्ञान अन्दर हो, ऐसा कहते हैं। वीतरागी परमानन्द के स्वाद में यह आत्मा और राग की आकुलता करनेवाला ऐसा जो ज्ञान हो, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! स्वपरप्रकाशक (ज्ञान है) न, इसलिए ज्ञान में दो डाले हैं। इसे जाने, इसे जाने। ऐसा। आहाहा!

निश्चय में स्वयं वीतराग परमानन्द के रस का स्वादरूपी प्रभु, उसका ज्ञान करे और ज्ञान में (रागादि आकुलतारूप कड़वे रस का भी ज्ञान करे)। ... उसके साथ समभाव होता है और समभाव में वीतरागी परमानन्द का स्वाद होता है। वह जहाँ स्व और पर का (ज्ञान) करता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मुम्बई में ऐसा कुछ मिले, ऐसा नहीं है। ... आहाहा! वीतराग जैन परमेश्वर का कहा हुआ तत्त्व, उसका स्वाद आवे तो उसे तत्त्व जाना कहलाये, ऐसा कहते हैं। उसका स्वाद आवे, उसे दर्शन हुआ कहलाये। यह तो दो की व्याख्या की। अब तीसरा चारित्र।

और स्वरूप का यथार्थ आचरणरूप वीतरागचारित्र... भाषा देखो! स्वरूप भगवान आत्मा का वीतराग परमानन्दस्वरूप, अन्तर भगवान आत्मा वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु है, ऐसा जो उसका स्वरूप, उस स्वरूप का आचरण, उस स्वरूप में स्थिर होना, आचरण करना... आहाहा! वह वीतरागचारित्र है। आहाहा! सम्यग्दर्शन पर्याय वीतराग थी, सम्यग्ज्ञान पर्याय वीतराग थी, सम्यक्चारित्र पर्याय वह वीतराग है। आहाहा! तीनों को समभाव कहा है। आहाहा!

स्वरूप के आचरणरूप वीतरागचारित्र... आहाहा! पंच महाव्रत और वह कुछ चारित्र नहीं। वह स्वरूप नहीं। स्वरूप तो वीतरागी परमानन्द का नाथ प्रभु आत्मा, ऐसा जो उसका स्वरूप है, उसमें आचरण, आचरण उसमें स्थिर होना। आहाहा! **वीतरागचारित्र भी उसी समभाव के धारण करनेवाले के ही होता है,...** आहाहा! ऐसा वीतरागचारित्र भी उस समभाव में वीतरागी परमानन्द के स्वाद को अनुभवता है, उसे होता है। आहाहा!

बहुत सरस बात! कल भी बहुत अच्छी थी। दोपहर में आया था, दर्शन-ज्ञान वीतराग। वीतराग... वीतराग... वीतराग...

जो मुनिश्वर... आहाहा! **उसी समभाव के धारण करनेवाले के ही होता है,...** भाषा 'ही' है वहाँ। आहाहा! है? **स्वरूप के आचरणरूप वीतरागचारित्र भी उसी समभाव के...** अर्थात् वीतरागी परमानन्द के एकरस का स्वाद लेता है, उसे यह चारित्र होता है। आहाहा! **जो मुनिश्वर वीतराग निर्विकल्प परमसामायिकभाव की भावना के...** आहाहा! वीतराग निर्विकल्प अभेद **परमसामायिक भाव की भावना के अनुकूल (सन्मुख) निर्दोष परमात्मा के यथार्थ श्रद्धान, यथार्थ ज्ञान और स्वरूप का यथार्थ आचरणरूप अखण्डभाव धारण करता है,...** आहाहा! **उसी के परमसमाधि की सिद्धि होती है।** परम समाधि वीतरागता... वीतरागता... वीतरागता... आहाहा! ऐसे समभाव को धारण करनेवाले को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं और उसे परमसमाधि है। परमसमाधि—अन्दर स्थिर हो गया। वीतराग। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' आता है न? अपने आता है। दिगम्बर सामायिक पाठ। श्वेताम्बर में तो .... 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' आता हे न लोगस्स में? समाधि (अर्थात्) यह समाधि। वे बाबा करे, वह नहीं। आहाहा!

निर्दोष परमात्मा है। निर्दोष परमात्मा की यथार्थ श्रद्धा, उसका यथार्थ ज्ञान, उसके स्वरूप का यथार्थ आचरणरूप अखण्ड भाव। आहाहा! खण्ड नहीं जिसमें। अखण्ड धारा बहती है, ऐसे **धारण करता है, उसी (साधु) के परमसमाधि की सिद्धि होती है।** उसे परमसमाधि केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। उसे इस प्रकार होती है। दूसरे प्रकार से मार्ग हो, वह दूसरा मार्ग है नहीं। आहाहा! गाथा बहुत मक्खन की है, मक्खन। आहाहा! और अभी तो व्याख्या बदल गयी। यह पंच महाव्रत पालना, व्रत करना, रस छोड़ना और यह करना, वह धर्म। धूल भी धर्म नहीं। व्यवहार तप सब बालव्रत और बालतप है। कठिन लगे लोगों को। दु:ख लगे, भाई! ... मार्ग है, नाथ! अनन्त जिनवरों ने, अनन्त गणधरों ने, अनन्त इन्द्रों ने जिसे स्वीकार किया है। अनन्त गणधरों ने जिसे स्वीकार कर रचा है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों ने अनुभव कर वाणी कही है। आहाहा! समझ में आया? विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

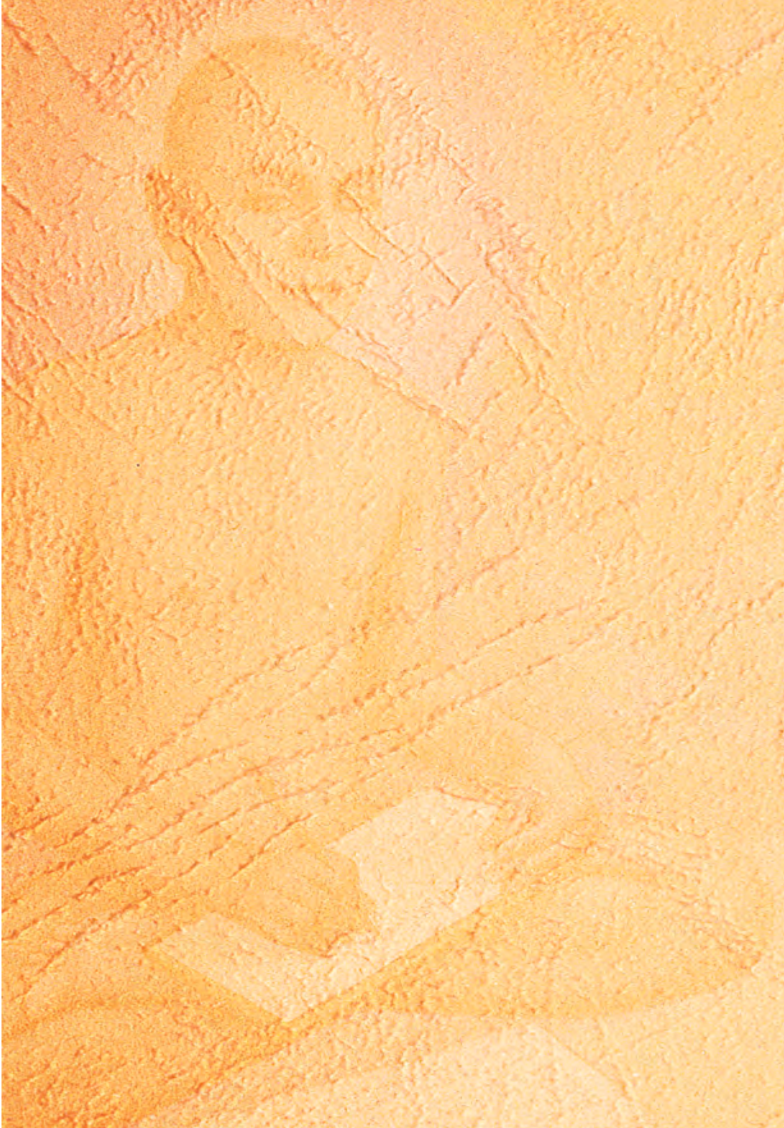

...प्रकाशक...
श्री सीमंधर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
राजकोट